'नैषधीयचरितम्' में उपलब्ध शास्त्रीय सन्दर्भों

की

मीमांसा

इलाहाबाद युनिवर्सिटी की डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी (संस्कृत) उपाधि हेतु
प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

निर्देशक
डॉ. सुरेश चन्द्र पाण्डे
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष

प्रस्तुतकर्ता
रामबहादुर

संस्कृत विभाग

इलाहाबाद युनिवर्सिटी

इलाहाबाद - 211 002

सन्- 1999 **पंजीयन संख्या - 2728**

विषयानुक्रमणिका

भूमिका

नि सदेह मानवयोनि सचित पुण्यकर्मो का परिणाम है, क्योकि इसी योनि मे ही जीवधारी सम्पूर्ण धर्मो के परिपालन मे समर्थ होता है। हॉ, उन धर्मो का निर्वहन हो पाना या न हो पाना बहुत कुछ प्रारब्ध कर्मो एव सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक परिस्थितियो के ऊपर निर्भर करता है, साथ ही उसमे व्यक्ति की मानसिक स्थिति के प्रभाव के योगदान को भी नकारा नहीं जा सकता। आज इक्कीसवीं शताब्दी की तरफ अग्रसर मानव भले यह कहता रहे कि उसे वेदो या शास्त्रो के तथ्यो पर विश्वास नहीं है जैसा कि वर्तमान मे कबीरपन्थी एव अन्य भौतिकता मे विश्वास करने वाले मनुष्य देखे जाते है, परन्तु वास्तव मे अपने तर्क के समर्थन मे वे भी वहीं तथ्य रखते है, जो कहीं न कहीं वेदो या अन्य शास्त्रीय ग्रथो मे उपनिबद्ध है। यहॉ तो, उनकी यही स्थिति मानी जा सकती है कि जो उनकी विचारधारा के अनुकूल हो वह उनका है, एव जो प्रतिकूल हो, वह वेदो या अन्य शास्त्रो का। जो कि सर्वथा अग्राह्य है। यह भारत की भारतीयता एव आध्यात्मिक सस्कृति का ही प्रभाव है कि चाहे कितना भी भौतकवादी या निरीश्वरवादी मानव हो, अपने धर्म से सम्बन्धित पूज्य स्थलो के सामने से गुजरने पर सहसा उनका मस्तक उस स्थान के सामने झुक ही जाता है, इससे यही सिद्ध होता है कि अभी भी उस प्राणी के अन्दर ऐसे वह सस्कार अवशेष है, जो धरोहर रूप मे उसे अपने पूर्वजो से मिले है, उस असीम सत्ता पर वह अब भी विश्वास रखता है, जो इस ससार का नियन्ता, पालनकर्त्ता एव सहर्त्ता है, भले ही हम उसे विविध नामो से सम्बोधित करते है।

शास्त्रो के अन्तर्गत वेद, वेदाड्ग, उपवेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, प्रस्थानत्रयी, विभिन्न स्मृतियॉ एव धर्म, खिल तथा सूत्र ग्रथ परिगणित किये जा सकते है। इनकी प्रासड्गिकता तत्कालीन समय मे तो थी ही, आज भी है। हॉ, इतना जरूर है कि आज इनकी विचारधाराओ पर समय की धूल पड गयी है, आवश्यकता है उस धूल को झाडने की एव सामान्य जन को इनकी विचारधाओ एव तथ्यो से अवगत कराने की, क्योकि जहॉ प्राचीन काल का मानव आध्यात्मिक शान्ति एव अर्थ शुचिता का प्रेमी था, वहॉ आज के अधिकाश मानव भौतिकभोगविलास एव अर्थपरायणता के वशीभूत हो रहे है। यद्यपि महाभारत कालीन समाज मे भी अर्थपरायणता थी जैसा कि भीष्म के कथन "अर्थस्य पुरुषो दास अर्थ दास न कस्यचित्" से निगमित होता है किन्तु फिर भी उस समय राज्यनिष्ठा, त्याग एव सयम के प्रति भी लोगो की आस्था थी जिसका वर्तमान मे लोप होता दिखाई देता है। आज के अर्थपिपासु मानव की तुलना यदि प्राचीन कालीन मानव से की जाये, तो "परोपकार पुण्याय, पापाय परपीडनम्" की अवधारणा की जगह "स्वकार्य साधयेत् धीमान् कार्य भ्रशो हि मूर्खता" तथा "घट भित्त्वा पट छित्त्वा कृत्त्वा राजसरोहणम्। येन केन प्रकारेण प्रसिद्धस्तु नरो भवेत्।।" की अवधारणा ही अधिक समीचीन लगती है, क्योकि आज इसी अवधारणा ने अधिकाश मनुष्यो को अपने पाश मे आबद्ध कर रखा है। आज शास्त्र सम्मत क्रियाओ का निष्पादन होता तो है, लेकिन शायद रीति रिवाजो, परम्पराओ को निभाने या लोकलज्जावश ही या केवल दिखावा मात्र के लिये। स्थिति यहॉ तक पहुँच गयी है कि इस विज्ञान एव कम्प्यूटर के युग मे तो कुछ लोग शास्त्रों के अध्ययन, एव शास्त्र सम्मत विधियो के क्रियान्वयन को समय एव धन का दुरुपयोग मानते है। शायद यही कारण है कि प्राचीन काल के मानव जहॉ नीरोग एव मानसिक शान्ति का जीवन व्यतीत

करते थे, वहीं आज का मानव स्वास्थ्य एव मानसिक शान्ति की खोज मे डाक्टरो एव विभिन्न सन्त महात्माओ, तान्त्रिको या ज्योतिषियों की शरण खोजता फिरता हे, बात बराबर हो गयी, अर्थात् घूम फिर कर मानव को शास्त्रो की ही शरण लेनी पडी।

यह हमारे लिये गौरव एव आत्मपरितोष की बात है कि भारत सरकार ने सन् 1999-2000 ई० को "सस्कृत वर्ष" घोषित किया है जिस सस्कृत भाषा मे हमारे सभी शास्त्रीय ग्रथ रचित है। ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य गोस्वामी तुलसीदासजी के कथन "शास्त्र सुचिन्तित पुनि-पुनि पेठिअ" के सन्दर्भ की मीमासा अब सरकार को भी सटीक लगने लगी है। क्योकि जीवन की हर विधाओ मे व्यक्ति का शास्त्र ही मार्ग दर्शन करते है। यथा-

अनेकसशयोच्छेदि परोक्षाऽर्थस्य दर्शकम् ।
सर्वस्य लोचन शास्त्र यस्य नाऽप्यन्ध एव स ॥

वाक्यपदीयकार भी शास्त्र को नेत्र की सज्ञा से अभिहित करते है। यथा-

वेदशास्त्राविरोधी यस्तर्कश्चक्षुरपश्यताम्। 1/137

गीता मे भी शास्त्रो की महनीयता का विशिष्ट वर्णन मिलता है। यथा-

य शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारत ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुख न परा गतिम् ॥ 16/23

तस्माच्छात्र प्रमाण ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्त कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥ 16/24

शास्त्र है क्या? इसके बारे मे व्यास का कथन है-

वेदस्योपनिषत्सत्य सत्योपनिषद् दम ।
दमस्योपनिषन्मोक्ष एतत् सर्वानुशासनम् ॥ शान्ति पर्व 299/13

साथ ही महाभारत के सनतसुजातीय पर्व मे यह भी वर्णन मिलता है कि –

यो वेद वेदान् न स वेद वेद्यम् ।
सत्यस्थितौ यस्तु स वेद वेद्यम् ॥

एव व्यास की यह भी मान्यता है कि-

शमार्थ सर्वशास्त्राणि निर्मितानि मनीषिभि ।
य एव सर्वशास्त्रज्ञ तस्य शान्त मनस्सदा ॥

आचार्य सायण के अनुसार वेद वह ग्रथ है जो इष्ट की प्राप्ति एव अनिष्ट को रोकने का अलौकिक उपाय बतलाते है - "इष्ट प्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपाय 'यो' ग्रथो वेदयति स वेद। साथ ही वेद से अभिप्राय उस समूचे साहित्य से है जो मत्र और ब्राह्मण इन दोनो भागो से मिलकर बना है, जैसा कि आपस्तम्ब कहते हैं "मन्त्रब्राह्मणयोर्वेद नाम धेयम्।" आचार्य शकर का कथन है कि वेद की वेदता इसी से होती है कि वे प्रत्यक्ष से अगम्य तथा अनुमान आदि से उद्भावित अलौकिक उपाय का बोध कराते है ("श्रुतिश्च न प्रमाणमतीन्द्रियार्थ विज्ञानोत्पत्तौ।") भारतीय कल्पना के अनुसार वेद नित्य निखिल ज्ञान के

अमूल्य भाण्डागार, एव धर्म का साक्षात्कार करने वाले महिर्षयो के द्वारा परमतत्त्व के परिचायक है। वृहदारण्यक उपनिषद् (2/4/10) मे वर्णन मिलता है कि वेदो की रचना ऋषियो ने अन्त प्रेरणा की स्थिति मे की थी और उन्हे जो प्रेरणा देता है वह ईश्वर है। जब कि शकराचार्य मानते है कि ये ऋषियो के सामने विना उनके प्रयत्न के प्रकट हुए है, ("पुरुष प्रयत्न विना प्रकटीभूत"), लगभग इसी तथ्य का प्रतिपादन अपने ग्रथ निरुक्त (1/20) मे यास्क भी करते है कि "साक्षात्कृत धर्माण ऋषियो बभूवु। तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेल मन्त्रान् सम्प्रादु। उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेम ग्रन्थ समाम्नारिषिर्देद च वेदाड्गानि च।

जहॉ तक शास्त्रो के प्रामाण्य की बात है तो इस विषय मे यह कहा जा सकता है कि लगभग सभी धर्मपरायण भारतीय विचारधारा की सभी शाखाये वेदो की प्रामाणिकता को स्वीकार करती है, यहॉ तक कि बौद्ध और जैन तक उपनिषदो की शिक्षा स्वीकार करते है, हॉ यह बात अवश्य है कि वे उनकी अपने अपने ढग से व्याख्या करते है। नैयायिक मानते है कि वेदो की रचना ईश्वर ने की है जब कि मीमासको का मत है कि उनकी मनुष्य या ईश्वर किसी के द्वारा रचना नहीं हुई है, ध्वनियो के रूप मे वे अनादिकाल से विद्यमान है। मीमासक जहॉ वेदो को स्वत प्रमाण मानता है वहीं नैयायिक परत प्रमाण। न्यायशास्त्र की पद्धति को अपने लिए उचित नहीं समझ कर आचार्यजयन्त भट्ट वेदो का प्रामाण्य सिद्ध करते हुए लिखते है - "अस्मत्पितामह एव ग्रामकाम साड्ग्रहणीं कृतवान्, स इष्टिसमाप्त्यनन्तरमेव गौरमूलक ग्राममवाप।

यदि शास्त्रो को विषयवस्तु की सूत्रशैली मे मीमासा की जाये तो यह कहा जा सकता है कि ऋग्वेद मे जहॉ मुख्य रूप से स्तुतियो का वर्णन है, वहीं यजुर्वेद मे यज्ञो के विवरण, सामवेद मे गीतो की चर्चा एव अथर्ववेद मे सास्कृतिक तथा आध्यात्मिक विवरण के साथ-साथ जादू टोना, औषधि, कृषि एव पशुपालन राजा एव राज्य के विविध विवरणो का प्रतिपादन मिलता है। प्रत्येक वेद के चार-चार विभाग है, सहिता, ब्राह्मण, आरण्यक एव उपनिषद्। जिसमे सहिताओ मे मत्रो, प्रार्थनाओ, स्वस्तिवाचन, एव यज्ञविधियो का निरूपण जबकि ब्राह्मणो मे अधिकाशत गद्य लेख है जिसमे यज्ञो एव अनुष्ठानो के महत्त्व का प्रतिपादन मिलता है। अवधेय है कि वेदो मे कर्मकाण्ड के जो तत्त्व मिलते है उन्हे ब्राह्मणो मे विकसित कर अनुष्ठानो की एक विस्तृत व्यवस्था का रूप दे दिया गया है। भट्टभास्कर ने भी अपनी तैत्तरीय सहिता (1/5/1) के भाष्य पर कर्मकाण्ड तथा मत्रो के व्याख्यान ग्रथो को ब्राह्मण कहा है यथा "ब्राह्मण नाम कर्मणस्तन्मात्राणा व्याख्यानग्रन्थ।" इनमे प्रतिपाद्य विषय को तीन भागो मे बॉटा जा सकता है, विधि, अर्थवाद एव उपनिषद्। वाचस्पति मिश्र ने इन ग्रथो का प्रयोजन निर्वचन, मत्रो का विनियोग, अर्थवाद (प्रतिष्ठान) एव विधि माना है। यथा-

नैरुक्त्य यस्य मन्त्रस्य विनियोग प्रयोजनम् ।
प्रतिष्ठान विधिश्चैव ब्राह्मण तदिहोच्यते ।।

अग्रे जायते, अथ य यज्ञ उपनमति स यद् यजते तद् द्वितीय जायते, अथ यत्र म्रियते यत्रैनमग्नावभ्यादधाति रा यत् ततस्सम्भवित तत् तृतीय जायते।" आरण्यको मे यज्ञो के अनुष्ठान के विधान, धार्मिक संस्कारो एव पक्षीय धर्म की गुह्य शिक्षाओ का विवरण देखने को मिलता है। आरण्यको मे वैदिक यागो के आध्यात्मिक एव तात्त्विक स्वरूप तथा वर्णाश्रम धर्म, निष्काम कर्मयोग, उपासना का समन्त्र प्राणविद्या, तत्त्वमीमासा, आत्मविवेचन के साथ साथ यज्ञो के दार्शनिक रूप का भी विवेचन मिलता है जैसा कि "यज्ञो वै श्रेष्ठतम कर्म" एव शाखायन ब्राह्मण के "विष्णुर्वै यज्ञ " वाक्यो से ध्वनित होता है। आरुणेय उपनिषद् (2) के अनुसार वानप्रस्थ व्रतधारी ही इनका अध्ययन करते हैं। आरण्यक अदृष्य रूप से उपनिषदो के भीतर छाये हुए है वैसे ही ब्राह्मण आरण्यको के भीतर छाये हुए है जैसा कि ऐतरेय आरण्यक (3/1/1), एव साख्यायन आरण्यक (7/2) के आरम्भ के शीर्षक "अथातस्सहिताया उपनिषद्" से स्पष्ट होता है। उपनिषदो मे वेदो के ज्ञानकाण्ड का विवरण मिलता है, इनमे आत्मा, परमात्मा सृष्ट्युत्पत्ति, ज्ञान, कर्म, उपासना एव तत्वज्ञान का प्रतिपादन भी समाहित है। साराशत ब्रह्म तथा ब्रह्मात्मैक्यता का पल्लवन उपनिषदो का प्रधान विषय है। उपनिषदो को वेदान्त भी कहा जाता है क्योकि वेदो की शिक्षा का प्रधान उद्देश्य और अभिप्राय उपनिषदो मे ही मिलता है, जैसा कि मुक्तिकोपनिषद् (1/9) के तिलेषु तैलवद् वेदे वेदान्त सुप्रतिष्ठित , और भागवत (11/21/35) के "वेदा ब्रह्मत्मविषया एव ब्रह्मसूत्र के आत्मैकत्वविद्याप्रतिपत्तये सर्वे वेदान्ता आरभ्यन्ते, तथा वेदान्तसार के "वेदान्तो नाम उपनिषद् प्रमाणम्" श्वेताश्वतर उपनिषद् (6/22) के "वेदान्ते परम गुह्यम्, तथा छान्दोग्योपनिषद् (6/8/7) के तत्वमसि एव वृहदारण्यकोपनिषद् (1/4/10) के "अह ब्रह्मास्मि," माण्डूक्योपनिषद् (2) के "अयमात्माब्रह्म" आदि श्रुतिवाक्यो से स्पष्ट है। प्रस्थानत्रयी (उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र एव गीता) के अतिम ग्रथ श्रीमद्भगवद्गीता मे ज्ञान, कर्म एव भक्ति, इन तीनो साधनो (मार्गों) से ध्येय (मोक्ष) प्राप्ति का विवरण मिलता है एव विभिन्न स्मृतियो तथा सूत्रग्रथो मे सदाचरण के साथ-साथ आध्यात्मिक एव सास्कृतिक कर्मो के सन्दर्भो पर विभिन्न ऋषियो द्वारा विवेच्य विषय सामग्री का प्रतिपादन मिलता है।

स्पष्ट है कि ब्रह्मचर्य आश्रम से लेकर सन्यास आश्रम तक सामाजिक कार्यकलापो से लेकर राजनीतिक वीथियो तक एव यज्ञ, पूजा, अर्चना, सस्कार निष्पादन, कलाशिक्षण, आरोग्यता तथा अन्तिम व्याधि मृत्यु तक सभी अवस्थाओ की गतिविधियो एव उनकी क्रियाओ की सफल विधियो की जानकारी शास्त्रों के अध्ययनान्तर ही सम्भव हो सकती है। सृजन की प्रत्येक विधा यथा साहित्य, दर्शन, धर्म, व्याकरण, ज्योतिष, काममीमासा, शिल्प, वास्तु, रत्न, सामुद्रिक, पाक, औषधि, रसायन, भौतिक एव प्राणिविज्ञान, गणित, राजनीति, अश्वपरिज्ञान, वर्णाश्रम, लोक, परलोक, जन्म, मोक्ष आदि विषयो को लक्ष्य कर लेखन प्रसग मे विद्वतगण शास्त्रो को ही प्रमाण रूप मे, साथ ही मार्गदर्शन रूप मे भी स्वीकार करते है, जिसका प्रमाण आचार्य भरत से लेकर आधुनिक विद्वानो की कृतियो मे प्राप्त होता है, इससे स्वत ही शास्त्रो की महनीयता का आकलन किया जा सकता है। भारतीय मनीषियो के साथ-साथ पाश्चात्य विद्वान् भी शास्त्रो से अत्यधिक प्रभावित थे। मैक्समूलर का मानना है कि ऋग्वेद ही पहली वाणी है जो आर्य मानव के मुख से निकली है। वृहदारण्यक उपनिषद् (2/1/10) मुण्डकोपनिषद् (2/1/6) एव स्वय ऋग्वेद मे भी यह वर्णन मिलता है कि ऋग्वेद उस महान सत्ता (परमात्मा) का नि श्वास है परन्तु आज ऋग्वेद की पूर्ण विषयवस्तु के उपलब्ध होने की सूचना अनुपलब्ध है, मैक्समूलर का (अपने "ग्रथ सिक्स सिस्टम्स आफ इडियन फिलास्फी," 1899, पृ 41) यहाँ तक मानना है कि आज ऋग्वेद के सौवे भाग की सुरक्षित रखने

के दावे की घोषणा नहीं की जा सकती। रैगोजिन भी अपने ग्रथ "वेदिक इडिया" (1895 पृ0 114) मे लिखते हैं कि ऋग्वेद नि सन्देह आर्यजाति का सबसे प्राचीन ग्रथ है तथा ब्लूनफील्ड, अपने ग्रथ "द रिलीजन आफ द वेद" (1908, पृ017) मे कहते है कि ऋग्वेद न केवल भारत का सबसे प्राचीन स्मारक है बल्कि हिन्द यूरोपीय जातियो का सबसे प्राचीन दस्तावेज भी है। डॉ० निकोल मैक्निकोल ने अपनी पुस्तक "हिन्दू स्क्रिप्चर्स (1938 पृ0 14) मे लिखा है कि यह (ऋग्वेद) साहित्य यूनान और इजराइल दोनो के साहित्य से पुराना है, और जिन्होने इसमे अपनी उपासना को अभिव्यक्ति दी थी, उनकी सभ्यता के ऊँचे स्तर को प्रकट करता है। विण्टरनित्ज महोदय भी अपनी पुस्तक "ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर" (अग्रेजी अनुवाद, खण्ड-1, 1927, पृ0 6) मे लिखते है कि यदि हम अपनी निजी सस्कृति के आरम्भ को जानना और समझना चाहते है, यदि हम प्राचीनतम हिन्द यूरोपीय सस्कृति का समझना चाहते है, तो हमे भारत जाना चाहिए, जहाँ एक हिन्द यूरोपीय जाति का सबसे प्राचीन साहित्य सुरक्षित है, क्योकि भारतीय साहित्य की प्राचीनता के प्रश्न पर चाहे हमारा कुछ भी मत हो, पर यह बात निर्विवाद कहीं जा सकती है कि भारतीयो के साहित्य का जो सबसे प्राचीनतम स्मारक है, वह हिन्द यूरोपीय साहित्य का भी अभी तक उपलब्ध प्राचीनतम स्मारक है। मैक्समूलर ने भी अपने ग्रथ "ऐशियन्ट हिस्ट्री आफ सस्कृत लिटरेचर" (1895, पृ0 63) मे लिखा है कि हिन्द यूरोपीय साहित्य का सबसे प्राचीन स्मारक ऋग्वेद है। वेदो मे जो इतनी रुचि ली जाति है, उसके दो कारण है, इसका सम्बन्ध विश्व इतिहास से है एव भारतीय इतिहास से भी। विश्व इतिहास मे यह एक ऐसी खाई को पूरा करता है, जिसे किसी अन्य भाषा कोई साहित्यिक ग्रथ पूरा नहीं कर पाया है। यह हमे पीछे के उस काल मे ले जाता है जिसका हमारे पास कोइ साक्ष्य नहीं है, तथा मनुष्यो की ऐसी पीढी के खुद उनके शब्दो को हमारे सामने रखता है जिसके विषय में हम अन्यथा कल्पनाओ और अनुमानो के सहारे बस बहुत ही धुधला सा अदाजा लगा पाते हैं। जब तक मनुष्य अपनी नस्ल के इतिहास मे रुचि लेता है रहेगा और जब तक हम पुस्तकालयो और सग्रहालयो मे प्राचीन युगो के अवशेषो का सग्रह करते रहेगे तब तक मानव जाति की आर्यशाखा का लेखा जोखा रखने वाली पुस्तको की लम्बी पात मे पहला स्थान सदा ऋग्वेद को ही मिलेगा। उपर्युक्त कथनो एव वर्तमान मे भी विद्वत्गणो द्वारा सहिता वाक्यो को अपनी ग्रथो मे जगह देने से वेदो की प्राचीनता एव समीचीनता की पुष्ट होती है। वास्तव मे काव्यवृजन की यह परम्परा, आत्मिक जीवन को पगु कर देने वाला और हमसे एक सदा के लिए गुजरे युग मे लोटने की अपेक्षा करने वाला कोई कडा और कठोर साचा "नहीं" है, वह अतीत की स्मृति भी नहीं है बल्कि जीवन्त आत्मा का सतत आवास एव आत्मिक जीवन की जीवन्त धारा है, और कहीं न कहीं से हम उसी पुरातन काव्यधारा से अवश्यमेव प्रभावित होकर उससे मार्गदर्शन रूपी लौ को उधार ले ही लेते है। महात्मा सुकरात भी कहते है कि हमे मिल जुलकर उस भण्डार को उलटना पलटना चाहिए जो ससार के मनीषी हमारे लिए छोड गये है और यदि ऐसा करते हुए हम एक दूसरे के मित्र बन जाते है, तो यह और भी प्रसन्नता की बात होगी। इस प्रकार शास्त्र विभिन्न सस्कृतियो के परिज्ञान के साथ-साथ मानव मे मानवीयता, सदाचरण एव मित्रता के बीज बोने मे भी अपनी महनीय भूमिका निभाते हुए दिखते है। इसलिए इनकी मीमासा करना पवित्र कर्म भी माना जा सकता है। यथा-

यस्य व्याकुरुते वाच, वाच यस्य मीमासतेऽध्वरम् ।
उभौ तौ पुण्यकर्माणौ पक्तिपावन पावन ।।

यह तो सच है कि वेदो या श्रुतियो का सम्बन्ध उन विषयो से है जिन्हे सामान्य जन द्वारा प्रत्यक्ष ज्ञान एव अनुमान से नहीं जाना जा सकता "अप्राप्ते शास्त्रमर्थवत्" (मीमासासूत्र 1/2/5) यथा, ब्रह्म, आत्मा, जन्म, पुनर्जन्म एव मोक्ष की मीमासा, परन्तु फिर भी शास्त्रो की "चरैवेति चरैवेति" की अवधारणा मानव को निरन्तर स्वकर्म करने हेतु प्रेरित करती रहती है और "श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्" आचारवान पुरुषो वेद, "ऋतेज्ञानान्नमुक्ति" भागवत के "जितेन्द्रियस्यात्मरतेबुर्धस्य गृहाश्रम किन्नु करोत्यवद्यम्" एव अभिनवगुप्त के कथन "तत्वज्ञानिन सर्वेष्वाश्रमेषु मुक्तिरिति स्मार्तेषु श्रुतौ" आदि वैदिक वाक्यो के माध्यम से यह तो कहा ही जा सकता है कि सामान्यजन भी श्रवण, मनन, निदिध्यासन एव अष्टागिक योगो के सफल कियान्वयन के पश्चात अपने अतिम ध्येय "मोक्ष" को प्राप्त कर सकते है और शास्त्र तो प्राणिमात्र के आस्था के विषय तो है ही, क्योकि वर्तमान मे भी उनमे सन्निहित तथ्यो का रसपान मानव द्वारा विभिन्न माध्यमो से किया जाना, उनके प्रति आस्था का सबल प्रमाण माना जा सकता है। यह शास्त्रो के प्रति आस्था का ही प्रभाव है कि जर्मन रहस्यवादी एव दार्शनिक शोपेनहावर (Schopenhauer 19वीं शताब्दी) की मेज पर उपनिषदो की एक लैटिन प्रति रहती थी और वे सोने से पहले उसमे से ही अपनी प्रार्थनाएँ किया करते थे। उनकी मान्यता थी कि उपनिषदो के प्रत्येक वाक्य से गहन, मौलिक ओर उदात्त विचार फूटते है ओर सभी कुछ एक उच्च पवित्र और एकाग्र भावना मे व्याप्त हो जाता है। समस्त ससार मे उपनिषदो जैसा कल्याणकारी और आत्मा को उन्नत करने वाला कोई और ग्रथ नहीं है। ये सर्वोच्च प्रतिभा के प्रसून है। देर सबेर ये लोगो की आस्था का आधार बनकर रहेगे। (ब्लूमफील्ड रिलीजन आफ द वेद , 190: पृ0 55) साथ ही उनका यह कथन कि उपनिषद् मेरे जीवन मे शान्ति के साधन रहे है और मृत्यु मे भी शान्ति के साधन रहेगे। (It has been the solace of my life and will be the solace of my death- winternitz, H I L ? 267)से उनकी शास्त्रो मे अगाध एव असीम आस्था तथा श्रद्धा का पता चलता है। उपनिषदो से अत्यधिक प्रभावित डा0 पाल डायसन (1845-1919 जिनका भारतीय पडितो ने भारतीयकरण करा देवसेन नाम रख दिया था।) का मानना है कि उपनिषद् नामक श्रुति एसी दार्शनिक धारणाओ की स्थापना करती है, जो भारत मे, या शायद विश्व मे भी अद्वितीय है, एव दर्शन की प्रत्यक समस्या को सुलझाती है। उनका जर्मन ग्रथ "डास सिस्टम डेस वेदान्त" (जिसका अग्रेजी अनुवाद "दि सिस्टम आफ दि वेदान्त हो चुका हे), एव "एलीमेन्टस आफ मेटाफिजिक्स", जो तीन भागो मे है, उसमे पहला भाग उपनिषदो का दर्शन है। डब्लू बी यीट्स का कथन (जो राधाकृष्णन टेन प्रिंसिपल उपनिषद्स 1937, जिसमे दस उपनिषदो के मन्तव्यो की पुनर्व्याख्या और मूल्याकन हुआ हे, के पृष्ठ 11 मे उद्घृत) है कि "सम्प्रदायो को शास्त्रार्थ के लिए बेचैन करने वाली कोई भी चीज ऐसी नहीं है, जिस पर इनका (उपनिषदो का) ध्यान न गया हो।'

वास्तव मे यदि सम्पूर्ण उपनिषदो की मीमासा की जाये, तो यही निष्कर्ष उभर कर सामने आता है कि ये हमे अदृश्य सत्य का एक पूर्ण रेखाचित्र प्रदान करते है, साथ ही मानव अस्तित्व के रहस्यो पर बहुत ही सीधे, गहरे विश्वरत ढग से प्रकाश डालते है एव जाति, वर्ण, भौगोलिक सीमाओ से ऊपर उठकर मानव आत्मा की अन्वेषण प्रवृत्ति का समाधान करते दिखते हे, इससे यह प्रतीत होता है कि समय की दृष्टि से वर्तमान मे हमसे दूर होते हुए भी अपनी विचारधारा से यह आज भी हमारे नजदीक है, इससे इनकी वर्तमान मे भी पासगिकता द्योतित होती है। ओल्डेनबर्ग का भी अभिमत (जो कीथ के "द रिलीजन एण्ड फिलास्फी आफ द वेद एण्ड द उपनिषद्स, 1925 पृ0 492 मे उदधृत) है कि उपनिषदे हमे

आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि और दार्शनिक तर्कप्रणाली दोनो प्रदान करती है। क्रिश्चियन वेदान्तिजम पर एक लेख (इडियन इटरप्रेटर 1913 मे छपे) मे श्री आर गोर्डन मिल्बर्न लिखते हे कि "भारत मे ईसाई धर्म को वेदान्त (उपनिषदो की) आवश्यकता है। भारतीय विद्वान् डॉ० राधाकृष्णन ने उपनिषदो के ऋषियो को पवित्र ज्ञान के शिक्षणालय के महान शिक्षक की पद्वी से समलकृत किया है, क्योकि वे हमारे सामने ब्रह्मज्ञान व आध्यात्मिक जीवन की सुन्दर व्याख्या रखते है। वर्तमान मे उपनिषद् साहित्य जिस रूप मे हमे प्राप्त है उनके बारे मे यह अभिमत रखा जा सकता है कि उपनिषदो के ऋषियो मे न केवल गहरा सदर्शन है, बल्कि वे अपने सदर्शनो को सुबोध और प्रत्ययकारी वाणी का रूप भी दे पाने मे सर्वथा सफल रहे है। मुक्तिकोपनिषद् (1/30 39) मे यहाँ तक कहा गया है कि एक सौ आठ उपनिषदो के अध्ययन से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। शायद इसी मान्यता का परिणाम था कि उपनिषद् जैसे शास्त्रीय ग्रथो का अनेक भाषाओ मे अनुवाद किया गया। जहाँ दाराशिकोह (1656-57 ई०) ने फारसी मे इनका अनुवाद कराया, वहीं एन्क्वेटिल डुपेरोन (1801-1802 ई०) ने औपनिखत नाम से लैटिन भाषा मे (50 उपनिषदो का) अनुवाद किया। अग्रेजी भाषा मे उपनिषदो के अनुवादको की भरमार देखी जा सकती है जिनमे प्रमुख रूप से राममोहन राय (1832), रोअर (1853 विब्लियोथेका इडिका), मैक्समूलर (1879-1884) ने शकर द्वारा उल्लिखित 11 उपनिषदो एव मैत्रायणी सहिता का अनुवाद किया (सेक्रेड बुक्स आफ द ईस्ट मीड और चट्टोपाध्याय, 1896 लदन, थियोसोफिलकल सोसाइटी)। डॉ० पाल डायसन ने 60 उपनिषदो का (जिनमे वह 14 को ही मूल उपनिषद् मानते है) का अनुवाद किया। सीताराम शास्त्री और गगानाथ झा (1898-1901 जी0ए0 नटेसन मद्रास), सीतानाथ तत्वभूषण (1900 ई०) एस सी बसु (1911) के अतिरिक्त आर ह्यूम (1921) ने मैक्समूलर द्वारा चुनी गयी 12 उपनिषदो एव माण्डूक्योपनिषद् का, ई०बी० कोवेल, हिरियन्ना, द्विवेदी, महादेवशास्त्री एव श्री अरविन्द ने कुछ उपनिषदो के अनुवाद प्रकाशित किये है। इससे उपनिषदो की शास्त्रीय रूप मे महत्ता सिद्ध होती है और शास्त्र तो हमारे लिए अमूल्य निधि है ही क्योकि शास्त्र ही वह नीव है जिस पर करोडों मनुष्यो का विश्वास आज भी विद्यमान है।

दर्शनशास्त्र एव सस्कृत की स्नात्कोत्तर कक्षाओ मे महाकवि श्रीहर्ष के दो ग्रथो क्रमश खण्डनखण्डखाद्य एव नैषधीयचरितम् के अध्ययन करने का सुअवसर प्राप्त हुआ, साथ ही स्नातक कक्षाओ मे सूक्तियो के लेखन प्रसग मे नैषध विद्वदौषधम् नैषधे पद लालित्य एव उदिते "नैषधे काव्ये क्व माघ क्वच भारवि" तथा श्रीहर्ष की स्वय की उक्तियो की, कि उसका नैषधीयचरित क्षीरसागर के समान है एव उसकी वाणी के सरस प्रवाह मे परमानन्ददायी अमृत की प्राप्ति होती है वह समाधियो मे परब्रह्म के साक्षात्कार से परमानन्द का अनुभव करता है, उसका काव्य अमृतमय एव तर्क प्रतिपक्षी को मौन धारण करवा देते हैं इत्यादि ने मुझे सोचने को मजबूर कर दिया कि आखिर श्रीहर्ष कैसी प्रतिभा के धनी है कि उन्होने दसप्रमुख ग्रथो (जिनमे आठ अप्राप्य है) की रचना की? खण्डनखण्डखाद्य पर दृष्टि डाली, तो यही समझ मे आया कि यह अद्वैतन्याय (Dialectics) का सबसे महत्वपूर्ण ग्रथ है एव इसमे विशेष रूप से नैयायिकों के मत का खण्डन करके अनिवर्चनीयतावाद को प्रतिष्ठापित किया गया है। इसीलिए इस ग्रथ को "अनिवार्यनीयतासर्वस्वम्" भी कहा जाता है। दूसरे शब्दो मे कहे तो श्रीहर्ष ने नैयायिको के मतो का खण्डन कर उन्हे खॉड (गुड का परिवर्तित रूप) रूप मे खाने को सम्प्रेषित कर दिया। इस पर नैयायिक शकर मिश्र की आनन्त्वर्धिनी (शाकरी), विद्यासागर की विद्यासागरी टीकाओ के साथ-साथ चित्सुखाचार्य ने भी टीका लिखी है। इसके अतिरिक्त गोविन्दनरहरिबैराजकपुरकर ने इस ग्रथ पर लिखी गयी अन्य टीकाओ

यथा-रघुनाथसिरोमणिकृत खण्डनमण्डन, पद्मनाभकृत शिष्यहितैषिणी, चरित्रसिह कृत खण्डनमहातर्क, प्रगल्भमिश्रकृत खण्डनमण्डन, शुभशकरमिश्रकृत व्याख्या तथा विद्याभरणी एव श्रीदर्पण इत्यादि प्रमुख है। दर्शनशास्त्र का विद्यार्थी होने के नाते मै इस ग्रथ की अधिकाधिक सामग्री से परिचित हो चुका था, अत इसमे कार्य करने के लिए मन ने स्वीकृति नहीं दी। रह रह कर एक कसक या यह कहूँ अनुरक्ति नेषधमहाकाव्य के प्रति बढती चली गयी। अनेकश इस महाकाव्य का आलोडन विलोडन करने के पश्चात हर बार इसी किसी न किसी पक्ति मे कोई नयी शास्त्रीय चर्चा मिल जाती। तब मन मे यह विचार कौधा कि वस्तुत नैषध तो श्रृगार रस का कलश काव्य है परन्तु फिर भी इसमे शास्त्रीय सदर्भों की भरमार भी है, जिन पर आज तक किसी विद्वान् की लेखनी नहीं उठी। वैसे तो इस महाकाव्य पर लगभग 24 प्रमुख टीकाकारो ने टीका लिखी है यथा - चाण्डू पण्डित विद्याधर, गदाधर, आनन्दराजानक, ईशानदेव, उदयनाचार्य, गोपीनाथ चारित्रवर्धन, जिनराज, नरहरि (नरसिह), भगीरथ, भरतमल्लिक (भरतसेन), भवदत्त, मधुरानाथ, महादेवविद्यावागीश, रामचन्द्र शेष वशीवदन शर्मा, विद्यारण्ययोगी, विश्वेश्वराचार्य, श्रीदत्त, श्रीनाथ, सदानन्द, नारायण भट्ट, महामहोपाध्याय मल्लिनाथ एव श्रीहरिसिद्धान्तवागीश भट्टाचार्य। इनमे आचार्य मल्लिनाथ की जीवातु टीका, महामहोपध्याय नारायण भट्ट की नैषधप्रकाश या नारायणी टीका तथा श्रीहरि सिद्धान्त वागीश भट्टाचार्य की जयन्ती (बगला अनुवाद सहित) टीका को ही विद्वानो ने अध्ययन अध्यापन की दृष्टि से श्रेष्ठ माना है। इनके अतिरिक्त श्रीकृष्णकान्त हाण्डिकी (ने 1956 मे नैषध का अग्रेजी अनुवाद एव विशिष्ट टिप्पणीयॉ लिखी,) डॉ० अरुणोदय नटवर लाल जानी एव डॉ० चण्डिका प्रसाद शुक्ला ने भी नैषधमहाकाव्य के साहित्यिक एव आशिक रूप मे दार्शनिक, पौराणिक भौगोलिक, ऐतिहासिक एव सामाजिक बिन्दुओ पर प्रकाश डाला है।

परमादरणीय गुरूदेव प्रो० सुरेशचन्द्र पाण्डेजी से जब मैने नैषध के शास्त्रीय सन्दर्भों पर कार्य करने की अपनी अभीप्सा व्यक्त की, तो उन्होने सहर्ष अनुमति प्रदान करने के साथ-साथ बहुविध सहायता देने का आश्वासन भी दिया। नैषध जेसे गम्भीर काव्य की शास्त्रीय मीमासा करना वास्तव मे एक दुष्कर कार्य था, परन्तु गुरूजी के समय-समय पर विद्वत्तापूर्ण निर्देशन से यह कार्य सभव हो सका। गुरूजी के विशाल सारगर्भित पुस्तकालय से सहयोग लेने के साथ-साथ मैने उनकी अगाध, असीम, पण्डित्यसम्पन्ना रसनाग्रनर्तकी शास्त्रविद्या का निरन्तर रसपान भी किया है। उनके स्नेह, सहयोग, एव गवेष्णात्मक दृष्टि प्रदान करने के लिये उन्हे मे हृदय से कृतज्ञता अर्पित करता हूँ।

इस शोधप्रबन्ध के पूर्ण होने मे वाग्देवी के साथ-साथ अपने कुल दवता भगवान शकरजी को अपनी प्रणिमा निवेदित करता हूँ। स्वर्गनिवासिनी, करुणा एव ममता की प्रतिमूर्ति, प्रात स्मरणीया मातृद्वय (स्वमाता एव गुरुमाता) के प्यार एव अमोघ आशीर्वाद का कवच मुझे हर क्षण स्वाध्ययन हेतु प्रेरित करता रहता है, उन्हे मै हृदय से नमन करता हूँ। प्रो हरिशकर त्रिपाठी जी (सस्कृत विभागाध्यक्ष, इलाहाबाद निश्वविद्यालय) ने,जो सत्परामर्शो से मेरा ज्ञानवर्धन किया है, एव अपना अनुराग पात्र समझा है, इसके लिये मै उनके प्रति नतमस्तक हूँ। प्रो सूर्य नारायण मिश्रजी (विधि विभाग) के स्नेह एव शुभाशी की छॉव ने मेरी आत्मिक शक्ति का सदैव परिवर्धन किया है, अतएव उन्हे भी मै विनम्र भाव से नमन करता हूँ। डॉ० शङ्करदयालद्विवेदी जी (रीडर सस्कृत विभाग) की प्रीति भावना की प्रतीति, मेरा उत्साह वर्धन करती रहीं है एतदर्थ उनके प्रति आभार व्यक्त ककरना मै अपना पूत कर्त्तव्य समझता हूँ। डॉ० जटाशकरतिवारी

(रीडर, दर्शन विभाग) एव अग्रजतुल्य डॉ० दुर्गा प्रसाद मिश्र, डॉ० हरिराम मिश्र, डॉ० सुरेश कुमार पाण्डेय, डॉ० दिनेश प्रसाद मिश्र तथा डॉ० सरिता वाजपेयी के शुभकामनाओ एव पुस्तकीय सहयोग के लिये उनके प्रति हृदय से अनुगृहीत हूँ।

परम पूज्य पिताजी के शुभाशीष एव प्रोत्साहन का ही फल है कि आज मै इस स्थिति तक पहुंच सका हूँ। परम सम्माननीय अग्रज श्री कामता प्रसाद शुक्ल (D.O) के शुभाशीष एव आर्थिक सहयोग ने मेरे इस मार्ग को सरल बनाया है अतएव उन्हे मै मन ही मन प्रणाम करता हूँ। मेरे इस शोध यज्ञ मे जिन अदृश्य शक्तियो, ऋषियो, गुरुजनो एव उनके ग्रथो ने आज्य एव समिधा सदृश काम किया या इस शोधयज्ञ के अनुष्ठान मे समवायि एव निमित्कारण की भॉति सहयोग प्रदान किया उनके प्रति मै हृदय से कृतज्ञ हूँ। गगानाथ झा केन्द्रीय विद्यापीठ के प्राचार्य डॉ० गया चरण त्रिपाठी जी का जो अनुराग एव पुस्तकालय मे अध्ययन के लिये जो सहयोग मिला, उनके प्रति मै हृदय से कृतज्ञ हूँ। अन्य पुस्कालयो के साथ-साथ पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी और इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पुस्तकालय एव उनके कर्मचारियो विशेषकर श्री सगमलालशाहू के प्रति भी मै आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होने दुर्लभ जनरलो, पाण्डुलिपियो एव नैषध महाकाव्य से सम्बन्धित अत्यन्त प्राचीन टीकाओ तथा अन्य प्रासगिक विषय सामग्री को खोजने मे मेरी मदद की। इस शोधप्रबन्ध के सुन्दर प्रकाशन हेतु जय दुर्गे मॉ कम्प्यूटर प्वाइट, कटरा के स्वत्वाधिकारी श्री रतनखरे को हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

रामबहादुर
10/12/99

प्रस्तुतिकर्त्ता

राम बहादुर

शोध-छात्र (सस्कृत विभाग)

इलाहाबाद युनिवर्सिटी

इलाहाबाद

ABBREVIATIONS

A B R O I	-	Annals of Bhandarkar Oriental Research Institute - Poona,4
A I O C	-	All India Oriental Conference (Series) , 1925, Volumn 1 - 4
An H I	-	Ancient History Of India
Adyar	-	A catalogue of the S K M S S in the Adyar library by the Pandits of the library , Part I 1926, Part II 1928
B O R I	-	Bandarkar oriantal Research Institute , Poona
Cat	-	Catalogue
G O S	-	Gaewad's oriental series, Baroda
H C S L	-	History of classical Sanskrit Literature
H.I L	-	The History of Indian Literature
H S P	-	History Of Sanskrit Poetics
H S L	-	History Of Sanskrit Literature
I A	-	Indian Antiquary.
I O	-	Cat of S K MS S in the liberary of Indian Office (London) by Eggeling , Part VII, 1904
J B B R A S	-	Journal Of Bombay Branch of the the Royal Asiatic Society
J B O R I	-	Journal of Bhandarkar oriental Research Institute , Poona
J O R	-	Journal of Oriental Research, Madras
M S (S)	-	Manuscript (S)
N C	-	Naisadhiyacaritam
N S P	-	Nirnaya Sagara Press, Bombay
N W	-	A catalogue of S K , M S S , In the private library of the north west Provinces Part I Benaras
O I	-	Oriantal Institute Baroda
O I M S	-	An alphabetical List of Manuscript in the oriental Institute . Baroda Vol II, G O S, CX IV P- Page
Report	-	Detailed reort of a tour in search of Sanskrit manuscript, made in the Kashmir Rajputana and Central India by G Buhler, Extra No Of J B B R A S Bombay 1877
Tanjore	-	A descriptive catalogue of the Snaskrit manuscript in the tanjore Maharaja serfoji' S Saraswati Mahal Library, Tanjor , By P P S Sastri in Vol 19 Vols
T C	-	Triennial cat of Mss Collected for the Govt Mss Liberary Madras
	-	Vol - I By M Rangacharya and S Kuppuswami sastri in three parts - 1913
	-	Vol - II By S Kuppuswami Sastri (each in 3 parts to Vol V, 1917-1932)
	-	Vol - VI By S Kuppuswami Sastri, 1953
	-	Vol - VII By S Kuppuswami Sastri and P P S Sastri 1937
	-	Vol - VIII By P P.S Sastri 1939.
	-	Vol - IX By P P S Sastri and A Sankaran 1943

संक्षिप्त सङ्केत सूची

अग्नि पु० - अग्निपुराण
अर्थ शा० - अर्थशास्त्र
अथर्व० - अथर्ववेद सहिता
अभि० भा० - अभिनव भारती
अभि०धा०वृ०मातृ० - अभिधावृत्तिमातृका
अभि०शा० - अभिज्ञानशाकुन्तलम्
अभि०चि० - अभिधानचिन्तामणि
अल० सर्व० - अलकारसर्वस्व
अमरुक शत० - अमरुक शतक
अष्टा० - अष्टाध्यायी
आप०गृ०सू० - आपस्तम्ब गृह्य सूत्र
आश्व०गृ०सू० - आश्वलायन गृह्य सूत्र
आश्व०श्रौ०सू० - आश्वलायन श्रौतसूत्र
ईशा० - ईशावास्योपनिषद्
उप० - उपनिषद्,
उ० मेघ० - उत्तरमेघदूत
उ०रा० - उत्तर रामचरित।
ऋ० - ऋग्वेद
औ०वि० चर्चा - औचित्यविचार चर्चा
ऐत० उप० - ऐतरेयउपनिषद्
कठो० - कठोपनिषद्,
का०गृ०सू० - काठक गृह्यसूत्र
का० प्र० - काव्यप्रकाश
काव्या० - काव्यालकार
का०मी० - काव्यमीमासा
काव्याद० - काव्यादर्श
काव्यानु० - काव्यानुशासन
का०वा० - कात्यायन वार्तिक
काशिका०वृ० - काशिकावृत्ति
का०सा०स० - काव्यालकारसारसग्रह
का०सू०वृत्ति - काव्यालकार सूत्रवृत्ति
किरात० - किरातार्जुनीयम्
कु० - कुमारसभव
कूर्म पु० - कूर्म पुराण
केनोप० - केनोपनिषद्
ख०ख०खा० **खण्डनखण्डखाद्य**
गृ०सू० गृह्यसूत्र
गरुण पु० - गरुणपुराण

गो०गृ०सू० - गोभिलगृह्यसूत्र
चि०मी० - चित्र मीमासा
छान्दो० उप० - छान्दोग्य उपनिषद्
ज्यो० - ज्योतिस्
त०व० तत्ववैशारदी
तत्त्वार्थ० सू० - तत्त्वार्थाधिगमसूत्र
तै०आर० - तैत्तरीय आरण्यक
तै०उ० - तैत्तरीय उपनिषद्
तै०ब्रा० - तैत्तरीय ब्राह्मण
तै० स० तैत्तरीय सहिता
दश० - दशरूपक
धर्म०सू० - धर्मसूत्र
धर्म०शा० का इति० - धर्मशास्त्र का इतिहास
ध्वन्या० - ध्वन्यालोक
ध्वन्या०लो०लो० - ध्वन्यालोकलोवन
न्या०सू० - न्यायसूत्र
ना०स्मृ० - नारद स्मृति
ना०शा० - नाट्यशास्त्र
नै०प्र० नैषधप्रकाश (व्याख्या)
नै० नैषधीयचरितम्
नै० परि० नैषधपरिशीलन
न्याय०कु० न्यायकुसुमाञ्जलि
न्याय०म० न्यायमञ्जरी
न्याय सि०मु० - न्यायसिद्धान्तमुक्तावली
नी०श० - नीति शतक
पात०यो०दर्श० - पातञ्जलयोगदर्शन
पस्पशा० - पस्पशाह्निक
पा०सू० - न्याणिनिसूत्र
पा०गृ०सू० - पास्करगृह्यसूत्र
प्रश्नो० - प्रश्नोपनिषद्
बौ०ध०सू० - बौधायन धर्मसूत्र
ब्र०-सू० - ब्रम्हसूत्र
भा०द० - भारतीय दर्शन
भार०धर्म० - भारद्वाज धर्मसूत्र
भार०गृ०सू० - भारद्वाज गृह्य सूत्र
भा०पु० - भागवत पुराण
भार०ज्यो० - भारतीय ज्योतिष
भाव०प्र० - भाव प्रकाशन

मनु०	-	मनुस्मृति
महा०	-	महाभारत
मानव गृ०सू०	-	मानव गृह्यसूत्र
नाल वि०	-	मालविकाग्निमित्र
मार्कण्डे० पु०	-	मार्कण्डेय पुराण
माण्डू०	-	माण्डूक्योनिषद्
मु०रा०	-	मुद्राराक्षस
मृच्छ	-	मृच्छकटिक
मी०शा०भा०	-	मीमासा शाबर भाष्य
मीमा०भा०	-	मीमासा भास्य
मीमा०सू०	-	मीमासा सूत्र
यजु०	-	यजुर्वेद
याज्ञ०स०		याज्ञवल्क्य सहिता
या०स्मृ०	-	याज्ञवल्क्यस्मृति
यो०सू०	-	योगसूत्र
यो०वा०	-	योगवार्तिक
रघु०	-	रघुवशमहाकाव्य
रस०ग०	-	रसगड्गाधर
रस०तर०	-	रसतरगिणी
राजतर०	-	राजतरड्गिणी
रामा०	-	रामायण
रा०मा०वृत्ति	-	राजमार्तण्डवृत्ति
वा०भा०	-	वात्स्यायन भाष्य
वा०सू०	-	वात्स्यायन सूत्र
विष्णु पु०	-	विष्णु पुराण
वाग्भटा०	-	वाग्भटालकार
व०जी०	-	वकोक्तिजीवित
वशिष्ठ ध०सू०	-	वशिष्ठ धर्मसूत्र
वाज०स०	-	वाजसनेयि सहिता
वृह० उप०	-	वृहदारण्यक उपनिषद्
वा०प०	-	वाक्यपदीय
वैखानस गृ०सू०		वैखानस गृह्यसूत्र
वा०सू०	-	वात्स्यायन सूत्र
वै०सू०	-	वैशेषिक सूत्र
व्यक्ति वि०	-	व्यक्ति विवेक
वृत्ति समु०	-	वृत्ति समुद्देश
वा०सौ०	-	वास्तु सौख्यम्
वृहत स०	-	वृहत्सहिता
विष्णुधर्मो०	-	विष्णुधर्मोत्तर पुराण
विक्रमो०	-	विक्रमोर्वशीयम्

श्वे०उप०	-	श्वेताश्वतरउपनिषद्
श्रृ०प्र०	-	श्रृगारप्रकाश
शत०ब्रा०	-	शतपथब्राम्हण
शा०भा०	-	शाड्कर भाष्य
शु०यजु०	-	शुक्ल यजुर्वेद
शिशु०	-	शिशुपालबध
षड दर्श०समु०	-	षडदर्शनसमुच्चय
स०क०	-	सरस्वतीकण्ठाभरण
स०सा०का इति०		सस्कृत साहित्य का इतिहास
स०-र०		सगीत रत्नाकर
साम०वे०	-	सामवेद
सा०द०		सहित्यदर्पण
सु०ज्यो०	-	सुगम ज्योतिष
सर्व०द०स०	-	सर्वदशन सग्रह
साखा०गृ० सू०	-	साखायन गृह्यसूत्र
सौ०	-	सौन्दरनन्द
स्वप्न०	-	स्वप्नवासदत्ता
सार०सद०	-	सारश्वत सदर्शनम्
सायण-भा०	-	सायण भाष्य
सुभा०रत्न०भा०	-	सुभाषितरत्नभाण्डागार
सगीत०पा०	-	सगीतपारिजात
सि०कौ०	-	सिद्धान्त कौमुदी
साख्य कौमु०	-	साख्यतत्व कौमुदी
सगी०सुधा०	-	सगीत सुधाकर
सु०सहि०	-	सुश्रुत सहिता
स०सा०विमर्श	-	सस्कृत साहित्यविमर्श
स०सा०का समी०इति०		सस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास
हिन्दी अभि०	-	हिन्दी अभिनवभारती
हिरण्य के०गृ०सू०	-	हिरण्यकेशिगृह्यसूत्र
हारीत स्मृ०	-	हारीत स्मृति

प्रथम अध्याय

श्रीहर्ष का व्याक्तित्व एवं कृतित्व

श्रीहर्ष का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

रचना कर्तृत्व —

संस्कृत का काव्य वाङ्मय न केवल हृदयस्पर्शी, बुद्धिचमत्कारकारी एव सरसता की दृष्टि से महनीय है, अपितु वह विविध ज्ञान विज्ञानराशि का अनुपम कोष भी है। संस्कृत काव्य साहित्य न केवल गुणवत्ता अपितु संख्या की दृष्टि से भी अपरिमित है, तथापि अध्ययन अध्यापन की परम्परा मे वृहत्त्रयी एव लघुत्रयी का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। व्याकरणतत्र मे प्रचलित "यथोत्तर मुनीना प्रामाण्यम्" के अनुसार पूर्व की अपेक्षा पर मुनि श्रेष्ठ माने जाते है। यह उक्ति व्याकरणतत्र के मुनियो के प्रामाण्य के विषय मे जितनी सटीक है, सभवत उतनी ही वृहत्त्रयी के महाकवियो के सन्दर्भ मे भी खरी उतरती है। परम्परागत पण्डित समाज मे प्रचलित अधोलिखित सूक्ति इसी तथ्य की पुष्टि की ओर सकेत करती है —

> तावद् भाभारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदय ।
> उदिते नैषधेकाव्ये क्व माघ क्व च भारविः ॥

लोकजीवन मे प्रचलित विभिन्न कल्पनाओ की ऊँची उडानो का जितना बहुविध चित्रण नैषधीयचरित मे उपलब्ध है, उतना अन्यत्र किसी भी एक ग्रथ मे उपलब्ध नहीं होता। साथ ही लोकोत्तर चमत्कारिक तथ्य, ध्वनि रस भाव, पदलालित्य, दर्शन, व्याकरण एव अन्य शास्त्रो के बहुविध प्रसगो से समन्वित होने के कारण भी नैषधीयचरित महाकाव्य सभी महाकाव्यो मे सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इसके रचयिता महाकवि श्रीहर्ष है।[1]

संस्कृत साहित्य मे श्रीहर्ष नाम के अनेको विद्वान् समादृत है, परन्तु "नैषधीयचरितम्" का रचयिता कौन श्रीहर्ष है? इस तथ्य की विवेचना के लिए यहाँ ऐतिहासिक चर्चा करना समीचीन होगा। तजौर मे प्राप्त नैषधीयचरित ग्रथ की पुष्पिका मे कालिदास को नैषधीयचरित का लेखक कहा गया है।[2] परन्तु रघुवशादि रचयिता कालिदास (ई०पू० प्रथम शताब्दी) इसके रचनाकार नहीं हो सकते, क्योकि उनके एव श्रीहर्ष (बारहवीं शताब्दी) के समय मे बारह सौ वर्षों का अन्तराल है, और अन्य कोई और कालिदास ऐसे ग्रथ का रचयिता कैसे माना जा सकता है। प्राय ग्रथ को प्रतिष्ठित करने के लिए भी यदा कदा ग्रथो को कालिदास निर्मित कह दिया जाता है जैसे कतिपय विद्वान घटकर्पर काव्य को भी प्रसिद्ध कालिदास की रचना मान लेते है। ऐतिहासिक तिथि क्रम मे संस्कृत साहित्य मे प्रमुख रूप से एकादश श्रीहर्षों का प्रसग मिलता है जो निम्नलिखित है —

१ सर्वप्रथम वर्धनवश के राजा हर्षवर्धन, जो कि थानेश्वर (स्थाणीश्वर) तथा कन्नौज के राजा प्रभाकरवर्धन के पुत्र और राज्यवर्धन के छोटे भाई है, को संस्कृत जगत मे हर्ष, श्रीहर्ष एवं हर्षदेव आदि नामो से सम्बोधित किया जाता है। इनका राज्यकाल 606 ई० से 647 ई० तक माना जाता है। ये विविध शास्त्रो के ज्ञाता होने के साथ-साथ विद्वान, कवि, नाटककार तथा प्रसिद्ध विद्वान् कवियो के आश्रयदाता थे। मातग, दिवाकर, बाण, मयूर आदि इनके आश्रय प्राप्त कवि थे।[3] इन्हीं

---

1 यहाँ पर "श्री" शब्द उनके नाम का ही अश है न कि आदरार्थे लगाया गया शब्द, यदि ऐसा न होता तो नैषधकार स्वय 'नैषधीयचरितम्' मे कविप्रशस्ति श्लोक-4 में "श्री श्रीहर्षकवे कृति कृतिमुदे तस्याभ्युदीयादियम्" क्यों कहते।

2 "इति श्रीमहाकाव्ये कालिदासकृतौ नैषधे अष्टम सर्ग समाप्त "— तजौर —VI, P 2560, No-3555

3. (A) अहो प्रभावो वाग्देव्या यन्मातगदिवाकरा। श्रीहर्षस्याभवन् सभ्या. सभाबाणमयूरयो ॥ – राजशेखर (शार्ङ्गधरपद्धति से उद्धृत)

(B) श्रीहर्षादेर्धावकादीनामिव धनम्काव्यप्रकाश (प्रथम उल्लास) झलकीकरटीका पृ० 8 -9

के समय मे प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसाग ने भारत आकर बौद्ध धर्म का अध्ययन किया था। इनकी तीन रचनाएँ रचनाक्रम की दृष्टि से प्रियदर्शिका रत्नावली एव नागानन्द है। इन्होने अपनी तीनो नाटिकाओ की भूमिका मे अपना नाम श्रीहर्षदेव बतलाया है।[1] प्रियदर्शिका और रत्नावली मे श्रीहर्ष ने स्वय को निपुण कवि के रूप मे चित्रित किया है।[2] सोड्ढल कवि (11वीं शताब्दी) ने उदयसुन्दरी कथा मे हर्ष को राजा, कवीन्द्र, गीर्हर्ष (वाणीका सुखद) और बाण का आश्रयदाता बताया है।[3] जयदेव ने अपने ग्रथ 'प्रसन्नराघव' मे भास, कालिदास, बाण, मयूर के साथ-साथ हर्ष को भी कवि और कविता का हर्ष कहा है।[4] हर्ष के पद्य सुभाषितावली और सदुक्तिकर्णामृत जैसे ग्रथो मे प्राप्त होने के साथ-साथ मयूरशतक मे भी प्राप्त है। मधुबन और बॉसखेडा (628 ई०) के अभिलेख स्वय श्रीहर्ष की रचनाएँ है। इन पर उसके इस्ताक्षर (स्वहस्तो मय राजाधिराजश्रीहर्षस्य) प्राप्य है। इनमे प्राप्त निम्न श्लोक से श्रीहर्ष की ओजस्विता का पता चलता है –

कर्मणा मनसा वाचा, कर्त्तव्य प्राणिना हितम् ।
हर्षेणैतत् समाख्यात धर्मार्जनमुत्तमम् ।।

इसके साथ-साथ हर्ष ने दो बौद्ध स्तोत्र ग्रथ 'सुभ्रातस्तोत्र' एव 'अष्टमहाश्रीचैत्यस्तोत्र' भी लिखे है। उपर्युक्त वर्णन से श्रीहर्ष की काव्यप्रतिभा एव औदार्यता का पता चलता है।

२ इसके बाद आठवीं शताब्दी ई० मे अनङ्गहर्ष (मात्रराज, मात्राराज) नामक नाटककार का नाम मिलता है जिसकी नाट्यकृति 'तापसवत्सराज' है।

३ तदनन्तर दसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध (लगभग 950 ई०) मे धारानगर के राजा भोज के पितामह 'श्रीहर्ष' थे ऐसा ऐतिहासिक ग्रथो मे विवरण मिलता है।

४ तत्पश्चात् उज्जैन के विक्रमादित्य हर्ष का नाम भी प्राप्त होता हे, जिसकी सभा मे मातृगुप्त रहते थे।

५ फिर काव्यप्रदीप के लेखक 'हर्ष'[5] का नाम इतिहास के पृष्ठो पर अकित मिलता है।

६ इसी क्रम मे जयदेव के गीतगोविन्द के टीकाकार के रूप मे 'हर्ष' नामक विद्वान का विवरण उपलब्ध होता है।[6]

७ इसी श्रृखला मे तमिलदेश निवासी तमिलभाषा के श्रेष्ठ विद्वान 'अमरखण्डनम्' के रचयिता श्रीहर्ष नामक के विद्वान् का वर्णन मिलता है जिन्होने स्वय तमिल भाषा मे ही 'नैषधीयचरित काव्य' लिखा था।[7]

---

1 (A) श्रीहर्षदेवेनापूर्ववस्तुरचनालकृता प्रियदर्शिका नाम नाटिका कृता — प्रियदर्शिका
(B) श्रीहर्षदेवेनापूर्ववस्तुरचनालकृता रत्नावली नाम नाटिका कृता — रत्नावली
(C) श्रीहर्षदेवेनापूर्वरचनालकृत विद्याधरजातकप्रतिनिबद्ध नागानन्द नाम नाटक कृतम्। --नागानन्द

2 श्रीहर्षो निपुण कवि — प्रियदर्शिका 1/3, रत्नावली 1/5

3 श्रीहर्ष इत्यवनिवर्तिषु पार्थिवेषु, नाम्नैव केवलमजायतवस्तुतस्तु।
गीर्हर्ष एव निजससदि येन राज्ञा सम्पूजित कनककोटिशतेन बाण। काव्यमीमासा की भूमिका — पृ० 10

4 हर्षा-हर्षो हृदयवसति पञ्चबाणस्तु बाण। — प्रसन्नराघव 1/22

5 K M Panık Kar—Srı Harsa of Kanauj—P 65

6 Dr S K De — History of Sanskrıt Literature — P 666, note-3

7 Dr Raghavan —- Amarakhandana of Krsnasurı, Introdcution, P 1 and P 5-12

८ तत्पश्चात् अभिनवगुप्त (980 ई०—1020 ई०) पूर्ववर्ती वार्तिककार के रूप मे श्रीहर्षनाम के एक कवि का उल्लेख मिलता है, जिसने भरत के नाट्यशास्त्र पर आर्याछन्द मे वार्तिक की रचना की।[1] परन्तु इन वार्तिककार का डॉ० शकरन ने अपने ग्रथ "रस और ध्वनि सिद्धान्त" के पृष्ठ तेरह मे कन्नौज नरेश हर्षवर्धन से साम्यता दिखायी है किन्तु प्रसिद्ध विद्वान डॉ० पाण्डुरग वामन काणे ने इसे केवल अनुमानित तथ्य की सज्ञा दी।[2]

९ किञ्चित् कालान्तर कश्मीरनरेश हर्षदेव (1081 ई०–1101 ई०) का उल्लेख ऐतिहासिक कवि कल्हण की राजतरगिणी मे प्राप्त होता है। कल्हण ने इस राजा को सम्पूर्ण भाषाओ का ज्ञाता, यशस्वी कवि होने के साथ-साथ औदार्यगुणो से सम्पन्न बतलाया है।[3] परन्तु इन श्रीहर्ष के किसी ग्रथ का वर्णन राजतरगिणी या अन्य किसी ग्रथ मे उपलब्ध नहीं होता।

१० राजतरगिणी मे ही कल्हण ने एक दूसरे राजा हर्ष का विवरण दिया है। इसकी सभा मे कवि के पिता चम्पक मत्री थे। इस हर्ष का चरित्र ऐसा था कि इस्लाम का नारा बुलन्द करते आये आक्रामक लुटेरो को भी मात कर देता है। उसने धन के लिए मन्दिरो को लूटा, मूर्तियो को तोडकर धनार्जन किया, एव धातु की बनी देवमूर्तियो को रस्सी मे बॉधकर सडकर पर घसीटते हुए ले गया।[4] उसके दुश्चरित्र की तो सीमा ही नहीं थी। उसने अपने पिता कलश की बहन की पुत्री नागा से बलात्कार किया।[5] इस हर्ष का बुरा अत हुआ और मारा गया। कवि ने इस हर्ष की उपमा दानव की पीठ पर खडी चामुण्डा से दिया है।[6]

११ ऐतिहासिक तथ्यो के आलोक मे उपर्युक्त श्रीहर्षों के बाद जैन कवि राजशेखर सूरी ने सन् 1348 ई० मे अपने ग्रथ प्रबन्धकोशान्तर्गत 'श्रीहर्षकविप्रबन्ध' नामक अध्याय मे एक अन्य श्रीहर्ष नामक विद्वान् कवि को, काशीनरेश जयन्तचन्द्र आश्रयी श्रीहरि नामक ब्राह्मण का पुत्र का कहा है।[7] शताधिक ग्रथो के रचयिता थे।[8]

अब प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि उपर्युक्त एकादश श्रीहर्षों मे कौन नैषधीपचरित महाकाव्य का प्रणेता है? तथ्यो के अध्ययनानन्तर एक बात तो स्पष्ट है कि उपर्युक्त वर्णित दश श्रीहर्षों मे कोई भी नैषधीयचरित का रचयिता नहीं हो सकता, क्योकि नैषधीयचरित की रचना 1125 ई० 1180 ई० के मध्य की गयी[9] एव इन विद्वानो का समय इस तिथि के बहुत पहले पडता है, इसलिए प्रथम दृष्ट्या ही उपर्युक्त

---

1 Dr M Krishnamachariar — H S.L P.564, 948
History of Sanskrit Poetes — Dr S K De, Vol I, II[nd] Ed , 1960

2 Dr P V Kane — History of Sanskrit Poetics, P 59, सस्करण — 1951

3 सोऽशेषदेशभाषाज्ञ सर्वभाषासु सत्कवि ।
कृती विद्यानिधि प्राप्ख्याति देशान्तरेष्वपि ।। राजतरगिणी 7/611

4 राजतरगिणी — 7/1090—1100

5 सम्भोग भगिनीवर्गे कुर्वता दुर्वचोरूषा ।
निगृहीता च भुक्ता च नागा पुत्री पितृष्वसु ।। राजतरगिणी —7/1148

6 पृष्ठे पूर्वं प्रविष्टस्य तिष्ठन्स्थानकनिष्ठुर ।
स रूरोरिव चामुण्डा रेजे दण्डाकृति क्षणम् ।। राजतरगिणी — 7/1707

7 पूर्वस्या वाराणस्या पुरि गोविन्दचन्द्रो नाम राजा । तत्पुत्रो जयन्तचन्द्र ।
तत्रैको हरिनामा विप्र तस्य नन्दन प्रासचक्रवर्ती श्रीहर्ष . । प्रबन्धकोश पृ० 54

8 खण्डनादि ग्रन्थान् पर शताऽग्रन्थोप्रबन्धकोश पृ० 54

9 – Hence the date of Sriharsa falls between 1020 – 1180 A D and his literary career falls between circa 1125 to 1180 — Prof S P Bhattacharya - In his article "The Probable date of Naisadhacarita" (Oriental thought—Vol-I No —4 July - 1955, P 58-73)
– The date of the composition of the N.C therefore can be given as 1175 A D if not earlier—A critical study of Srihars's, Naisadhiyacaritam —A N Jani, P 129

दश श्रीहर्ष नैषधमहाकाव्य के रचयिता नहीं हो सकते। दूसरा निष्कर्ष जो नैषधीयचरित मे उपलब्ध विवरण से प्रकट होता है कि जो राजा का पद प्राप्त किये व्यक्ति होगे वे किसी अन्य राजा के राज्याश्रय मे एक आसन एव पान के दो बीडे के भूखे भला कैसे हो सकते है? नैषधकार जो भी रहे हो, उन्होने अपने ग्रथ नैषधीयचरित मे स्वत इस तथ्य को रखा है कि जिसे कान्यकुब्जेश्वर से एक आसन एव दो पान के बीड मिलते है, जो समाधियो मे परमानन्द स्वरूप परब्रह्म का साक्षात्कार करता है, जिसका काव्य अमृत की वर्षा करने वाला है, तथा तर्कशास्त्र मे जिसकी उक्तियो से पराभव प्राप्त करके प्रतिवादी परान्मुख हो जाते है उस विद्वच्चक्र-चूडामणि श्रीहर्ष कवि की यह कृति पण्डियो को आनन्ददायक हो।[1] राजशेखर ने अपने प्रबन्धकोश मे जिस श्रीहर्ष का उल्लेख किया है उनके पिता का नाम श्रीहरि बताया है एव नैषधकार ने भी अपनी कृति मे स्वय को श्रीहरि एव मामल्लदेवी का पुत्र माना है।[2] अत नि सदेह यह स्पष्ट हो जाता है कि राजशेखर द्वारा बताये गये (एकादश) श्रीहर्ष ही नैषधीयचरित के रचनाकार है जो वास्तव मे दार्शनिक, विद्वान, शास्त्रज्ञ, गुणी, जितेन्द्रिय एव काव्य प्रतिभा के धनी थे जिनकी कल्पना शक्ति की समानता सस्कृत साहित्य मे आज तक कोई भी विद्वान् नहीं कर सका। इन्हीं श्रीहर्ष को विद्यासागर, वरद पडित एव नैषध के प्राचीन टीकाकार गदाधर[3] ने श्रीहर्षमिश्र (नाम) से सबोधित किया है। नैषधमहाकाव्य के 'हर्षहृदय' टीकाकार श्रीगोपीनाथ आचार्य[4] एव श्री विद्यासागरोपाह्वानन्दपूर्णमुनीन्द्र तथा न्यायाचार्य मीमासातीर्थ स्वामीयोगीन्द्रानन्द ने[5] भी श्रीहर्ष का नाम श्रीहर्षमिश्र होने की सम्मति अपने ग्रथो मे दी है।

श्रीहर्ष का स्थितिकाल

नैषधकार का (समय) स्थितिकाल-नैषधकार श्रीहर्ष के स्थितिकाल के विषय मे विद्वानो मे मतभेद की स्थिति रही है। श्रीहर्ष ने अपने विषय मे स्वीकृति 'नैषधीयचरितम्' के सर्गान्त श्लोको मे यह तो बता दिया है कि उनके पिता का नाम श्रीहीर एव माता का नाम मामल्लदेवी है।[6] परन्तु उन्होने अपने सम्बन्ध मे यह नहीं बताया कि उनका जन्म किस समय एव कहॉ हुआ? श्रीहर्ष ने नैषधीयचरित मे न्यायसूत्रकार गौतम (अक्षपाद) के उपहास का वर्णन किया है।[7] गौतम का समय ई०पू० चतुर्थ शताब्दी विद्वानो द्वारा मान्य है।[8] अतः श्रीहर्ष ई०पू० चतुर्थ शताब्दी के बाद के ही होगे। सर्वप्रथम प्रो० बूहलर ने राजशेखर सूरि के (सन् 1348 ई०) प्रबन्धकोश के आधार पर श्रीहर्ष के समय का निर्धारण करने का उद्योग किया। राजशेखर ने

---

1 ताम्बूलद्वयमासन च लभते य कान्यकुब्जेश्वराद्य साक्षात् कुरूते समाधिषु परं ब्रह्म प्रमोदार्णवम् ।
यत्काव्य मधुवर्षि धर्षितपरास्तर्केषु यस्योक्तय , श्री श्रीहर्षकवे कृति कृतिमुदे तस्याम् दाभ्यादियम्।। नै० प्रशस्ति श्लोक-4

2 श्रीहर्ष कविराजराजिमुकुटालकारहरि सुतम् ।
श्रीहीर सुषुवे जितेन्द्रियचय मामल्लदेवी च यम् ।। नैषध/1/145 पूर्वार्द्ध

3 यद्वक्त्रस्थरस्वती श्रुतिवच शाऽस्त्रेऽभवत्खण्डन,
काव्ये नैषधमुष्णरश्मिशशिनी जागीयते यद्युगम् ।
स्फूर्जत्स्फीतिविपक्षपक्षदलनस्पर्द्धिष्णु विद्वद्भटै-
र्विद्यासयति हर्षमिश्र इडितो गौडेरगौडैर्गुणै ।। 0 1.MS No-1353, st 2

4 नैषध – हर्षहृदय टीका, भूमिका, पृ० 1 - 10

5 खण्डनखण्डखाद्य – पृ० 10

6 श्रीहर्ष कविरजिराजिमुकुटालंकारहीर· सुत । श्रीहीर सुषुवे जितेन्द्रिय चय मामलदेवी च यम् ।।
तच्चिन्तामणिमत्र चिन्तनफले श्रृगारभग्या महा । काव्ये चारूणि नैषधीयचरिते सर्गोऽयमादिर्गत ।। 1/145

7 मुक्तये य शिलात्वाय शास्त्रमूचे सचेतसाम् ।
गोतम तमवेक्ष्यैव यथा वित्थ तथैव स ।। नै - 17/75

8 भारतीय दर्शन - आचार्य बलदेव उपाध्याय—P 171

श्रीहर्ष को राजा जयचन्द्र का आश्रित कवि माना एव यह वर्णित किया कि श्रीहर्ष के पिता को किसी राजकीय पडित ने हराया।[1] वह राजकीय पडित न्यायकुसुमाजलि के रचयिता प्रसिद्ध नैयायिक उदयनाचार्य ही थे।[2] ऐसा चण्डूपडित ने अपनी नैषधदीपिका मे कहा है।[3] किन्तु चाण्डू पडित ने नैषध दीपिका मे जिन उदयनाचार्य का विवरण दिया है, यदि हम उन्हे नैयायिक उदयनाचार्य माने, तो श्रीहर्ष एव उदयनाचार्य मे लगभग 150 वर्षो का अन्तर पडेगा, जो कि ऐतिहासिकता के धरातल पर उपयुक्त सिद्ध नहीं हो सकता। अहमदाबाद के समीप ढोलका ग्राम के निवासी चाण्डू पडित ने सवत् 1353 (सन् 1296) मे दीपिका नामक नैषध की टीका के समय का वर्णन करते हुए लिखा है कि-

श्री विक्रमार्कसमयाच्छरदामथ त्रिपञ्चाशता समधिकेष्वितेषु ।
तेषु त्रयोदशसु भाद्रपदे च शुक्लपक्षे त्रयदशतिथौ रविवासरे च ।।

न्यायकुसुमाञ्जलिकार के कुछ वर्णनो को श्रीहर्ष ने अपने ग्रथ मे कुछ परिवर्तन के साथ उद्धृत किया है यथा शकाचेदनुमास्त्येव न चेच्छड्का ततस्तराम्। व्याघातावधिराशका तर्क शकावधि ॥[4] को श्रीहर्ष ने अपने खण्डनखण्डखाद्य मे "तस्मादस्माभिरप्यस्मिन्नर्थे न खलु दुष्वठा। त्वद् गाथैवान्यथाकारमक्षराणि कियन्त्यपि।।"

तथा प्रथम श्लोक को श्रीहर्ष ने कुछ परिवर्तन करके निम्न रूप मे वर्णित किया- यथा

व्याघातो यदि शकास्ति न चेच्छड्का ततस्तराम् ।
व्याघातावधिराशका तर्क शकावधिकुत ।।

इस वर्णन से यह तो स्पष्ट है कि 'उदयन' नामक व्यक्ति का परोक्ष या अपरोक्ष रूप से श्रीहर्ष से साक्षात्कार जरूर हुआ था, तभी श्रीहर्ष ने (उदयन) शत्रु नाम श्रवण से ही शत्रुवत् व्यवहार करने का वर्णन 'नैषधीयचरितम्' मे किया है कि यदि किसी मनुष्य का वही नाम हे, जो उसके अपने शत्रु का, तो कौन तेजस्वी मनुष्य उसे सहन करेगा।[5] उदयनाचार्य ने लक्षणावली नामक ग्रथ की रचना शाके 906 अर्थात् सवत् 1041(984-85) ने की थी- यथा

तर्काम्बराड्कप्रमितेष्वतीतेषु शकान्तत । वर्षेषूदयनश्चक्रे सुबोधा लक्षणावलीम् ।।

उदयन ने श्रीहर्ष के पिता श्रीहीर को शास्त्रार्थ मे पराजित किया था या नहीं, यह विषय विवादास्पद हो सकता है, परन्तु श्रीहर्ष ने अपने ग्रथ खण्डनखण्डखाद्य मे उदयन के ग्रथो की विषयवस्तु

---

1 पूर्वस्या वाराणस्यापुरि गोविन्दचन्द्रो नाम राजा 1750 अन्तपुरी यौवनरसपरिमलग्राही। तत्पुत्रो जयन्तचन्द्र। तस्मै राज्य दत्त्वा पिता योग प्रपद्यपरलोकमसाधयत्। जयन्तचन्द्र सप्तयोजनशतमान पृथ्वीं जिगाय। मघचन्द्र कुमारस्तस्य, य सिहनादेन सिहानपि भड्तुमलम्, कि पुनर्मदान्धगन्धेभघटा ? तस्य राज्ञश्चलत सैन्य गगा-यमुने बिना नाम्भसा तृप्यतीति नदीद्वययष्टिग्रहणात्पड्गुलो राजेति लोके श्रूयते। यस्य गोमतीदासी षष्टिसहस्रेषु [illegible] रा निवेश्याभिषेणयन्ती परचक त्रासयति। राज्ञ श्रम एव क ? तस्य रासो बहव विहास। तत्रैको हीरनामा विप्र। तस्य नन्दन प्रासचक्रवर्ती श्रीहर्ष। सोऽद्यापि बालावस्थ। सभाया राजकीयेनैकेन पण्डितेन वादिनो हीरो राजसमक्ष जित्वा मुद्रितवदन कृत। लज्जा पड्के मग्न। बैर बभार धारानम्। मृत्युकाले हर्षं स बभाषे-वत्स! अमुकेन पण्डितेनाहमाहत्य राजगोष्ठौ जित। तन्मे दु खम्। यदि सत्पुत्रोऽसि तदा त जये क्ष्मापसदसि श्रीहर्षेणोक्तम्-ओमिति। हीरो द्या गत। प्रबन्धकोष पृ० 54

2 Rajasekhara does not give the name of his rival Candu Pandita, however, names him as undayana, the author of Laksanavali, etc whose view are refuted by Sriharsa, in his Philosophical treatise Khandana-Khanda Khadya A critical study of Sriharsa — A N Jani— P 87

3 प्रथम तावत्कविर्विजिगीषुकथाया स्वपितृभावुकमुदयनमत्यमर्षणतया कटाक्षयस्तद्ग्रन्थग्रन्थीनुद्ग्रथयितु खण्डन प्रारिप्सुश्चतुर्विधपुरुषार्थैरभिमानमनवधीयमानमवधीर्य मानसमेकतानता चिनाय। — 'नैषधदीपिका' के प्रारम्भ से उद्धृत।

4 उदयन-न्यायकुसुमाञ्जलि III स्तवक, श्लोक-7

का जो खण्डन किया, उससे यह तो निश्चित हो जाता है कि श्रीहर्ष ९८५ ई० के बाद ही प्रसिद्ध हुए। एक जनश्रुति के अनुसार श्रीहर्ष को अपने नैषधीयचरितम् की ग्राह्यता का प्रमाण पत्र लेने कश्मीर जाना पडा था। परन्तु विद्वानो की नगरी काशी मे रहने वाले श्रीहर्ष का अपने ग्रथ की प्रमाणिकता के लिए कश्मीर जाना तो अत्युक्ति मात्र लगती है, सभव है कि श्रीहर्ष ने नैषधीयचरित महाकाव्य की रचना प्रचलित महाकाव्य नियमो से हटकर की हो, जो कि काशी के विद्वानो को ग्राह्य न रही हो क्योकि श्रीहर्ष के प्रखरपाण्डित्य का प्रतिवाद सरल नहीं था। यह भी सभव प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष ने अभिनवगुप्त समर्पित नियमो का अनुसरण कर नैषधीयचरितम् की रचना की हो। इस सभावना के अनुसार श्रीहर्ष का अभिनवगुप्त (10वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध) से परवर्ती होना सिद्ध होता है। डॉ० पी०पी० काणे ने अभिनवगुप्त को 980ई० से 1020ई० तक माना है।[1]

अत श्रीहर्ष का समय 10वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध के पूर्व स्वीकार नहीं किया जा सकता। श्रीहर्ष ने अपने ग्रथ खण्डनखण्डखाद्य मे 'व्यक्तिविवेक'[2] एव व्यक्तिविवेक के रचयिता महिमभट्ट[3] दोनो का उल्लेख किया है। महिमभट्ट का वर्णन करते हुए उनके ग्रथ व्यक्तिविवेक को कविलोकलोचन इसलिए कहा है कि आनन्दवर्धनादि के ध्वनि सिद्धान्त की आलोचना मे व्यक्तिविवेक का विशिष्ट स्थान है एव इसके रचयिता कश्मीर निवासी महिमभट्ट वस्तुत काव्यालोचकों मे प्रसिद्ध थे। महिमभट्ट अभिनवगुप्त के परवर्ती कवि जान पडते है क्योकि महिमभट्ट ने व्यक्तिविवेक मे अभिनवगुप्त का नामोल्लेख किया है।[4] इसलिए महिमभट्ट का काल 1020 ई० से परवर्ती ही सिद्ध होता है। व्यक्ति विवेक के टीकाकार ख्यातिलब्ध अलकारशास्त्री रुय्यक का समय 1100ई० से 1150ई० तक माना जाता है।[5] अतएव महिमभट्ट का काल 1100 ई० तक माना जा सकता है, इस प्रकार व्यक्तिविवेक को उद्धृत करने वाले श्रीहर्ष महिमभट्ट (1100 ई०) से परवर्ती ही होगे। श्रीहर्ष ने नैषध के दसवे सर्ग मे बौद्ध दर्शन के तीन सम्प्रदायो माध्यमिको के शून्यवाद, योगाचार के विज्ञानवाद एव सौत्रान्त्रिको के साकारवाद या साकारता सिद्धि का उल्लेख किया[6] है, जो कि 11वीं शताब्दी के अद्वयवज्र[7] से प्रभावित प्रतीत होता है, अत श्रीहर्ष 11वीं शताब्दी के वाद के ही सिद्ध होते है।

एक जनश्रुति के अनुसार काश्मीरी विद्वान् मम्मट श्रीहर्ष के मामा थे। श्रीहर्ष ने उन्हे अपना नैषधीयचरित दिखाया तो उन्होने कहा यदि तुम मुझे इसे मेरी रचना काव्यप्रकाश के पहले दिखाते तो मुझे दोषप्रकरण के लिए अन्यत्र नहीं जाना पड़ता।[8] **मम्मट ने श्रीहर्ष के नैषधीयचरित मे दोष ही दोष देखे एव**

---

1 History of Sanskrit Poetics—Dr P V. Kane-P 232
श्रीहर्षेण पण्डिता उक्तास्तत्रत्या ग्रन्थयत्रत्याय राज्ञे माधवऐतनाम्ने दर्शयत् । श्रीजयन्तचन्द्राय च भुद्धोऽय ग्रन्थ इति लेख प्रदत्त-इति।– प्रबन्धकोश पृ० 56

2 खण्डनखण्डखाद्य-पृ० 723

3 दोष व्यक्तिविवेकेऽप्यु कविलोकविलोचने ।
काव्यमीमासिषु प्राप्रमहिमा महिमाऽऽदृत ॥ खण्डनखण्डखाद्य- पृष्ठ 783

4 अत्र केचितु विद्वन्मानिन मन्यमाना। 'व्यङ्क्त इति द्विवचनेनेदमाहु -यद्यप्यविवक्षितवाच्य शब्द एव व्यञ्जकस्तथाप्यर्थस्य सहकारिता न त्रटयति। - - यदाहुस्तद्भ्रान्तिमूलम्' इत्यादि। ध्वन्यालोकलोचन पेज- 33 (त्रिवेन्द्रम प्रकाशन) पृष्ठ 19 में उदधृत। एव व्यक्तिविवेक (त्रिवेन्द्रम प्रकाशन) पृष्ठ 19

5 History of Sanskrit Pactics - Dr P V Kane page- 273, सस्करण वही।

6 या सोमसिद्धान्तमयाननेव शून्यात्मतावादमयोदरेव ।
विज्ञानसामस्त्यमयान्तरेव साकारतासिद्धिमयाखिलेव ॥ नै० ११/८८।

7 द्रष्टव्य-साधनमाला, द्वितीय भाग, भूमिका, पृ०६, गायकवाड ओरियन्टल सिरीज।

8 Kashmir report (Extra No of J BBRAS 1877) P-68- Recorded by Dr Buhler

श्रीहर्ष के कहे जाने पर कि मेरे ग्रथ मे दोष दिखाइये, तो उन्होने नषध का एक श्लोक उदाहरण स्वरूप बताया-

तब वर्मनि वर्तता शिवं पुनरस्तु त्वरित रामागम ।
अयि साधय साधयेप्सित स्मरणीया समये वय वय ।।[1]

इस श्लोक को मम्मट ने निम्न रूप मे रखा-

तब वर्त्म निवर्तता शिव पुनरस्तु त्वरित सा माऽऽगम ।
अयि साधयसाधयेप्सित समये वय वय ।।

ऐसा होने पर श्रीहर्ष द्वारा किये गये अर्थ का अनर्थ ही हो जायेगा। दूसरा कहा मम्मट का समय 1050 ई० एवं कहाँ श्रीहर्ष का 12वीं शताब्दी, तो मम्मट एव श्रीहर्ष के बीच सम्बन्ध स्थापन, तो केवल कल्पना मात्र ही है। यह सभव है कि कश्मीरी विद्वान ने श्रीहर्ष की प्रतिभा से आतकित होकर श्रीहर्ष के ग्रथ मे दोष देखे हो जो कि उनके विद्वत्पदोष का परिणाम गाना जा सकता है, इसके शिवाय कुछ और नहीं, परन्तु डॉ० सुशील कुमार डे ने इस विषय को अविश्वसनीय ही माना।[2]

श्री रामप्रसादचन्द्र ने श्रीहर्ष को विल्हण के समकालीन 11वीं शताब्दी मे रखने का दृष्टिकोण रखा है। उन्होने यह वर्णित किया, कि श्री हर्ष सिन्धुराज की सभा मे थे, एव गोर्डोवीशकुलप्रशस्ति, उन्होने गौडनरेश महिपाल प्रथम की प्रशस्ति मे लिखा था, इसका आधार उन्होने नवसाहसाककचरित को बताया[3] परन्तु डॉ० डी० आर० भण्डारकर ने उनके मत का खण्डन कर उन्हे बारहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध का ही सिद्ध किया।[4]

नैषधीयचरितम् को सर्वप्रथम हेमचन्द्र के शिष्य महेन्द्रसूरि ने अनेकार्थसग्रह[5] की टीका अनेकार्थकैरवाकरकौमुदी मे उद्धृत् किया है। उसमे उन्होने नैषधीयचरितम् के अनेक श्लोक उदाहरण रूप में रखे है।[6] हेमचन्द्र का समय 1088 से 1172 ई० के मध्य माना जाता है।[7] महेन्द्रसूरि के समय तक नैषधीयचरितम् अवश्य ही प्रसिद्ध हो गया होगा, तभी महेन्द्रसूरि ने उसे उद्धृत् किया होगा। महेन्द्रसूरि ने अनेकार्थसग्रह की टीका रचना हेमचन्द्र के जीवनकाल या उनकी मृत्यु के तत्काल बाद प्रारम्भ की होगी, अत स्पष्ट है कि श्रीहर्ष ने नैषधीयचरित की रचना 1172 के पूर्व कर ली होगी। महेन्द्रसूरि ने जिन ग्रथो या ग्रन्थकारो का आश्रय लेकर अपनी टीका की रचना की उनका सम द्वादश शताब्दी के मध्य के बाद का नहीं है, अत नैषधीयचरित का समय द्वादश शताब्दी का मध्य भाग ही निश्चित जान पडता है इस प्रकार श्रीहर्ष का जन्मकाल उससे पूर्व रखना ही उचित होगा।

चौदहवीं शताब्दी के जैन विद्वान् राजशेखरसूरि ने अपने प्रबन्धकोश मे "श्रीहर्ष के आश्रयदाता कान्यकुब्जेश्वर का नाम जयन्तचन्द्र (जयचन्द्र) था, एव उन्हे कश्मीर नरेश माधवदेव से नैषधीयचरित की

---

1 नैषध- 2/62।
2 H.S.L P-325- N-G= S K Day
3 IA XL I1 (1913) P- 83
4. Ibid- for a reply to this date by Sri R P Chanda, Vide Ibid- P P. 286-287
5. जकराया प्रकाशन 1893 ई०।
6. अनेकार्थ सग्रह की टीका मे पृष्ठ 8 पर 2/18, 13 पर 2/56, 43 पर 2/274, 184 पर 4/339/ श्री दिनेश चन्द्र महाचार्य द्वारा सिद्ध भारती द्वितीय भाग पृष्ठ- 140, पर उद्धृत विश्वेश्वरानन्द, इडोलाजिकलसिरीज, होशियारपुर।
7. History of Sanskrit Poetics-P 278- सस्करण वही।

प्रामाणिकता का प्रमाणपत्र प्राप्त हुआ था" इस तथ्य का वर्णन किया है।[1] डॉ० बुह्लर ने राजशेखर के उपर्युक्त सदर्भ के आधार पर नैषध का रचनाकाल 1163 ई० से 1174 ई० के मध्य निश्चित किया है[2] एव डॉ० डी०आर० भण्डारकर जैसे विद्वानो ने भी डॉ० बुहलर का समर्थन करते हुए कहा है कि- I agree with Buhler in accepting the statement of Rajsekhara, the auther of Prabandhkosa that Sriharsa wrote the Naishadhiyacharit at the bidding of Jayantchandra who can be no other than the Gahadaval king Jayachandra (A D. 1172-87)[3] राजशेखर के मतानुसार श्रीहर्ष, कान्यकुब्जाधीश्वर जयन्तचन्द्र, जिनका उपनाम पड्गुल था, के राज्याश्रित कवि थे। वह कुमारपाल (1143 ई० - 1174 ई०) का समकालीन था एव उसका राज्य यवनो द्वारा अपहृत कर लिया गया था। राजशेखर ने जिस जयन्तचन्द्र के बारे मे वर्णन किया वह कन्नौज और काशी का इतिहास प्रसिद्ध जयन्तचन्द्र ही है। वह सस्कृत साहित्य का पोषक एव नीतिनिपुण सम्राट था, परन्तु आधुनिक ऐतिहासिक पुस्तक लेखको ने बिना किसी ठोस प्रमाण के केवल चन्द कवि द्वारा लिखित 'पृथ्वीराजरासो' के आधार पर जयचन्द्र को देशद्रोही एव विश्वासघाती के रूप मे चित्रित किया है, जबकि वास्तविकता यह है कि जयचन्द्र की पुत्री सयोगिता का बलात अपहरण पृथ्वीराज चौहान ने किया था, परन्तु चन्द कवि ने उसे प्रेमगाथा का रूप दे दिया। ऐतिहासिक वास्तविकता के धरातल मे जाय तो पायेगे कि चन्द कवि एक भाट था, राजाओ की गाथा (प्रशसा) वर्णित करना, एव प्राचीन काल मे जगह-जगह जाकर यशोगान करके वृत्ति प्राप्त करना ही भाट जाति की मुख्य वृत्ति थी। सस्कृत अभिलेखो पर यदि नजर डाले जैसे- विजय चन्द्र का अतिम शिलालेख 1163 ई०, जयचन्द्र का यौवराज्य का दानपत्र 1169 ई० एव उनका दानपत्र 1177 ई० तथा 1186 का दानपत्र जिसमे भारद्वाज गोत्रीय श्री अणड को केमौर्ल नामक ग्राम देने को उल्लेख के साथ-साथ विद्वानो का आदर देना लिखा मिलता है। इस प्रकार गहडवाल चन्द्रवशी राजा भारतीय सस्कृति के अनन्य पोषक थे। राजशेखर ने अपने प्रबन्धकोश के एक अन्य प्रबन्ध 'हरिहरप्रबन्ध'' मे यह लिखा है कि गुजरात मे नैषध की हस्तलिखित प्रतिलिपि वीरधवल के राज्यकाल मे सर्वप्रथम हरिहर द्वारा लायी गयी। वीरधवल के मत्री वस्तुपाल ने उसकी प्रतिलिपियॉ कराई और उसका प्रचार किया।[4] प्रो० बूहलर ने राजशेखर के कथन का आश्रय लेकर नैषधीयचरित का काल 12वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध ही सिद्ध किया, जबकि जस्टिस के टी तेलग, एफ एस ग्राउस एव डॉ० हाल, बूहलर के कथन से असहमत है, इन लोगो ने श्रीहर्ष को 10वीं शताब्दी से पूर्व निर्धारित करने का प्रयास किया हैं। प्रो० बूहलर ने अपने कथन के विरोधियो की युक्तियो का खण्डन कर अपने मत की स्थापना करने का प्रयास किया। समर्थन मे निम्नलिखित तर्क दिये-

---

1 श्रीहर्षेण पण्डिता उक्तास्तत्रत्या ग्रन्थमन्त्रत्याय राज्ञे माधवऐवनाम्ने दर्शयत्। श्रीजयन्तचन्द्राय च शुद्धोऽय ग्रन्थ इति लेख प्रदत्त इति। प्रवन्धकोश, पेज- 56।

2 Shiharsa was a protege of king Jayant chandra (Jayachandia) This Jayant Chandra must have ascended this throne between A D 1163 and 1177, as the last inscription of his ather (Vijay Chandra) is dated in the former year and the first of his own g ants in the latter year Again, according to Rajsekhara, he was a contemparary of kumarpal (A D 1143-1174) Thus Jaya Chandra ruled over Benaras between A D 1163 and 1194. Thus the Naiadhiya Charit must have been written between A D 1163 and 1174 i e between the earliest date on which Jaya Chandra's accession to the throne may be placed and kumarpala'ss death Thus the date of the compositian of the Naisadh and hence the date of its auther is letter half of the 12th Centurty A D
J B B R A S X (1871) P P 31-37
Bahler- A Critical Study of Sriharsa's Naishadhiyacharitam P-123

3 I A 1913, Bahler P- 126

4 प्रबन्धकोशे- हरिहरप्रबन्ध - पृष्ठ 60

(1) 1348 ई० मे लिखित प्रबन्धकोश मे राजशेखर ने श्रीहर्ष को (काशी) वाराणसी के राजा जयन्तचन्द्र का सभासद कहा है।

(2) यह जयन्तचन्द्र इतिहास प्रसिद्ध जयचन्द्र ही है, जो कन्नौज के गहडवाल (राठौर) एव चन्द्रवशी राजाओ मे बनारस का अतिम राजा था एव जिसका साम्राज्य 1294 ई० मे मुसलमानो (मुहम्मदगोरी) ने छीना था।

(3) श्रीहर्ष ने स्वय वर्णित किया कि उसे कान्यकुब्जेश्वर से पान के दो बीडे एव आसन प्राप्त था।

(4) राजशेखर ने प्रबन्धकोश के अन्तर्गत 'हरिहरप्रबध' मे यह तथ्य उद्घाटित किया कि वीर धवल के राज्यकाल मे हरिहर, सर्वप्रथम गुजरात मे नैषधीयचरित की हस्तलिखित प्रतिलिपि लाये, एव उसके मत्री वस्तुपाल ने नैषध की प्रतिलिपियॉ कराकर उसका अत्यधिक प्रचार भी किया।

प्रो० बूहलर के इन तर्को के विरोध मे अन्य ख्याति लब्ध विद्वज्जनो ने अपने निम्नलिखित तर्क सम्प्रेषित किये-

(1) डा० फिट्ज एडवर्ड हाल (Dr Fitz Edward Hall) ने अपने मत का प्रतिपादन करते हुए कहा कि नैषधीयचरित के कुछ श्लोक भोजकृत सरस्वतीकण्ठाभरण मे उद्धृत् मिलते है। भोज का समय ग्यारहवीं शताब्दी का पूर्व भाग माना जाता है, इसलिए श्रीहर्ष को भोज से पूर्व अर्थात ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्व का ही होना चाहिए।

(2) श्री काशीनाथ त्रयम्बक तैलड्ग ने कुसुमाञ्जलिकार उदयन[1] का काल निर्धारण करते हुए यह निर्देशित किया कि श्रीहर्ष का समय 9वीं या 10वीं शताब्दी है न कि 12वीं शताब्दी इसके समर्थन मे उन्होने निम्नलिखित तर्क दिये।

(अ) 11वीं शताब्दी मे वाचस्पति मिश्र ने श्रीहर्ष के ग्रथ खण्डनखण्डखाद्य का खण्डन कर अपने ग्रथ 'खण्डनोद्धार' की रचना की।

(ब) सायणमाधव ने स्वरचित शकरविजय मे श्रीहर्ष को शङ्कर का समकालिक अभिहित किया, क्योकि उसने वर्णित किया कि खण्डनखण्डखाद्यकार श्रीहर्ष, श्री शङ्कराचार्य से शास्त्रार्थ मे पराभव को प्राप्त हुए थे।

(स) भोज के सरस्वतीकण्ठाभरण मे नैषधचरित के कुछ श्लोक उद्धृत मिलते है।

(द) राजशेखर ने कथन सर्वथा अविश्वसनीय है क्योकि उसने जयन्तचन्द्र को गोविन्दचन्द्र का पुत्र कहा है।

प्रो० बूहलर के मत के खण्डनार्थ प्रो० ई०एस० ग्राउस[2] (E S Grouse) ने यह तर्क दिया कि पृथ्वीराजरासो के प्रणेता चन्दवरदाई (चन्दकवि) ने अपने ग्रथ के मगलाचरण मे अपने पूर्ववर्ती कवियो का नाम वर्णित किया है, एव उसमे उसने श्रीहर्ष का नाम कालिदास से भी पहले रखा है।

प्रो० बूहलर ने नैषधीयचरित को 12वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का मानते हुए, 10वीं शताब्दी मानने वाले अपने विरोधियो के आक्षेपो का निम्न रूप से उत्तर दिया-

---

1 I A (इण्डियन आण्टिकेरी) प्रथमपुस्तक- पृष्ठ - 297, 353 पृष्ठ, द्वितीय पुस्तक - पृष्ठ-71, दाचीचपडित शिवदन्तशर्मा प्रस्तावना पृष्ठ- 5।

2 I A के पुस्तक के द्वितीय भाग, पृष्ठ 213

(1) डॉ० फिट्ज एडवर्ड (Fitz Edward) और श्री काशीनाथ त्रयम्बक तेलङ्ग ने जो यह वर्णित किया कि- ''सरस्वतीकण्ठाभरण' मे नैषध के कुछ श्लोक उपलब्ध है। यह सर्वथा सत्य से परे है, क्योकि वामनाचार्य झलकीकर और डॉ० आफरेख्ट (Aufrecht) ने सरस्वती कण्ठाभरण' की श्लोको की जो सूची बनायी है, उनमे नैषधीयचरित का कोई भी श्लोक नहीं है। प्रो० बूहलर ने 'सरस्वतीकण्ठाभरण' मे देखा कि उसमे नैषधीयचरित का कोई श्लोक नहीं है। इस सदर्भ मे यही तथ्य दृष्टिगोचर हो रहा है कि या तो डॉ० फिट्ज एडवर्ड हाल और श्री तैलङ्ग को कोई भ्रान्ति हुई है, या उन्हे सरस्वतीकण्ठाभरण की कोई दूषित प्रति मिली, जिसमे नैषध के प्रक्षिप्त श्लोक मिले है।

(2) श्री त्रयम्बक तैलग का यह कथन कि 11वीं शताब्दी मे वाचस्पति मिश्र ने श्रीहर्ष के खण्डनखण्डखाद्य के विरोध मे जो खण्डनोद्धार' लिखा, अतएव श्रीहर्ष का समय 11वीं शताब्दी से पहले माना जाना चाहिए। इसके उत्तर मे प्रो० बूहलर का यह कथन कि यद्यपि यह सत्य है कि वाचस्पति मिश्र ने खण्डनखण्डरवाद्य के निराकरण मे खण्डनोद्धार लिखा किन्तु वाचस्पति, कई हो सकते है। 'खण्डनोद्धार' के लेखक वाचस्पति मिश्र, 11वीं शताब्दी के वाचस्पति मिश्र से, जिसने न्यायवार्तिक, तात्पर्यटीका, साख्यतत्वकौमुदी, भामती आदि दार्शनिक ग्रथ लिखे है, से सर्वथा भिन्न कोई अर्वाचीन विद्वान् है।

(3) सायणमाधव ने अपने ग्रथ 'शकरविजय' मे श्रीहर्ष को शकराचार्य का समकालिक बतलाया, यह अविश्वसनीय है। सायणमाधव ने ऐतिहासिक तिथि क्रम का उल्लघन करके शङ्कराचार्य की प्रशसा करने के लिए अनेक पूर्ववर्ती एव परवर्ती विद्वानो को शकराचार्य का समकालीन बतलाया है। सायणमाधव ने तो यहॉ तक कहा कि शकराचार्य ने वाण एव मयूर को भी शास्त्रार्थ मे पराजित किया, जबकि इनका समय 7वीं शताब्दी है, अतएव ऐतिहासिक तथ्यो की दृष्टि मे सायण माधव का कथन कपोलकल्पना ही कहा जा सकता है।

(4) प्रो० ग्राउस का कथन कि- "चन्द कवि ने पृथ्वीराजरासो के मङ्गलाचरण के श्लोक मे श्रीहर्ष को पूर्ववर्ती कवि के रूप मे नमस्कार किया है एव उसका नाम कालिदास से पूर्व[1] रखा है, उसका उत्तर यह है कि चन्द कवि ने जो शेष विष्णु, व्यास, शुकदेव, श्रीहर्ष, कालिदास, दण्डमाली, जयदेव आदि का उल्लेख किया है, उसमे यह आवश्यक नहीं कि उसने तिथि क्रमानुसार ही नाम रखे हो। श्रीत्रयम्बक तैलग ने यह स्पष्ट कर दिया है कि श्रीहर्ष, भोजराजवृत्तान्त के रचयिता कालिदास का परवर्ती है। सभव है, साहित्य की उत्कृष्टता की दृष्टि से चद कवि ने श्रीहर्ष को प्रथम स्थान पर रखा हो कुछ विद्वान जैसे- श्री गौरीशंकर, हीराचद ओझा, श्री मेनारिया आदि ने पृथ्वीराजरासो की प्रामाणिकता पर भी प्रश्नचिन्ह लगाया है।[2] इसलिए पृथ्वीराजरासो मे श्रीहर्ष का उल्लेख होने से श्रीहर्ष की प्राचीनता सिद्ध नहीं हो सकती ।

1 नर रूप पचम्म श्रीहर्ष सार । नलै राय कठ दिने पद्ध हार ।।
छट कालिदास सुभाषासुबद्ध । जिनै बागवानी सुबानी सुबद्ध ।।
कियो कालिका मुख्ख वास सुसुद्ध । जिनै सेत वध्येति भोजप्रबन्ध ।। पृथ्वीराजरासो मगलाचरण से उद्धृत पकितयॉ।

2 कविराज मुरारधन ने पृथ्वीराजरासो को चौदहवीं शताब्दी के बाद का ग्रन्थ बताया।

राजशेखर प्रो० बूहलर के साथ-साथ इण्डियन आण्टिक्वरी मे बाबूरामदाससेन[1] एव श्री पी०एन० पूर्णिया[2] महोदय ने भी श्रीहर्ष के रचनाकाल को 12वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे रखा है। इसी तथ्य को स्पष्ट करने के लिए यदि हम तत्कालीन उपलब्ध दानपत्रो एव लेखो पर भी अपनी दृष्टि डाले, तो भी हमे यही स्वीकार पडेगा कि श्रीहर्ष की रचना प्रक्रिया का उद्भव 12वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे ही हुआ। सर्वप्रथम प्राचीन लेखमाला के 23वे (दानपत्र सवत् 1243) 1187 ई० आषाढ शुक्ल 7 रविवार के अनुसार जयन्तचन्द्र गोविन्दचन्द्र के पौत्र तथा विजयचन्द्र के पुत्र थे। इस दानपत्र मे जयन्तचन्द्र को राजा कहा गया है, जबकि 22वे लेख (लेखपत्र सवत् 1225) 1169 ई० मे जयन्तचन्द्र को युवराज कहा गया है। इन दानपत्रो से यह स्पष्ट हो जाता है कि जयन्तचन्द्र 1169 ई० मे युवराज बन गये थे, एव 1170 ई० तक वह राजा बन गये थे। अत यदि जयन्तचन्द्र को श्रीहर्ष का आश्रयदाता मान लिया जाये तो नैषध का रचनाकाल 1170 ई० के आसपास ही स्वीकरणीय होगा।

ऐतिहासिक ग्रथो के अवलोकन से भी श्रीहर्ष के समय निर्धारण मे हम पाते है कि गाहडवशीय गोविन्दचन्द्र का समय 1114 ई० से 1154 ई० तक था। नैषधीयचरित के टीकाकारो मे सर्वप्रथम, विद्याधर, चाण्डूपडित (1297 ई०), गदाधर, (1444 ई०), दाधीचिपडित शिवदत्त शर्मा (1912) हुए। गदाधर[3] श्रीहर्ष को वाराणसी के राजा गोविन्दचन्द्र के आश्रित सिद्ध करते है। कश्मीरी कवि मड्खक के अनुसार कान्यकुब्जेश्वर गोविन्दचन्द्र के दूत सुहल पडित, कश्मीर नरेश जयसिह द्वारा सम्मानित हुए थे।[4] मड्खक और गदाधर दोनो विद्वानो के कथन के साथ-साथ गोविन्दचन्द्र का वाराणसी (काशी) तथा कान्यकुब्ज दोनो प्रान्तो का राजा होना गोविन्दचन्द्र के अनेक ताम्रपत्रो से भी प्रमाणित सिद्ध होता है। श्रीहर्ष के ग्रथ विजयप्रशस्ति से भी श्रीहर्ष का उनका राजाश्रयी होना सिद्ध होता है। सभव है श्रीहर्ष ने गोविन्दचन्द्र के पुत्र विजयचन्द्र की प्रशसा मे विजयप्रशस्ति' नामक ग्रथ लिखा हो, ध्यातव्य है कि यदि हम राजशेखर के कथन को पूर्णत प्रमाण माने, जिसमे उन्होने जयन्तचन्द्र को गोविन्दचन्द्र का पुत्र माना[5] तो यह मानना पडेगा कि राजशेखर ने तो विजय चन्द्र को ऐतिहासिक धरातल से ही गायब कर दिया, बहुत कुछ सभव है कि गोविन्दचन्द्र पौत्र जयन्तचन्द्र को पुत्रवत् स्नेह करते रहे हो, तभी राजशेखर ने उन्हे गोविन्दचन्द्र का पुत्र माना हो। राजशेखर ने अपने प्रबन्धकोश मे यह भी वर्णित किया कि जयचन्द्र के प्रधानमत्री ने 1174 ई० मे सोमनाथ की यात्रा की थी, एव इस यात्रा के पहले श्रीहर्ष कश्मीर अपनी कृति नैषधीयचरित की प्रामाणिकता के लिए गये थे। अत. **यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रीहर्ष ने 1174 ई० के पहले ही** नैषधीयचरित की रचना कर ली थी। प्रो० एस०पी० महाचार्य ने भी ही श्रीहर्ष के साहित्यिक जीवन को 1125 ई० से 1180 के बीच ही माना है।[6]

श्रीहर्ष के जीवन के अन्तिम भाग के सन्दर्भ मे यदि हम दृष्टिपात करे, तो यह जान पडता है कि उन्होने जयन्तचन्द्र के राज्यकाल मे ही उनकी पत्नी सूहवदेवी के व्यवहार से रुष्ट होकर सन्यास ग्रहण

---

1 आई०ए० के तृतीय खण्ड, पृष्ठ- 31।

2 आई०ए० के तृतीय खण्ड, पृष्ठ- 29।

3 प्रो० श्रीधररामकृष्ण भण्डारकर के द्वितीय भ्रमण का विवरण- 1904 ई०, पृष्ठ- 43, 87।

4 अन्य· स सुहलस्तेन ततोवन्द्यत पण्डित. ।
दूतो गोविन्दचन्द्रस्य कान्यकुब्जस्य भूभुज ॥ श्रीकण्ठचरित 25/102।

5 गोविन्दनन्दनतया च वपु श्रिया च मास्मिन्नृपे कुरुत कामधियं तरुण्य ।
अस्त्रीकरोति जगता विजये स्मर स्त्रीरस्त्रीजन पुनरनेन विधीयते स्त्री ॥ प्रबन्ध कोश पृष्ठ-[illegible]।

6 The Probable date of the Naisadhacarita- Prof S P Battacharya oriental thought, Vol, N0-4, July 1955, P-58-73

कर लिया था। राजशेखर सूरि के "श्रीहर्षविद्याधरजयन्तचन्द्रप्रबन्ध" से यह ज्ञात होता है कि काशीराज जयन्तचन्द्र के 'पद्माकर' नाम के प्रधानमत्री अणहिलपत्तन (गुजरात) की यात्रा (1174) मे गये थे, तभी वहा उन्होने शालापति की विधवा पत्नी सूहवदेवी जो अत्यधिक सौन्दर्य शालिनी एव यौवनसम्पन्ना थी, उसे उन्होने कुमारपाल (गुजरात के राजा) के पास रखकर सोमनाथ की यात्रानन्तर उसे काशी लाकर काशीराज जयन्तचन्द्र की भोगपत्नी बनाया। सूहवदेवी स्वय को "कलाभारती" कहती थी। एक बार श्रीहर्ष से सूहवदेवी ने पूछा- तुम कौन हो? श्रीहर्ष ने कहा, मे कला सर्वज्ञ हूँ। ऐसे उत्तर से उसे श्रीहर्ष से ईर्ष्या हुई, उसने कहा, यदि कलासर्वज्ञ हो, तुम मुझे जूता (चप्पल-उपानह) पहनाओ उसने सोचा कि यदि श्रीहर्ष यह कहते है कि मै नहीं जानता, तो वह कला सर्वज्ञ नहीं हो सकते, एव ब्राह्मण होने के कारण चर्मकार कर्म उपानह निर्माण नहीं कर सकते परन्तु श्रीहर्ष ने बल्कल (पेड की छाल) का उपानह बनाकर सूहवदेवी को दिया, एव राजा जयन्तचन्द्र से इस व्यवहार से अपनी खिन्नता को अवगत कराकर राजसभा छोडकर गगा के किनारे सन्यास ग्रहण कर लिया।[1] इसके बाद श्रीहर्ष के जीवन के बारे मे कुछ भी तथ्य नहीं मिलता।

प्राचीन लेखमाला के 23वे लेख के सवत् 1243 (सन् 1183) आषाढ शुक्ल 7 रविवार को लिखित दानपत्र से जयन्तचन्द्र का वशक्रम इस प्रकार ज्ञात होता है- सर्वप्रथन, यशोविग्रह, महीचन्द्र, श्रीचन्द्रदेव, मदनपाल, गोविन्दचन्द्र, विजय चन्द्र, जयन्तचन्द्र, मेघचन्द्र, हरिश्चन्द्र इनमे यशोविग्रह के पौत्र श्रीचन्द्रदेव ने कान्यकुब्ज (कन्नौज) तथा काशी पर विजय प्राप्त की थी, तथा 22वे लेख मे जयन्तचन्द्र के यौवराज्यदानपत्र मे सवत् 1225 (सन् 1169) लिखा है। श्रीहर्ष ने भी जयन्तचन्द्र, के पिता विजयचन्द्र के वर्णन स्वरूप विजयप्रशस्ति ग्रथ के अतिरिक्त नैषध मे भी उनकी चर्चा की है।[2] ऐतिहासिक विवरणो से[3] भी ज्ञात होता है कि त्रिपक्षीय सघर्ष मे प्रतीहार वश के अत के साथ गहडवाल वश चरमोत्कर्ष पर पहुँचा। 1080-85 के बीच चन्द्रदेव ने राष्ट्रकूट शासक गोपाल को हटाकर आधुनिक सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश तक सत्ता स्थापित कर 1100 ई० तक शासन किया। उसके पुत्र मदनपाल (मदनचन्द्र) के बारे मे जानकारी नहीं मिलती सभव है, वह शातिप्रिय रहे हो, एव उन्होने 1114 तक राज्य किया हो, क्योकि उनके पुत्र गोविन्दचन्द्र (1114-1154) महत्वाकाक्षी एव योग्यशासक थे। उसने बगाल के पालो से मगध जीता एव मालवा पर भी अधिकार किया, उडीसा एव कलिग के शासको से भी शक्तिपरीक्षण किया। कश्मीर, गुजरात एव दक्षिण के चोल राजाओ से मित्रता की एव लाहौर के तुर्की हाकिम को हराकर आगे बढ़ने से रोका। उसका पुत्र विजयचन्द्र (1154-1170) गहडवाल साम्राज्य को सुरक्षित बनाये रखा, एव लाहौर के तुर्की हाकिम को हराया। जयचन्द्र (1170-93) इस वश का अतिम शक्तिशाली शासक था इसे बगाल के शासक

---

1 अत्रान्तरे जयन्तचन्द्रस्य पद्माकरनामा प्रधाननर श्रीअणहिलपत्तन गत। तत्र सरस्तटे रजकक्षालिताया शाटिकाया केतक्यामिव मधुकरकुल निलीयमान दृष्ट्वा विस्मितोऽप्राक्षीद्रजकम्- यस्या युवतेरिय शाटी ता मे दर्शय। तस्य हि मन्त्रिणस्तत्पद्मिनीत्वे निर्णयस्य मन। रजकेन साय तस्मै तद्गृह नीत्वा, तामर्पयित्वा, तत्स्वामिनी सूहवदेविनाम्नी शालापतिपत्नी विधवा यौवनस्था सुरूपा दर्शिता। ता कुमारपालराजपार्श्वादुपरोध्य तद्गृहान्नीत्वा सोमनाथ यात्राकृत्वा काशीं गत। ता पद्मिनीं जयन्तचन्द्रभोगिनीमकरोत्। सूहवदेविरिति ख्यातिमगात्। सा च सगर्वा विदुषीति कृत्वा 'कलाभारतीति' पाठयति लोके। श्रीहर्षोऽपि नरभारतीति पठ्यते। तस्य तन्न सहते सा मत्सरिणी। एकदा ससत्कारमाकारित श्रीहर्ष। भणितश्च-त्व क ? श्रीहर्ष "कलासर्वज्ञोऽहम्"। राज्ञ्याऽभाणि-तर्हि मामुपानहौ परिधापय। को भाव-यद्यय न वेद्मि इति भणति द्विजत्वात्तर्हि अज्ञ। श्रीहर्षेणाङ्गीकृतम्। तोनिलयम्। तरूवल्कलैस्तथा तथा परिकर्मितै साय लोलाक्ष सन् दूरस्थ स्वामिनीमाजूहवत्। चर्मकारविधिनोपानहौ पर्यदीघपत्, अभ्युक्षण निक्षिपध्व चर्मकारोऽहमिति वदन्। राजानमपि तत्कृता कुचेष्टा ज्ञापयित्वा खिन्नो गङ्गातीरे सन्यासमग्रहीत्। प्रबन्धकोश पेज- 59-60।

2 तस्य श्री विजयप्रशस्ति रचनातातस्य भव्ये महा-
काव्ये चारूणि नैषधीयचरिते सर्वोऽगमत्पञ्चम ।। नैषध 5/138 का उत्तरार्द्ध ।

3 मध्यकालीन भारत (750-1540) सम्पादक प्रो० हरिश्चन्द्र वर्मा पेज- 7,8

लक्ष्मणसेन से पराजित होना पडा। दिल्ली पर आधिपत्य को लेकर चौहानो एव गहडवालो मे शत्रुता चली आ रही थी, जिस पर अतत 1193-94 ई० मे चन्द्रवार (चन्दावर) के युद्ध मे मुहम्मदगोरी से जयचन्द हार गया एव मार डाला गया। जयचन्द्र का पुत्र हरिश्चन्द्र कन्नौज को तुर्कों (कुतुबुद्दीन ऐबक तथा मुहम्मद गोरी) से कन्नौज को मुक्त कराने मे असफल रहा, वह केवल काशी तक सीमित रहा। ध्यातव्य है कि राजशेखर ने भी यह वर्णित किया है कि रानी सूहवदेवी अपने पुत्र को काशी राजपद दिलवाना चाहती थी, परन्तु जयन्तचन्द्र के मत्री विद्याधर की मत्रणा से काशी राजपद मेघचन्द्र को दिया गया, जिस पर रानी क्रुद्ध एव उसने काशी पर आक्रमण करने के लिए तक्षशिला दीश्वर सुरत्राण (मुहम्मदगोरी) को काशी पर आक्रमण करने के लिए आमत्रण किया। विद्याधर ने राजा को सतर्क किया परन्तु राजा जयचन्द्र ने विद्याधर की उपयुक्त बात नहीं मानी। फलत विद्याधर ने राज्य एव राजा की हानि के पहले ही स्वय की सत्ता समाप्त हो जानी चाहिए, ऐसा सोचकर उसने गगा मे डूबकर प्राण त्याग दिया।[1]

उपर्युक्त तथ्यो के आधार पर यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि श्रीहर्ष राजा विजयचन्द्र एव जयन्तचन्द्र दोनो के समय राजसभाश्रय प्राप्त कवि थे, शायद तभी उन्होने विजयचन्द्र (1114-1154) की प्रशस्ति मे विजयप्रशस्ति नामक काव्य लिखा, इसलिए उनके साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ 1114 के पूर्व स्वीकार नहीं किया जा सकता। चूकि 1193-94 ई० मे चन्दावर के युद्ध मे जयचन्द्र की मृत्यु हो गयी, एव इसके पहले ही श्रीहर्ष ने राजसभा छोडकर सन्यास ग्रहण कर लिया था। ब्रह्म विद्यारण्य (कुम्भकोणम्) की पातानिका मे श्रीहर्ष मिश्र के ग्रथ स्थैर्यप्रकरण का एक श्लोक उद्धृत मानता हे। इसमे चर्चित तान्त्रिक चिद्विलास का समय कामकोटि की परम्परा मे ११६७-१२०० बताया गया है। अत· निश्चित ही श्रीहर्ष १२०० ई के पूर्व ही रहे होगे।[2] इसके साथ-साथ यह तथ्य भी ध्यातव्य है कि गङ्गेश उपाध्याय (1200 ई०) ने श्रीहर्ष के खण्डनखण्डखाद्य का खण्डन कर 'तत्वचिन्तामणि' नामक ग्रथ की रचना की थी, श्रीहर्ष के समय यदि गगोश उपाध्याय उनके ग्रथ का खण्डन करते तो बहुत कुछ सम्भव है, श्रीहर्ष उनका उत्तर अवश्य देते। 1193 ई० के पूर्व ही जयचन्द्र के मत्री विद्याधर ने अपनी जीवन लीला समाप्त की थी। सम्भव है उन्होने राजा के द्वारा अपनी सन्मत्रणा न मानने एव राज्य विनाश से पूर्व ही अपनी जीवन लीला समाप्त करना ही उचित समझा हो। स्पष्ट है कि श्री हर्ष 1200 ई० के बाद तो जीवित नहीं ही रह पाये होगे, अत श्रीहर्ष को 1114 ई० से 1200 ई० के बीच रखना उचित जान पडता है।[3]

---

1 हितवचनानाकर्णनमनये वृत्ति प्रियेष्वपि द्वेष ।
निजगुरूजनेऽप्यवज्ञा मृत्यो किल पूर्वरूपाणि ।। श्लोक-1- श्रीहर्ष विद्याधर जयन्त चन्द्रप्रबन्ध ।

2 तन्त्रैर्दुर्यन्त्रमन्त्रैरपि बुधजनतागाधबोधापमृत्यो कृत्योद्यत्क्रूरधारापरुषतरमर्तैर्गुप्तनाम्ना शरारो ।
चेष्टाभिष्टकम्भकाना प्रतिविबुधसमोत्खातजैत्रध्वजाम् आजानज्ञानभाजा विभवमभिधत्ते चिद्विलासाख्यभूम्नाम्।। ख०ख०खा०, पृ० ११ से उद्धृत।

3 नैषधीयचरितम् महाकाव्य पर सन् 1934 मे प्रो० कृष्णकात हाडिकी, 1953 ई० डॉ० अरूणोदय नटवर लाल जानी एव सन् 1954 ई० मे डॉ० चण्डिकाप्रसाद शुक्ल ने अपना शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया। डॉ० हान्डिकी ने श्रीहर्ष के जीवनकाल के बारे मे अपनी लेखनी ही नहीं उठायी। डॉ० चण्डिका प्रसाद शुक्ल ने जीवनकाल का विवरण तो दिया किन्तु उन्होने श्रीहर्ष के काल निर्धारण के सन्दर्भ मे श्रीहर्ष के जीवनवृत्त के पूर्वपक्ष एव उत्तर पक्ष का उल्लेख न करके अपने स्थिर मत की स्थापना नहीं की एव डॉ० जानी ने श्रीहर्ष सम्बन्धी विवरण तो दिया, परन्तु उनका काल निर्धारण सम्बन्धी कथन, (श्रीहर्ष को 160 वर्ष का मानना) कितना समीचीन हो सकता है, इसमे सुधीजन ही प्रमाण है। यथा-
The date of the composition of the N C therefore, can be given as 1175 A D if not earlier Hence the date of Sriharsa falls between 1020-1180 A.D and his literary career may fall between circa 1125 to 1180, as his khandana is refuted by Gangesa upadhyaya (1200 A D) in his Tattvacintamani
A Critical Study of Sriharasa's Naisadhiya Çaritam- A N. Jani, P-129

नैषधकार का निवास स्थान (देश)

नैषधकार श्रीहर्ष का स्थितिकाल बारहवीं शताब्दी (1114 ई० 1200) सिद्ध होने के बाद अब उनके निवास स्थान के बारे मे परिचित होना जिज्ञासु का प्रथम कर्त्तव्य बन जाता है। मध्यकाल से लेकर आधुनिक काल तक के प्राय सभी विद्वान् श्रीहर्ष के निवास स्थान के बारे मे अलग-अलग विचार रखे है। उनके ग्रथो के अध्ययनोपरान्त विविध कविपडिता ने अपने-अपने मत की स्थापना के लिए अलग-अलग तर्क समुपस्थित किये है। विविध ग्रथो एव टीकाओ के अध्ययपनोपरान्त श्रीहर्ष के निवासस्थान के बार मे जो सकेत मिलता है, उससे वैविध सुधीजनो मे मतभेद दिखायी पडता है। किञ्चित् कविपडितो ने श्रीहर्ष के पण्डित्य से प्रभावित होकर उन्हे कश्मीर निवासी माना, तो कुछ विद्वानो न रीति-रिवाजो का साक्ष्य रखकर उनका जन्म बगाल (गौडदेश) मे जम माना, किञ्चित् शोधपरीक्षको ने श्रीहष को कन्नौज का निवासी सिद्ध किया, तो अन्य प्राचीन टीकाकारो ने उन्हे काशी का निवासी घोषित किया।

श्रीहर्ष को कश्मीर निवासी मानने वालो ने निम्न तर्क दिये।

1 श्रीहर्ष की माता का नाम मामल्लदेवी था, यह नाम कश्मीर से ही सम्बन्धित हो सकता है।[1] इसलिये श्रीहर्ष कश्मीर के रहने वाले ही होगे।

2 जनश्रुति के अनुसार श्री हर्ष का सम्बन्ध काव्यप्रकाशकार मम्मट से था, वह उनके भागिनेय थे।

3 श्रीहर्ष ने अपने ग्रथ नैषधीयचरित मे यह उल्लेख किया है, कि चौदह विद्याओं के जानने वाले विद्यानिष्णातो ने उन्हे सम्मान दिया।[2] यह सम्मान उनके स्वदेशप्रेम से आह्लादित होकर ही दिया गया होगा, अत श्रीहर्ष कश्मीर के रहने वाले थे।

श्रीहर्ष को कश्मीर निवासी मानने वाले विद्वानों के तर्कों का निराकरण

1 श्रीहर्ष की माता के नाम मामल्लदेवी को कश्मीर से सम्बन्धित करना, विद्वानो की भ्रान्ति का ही परिचायक है, क्योकि ऐसे नाम निर्धारण की परम्परा कश्मीर मे नहीं देखी गयी। हॉ, ऐसे नाम, दक्षिण भारत, विशेषकर आन्ध्रप्रदेश एव तमिलनाडु राज्य मे अवश्य मिलते है, तब तो सुधीजनो को चाहिए कि वे श्रीहर्ष को आन्ध्रप्रदेश एव तमिलनाडु का जन्मा ही घोषित करे। परन्तु मातृकुल को प्रमाण मानकर ऐसा मत देना समीचीन नहीं हो सकता। यह हो सकता है कि श्रीहर्ष के पिता श्रीहीर दक्षिण भारत की यात्रा करने गये हो, एव वहीं मामल्लदेवी से मुलाकात हुई हो या काशी मे ही उनसे सम्पर्क हुआ हो, एव दोनो परिणय सूत्र मे आबद्ध हो गये हे।

2 कुछ विद्वान् जो श्रीहर्ष का सम्बन्ध मम्मट से स्थापित करते हुए श्रीहर्ष का मम्मट से भेट होना एव नैषधीयचरित मे मम्मट ने दोष देखकर कहा कि "यदि तुम मुझे इस नैषधीयचरित कृति को मेरी कृति (काव्य प्रकाश) के पहले दिखाते तो मुझे दोष प्रकरण के लिए अन्यत्र नहीं जाना पडता" इस तथ्य को उद्धृत कर श्रीहर्ष को कश्मीरी मानते है।[3] उन्होने शायद ऐतिहासिक तिथियो की उपेक्षा ही की ध्यातव्य है कि मम्मट का समय 1050 ई० है, जबकि श्रीहर्ष का (1114 ई० 1200 ई०)

---

1 श्रीनीलकमलभट्टाचार्य "नैषध और श्रीहर्ष" - सरस्वती भवन स्टडीज, पृ० 170-194

2 कश्मीरेर्महिते चतुर्दशतयीं विद्या विदभिर्महा।
काव्ये तद्भुवि नैषधीयचरिते सर्गोऽगमत्षोडश ॥ नै० 16/131 उत्तरार्द्ध

3 Kashmir report—Recorded by Buhler, P-68
And see also article entitled Naisdhacharita aucityacarca by Shivakamesvara Rao, in Mimansa, I-5 (Tenali, 1922) and History of Sanskrit Sahitya, Banaras, Vol 131

बारहवीं शताब्दी। इसलिए श्रीहर्ष का कश्मीरी होना कथमपि सभव नहीं हो सकता। क्योकि इन दोनो मे लगभग 150 वर्ष का अन्तर मिलता है। डॉ० सुनील कुमार डे ने भी मम्मट एव श्रीहर्ष के सम्बन्ध स्थापन को अविश्वसनीय मना है।[1]

3 कुछ कश्मीरी विद्वानो द्वारा सम्मनित होने से श्रीहर्ष कश्मीर के निवासी कथमपि सिद्ध नहीं हो सकते, सभव है उन विद्वानो ने श्रीहर्ष की प्रतिभा को सम्मनित करने के लिए उसे अपना आदरपात्र बनाया हो।

साथ ही यह भी शका उत्पन्न होती है कि विद्वानो की नगरी काशी मे आश्रयप्राप्त श्रीहर्ष को कश्मीर जाने की आवश्यकता ही क्या हो सकती है? माना कि कश्मीर भी विद्या का केन्द्र था, परन्तु ऐसा कथन तर्कसगत प्रतीत नहीं होता कि श्रीहर्ष को अपने ग्रथ की प्रामाणिकता के लिए गिडगिडाना पडा हो। यह भी माना कि श्रीहर्ष ने कश्मीर की यात्रा की एव विद्वानो तथा तत्कालीन राजा माधवदेव से उसकी मुलाकात हुई, तो यदि श्रीहर्ष कश्मीर के निवासी थे, तो उन्हे अपने आपको 'वैदेशिक' कहने की क्या आवश्यकता आन पडी? जैसा कि राजशेखर सूरि ने अपने प्रबन्धकोश के अन्तर्गत श्री हर्षक विप्रबन्धक मे उद्घृत किया है।[2] उन्हे अपने को वैदेशिक कहने मात्र से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रीहर्ष कश्मीर के रहने वाले तो नहीं ही थे, अन्यत्र कहीं दूसरे प्रान्त के भले ही हो सकते है।

श्रीहर्ष को बग प्रदेश (गौडदेश) का निवासी मानने वाले विद्वानो मे सर्वप्रथम श्रीहरिसिद्धान्तवागीश भट्टाचार्य प्रो० नीलकमल भट्टाचार्य, नलनीनाथ दास गुप्त, विद्यापति, डॉ० अरूणोदय नटवरलाल जानी प्रमुख है। श्री हरिसिद्धान्तवागीश भट्टाचार्य महोदय ने नैषधीयचरित के अपने बगाली सस्करण (1849 शकाब्द मे प्रथम सस्करण एव 1871 शकाब्द सन् 1918 मे प्रकाशित दूसरे सस्करण मे) मे श्रीहीर नामक ब्राह्मण को गौडदेश की राजधानी लक्ष्मणावती के समीप का निवासी एव उनकी पत्नी मामल्लदेवी तथा पुत्र श्रीहर्ष के होने का उल्लेख किया है।[3] आधुनिककाल का बगाल प्रदेश, प्राचीन काल का गौडदेश ही है, एव उसकी राजधानी लक्ष्मणावती आज 'मालदह' जिला है। श्रीभट्टाचार्य ने श्रीहर्ष के बगालवासी होने के निम्न तर्क दिये–

1 1348 ई० मे राजशेखर के द्वारा रचित प्रबन्धकोश मे "श्रीहर्षो गौडदेशीय" ऐसा कहा गया है।

2 श्रीहर्ष ने स्वय नैषधीयचरित मे "उलूलु ध्वनि"[4] का वर्णन किया, जो कि बगाल देश मे प्रचलित रीति-रिवाज मे ही परिलक्षित होती है अन्यत्र कहीं नहीं।

---

1 H S L —S K De P 325

2 श्रीहर्षेण पण्डिता उक्तास्तत्रत्या ग्रन्थमत्रत्याय राज्ञे माधवदेवनाम्ने दर्शयत्। श्रीजयन्तचन्द्राय च शुद्धोऽय ग्रन्थ इति लेख प्रदत्त। श्रुतेऽपि ग्रन्थे भारत्यभिमते ज्ञातेऽपि ते न लेख ददतेय न भूप दर्शयन्ति। स्थित श्रीहर्षो बहून मासान्। जग्ध पाथेयम्। विक्रीत वृषभादि। मितीभूत परिच्छद। एकदा नद्यासन्देशे कूपतटासन्नतमे देवकुले रूद्रजप रह करोति। तत्रागते कयोश्चिद् गृहिणोरूलण्ठे चैट्यो जलप्रथमपश्चाद्ग्रहणघटभरणविषये वादे लग्ने। तयोश्चिरमुक्तिप्रत्युक्तिरभूत्। शीर्षाणि स्फुटितानि घातप्रतिघातै। गते राजकुले। राजा साक्षिण गवेषयति। उक्ते ते - अत्र कलहे कोऽपि साक्षी विद्यते न वा? ताभ्या जगदे - विप्र एकस्तत्रास्ते जपतत्पर। गता राजकीया। आनीत श्रीहर्ष पृष्टस्तयोर्नयानयौ। श्रीहर्षेण गीर्वाणवाण्योक्तम् - देव। वैदेशिकोऽह। न वेद्मि किमप्येते प्राकृतवादिन्यौ ब्रूत। केवल तान् शब्दान् वेद्मि

3 असीत् किल गौडदेशे लक्ष्मणावती राजधानी सन्निधाने श्री हीरो नाम महाविचक्षण कश्चन् ब्राह्मण। स खलु मामल्देवी नामिकाया निजमार्ययाया श्रीहर्ष नाम पुत्र जनयामास। स चात्मनो विद्यवैभनेन दिग् दिगन्तविकीर्णकीर्ति श्रीहरि काव्यकुन्जाधितिना विजयचन्द्रेण ससम्मानमुवनीय स्वकीयान्यतमसमापण्डितपदे समारोपित। II सस्करण, 1871 श्काव्य जयन्ती टीका –नैषधीयचरित - हरिसिद्धान्त वागीस।

4 कापि प्रमोदास्फुट निर्जीहानवर्णेव या मडलगीतिरासाम् ।
सैवाननेम्य पुरसुन्दरीणामुच्चैरुलूलुध्वनिरुच्चकार ।। नैषध - 15/51।

3 श्रीहर्ष ने नैषधीयचरित मे सरस्वती वर्णन के प्रसग मे ॐकार के चन्द्र की 'बिन्दी' (भालबिन्दु)[1] का वर्णन किया है, वह बगाली परम्परा मे ही प्रचलित है।

4 श्रीहर्ष ने नैषधीयचरित मे काशीराज वर्णन के प्रसग में व्याकरणशास्त्र मे विशेषप्रसिद्धिप्राप्त लुङादि सज्ञा को छोडकर कलापव्याकरण के अन्तर्गत 'अद्यतनी सज्ञा'[2] का प्रयोग किया, जिसमे कवि ने अपने कलाप व्याकरण के अध्ययन को सूचित किया है। कलापव्याकरण के अध्ययन का प्रचलन आजकल पूर्वोत्तर बगाल मे है एव मालदह जिला उत्तरी बगाल मे ही अवस्थित है।

5 श्रीहर्ष ने गौडदेश मे रहने के कारण ही गौडराजवश की प्रशस्ति हेतु 'गोडोर्वीशकुलप्रशस्ति' नामक ग्रथ की रचना की,[3] जिससे स्पष्ट होता है कि वे बगाल के ही रहने वाले थे।

"श्रीहरिसिद्धान्तवागीशभट्टाचार्य के मत का खण्डन"

1 भट्टाचार्य महोदय, ने जो राजशेखर के प्रबन्धकोश मे "श्रीहर्षो गौडदेशीय'' कहा है, वह नितान्त मनगढन्त है क्योकि राजशेखर सूरि के प्रबन्धकोष के अन्तगत ऐसा वर्णन प्राप्त नहीं है। हॉ प्रबन्धकोशान्तर्गत 'हरिहरप्रबन्ध' मे ''श्रीहर्षवशे हरिहर गौडदेशीय'' का उल्लेख अवश्य हुआ है। ध्यातव्य है कि श्रीहर्ष की पत्नी एव उनके बच्चो के बारे मे तो कोई वर्णन नहीं मिलता, परन्तु उनके नाती (Grandson) कमलाकरगुप्त का वर्णन मिलता है, जिन्होने नैषधचरित पर भाष्य लिखा था, एव उसी पीढी मे कवि हरिहर उत्पन्न हुए जो नैषधीयचरित की प्राचीन लिपि गुजरात से लाये थे। हरिहर के बाद उसी वश परम्परा मे चित्रेश्वर शर्मा का वर्णन मिलता है, जिन्होने नैषध पाण्डुलिपि की प्रतिलिपि तैयार की[4] परन्तु ''श्रीहर्षवशे हरिहर गोडदेशीय'' से यह कथमपि प्रमाणित नहीं होता कि श्रीहर्ष बगाल के रहने वाले थे। संभव है कि श्रीहर्ष के वशज हरिहर जीविकावृत्ति हेतु बगाल गये हो, एव वही बस गये हों, जैसा कि आधुनिककाल मे भी देखा जाता है कि किसी दूसरे प्रान्त के व्यक्ति जीविका निर्वाह या व्यापार के बहाने अन्य प्रान्तो मे जाते है, एव धीरे-धीरे वह वहीं स्थापित हो जाते है, परन्तु इससे उनकी जन्मभूमि नहीं बदल सकती, हॉ कर्मभूमि भले बदल जाये। अत भट्टाचार्य महोदय का यह तर्क असगत ही ठहरता है।

2 भट्टाचार्य महोदय का यह तर्क कि श्रीहर्ष ने अपने ग्रथ नैषधीयचरित मे यह विवरण दिया है कि जिस समय दमयती ने स्वयवर सभा मे नल के गले में वरमाला पहनायी, तो नगर की कामिनियों ने (मगलार्थक) 'उलूलु' ध्वनि का उच्चस्वर मे उच्चारण किया।[5] 'उलूलु' ध्वनि की व्याख्या करते हुए नारायण राम आचार्य 'काव्यतीर्थ' ने अपनी नैषध टीका मे निम्न व्याख्या प्रस्तुत की "विवाहाद्युत्सवे स्त्रीणा धवलादिमगलगीतिविशेषा गौडदेशे "उलूलु" इत्युच्यते। सोऽप्यव्यक्तवर्ण–उच्चार्यते। स्वदेशरीति कविनोक्ता।" एव दाक्षिणत्य विद्वान् मल्लिनाथ ने 'उलूलु'

---

1 भ्रुवो दलाम्या प्रणवस्य मस्यास्त द्विन्दुना भालतमाल पत्रम् ।
तदर्द्धचन्द्रेण विधिर्विपञ्ची-निक्राणनाकोणधनु प्रणिन्ये ।। नैषध- 10/86

2 भूताभिधानपटुमद्यतनीमगाप्य, भीमोद्भवे। भवति भावमिवास्तिधातु। नैषध - 11/117 उत्तरार्ध पक्ति

3 गोडोर्वीशकुलप्रशस्तिभणितिभातर्यय तन्महाकाव्ये–नैषध 7/110 उत्तरार्द्ध पक्ति

4 शाके वारिधिसूर्यवाजिगिरिजाबालानलक्ष्म्या युते मासे फाल्गुनिके तथैव दशमीतिथ्या च पक्षे सिते वारे देवगुरोरलेखि ललित तन्नैषध पुस्तक श्रीचित्रेश्वरशर्मणा हरिहरवशौद्भवेनाचिरात्।। NW II, P 71, No 67, A N जानी-पृ० 93

5 कापि प्रमोदास्फटनिर्जिहानवर्णय या मगलगीतिरासाम् ।
सैवाननेम्य पुरसुन्दरीणामुच्चैरुलूलुध्वनिरुच्चकार ।। नैषध-14/51

ध्वनि को "उदीच्यानामयमाचार" रूप मे वर्णित किया।[1] भट्टाचार्य के मत से सहमति व्यक्त करते हुए श्रीनीलकमल भट्टाचार्य ने अभिहित किया कि नैषधीयचरित मे विवाहोत्सव के समय 'उलूलु' ध्वनि का जैसा विवरण मिला है, वैसा केवल बगाल मे ही प्रचलित है, हालाकि उडीसा और आसाम मे भी 'उलूलु' ध्वनि की मान्यता है। किन्तु विद्वद्द्वय यह विवरण देने मे अक्षम रहे कि 'उलूलु ध्वनि' बगाल की ही उपज है। ध्यातव्य है कि 'उलूलु' ध्वनि का प्रचलन मध्यकाल से नहीं, अपितु प्राचीनकाल से चला आ रहा है। पौराणिक ग्रथो एव उपनिषदो के पृष्ठो को यदि पलटा जाय, तो उनमे भी 'उलूलु' ध्वनि का विवरण द्रष्टव्य है, सर्वप्रथम अथर्ववेद मे 'उलूलायाह'[2] रूप मे, फिर छान्दोग्य उपनिषद् मे उलूलु ध्वनि का विवरण देखने को मिलता है,[3] तदुपरान्त अन्य स्थलो मे भी उलूलुध्वनि का वर्णन द्रष्टव्य है। यथा काश्मीरी विद्वान् मुरारिकृत अनर्घराघव मे सीता विवाह के प्रसग मे,[4] मैथिलीकवि रूचिपति उपाध्याय कृत अनर्घराघव की टीका मे,[5] 13वीं शताब्दी मे गुजरात के राणा वीरधवल के मत्री वस्तुपाल कृत नरनारायणानन्द मे सुभद्रा और अर्जुन के विवाह के प्रसग मे[6] वस्तुपाल के समकालिक अमरचन्द कृत पद्मानन्द महाकाव्य मे तीर्थकर ऋषभदेव के विवाह प्रसग मे,[7] वास्तुपाल के राज सभा के प्रसिद्ध विद्वान अरिसिह की काव्यकल्पलता मे एव इसी ग्रथ के टीकाकार अमरचद की टीका मे[8] साथ ही देवेश्वर कृत कविकल्पलता मे, जगडूचरित तथा हेमचन्द्राचार्य कृत त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित मे अजितनाथ के जन्म के अवसर पर भी द्रष्टव्य है।[9]

यदि हरिसिद्धान्तवागीश भट्टाचार्य के मतानुसार नारायणी टीका के आधार पर यदि हम श्रीहर्ष को बगालवासी मान ले, तो फिर रुचिपति के आधार पर दाक्षिणात्यवासी एव वस्तुपाल के विवरण के आधार पर गुजराती तथा प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ के अनुसार उत्तर देशवासी मानना होगा[10] जबकि मल्लिनाथ के मत का खण्डन नीलकमल भट्टाचार्य ने किया है।[11] भारतीय सस्कृति विविधता मे एकता का कलेवर पहने हुए अपने मे अनूठी ही है। कोइ परम्परा केवल उसी प्रान्त की ही ऐसा कह पाना मुश्किल है। क्योकि कवि तो सूक्ष्मदर्शी होता है सभव है श्रीहर्ष ने ऐसे विवाहोत्सव की परम्परा काशी या बगाल मे देखी हो, एव उन्हे यह परम्परा रूचिकर लगी हो, जिससे उन्होने नैषध मे इसे स्थान दिया है परन्तु 'उलूलु' ध्वनि के विवरण देने मात्र से श्रीहर्ष को बगाली सिद्ध करना तर्कसगत नहीं होगा, क्योकि आधुनिक काल मे भी उत्तरी गुजरात एव सौराष्ट्र की औरतो

---

1 उलूलुरित्येवरूप कश्चिद्हर्षणात्मक सुखोच्चार्यो ध्वनिविशेष उत्सवादौस्त्रीभिरुच्चार्यते-इत्युदीच्यानामाचार। नैषधीयचरित-नारायणी टीका–सस्करण–1986, मेहरचन्द लक्ष्मनदास पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, पृ० 585

2 अर्थववेद 3/10/6

3 अथयत्तदजायत् सोऽसावादित्य तजायमान घोषा उलूलवोनूदतिष्ठन् तस्मात्तस्योदय प्रति प्रत्यायन प्रति घोषा उलूलवोनूत्तिष्ठान्ति। छान्दोग्य उपनिषद - 3/19/3

4 **वैदेहीकरवन्धमगलयजु सूक्त द्विजाना मुखे ।**
नारीणा च कपोलकन्दलतले श्रेयानुलूलुध्वनि ।। अनर्घराघव 3/55, निर्णय सागर प्रेस।

5. **दक्षिणा देशे विवाहाद्यवसरे स्त्रीभिरु लूलुध्वनि क्रियते इत्याचार ।**

6 मुदित मृगाक्षी मण्डलोलूलुनाद –नरनारायणानन्द 15/17

7 इन्द्राण्युलूलुविलसत्प्रतिशब्दपूरैर्नि शेषदिङमुखभवद्धवलानुवाद पद्मानन्द महाकाव्य 9/68

8 विवाहे स्नानशुभ्राङ्गभूषोलूलुत्रयीरवा। वेदीसीमन्ततारेक्षालाजा मङ्गल-वर्तनम्।। काव्यकल्पलता 1/5/86

9 त्रिष्टिशलाकापुरुषचरित 2/2/539, एव जैन आत्मानन्द शताब्दी सिरीज न0 VIII, Pt II, P 183

10 New I A II, P 265 No 6

11 सरस्वती भवन स्टडीज, पृष्ठ- 175-177

द्वारा (लोरी) गायी जाती है। प्रसिद्ध विद्वान् जियाफ्रे ग्रोगर ने त इसे दक्षिण अफ्रीका की संस्कृति का अग माना। डॉ० सुनील कुमार डे ने भी भट्टाचार्य॰य के उलूलु शब्द का विवरण देन मात्र से श्रीहर्ष के बगाली होने का खण्डन किया है।[2] साथ नैषध के अंग्रेजी अनुवादकर्ता प्रो० कृष्णकात हाडिकी ने उलूलु ध्वनि का बगाल से बाहर भी प्रचलन होना वर्णित किया है।[3] उन्होने ग्रीक के ओलोगी (Ololuge) और लेटिन के उलूलेटस (Ululatus) से इस ध्वनि का अनुरणात्मकनाद सौन्दर्य माना। स्पष्ट है कि केवल उलूलु ध्वनि के आधार पर श्रीहर्ष को बगाली नहीं माना जा सकता।

3 श्रीहरिसिद्धान्तवागीशभट्टाचार्य महोदय का यह मत कि ॐकार की 'बिन्दी' सदृश 'भालबिन्दु' का जो वर्णन नैषधीयचरित मे मिलता है, वह बंगाली परम्परा मे ही प्रचलति है इसलिए श्रीहर्ष बगाली रहे होगे तभी, उन्होने ऐसे तिलक रचने का वर्णन किया है, परन्तु उनका यह तर्क सतही तौर पर ही विखडित हो जाता है, क्योकि भारत मे लगभग सभी प्रान्तो मे सभी वर्ग विशेष की (मुसलमान एव ईसाइयो को छोडकर) औरते 'बिन्दी' लगाती है, उससे यह कहीं भी ध्वनित नहीं होता कि वे बगाली है, अत जाहिर है कि भालबिन्दु वर्णन से सम्बन्ध स्थापित कर श्रीहर्ष को बगाली नहीं ठहराया जा सकता।

4 श्रीवागीश जी का यह कथन कि श्रीहर्ष ने कलाप व्याकरण, जिसका प्रचलन बगाल मे अध्यधिक था, का वर्णन नैषधीयचरित मे किया, इसमे उन्होने अपने देश प्रेम (गौड देश) को दर्शाया है, इसलिए श्रीहर्ष बगाली है। श्रीवागीश महोदय का यह तर्क निराधार है, क्योकि विदग्ध कवि किसी शास्त्र के अगभूत मे परगत नहीं होते, अपितु वे सम्पूर्ण शास्त्रो के सर्वांग अध्ययन के प्रेमी होते है एव जिस श्रीहर्ष को "कविराजराजिमुकुटालकार" की सज्ञा से अलकृत किया गया हो, उसके बारे कहना ही क्या है श्रीहर्ष कलाप व्याकरण ही क्या वे व्याकरण शास्त्र की सभी शाखाओ के मर्मज्ञ थे। ध्यातव्य है कि तत्कालीन समय मे काशी विद्वत्केन्द्र थी, सभव है श्रीहर्ष ने वहॉ से अध्ययन अध्यापन हेतु बगाल गये हो, और वहॉ उन्होने व्याकरण की इस शाखा का अध्ययन किया हो, एव उन्हे रूचिकर लगने के कारण उन्होने नैषधचरित मे यत्रतत्र उसका प्रयोग किया हो परन्तु इस आधार पर श्रीहर्ष को बगाली तो निश्चय ही नहीं कहा जा सकता।

5 श्रीवागीश का श्रीहर्ष को बगदेशीय मानने का अतिम तर्क यह था कि उन्होने जो 'गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति' की रचना की, यह उनके गौडदेश से प्रेम सम्बन्ध को पुष्ट करता है, तथा उन्होने स्वदेश प्रेम के कारण ही यह रचना की, अत वे बगालवासी थे। श्रीहर्ष को गौड विषय का निवासी विद्यापति ने भी पुरूषपरीक्षा की मेधाविकथा मे वर्णित किया है। साथ ही यह भी विवरण उपस्थित किया है कि नैषधीयचरित को वह वाराणसी के पण्डितो द्वारा प्रमाणित कराने वाराणसी

---

1 Geaffiay Garer in this book, Africa Dances' rcords the prevalence of the custom among the Negros, when he says Another difference from the red chempionships was the small number of women present, usually there is a salid pholanx of them singing and ululating egging the fighters on and tountig them if they do badly — Panguin books edn P 29.

2 Sriharsa's Bengal arigin need not follow, as Narayana in this commentory thinks, from his use (14/51) of the word 'ULULU' as on auspicious sound made by women on bestike occations Sriharsa belonged to bengal is wholly unconssincing New Indian Antiquarry - S K De- II P 81, H S L -S K De, I, P-326

3 The Ululu sound has, infact, been brought in to special Connection with the marriage festuscities by center leter writers on poetics - Naisadha Charit - K K Handiqui - P 563-65

गये एव स्वदेशी कोक पण्डित को उन्होने नैषधीयचरित को दिखाया।[1] परन्तु विद्यापति के कथन से दो तथ्य उभरकर सामने आते है, प्रथम यह कि, स्वदेश प्रेम के कारण यदि वे कोक पडित से मिले, तो यदि वे 'रतिरहस्य' के प्रणेता कोक्कक थे, तो वे तो काश्मीरी विद्वान् थे, तो इस आधार पर श्रीहर्ष भी काश्मीरी ही ठहरते है, बगाली नहीं। द्वितीय, यह कि सभव है कि 'कोक' नामधारी कोई विद्वान् काशी मे रहे हो, तो इस आधार पर भी श्रीहर्ष बगाली नहीं ठहरते, क्योकि किसी बगाली कवि 'कोक' नाम की जानकारी उपलब्ध ग्रथो यथा–काशीरहस्य मे भी नही मिलती। जिस गौडोर्वीशकुल प्रशस्ति रचना के आधार पर श्रीवागीश जी श्रीहर्ष को बगाली मानते है, उन्हे शायद गौडदेश के विषय मे पर्याप्त जानकारी नहीं थी।, उन्होने गौड शब्द से तात्पर्य बगाल ही समझ लिया, यदि ऐतिहासिक सस्कृति का अध्ययन किया जाये, तो यह स्पष्ट हो जाता है, कान्यकुब्जेश्वर श्रीजयन्तचन्द्र का राज्य मगध से पूर्वी भागो तक था, जिसमे गौडदेश भी आता था, एव गौड ब्राह्मणो का निवास स्थान प्रान्त (विषय) को भी गौड विषय की सज्ञा से अभिहित किया जाता था। गौड ब्राह्मणो का निवास गोडवाना, गोडा एव बगाल के साथ-साथ उत्तरी भारत के अन्य स्थानो मे भी था। 'जातिभास्कर'[2] मे गौड देश की स्थिति के बारे मे वर्णन आया है कि बगदेश से लेकर अमरनाथ पर्यन्त गौडदेश अवस्थित है। ऐसा ही वर्णन आदिगौडदीपिका मे मिलता है, जिसमे कहा गया है कि–

गौडदेश समारभ्य भुवनेशान्तग शिवे ।
गौडदेश समाख्यात सर्वविद्याविशारद ।।

ब्राह्मणोत्पत्तिमार्तण्ड के प्रणेता ने गौड देश की स्थिति का उल्लेख करते हुए लिखा है कि हरियाणा, दिल्ली, सोनीपत, पानीपत के आसपास का क्षेत्र यमुनानदी के किनारे का प्रदेश, फतेहपुर पुष्कर, मत्स्य, विराट, भिवानी आदि स्थानो मे गौड ब्राह्मणो का निवास है। अयोध्या मे सरयूनदी के उत्तर सरवार तथा गौडदेश है। मत्स्यपुराण एव वायुपुराण[3] मे श्रावस्तीपुरी को गौडदेश के अन्तर्गत ही माना गया है। जातिभास्कर मे ही गौडदेश की सीमा निर्धारण सम्बन्धी विवरण मिलता है कि यह श्रावस्तीपुरी (प्राचीन नाम सेहेत–मेहेत) गौड देश मे सरयू नदी के उत्तर (इस समय) गोडा नगर के समीप स्थित है। जिस देश की सीमा पूर्व मे गगा नदी और गण्डकी नदी का सगम है, पश्चिम एव दक्षिण दिशाओ मे सरयू नदी प्रवाहित है, उत्तर मे हिमालय है, इसके मध्य की भूमि का नाम गौडदेश है। गण्डकी नदी के पश्चिम की भूमि गौडदेश कहलाती है। इस स्थान मे जो ब्राह्मण सृष्टि के आरम्भ से निवास करते है, वे गौड कहलाते है।[4] अतएव स्पष्ट है कि गौडदेश यथार्थ मे बगाल प्रान्त का ही वाचक न होकर, बल्कि उन सारे प्रान्तो का वाचक है, जहॉ-जहॉ गौड ब्राह्मणो का निवास रहा है। हितोपदेश मे तो यहॉ तक वर्णन मिलता है कि 'कौशाम्बी' (इलाहाबाद के पश्चिम दक्षिण मे यमुना के किनारे स्थित नगरी) भी गौडदेश के सीमान्तार्गत

---

1 "वयूब गौडविषये श्रीहर्षोनाम कविपण्डित। स च नलचरितामिधान काव्य कृत्वा तत्काव्य दर्शपितु पण्डित-मण्डलीमुद्दिश्य वाराणसी जगाम। तत्र च कोकनामान पण्डित श्रावयामास। श्रीहर्षस्तु तमनुगच्छन् पठति प्रत्यहम्। तदुत्तरं किमपि नाप्नोति। एकादा श्रीहर्षेणोक्तम्, आर्य। महाकाव्ये कृतश्रमोऽहम, तत्परीक्षार्थ त्वामुद्दिश्य बुद्धया स्वदेशीयवात्सल्येन च महतो दूरादागतोदिम"। सरस्वती भवन स्टडीज, भाग-3, पृष्ठ 190-91 की टिप्पणी से अनूदित

2 जाति भाष्कर (खेमराज श्री कृष्ण दास सस्करण), पृ० 73

3 श्रावतश्च महातेजा वत्सकस्तत्सुतोऽभवत् ।
निर्मिता येन श्रावती गौडदेशे जिोन्तमा ।।
अत्तराकौशले राज्य लवस्य च महात्मन ।
श्रावस्ती लोकविख्याता श्रविता च लवस्य च ।। वायु- पु० भाग-2, अध्याय 26, श्लोक 198

4 जातियास्कर - खेमराज श्री कृष्णदास, सस्करण, पृ० 73

थी।[1] इन सारे साक्ष्यो के बावजूद भी यदि गौड देश को बगाल का ही वाचक माना जाय, जो कि वास्तविकता के धरातल से परे ही सिद्ध होता है, तो हम यदि ऐतिहासिक तथ्यो का अवलोकन करे, और यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन समय मे कान्यकुब्जेश्वर (गोविन्दचन्द्र) का साम्राज्य गौडदेश तक रहा है, इसलिए कान्यकुब्जेश्वर को ही गौडेश्वर की सज्ञा से श्रीहर्ष ने विभूषित किया होगा, क्योकि गोविन्द चन्द्र के मनेर, लार, तथा सेहेत-मेहेत ताम्रपत्रो से सिद्ध होता ह कि चद्रवशीय गहडवालो का साम्राज्य उत्तरी भारत के साथ-साथ मगध के पूर्व तक फैला था।[2] दूसरे गौड ब्राह्मणो का निवास स्थान गहडवालो की साम्राज्य सीमा मे ही था, एव नैषध मे भी जिस करूष प्रदेश का वर्णन मिलता है वह काशी के पूर्व का भू भाग था[3] एव वह काव्यकुब्जेश्वर के अधीन था इसलिए भी उनका स्वामी (राजा) गौडेश्वर अर्थात् कान्यकुब्जेश्वर ही सिद्ध होता है, उपर्युक्त विवेचन से स्वयमेव सिद्ध हो जाता है कि श्रीवागीशजी का मत कि ''गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति के रचनाकार श्रीहर्ष बगाली थे'' अनुपयुक्त कथनमात्र है। अत श्रीहर्ष बगाली नहीं थे।

श्रीवागीश भट्टाचार्य के बाद श्रीहर्ष को बगालवासी कहने मे प्रो० नीलकमल भट्टाचार्य जी का स्थान प्रमुख है। उन्होने नैषधीयचरित मे प्रयुक्त कुछ व्याकरणिक सदर्भों, ग्रथ मे वर्णित वाक्यविन्यासो पराम्पराओ परिधानो एव तत्रमत्रो, रीतियो 'भोज्यसामग्री' के आधार पर श्रीहर्ष को बगालवासी सिद्ध करने का प्रयास किया है। श्रीवागीश की तरह श्रीनीलकमलजी ने भी उलूलु ध्वनि का साक्ष्य श्रीहर्ष को बगालवासी सिद्ध करने मे किया है, जिसका खण्डन पूर्व मे किया जा चुका है, अत उनका यह प्रमाण असमीचीन ही समझा जाना चाहिए। प्रो० नीलकमलजी ने श्रीहर्ष को बगालवासी मानने मे दूसरा प्रमाण वाक्यविन्यासो का दिया है, जो निम्न है–

1 फाल शब्द (द्विफालबद्धाश्चिकुरा नै 1/6) आसाम से सम्बन्धित है। प्रो० हाडिकी[4] ने भी द्विफालबद्धा को आसाम के 'दुफाले बन्धा' से सम्बन्धित माना है, जो कि बगाल के समीपवर्ती है।

2 आलेपन (विधुमालेपनपाण्डुरम– नै 2/26, क्वचित्तदालेपनदानपण्डिता, नै 15/12) नारायण एव ईशानदेव की व्युत्पत्ति के अनुसार पिसे चावल एव हल्दी का मिश्रण जो कि दीवारो एव फर्श पर चित्रकारी के काम आता था, और जो बगाली आल्पना से साम्य रखता है।

3 उदयभास्कर (वासितैरुदयभास्करेण 18/103) जो कि कपूर का एक प्रकार था, एव चाण्डूपण्डित के अनुसार गौडदेश मे पाया जाता था।

4 ललड्डिम्ब (रौप्य लसड्डिम्बमिवेन्दुबिम्बम् नै 22/51) या लसड्डिम्ब शब्द, आधुनिक बगाली शब्द लाटिम (Latima) से सम्बन्धित है, परन्तु इसका युद्ध अर्थ लट्टू (Top) या चकई भवरा (बच्चो का खिलौना) है। नारायण ने इसकी टिप्पणी करते हुए कहा हे कि ''डिम्ब ललडिम्बमिति वा गौडदेशभाषाया भ्रमरकस्य सज्ञा'' महाराष्ट्र भाषाया कान्यकुब्जभाषाया च 'भवरा' इति सज्ञा। –ईशानदेव का कथन है'' गौडदेशे भ्रमरकस्य लाडिम्ब इति नाम। आसाम मे लाटिम को 'लाटुम' कहते है। वृहत्कथामजरी मे 9/2/55 लड्डमरु एव 9/1648 मे लड्डमरुक- लड्डमरु शब्द आया है

---

1 अस्तिगौडीये कौशाम्बी नगरी - हितोपदेश 1/5।

2 J B O R S भाग 19- पृष्ठ- 233

3 J B O R S भाग 19- पृष्ठ- 233

4 प्रो० के० के० हाडिकी ने अपनी ठीका नैषध में 551-647 में निम्न शब्दो की व्याख्या की है।

जो कि ललड्डमरु का अपभ्रश है, पिशाचशाकिनी युक्त लड्डमरुमण्डलम्-डमरु कापालिको द्वारा प्रयोग किया जाने वाले (दुन्दुभी, नगाडा) ढोल का एक प्रकार है।

5 अन्नमीन (साधितमन्नमीनरसादि नै 14/78) शब्द, बगालियो के माच्छभात (Machbhat) जो कि चावल एव मछली का सम्मिश्रण होता है। यह बगाली भोजन है। श्रीहर्ष ने नलदमयन्ती विवाहोपरान्त हुए भोजन वर्णन मे बगाली भोज्य का वर्णन किया है, अत वह बगाली है।

6 घुघु (सर्व किम्मृत्य दैवात्स्मृतिमुषसि गता घोषयन्यो घुसज्ञा नै 19/61) बगाली शब्द है, जिसे श्रीहर्ष ने नैषध में कवितात्मक सौन्दर्य हेतु प्रयुक्त किया है जबकि पाणिनी ने इसे 'घुसज्ञा' के रूप मे व्याकरण मे प्रयुक्त किया है।

प्रो० नीलकमल भट्टाचार्य बगाली भाषा के लक्षण या विशेषताएँ बताते हुए कहते है कि श्रीहर्ष ने भी नैषध मे बगाली भाषा की विशेषताओ को अपनाया है बगालीभाषी सकारोच्चारण मे श, ष, स मे अन्तर नहीं कर पाते, साथ ही वह ण, व, य को न, ब, ज एव ष को क्ष, ख को रव्य एव विसर्ग का सक्षेप मे स्पष्ट उच्चारण करते है। ये विशेषताएँ बगाली भाषा को अन्य भाषाओ से अलग ही रखतीं है। यह विशेषताएँ यमक अलकार के अतिरिक्त कहीं भी नहीं दिखायी देगीं, चूकि श्रीहर्ष ने इस भाषा की विशेषताओ को अपनाया है, अत· वह बगाली है। उन्होने अनुप्रास की श्रेष्ठता वाले खण्डनखण्डखाद्य के दो श्लोको का उदाहरण भी दिया।[1] उन्होने बगाली भाषा की विशेषाओ एव यमकालकीरयुक्त निम्नलिखित नैषध के उद्धरण दिये–

1 श ष स– अमी ततस्तस्य विभूषित सित (1/57), अयोगभाजोऽपि नृपस्यपश्यता (1/100), सखा सखाय सवदश्रवो मम (1/136), कटु कीटान्दशत सन स्यांचेत् (2/4), अज्ञासिषु स्त्रीशिशुबालिशास्त (10/32), बालामभावत सभासतनप्रगल्भ (11/15), अश्वैरस्वैरवेगै (12/100), नास्नाति स्नाति हा मोहात् (17/41), ज्ञानस्पर्शान्तरा मौनमानशे मानसेविनी (20/13) विस्राणि विज्ञाणितवान् पितृम्य (22/50)।

2 ज, य – मनस्तु य नोज्झतु जातु यातु (3/59), उपयेमाधुर्यमधैर्यसर्जि (6/93), मनुष्यजन्मन्यपि यन्मनो जने (9/34), यातु ततो जातु न यातुधान (10/11), तरूपत्रजन्मायन्मारूत· (11/39) जागर्ति यागेश्वर (12/38), यज्ञयूपधना यज्ञौ (22/172)।

3 ण, न – पुण्येनमन्ये पुनरन्यजन्म (8/33), स्फरद्भिरानन्दमहार्णवैर्नवै (12/2), अमूनिमन्येडमरनिर्झरिण्या (22/21)।

4 ब, व– कुल सुधाशोर्वहल वहन्बहु (1/110), स्मरहर किममु बुभुजे विभु (4/60) बुबुधिरे बिबुधेन्द्रा (5/60), त्रिविबुर्धी बुबुधे न (5/22), स विलोक्य बालाम् (6/13), सविभ्रति श्रोत्रिय विभ्रय यत् (7/100), क्षये जगज्जीव पिब शिव बदन् (9/124)।

5 क्ष– नलस्य च स्वयस्य च सख्यमीक्षते (1/38), अभिख्याभिक्षाधुना (7/104), तव सौख्यलक्ष्य (6/108), आचख्यौ चाक्षिपन्नमुम् (17/92), सख्यौ सक्षौमभावेऽपि (20/129)।

---

1 (A)तदद्वैतश्रुतेस्तावद् वाध प्रत्यक्षत क्षत नानुमादि त कर्तु तबापि क्षमते मते ।
अद्वैतागमनासीरे साधु सा धुन्वती परान् सेवा मेवार्जयत्यर्थापत्ति परम्परा ।।-खण्डनखण्डखाद्य -1/20, 21

(B) समस्तलोकशास्त्रैकमत्यमाश्रित्य नृत्यतो। का तदस्तु गतिस्तत्तद्वस्तुधीव्यवहारयो।। खण्ड नखण्डखाद्य 1/38

6 विसर्ग– आगत्यभूत सकलो भवत्या भवप्रतीत्या गुणलोभवत्या (3/115), त सवदत्यङ्क मृगस्यनाभिकस्तूरिकासौरभवासनाभि (22/86)।

7 मिश्रित उदाहरण– स राशिरासीन्महसा महोज्जवल (1/1) असवरे शम्बरवैरिविक्रमे (1/53), अबाह्यमिज्यते (2/78), आसन्ननायककविषण्णमुखानुमेय (11/12), पकजसख्यशिक्षा (11/102), सृणीपदसुचिह्ना श्री (20/58), अकरिथतसज्जशय्यम् (22/2)। साथ ही श्रीहर्ष ने नैषध मे अनुप्रासादि युक्त कुछ ऐसे वर्णन किया है यथा -''धार्यं कथङ्कारमह भवत्या, वियद्विहारी-वसुधैकगत्या (3/15), अशक्यशकाव्यभिचारहेतुर्वाणी न वेदा य'दे सन्तु के तु (3/78), अपा हि तृप्ताय न वारिधारा स्वादु सुगन्धि· स्वदते तुषारा (3/93), त कापि मेने स्मरमेव कन्या भेजे मनोभूवशभूयमन्या (8/6) जाता न वित्ते न गुणे न काम सौन्दर्य एव प्रवण स वाम (10/13), मध्येसभ सावततार बाला गन्धर्वविद्याधरकण्ठनाला।

त्रयीमयीभूतवलीविभगा साहित्यनिर्वर्तितदृक्तरगा (10/74) इनमे बगाली लय की मधुरिमा का श्रीहर्ष ने पालन किया है ऐसा वर्णन करना कवि का देशीय सस्कृति के प्रति उन्माद ही कहा जा सकता है। कुछ ऐसे ही वर्णनो के अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य है–

वचसामपि गोचरो न य स तमानन्दमविन्दत द्विज । 2/1
आस्थितावितथतागुणपाशस्त्वादृशा, स विदुषा दुरपास ।। 5/130
तस्मिन् विषज्यार्धपथात्तपात तदगरागच्छुरित निरीक्ष्य ।
विस्मेरतामापुरविस्मरन्त्य क्षिप्त मिथ कन्दुकमिन्दुमुख्य ।। 6/42
छायासु रूप भुवि वीक्ष्य तस्य फल दृशोरानशिरे महिष्य । 6/43
चन्द्राधिकैतन्मुखचन्द्रिकाणा दरायत तत्किरणाद् घनानाम ।। 7/44
यस्य कीर्तिरवदायति स्म सा कार्तिकीतिथिनिशीथिनीस्वसा । 18/22
कार्तवीर्यभिदुरेण दशास्ये रेणुकेय भवता सुखनाश्ये ।। 21/68

प्रो० नीलकमलजी के सभी उदाहरण देना इसलिए आवश्यक समझा गया, जिससे विद्वानो को उनके दिये गये साक्ष्यो को देखने एव परखने हेतु अन्यत्र न जाना पडे। इन सभी आधारो पर नीलकमलजी ने श्रीहर्ष को बगालवासी मानने की अपनी अभीप्सा उपस्थित की। उनके उपर्युक्त सभी तर्को को डॉ० सुनील कुमार डे एव डॉ० बुहलर ने खण्डन किया है। डॉ० बुहलर ने कहा कि श्री नीलकमल जी ने जो बगाली भाषा की विशेषताऍ बतायी है उनके लक्षण तो कश्मीरी भाषा से भी मिलते है, अत इस आधार पर श्रीहर्ष को कश्मीर एवं बगाल दोनो देश का निवासी मानना पडेगा, जो कि सत्य से परे होगा। डॉ० बुहलर का कथन था "The group `Ksa' becomes invariably `Khya', e g , Ksamyatam, K(h)yemyatam S is never used, its usual substitute is sometimes interchan ged with `S' Visarga is sounded very soft, so as to be almost inaudible"[1] डॉ० एस0के0 डे का कहना है कि "The indiscriminate use in alliteration and chiming of the three sibilants, the two nasal, `b' and `n', `y' and `j' as sounds of equivalent value is not definitely conclusive, as it is sanctioned by rhetaricians"[2] यद्यपि श्री नीलजी की यह बात सत्य है कि श,ष,स,ण,न,व,ब,य,ज,ष,क्ष,ख

1 Report, P 26, Nos-11-13
2 New, I A II, P 266 N-6, सरस्वती भवन स्टडीज Vol 3, P 185-88

के बगालियो के द्वारा किये जाने वाले उच्चारण मे इन अच्छरो मे कोई अन्तर नहीं माना जाता, परन्तु इस आधार पर श्रीहर्ष को बगाली भी सिद्ध नहीं किया जा सकता, क्योकि श्रीहर्ष महान् काव्यसाहित्यकार थे, एव उन्होने यहॉ भी काव्य-शास्त्रीय मर्यादा का ही पालन किया है। परन्तु यहॉ यह अभिकथन अनिवार्य हो जाता है कि दृष्टि ही सृष्टि की रचना करती है, श्री नीलकमलजी (पूर्वाग्रही) की दृष्टि ने पहले ही श्रीहर्ष को बगाली मान लिया, तो अब उनकी कृति मे किये गये सारे वर्णन एव रीतियो का वर्णन करने मे श्रीहर्ष उन्हे बगाली ही नजर आये, एक काव्यमर्मज्ञ वाद मे। ध्यातव्य है कि काव्यशास्त्रीय परम्परा मे अलकारमर्मज्ञो ने अनुप्रास, यमक आदि के सदर्भ मे इन वर्णों को एक ही मान लेने की छूट रखी होगी, तभी कवियो मे इसका भरपूर उपयोग भी किया है।[1]

प्रो० नीलजी का यह कथन कि फाल (चोटी बालो की दो चोटी करना केवल बगाली औरतो की ही परम्परा है, अक्षरश असत्य है कि क्योकि दो चोटी करने की परम्परा उत्तर प्रदेश म०प्र०, कश्मीर आदि प्रान्तो मे भी प्रचलित है, आलेपन (चित्रकारी) केवल बगाली मे ही नहीं, अपितु महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश एव उत्तर प्रदेश के लोगो द्वारा भी भाद्रपद, एव क्वार मास मे की जाती है। उदयभास्कर, जो कर्पूर का एक प्रकार माना जाता है एव जिसे नारायण ने गौडदेश का बताया, इसका भी कोई प्रमाण नहीं है कि वह बगाल का ही था, साथ ही उदयभास्कर सदृश "ब्रास" भी पान मे डाला जाता है जो उत्तर प्रदेश, म०प्र० एव महाराष्ट्र मे आज भी प्रचलन मे है। लल्लडिम्ब या बच्चो के खेलने का लट्टू केवल बगाल म ही नहीं आज सम्पूर्ण उत्तरी भारत मे बच्चो के खेलने के खिलौने के रूप मे देखा जा सकता है। रही अन्नमीन (माछभात) की बात, तो यह बात तो सार्वजनीन है कि क्षत्रियो की बरात मे मत्स्य मास का प्रचलन प्राचीन काल से था आज भी है फिर वह तो निषधदेश के सम्राट की बरात थी, उसमे भोज्य सामग्री के अनेकानेक व्यञ्जनो का होना, कोई चमत्कार नहीं है। जिस घुघु सज्ञा की बात श्रीनीलजी कहते है, क्या एक विद्वान् व्याकरण से परिचित नहीं होगा, स्मरणीय है कि 'घु' बगाल की नहीं, अपितु पाणिनि महोदय की देन है। अत इन कथनो के आधार पर भी श्रीनीलकमलजी श्री हर्ष को बगाली सिद्ध करने मे सर्वथा असमर्थ ही सिद्ध प्रतीत होते है परन्तु उन्हे इस बात का श्रेय तो अवश्य ही दिया जाना चाहिए कि उन्होने नैषधीयचरित जैसे रमणीय ग्रथ का सागोपाग अध्ययन किया है।

प्रो० नील भट्टाचार्य जी ने श्री हर्ष को बगालवासी मानने मे अगला प्रमाण 'शङ्खवलय' को माना है शङ्खवलय का विवरण नैषध मे दो स्थलो पर द्रष्टव्य है प्रथम काञ्ची अधिपति के सदर्भ मे, दूसरा स्वयवर स्थल मे।[2] स्वयवर मे आभूषणो से सुसज्जित, रतिसौन्दर्य-दामिनी दमयन्ती की बाहुलताऍ मगलकारी शङ्खवलयो से अलकृत थीं, शङ्खवलयो से अलकृत बाहुओ को देखकर ऐसा लग रहा था, मानो उन

---

1 यमकादौ भवेदैक्य डलोर्बबोर्तरोस्तथा (साहित्य दर्पण, दशम परिच्छेद यमक प्रकरण) पृ० 280 विमला टीका सस्करण - 1977
– यथा कालिदास भुजलता जडतामवलाजन ॥
शष (सष) योर्नणयोश्चान्ते सविसर्गाविसर्गयो सबिन्दुका बिन्दुकयो स्याद्भेद प्रकल्पनम्॥ –इतिशेष
– रलयोर्डलयोश्चैव ब्रवयो शसयोर्नभित् । नानुस्वारविसर्गो च बित्रमङ्गाय सम्मतौ ॥
अलङ्कार-शेखर केशव मिश्र पञ्चमदशमरीति।

2 अद समित्सम्मुखवीर यौवत त्रुटद्भुजाकम्बुमृणालहारिणी ।
द्विषद्गणस्त्रौणदृगम्बुनिर्झरे यशोमरालाबलिरस्य खेलति ॥ नै० 12/35
उपारयमानामिव शिक्षितु हतो - मृदुत्वमप्रोढमृणालमालया ।
पिरेजतुर्माङ्गलिकेन रङ्तौ भुजौ सुदत्या वलयेन कम्बुन ॥ नै० 15/45

बाहुओ से कोमलता सीखने के लिए बालमृणालदण्ड उनकी सुश्रूषा कर रहे हो। नारायण रा। आचार्य 'काव्यतीर्थ' शङ्खवलय

शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहते है कि "गौडदेशे विवाहकाले शङ्खवलयधारणमाचार"[1] उनकी इस व्याख्या के आधार पर श्रीनीलकमलभट्टाचार्य ने यह मत प्रतिपादित किया कि चूँकि श्रीहर्ष ने नैषधीयचरित मे शङ्खवलय शब्द का प्रयोग किया है, जाहिर है कि वह बगाली रीतियो से परिचित रहे होगे, तभी उन्होने ऐसा वर्णन किया, अतएव श्रीहर्ष बगालवासी है। परन्तु श्री भट्टाचार्य जी यह तथ्य तो विस्मृत कर ही गये कि गौड ब्राह्मणो का निवास स्थान कान्यकुब्जेश्वर के सीमान्तर्गत था, इस हेतु उनका आवास भी तो गौडदेश कहलायेगा। दूसरे यह कि अगर नैषधीयचरित के पूर्व किसी ग्रथ मे शङ्खवलय शब्द का वर्णन न मिलता, तब भी हम मान सकते थे, कि चलो यह शब्द बगाल की परम्परा का प्रसूता होगा, परन्तु मध्यकाल (12वीं शताब्दी) के पूर्व के पहले के ग्रथो मे भी चूकि शङ्खवलय शब्द के प्रयोग की बहुतायतता मिलती है, अत स्पष्ट है कि इस आधार पर श्रीहर्ष को बगालवासी सिद्ध नहीं किया जा सकता। नैषध के पूर्ववर्ती ग्रथ महाभारत के विराटपर्व मे अर्जुन का वृहन्नला रूप रूपार्जित करने मे[2] एव बाणभट्ट कृत कादम्बरी के जाबालि आश्रमवर्णन के सन्दर्भ[3] मे एव अश्वघोषकृत बुद्धचरित[4] मे भी 'शङ्खवलय' शब्द का विवरण मिलता है। अगर ग्रथो मे वर्णित तथ्यो के आधार पर यदि रचयिता को उस देश का वासी माना जाय, जैसा कि श्री नीलजी मानते है, तब तो महाभारतकार व्यास, कादम्बरी प्रणेता बाणभट्ट, एव बुद्धचरित रचयिता अश्वघोष को भी उनके मतानुसार बगाल का ही मानना होगा जो कि तत्वत असमीचीन ही मान्य होगा, अत इस आधार पर भी श्रीभट्टाचार्य द्वारा श्रीहर्ष को बगालवासी मानना उचित नहीं जान पडता।

प्रो० इमेन्यू (Emeneau) भी उपर्युक्त कथन का खण्डन करते हुए कहते है कि शङ्खवलय की प्रथा बगाल की न होकर अपितु सम्पूर्ण भारत की थी।[5] उनके मत के निराकरण का प्रयास भी एस0एन0 मुकर्जी ने "Conch Carving in Bengal"[6] नामक लेख मे किया है, परन्तु उनका मत उचित तर्क देने मे सर्वथा अक्षम रहा, वे यह भूल गये कि उत्तर भारत हमेशा से परिधान निर्माण का केन्द्र रहा है, काशी की बाजार आज की नहीं प्राचीनकाल से प्रसिद्धि को प्राप्त किये हुए है, एव चूडियो का गढ फिरोजाबाद (दिल्ली के पास स्थिति जनपद) आज विश्व मे चूडी (Conch bengles) के लिए विख्यात है।

प्रो० नीलकमल भट्टाचार्य एक अन्य रीति, विवाह के समय वर वधू का हाथ कुशो से बाधने का वर्णन[7] के आधार पर एव उसमे नारायण की व्याख्या कि "कुशै पाणिबन्धन देशाचार"[8] के आधार पर

---

1 नारायणी टीका-सस्करण, 1986 पृ० 618

2 वलयैच्छादयिष्यामि बाहू किणकृताविमौ। कर्णयो प्रतिमुच्याह कुण्डले ज्वलनप्रभे ॥
पिनद्धकम्बु पाणिभ्या तृतीया प्रकृति गत ।
वेणीकृत-शिरा राजन् नाम्ना चैव बृहन्नला ॥ महाभारत, विराटपर्व अध्याय 2, श्लोक 26, 27 एव 11/1

3 इभकलमार्धोपभुक्तपतितै सरस्वतीभुजलताविगलितै शङ्खवलयैरिव मृणालशकलै कल्माषितम् ----- आश्रममपश्यम्। कादम्बरी सौरभम्-जाबालिआश्रमवर्णने

4 अश्वघोष-बुद्धचरित 12/10

5 Prof Emeneau also opines that the Custom of wearing conch-bengles, was a custom wide-spread in India, if not Pan-Indic — New I A II, P 99

6 S N Mukharjee "Conch Carving in Bengal" The Illustrated weekly of India June 22, 1952, P-35

7 वरस्य पाणि परघातकौतुकी वधूकर पकजकान्तितस्कर ।
सुराज्ञि तौ तत्र विदर्भमण्डले ततो निबद्धौ किमु कर्कशै कुशै ॥ नै० 16/14

8 नैषध - नारायणी टीका सस्करण - 1968, पृ० 641

श्रीहर्ष को बगालवासी सिद्ध करने का प्रयास किया है। परन्तु नारायण ने यह तो नहीं कहा कि "कुशै पाणिबन्धन गौड देशाचार," अत किस आधार पर भट्टाचार्य महोदय इसे बगाल की रीति मानते है? बगाल की विवाह की रीतियो के बारे मे शोधकर्ता द्वारा बगाली जनो से पूछने पर मालुम हुआ कि समस्त बगाल मे तीन प्रकार की वर्ग रीतियॉ प्रचलित थीं। और आज भी प्रचलित है वे है राडी, वारेन्द्री एव गौडी। एव तीनो एक दूसरे मे विवाह नहीं करते, फिर जहॉ विदर्भ मण्डल मे नल एव दमयती के विवाह का वर्णन हो रहा हो, तो यह स्वय ही स्पष्ट हो जाता है कि श्रीहर्ष ने जो 'विदर्भमण्डले' शब्द प्रयोग किया, तो यह प्रथा विदर्भ के शिवाय और कहॉ की हो सकती है? हॉ यदि गौड देश विदर्भ के समीप मे होता तो, हम यह मान भी लेते कि चलो गौड पडोस मे था, अत उसकी परम्परा ही विदर्भ मे भी प्रचलित होगी, परन्तु कहावत भी है कि "कोस-कोस मे बदले पानी चार कोस मे बानी" और यह तथ्य तो सर्वविदित ही है, भारत के पश्चिमी छोर मे विदर्भ राज्य था एव पूर्वी छोर मे गौड तो एक प्रान्त के व्यक्ति दूसरे प्रान्त के व्यक्ति शायद ही परिचित रहे हो, तथा उनकी रीतियो से परिचित होने की तो दूर की बात है या कल्पना मात्र हो सकती है। रीतियॉ भी तीन प्रकार की होती है – लोकरीति, [illegible] रीति एव कुलरीति, अब किस रीति का पालन श्रीहर्ष ने दमयती विवाह विर्णन मे किया है, यह तो स्पष्ट नहीं है परन्तु विवाह तो विदर्भराज्य मे हो रहा था, तो सभव है श्री हर्ष लोकरीति (विदर्भरीति), एव कुल रीति (भीमकुल रीति या नलकुल रीति) का वर्णन किये होंगे। अतएव श्रीनीलजी का इस आधार पर भी श्रीहर्ष को बगाली एव बगालवासी मानना असगत ही कहा जा सकता हे, क्योकि कवि किसी बन्धन से ग्रस्त होकर काव्य रचना नहीं करता, वह तो उन्मुक्त वातावरण मे गाता चलता है, एव जहॉ की वैविध्यता उसे आकर्षित करती है, उसे ही वह अपने काव्य मे समेट लेता है स्पष्ट है कि तत्कालीन समय मे श्रीहर्ष द्वारा वर्णित तथ्य विदर्भ या निषध देश के सिवाय और कहॉ का हो सकता है?

प्रो० नीलभट्टाचार्य ने नैषध मे वर्णित अन्य रीतियो यथा वर का मुकुट पहनना (नै० 15/60, 70), कौतुकागार (कोहवर) (16/46), बारात मे सामिष एव निरामिष भोज्य सामग्री वर्णन (नै० 14/78 16/76, 81, 82, 87), आलेपनवस्तु वर्णन (नै० 2/77, 90) एव पति पत्नी रागालाप वर्णन (20/55, 56, 57 आदि) मे बगाली परम्परा देखी, जो कि सरासर गलत है, ये सब प्रथाऍ प्राचीन ग्रथो मे उत्तरी भारत के सभी प्रान्तो, दक्षिण मे महाराष्ट्र, म०प्र० सर्वत्र प्रचलित थीं एव आज भी प्रचलित है, इसलिये इस आधार पर श्री हर्ष को बगाली एव बगालवासी सिद्ध नहीं किया जा सकता है। अत श्री भट्टाचार्य का यह प्रयास भी असगत जान पडता है क्योंकि ये दोनों राज्य पडोसी थे।

प्रो० नीलकमल भट्टाचार्य ने श्रीहर्ष को बगाली एव बगालवासी सिद्ध करने मे अपना अतिम तर्क नैषध मे वर्णित (रारारवत मत्र) चिन्तामणि[1] मत्र का देते है। वह कहते है कि बगाल ही प्रारम्भ से तत्र मत्र का देश रहा है। श्रीहर्ष मत्र के द्वारा ज्ञान प्राप्ति की बात करते है, अतएव वह बगाली पद्धति का प्रयोग करने के कारण बगाली ही सिद्ध होते है। परन्तु यहॉ यह तो माना जा सकता है कि तत्रमत्रवाद की उत्पत्ति बगाल मे हुई, परन्तु इससे यह नहीं ध्वनित होता कि उसका प्रयोग बगाल मे ही, सीमित था, तत्कालीन (मध्यकाल) समय से लेकर आज तक, आसाम, गुजरात, राजस्थान एव उत्तरी भारत के कुछ स्थानो मे यह प्रथा प्रचलित है। फिर यदि इस मत्र का सूक्ष्म विवेचन किया जाय, तो यही सिद्ध होता है कि इसमें भगवान शकर के अर्द्धनारीश्वर रूप का चित्रण है, एव भगवान शिव की स्थली आर्यावर्त मे काशी एव

---

1 अवामावामार्धे सकलामुभयाकार घटना– द्विधाभूत रूप भगवदभिधेय भवति यत् ।
तदन्तर्मन्त्र मे स्मरहरमय सेन्दुममल निराकार शश्वज्जप नरपते! सिध्यतु सते ।। नै० 14/88 एव चिन्तामणि मत्र माहात्म्य वर्णन 14/89,90

उज्जैन (निषददेश के समीप) मे ही मानी गयी है, अत भट्टाचार्य का यह मत उचित प्रतीत नहीं होता। सभव है श्री हर्ष ने राजा नल को उज्जैन मे महाकालेश्वर या इन्द्र द्वारा वरदान मे दिये गये काशी[1] के पास रहने का वर्णन तथा नल को काशी स्थित विश्वनाथ (शकरजी) की अर्चना करने के लिए श्रीहर्ष ने ऐसा विवरण दिया हो। सौदामिनी मेहता एव डॉ सन्देश्वर ने भट्टाचार्य के मत का प्रतिवाद करते हुए कहा कि मध्यकाल मे तत्र-मत्र की प्रथा सारे भारत मे व्याप्त थी, केवल बगाल मे ही नहीं।[2]

प्रो० नीलकमल भट्टाचार्य के बाद श्रीहर्ष को बगालवासी मानने वाले श्रीनलिनी नाथदासगुप्त है। वह भी भट्टाचार्य के मत के समर्थन करते हुए कहते है कि श्रीहर्ष बगाल के ही थे, उन्हे 'मिश्र' सज्ञा से विद्यारण्य और वरद पडित ने विभूषित किया। उन्होने श्रीहर्ष को बगाल के राजा विजयसेन की सभा का विद्वान् बताया, इसके निर्धारण मे उन्होने श्रीहर्ष की दो कृतियो गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति एव विजयप्रशस्ति को आधार बनाया। श्रीनलिनीनाथदासगुप्त ने नैषध की हर्ष हृदय के टीकाकार गोपीनाथ आचार्य के मतानुसार 'मिश्र' को मित्र एव विजयप्रशस्ति को विजयसेन की प्रशस्ति बताया, जबकि विजय प्रशस्ति को विजयसेन की प्रशस्ति भावदेव ने मानी थी।[3] भावदेव ने कहा "विजय प्रशस्ति विजयसेनन्नाम्नो गौडेश्वरस्य प्रशस्ति।" नैषध मे वर्णित नल के उपमानो यथा-वीरसेनकुलदीपचन्द्रवशवसते (५/124), को विजयसेन के उपमान माना। दमयती विवाह मे गौडेन्द्र राजा (16/96-100) का वर्णन भी मिलता है, इसलिए श्रीहर्ष ने जरूर गौडदेशप्रेमी होने का फर्ज निभाया होगा, अत श्रीहर्ष बगाली थे। ध्यातव्य है कि श्री गुप्त ने यह माना कि गौड नरेश विजयसेन का काल 1158 ई० मे समाप्त हो जाता है, जबकि स्मरणीय है कि जयन्तचन्द्र का राज्यकाल उसके बाद 1170 ई० से प्रारम्भ होता है, अत गुप्त जी का तर्क उचित नहीं जान पडता। हॉ एक बात मे साम्यता अवश्य परिलक्षित होती है, और वह यह है कि श्री गुप्त जी का कथन राजशेखर सूरि के प्रबन्धकोश एव विद्यापति की मेधाविकथा दोनो से सगत जान पडता है कि श्री हर्ष विजयसेन की मृत्यु के बाद श्रीहर्ष गौडदेश से कान्यकुब्जेश्वर के पास (काशी) आये। परन्तु कवि के पिता श्रीहीर तथा उनका जयचन्द्र से समकालीन होना इन दो बातो मे अन्तर दिखायी पडता है, स्मरणीय है कि श्रीहीर की मृत्यु गोविन्दचन्द्र के समय मे ही एव श्रीहर्ष के शिशुकाल मे ही हो गयी थी, अत यह तर्क पिष्टपेषण मात्र ही होगा। दूसरा नैषध मे स्वयवर प्रसग मे अन्य कई राजाओ का वर्णन श्री हर्ष ने किया है, कीकटनरेश का विवरण तो गौड नरेश से वृहद् रूप मे है, तो फिर दासगुप्त महोदय को श्रीहर्ष को कीकटदेश का निवासी ही मानना चाहिए, दूसरा गौड नरेश के वर्णन मे श्री हर्ष ने वर्णित किया है "श्याम सुमेरुशिखयेव नव पयोद ", इसके अनुसार तो गौडनरेश श्याम वर्ण वाले थे, एव काव्यशास्त्रियो ने भी पूर्व देश के लोगो को श्याम वर्ण का ही माना।[4] जबकि गुप्त जी यह तर्क देते है कि श्रीहर्ष ने (अपने देश के राजा) गौडेन्द्र के जीवन से नल के जीवन में अधिक साम्य होने के कारण नलचरित्र का दु खद अश चित्रित ही नहीं कि (जैसा कि महाभारत मे नल कथा के उत्तरार्द्ध मे मिलता है) ध्यातव्य है कि जहॉ गौडेन्द्र कृष्णवर्ण थे, वहॉ

---

1 तवोपवाराणसि नामचिन्ह वासाय पारेसि पुर पुरास्ति ।
निर्वातुमिच्छोरपि तत्र भैमीसम्भोगसङ्कोचभियाधिकाशि ॥ नै० 14/75

2 However the instances of the realisation of the Sarasvata Manta are recorded in case of Gujarati poets like Amarcanadra and Balacandra (13th Century) by Dr Sandesara, in the "Literary circle of Mahamatya Vastupala" paras 105 and 124 respectively Thus this practice seems to be spread in different parts of India, and not in Bengal alone, during the medieval period —Saudamini Mehta—Bangalamam Sanagara-Sanskriti-Nov 1951, P 182

3 Gopiantha or Bhavadava—A N Jani-J I O I, Vol -II, No -4, June 53, P 370-73
जबकि डॉ० चण्डिकाप्रसाद ने भी नैषधपरिशीलन पृ० 16 मे गोपीनाथ का ही मत बताया, जो कि गलत है।

4 तत्र पौरस्त्याना श्यामोवर्ण – (काव्यमीमासा, अध्याय 17, पृ० 290)

नल गौर वर्ण, तो यहीं गुप्त जी का कथन (नल एव गौडेन्द्र मे साम्यता बताना) तर्क सगत नहीं ठहरता। दूसरा गुप्त जी ने नैषध से राजाओ के विवरण विशालता की बात की, तो उनके इस तर्क मे भी दम नहीं है, क्योकि श्रीहर्ष के राजादि वर्णन प्रसग को ध्यान से देखा जाय एव पढा जाय, तो उन्होने कीकटनरेश का सबसे अधिक श्लोको मे वर्णन नैषधीयचरित मे किया है, तब तो इस आधार पर गुप्त जी को श्रीहर्ष को कीकटदेशवासी ही मानना पडेगा। स्पष्ट है कि गुप्त जी के ये दोनो कथन केवल उनकी भ्रान्तिमानसिकता के ही द्योतक है। रही नैषध मे नल के उत्तरार्द्ध विवरण न देने की बात, तो कवि को जितना अभीष्ठ होता है, उतनी ही विषय सामग्री को वह लेता है, फिर भारतीय काव्यशास्त्र मे सुखान्त ग्रथ लेखन की परम्परा रही है, एव श्रीहर्ष ने इसी परम्परा का पालन कर अपने काव्य को श्रृङ्गारामृतशीतगु कहकर अपनी काव्यशास्त्रज्ञता का भी परिज्ञान कराया है।

अन्त मे श्रीहर्ष को बगाली मानने वाले श्रीविद्यापति एव श्री अरूणोदयनटवरलालजानी का नाम आता है। महामहोपध्याय राखालदास न्यायरत्न ने भी "नैषध के व क्ता सस्मार न स्मरमना प्रियदूतभूत तत्रामरालयमरालकेशी" के माध्यम से कहा कि श्रीहर्ष बगाली थे।[1] परन्तु उनका यह कथन भट्टाचार्य महोदय का अनुकरण मान है। श्रीविद्यापति के मत का पूर्व मे ही निराकरण किया जा चुका है। श्रीजानी के विचारो को अध्ययन करने के उपरान्त यह प्रतीत होता है कि उन्होने श्री श्रीभट्टाचार्यद्वय, विद्यापति एव श्रीनलिनीनाथ दास गुप्त के मत का अनुसरण करते हुए श्रीहर्ष को बगाली माना है।[2] श्री जानी ने नैषधीयचरित मे उपलब्ध कुछ परम्पराओ को बगाल देश की ही माना, उन्होने भी तर्क रखा कि चूँकि श्रीहर्ष ने ऐसे वर्णनो का चमत्कार अपने काव्य मे किया है, जिनमे बगाली परम्परा, रीति-रिवाजो का ही ज्यादा साम्य परिलक्षित होता है, अत श्रीहर्ष निश्चित ही बगाली एव बगालवासी रहे होगे। श्रीजानी जी ने भट्टाचार्यद्वय के तर्कों को मानने के साथ-साथ निम्न तर्क और दिये–

1 दमयती के विवाह वर्णन के प्रसग मे, श्रीहर्ष ने यह उल्लेख किया है कि दमयती द्वारा लगाया गया 'अजन' कानो तक विस्तृत था।[3] चूँकि इस प्रकार की विधि से अजन लगाना बगाली स्त्रियो द्वारा ही किया जाता है, जैसा कि नारायण ने भी इस प्रथा को पूर्व देश का माना है प्राच्यो हि सुन्दर्यो विलोचने नेत्रप्रान्तनिर्गतया– कर्णोपान्तस्पर्शिन्याञ्जनरेखया भूषयन्ति।[4] पूर्व देश मे बगाल है ही, अत श्री हर्ष बगाल निवासी थे।

2 स्वयवर सभा मे कवि ने दमयन्ती की तुलना 'पान्थदुर्गा'[5] से दी। नारायण ने अपनी टीका मे लिखा है "उत्सवादौ मञ्चके दुर्गामारोप्य राजवीथिषु भ्राम्यते, तथैनामपि चलदुर्गां चकारेत्यर्थ

---

1 Eassy in sanskrit Bhavan series Banars - III - 150, there he argues that Sriharsa was Bengali - H C S.L - कृष्णमाचार्यर, पृ० 180

2 However, looking to the conflicting nature of the evidence, it will be better to conclude that Sriharsa, was a bengali by blood and his father being patronized by the king of Kanauj, was liking at his Court The same honour was extended to Sriharsa as well His works, which have not come down to us, will help us, when found out, in arriving at a final decision, till then Bengal may be accepted provisionally as Sriharsa's home — Naisadhiyacaritam-A N Jani, P-109

3. अपागमालिंग्य तदीयमुच्चकैरदीपि रेखा जनिताञ्जनेन या ।
अपाति सूत्र तदिव द्वितीयया वय श्रिया वर्धयितु विलोचने ।। नै० 15/34

4 नारायणी टीका, सस्करण- 1986, पृ० 615

5 हसत्सु भैमी दिविषत्सु पाणौ पाणि प्रणीयाप्सरसा रसात्सा ।
आलिंग्य नीत्वाकृत पान्थदुर्गां भूपालादिक्पालकुलाध्वमध्यम् ।। नै० 14/37

इति वा"।[1] "पान्थदुर्गा" को विजयादशमी के अवसर पर इस महान दुर्गापूजा त्योहार रूप मे बगाल एव आसाम की प्रथा जानी एव प्रो० कृष्णकात हाडिकी ने बताया है।[2]

3 नेषधकार ने केलो के पेडो एव पत्तो से वधू दमयती (भीममहल) के द्वार को सजाने का वर्णन किया है।[3] उसे प्रो० हाडिकी ने आसाम के आस-पास के कुछ क्षेत्रो मे प्रचलित परम्परा कहा है।[4] अत श्रीहर्ष आसाम देश के पडोसी देश बगाल के ही रहे होगे।

4 श्रीहर्ष के द्वारा वर्णित नाई के कृत्य कि ''एक क्रुद्ध नाई की भाति दिन ने सूर्य की तीक्ष्ण किरण रूपी तेज छुरे से रजनी रूपी अपनी भार्या की वेणी रूपी अन्धकार को काटकर उसे घर से निकाल दिया", इसमे एक विधवा के मुण्डन का ही वर्णन है, एव बगाल ही ऐसा देश है, जहॉ विधवाओ के शिर मुडवा दिये जाते है, अत यहॉ भी हर्ष ने बगाली रीति को अपनाया है, अत श्रीहर्ष बगाली थे। क्योकि बगाली बच्चो का साथ आठ वर्ष की उम्र तक ही दो या तीन बार मुण्डन होता है, इसके बाद लडकियॉ अपने बाल धारण किये रहती है, मुण्डन नहीं करातीं।[5]

परन्तु श्री अरूणोदय नटवर लाल जानी जी के तर्क भी श्रीहर्ष को बगाली एव बगालवासी सिद्ध कर पाने मे समर्थ सिद्ध नहीं हो सके है। स्त्रियो के आखो मे अजन लगाने की परम्परा केवल बगाल मे ही नहीं मिलती, जैसा कि नारायण ने अपनी टीका मे लिखा है, अपितु अजन लगाना तो सम्पूर्ण भारत की स्त्रियो द्वारा अपनाया जाता है। केरल की स्त्रियॉ तो आखो मे अजन का प्रयोग करने के साथ-साथ माथे पर अजन तिलक लगाती है। राजस्थान एव पजाब की स्त्रियो द्वारा अजन लगाने की विधियो का तो कोई सानी ही नहीं, अत अजन का विवरण देने मात्र से कवि को बगालप्रान्त का सिद्ध करना तर्कोपवेत नहीं होगा, क्योकि कवि तो स्वच्छन्दमना होते है, जहॉ, जिस देश की रीति-रिवाज उन्हे भा गयी, बस उसे उन्होने अपने काव्य मे पिरो लिया।

श्रीजानी जी ने जो 'पान्थ दुर्गा' के माध्यम से बगाल प्रान्त की विजयादशमी त्योहार से तुल्यता दिखायी है, तो सर्वप्रथम यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि कवि ने वहॉ अलकार वर्णन की चारुता ही दिखायी है, दूसरे यदि हम यह भी माने कि विजयादशमी त्योहार के समय होने वाली दुर्गा स्थापना समारोह का कवि वहॉ सन्दर्भ रखना चाहता है, तो इससे यह कहीं भी ध्वनित नहीं होता कि दुर्गा पूजा या दुर्गा मूर्ति स्थापना, केवल बगाल प्रान्त की देन है, यह तो सर्वत्र उत्तरी भारत के यत्र-तत्र सर्वत्र स्थानो मे देखा जा सकता है। हेमचन्द्र के द्वयाश्रय काव्य मे भी पान्थ दुर्गा का वर्णन मिलता है।[6] ग्रीक वर्णनो मे पान्थदुर्गा को 'सडको की देवी' की सज्ञा से विभूषित किया जाता है।[7] दुर्गा का विवरण देवीपुराण के देवी

---

1 नारायणी टीका- पृ० 581, सस्करण - 1986

2 नैषधीयचरित-प्रो० के0के0 हान्डिकी, पृ० 601, सस्करण - 1956, दकन कालेज, पूना।

3 श्लथैर्दलै स्तम्भयुगस्य रम्भयोश्चकास्ति, चण्डातकमण्डिता स्म सा ।
प्रियासखीवास्य मन स्थितिस्फुरत्सुखागतप्रश्नि ततूर्यनि स्वना ।। नै० 16/8

4 It is usual even now, in some parts of India (e g Assam), to decorate the entrance ground of the bride's place with Banana plants नैषधीय चरितम्, पृ० 230, सस्करण-1956

5 Saudamini Mehta - Bangalamam Sanagara Sanskrit - Nov - 1951, P-420

6 हेमचन्द्र-द्वयाश्रय काव्य-7/34

7 Lady of the Road of Goddess of Paths - Pausanias (Loeb), Vol 2, P 72 and Frazer's trans, Vol 1, P-151

की रथयात्रा (भाग-31) मे एव स्कन्दपुराण मे प्रभासखण्ड पे भाग-83 मे उपलब्ध मिलता है। अत इस विवरण के आधार पर भी श्रीहर्ष बगाली नहीं ठहरते।

वधू के द्वार को कदली स्तम्भो एव कदली पत्रो से सजाने की परम्परा के बारे मे यदि हम सास्कृतिक झरोखो मे झॉके, तो स्पष्ट हो जाता है कि यह परम्परा केवल आसाम की नहीं, अपितु उत्तर भारत के साथ-साथ दक्षिण भारत मे भी यह परम्परा देखी जाती है। दक्षिण भारत मे तो विवाहादि की सारी प्रथाएँ, भोजन आदि सब केलो के पत्ते पर ही सम्पन्न की जाती है, अत इसके आधार पर तो श्रीहर्ष को दक्षिणात्य कहा जाना चाहिए। स्पष्ट है कि इस तर्क के आधार पर भी जानीजी श्री हर्ष को बगाली सिद्ध करने मे असमर्थ ही सिद्ध होते है।

श्रीजानी ने जो श्रीहर्ष के कथानक को तोड-मरोड कर ''बगाल की विधवा प्रथा'' के वर्णन का जो साक्ष्य रखा, वह भी तर्कोपवेत नहीं लगता क्योकि यह प्रथा दक्षिण भारत एव उत्तरी भारत के कुछ अचलो मे प्राचीन काल से थी एव आज भी इसके आशिक उदाहरण मिलते है। अत जानीजी का यह तर्क भी श्रीहर्ष का बगाली सिद्ध करने मे असगत ही प्रतीत होता है। श्रीजानी ने डॉ० सुनील कुमार डे के आक्षेपो का परिहार करने की कोशिश उन्हीं के विचारो को रखकर, श्रीहर्ष को बगाली मानने मे की,[1] परन्तु उनकी यह कोशिश मात्र कल्पना लोक की प्राप्ति मात्र कही जा सकती है।

श्रीहर्ष को कश्मीर एव बगाल प्रान्त का मानने वालो के बाद अब कुछ विद्वान् श्रीहर्ष को 'कन्नोज' का निवासी मानते है इन विद्वानो मे डॉ० वात्वे (Watve), प्रो० इमेनेयू (Emeneau), आचार्य रघुवर मिट्ठूलाल शास्त्री एव नैषधपरिशीलनकार डॉ० चण्डिकाप्रसाद शुक्ल जी प्रमुख है।

डॉ० वात्वे "सस्कृतकाव्य के पचप्राण"[2] नामक पुस्तक मे श्रीहर्ष को कन्नौज का माना है, एव प्रो० इमेनेयू ने अपने एक लेख[3] के आधार पर श्रीहर्ष को कन्नौजनिवासी माना है, तथा रघुवर मिट्ठूलाल शास्त्री ने भी अपने एक लेख[4] के आधार पर श्रीहर्ष को कन्नौज प्रान्त का रहने वाला बताया है। परन्तु इन तीनो विद्वानो के तर्क श्रीहर्ष को कन्नौज निवासी बता पाने मे असमीचीन एव अनुपयुक्त प्रतीत होते है जैसा कि उनके विवरणो के अध्ययन से ज्ञात होता है।

नैषधपरिशीलन रचयिता डॉ० चण्डिकाप्रसाद शुक्लजी ने श्रीहर्ष को कन्नौज प्रान्त का जन्मा एव निवासी माना एव इसके लिए उन्होने निम्नलिखित तर्क दिये–

1 बाह्य साक्ष्य से श्रीहर्ष का कन्नौज प्रान्त का होना सिद्ध होता है। फर्रूखाबाद जिले मे कन्नौज के पास मीरासराय नामक कस्बा है, जहॉ कन्नौज का रेलवे स्टेशन है। यहॉ विशेष बस्ती कान्यकुब्ज मिश्रों की है। ये लोक स्मार्त और शाक्त है, और अपने को श्रीहर्ष का वशज बतलाते है, इनका कहना है कि ''हम लोग पहले त्रिपाठी थे, परन्तु श्रीहर्ष ने एक यज्ञ किया, जिससे हम मिश्र कहे जाने लगे।'' ये लोग श्रीहर्ष का किसी राजा द्वारा सम्मानित होना भी बतलाते है।[5]

---

1 नैषधीचरित-ए0एन जानी पृ० 108-109

2 सस्कृत काव्य के पचप्राण-डॉ० वात्वे, पृ० 231

3 Sementic and Oriental studies, Vol XI

4 Was Sriharsa a Bangali ओरियन्टल कान्फ्रेस 1926, Vol IV, 48N Series

5 नैषधपरिशीलन - पृ० 19

2 अन्त साक्ष्य के आधार के रूप मे डॉ० शुक्ल जी ने श्रीहर्ष द्वारा किये गये मध्यदेश के वर्णन को लिया है। विवाहानन्तर नलदमयन्ती के प्रेमालाप स्थिति का वर्णन करते हुए श्रीहर्ष ने रमुरवे कहलवाते है कि "हे नल! दमयती को अक मे धारण करते हुए आप अब समुद्र के समान शोभायमान हो, जो पृथ्वी को अपने मध्य मे धारण करता है। दमयती के मौक्तिक हार नदी की काति हरने वाले है। मध्य मे अति कृश होने के कारण यह वेदिका की समानता करती है। उसके शरीर का मध्य भाग लोगो के चित्त को आनन्ददायक है। आप उसके मुखचन्द्र को देखकर हर्ष प्राप्त करते है। पृथ्वी काति से मनोहर नदी रूप हार धारण करती है, गगा यमुना के बीच मध्यदेश लोगो को आनन्ददायक है।"[1] डॉ० शुक्लजी का कहना है कि नलदमयती के लिए जिस उपमान की कल्पना की गयी है, वह एक प्रकार से असम्भव तथा अज्ञात वस्तु है। कहाँ सागर और कहाँ मध्यदेश? इतनी कठिन दूरी की उपेक्षा कर कवि ने मध्यदेश को भूमि का सागर की गोद मे बैठाकर एक उपमान खडा किया है। जब सागर एव नदी के सयोग से भी काम चल सकता था, तब मध्यदेश को बीच मे लाने की क्या आवश्यकता थी? इसका केवल एक ही समाधान है कि वह प्रान्त कवि का अपना जन्म प्रान्त था, "जनमन प्रिय" विशेषण इस भाव को और भी पुष्ट करता है।[2] अत श्रीहर्ष कन्नौज के रहने वाले थे।

3 डॉ० चण्डिका प्रसाद जी का यह भी कहना है कि चूकि श्रीहर्ष ने उस प्रान्त की राजधानी 'महोदय' (कन्नौज) नगरी का भी नामोल्लेख किया है,[3] अत श्रीहर्ष कन्नौज प्रान्त वासी ही थे। तोता (कीर) दमयन्ती की प्रशसात्क शैली मे स्तुति करते हुए कहता है "दमयती! आप कामदेव की राजधानी है, और आपके वक्षस्थल पर खिचे बेलबूटे राजधानी की मत्स्य सहित ध्वजा का काम देते है। हे तरूणी! आपकी भौहो को इस राजधानी का तोरण कौन नहीं करता, क्योकि वे कामदेव के उत्सव के साथी है।" डॉ० शुक्ल का कहना है कि ऐसा (कन्नौज) विवरण देना, प्रेमालाप प्रसग से सर्वथा भिन्न था, परन्तु चूँकि श्रीहर्ष स्वदेश स्मरण उस समय भी नहीं भूले थे इसलिए उन्होने उस समय कन्नौज प्रान्त को याद किया, अत निश्चित ही श्रीहर्ष कन्नौज प्रान्त के निवासी थे।

नैषधपरिशीलनकार के मत का खण्डन

1 डॉ० चण्डिका प्रसाद शुक्ल जी ने जो बाह्य साक्ष्य को आधार मानकर फर्रुखाबाद जिले मे कन्नौज के पास मीरासराय का कस्बा माना है, उसके लिए उन्होने कोई भी तर्क नहीं दिया और न यह ही बताया कि वे बाह्य साक्ष्य कौन है? अत. यह केवल ऐसी किवदन्ती[4] मात्र है, जिसका कोइ साक्ष्य नहीं मिलता। अत इस आधार पर श्रीहर्ष को कन्नौज प्रान्त का निवासी नहीं माना जा सकता।

2 अन्त साक्ष्य के आधार पर डॉ० शुक्ल ने मध्यदेश मे जिस कन्नौज प्रान्त को स्थित पाना, वह तो सत्य है, कि कन्नौज मध्यदेश के अन्तर्गत आता है क्योकि मनुस्मृति मे वर्णन आया है कि "हिमालय एव विन्ध्याचल पर्वत के मध्य, कुरुक्षेत्र से पूर्व एव प्रयाग से पश्चिम स्थित देश मध्यदेश

---

1 एता धरामिव सरिच्छविहारिहारा मुल्लासितस्त्वमिदमाननचन्द्रभासा ।
विभ्रद्विभासि पयसामिव राशिरन्तर्वेदिश्रिय जनमन प्रियमध्यदेशाम् ।। नै० 21,133

2 नैषधपरिशीलन, पृ० 18

3 चेतोभवस्य भवती कुचपत्रराज, धानीयकेतुमकरा,ननु राजधानी।
अस्या महोदयमहस्पृशि मीनकेतो के तोरण तरूणि! न ब्रुवते भ्रुवौ ते।। नै० 21/135

4 डॉ० शुक्ल से शोधकर्ता ने वार्तालाप किया, तो मालुम हुआ कि चूकि उनके गुरू आचार्य रघुवरमिट्ठूलाल शास्त्री ने उन्हें श्रीहर्ष से सम्बन्धित कथा सुनायी थी, जिसके आधार पर श्रीहर्ष त्रिपाठी से मिश्र हो गये, एव वह मीरासराय के ही थे, परन्तु न तो नैषधपरिशीलनकार फर्रुखाबाद कभी इस तथ्य की प्रामाणिकता हेतु या अन्य बहाने गये, और न ही उन्होने अपने कथन की सिद्धि में तर्क जुटाने की आवश्यकता समझी, केवल गुरूवाणी को ही चरम प्रमाण माना यह बात कितनी तर्क पुष्ट है, इसमे सुधीजन ही प्रमाण हैं।

कहा गया है।[1] स्मरणीय है कि मध्यदेश के अन्तर्गत आज उत्तर प्रदेश का अधिकाश भाग एव मध्य प्रदेश तथा हरियाणा के भाग शामिल है, जिनमे हरिद्वार, प्रयाग एव उज्जेन मुख्य स्थान तत्कालीन समय मे भी थे एव आज भी है, तो फिर शुक्लजी ने कन्नौज को ही श्रीहर्ष का गृहप्रान्त क्यो माना? इसके लिए भी उन्होने कोई तर्क समुपस्थित नही किया।

यहॉ पर मध्यप्रदेश की विस्तृत व्याख्या करना अनिवार्य ही नही अपरिहार्य भी है क्योकि डॉ० शुक्लजी ने मध्यप्रदेश की स्थिति का वर्णन सकुचित रूप मे कर सदेह की स्थिति पैदा कर दी है। मध्यप्रदेश का शाब्दिक अर्थ मध्यवर्ती स्थिति वाले देश से है। एक भौगोलिक इकाई के रूप मे मध्यप्रदेश की अवधारणा उत्तरवैदिककालीन है। अथर्ववेद एव ब्राह्मण ग्रथो मे दिशाओ के आधार पर देशो के वर्गीकरण एव उनके नामकरण का उल्लेख मिलता है। इनमे चार दिशाओ के आधार पर चार देश एव मध्यवर्ती क्षेत्र को 'मध्यदेश' नाम दिया गया।[2] शतपथ ब्राह्मण मे प्राच्य (पूर्वी) एव उदीच्य (उत्तरी) देशो का वर्णन मिलता है।[3] एव ऐतरेय ब्राह्मण मे मध्यदेश का वर्णन पचस्थल विभागो मे एक है यथा प्राच्य देश, दक्षिण देश, प्रतीची (पश्चिमी) देश, उदीची (उत्तरी) देश, ध्रुवा मध्यमादिक् (मध्यदेश)।[4] इस प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण मे 'मध्यमादिक् प्रतिष्ठा' को मध्यदेश कहा गया है। इसके अन्तर्गत कुरु, पाचाल, वश, एव उशीनर देश आते है ऐतरेय ब्राह्मण मे कुरु पाचालराजा का वर्णन भी प्राप्त मिलता है।[5] मध्यदेश पूर्व मे कोशल एव विदेह से लेकर पश्चिम मे राजस्थान के मारवाड के मध्यवर्ती भागो तक विस्तृत था।[6] परन्तु मध्यदेश की स्थिति की अवधारणा विभिन्न कालो परम्पराओ एव सम्प्रदायो के मतानुसार भिन्न-भिन्न रूप मे की गयी है। पौराणिक मान्यतानुसार पृथ्वी सात द्वीपो मे विभक्त थी जिसमे जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भारतवर्ष की परिगणन की गयी हे अर्थात् जम्बू द्वीप मे नववर्ष थे, जिसमे एक भारतवर्ष है। भारतवर्ष के भी नव भेद, खण्ड या द्वीप बताये गये है जिनमे मध्यदेश भी सम्मिलित है। बौद्धो के त्रिपिटक एव उनकी अठकथाओ मे भारत देश के लिए जम्बूदीप (जम्बद्वीप) का प्रयोग किया गया है तथा जम्बूद्वीप के प्रादेशिक विभागो मे मज्झिम मण्डल या मध्यदेश भी एक है।[7] परन्तु ध्यातव्य है कि पुराणो मे वर्णित जम्बूद्वीप बौद्ध ग्रथो मे वर्णित जम्बदीप से अधिक विस्तृत है, साथ ही यह तथ्य भी अवधेय है कि बौद्धग्रथो मे वर्णित मज्झिमदेश (मध्यदेश) पुराणो मे उल्लिखित मध्यदेश से ज्यादा विस्तृत है।[8] पालि भाषा मे रचित त्रिपिटक मे मज्झिम देश (मध्यदेश) को जम्बूद्वीप का सर्वश्रेष्ठ प्रदेश बाताया गया है। विनयपिटक के महावग्ग मे मध्यदेश की सीमाओ का स्पष्ट उल्लेख है।[9] मध्यदेश ही भगवान बुद्ध का कार्य क्षेत्र था। उन्होने पश्चिम मे मथुरा और कुरु जनपद के थल्लकेट्ठित नगर, पूर्व मे कजगला नगर के मुखेलुवन, और पूर्व दक्षिण की सलिलवती नदी, दक्षिण मे सुसमारगिरि तक, उत्तर मे उशीरध्वज (हरिद्वार मे पास कनखल की पहाडियॉ), तथा कोलिय राज्य मे स्थित सायुग निगम तक भ्रमण करते हुए उपदेश दिया। पाली परम्परा के अनुसार यही क्षेत्र मध्यदेश माना गया। बौधायन धर्मसूत्र[10] मे आर्यावर्त एव मध्यदेश को एक ही बताया गया है, एव राजशेखर ने काव्यमीमासा मे आर्यावर्त और मध्यदेश को अन्तर्वेदी कहा है।[11]

---

1 हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्य यत्प्राक्कनखलादपि यत्प्राग्विनशनादपि । प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेश प्रकीर्तित ।। मनु0 2/2
2. अथर्ववेद 3/27, 4/40, 12/3, 19/17
3 श० ब्रा० 1/7/3/8, 11/4/1/1
4 ऐतरेब्राह्मण 8/14/3
5 ऐ० ब्रा० - 3/8/3
6 कास्मोग्राफी एड ज्योग्राफी इन अर्ली इण्डियन लिटरेचर - डी सी सरकार, पृ० 15, 16
7 बुद्धकालीन भूगोल - डॉ० भरत सिह उपाध्याय पृ० 70 - 71
8 वही पृ० - 79 (मध्यदेश की पूर्वी सीमा का विस्तार)
9 विनयपिटक (हिन्दी अनुवाद) पृ० 213
10 बौधायन धर्मसूत्र 1/1/2/9
11 विनयशन प्रयागयो गड्गायमुनयोश्च अन्तरम् अन्तर्वेदी। - काव्यमीमासा अध्याय - 17

महर्षि पाणिनि ने देश के दो विभागो, उदीच्य एव प्राच्य का ही उल्लेख किया। इनके ही मध्य भरत जनपद स्थित था, जिसे प्राच्य भारत कहा जाता है। पाणिनि के अनुसार गाधार (कधार वर्तमान मे अफगानिस्तान मे स्थित) से मगध तक एक ही शिष्ट भाषा का क्षेत्र था, जिसमे प्राच्य और उदीच्य दो स्वाभाविक भाग थे। पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य मे उदीच्य, प्राच्य और आर्यावर्त का उल्लेख किया है पतञ्जलि का आर्यावर्त ही मध्यदेश था क्योकि वह आर्यावर्त को शिष्टो का देश कहता है, जो हिमालय के दक्षिण, आदर्श के पूर्व और कालकवन के पश्चिम मे स्थित था। इसकी दाक्षिणी सीमा पारियात्र थी। आदर्श की पहचान अदर्शन या विनशन से की गयी है, जहॉ पर सरस्वती नदी (पटियाला मे) लुप्त हो गयी थी। पारियात्र विन्ध्यमेखला का पश्चिमी भाग है।[1] कालकवन बौद्ध साहित्य का कालकाराम है, जो साकेत के पडोस मे स्थित था। महाभारत की जनपद तालिका यद्यपि मध्यदेश से प्रारम्भ होती है (यथा-अग, मगध, काशी, कोशल आदि) परन्तु इसमे मध्यदेश का स्पष्ट वर्णन नहीं मिलता, परन्तु बाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड मे यज्ञियदेश (मध्यदेश या धर्मदेश) की प्रशसा मिलती है। अयोध्या से केकय देश की राजधानी राजगृह (गिरिव्रज) तक भारत की यात्रा मे हमे मध्यदेश और उत्तरापथ का दिग्दर्शन होता है।[2] रामायण के उत्तराकाण्ड मे वर्णन मिलता है कि बाल्हि (बाह्लीक) देश के राजा (बाह्लीश्वर) इल ने मध्यदेश मे अश्वमेध यज्ञ करने के बाद प्रतिष्ठान नगर (इलाहाबाद के पास झूँसी) को बसाया था।[3] मनुस्मृति मे धर्म और आचार के आधार पर किये गये भारत के कुछ खण्डो का वर्णन मिलता है यथा - ब्रह्मावर्त ब्राह्मर्षि देश, मध्यदेश आर्यावर्त और यज्ञिय देश आर्यावर्त ही यज्ञिय देश था, अन्य क्षेत्रो को म्लेच्छ कहा गया है।[4] पुराणो मे, वायुपुराण के अनुसार देश के दक्षिण (अत) मे म्लेच्छ, पूर्व मे किरात, पश्चिम मे यवन एव मध्य मे वर्णचतुष्ट्य के लोग रहते थे। भविष्यपुराण मे ब्रह्मावर्त, ब्रह्मर्षिदेश, मध्यदेश, आर्यावर्त और यज्ञियदेश तथा उसके बाहर म्लेच्छ देश के होने का वर्णन मिलता है।[5] विष्णुपुराण मे "कुरुपाञ्चाला, मध्यदेशादयो जना"[6] उल्लिखित मिलता है। गरुण पुराण मे मध्यदेश को धर्मदेश कहा गया है।[7] स्कन्दपुराण मे "गङ्गायमुनयोर्मध्ये मध्यदेश" कहा गया है।[8] साथ ही इसे क्षेत्र को अन्तर्वेदी नाम भी दिया गया है।[9] अर्थात् स्कन्दपुराण के अनुसार मध्यदेश एव अन्तर्वेदी एक ही था। मनुस्मृति सदृश भविष्यपुराण भी मध्यदेश को हिमालय और विन्ध्याचल के मध्य, विनशन के पूर्व तथा प्रयाग के पश्चिम स्थित भूखण्ड को मानता है।[10] हरिवश पुराण,[11] वायुपुराण,[12] वामनपुराण[13], विष्णुधर्मोत्तर पुराण,[14] गरुणपुराण[15] एव राजशेखर के

1 प्राचीन भारतीय भूगोल - अवध बिहारी लाल अवस्थी, पृ० 57 - 57
2 रामायण अयोध्याकाण्ड , अध्याय - 68
3 रामायण - उत्तराकाण्ड - 90/21, 22
4 मनुस्मृति 2/17 24
5 भविष्यपुराण, ब्रह्मपर्व 181/33-34
6 विष्णु पुराण 2/3/15
7 गरुण पुराण 2/2/9
8 स्कन्दपुराण 1/2/2/85
9 स्कन्दपुराण 1/1/17/274
10 भविष्य पुराण ब्रह्मपर्व 181/41
11 हरिवशपुराण, हरिवश पर्व 10/21, विष्णुपर्व 52/4, 57/2,3,4
12 वायुपुराण 45/111
13 वामनपुराण 13/35,36
14 विष्णुधर्मोत्तर पुराण 1/9/2
15. गरुण पुराण 5/5/10

काव्यमीमासा मे[1] मध्यदेश का वर्णन मिलता है। वृहन्नारदीय पुरण मे कूर्म के नाभिमण्डल को मध्यदेश माना गया है एव इसमे अन्तर्वेदि और पाचाल क्षेत्रो को सम्मिलित किया गया है। यथा-

प्राड्मुखस्य तु कूर्मस्य नवागेषु धरामिमाम् ॥
विभज्य नवधा खण्डे मडलानि प्रदक्षिणम् ।
अन्तर्वेदाश्च पाचालस्तस्येद नाभिमण्डलम् ॥
प्राच्यामागधलाटोत्था देशास्तन्मुखमडलम् ।
स्त्रीकलिङ्गकिराताख्या देशास्तत्पार्श्वमण्डलम् ॥
अवती द्रविडा भिल्ला देशास्तत्पार्श्वमण्डलम् ।
गौडकोकगशाल्वाध्र पौड्रस्तत्पाद मण्डलम् ॥
कुरूकाश्मीरमाद्रेय मत्स्यास्तत्पार्श्वमण्डलम् ।
खसागवगवाह्लीक काबोजा पाणिमडलम् ॥[2]

वराहमिहिर की वृहत्सहिता मे भी मध्यदेश का वर्णन मिलता है।[3] भुवनकोशो मे भी सास्कृतिक भूखण्ड के अर्न्तगत मध्यदेश की गणना की गयी है। चीनी यात्री ह्वेनसाग ने अपने यात्रा विवरण मे मध्यदेश के लिए आर्यावर्त तथा अन्तर्वेदी शब्दो का प्रयोग न करके मज्झिम देश शब्द का प्रयोग किया है।[4] इन्होने भारत को फाइव इडीज (Five Indies) भारत की पचस्थल विभाग परम्परा को मानते हुए नाम दिया है ये है, 'मध्य', 'पूर्व', 'दक्षिण', 'पश्चिम' और उत्तर ।[5] इसमे सम्पूर्ण गगा नदी घाटी जिसमे थानेश्वर से लेकर डेल्टा के शीर्ष भाग तक, एव हिमालय से लेकर नर्मदा तक का क्षेत्र सम्मिलित था।[6] इसे वह महत्वपूर्ण एव पवित्र धर्मदेश कहता है, साथ ही सातवीं शताब्दी मे 70 राज्यो मे कम से कम 37 (सैतीस) राज्य मध्यदेश मे सम्मिलित थे। स्पष्ट है कि ह्वेनसाग के मध्यदेश की सीमा (मनुस्मृति के मध्यदेश की सीमा की तुलना मे) पाली के मज्झिमदेश की सीमाओ से अधिक मेल खाती है। राजशेखर (10वी शताब्दी) मे काव्यमीमासा मे पचस्थल विभाग वाले प्रदेशो यथा पूर्वदेश, दक्षिणापथ, पश्चाद्देश, उत्तरापथ और अन्तर्वेदी का विवरण दिया है। राजशेखर ने मध्यदेश को अन्तर्वेदी के रूप मे विभाजित किया[7] जो मनुस्मृत के मध्यदेश से तुलनीय है। दि ज्याग्राफी आफ द पुराणाज मे एस०एम० अली ने ऊपरी गगा वेसिन के प्राचीन नाम को मध्यदेश कहा है, जिसमे आगरा एव अवध के प्रान्त सम्मिलित थे।

उपर्युक्त तथ्यो के अनुशीलन से पता चलता है कि मध्यदेश की सीमाये विभिन्न कालो मे भिन्न-भिन्न रूप मे मिलती है। उत्तर वैदिक काल मे मध्यदेश की सीमाओ मे कुरु, पाचाल, वश और उशीनर सम्मिलित थे, जिसका उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मण मे मिलता है! कुरु प्रदेश वर्तमान उत्तर प्रदेश मे मेरठ, दिल्ली एव अम्बाला तक विस्तृत था, जिसकी राजधानी हस्तिनापुर थी। पाचाल प्रदेश के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश के बरेली, बदायॅू, फर्रुखाबाद एव पडोसी जिले सम्मिलित थे, इसकी राजधानी अहिच्छत्र (बरेली) तथा कापिल्ल (फर्रुखाबाद) मे थी। वश, कुरु, पाचाल और उशीनर ही आगे चलकर वत्स

---

1 काव्यमीमासा- राजशेखर- 94/15, एव पृ० 93
2 वृहन्नारदीय पुराण पूर्वखण्ड 56/739-745
3 वृहत्सहिता अध्याय 14 कर्मविभाग
4 आन युवान च्वाग ट्रेवेल्स इन इडिया टी वाटर्स जिल्द एक पृ० 132,156,342
5 एशियन्ट ज्योग्राफी आफ इडिया- ए कनिधम पृ०10
6 एशियन्ट ज्योग्राफी आफ इडिया- ए कनिधम पृ० 275-76
7 राजशेखर के काव्यमीमासा मे अन्तर्वेदी (मध्यदेश) की सीमाए इस प्रकार हैं– तत्र वाराणस्या. परत पूर्वदेश, महिष्मत्या परत दक्षिणापथ देवसभाया परत पश्चाद्देश पृथूदकात् परत उत्तरापथ, विनशन प्रयागयोश्च गगायमुनयोश्च अन्तरम अन्तर्वेदी। - काव्यमीमासा -अध्याय 17, पृ० 93

कहलाया, जिसकी राजधानी कौशाम्बी थी। उशीनर, सतलज के पश्चिम और पूर्व यमुना तक विस्तृत था। इन्हीं जनपदो के मध्य कोशीन, श्रृजय, मत्स्य (अलवर, भरतपुर, जयपुर) शाल्व (अल्वर) भी थे। काशी भी मध्य प्रदेश का एक भाग था किन्तु इसका अधिकाश लगाव प्राच्य के साथ था। प्रारम्भिक सूत्रो के काल मे आर्यदेश का जो वर्णन है, वस्तुत वह उत्तर कालीन मध्यदेश ही है। बौधायन धर्मसूत्र[1] मे भी अदर्शन के पूर्व कालकवन के पश्चिम (इलाहाबाद के समीप), हिमालय के दक्षिण तथा पारियात्र (अरावली श्रेणी के साथ पश्चिमी बिन्ध्य) के उत्तर तक मध्यदेश विस्तृत माना गया। इस प्रकार न केवल वर्तमान बगाल अपितु बिहार भी इसकी पूर्वी सीमा के बाहर था। यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि बौधायन धर्मसूत्र का आर्यावर्त ही बाद मे मध्यदेश के रूप मे प्रथित हुआ। इस प्रकार राजशेखर के विवरणानुसार भी मध्यदेश या अन्तर्वेदी की पूर्वी सीमा वाराणसी एव मनुस्मृति के अनुसार प्रयाग, निर्धारित की गयी जबकि पाली परम्परा मे उसकी सीमा कजगल नामक निगम तक निश्चित की गयी है।[2] कजगल की पहचान राजमहल से अठारह मील दूर दक्षिण मे बिहार प्रान्त के सन्थाल परगना के वर्तमान ककजोल नामक स्थान से की गई है।[3] दक्षिण पूर्व सीमा पर सलिलवती की पहचान वर्तमान हजारीबाग ओर मेदिनीपुर जिलो से बहने वाली सिलई नदी से की गयी हे। सेतकण्णिक दक्षिणीसीमा पर विन्ध्यश्रेणी के पार स्थित था। पश्चिम मे थूण नामक ब्राह्मण ग्राम से तात्पर्य स्थानेश्वर (थानेश्वर, अम्बाला) से है। उत्तरी सीमा पर स्थित उशीरध्वज की पहचान हरिद्वार के समीप कनखल के उत्तर मे उशीरगिरि नामक पर्वत से की गयी है।[4] इस प्रकार पालित्रिपिटक मे वर्णित मध्यदेश उत्तर मे हिमालय से लेकर दक्षिण मे विन्ध्याचल तक, पूर्व मे अग जनपद से लेकर पश्चिम मे कुरुराष्ट्र तक स्थित था। इसका विस्तार लम्बाई मे तीन सौ योजन, चौडाई मे ढाई सौ योजन और घेरे मे नौ सौ योजन था।[5] दिव्यावदान मे तो इसकी पूर्व समीमा बगाल के पुण्डवर्धन तक बताई गयी है, जब कि पौराणिक विवरणो मे मध्यदेश की स्थिति निम्न रूप मे थी -

> तास्विने कुरुपाञ्चाला शाल्वाश्चैव स जाङ्गला ।
> शूरसेना भद्रकारा बोधा सह पटच्चरा ।।
> मत्स्या किराता कुल्याश्च कुन्तय काशि कोशला ।
> आवन्त्या भुल्ङ्गिाश्च मागधाश्चान्धकै सह ।।
> मध्यदेशा जनपदा प्रायेशोऽमी प्रकीर्तिता ।।[6]

स्पष्ट है कि पौराणिक मान्यतानुसार भी मध्यदेश मे पूर्व मे प्रयाग एव काशी, पश्चिम मे सरस्वती (कुरुक्षेत्र), उत्तर मे कनखल तथा दक्षिण मे माहिष्मती, (नर्मदातट) तक का क्षेत्र आता है। परन्तु मनुस्मृति एव बौद्ध ग्रथो मे मध्यदेश से सम्बन्धित तथ्यो मे अन्तर मिलना जैसा तथ्य विचारणीय है। सभव है हिन्दू एव बौद्ध धर्मो का परस्पर विरोध इसका कारण हो। बौद्धो ने महात्माबुद्ध के कर्मक्षेत्र को सम्मिलित किया

---

1 द ज्योग्राफी आफ द पुराणाज – एस एम अली, पृ० 133

2 माज्झिमदेसो नाम पुरत्थिमदिसाय कजगल नाम निगमों, तस्स अपरेन महासाला ततो परपच्चन्तिमा जनपदा औरतो मज्झे, पुबदाबखेणाय दिसाय सलिलवती नाम नदी, ततो पर पच्चन्तिमा जनपदा औरतो मज्झे, दक्खिणाय दिसाय सेतकण्णिक नाम निगमों, ततो पर पच्चन्तिमा जनपदा औरतो मज्झे, पच्छिमायदिसाय थून नाम ब्राह्मणगामी, ततो पर पच्चन्तिमा जनपदा औरतो मज्झे, उत्तराय दिसाय उसीरद्धजो नाम पब्बतो, ततो पर पच्चन्तिमा जनपदो औरतोमज्झेति।
- जातकट्ठकथा पठमो भागा, पृ० 38, 39, 64 (भारतीय ज्ञानपीठ काशी) (भरतसिह उपाध्याय पूर्वोद्धृत, पृ० 73)

3 ऐंशियन्ट ज्योग्राफी आफ इडिया-ए कनिघम, पृ० 548-49

4 बुद्धकालीन भूगोल - भरतसिह उपाध्याय पृ० 548-49

5 सो आयामतो तीणि योजनसतानि वित्थारतो अड्ढतिययोजनानि परिक्खेपतो नवयोजन सतानीति" - जातक कट्टकथा, पठमो भागो, पृ० 39, एव 64

6 ज्याग्राफी आफ ऐशियन्ट एण्ड मेडिवल इडिया–डी सी सरकार (1971) पृ० 30 से उद्धृत ए क्रिटिकल स्टडी आफ दि ज्याग्राफिकल डाटा इन द अर्ली पुराणाज - एम आर सिह (1972) पृ० 56 116

हो, अन्तर्वेदि (मध्यदेश) मे पौराणिक मान्यता मे प्रयाग के पूर्व का क्षेत्र अनार्य क्षेत्र माना गया, तथा शुद्धि के बाद ही निवास योग्य बना, इसलिए मध्यदेश की पूर्वी सीमा मे सकुचन किया गया हो, ऐसा प्रतीत होता है कि शतपथ ब्राह्मण मे वर्णित शतानीक और सात्राजित की कथा का प्रभाव पुराणो पर पडा हो, परिणामत अत्यन्तपवित्र क्षेत्र ही मध्यदेश की सीमा मे रखे गये हो, जो भी हो, काशी तो मध्यदेश की पूर्वी सीमा मे तो आता ही हे, हॉ मनुस्मृति मे स्पष्ट रूप से इस स्थान को रखने की बात नहीं की गयी। केवल मनुस्मृति को आधार मानकर एव अन्य ऐतिहासिक साक्ष्यो एव ग्रथो मे प्रतिपाद्य सामग्री को नकारना वास्तविकता से दूर भागना होगा, या लकीर का फकीर बनना मात्र होगा, अतएव काशी को मध्यदेशान्तर्गत मानना सर्वथा तर्कसगत एव युक्तियुक्त है।

श्रीनारायण ने मध्यदेश की व्याख्या करते हुए लिखा "तथा जनमनसा प्रियो मध्यदेशो विन्ध्यहिमाचलान्तरभूभागरूप, आर्यावर्तापरपर्याय पुण्यभूतो मध्यदेशो यस्यास्ताम्[1] "एव मल्लिनाथ ने मध्यदेश की व्याख्या करते हुए कहा "तथा जनमनसा लोकचेतसा, प्रिय प्रीतिजनक मध्यदेशो नितम्बभागो यस्या ताम्' पक्षे जनमनसा लोकचित्तानाम् प्रिय हर्षजनक मध्यदेश ।[2] कीर कहता है कि हे राजन् (नल) नदी की शोभा को चुराने वाले (तद्वत सुन्दर) हार वाली, वेदिमध्य के समान शोभा वाली अर्थात् पतली कटि वाली तथा लोगो के मन को प्रिय कटिभागवाली इस (दमयती) को अङ्क मे धारण करते हुए और इस (दमयती) के मुखचन्द्र की काति से हर्षित तुम, शोभा से मनोहर नदी रूप हार वाली, गगा-यमुना के मध्यभाग स्थित (अन्तर्वेदि नाम की) भूमि से शोभित तथा जनमन के प्रिय मध्यदेश (हिमालय विन्ध्याचल का मध्यभाग-आर्यावर्त) वाली 'पृथ्वी' को अङ्क (बीच) मे धारण करते हुए तथा चन्द्रकान्ति से वर्द्धमान समुद्र के समान सुशोभित हो रहे हो।"[3] स्पष्ट है कि उपमान उपमेय बल से यहॉ मध्यदेश से तात्पर्य दमयन्ती एव पृथ्वी दोनो से है। इस प्रसग मे मध्यदेश की ध्वनि तो निकल रही है किन्तु मध्यदेश तो बडा विशाल देश खण्ड था, तो उसमे शुक्लजी ने केवल कन्नौज को ही क्यो माना, उज्जेन, काशी, प्रयागादि अन्य स्थलो को भी तो ले सकते थे। नैषधपरिशीलनकार ने कन्नौज विशेष को ही मध्यदेश मे मानने के अपने तर्क मे कोई प्रमाण न दे कर अपने तर्क को निराधार ही छोड दिया। अगर हम मध्यदेश के अन्तर्गत आने वाले देशो की परिगणना करे, तो उसमे काशी के साथ - साथ निषध देश (मालवा प्रान्त का उत्तरी छोर) भी आता है।[4] ध्यातव्य है कि तत्क्षण श्रीहर्षा निषध सम्राट एव निषध देश का ही वर्णन (तोता के मुख से) कर रहे है, न कि अन्य स्थान का यदि विवेचन क्रम मे गगा एव यमुना नदियो के हार पहनने वाले देश की

---

1 नैषधीयचरित - नारायणी टीका, P 931

2 जीवातु टीका-''हरिदास सस्कृत ग्रथ माला-205, II भाग, हरगोविन्द शास्त्री, पृ० 1465

3 एता धरामिव सरि[illegible]रिहरामुल्लासितस्त्वमिदमाननचन्द्रभासा ।
विभ्रद्विभासि प[illegible] [illegible] प्रियमध्यदेशाम् ॥ नै० 21/133

4 This country to which Panini refers in this Artadhyayi as Na'sadha (4 1 172) seems to have been situated not very for from Vidarbha The Country of Nala's queen Damayanti Wilsan thinks that it was near the Vindhyas and Payasni river and that it was near the roads leading from it a cross The RKSa mountain to Avanti and the south as well as to Vidarbha and Kosala Lassen places it along the Satpura hills to the north-west Berar Burgess also places it to the south of Malwa [Antiquities of Kathiawar and Kacch P.731] The Mahabharata mentions Giriprastha as the Capital of the Nisadhas (III/324/12) The Visnupurana (IV Ch 24/17) refers to the nine Kings of Nisadhas, while the Vayu purana mentions the kings of the Nisadha Country who held sway till the end of the days of Manu They were all the decendants of king Nala and they lived in the Nishadha country (B) Nala, the king of the Nisadhas, was a skillful charioteer and knew much about the nature of horses, Naisadhiyacharita-Sarga 5, 60 — Historical Geography of Ancient India by Bimal Churn Law, Peris 1954, P 325

– विष्णुपुराण— Vol II, Page 156-90

– वायुपुराण — Ch 990, 376

बात की जाये, तो प्रयाग से उत्तम भला और कौन देश उचित हो सकता है[1]। अत इस तर्क के आधार पर श्रीहर्ष को कन्नौजवासी मानना निराधार कथन माना होगा। जब कि पूर्व मे वर्णित तथ्यो से निषध एव काशी भी मध्यदेश मे आता है।

श्रीहर्ष को कन्नौजप्रान्त वासी बताने वाले डॉ० शुक्ल जी का अतिम तर्क है कि चूकि श्रीहर्ष ने कन्नौज (महोदय) का विवरण दिया है, यह उनके हार्दिक सम्बन्ध को प्रतिध्वनित करता है, अत. वह कन्नौज के निवासी थे। श्रीहर्ष कीरमुखेन वर्णन करते हुए कहते है कि "(हे दमयन्ती!) स्तनद्वय पर (कस्तूर्यादि रचित) पत्ररचनारूप राजधानी-सम्बन्धिनी पताकावाली तुम मानो कामदेव की राजधानी हो, तथा हे तरुणि! महान् उदय वाले उत्सवो से युक्त (त्वद्रूप) इस व्यक्ति भला राजधानी मे तुम्हारे भ्रूद्वय को कौन तोरण नहीं कहते है ? अर्थात् सभी कहते है। (जिस प्रकार राजा अपने विशिष्ट चिन्हयुक्त पताकावाली राजधानी मे निवास करता है और उसमे (पल्लवादि रचित) नील तोरण रहता है, उसी प्रकार स्तन मे कस्तूरी आदि से बनाये गये मकर पत्ररूपिणिषीपताका से युक्त राजधानीरूपिणी तुम मे नृपरूप कामदेव निवास करता है, एव तुम्हारे नीलवर्ण भ्रूद्वय तोरणतुल्य हो रहे है। तुम मे ही कामदेव सर्वोत्कर्ष से सदा निवास करता है।[2] उपर्युक्त श्लोक मे आये ''महोदय'' शब्द का अर्थ, विश्वकोश के अनुसार''महोदय कान्यकुब्जेऽप्याधिपत्यापवर्गयो इति विश्व , "एव अमरकोश के अनुसार ''महस्तूत्सवतेजसो इत्यमर '' होता है। यहॉ महोदय शब्द का ध्वन्यमान अर्थ श्लेषबल के प्रयोग से कन्नौज तो अवश्यमेव ग्रहणीय है, परन्तु महोदय (कन्नौज) का विवरण देने का मात्र से शुक्लजी ने श्रीहर्ष को कन्नौजवासी मान लिया यह तथ्य चिन्त्य प्रतीत होता है, क्योकि श्रीहर्ष ने तो अन्य अनेक देशो पुष्कर, शाक, क्रौच, कुश, शाल्मल, प्लक्ष द्वीप, अवन्ती, गौड, काशी, मथुरा, अयोध्या, पाण्ड्य, नेपाल, मिथिला, कामरूप, उत्कल एव मगध आदि का भी वर्णन किया है, फिर कन्नौज तो राजधानी के साथ-साथ राज्यक्षेत्र विशेष का भी सूचक है।[3] परन्तु शुक्लजी ने इस विषय पर अपनी दृष्टि ही नहीं डाली एव वह यह बता पाने मे भी अक्षम ही रहे कि उन्होने श्रीहर्ष को कन्नौज बासी ही क्यो माना? स्मरणीय है कि उनका विवरण केवल काव्यात्मक चमत्कान ही कहा जा सकता है, एव इसके माध्यम से ही श्रीहर्ष को कन्नौजवासी मानना, एव ऐतिहासिक तथ्यो की अवहेलना करना है जो तर्कसगत नहीं लगता।

उपरोक्त सभी तथ्यो के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि नैषधकार श्रीहर्ष का जन्मस्थान कश्मीर, गौडदेश (बगाल) एव कन्नौज कोई भी नहीं है, तब यह प्रश्न स्वभावत व्याकुल करने लगता है कि आखिर श्रीहर्ष की जन्मस्थली एवं कर्मस्थली कौन थी? चूकि श्रीहर्ष ने इस बारे मे कोई भी वर्णन नहीं

---

1 यदि आर्यावर्त में स्थित नदियो के हार पहने देश की बात की जाये, तो काशी नगरी वरूणा असी एव गगा नदियों का हार धारण किये हुए है एव मध्यदेश मे निषध देश विषेष रूप से उज्जैन) नर्मदा, बनास, चम्बल, बेतवा नदियों का हार पहने प्रतीत होता है। साथ ही मनुस्मृति मे आये वर्णन के अनुसार निषधदेश भी (मालवाप्रान्त का दिक्षिणी भाग) के अन्तर्गत ही आता है।— The Oxford School Atlas, 25th Adition, P-14

2 चेतोभवस्य भवती कुचपत्रराज-धानीयकेतुमकरा भनु राजधानी ।
अस्या महोदयमहस्पृशि मीनकेतो के तोरण तरूणि न ब्रुवते भ्रुवौ ते ।। नै० 21।135

3 There are indications that the title of Kanykubja was not restricted to the city only, but also extended to the neighbouring territory, or even to the kingdom of which it was the centre Youanchawang gives the name Ka-No-Ku She, it, Kayakubja both to the Captial and the Country, which the descirbes as being 400 li in circuit (A) Similarly, the Barch copper plate shows tha at that period (836 A D) both the names Mahadaya and Kanyakubja were current, the former being used for the capital city and the latter for a bhukti or province of the kingdom (B) of which Kalanjara-Mandala, formed a part
– History of Kanauj—Dr Rana Shankar Tripathi
– Motilal Banrsidass—1964, Page 6
– Watters, I PP-340-41
– Ep IInd XIX (January, 1927) PP 17,19

किया, अत उनके द्वारा रचित ग्रथो एव उनके समसामयिक तथा परवर्ती ग्रथो, विद्वानो के विवरण को साक्ष्य मानकर ही उनके जन्मस्थानादि के बारे मे किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है एव उनके आधार पर श्रीहर्ष का जन्म एव कर्म स्थाली ''काशी'' (वाराणसी) ही थी। इस मान्यता की सिद्धि के पुष्ट आधार अधोलिखित तर्क है-

1 राजशेखर सूरि ने अपने प्रबन्धकोश के अन्तर्गत 'श्रीहर्षकविप्रबन्ध' मे यह तथ्य उद्घाटित किया है कि वाराणसी नगरी मे गोविन्दचन्द्र राजा के राज्य मे कई विद्वानो मे श्रीहर्ष के पिता श्रीहीर भी थे जो किसी विद्वान् से शास्त्रार्थ मे पराजित हुए थे एव अपने पुत्र श्रीहर्ष को, जो बाल्यावस्था मे ही थे, यह कहकर प्राण त्यागे, कि यदि तुम मेरे सत्पुत्र होगे, तो मेरे अपमान का बदला अवश्य लोगे, एव श्रीहर्ष ने उन्हे ऐसा करने का वचन दिया।"[1] यह श्रीहर्ष के बचपन से वाराणसी मे रहने का प्रमाण है। साथ ही श्रीहर्ष ने अपने गुरू के द्वारा दीक्षित (गुरु कोई और नहीं उनकी माता मामल्लदेवी ही थी)[2] 'चितामणि मन्त्र'[3] का जाप गगा नदी के किनारे किया, ध्यातव्य है कि वाराणसी मे गगा बिल्कुल समीप मे तत्कालीन समय से आज भी प्रवाहित हो रहीं है, अत निश्चित ही उन्होने वाराणसी मे ही गगा नदी के किनारे चिन्तामणि मत्र की सिद्धि प्राप्त की, यदि हम कन्नौज मे उनके रहने एव चिन्तामणि मत्र की सिद्धि की बात माने, तो स्मरणीय है कि कन्नौज से कई मील की दूरी मे गगा प्रवाहित थीं[4] एव एक बालक का कई मील दूर जाकर मत्र जाप करने की बात मनमस्तिष्क मे कहीं नहीं उतरती एव तर्कसगत भी नहीं लगती, अतएव स्पष्ट है कि श्रीहर्ष की जन्म एव कर्मस्थली काशी (वाराणसी) ही थी।

2 श्रीहर्ष ने स्वय इस तथ्य का प्रतिपादन किया है कि उन्हे कान्यकुब्जेश्वर की राजसभा मे ताम्बूलद्वय एव आसन का सम्मान मिलता था।[5] वे कान्यकुब्जेश्वर कोई और नहीं गोविन्दचन्द्र, विजयचन्द्र एव जयचन्द ही थे। 'सोमनाथपत्तनप्रशस्ति' एव गहडवाल ताम्रपत्रो से यह तथ्य स्वत स्पष्ट हो जाता है।[6] कि 'कान्यकुब्ज' शब्द राज्य के लिए भी प्रयुक्त किया जाता है न कि केवल क्षेत्र विशेष के लिए।[7] हस्तिकुण्डि शिलालेख से यह प्रमाणित होता है कि गहडवाल राजा ने

---

1 पूर्वस्या वाराणस्या पुरि गोविन्दचन्द्रो राजा–तत्पुत्रो जयन्तचन्द्र। तस्य राज्ञो बहव विद्वास। तत्रैको हीरनामा विप्र। तस्यनन्दन प्राज्ञचक्रवर्ती श्रीहर्ष। सोऽद्यापि बालावस्था। साभाया-राजकीयेनैकेन पण्डितेन वादिना हीरो राजसमक्ष जित्वा मुद्रितवदन कृत। लज्जापङ्के मग्न। बैर बभार धारालम्। मृत्युकाले हर्ष स बभाषे-वत्स। अमुकेनपण्डितेनाहमाहत्य राजदृष्टौ जित। तन्मे दु खम्। यदि सपुत्रोऽसि तदा त जये क्ष्मापसदसि। श्रीहर्षेणोक्तम्-ओमिति। हीरो द्या गत। श्रीहर्षस्तु-गगातीरे सगुरूदत्त चिन्तामणिमन्त्र वर्षमप्रमत्त साधयामास। प्रत्यक्षा त्रिपुराऽभूत्।। – प्रबन्धकोष पृ० 54

2 तस्य द्वादस एष मातृचरणाम्भोजालिमौलेर्महा। काव्येऽय व्यगलन्नलस्य चरिते सर्गो निसर्गोज्ज्वल।। नै० 12/133

3 अवामा वामार्द्धे सकलमुभयाकारघटनाद्, द्विधाभूत रूप भगवदभिधेय भवतियत्।
तदन्तर्मन्त्र मे स्मरहरमय सेन्दुममल, निराकार शश्वज्जप नरपते। सिध्यतु सते ।। 14/85

4 The Petty town of Kanauj, laying in latitutde 27°5′ north and longitude 79°,55′ East in the Farrukhabad district of the United Provinces, is one of the few cities that have played a notiworthy part in the political life of Ancient India. The City staced on a cliff on the right Bank of the Ganges The rivers, however,, now flows at a distance of some miles to the east – (Gazettur of Farrukhabad, P 217, Imperial Gazettur of India, XIV, P 370)

5 ताम्बूलद्वयभासन च लभते य कान्यकुब्जेश्वरात्। नैषध प्रशस्ति-श्लोक-4

6 Somnathapattan prasasti of Bhava Brihaspati, dated 1169 A D, mentions The Kanyakubja-visaya as including Banarasi i e Benaras
– In the Gahadavala plates the city itself is called the Kusika tirtha and the name Kayankubja is given to the kingdom
– Vienna oriental Journal, III PP-7, 13, Verses, 5 6—The History of Kanauj-R S Tripathi, P 7

7 There are indications that the title of Kanyakubja was not restricted to the city only, but also extended to the neighbouring territory, or even to the kingdom of which it was the Centre –The History of Kanuaj, R S Tripathi -P-6

कन्नौज से देशान्तर गमन किया था।[1] एव बनारस को अपनी कार्यस्थली बनाया था, क्योकि यह उनके राज्य के केन्द्र मे था। ऐतिहासिक तथ्यो के विवरण से यह ज्ञात होता है कि गोविन्द चन्द्र ने मगध के कुछ भाग, दशार्ण प्रदेश (मालवा), विदिशा, चन्देल राज्य के कुछ भाग को जीता था, एव कश्मीर आदि राज्यो से राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित किया था तथा विजयचन्द्र ने कटक, दिल्ली, पत्तनपुर (अन्हिलवाड), तैलग, कर्नाटक, एव कोकण आदि प्रदेशो को जीता था।[2] एव जयचन्द ने युवराज पद प्राप्ति के बाद बनारस मे गगा स्नान के बाद भगवान कृष्ण की पूजा की थी।[3] यह बनारस मे गहडवाल सम्राटो के कर्मक्षेत्र एव निवासस्थल का प्रमाण है। कामिल-उल तवारीख, इलियट के विवरण एव मनु शिलालेख से भी कान्यकुब्जेश्वर काशीश्वर ही थे, इस तथ्य के प्रमाण मिलते है।[4] इलियट ने तो यहॉ तक लिखा कि जयचन्द्र का साम्राज्य हिमालय से लेकर गया तक फैला था एव गहडवाल सम्राट बनारस मे ही रहते थे।[5] श्रीहर्ष उनके राजसभा मे थे, अत स्पष्ट है कि श्रीहर्ष का जन्म एव कर्मस्थान बनारस ही था। राजशेखर ने भी अपने प्रबन्धकोशान्तर्गत श्रीहर्ष कवि प्रबन्ध मे इस तथ्य का विवरण दिया है कि श्रीहर्ष जयन्तचन्द्र के राजकवि थे, एव वाराणसी नगरी मे रहते थे।[6]

---

1 The Hathaundı (Hastıkundı) ınscrıptıon, dated ın the Vıkrama year 1053=997 A D [A] testıfies to the fact that Rastrakuta prınces ruled over tracts of Marwar long before the supposed mıgratıon of the Gahadavalas from Kanauȷ
- EP gnd, X PP-17-24, Imp Gaz of Indıa, VI, P 247 –The Hıstory of Kanau – R S Trıpathı, P 299

2 The Hıstory of Kanauȷ, R S Trıpathı, P 309-317

3 Jayacandra was "ınstalled ın the dıgnıty of Yuvaraȷa and endowed wılı all royal prerogatıves", on the 10th tıthı of the brıght half of the month of Asadha of the Vıkrama year 1224, Correspondıng exactly to Sunday, 16th June 1168 A D It was on the same occasıon that he was ınıtıated as a Worshıper of the God Krıshna after bathıng ın the Ganga at Banaras – The Hıstory of Kanauȷ, R S Trıpathı, P 321

4 Jayacandra was the last great monarch of Kanauȷ, whose power and extensıve ȷurısdıctıon struck even the Moslem hıstorıans Refeıng to hım uan Asır says ın the Kamıı-ıt-Tawarıkh that ' The Kıng of Banaras was the greatest kıng ın Indıa, and passessed the largest terrıtory, extendıng lengthwıse from the borders of Chına to the provınce of Malwa, and ın breadth from the sea to wıthın ten days, Journey to lahore Ellıat hıstory of Indıa, Vol II, P 251
- In the Manu ınscııptıon he (Madanavarman 1125-1165 A D) even claıms to have forced "The Kıng of Kası" who ıs probably ın ındentıcal (l) wıth Vıȷayacandra to pass hıs tıme" ın frıendly behavıour
- Ep-Ind I PP 198, 204, Verse 15cf "Kalam Sauharddavrıtya Gamayatı Satatam trasath Kasıraȷah " -- The Hıstory of Kanauȷ, R S Trıpathı, P-323

5 As to the north, the phrase "borders of Chına" may be presumed to denote that the kıngdom extended upto the foot of the Hımalayas, whıle ın the east ıt must have comprısed the Gaya regıon, where an ınsscrıptıon presumably belongıng to Jayacandra's regıon records that a hermıt named Srımıtra served as spırıtual guıde to the kıng of Benaras (Kasısa), who was attended by a hundred chıeftıons (nrıpa-Sata-Krıta-Sevah)[A] It ıs also definıtely known from ınscrıptıons that Allahabad Benaras, and the surroundıng tracts were ıncluded wıthın Jayacandra's kıngdom. The Gahadavala Connectıon wıth Banaras was more ıntımate, and perhaps because of the habıtual resıdence of the kıngs, there, or owıng to ıts relıgıons ımportance and advantageous sıtuatıon" ın the Centre of the country fo Hında[B] ıt become a sort of second capıtal almost from the begınnıng of theır rule Indeed the Moslem hıstorıans sıgnıficantly style Jayacandra "Raı of Banaras,[C] and so also do the several other outhorıtıes cıted above, and Merutunga ın hıs Prabandha cıntamanı [D]
- Prac As Soc Bang, 1880, PP 76-80, Ind Hıst Quart, V (1929) PP 14-30
- Ellıat, Hıstory of Indıa, II, P 223
- Ellıat, Hıstory of Indıa, P 222, 223, 300 etc Fırıshta Calls—Jayacandra "The prınce of Kanauȷ and Banaras" (Brıggs, I-P-178)
- Prabandhacıntamanı, V 210 (ed. Jınavıȷaya Munı, P-113), also see II, 121, P 74 of "Atha Kası nagaryam
Jayacandra ıtı nrıpah —The Hıstory of Kanauȷ, R S Trıpathı, P 324-325

6 प्रबन्धकोश- पृ० 55 56

3 श्रीहर्ष ने नैषधीयचरित मे काशी का तीर्थरूप मे वर्णन करते हुए कहा है कि काशी मे शरीर छोडने वालो को 'मोक्ष' मिलता है,[1] एव उसी तरह का वर्णन महाभारत के वनपर्व मे भी आया है।[2] परन्तु तीर्थरूप मे न तो उन्होने कश्मीर का न बगाल का, और न ही कन्नौज का वर्णन किया है, अत स्पष्ट है कि उन्हे अपनी जन्मभूमि का वात्सल्य स्नेह ऐसा वर्णन करने को विवश कर रहा होगा, तभी तो उन्होंने काशी को स्वर्ग से भी अधिक[3] एव इन्द्र की राजधानी अमरावती से भी अधिक सुन्दर होने का वर्णन किया है। स्वाभाविक रूपेण प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जन्मभूमि से अत्यधिक लगाव रहता है, क्योकि जननीजन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी। श्रीहर्ष ने नैषध मे काशी (वाराणसी) का इतना विस्तृत एव मनोहारी चित्रण किया है, उससे यह ध्वनित होता है कि श्रीहर्ष का काशी से असीम अनुराग उनके मन की बात को जाहिर कर देता है, और तो और उन्होने काशीराजा को कल्पवृक्ष के समान दानी[4] एव सभी राजाओ से कर लेने वाला[5] सम्राट बताकर जो उनकी प्रशसा की है, इससे स्पष्ट है कि उन्होने अपने आश्रयदाता को सर्वोत्तम बताकर अपनी कृतज्ञता का परिचय दिया है। अन्य राजाओ एव देशो के बारे मे उन्होने ऐसा विवरण नहीं दिया। अत निश्चित ही श्रीहर्ष काशीराजा के आश्रय मे बनारस की राजसभा मे रहे होगे, तभी तो उन्होने नैषधीयचरित मे ऐसी अभिव्यक्ति की। कल्पवृक्ष के समान काशीराजा को दानी बताने मे श्रीहर्ष ने अपने और काशीनरेश के सम्बन्ध की ओर एक तरह से यह सकेत किया है कि उन्होने मूर्खों (अल्पज्ञो) को पीछे कर मुझे विद्वान् होने का श्रेय प्रदान कर सम्मानित किया है।

4 श्रीहर्ष ने नैषधीयचरित मे विदर्भ की राजधानी कुण्डिनपुर का वर्णन करते हुए सत्तू पीसने वाली चक्कियो का जो उल्लेख किया है,[6] यह सत्तू उनके भोजपुर क्षेत्र (वाराणसी एव उसके पूर्वजनपद) मे रहने एव जन्म लेने का सटीक साक्ष्य है। आज भी इस क्षेत्र मे बाटी (सत्तू से बनने वाला भोज्य पदार्थ) एव चोखा भोज्य पदार्थ का प्रचलन देखा जा सकता है। निश्चय ही श्रीहर्ष ने तत्कालीन समय मे भी सत्तू एव उससे बने इस विशिष्ट भोज्य सामग्री को चखा होगा, तभी उन्होने इसका वर्णन किया है। आधुनिक सस्कृत कवि पण्डितो मे अग्रगण्य एव काव्यशास्त्रमर्मज्ञ प्रो० सुरेश चन्द्र पाडेजी ने भी इसी तथ्य से सहमति जताते हुए लिखा है''जो भी हो इस युक्ति के फलस्वरूप हम

---

1 वाराणसी निविशत न वसुन्धराया, तत्रस्थितिर्मखभुजा भुवने निवास ।
तत्तीर्थमुक्तवपुषामत एव मुक्ति स्वार्गात् पर पदमुदेतु मुदे तु की दक् ।। नै० 11/116
अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका ।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदापिका ।। काशीखण्ड 23/7ए गरूण्पुराण प्रेतखण्ड 24/5
त्रिस्थली सेतु मे भी पुराण वचन उद्धृत हैं–
अन्यानि मुक्ति क्षेत्रापि काशीप्राप्तिकराणि हि । काशीं प्राप्य विमुच्येत् नान्यथातीर्थकोटिभि ।।
शास्त्रीय सूक्ति भी यही तथ्य प्रतिपादित करती है–
मरण मगल यत्र विभूतिश्च विभूषणम् । कौपीन यत्रकौशेय सा काशी किन्नसेव्यते ।।
नैषधीयचरित मे भी इसी तथ्य का प्रतिपादन श्रीहर्ष ने बडी चारूतापूर्ण ढग से किया है–
ज्ञानाधिकासि सुकृतान्यधिकाशि कुर्या , कार्यं किमन्यकथनैरपि यत्र मृत्यो ।
एक जनाय सतताभयदानमन्य, द्वन्ये। वहत्यमृतसत्रमवारितीर्थ ।। नै० 11/120

2 अविमुक्त समावसाद्य तीर्थसेवी कुरूद्ह । दर्शनाद् देवदेवस्य मुच्यते ब्रह्महत्यया ।।
ततो वाराणसीं गत्वा देवमर्च्य वृषध्वजम् । कपिला-ह्रदमुपस्पृश्य, राजसूर्यफल लभेत् ।। महाभारत नवपर्व 84/79

3 न स्यात् कनीयसितरा यदि नाम काश्या ।
राजन्वती मुदिरमण्डनधन्वना भू ।। नै० 11/119 उत्तरार्द्ध

4 कि न द्रुमा जगति जाग्रति लक्षसख्या, स्तुल्योपनीतपिककाकफलोपभोगा ।
स्तुत्य कल्पविटपी फलसम्प्रदान, कुर्वन् स एष विबुधानमृतैकवृत्तीन् ।। नै० 11/125

5 अस्मैकर प्रवितरन्तु नृपा न कस्मादस्यैव तत्र यद्भूत प्रतिभू कृपाण ।
दैवाद्यदा प्रवितरन्तु न ते तदैव, नेद कृपा निजकृपाण करग्रहाय ।। नै० 11/126

6. प्रतिहट्टपथे धरट्टजात्पथिकाह्वनदसक्तुसौरभै ।
कलहान्न घनाद्यदुत्थितादधुनाप्युज्झति घर्घरस्वर ।। नै० 2/85

श्रीहर्ष को उस जनपद का निवासी स्वीकार करते है, जहॉ खान-पान मे सत्तू अधिक सम्मानित है। ऊपर के छद मे सत्तू का उल्लेख कवि के मन सस्कार का उल्लेख है।[1]

5 नैषधकार ने नैषधीयचरित मे ऋतुपर्ण नरेश के प्रसग मे प्रतीक रूप से कान्यकुब्जेश्वर (जयचन्द्र) तथा दिल्ली सम्राट (पृथ्वीराज चौहान) के कटु सम्बन्धो की ओर सकेत कर जयचन्द सम्राट का ही यशोगान किया है[2] कि इस राजा ऋतुपर्ण की भुजाओ से उत्पन्न कीर्ति रूपी गगा की धारा ने शत्रुओ की अकीर्ति रूपी यमुना नदी से जब रणभूमि मे सगम किया, तब वहॉ उस सगम मे तीर्थराज प्रयाग की पवित्रता आ गयी, उसमे विनिमज्जन (वीरगति प्राप्त) करने वाले वीरो ने देवलोक मे रम्भा जैसी अप्सराओ से आलिगन करने का आनन्द पाया। यहॉ ध्यान देने योग्य है कि गहडवालो की राजधानी कन्नौज एव काशी गगा नदी के तट पर है (जो गगा ऋतुपर्ण की कीर्तिधारा है) और यमुना नदी के तट पर दिल्ली है, दिल्ली के पृथ्वीराज चौहान गहडवालो के शत्रु है (मानो यमुना नदी का नीला पानी उनके अपयश का प्रवाह है) श्रीहर्ष वर्णन तो कर रहे है ऋतुपर्ण का लेकिन उनके अन्तर्मन मे प्रत्यक्षत वाराणसी एव दिल्ली है कान्यकुब्जेश्वर की कीर्ति गगा अपने प्रवाह मे दिल्ली के अपयश रूप यमुना जलप्रवाह को समेट लेती है। स्मरणीय है कि वाराणसी मे जो गगा प्रवाहित है, वह गगा एव यमुना दोनो का मिश्रण जल है, फिर भी वहॉ गगा नदी के नाम से ही जलधारा प्रवाहित होती है, अत स्पष्ट है कि श्रीहर्ष ने जयचन्द्र एव अपनी जन्मभूमि को सर्वोत्कृष्ट रूप से स्थान दिया है, यह उनके वाराणसी स्थली से अत्यधिक लगाव का द्योतक है, अत निश्चित ही श्रीहर्ष वाराणसी के जन्मा थे, तभी तो उन्होने अन्य राजाओ के वर्णन मे भी वाराणसी को ही परोक्ष रूप मे याद किया।

6 श्रीहर्ष नैषधीयचरित मे प्रतीक के माध्यम से गहडवाल (चंद्रवशी) राजाओ की ही प्रशसा करते है। सरस्वती द्वारा वर्णित राजा ऋतुपर्ण के गुणो की विस्मयपूर्ण प्रशसा दमयन्ती ने सुना, तदनन्तर अपना शिर हिलाकर उसने मनुवशीय उस राजा को अस्वीकार कर दिया है।[3] यहॉ कवि ने ''मनोरन्वयम्'' कहकर जो बात कहनी चाही है, वह यह है कि ऋतुपर्ण मनुवश अर्थात् सूर्यवश का है, एव दमयन्ती का मन चन्द्रवश (राजानल) के अनुराग मे डूबा हुआ है, अत सारे गुण होने पर भी उसका मनचन्द्र के विपरीत सूर्य मे कैसे अनुरक्त हो सकता है? कई विपरीत पक्ष कवि ऋतुपर्ण के वर्णन मे एक साथ घटित कर देता है, उनको कान्यकुब्जेश्वर का प्रतीक भी बनाता है, तिरस्कार भी करता है, क्योकि उसे वह सूर्यवशी क्षत्रिय कहता है, इसलिए भी कि दमयती का अनुराग चन्द्र (देवकुल) के क्षत्रिय (नल) के प्रति है। यहॉ जो कवि की तर्कशैली से ध्वनित हो रहा है कि उसके वर्तमान आश्रयदाता कान्यकुब्जेश्वर सूर्य (मनु) वश के नहीं, अपितु चद्रवश के क्षत्रिय हे उनका और पौराणिक राजा नल का कुल एक ही है, इसलिए भी श्रीहर्ष नलचरित का गान कर रहे है, कान्यकुब्जेश्वर चूकि वाराणसी मे रहते थे, जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है, अत स्पष्ट है कि श्रीहर्ष किसी न किसी रूप मे वाराणसी एव वाराणसी सम्राट का वर्णन हर जगह किये है, इससे पूर्णत प्रमाणित होता है कि श्रीहर्ष वाराणसी को ही अपना जन्म एव कर्मक्षेत्र मानते है।

---

1 कवि और काव्यशास्त्र–प्रो० सुरेश चन्द्र पाण्डे–राका प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम सस्करण 1981 पृ० 90

2 द्वेष्याकीर्तिकलिन्दशैलसुतया नद्यास्य यद्दोर्द्वयी – कीर्तिश्रेणिमयी समागममगाद्गगा रणप्रागणे
तत्तस्मिन्वि निमज्ज्य बाहुजभटैरारम्भि रम्भापरी – रम्भानन्दनिकेतनन्दनवनक्रीडाद्रराडम्बर ।। नै० 12/'2

3 इति श्रुतिस्वादिततद्गुणस्तुति सरस्वतीवाङ्मयविस्मयोत्थया ।
शिरस्तिर कम्पनयैव भीमजा न त मनोरन्वयमन्वयमन्यत् ।। नै० 12/13

7 श्रीहर्ष ने अपने जन्मस्थान एव कर्मस्थान का विवरण देने के लिए ही इन्द्र के द्वारा नल को यह वरदान दिलवाया कि राजन्! तुम्हारे निवास के लिए वाराणसी के समीप असी नदी के उस पार तुम्हारे नाम से चिह्नितपुर अर्थात् नलपुर (भविष्य मे) होगा, मुक्ति के इच्छुक भी तुम्हारे उसपुर (नलपुर) को दमयती के साथ रहने के सकोच भय से काशी मे नहीं किया, अर्थात् यद्यपि वर्तमान मे तुम्हारा निवास स्थान अन्यत्र (निषधदेश) मे है, किन्तु भविष्य मे काशी के पास असी नदी के पार मे नलपुर (नगवॉ)[1] नामक तुम्हारी राजधानी होगी, मोक्षाभिलाषी तुमको दमयन्ती के साथ सम्भोग प्राप्त करने मे सकोच होगा, इस कारण से मैने काशी मे तुम्हारी राजधानी नहीं बनाकर काशी के पास ही असी नदी के पार बनायी है, अत उस राजधानी मे दमयन्ती के साथ पूर्णत सुख सम्भोग करके अन्त मे तुम दोनो दम्पति क्रमश शिवपार्वती के सायुज्य को प्राप्त करना।[2] ध्यातव्य है कि देवो द्वारा नल को दिये गये जितने वरदानो का उल्लेख नैषध मे हुआ है, उन सभी का वर्णन महाभारत मे भी आया है, किन्तु नैषध मे इस वरदान का कि "काशी के पार तुम्हारे नाम की नगरी होगी" का उल्लेख न तो महाभारत मे हुआ और न ही अन्य नलकथाओ मे, तो श्रीहर्ष को नल को इस नूतन वरदान दिलवाने की नैषधीयचरित मे ही क्यो आवश्यकता पड गयी? स्पष्ट है कि श्रीहर्ष नूतन वरदान रूप इस अभिव्यक्ति से अपनी कर्मभूमि काशी के प्रति ही प्रेमातिशय अभिव्यक्त कर रहे है अपनी जन्मभूमि के प्रति विशेष प्रेम होना स्वाभाविक ही है क्योकि महाकवि कालिदास ने भी अपनी जन्मभूमि उज्जयिनी को याद करने के लिए यक्ष द्वारा मेघ को बलात् रामगिरि (महाराष्ट्र स्थित मल्लिनाथ इसे चित्रकूट स्थित पर्वत मानते है) से उज्जयिनी होते हुए कैलास (मानसरोवर के पास) स्थित अलकापुरी भेजते है कालिदास चाहते उसे सीधे मार्ग से भेज सकते थे परन्तु उन्हे अपनी जन्म स्थली उज्जयिनी की रह-रह कर याद आ रही थी, अत उन्होने यक्ष मुखात् मेघ से कहा "कि देखो उत्तर की ओर जाने मे यद्यपि उज्जयिनी होकर जाने वाला मार्ग कुछ टेढा पडेगा, फिर भी तुम उस नगर के राजभवनो को देखना न भूलना। तुम्हारी बिजली की चमक से डरकर वहॉ की स्त्रियॉ जो चचल कटाक्ष चलायेगी, उन पर यदि तुम न रीझे, तो समझ लो तुम्हारा जन्म व्यर्थ गया।[3] एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि इस महाकाव्य मे तीन नायक है–राजानल, कान्यकुब्जेश्वर एव स्वय कवि। तीनो का मिला-जुला व्यक्तित्व नायकत्व का निर्वाह करता है। पूरे महाकाव्य मे पौराणिक राजा नल का प्रतिनिधित्व बहुत कम है वस्तुत अन्त की रचमान स्थिति मे कवि और उसके आश्रयदाता ही इस महाकाव्य के नायक है। तीनो को वाराणसी क्षेत्र मे स्थापित करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि श्रीहर्ष काशी के पास उसी गाव मे रहते रहे होगे, तभी उन्होने नल को वहीं रहने का वरदान इन्द्र द्वारा दिलवाया। काशी के पास असी नदी (अब नाला) के उस पार नरियापुर, नैषढा (नैषधपुर) नगवॉ (नलग्राम), नरोत्तमपुर स्थित है, जिसमे नगवॉ (नलग्राम) मे गुप्तकालीन अभिलेख भी मिले है। यही प्राचीनतम गॉव है, जिसमे नल के रहने का या उसके नाम से होने का वरदान इन्द्र ने दिया था, शायद इसी गॉव मे श्रीहर्ष

---

1 नगवॉ (नलग्राम) मे गुप्तकालीन अभिलेख मिले हैं–द्रष्टव्य–भारत सावित्री-वासुदेव अग्रवाल, S M अली, जाग्रफी आफ पुराणाज, मस्तरामसिह–जाग्रफी आफ पुराणाज।

2 तवोपवाराणसि नामचिन्ह वासाय पारेसि पुर पुरास्ति ।
निर्वातुमिच्छोरपि तत्र भैमीसम्भोगसकोचभियाधिकाशि ।। नै०14/75

3 वक्र पन्था यदपि भवत प्रस्थितस्योत्तराशा सौधोत्सगप्रणयविमुखो मा स्म भूरूज्जयिन्या ।
विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्तत्र पौराङ्गनाना लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि ।। पूर्वमेघ 29

भी रहते होगे, एव यही से कान्यकुब्जेश्वर जयन्तचन्द्र की काशी स्थित राजसभा मे जाते रहे होगे। इस विवरण से इस बात का सकेत मिलता है कि श्रीहर्ष वाराणसी के ही निवासी थे।

8 इतिहास की प्रमुख पुस्तके, जो कन्नौज से सम्बन्धित है-यथा The History and Culture of Indian people The age of Imperial Kanauj— सम्पादक, आर०सी० मजूमदार एव The History of Kanauyto the Maslem conquest — Rama Shankar Tripathi— मे श्रीहर्ष के जन्मादि का कोई विवरण उपलब्ध नहीं है, जबकि काशी से सम्बन्धित श्री बलदेव उपाध्याय की प्रसिद्ध पुस्तक ''काशी की पाण्डित्य परम्परा'' मे काशी के विद्वानो का साहित्यिक अवदान मे श्रीहर्ष के योगदानकी चर्चा उल्लिखित है, साथ ही यह भी उल्लिखित है कि श्रीहर्ष जयचन्द्र की काशी की राजसभा म उपस्थित थे।[1] यह भी श्रीहर्ष को काशी का निवासी सिद्ध करने मे एक सहायक तर्क है।

9 श्रीहर्षप्रणीत खण्डनखण्डखाद्य के सुप्रसिद्ध व्याख्याकार श्रीपरमहसपरिव्राज- कार्यसत्यानन्दपूज्यपाद के शिष्य श्रीविद्यासागर ने श्रीहर्ष को वाराणसी का निवासी माना है। वे कहते है कि "खण्डनखण्डखाद्य के नाम से प्रख्यात ग्रन्थ के रचयिता का नाम श्री श्रीहर्षमिश्र है। सरस्वती का यह वरद पुत्र इसी वाराणसी की कभी शोभा बढाता रहा है अत एव पुस्तक के अन्त मे उल्लिखित" तामबूलद्वयमासन च लभते य कान्यकुब्जेश्वरात्" इस पद्याश की व्याख्या मे श्री विद्यासागर ने कहा है "कान्यकुब्जेश्वर काशिराजा"। कन्नौज के गहडवालवशी राजाओ की यह ले राजधानी काशी ही थी। नैषधीय चरित के आदि व्याख्याता श्री चाण्डू पडित (सवत् 1353 सन् 1297) नैषधी प्रचरित की टीका नैषधदीपिका) के आरम्भ मे ही श्रीहर्ष का काशी मे रहना बताते है ''वाराणस्या मुक्ति क्षेत्रेऽनुभूतपर ब्रह्मस्वरूपो- गगादर्शनादिना धर्मकर्ममध्यमासीन''।[2] नैषधीयचरित के एक अन्य टीकाकार गदाधर श्रीहर्ष को वाराणसी का निवासी बताते है। इन विद्वानो का कथन भी श्रीहर्ष को वाराणसी मे ही रहने का साक्ष्य प्रदान करता है, अत श्रीहर्ष के वाराणसी मे जन्म होने एव वहीं निवास करने मे शका का कोई अवसर शेष नहीं रह जाता।

10 श्रीहर्ष ने अपनी रचनाओ खण्डनखण्डखाद्य एव नैषधीचयरित मे बौद्ध धर्म के प्रति जो उदार भाव दिखाया है, उससे भी स्पष्ट है कि वह अपनी जन्मभूमि (स्थित सारनाथ, जो बौद्ध धर्म का केन्द्र था, एव जहॉ महात्मा बुद्ध ने प्रथम भाषण दिया था) की श्रीहर्ष निदा नहीं करना चाहते थे, स्मरणीय है कि अन्य दर्शनो (वेदान्त को छोडकर) की श्रीहर्ष ने जमकर आलोचना की थी, इससे भी स्पष्ट है कि श्रीहर्ष की जन्मभूमि वाराणसी ही थी। ''यद्यपि श्रीहर्ष के समय बौद्ध धर्म का बल बहुत घट गया था, फिर भी श्रीहर्ष की श्रद्धा उस पर प्रतीत होती है। खण्डनखण्डखाद्य मे श्रीहर्ष कहते है'' तदुक्त भगवता लकाकतारसूत्रे[3] साथ ही उन्होने यत्र तत्र बुद्ध के लिए बहुमान भी प्रकट

---

1 मध्ययुग मे 12वीं शताब्दी मे गहडवाल राजाओ ने कान्यकुब्ज के अतिरिक्त काशी को भी अपनी राजधानी बनाया था। आज भी काशी में राजघाट के पास इन राजाओं के दुर्ग के खण्डहर उपस्थित हैं। इन राजाओं में जयचन्द्र तथा उसके पिता विजयचन्द्र प्रसिद्ध थे, जिन्होंने काशी को धार्मिक महत्व के साथ ही राजनैतिक महत्व प्रदान किया।–काशी की पाण्डित्य परम्परा–पृ० 8, 9

श्रीहर्ष कान्यकुब्जनरेश जयचन्द्र की सभा में विद्यमान थे, जिनका उल्लेख श्रीहर्ष ने किया, ये नरेश गहडवाल कहलाते थे, इनकी राजधानी कन्नौज थी, परन्तु बाद में इन्होंने काशी को अपनी राजधानी बनायी। जयचन्द्र तथा उसके पिता विजयचन्द्र मिलकर सन् 1156 1193 तक शासन किया।

काशी की पाण्डित्य परम्परा, बलदेव उपाध्याय, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी II सस्करण, 1994, पृ० 70

2. खण्डनखण्डखाद्य-व्याख्याकार श्री विद्यासागर, षडदर्शन प्रकाशन प्रतिष्ठान, वाराणसी, स० 1979

3 खण्डनखाखाद्य । पृ० 62

किया है। नैषधीयचरित मे कामदेव से कहा जा रहा है" जितेन्द्रिय सुगत (बुद्ध) ने तुम (कामदेव) को जीतकर तुम्हारी (कामदेव के) कीर्तितनु (यश शरीर) को नष्ट कर दिया था, बची-खुची भूतमयी (प्रेतमयी) शरीर-यष्टि को भगवान शकर ने भस्म कर डाला।"[1] दार्शनिक धरातल पर तो सुगत-सम्मत अनिवर्चनीयता अपनाए बिना नैयायिको को परास्त करना सम्भव नहीं था, किन्तु साहित्यिक क्षेत्र मे सुगत की कीर्तिपताका को दिग-दिगन्त मे फहराना सौगत पादो मे श्रद्धातिरेक के बिना सम्भव नहीं। सभवत राजाओ की धर्मनीति इसलिए वैसी ही रही हो कि सौगत जगत का झुकाव कहीं म्लेच्छो की ओर न हो जाय।[2]

उपर्युक्त वर्णित सभी तर्कों से यह प्रमाणित हो जाता है कि श्रीहर्ष की जन्म एव कर्मस्थली वाराणसी ही थी।

श्रीहर्ष का व्यक्तित्व कृतित्व एवं परिवेश

जीवन परिचयः-

सस्कृत के विदग्धपडितो मे प्राय आत्मविज्ञापन की परम्परा नहीं रही, शायद इसे वह अपनी आत्मश्लाघा मानते रहे हो, इसीलिए वह अपने बारे मे अपनी लेखनी नहीं उठाये। स्पष्ट है कि वे लोग आत्मविज्ञापन परान्मुख रहे। विख्यात मनीषियो मे कालिदास, भारवि, माघ के बाद की श्रृखला मे श्रीहर्ष भी आते है, परन्तु वे अपने ग्रथ नैषधीयचरित्र मे अपने बारे मे यत्किचित् जानकारी दे गये है। नैषधीयचरित के सर्गान्त श्लोको[3] से यह पता चलता है कि उनके पिता का नाम श्रीहीर एव माता का नाम मामल्लदेवी था। किवदन्त्या साहित्यज्ञ मम्मट श्रीहर्ष के मामा थे। इसके बाद की जानकारी जैनविद्वान् राजशेखर सूरि के ग्रथ प्रबन्धकोष से मिलती है जिसमे उल्लेख मिलता है कि श्रीहर्ष के पिता काशीनरेश जयचन्द्र की सभा के प्रतिष्ठित विद्वान् थे। काशी मे ही एक विद्वान् उदयनाचार्य शास्त्रार्थ मे पराजित होने पर उन्होने अपने शिशु 'श्रीहर्ष' से कहा कि यदि तुम मेरे सच्चे पुत्र होगे, तो मेरे अपमान का बदला (शास्त्रार्थ मे उस व्यक्ति को पराजित कर) लोगे। इसके बाद वह स्वर्ग सिधार गये।[4] तदनन्तर श्रीहर्ष की मॉ मामल्लदेवी अपने पुत्र की गुरु बनकर उन्हे चिन्तामणि मत्र का[5] जप करने का उपदेश दिया, तत्पश्चात श्रीहर्ष ने गगा नदी के तट पर चिन्तामणि मत्र की साधना की। इससे प्रसन्न होकर त्रिपुरा देवी ने उन्हे अखण्ड विद्वान् बनने का आशीर्वाद दिया, तदनन्तर तर्कशास्त्र, व्याकरण, ज्योतिष, वेदान्त, योग का ज्ञान प्राप्तकर श्रीहर्ष ने लेखन कार्य के साथ-साथ व्याख्यान भी दिये परन्तु उनके लेखन एव सम्भाषण को विद्वान् व्यक्ति भी समझ नहीं पाते थे क्योकि श्रीहर्ष की भाषा अत्यधिक क्लिष्ट थी। इसके बाद श्रीहर्ष ने पुन त्रिपुरा देवी को उपासना की एव देवी से प्रार्थना की, कि आपके द्वारा दिया गया प्रखरतम ज्ञान जब लोगो की समझ मे ही नहीं

---

1 सुगत एव विजित्य जितेन्द्रिय त्वदुरूकीर्तितनु यदनाशयत् ।
तव तनूमवशिष्टवर्ती तत समिति भूतमयीमहरद् हर ॥ नै० 4/80

2 खण्डनखाखाद्य । पृ० 12

3 श्रीहर्ष कविराजराजिमुकुटालकारहीर सुत, श्रीहरि सुषुवे जितेन्द्रियचप मामल्लदेवी च यम् ।
तच्चन्तामणिमत्रचिन्तनफले श्रृड्गारभग्या महा - काव्ये चारूणि नैषधीयचरिते सर्गोऽयमादिर्गत ॥ नै० 1/145

4 पूर्वस्या वाराणस्या पुरि गोविन्दचन्द्रो राजा तत्पुत्रो जयन्तचन्द्र. तस्यराज्ञोबहव विद्वास। तत्रैको हीर नामा विप्र। तस्यनन्दन प्राज्ञचकवर्ती श्रीहर्ष। सोऽद्यापिबालावस्थ सभाया राजकीये नैकेन पडितेन वादिनो हीरो राजसमक्षजित्तवा मुद्रित्तवदन कृत। लज्जापड्के मिग्न। बैर बभार, धारालम् मृत्युकाले हर्ष स वभाषे वत्स! अमुकेन पण्डितेनामहत्य राजदृष्टौ जित , तन्मेदुखम्, यदि सत्पुत्रोऽसि, तदात जयेक्ष्मापसदसि, श्रीहर्षेणोक्तम् ओमिति, हीरो द्यागत।" प्रबन्धकोश - पृ० 54

5 अवामावामार्द्धे सकलमुभयाकारघटनाद् द्विधाभूत रूप भगवदभिधेय भवति यत् ।
तदन्तर्मन्त्र में स्मरहरमय सेन्दुममल निराकार शश्वज्जप नरपते सिध्यतु सते ॥

आता तो, फिर यह मेरे किस काम का? फलत त्रिपुरा देवी ने श्रीहर्ष को रात मे दही खाने एव शिर मे नीला कपडा रखने को कहा जिससे कफ इत्यादि के माध्यम से उसकी बुद्धि कुछ कुण्ठित, (जाड्य) हुई एव उन्होने अनेक ग्रथो की रचना की। इसके पश्चात श्रीहर्ष जयचन्द्र की सभा मे पहुँचे एव राजा की गुणप्रियता से हर्षित श्रीहर्ष ने उसकी प्रशसा मे अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा

गोविन्दनन्दनतया च वपु श्रिया च माऽस्मिन्नृपे कुरुत कामधिय तरुण्य।
अस्त्रीकरोति जगता विषये स्मर स्त्रीरस्त्री जन पुनरनेन विधीयते स्त्री ।।[1]

ऐसी सारगर्भित एव विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान को सुनकर उपस्थित समस्त सभासदो सहित राजा भी अत्यन्त सन्तुष्ट हुए। सभा मे नैषधकार श्रीहर्ष ने अपने पिता के विजेता उदयनाचार्य को कटाक्ष करते हुए कहा–

साहित्ये सुकुमारवस्तुनि दृढन्यायग्रहग्रन्थिले तर्के वा मयि सविधातरि सम लीलायते भारती ।
शय्या वाऽस्तु मृदुत्तरच्छदवती दर्भाङ्कुरैरास्तृता भूमिर्वा हृदयङ्गमो यदि पतिस्तुल्या रतिर्योषिताम् ।।[2]

इसी प्रसग मे एक किवदन्ती है कि प्रखरतम पाण्डित्य प्राप्त करने के बाद जब श्रीहर्ष काशी नरेश के राजदरबार मे आये तो उनके आने पर उदयनाचार्य ने (शायद व्यग्य करते हुए) "गौर्गौरागत" (बैल आया) कहा उदयनाचार्य के कटाक्ष का तर्कयुक्त कटाक्ष शैली मे श्रीहर्ष ने उत्तर देते हुए कहा कि–

कि गवि गोत्त्वममुतागवि गोत्त्व यदि गवि गोत्त्व नहि मयि गोत्त्वम् ।
अगवि च गोत्त्व तव यदि साध्य, भवतु भवत्यपि सप्रति गोत्त्वम् ।।

अर्थात् गोभिन्न को यदि तुम गो (बैल या मूर्ख) सिद्ध करना चाहते हो, तो वह गोत्त्व (मूर्खत्त्व) तुम मे भी है। तदनन्तर श्रीहर्ष की पाण्डित्य परायणता से पराभूत श्री हीर विजयी उदयनाचार्य ने श्रीहर्ष की प्रशसा करते हुए कहा कि भारतीसिद्ध वादिगज केसरी विद्वद्वर! आपके समान कोई भी विद्वान् नहीं है फिर आपसे अधिक विद्वान् कोई हो भी कैसे सकता है क्योकि

हिस्रा सन्ति सहस्रशोऽपि विपिने शौण्डीर्यवीर्योद्धता
स्तस्यैकस्य पुन स्तुवीमहि मह सिहस्य विश्वोत्तरम ।
केलि कोलकुलैर्मदो मदकलै कोलाहल नाहले
सहर्षो महपैश्च यस्य मुमुचे साहङ्कृते हुड्कृते ।।[3]

ऐसा सुनकर श्रीहर्ष का क्रोध शान्त हो गया। राजा जयन्तचन्द्र ने श्रीहर्ष स्तुति की प्रशसा करते हुए दोनो विद्वानो को परस्पर स्नेहपूर्वक आलिगन कराकर राजमहल मे दोनो का सत्कार कर स्वर्णमुद्राओ से दोनो को पुरस्कृत किया।

अनन्तर महाकवि श्रीहर्ष ने कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द्र की राजसभा का सदस्य होना अगीकार कर लिया, एव महाराज के अनुरोध पर कि "कवीश्वर किसी उत्तम काव्यप्रबन्ध का सृजन कीजिए," श्रीहर्ष ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर नैषधीयचरित महाकाव्य की रचना की, जिसे देखकर राजा अत्यधिक प्रसन्न हुए, एव कहा कि इस ग्रथ को आप कश्मीर मे स्थित शारदापीठ मे सरस्वती के हाथो मे रख दीजिए वे दोषरहित ग्रथ का शिरकम्पनपूर्वक अभिनन्दन करती है, और यदि ग्रथ सदोष हुआ तो वे उसे कूडे के

---

1 राजशेखर सूरिकृत प्रबन्धकोशान्तर्गत श्रीहर्षकविप्रबन्ध श्लोक-1

5 श्रीहर्ष कवि प्रबन्ध श्लोक–2

1 श्रीहर्ष कविप्रबन्ध श्लोक–3

सदृश दूर फेक देती है। इस प्रकार सरस्वती द्वारा अभिनन्दित ग्रथ का प्रमाणपत्र वहाँ के राजा से लाइये, ऐसा कहकर श्रीहर्ष प्रभूतधन के साथ कश्मीर भेजा। श्रीहर्ष ने सरस्वती के हाथो मे नैषधीयचरित को रखा परन्तु सरस्वती ने उसे दूर फेक दिया। श्रीहर्ष के कहने पर पर कि आप मेरे प्रबन्धग्रथ को सामान्य ग्रथ क्यो मान रहीं है, तो सरस्वती ने प्रत्युत्तर मे कहा कि तुमने अपने ग्रथ मे मुझे विष्णु की पत्नी बनाकर मेरे कन्यात्त्व का हरण किया है[1] इसी दोष के कारण मैने तुम्हारे ग्रथ को फेक दिया क्योकि अग्नि, ठग, (धूर्त), रोग, मृत्यु और मर्मभाषणकर्ता वक्तो ये पॉच योगियो को भी उद्विग्न कर देते है।[2] यथा -

पावको वञ्चको व्याधि पञ्चत्त्व मर्म भाषक। योगिनामप्यमी पञ्च प्रायेणोद्वेगकारका ।।

इसका उत्तर देते हुए पुराणविद् श्रीहर्ष ने कहा कि क्या एक अवतार मे आपने भगवान विष्णु पतिरुप मे स्वीकार नहीं किया था? क्या लोक मे अपको विष्णुप्रिया नहीं कहा जाता? तब आपका मेरे ऊपर क्रोध क्या व्यर्थ नहीं है? जिससे आप मेरी रचना का अपमान कर रही है। यह सुनकर सरस्वती देवी ने नैषीधीय चरित को उठा लिया एव विद्वज्जनो के सम्मुख उसका अभिवादन किया। श्रीहर्ष ने कश्मीर पहुँचकर राजा को अपना ग्रथ दिखाना चाहा परन्तु राज पण्डितो ने श्रीहर्ष की विदग्धता की ईर्ष्यावश उसे राजा के पास तक ही नहीं पहुँचने दिया। श्रीहर्ष बहुत दिनो तक वहीं ठहरे, इसी बीच नदी के किनारे हुए दो स्त्रियो के कलह का निपटारा करने पर गवाह के तौर पर उन स्त्रियो द्वारा एक परदेशी का जिक्र आने पर श्रीहर्ष प्रथम बार कश्मीर की राजसभा मे पहुँचे, एव राजा के पूँछे जाने पर श्रीहर्ष ने कहा कि मै परदेशी प्राकृत भाषा नहीं जानता हूँ, परन्तु उनकी (स्त्रियो की) बातचीत को मै उन्हीं के वाक्यो मे बता सकता हूँ, ऐसे शक्ति मुझमे है, एव राजा के समझा उन्हीं वाकयो को दुहरा दिया। राजा श्रीहर्ष की इस प्रकार की प्रखरतम प्रज्ञा से अत्यन्त प्रसन्न हुए, एव पूँछा कि हे मेधाशिरोमणि! आप कौन है? तब श्रीहर्ष ने अपना परिचय दिया एव कहा कि राजन्! मै आपके पण्डितो के व्यवहार से अत्यन्त दुखी हूँ[3]। विद्वान् राजा ने विद्वज्जनो को बुलाकर कहा कि मूढो! इस प्रकार के (विद्वान्) रत्न से ईर्ष्या नहीं की जाती क्योकि –

वर प्रज्जवलिते वह्नावह्नाय निहित वपु। न पुनर्गुणसम्पन्ने कृत स्वल्पेऽपि मत्सर ।
वर सा निर्गुणाऽवस्था यस्या कोऽपि न मत्सरी। गुणयोगे तु वैमुख्य प्राय सुमनसामपि ।।[4]

(अर्थात् दहकती हुई अग्नि मे शरीर को शीघ्र ही जला डालना अच्छा है, परन्तु गुणी पुरुष के साथ थोडी भी ईर्ष्या करना उचित नहीं है। वह गुणविहीन अवस्था श्रेष्ठ है, जिसमे कोई ईर्ष्या नहीं रखता क्योकि गुणियो के प्रति वैमुख्य होना बडे-बडे विद्वानो मे भी देखा जाता है इसलिए तुम सब लोग इस महात्मा को अपने अपने घरो मे ले जाकर सत्कार करो। तब श्रीहर्ष ने कहा कि जिस प्रकार परम रमणीय रमणी युवको के चित्त को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है वह बालको चित्त को आकर्षित नहीं कर सकती है, उसी प्रकार मेरी यह उक्ति (काव्य) सुधारस बनकर विद्वानो के चित्त को आच्यापित करती है, तो इसे रसहीन (हृदयहीन) पुरुषो को आराधना करने की क्या आवश्यकता[5] श्रीहर्ष के ऐसे कथन को सुनकर राजपण्डित लज्जित हो गये एव अपने-अपने घर ले जाकर उन्हाने श्रीहर्ष का सत्कार किया, साथ ही

---

2 देवी पवित्रितचतुर्थभुजवामभागा वागालपत्पुनरिमा गरिमाभिरामाम् ।
एतस्य निष्कृप कृपाणसनाथपाणे पाणिग्रहादनुगृहाण गण गुणानाम् ।। नै० 11/66ए श्रीहर्ष कवि प्रबन्ध श्लोक-4

2. याचको वञ्चको व्याधि· पञ्चत्तव मर्मभाषक। योगिनामप्यमी पञ्च प्रायणोंद्वेगहेतव।। श्रीहर्ष कवि प्रबन्धकोष- श्लोक-5

3 श्रीहर्ष प्रबन्ध- पृष्ठ - 57-58

4 श्रीहर्ष कवि प्रबन्ध - श्लोक–5, 6

5 यथा युनस्तद्वत्परमरणीययापि रमणी, कुमाराणामन्त करणहरण नैव कुरूते।
मदुक्ति श्चेन्द्रदन्तर्मदयति सुधीभूय सुधिय किमस्यानाम स्यादरस पुरूषानादरमरै।। श्रीहर्ष कविप्रबन्ध श्लोक-8ए
नैषध, कविप्रशस्ति श्लोक-1

कश्मीर नरेश माधवदेव से नैषध की शुद्धता का राजमुद्राकित प्रमाण पत्र प्रदान करवाया। राजमुद्राकित प्रमाणपत्र लेकर श्रीहर्ष महाराज जयचन्द्र के पास काशी आये जयचन्द्र से कश्मीर का सभी वृतान्त कहा, वह अपनी कार्योपलब्धि से सन्तुष्ट हुए तदनन्तर नैषध ससार मे विख्यात हुआ। इसी बीच जयचन्द्र के प्रधानमत्री पद्माकर ने गुजरात के राजा शालापति की विधवा सुन्दरी एव विदुषी युवा पत्नी सूहवदेवी को काशी लाकर अपने राजा जयचन्द्र की भोग पत्नी बनाया। वह स्वय को कलाभारती कहती थी जबकि श्रीहर्ष नरभारती के नाम से जाने जाते थे, यह उस मत्सरिणी को असह्य लगता था। एक बार श्रीहर्ष (को जानते हुए भी) से पूँछा कि आप कौन है? श्रीहर्ष ने कहा मै कलासर्वज्ञ हूँ। तब सूहवदेवी ने कहा कि आप मुझे एक जोडी जूता (चप्पल) पहनाइये। उसका तात्पर्य यह था कि अगर ये ब्राह्मण होने के नाते शूद्र कर्म (उपानह निर्माण) को कहते है, कि मै नहीं बना सकता, तब ये कलासर्वज्ञ नहीं माने जायेगे, परन्तु श्रीहर्ष ने उसकी चुनौती स्वीकार की एव जगल जाकर बल्कल से एक जोडी जूते बनाकर उन्हे सूहवदेवी को पहना दिया परन्तु उसकी इस तरह की अशोभनीय कुचेष्टा से अपनी खिन्नता को राजा से कहकर श्रीहर्ष ने गगा नदी के किनारे सन्यास ग्रहण कर लिया अर्थात् राजनिष्ठा से अपने को असयुक्त कर लिया इसके बाद श्रीहर्ष के जीन लीला के बारे मे कुछ भी उपलब्ध नहीं होता, परन्तु इतना तो कहा ही जा सकता है श्रीहर्ष के ग्रथ खण्डन खण्ड खाद्य का खण्डन 1200 ई० मे गगेश उपाध्याय ने "तत्त्व चितामणि" नाम ग्रथ लिखकर किया था। अत श्रीहर्ष 1200 ई० या उसके बाद तक जीवित नहीं रहे होगे नहीं तो वह अवश्य गगेश उपाध्याय का प्रत्युत्तर देते एव ग्रथ लेखन अवश्य करते, पडिताभिमानी जो थे। उनके (जन्म) जीवन के बारे मे यह कहा जा सकता है कि चूकि उन्होने विजयप्रशस्ति काव्य राजा विजयचन्द्र के बारे मे लिखा था, एव उनका शासनकाल 1114ई० से 1154 ई० से तक था, अत वह 1154 ई० के पहले के नहीं हो सकते। अत श्रीहर्ष का जीवन काल 1114 ई० से 1200 ई० के बीच ही रखा जा सकता है।

श्रीहर्ष का व्यक्तित्त्व

किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्त्व उसके जीवनदर्शन का मापक होता है। व्यक्तित्त्व के माध्यम से हम किसी भी व्यक्ति के जीवन शैली के बारे मे आकलन कर सकते है। वास्त्व मे व्यक्तित्त्व कोई बाह्य आवरण नहीं होता बल्कि वह तो मनुष्य के आन्तरिक भावो की विविधताओ का समाकलन मात्र होता है। श्रीहर्ष ने भी अपने ग्रथो मे अपने व्यक्तित्त्व के बारे मे कुछ विशेष नहीं लिखा फिर भी उनके ग्रथो के अध्ययनान्तर हम यह निष्कर्ष सहजतया निकाल ही लेते हैं कि उनकी कृतियो मे उनका व्यक्तित्त्व प्रतिबिम्बित होता है। नैषधीयचरित के अनुशीलन से परिलक्षित होता है कि श्रीहष मातृ पितृभक्ति, देशभक्त, सस्कृतानुरागी, प्रकृतिप्रेमी, गणितज्ञ, भूगोलवेत्ता, सस्कृतिविद्, कलाशास्त्रज्ञ, काव्यमनीषी, दार्शनिक, तन्त्रमन्त्रविद्, व्याकरणविद, ज्योतिषशास्त्रविंद्, शकुनशास्त्रवेत्ता, साभुद्रिकशास्त्रज्ञाता, धर्मशास्त्रविद, राजनीतिशास्त्रवेत्ता, नीतिशास्त्रवेत्ता, चिकित्साशास्त्रवेत्ता, कामशास्त्रज्ञ, पाकक्रियाज्ञाता, अस्त्रशस्त्रशास्त्रज्ञ, अश्वशास्त्रविद, सौन्दर्यशास्त्री, व्यवहारविद, हासपरिहासप्रेमी, वेदवेदागपुराणैतिहासज्ञाता, कर्मनिष्ठ ईश्वराराधक, नवीनभाषाशैली का व्याख्याता, कल्पनाशक्ति का विलक्षण प्रतिपादक, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, एव पडिताभिमानी थे।,

श्रीहर्ष के जीवनवृत्त से पता चलता है कि बचपन मे ही इनके पिता श्रीहीर की जीवन लीला समाप्त हो गयी थी। इनकी माता मामल्लदेवी ने ही इन्हे माता पिता दोनो का प्यार दिया एव दोनो का कर्तव्यनिर्वहन किया। श्रीहर्ष की पितृभक्ति का प्रमाण यह है कि इन्होने अपने पिता को शास्त्रार्थ मे हराने

वाले उदयनाचार्य (नैयायिक) को शास्त्रार्थ मे हराया, एव उनकी आलोचना की।[1] क्योकि इन्होने अपने पिता को शास्त्रार्थ मे पराजित करने वाले को पराभूत करने का वचन जो दिया था। इनकी माता ने ही गुरु बनकर चिन्तामणि मत्र की सिद्धि के लिए इनसे साधना करायी, जिसके परिणाम स्वरुप यह सम्पूर्ण विद्याओ मे पारगत हुए। कवि की मातृभक्ति का ही परिणाम है कि उन्होने अपने ग्रथ नैषधीयचरित मे माता की वन्दना गुरु रुप मे की।[2]

श्रीहर्ष माध्यकालीन सस्कृति के विद्वान् है। तत्कालीन परिस्थितियो मे कवि लोग केवल राज्याश्रित सम्राट की ही प्रशसावश ग्रथ लेखन करते थे, परन्तु श्रीहर्ष उसके साथ साथ अपने देश की महिमा एव वहीं पर रहने का वरण करने वाला विचार सरस्वती के मुख से कहलाते हुए कहते है कि मनु आदि आर्यपुरुषो ने आश्रमो मे गृहस्थाश्रम की भॉति देशो मे भारतवर्ष की भूरि-भूरि प्रशसा की है, क्योकि स्वर्ग मे रहने वालो को केवल सुख ही सुलभ है धर्मकार्य नहीं जबकि भारतवर्ष मे सुख के साथ साथ धर्मकार्य भी सुलभ है। इसके अतिरिक्त यज्ञार्जन से देव प्रसाद भी यहॉ सुलभ है, फिर तीन को त्याग कर क्यो एक की अभिलाषा करुँ?[3] एव माताभूमि पुत्रोऽह पृथिव्या तथा "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" जैसे कथन तो उनके जीवन के ध्येय ही है और तो और भारतभूमि से महाप्रमाण करने पर ही स्वर्ग की प्राप्ति होती है।[4] एव पुण्यक्षीण होने पर मृत्यु लोक मिलता है। "क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोक विशन्ति" शायद तभी उन्होने अपनी जन्मभूमि काशी को स्वर्ग से भी ऊँचा स्थान दिया।[5]

कविताकामनी श्रीहर्ष के आनन्द के पारवार का पता उनके द्वारा की गयी रचनाओ से ही ध्वनित होता है। उन्होने सस्कृत भाषा को ही अपनी ग्रथ सज्जा का माध्यम बनाया। सभी विद्याओ मे पारगत व्यक्ति तो किसी भी भाषा मे ग्रथ सृजन कर सकता था परन्तु उन्होने सस्कृत भाषा को ही चुना, यह उनके सस्कृतानुराग का परिचायक है। उन्होने नैषधीयचरित मे सस्कृत भाषा का यशोगान करते हुए लिखा कि सस्कृत केवल मनुष्यो की ही नहीं बल्कि देवताओ की भी भाषा थी, एव सर्वत्र (पृथ्वी लोक एव स्वर्गलोक मे) इस भाषा के बोलचाल का प्रचलन था, शायद तभी विदर्भनरेश राजा भीम द्वारा आहूत दमयती के स्वयवर मे सभी राजागण सस्कृत भाषा बोल रहे थे जिससे मनुष्यो तथा देवताओ को पहचानना मुश्किल हो रहा था।[6]

मामल्लदेवीसुत श्रीहर्ष प्रकृति प्रेमी थे। 'उनके प्रकृतिप्रेम का ही परिणाम था कि उन्होने समुद्र की निसर्गछटा से आकृष्ट होकर 'अर्णववर्णन' जैसे ग्रथ की रचना की। गगा नदी का तट तो उन्हे अत्यधिक मानभावन प्रतीत होता था क्योकि उन्होने वहीं चिन्तामणि मत्र का जप किया, एव अत मे सयास लेकर गगा के किनारे का ही आश्रय लिया। यह तो जग जाहिर है कि प्रकृति मानव की चिरसगिनी रही है, जन्म से लेकर मरणपर्यन्त वह प्रकृति की ही गोद मे रमण करता है। श्रीहर्ष अत्यन्त सरस एव सहृदय कवि थे, शायद तभी वे नल के खिन्न मन को बहलाने के लिए उपवन का प्रसग प्रस्तुत करते है, परन्तु वहॉ भी प्रियाविहीन उद्यान जो कि विविध वृक्षो लताओ एव पुष्पो से सज्जित तथा सुगन्धित था वह राजा नल को

---

1 मुक्तये य शिलात्तवाय शास्त्रमूचे सचेतसाम्। गोतम तमवेतैव यथा वित्थ तथैव स ।। नै० 17/74

2 तस्य द्वदश एष मातृचरणाम्भोजालिमौलेर्महा –
काव्येऽय व्यगलन्नलस्य चरिते सर्गो निसर्गोज्जवल ।। नै० 12/113 उत्तरार्द्ध

3 वर्षेषु यद्भारतमार्यधुर्या स्तुवन्ति गार्हस्थ्यमिवाश्रमेषु। तत्रास्मि पत्युर्वरिवस्ययेड शर्मोर्मिकिर्मीग्नि धर्मलिप्सु ।। नै० 6/97
स्वर्गे सता शर्म पर न धर्मा भवन्ति भूमाविह तच्च ते च । शक्या मखेनापि भुदोऽमराणा कथ विहाय त्रयमेकमीहे ।। नै० 6/98

4 साधोरपि खलु स्वलु गामिताधो गमी स तु स्वर्गमित प्रयाणे। नै० 6/99 पूर्वार्द्ध

5 वाराणसी निवसते न वसुन्धराया तत्र स्थितिर्मखभुजा भुवने निवास ।
तत्तीर्थमुक्तवपुषामत एव मुक्ति स्वर्गात्परपदमुदेतु मुदे तु कीदृक ।। नै० 11/116

6 अन्योन्यभाषानवबोधभीते सस्कृत्रिमाभिर्व्यवहारवत्सु। दिग्भय. समेतेषु नरेषु वाग्भि सौवर्गवर्गो न जनैरचिह्नि।। नै० 10/34

आनन्दित न कर क्लेश ही दे रहा था, केतकी का पुष्प उन्हे कामबाण की लग रहा था।[1] कवि वनपवन का वर्णन अत्यन्त सहजता से करते हुए कहते हैं कि लतारुपी ललना का नृत्यकलागुरु पुष्प और सौरभ का चोर, कुसुम मकरन्द से सुवासित एव सलिल मे तैरने वाला वनपवन नल की सेवा कर रहा था।[2] श्रीहर्ष ने पग पग पर प्रकृति का मानवीकरण कर उससे मानवोचित कार्य भी करवाया है। वृक्ष अपने पल्लवसदृश करो के द्वारा फलफूलो को लेकर राजा नल का अतिथ्य करते दिखते है।[3] बडी बडी बावलियो के तटो पर तरगो द्वारा वादन (कलकलध्वनि), कोयलो एव भ्रमरो के द्वारा गायन (उनका गुजन) मयूरो द्वारा नृत्य एव उनकी वाणी सगीत से राजा नल की सेवा किये जाने का विवरण किस व्यक्ति के मन को आकर्षित नहीं कर लेता।[4] नल द्वारा हस को पकडने पर उनके सहजीवी पक्षियो का विलाप एव उनका सरोवर परित्याग कर चीखते हुए उडना, जैसे दृश्य से यह ध्वनित होता है कि प्रकृति भी राजा नल के गर्हित कृत्य की निन्दाकर रही है।[5] कवि का प्रभातवर्णन अत्यन्त सरस एव रमणीय दृश्योत्पादक है।[6] एव सूर्यास्त का वर्णन उनकी विदग्धता की अमिट छाप ही छोड देता है जिसमे वह कहते है कि अपने पारिपार्श्विक रुप दड को धारण कर सूर्य रुपी सन्यासी सभी दिशाओ मे घूमता रहा, और सन्ध्या के समय समुद्र मे गोता लगाते हुए उसने सान्ध्यअरुण मेघरुप काषाय वस्त्र को ऊपर रख दिया।[7] स्पष्ट है कि श्रीहर्ष के काव्योपवन मे प्रकृतिनटी विविध विलासो के द्वारा रमण करती हुई, कवि की कल्पना एव बहुज्ञता के स्वाभाविक रुप को सजा सवार रही है। कवि ने अपनी प्रकृति सुन्दरी को परिष्कृत रुप मे प्रस्तुत कर यह दिखला दिया कि उसे प्रकृति के अद्वितीय सौन्दर्य एव उसके द्वारा शाश्वत सत्य के रहस्य को उद्घाटित करने मे महारत हासिल है।

नैषधीयचरित मे उपलब्ध विवरण से ध्वनित होता है कि नैषधकार गणित विद्या मे भी दक्ष थे। गणित मे प्रचलित शब्दो यथा शून्य एव सख्याओ यथा एक, दो, तीन, चार, पॉच का विवरण यथा स्थान दिया है। गणित मे अपनायी जाने वाली विधि बाटने (भाग) का उल्लेख श्रीहर्ष ने व्यजना मे किया है।[8] शून्य का विवरण योजनाप्रसग मे रमणीय ढग से प्रतिपादित करते हुए श्रीहर्ष कहते है कि दही बडा इतने विशिष्ट ढग से बनाया, मानो वह भोजन (विधि) की समाप्ति का सूचक था उसी प्रकार जिस प्रकार पुस्तको के अत मे गोल गोल चिन्ह (शून्य) बना की दिये जाते है।[9]

नैषधीयचरित के अनुशीलन से यह तथ्य दृष्टिगोचर होता है कि श्रीहर्ष भूगोलवेत्ता एव भूगर्भशास्त्री भी थे। भौगोलिक विवरणो यथा– शीलकाल मे दिन बडे एव ग्रीष्म ऋतु मे राते लम्बी होती है।[1] ~~है।[10] समुद्र मे बडवाग्नि पैदा होती है।[1] चन्द्रमा एव सूर्य रात्रि~~ एव दिन के कारक है।[2] ~~समुद्र मे ज्वार भाटा~~

1 धनुर्मधुस्विन्नकरोऽपि भीमजापर परागैस्त्व धूलिहस्तयन् । प्रसूनधन्वा शरसात्करोति मामिति क्रुधाक्रुश्यत तेन केतकम्।। नै० 1/81

2 लताबलालास्यकलागुरुस्तरु प्रसूनगन्धोत्करपश्यतोहर । असेवतामु मधुगन्धवारिणि प्रणीतलीलाप्लवनो वनानिल ।। नै० 1/106

3 फलानि पुष्पाणि च पल्लवे करे वयोतिपातोद्गत्तवात्तवेपिते ।
स्थितै समादाय महर्षिवार्धकाद्वने तदातिथ्यमशिक्षि शाखिभि ।। 1/77

4 विलासवापीतटवीचिवादनात्पिकालिगीते शिखिलास्यलाघवात्। वनेऽपि तौर्यत्रिकमारुराध त क्व भागमाप्नोति न भाग्यभाजन ।। नै० 1/102

5 न वासयोग्या वसुधेयमीदृशस्त्वमङ्ग! यस्या पतिरुज्झितस्थित ।
इति प्रहाय क्षितिमाश्रिता नभ खगास्तमाचुक्रुशुरारवै खलु ।। नै० 1/128

6 तटतरूखग श्रेणीसाराविणैरिवि साम्प्रत, सरसि विगलन्निद्रामुद्राजनिष्ट सरोजनी ।
अधरसुधया मध्ये मध्ये वधूमुखलब्धया धयति मधुप स्वादुकार मधूनि सरोरूहाम् ।। नै० 19/29

7 आदाय दण्ड सकलासु दिक्षु योऽय परिभ्राम्यति भानुभिक्षु ।
अब्धौ निमज्जन्निव तापसोऽयं सन्ध्याभ्रकाशायमधत्तसायम् ।। नै० 22/12

8 विभजयमेरूर्न यदर्थसात् कृतो न सिन्धुरुत्सर्गजिलव्ययैमरू । नै० 1/16 पूर्वार्द्ध

9 समाप्तिलिप्येव भुजिक्रियाविधेर्दलोदर वर्तुलयालयीकृतम् ।
अलकृत क्षीरवटैस्तश्नता रराज पाकर्षितगैरिकश्रिया ।। नै० 16/98

10 अहो अहोभिर्महिमा हिमागमेऽप्यभिप्रपेदे प्रति ता स्मरार्दिताम् ।
तपर्तुपूर्तावपि मेदसा भरा विभावरीभिर्बिभराबभूविरे ।। नै० 1/41

समुद्र मे बडवाग्नि पैदा होती है।[1] चन्द्रमा एव सूर्य रात्रि एव दिन के कारक है।[2] समुद्र मे ज्वार भाटा आने का कारण चन्द्रमा हे[3], से पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि श्रीहर्ष भौगोलिक गतिविधयो के भी जानकार थे।

श्रीहर्ष भारत्त्वर्ष (जम्बू द्वीप) के विभिन्न प्रान्तो की राजधानियो एव उनकी सस्कृतियो का विवरण नैषधीयचरित मे देकर अपनी सस्कृतिरुचि का दिग्दर्शन करवाया है। भीम के महल मे नल दमयन्ती के विवाहानन्तर भोजन प्रसगं मे विभिन्न प्रान्तो के भोजन वैविध्य का वर्णन, विभिन्न प्रकार के वस्त्रो का वर्णन, विवाह के समय मगलगान (उलूलु ध्वनि) एव पाणिग्रहण की विधि तथा वरवधू द्वारा ध्रुव नक्षत्रादि का दर्शन, लाजा होम एव दमयन्ती का विविध प्रकार के आभूषणो कर्णफल, माणिक्यहार, केशो मे पुष्पगूथना जैसे अलकारणो से अलकृत हो सजसवर कर विदा करने हेतु भीम का जलाशय तक जाकर कन्या एव दामाद को विदा करना इन विवरणो से स्पष्ट हो जाता है कि श्रीहर्ष नें विविध प्रान्तो की सस्कृतियो का वर्णन नेषधीयचरित मे किया हे, यथा दर्पण देखना, बरात वर्णन मे हासपरिहास, नल के द्वारा अपने शिर के बालो को दो भागो मे विभाजित कर सवारना, तो दमयन्ती द्वारा शून्य (बिन्दुआकृति) की बिन्दी लगाना नल की पूजा वर्णन, भोज द्वारा नल को उपहारदान, भोजन मे मत्स्य के विविध व्यजनो की सरणि मे दही बडे का भी होना इत्यादि। सजल नयन राजा भीम दमयन्ती को विदा करते हुए जब कहते है कि विवाहोत्तर पति ही नारी का सर्वस्व है यह वाक्य आज भी भारतीय नारियो द्वारा अक्षरश अपनाया जाता है। बारहवीं शताब्दी मे भी भारतीय सस्कृति का यह आदर्शवाक्य था और आज भी है। भीम अपनी पुत्री को समझाते हुए कहते है पुत्रि! अब तुम्हारा पुण्य ही तुम्हारा पिता है, सहनशीलता ही आपत्ति विनाशक है, मनस्तुष्टि ही सारी सम्पत्ति है, ये नल ही तुम्हारे सब कुछ है, इसके अतिरिक्त मै तुम्हारा कोई भी नहीं रहा।[4] ऐसा भीम के द्वारा कहलवाकर श्रीहर्ष ने भारतीय सस्कृति की अनूठी निदर्शना व्यक्त की है।

श्रीहर्ष ने नैषधीयचरित मे कामसूत्र मे प्रतिपादित चौसठ कलाओ मे लगभग सभी कलाओ यथा- गीत, वाद्य, नृत्य, आलेख्य, शयनरचना, उदकवाद्य, उदकाघात, वास्तुविद्या, द्यूत, ऐन्द्रजाल, शुकसारिकाप्रलाप, इत्यादि का मनोहारी चित्रण कवि ने यथा स्थान दिया है । इन सभी वर्णनो से यह प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष चौसठ कलाओ के ज्ञाता थे, शायद तभी श्रीहर्ष स्वय को नरभारती कहते थे एव यह इनकी कलाशास्त्रज्ञता का ही परिणाम था कि उन्होने शूदोचित कर्म उपानह निर्माण कर सूहवदेवी को अपनी कलाचातुरी से पराभूत किया था। चित्रकला का वर्णन करते हुए श्रीहर्ष कहते है कि कुण्डिनपुर के भवनो के अधो, मध्य, उर्ध्व भाग क्रमश पाताल, भूलोक तथा आकाश के सभी चिन्हो सहित श्रेष्ठ अशो द्वारा आश्चर्यमय चित्रो से निर्मित किये गये थे।[5] साथ ही प्रासाद की भित्तियो, स्तम्भो आदि पर अतिरूपवती पुत्तलिकाएँ निर्मित थीं।[6] कुण्डिनपुरी के लोग भी चित्रकारी मे प्रवीण थे, क्योकि उन्होने दमयती के चित्रो को दीवारो पर बनाया था एव स्वयवर मे आये हुए राजाओ ने उन्हीं चित्रो को देखकर अपने दिन बिताये

---

1 चलीकृता यत्र तरगरिगडणैरबालशैवाल लतापरम्परा। ध्रव दधुर्वाडवहव्यवाडवस्थितिप्रान्हत्तमभूमधूमताम्।। नै० 1/114

2 प्रतिमाससौ निशापति खग। सगच्छति यद्दिनाधिपम्। किमुतीब्रतरैस्तत करैर्मम दाहाय स धैर्यतस्करै ।। नै० 2/58

3 नै० 2/89

4 पिताऽऽत्मन पुण्यमनापद क्षमा धन मनस्तुष्टिरथाखिल नल।
अत पर पुत्रि! न कोऽपि तेऽहमित्युदश्रुरेष व्यसृजन्निजौरसीम्। नै० 16/117

5 क्षितिगर्भधराम्बरालयैस्तलमध्योपरिपूरिणा पृथक्। जगता किल यारिवलाद्भुताजनि सारैर्निचिह्नधारिभि।। नै० 2/81

6 नै० 2/83

थे।[1] दमयती को सखियो द्वारा कामकला की शिक्षा देना, पाक, क्रिया वर्णन, शुकसारिका प्रलाप आदि ऐसे वर्णन है जिनसे श्रीहर्ष की कलासर्वज्ञता सिद्ध होती है।

नैषधीचरित वृहत्त्रयी का अतिम महत्त्वपूर्ण महाकाव्य है। श्रीहर्ष ने अपने इस काव्य को "श्रृगारामृतशीतगु"[2] अर्थात् श्रृगार रुपी अमृत बरसाने वाला चन्द्रमा कहा है। उसने घोषणा कि दूसरे कवि पर्वत की चट्टाने है जिनसे नदियॉ निकलती है, नदियॉ आपस मे अपनी तुलना करती रहे, परन्तु मेरा यह काव्य तो "क्षीरोदन्वान्" (दूध का समुद्र) है, जिसका मथन करने पर प्रमोदन ओदन रुपी अमृत प्राप्त होगा।[3] उन्होने अपने काव्य मे रस, छद, अलकार, रीति एव कल्पनाओ का ऐसा मणिकाचन सयोग किया है कि उनकी "एकामत्यजतोनवार्थघटनाम्"[4] की अभिव्यक्ति सर्वथा सार्थक सिद्ध होती है। श्रीहर्ष का श्रृड्गार रस परिपाक उस समय देखने को मिलता है जब प्रिय को पहनाने के लिए माला से अलकृत दमयन्ती का पाणिपल्लव नल के समक्ष पहॅुचकर भी पुन रुक गया और उसका चचल कटाक्ष भी प्रियमुख के अर्धपथ तक जाकर भी लज्जा के कारण पुन लौट आया।[5] साथ ही दमयन्ती सरस्वती द्वारा नल का नामोच्चारण करवाने पर लज्जा से अपना शिर झुका लेती है, एव सरस्वती की उगलियो को दबाते हुए पुन लज्जित हो जाती है।[6] श्रृगार रस का ऐसा परिपाक अत्यन्त्र दुर्लभ है जिसमे मनोभावनाओ एव सकेतो से अपने अन्त करण की बात नल तक पहॅुचाने मे दमयन्ती ने व्यक्त की है। श्रीहर्ष करुण रस का वर्णन भी मनुष्य को कुछ सोचने को झिझोड देता है जब नल के द्वारा पकडे जाने पर हस नल से कहता है कि मै वृद्धामाता का अकेलापुत्र हूँ एव मेरी पत्नी ने अभी एक नवजात शिशु को जन्मा है मुझे छोड दो, क्योकि मै उन तीनो का जीवनोपाय हूँ, क्या तुम्हे मुझे मारने से दया नहीं आती? साथ ही उन्होने वीर रस, अद्‌भुत रस, हास्यरस, बीमत्सरस, भयानकरस, वात्सल्यरसो का भी यथास्थान वर्णन किया है श्रीहर्ष ने रीतियो मे वैदर्भीरीति को ही प्रमुख तथा अपनी काव्य रचना का आधार बनाया है वैसे कहीं कहीं उनके काव्य मे गौडी रीति के भी दर्शन होते है। उन्होने वैदर्भी रीति की प्रशसा करते हुए कहा है "धन्यासि वैदर्भि गुणैरुदारै।" अलकार मे कवि को दक्षता हासिल है। हस द्वारा पूॅछने पर दमयन्ती कहती है, मेरा मन नल को ही चाहता है, और किसी अन्य को नहीं और न ही वह लका जाना चाहता है।[8] सभगश्लेष का यह उदाहरण श्रीहर्ष की काव्यमनीषिता का द्योतक है। कवि ने नैषधीयचरित मे अनुप्रास,[9] उपमा,[10] उत्प्रेक्षा,[11] अपह्नु,[12] समासोक्ति,[13] अतिशयोक्ति,[14] अर्थान्तरन्यास,[15] आदि अनेक अलकारो का नैषध मे वर्णन किया

---

1 नै० 10/35
2 नै० 11/130
3 नै० कवि प्रशस्ति–2
4 नै० 19/67
5 कर स्रजा सज्जतरस्तदीय प्रियोन्मुख सन्विरराम भूय। प्रियाननस्यार्धपथ ययौ च प्रत्याययौ चातिचल कटाक्ष॥ नै० 14/25
6 देव्या श्रुतो नेति नलार्धनाम्नि गृहीत एव त्रपया निपीता। अथाड्गुलीरड्गुलिभिर्मृशन्ती दूर शिर सा नमयाञ्चकार॥ नै० 14/32
7 मदेकपुत्रा जननी जरातुरा नवप्रसूतिर्वरटा तपस्विनी।
गतिस्तयोरेष जनस्तमर्दयन्नहो विधे! त्वा करूणा रूणद्धि न॥ नै० 1/135
8 चेतो नलड्कामयते मदीय नान्यत्र कुत्रापि च साभिलाषय्। नै० 3/67 उत्तरार्द्ध
9 कल्याणि! कल्यानि तवाड्कानि कच्चित्तमा चित्तामनाविल ते।
अल विलम्बेन गिर मदीयामाकर्णयाकर्णतटायताक्षि! ॥ नै० 8/57
10 नै० 1/94
11 नै० 2/38
12. नै० 1/16
13 नै० 1/85
14 नै० 10/131
15 नै० 1/50

है। विभिन्न छदो, यथा- वशस्थ, स्रग्धरा, मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडित आदि को भी अपने काव्यसृजन का आधार बनाया है। श्रीहर्ष ने स्थान पर ललितपदावली के द्वारा अपने कोमल, ललित, करुण एवं मनोहर भावो को नैषधीयचरित मे व्यक्त किया है। उनके इस महाकाव्य मे पदशय्या का नैसर्गिक लालित्य शब्दो के स्वत गुम्फन मे भी देखा जा सकता है, जैसे कवि द्वारा हस का रुदन करवाना एव नल का दयार्द होना, केवल कलापक्ष के लिए ही सचेष्ट नहीं है प्रत्युत वह मानव के अन्तस तक रमने के लिए उत्सुक है।[1] स्पष्ट है कि श्रीहर्ष एक विदग्ध काव्यशास्त्रविद् थे, उन्होने माघ की उक्ति को अपने काव्य में अक्षरस् सत्य सिद्ध कर दिया कि क्षणे–क्षणे यन्नवतामुमैति तदेवरुप रमणीयताया।"[2]

श्रीहर्ष ने अपने इस ग्रथ मे लगभग सम्पर्ण दर्शनो यथा चार्वाक, बौद्ध, जैन, साख्य-योग, न्याय, वैशेषिक, मीमासा, वेदान्त सभी का शुष्ठु रुप मे विवरण देकर उन्होने अपने दर्शनविद् होने की भी सूचना विदग्धजनो को दी है। साख्य के सत्कार्यवाद,[3] योग की सिद्धियॉ,[4] यथा अणिमा, लघिमा, महिमा, न्याय के मोक्ष।[5] तो वैशेषिक के अणुवाद,[6] का भी प्रतिपादन किया है। वैशेषिक को उन्होने उलूकदर्शन भी कहा।[7] बौद्धो के शून्यवाद[8] एव चार्वाको के भौतिकवाद,[9] जैनो की अहिसा नीति के प्रतिपादन के साथ मीमासको का वर्णन भी श्रीहर्ष ने किया। नैषधीयचरित के सत्रहवे सर्ग मे कवि द्वारा सम्पूर्ण दर्शनो का खण्डन देखते ही बनता है। परन्तु नैषधकार तो अद्वैत वेदान्त के ही समर्थक है। उन्होने अपने खण्डनखण्डखाद्य मे अन्य सभी दर्शनो का खण्डन किया है एव अद्वैत्त्वेदान्त का मण्डन। नैषधीयचरित मे भी वे अद्वैतवेदान्त का अनूठा आदर्श उपस्थापित करते हुए कहते है कि दमयन्ती जब अपने अन्तपुर मे नल को देखती है, तो उस समय वह युक्त तथा ससारी दोनो प्रकार के व्यक्तियो की दशाओ का दुहरा मधुरस्वाद अनुभव कर रही थी।[10] सत्यानृतमिथुनीकृत्य रुप जगत के प्राणियो यही व्यवहार होता है। शायद यही जीवन की यथार्थता भी है कि मानव माया के भ्रम मे ही पडकर अपना सम्पूर्ण जीवन गुजार देता है। दमयन्ती भी अपनी सखियो को कहती है कि आप लोग ससार को क्यो नहीं देखती-वह मोक्ष से निकृष्ट जान कर भी धर्म, अर्थ, काम को नहीं त्याग रहा है।[11] परन्तु जो मोक्ष का अभिलाषी है वह धीरपुरुष सासारिक सुखो की अवहेलना करने के पश्चात् पश्चाताप नहीं करता।[12] इन वर्णनो से स्पष्टतया श्रीहर्ष के श्रेष्ठ दार्शनिक होने की ससूचना मिलती है।

नैषधकार को तत्रमन्त्र विद्या भी अभिप्रेत थी, राजशेखर ने भी उनके बारे में विवरण देते हुए कहा है कि चिन्तामणि मत्र जो त्रिपुरा देवी का साधक मत्र था, सिद्धि की अनन्तर उनमें वैदुष्य: का परिपाक

---

1 सुता कमाहूय चिराय चुकूड्तैर्विधाय कम्प्राणि मुखानि क प्रति ।
कथासु शिष्यध्वमिति प्रभील्य स सुतस्य सेकाद्बुबुधे नृपाश्रुण ॥

2 शिशुया लवध 4/17

3 नै० 3/17, 5/94 ।

4 नै० 3/64, 22/159

5 नै० 17/75

6 नै० 3/125

7 ध्वान्तस्य वामोरू! विचारणाया वैशेषिक चारू मत मत मे ।
औलूकमाहु खलुदर्शन तत्क्षम तमस्तत्त्वनिरूपणाय ॥ नै० 22/35

8 नै० 22/23

9 नै० 17/69

10 तत्कालमानन्दमयी भवन्ती भवत्तरानिर्वचनीय मोहा ।
सा युक्त ससारिदशारसाभ्या द्विस्वादमुल्लासमभुङ्क्तमिष्ट्म ॥ नै० 22/35

11 न लोकमालोकयथापवर्गात्रिवर्गमर्वाञ्चममुञ्चमानम्। नै० 6/105 उत्तरार्द्ध

12 निर्वातुकाम भवसम्भवाना धीर सुखानामवधीरणेव।। नै० 6/96 उत्तरार्द्ध

हुआ परन्तु यदि इस मंत्र के बारे मे गूढाध्ययन किया जाए, तो यह निश्चित रुपेण कामबीज एव अर्धनारीश्वर का आराधना मत्र मालुम होता है। जैसा कि नैषधीयचरित मे उपलब्ध विवरण से स्वत स्पष्ट हो जाता है।[1] श्रीहर्ष की तन्त्रमत्र के प्रति रुचि इसी से जाहिर होती है कि विवाहानन्तर दमयन्ती की सखी बनी हुई सरस्वती नल को भी चिन्तामणिमत्र का उपदेश देती हुई कहती है कि राजन् शिव के उस अर्धनारीश्वर रुप का चिन्तन करो, मेरे आशीर्वाद से वह तुम साधु पुरुष को सिद्ध हो जाये। यहॉ ऐसा प्रसग उपलब्ध कराकर श्रीहर्ष ने अपनी तन्त्रमन्त्रविदता की जानकारी दी है।

श्रीहर्ष व्याकरणशास्त्र के भी ज्ञाता थे। नैषधीयचरित महाकाव्य व्याकरण का निकष भी है। श्रीहर्ष ने स्वय ही कहा है कि मैने सर्वथा नये अर्थ की योजना करने की प्रतिज्ञाकर इस काव्य का प्रणयन आरम्भ किया है, साथ ही वे यह भी कहते है कि मैंने इस ग्रथ मे कहीं कहीं पर समास, क्रिया, कारक, प्रकृतिप्रत्यय, उपसर्गों इत्यादि के प्रयोग से बीच-बीच मे ऐसी काव्य गाठे लगायी है, कि उन्हे वे व्यक्ति ही खोल सकते है जिन्होने परम्परा से श्रद्धापूर्वक गुरु की आराधना कर विद्या प्राप्ति की होगी।[2] श्रीहर्ष व्याकरणशास्त्र के प्रमुख आचार्यों पाणिनि, कात्यायन एव पतञ्जलि का विवरण नैषधीयचरित मे दिया है। पाणिनि के मत का उल्लेख करते हुए कवि कहते है कि अपवर्ग मे तृतीया विभक्ति होती है।[3] कात्यायन ने पाणिनि के सूत्रो की कमी की भरपाई वार्तिक लिखकर की एव पर्दे मे शेषनाग रुपग्रहण कर पतजलि ने सूत्रो की व्याख्या करने के लिए महाभाष्य की रचना की।[4] ऐसे विवरण देकर श्रीहर्ष ने व्याकरणशास्त्र के इतिहास की जानकारी दी। वैयाकरणो के "अपद न प्रयुञ्जीत" एकवचन मुत्सर्गत करिष्यते" इस सिद्धान्त का विवरण देते हुए श्रीहर्ष कहते है कि सम्यक् रूप मे सुबन्त एव तिङन्त विभक्तियो का विचार किया जाय तो वह प्रथमा विभक्ति ही है जो अपने सु, औ, जस्, अर्थात् एकवचन, द्विवचन, एव बहुवचन प्रत्ययो के कार्यबल से अनेक प्रातिपादिक शब्दो को सिद्ध करने मे नितान्त समर्थ होती है।[5] दमयन्ती स्यवर मे नलरूपधारी इन्द्र के विवरण के समय श्रीहर्ष ने पाणिनि के सूत्र "स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ"[6] का उद्धरण देते हुए कहते है कि इन्द्र जो व्याकरणशास्त्र के जानकार थे, उन्होने "स्वय नहोध"[7] आदि आदेशो को बनाकर भी अनल विधि मे क्या दूषित स्थानिवद्भाव नहीं किया? जबकि स्थानिवद्भाव केवल अनल विधि मे ही होता है।[8] ऐसे वर्णनो से जाहिर है कि श्रीहर्ष व्याकरण शास्त्र के मूर्धन्य विद्वान् भी थे।

प्राचीन काल से लेकर अर्वाचीन काल तक मानव दिन प्रतिदिन होने वाली घटनाओ का कोई न कोई कारण खोजता आया है। घर से निकलते ही यदि पानी के भरे घडे मिल जॉय, बछडे को दूध पिलाती गाय दिख जाय तो लोग समझ लेते थे कि शुभ शगुन हो रहे है, काम की सिद्धि हो जायेगी. बाद मे इसी का विस्तृत रूप ज्योतिषशास्त्र के रूप मे सामने आया। श्रीहर्ष ने अपने नैषधीयचरित मे शकुन वर्णनो के साथ-साथ ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्तो का भी वर्णन किया है, साथ ही मनुष्यो की आकृति देखकर उनके

---

1 अवामावामार्थे सकलमुमयाकारघटना, द्विधाभूत रूप भगवद्भिधेय भवतियन्।
तदन्तर्मन्त्रं मे स्मरहरमय सेन्दुममल, निराकार शश्वज्जप नरपते! सिध्यतु मते ।। नै० 14/88

2 नैषध---- कविप्रशस्ति--2

3 अपवर्गे तृतीयेति भवत पाणिनेरपि। नै० 17/70 उत्तरार्द्ध

4 फणिभाषितभाष्यफक्किकाविषमा कुण्डलनामवापिता नै० 2/95 उत्तरार्द्ध

5 क्रियेत चेत्साधुविभक्तिचिन्ता व्यक्तिस्तदा सा प्रथमाभिधेया ।
या स्वौजसा साधयितु विलासैस्तावत्क्षमाभि बहुस्यात् ।। नै० 3/23

6 पाणिनि सूत्र 1/1/56

7 पाणिनि सूत्र 8/2/34

8 स्व नैषधादेश महो विधाय कार्यस्य हेतोरपि नानल सन् ।
कि स्थानिवद्भावमधत्त दुष्ट तादृक्कृत्तवयाकरण पुन स ।। नै० 10/136

विषय मे ज्ञान प्राप्त करने वाले शास्त्र समुद्रिक शास्त्र का वर्णन भी यत्र तत्र किया है। ज्योतिषशास्त्र का वर्णन करते हुए श्रीहर्ष कहते है कि राजा भीम दमयन्ती के विवाह से पूर्व ज्योतिषियो की सभा की जिसमे ज्योतिषियो ने शुक्र, गुरु आदि ग्रहो के उदय अस्त दोषो से निर्मुक्त तथा जामित्र आदि सम्पूर्ण गुणो से सयुक्त मुहूर्त राजा को बताया, अत राजा ने उसी मुहर्त मे कन्यादान करने का उपक्रम प्रारम्भ किया।[1] साथ ही दुरुधरा योग[2] बुधादित्य[3] योग की चर्चा भी श्रीहर्ष ने की। शकुनशास्त्र की व्युत्पत्ति करते हुए श्रीहर्ष ने कहा कि जब हस कुण्डिनपुरी जा रहा था, तो मार्ग मे सर्वप्रथम पथिक की प्रार्थित सिद्धि का द्योतक एक जलपूर्ण कलश दिखायी पडा।[4] बाद मे उसने शुभकारी फलसयुक्त आम्रवृक्षो को देखा।[5] साथ ही सूर्याभिमुख यात्रा प्रशस्तन होने की बात भी श्रीहर्ष ने की है।[6] सामुद्रिकशास्त्र की सगति बैठाते हुए श्रीहर्ष कहते है कि राज नल सौभाग्यशाली इसलिए भी थे क्योकि उनके चरणो मे ऊर्ध्व रेखाये थी।[7] साथ ही नल के बाहु विशाल थे।[8] नल ने हस को तो सामुद्रिक शास्त्र ज्ञाता ही बता दिया एव कहा कि प्रिय हस! तुम्हारा रुप अतुलनीय है, तुम्हारी सुशीलता अवर्णनीय है, तथा रूप मे भी गुण होते है, सामुद्रिक शास्त्र के इस कथन के तुम प्रत्यक्ष उदाहरण रूप हो।[9] उपर्युक्त विवरणो से यह जाहिर होता है कि श्रीहर्ष ज्योतिषशास्त्र, शकुनशास्त्र एव सामुद्रिक शास्त्र के भी वेत्ता थे।

नैषधीयचरित मे उपलब्ध विवरणो से श्रीहर्ष की धर्मशास्त्रज्ञता राजनीतिशास्त्रज्ञता एव नीतिशास्त्रज्ञता की भी जानकारी मिलती है, नल के द्वारा धर्म के चारो पैरो पर स्थिर हो जाने से उस सतयुग मे भला कौन धर्मपरायण न था और की कौन कहे, तब तो स्वय अधर्म भी केवल एक पाद से पृथ्वी का स्पर्श करता हुआ क्षीण हो तपस्वी बन गया था।[10] हस कहता है कि धर्मशास्त्रज्ञ (मनुआदि) नरेशो ने भी मृगया को निदित नहीं कहा, फिर भी हे नल! जो तुमने मुझे मुक्त कर दिया वह तुम्हारा उज्ज्वल धर्म ही था।[11] नल की बहुविध प्रकार से देवार्चना दान देना एव दौत्यकर्म निभाना उसकी धर्मशास्त्रज्ञता के सूचक है। नीतिशास्त्र की बाते श्रीहर्ष हसमुखेन करवाते हुए कहते है कि सुन्दरि मैने तुम्हे बहुत परिश्रान्त किया, बोलो मै तुम्हारा क्या उपकार करॅु।[12] एव राजनीतिपटुता का आदर्श उपस्थापित करते हुए श्रीहर्ष ने यह सन्दर्भ उपस्थापित किया कि हस दमयती से अपनी बात कहकर राजकुमारी के मनोभावो को जानने की अभिलाषा से चुप हो गया क्योकि विद्वान्जन (राजनीतिज्ञ) गम्भीर कुण्ड सदृश गम्भीर हृदय युक्त व्यक्ति का किसी व्यक्ति या कार्य के अवगाहनोपरान्त ही उचित कार्य का निर्णय लेते है।[1] स्पष्ट है कि

---

1 निरीय भूपेन निरीक्षितानना शशस मौहूर्तिकससदशकम् ।
गुणैररीणैरुदयास्तनिस्तुष तदा स दातु तनया प्रचक्रमे ।। नै० 15/8

2 नै० 15/42

3 नै० .. .1/17

4 प्रथम पथि लोचनातिथि पथिकप्रार्थित सिद्धिशसिनम् ।
कलज जलसभृत पुर कलहस कलया बभूव स ।। नै० 2/65

5. नै० . 2/66

6 नै० 3/9

7 नै० 1/18

8 नै० 1/22

9 न तुलाविषये त्तवाकृतिर्न वचोवर्त्मनि ते सुशीलता । त्तवदुदाहरणाकृतौ गुणा इति सामुद्रकसारमुद्रणा ।। नै० 2/51

10 पदैश्चतुर्भि सुकृते स्थिरीकृते कृतेऽमुना केन तप प्रपेदिरे ।
भुव यदेकाङ्घ्रिकनिष्ठया स्पृशन् दधावधर्मोऽपि कृशस्तपस्विताम् ।। नै० 1/7

11 मृगया न विगीयते नृपैरपि धर्मागमर्म पारगै। स्मरसुन्दर! मा यदत्यजस्तव धर्म स दयादयोज्ज्वल ।। नै० 2/9

12 नै० 3/52

का किसी व्यक्ति या कार्य के अवगाहनोपरान्त ही उचित कार्य का निर्णय लेते हैं।[1] स्पष्ट है कि श्रीहर्ष को धर्मशास्त्र नीतिशास्त्र, एव राजनीतिशास्त्र का भी ज्ञान था।

श्रीहर्ष कामशास्त्र मे प्रतिपादित शास्त्रीय विषयो से भी परिचित थे, जैसा कि नैषधीयचरित मे आये प्रसगो के अध्ययनान्तर पूर्णत स्पष्ट हो जाता है कि उन्होने नैषध मे इस तरह का प्रतिपादन किया है मानो वह कामशास्त्र के ग्रथ सामने रखकर अपनी लेखनी चला रहे हो। स्त्री पुरुषो मे आपस मे कौन पहले आकृष्ट हो जिससे प्रेम बना रहे, उसकी विवेचना करते हुए आचार्य विश्वनाथ कहते है कि "आदौ वाच्य स्त्रियाराग " अर्थात् स्त्रियॉ जिस पुरुष को प्रथम बार प्यार करतीं है वहीं प्यार सार्थक होता है न कि पुरुष द्वारा की गयी प्रथम प्यार की चेष्टा। श्रीहर्ष उनकी बात का समर्थन करने के साथ ही पति पत्नी को किस तरह का व्यवहार करना चाहिए? किन-किन कलाओ मे प्रवीण होना चाहिए? अपने सम्बन्धियो एव मित्रो से किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए? किस तरह हास परिहास के क्षण उपस्थित करने के प्रसग उपलब्ध करने चाहिए? पाक क्रिया सगीत कौतुक पहेलियो आदि विषयो का सम्यक् प्रतिपादन नैषध मे दिया हे। नैषध मे विभिन्न स्थलो पर धर्म, अर्थ, एव काम की चर्चा करते हुए श्रीहर्ष कहते है कि इन तीनो मे समन्वय होना चाहिए। वात्स्यायन ने भी कामसूत्र के प्रारम्भ मे इन तीनो पुरुषार्थों का नमस्कार किया हे।[2] पचनली प्रसग मे दमयन्ती भी नल (काम प्राप्तिसाधनरुप) की प्राप्ति हेतु देवताओ की पूजा करती हे क्योकि देवता मानवो की अभिलाषा पूर्ण करने वाले कामधेनु सदृश माने जाते है।[3] स्पष्ट है कि कामशास्त्र, अर्थ एव काम पुरुषार्थों की प्राप्ति का यथेष्ठ मार्ग सुझाता है। काम की प्रक्रिया प्रारम्भ करने के बारे मे श्रीहर्ष अपने ग्रथ मे विवरण दिये है कि सर्वप्रथम पुरुष को अपनी प्रिया (पत्नी) के आकस्मिक सभोग के भय को दूर कर देना चाहिए, एव उसे सर्वप्रथम अपने विश्वास मे लेना चाहिए , शास्त्र भी यही कहता है "आदौरत बाह्यमिह प्रयोज्य तत्रापि चालिगनमेव पूर्वम्" नल ने भी सभी सखियो को बाहर भेजकर दमयन्ती को अपने विश्वास मे लेकर उसकी कमर मे हाथ लागकर अपनी सन्निधि मे लेते हुए पहले उसके आकस्मिक सभोग के भय को दूर करने के लिए ललाट का चुम्बन लिया, फिर कपोलो, एव अधरो का चुम्बन लिया।[4] कामशास्त्र का कथन है कि चुम्बन, नखदशन इत्यादि राग को बढाने वाले है।[5] इसलिए इन्हे सम्भोगपूर्व अवश्य करना चाहिए। स्त्री को सम्भोगावसर मे पुरुष को अपनी बायी तरफ सुलाना चाहिए, प्राचीनकाल से लेकर अभीतक यही परम्पराचली आ रही है। काम क्रिया सम्पादन मे तो विभिन्न देश के लोग विविध प्रक्रियाएँ अपनाते है, परन्तु नैषधकार को सम्पुट विधि ही अभीष्ट है।[6] कामशास्त्र का यह भी मन्तव्य है कि पुरुष को अपनी पत्नी को सम्भोग सुख की सहभागिनी बनाने के लिए आवश्यक है कि दोनो

---

1 इतीरयित्त्वा विरराम पत्री स राजपुत्रीहृदय बुभुत्सु ।
हृदे गम्भीरे हदि चावगाढे शसन्ति कार्यावतर हि सन्त ।। नै० 3/53

2 अथ अर्थधर्मकामेभ्या नम कामसूत्र। 1/1/1

3 अथाधिगन्तु निषधेश्वर सा प्रसादनामा द्रियतामराणाम् ।
यत सुराणा सुरभिनृणा तु सा वेधसाऽसृज्यत कामधेनु ।। नै० 14/1

4 सन्निधावपि निजे निवेशितामालिभि कुसुमशास्त्रशास्त्रवित् ।
आनयद् व्यवधिमानिव प्रियामङ्कपालिवलयेन सन्निधिम् ।। नै० 18/40
प्राग चुम्बदलिके ह्रियानता ता क्रमाद्दरता कपोलयो ।
तेन विश्वसितमानसा झटित्यानने स परिचुम्बय सिष्मिये ।। नै० 18/41

5 चुम्बननखदशनच्छेद्याना न पौर्वापर्यमस्ति ।
रागयोगात् प्राक्सयोगादेषा प्राधान्येन प्रयोग ।। प्रहणन - सीतकृतयोश्च सप्रयोगे। कामसूत्र 2/3/1

6 मिश्रितोरू मिलिताधर मिथ स्वप्नवीक्षितपरस्परक्रियम् ।
तौ ततोऽनु परिरम्भसम्पुटे पीडना विदधतौ निदद्रतु ।। नै० 18/152

का स्खलन (वीर्यक्षरण) एक साथ हो। स्त्री की स्वाभाविक प्रवृत्ति त्वरित स्खलन की होती है इसलिए उसकी कोमलता, कामप्रचण्डता एव सहनशक्ति को समझते हुए एव अपनी शक्ति का अनुमान कर पत्नी का चित्त भ्रम कर उसे जल्दी स्खलन होने से रोकने के साथ स्वय को भी इडा, पिगला आदि नाडियो को सयुमन कर सम्भोग सुख मे प्रवृत्त करना चाहिए।[1] तभी दोनो सम्भोगानद की असीमपरिणति असम्प्रज्ञात समाधि तक पहुँच सकेगे। श्रीहर्ष ने इस स्थिति का अप्रतिम रमणीय ढग से प्रतिपादन करते हुए लिखा कि नल एव दमयन्ती की एक साथ स्खलित होने की स्थिति मे दोनो के अग शिथिल हो गये, नेत्र मुँद गये, त्वरित रोमाच के साथ लम्बी श्वासे चलने लगीं, सी-सी की ध्वनि होने लगी।[2] इस प्रकार कामशास्त्रीय विवरण नैषधीयचरित मे देकर श्रीहर्ष ने अपनी कामशास्त्रविदता का परिचय दिया है।

नैषधीयचरित मे बारात के भोजन वर्णन प्रसग मे नैषधकार ने विविध प्रकार के व्यञ्जनो के परोसे जाने का जो विवरण उपलब्ध करवाया है उससे यह स्पष्ट है कि वे पाकक्रियाविधि के भी जानकार थे। नल की बारात मे भोजन हेतु दिये गये अनेक स्वादिष्ट, चरफरे एव मधुर पदार्थो मे ओदन, पायस, घृत, दधि, विभिन्न पशुओ के मास से बने विविध प्रकार के व्यजन शर्करा (सिता), पानक, गोलक, लड्डू, रायता, दहीबडा, एव शार्करी पुत्रिका आदि का सूचारु वर्णन किया है।[3] अन्यत्र स्थलो मे सत्तू,[4] हैयगवीन (नवनीत) एव मधु का प्रयोग,[5] पापड एव अपूप[6] तथा ताम्बूल को विविध आकृतियो मे सजा कर दिया जाना, इक्षु (गन्ना), खण्ड (खॉड) एव द्राक्षा का प्रयोग,[7] मदिरा,[8] गुडपाक,[9] शर्करा चक्रिकाओ (जलेबियो)[10] का वर्णन, दुग्ध एव द्राक्षासव विशिष्ट पेय पदार्थों का वर्णन[11] फलो मे दाडिम (अनार), अगूर, आम, बेल, जामुन, केला आदि को प्रयोग का वर्णन किया है। भोजन षड्रस होता था।[12] इस प्रकार तत्कालीन समाज मे प्रचलित भोजन की विविध सामाग्रियो का उल्लेख श्रीहर्ष ने किया है। सूपकारो ने भोजन इस विचित्रता से पकाया था कि बरातियो को कभी-कभी निरामिष भोजन भी सामिष लगते थे।[13] श्रीहर्ष द्वारा किया गया यह वर्णन उनकी पाकशास्त्रज्ञता का ही प्रमाण है।

श्रीहर्ष ने नैषधीयचरित मे अश्वो के बारे मे जो वर्णन किया है उससे यह ध्वनित होता है कि वह, एव उनके नायक नल अश्वशास्त्रविद् थे। श्रेष्ठ अश्वो के लक्षण बताते हुए श्रीहर्ष कहते है कि जिनके खुर चचल हो, साथ ही बल की अपेक्षा अधिक वेग वाले, पुरुष प्रमाण से भी अधिक ऊँचे धवलवर्ण, गले मे

---

1 आत्यन्तिक तु तत्रापि परिहरेत्। कामसूत्र 2/7/27
2 विश्लथैरवयवैर्निमीलया लोमभिर्द्रुमितैर्विनिद्रताम्। सूचित श्वसितसीत्कृतैश्च तो भावमक्रममध्यगच्छताम्।। नै० 18/117
3 नैषध 16/66 103
4 नै० 2/85
5 नै० 3/130
6 नै० 15/12, 22/147
7 नै० 21/152
8 नै० 21/149
9 नै० 21/153
10 नै० 21/155
11 नै० 21/160
12 नै० 21/108
13 यथामिषे जग्मुरनामिषभ्रम निरामिषे चामिषमोहमूहिरे। तथा विदग्धै परिकर्मनिर्मित विचित्रमेते परिहस्य भोजिता।। नै० 16/81

भवरी वाले कण्ठ मध्य मार्ग मे उठे हुए चन्द्ररश्मि धवल स्कन्ध वालो से सुशोभित हो।[1] नल की अश्वशास्त्रज्ञता को बताते हुए कहते है कि राजा नल अश्वो के द्वारा की गयी मौन अभिव्यक्ति को जानते थे।[2] अश्वो की श्रेष्ठता और विशेषताएँ बताते हुए श्रीहर्ष कहते है कि उनकी पूँछ चचल होती है।[3] साथ ही सिन्धु देशोद्भव अश्व अधिक श्रेष्ठ माने जाते है।[4]

नैषधकार ने नैषधीयचरित मे चिकित्साशास्त्र सम्बन्धी जो विवरण दिया है उससे यह द्योतित होता है कि वे चिकित्साशास्त्र के भी ज्ञाता थे। उन्होने यह तथ्य प्रनिपादित किया कि बीमार व्यक्ति को स्नान नहीं करना चाहिए।[5] क्योकि दमयन्ती जो विषम कामज्वर से पीडित थी उसने प्रिय (नल) की कथा रुपी सरसी (तालाब) मे स्नान कर लिया फलत उसका अन्तस्ताप शीध्र ही विषम ज्वर मे परिणत हो गया। श्रीहर्ष ने मधु एव घृन साथ मे नहीं खाने का उपदेश दिया।[6] क्योकि मधु एव घृत की समान मात्रा मिलाकर खाने से व्यक्ति मूर्छित हो सकता है, नारायण ने भी कहा है, "समत्त्वेन मधुमिश्रित घृत नितान्त पीत सत्सतापमोहौजनयति।" वैद्यको की चर्चा करते हुए श्रीहर्ष ने अश्वनीकुमारो को स्वर्गलोक का वैद्य बताया।[7] मदन तापहारी विशल्या औषधि[8] को वर्णन के साथ साथ लोहे को भी अपने स्पर्श से स्वर्ण बना देने वाले सिद्ध पारदरस,[9] शरीर की काति वर्धन हेतु गोरोचन चन्दन, कुकुम एव कस्तुरी के लेप की[10] चर्चाकर नैषधकार ने इस क्षेत्र मे भी अपनी जानकारी की अभिव्यक्ति दी।

उपर्युक्त गुणो के साथ-साथ श्रीहर्ष व्यवहारविद्,[11] हासपिरहास प्रेमी[12] वेद वेदाग पुराण इतिहास ज्ञाता[13] कर्मनिष्ठ ईश्वराधक[14] सगीतज्ञ मधुर भाषा शैली का व्याख्याता[15] कल्पना शक्ति का विलक्षण प्रतिपादक[16] सगीतज्ञ[17] मनोवैज्ञानिक विश्लेषक[18] धर्मशास्त्रज्ञ[19] एव शिल्पशास्त्र[20] के भी जानकार थे।

---

1 अभी ततस्तस्य विभूषित सित जवेऽपि मानेऽपि च पौरूषाधिकम् ।
उपाहरन्नश्वमजस्रचञ्चलै खुराञ्चलै क्षोदितमन्दुरादरम् ।। नै० 1/57
अथान्तरेणाबटुगामिनाध्वना निशीथिनीनाथमह सहोदरै ।
[illegible] केसरकेशरश्मिभि ।। नै० 1,58

2 चलाचलप्रोथतया नहीभृते स्ववेगदर्पानिव वक्तुमुत्सुकम्। अलगिरा वेद किलायमाशय स्वय हयस्येति च मौनमास्थितम्।। नै० 1/60

3 नै० 1/62

4 नै० 1/64

5 यदतनुज्वरभाक्तनुतेस्म सा प्रियकथासरसीरसमज्जनम्। सपदि तस्य चिरान्तरतापिनी परिणतिर्विषमा समपद्यत्।। नै० 4/2

6 [illegible] त्प्रेयोदूपततङ्गपुङ्गवगवीहैयङ्गवीन रसात् ।
स्वाद स्वादमसीममिष्टसुरभि प्राप्ताभि तृप्तिन सा ताप प्राप [illegible] मूर्च्छामपि ।। नै० 3/130

7 नै० 5/46

8 नै० 8/90

9 नै० 9/42

10 नै० 10/98

11 नै० 1/75,77, 98, 2/11, 44, 48, 3/53,61, 4/16,19, 8/17

12 नै० 16/48 111

13 नै० 15/31,72,83,84, 17/9,16, 18/20,21, 19/3,8, 21/32, 22/43,49

14 नै० 21/31 119

15 नै० 3/116

16 नै० 19/3 20

17 नै० 3/27, 14/51, 15/16, 21/34

18 नै० 20/2, 4, 15

19 नै० 11/11, 115, 13/37,39,50,51,52, 14/1,9,81

20 नै० 10/131, 9/66, 1/38

नैषधकार के व्यक्तित्व मे उपर्युक्त सभी विशेषाताएँ तो अवश्यमेव विद्यमान थीं, परन्तु उनके व्यक्तित्व का यथार्थ एव आलोचनात्मक विवेचन करने पर यह तथ्य भी प्रकट होता है कि वे पाण्डित्याभिमानी भी थे, जोकि नैषधीयचरित मे दिये गये उनके विवरण से स्पष्ट होता है जहाँ वह कहते है कि कान्यकुब्जेश्वर आदर के साथ उन्हे (ही) दो ताम्बूल एव बैठने हेतु आसन देते है एव वह समाधि मे पर ब्रह्म के दर्शन भी करते है, उनकी कविता अमृतवर्षीहै तथा उनकी तार्किक शक्ति के सामने प्रतिपक्षी मौन साथ लेते है।[1] जानबूझकर उन्होने काव्य मे व्याकरण समासाद्धि ग्रथियो लगा दी है, जिससे सहृदय जन गुरुओ द्वारा ही इस ग्रथ का आनन्द ले सके।[2] उनका काव्य क्षीरसागर एव श्रृङ्गारामृत शीतगु है एव अन्य काव्यग्रथ पाषाणखण्ड की तरह नीरस एव शब्दाडम्बर मात्र है।[3] साथ ही उनका काव्य सहृदय विद्वानो के लिए हे, अरसिक व्यक्तियो के लिए नहीं। अवधेय है कि वह अपने काव्य (नैषधीयचरित) को तरुणी रमणी के रूप मे लोकजीवन मे स्थापित करना चाहते हे,[4] परन्तु उपर्युक्त सभी तथ्यो के अनुशीलन से यह सिद्ध होता है कि वास्तव मे उनकी यह कृति (रमणी) विदुषी बन गयी है, तरुणी और रमणी तो नहीं बन पायी। कालिदास के काव्यग्रथो की तरह नैषधमहाकाव्य सामान्यजन सवेद्य नहीं है, इसीलिए यही कहा जा सकता है कि सामान्यजन के लिए उनको काव्य मे बुद्धिरजन तो है पर मनोरजन नहीं बुद्धितोष है पर मनस्तोष नहीं, परन्तु विद्वानो को बुद्धिरजन एव मनोरजन दोनो ही इस ग्रथ मे मिलता है, शायद तभी श्रीहर्ष ने इसे गुरुमुखात् अध्ययन करने की सलाह दी। श्रीहर्ष की यह बात कि वह कान्यकुब्जाधीश्वर से आसन एव दो पान के बीडे पाते है, यह तो सही है, क्योकि राजशेखर के प्रबन्धकोश से यह बात प्रमाणित होती है, किन्तु यह कहना है कि वह समाधि मे परब्रह्म के दर्शन करते है, केवल पाण्डित्य की गर्वोक्ति मात्र लगती है, क्योकि जो समाधि मे परब्रह्म का दर्शन कर लेता है, उसे फिर किसी के द्वारा सम्मानपात्रता की बात सोचना तार्किक नहीं लगती । उनकी तार्किक शक्ति के सामने विपक्षियो को नतमस्तक होने की बात तो सत्य है जैसा कि उनके ग्रथ खण्डनखण्डखाद्य एव नैषधीयचरित के अध्ययन से स्पष्ट होता है परन्तु उनका यह कहना कि उनका ग्रथ क्षीरसागर है साथ ही यह भी कहना कि काव्य मे ऐसी ग्रथि लगा दी है जिससे विद्वन्मन्य खल अवज्ञा से यह न कह सके कि मैने सरलता से इस गथ का अध्ययन कर लिया है, दोनो बाते इस साथ घटित नहीं हो सकती। हॉ यह कहा जा सकता है कि इनके काव्य के पाठक सामान्यजन नहीं हो सकते, विदग्धजनो के लिए ही यह परम उपादेय है। श्रीहर्ष के ग्रथ के बारे मे यह कहना कि "काव्य नव नैषध" वास्तव मे सत्य ही है क्योकि कल्पनाओ की ऊँची उडाने, अलकार शैली वर्णन वैविध्य, की तो इसमे भरमार है। नैषधकार ने सम्पूर्ण तथ्यो का साङ्गोपाग विवरण दिया है। लेकिन कभी-कभी उनकी वर्णनचारुता के वैविध्य मे पाठक इतना रम जाता है कि जब कथा की आगे की विषयसामग्री मिलती है तब पाठक को स्मरण करना पडता है कि पीछे की कथा सामग्री का प्रसग क्या है? स्मरणीय है कि नैषधमहाकाव्य मे कथारस तो है परन्तु विषय वर्णन की विशालाकृति के कारण कथावस्तु की निरन्तरता एव सुसम्बद्धता विश्रृङ्खलित हो जाती है जबकि कथावस्तु की वक्रता एव सुसम्बद्धता ही उसका सबसे बडा गुण है, एव उसकी विश्रृंखलता ही सबसे बडा दोष है। इस सम्बन्ध

---

1 ताम्बूलद्वयमासन च लभते य कान्यकुब्जेश्वरा, द्य साक्षात्कुरूते समाधिषु पर ब्रह्मप्रमोदार्णवम् ।
यत्काव्य मधुवर्षि धर्षितपरास्तर्केषु यस्योक्तय , श्री श्रीहर्षकवे कृति कृतिमुदे तस्याभ्युदीयादियम् ।।
नै० ग्रथप्रशस्ति श्लोक–4

2 ग्रन्थग्रन्थिरिह क्वचित्क्वचिदपि न्यासि प्रयत्नान्मया, प्राज्ञ मन्यमना हठेन पठिती मास्मिनखल खेलतु।
श्रद्धाराद्धगुरूश्लथीकृतदृढग्रन्थि समासादय त्तवेतत्काव्यरसोर्मिमज्जनसुखव्यासज्जन सज्जन। नै० ग्रथ प्रशस्ति–श्लोक–3

3 दिशि-दिशि गिरिग्रावाण स्वा वमुन्तु सरस्वती। तुलयतु मिथस्तामापातस्फुरद्ध वनिडम्बरराम् ।
स परस्पर क्षीरोद न्वान्यदीयमुर्दीयते, मथितुरमृत खेदच्छेदि प्रमोदनमोदन् ।। ग्रथप्रशस्ति नै० श्लोक–2
यथायूनस्तद्वत्परमरमणीयापि रमणी, कुमाराणामन्त करणहरण नैव कुरूते ।
मदुक्तिश्चेददन्तर्मदयति सुधीभूय सधिय , किमस्या नाम स्यादरसपुरुषानादरभरै ।। नै० ग्रथप्रशस्ति श्लोक -1

एव प्रो0 सुरेशचन्द्र पाण्डेय जी ने श्रीहर्ष के व्यक्तित्व के बारे मे जो कथन किया वह श्री एस0एन0 दास गुप्त एव श्री एस0के0 डे के कथन का अनुकरण मात्र लगता है।[1] श्रीबलदेव उपाध्याय ने कहा कि "श्रीहर्ष की प्रतिभा ऊँचे दर्जे की है, परन्तु कालिदास की भावमयी पद्धति से उसकी कभी भी तुलता नहीं की जा सकती। उन्होंने श्रीहर्ष को अलकृत शैली के सर्वश्रेष्ठ रचयिता, नवार्थघटना वर्णन मे चतुर श्रृगार कला का कवि बोलते हुए कहा कि उनके वर्णन मस्तिष्क का तोष करती है मन का तोष नहीं, उनमे हृदय पक्ष का अभाव है, एव कलापक्ष का प्राधान्य है।"[2] वहीं प्रो पाण्डेजी ने श्रीहर्ष को विद्वान् कवि बताते हुए उनके काव्य को विरोधी विचारो, गर्वोक्तियो तथा चित्र विचित्र उक्तियो का ऐसा घना जगल माना, जिस जगल के वृक्ष फूल और फल से हीन है। " परन्तु वह श्रीहर्ष के मर्मस्पर्शी भावो की मीमासा करना नहीं भूले।"[3] परन्तु विद्वद्वय ने शायद श्रीहर्ष के साथ न्याय नहीं किया। कालिदास, बाण न तो श्रीहर्ष हो सकते है और न ही श्रीहर्ष, कालीदास एव बाण । प्रत्येक कवि की अपनी अलग वर्णन शैली होती है । फिर श्रीहर्ष तो चौदह विद्याओ मे पारगत थे । कवि तो तत्त्वदर्शी होता है, उसके पाण्डित्य एव वर्णनचातुरी के सामने कथावस्तु का प्रवाह यदि मन्द गति से भी चले, तो काव्य का विशेष दोष नहीं माना जा सकता फिर 'श्रीहर्ष की पद रचना, भाव विन्यास, कल्पना चातुर्य और प्रकृति पर्यवेक्षण आदि सभी विषयो मे एक मौलिक सूझ बूझ दिखायी पडती है एव जिस प्रणय पक्ष की कीथ जैसे विद्वानो ने आलोचना की ऐसे प्रणय पक्ष का इतना समर्थ, सयत और हृदय ग्राही चित्रण कुछ ही महाकाव्यकार कर सकने मे सफलता प्राप्त किये है।[4] डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी जी के कथन से स्पष्ट होता है कि उन्होने श्रीहर्ष के व्यक्तित्वका यथार्थ आकलन किया है। वह कहते है'' श्रीहर्ष मूर्घन्या महाकवियो मे एक है एव इनका यह महाकाव्य ही इनके गुण गौरव और विद्वत्ता का आकर है। पाण्डित्य प्रदर्शन, योग्यता, विद्वत्ता और व्युत्पत्ति मे इन्होने सभी महाकवियो पीछे छोड दिया है। इनकी कृति मे भाषा सौन्दर्य, भावसौष्ठव, उत्प्रेक्षाओ का बाहुल्य, अर्थान्तरन्यास का वैभव, कलापक्ष की प्रधानता भावपक्ष की उदात्तता, कल्पनाओ के प्राचुर्य के साथ चिन्तन की विशालता, श्रृगार की क्रीडाओ के साथ करुण का द्रवीभाव भी समाहेत है।[5] जहॉ हस विलाप एव दमयन्ती विलाप मे करुण रस का पूर्णपरिपाक एव हृदयस्पर्शी चित्रण है वही नलदमयन्ती विलास मे श्रृगार का एव भोजन वर्णन प्रसग मे हास का दृश्य अपनी छटा मानव मन मे विखेर ही देता है। श्रीहर्ष ने पुरातन पद्धति का अन्धानुकरण न कर अपनी कृति को नई शैली मे रचा। वे अपने पूर्ववर्ती कवियो के काव्यो से अत्यन्त प्रभावित थे। उन्होने कालिदास से प्रसाद गुण नहीं अपितु कल्पना, भारवि से चित्रालकार आदि नहीं अपितु अर्थगौरव, एव माघ से कथाशैथिल्य नहीं अपितु पाण्डित्य प्रदर्शन एव वाग्वैशारद्य आदि गुणो को अपनाया है। वास्तव मे श्रीहर्ष का यह काव्य सरस सहृदय एव व्युत्पन्न मति सम्पन्न पाठको के लिए शस्य-श्यामल, कुसुमित एव सुरभित उद्यान हैं, किन्तु पल्लवग्राही, अव्युत्पन्नमति, अरसिक एव सामान्य बुद्धि पाठको के लिए नीरस एव काण्टकाञ्चित कान्तार है। वास्तव मे नैषध महाकाव्य विद्वानो के लिए बढिया रसायन है, अर्थात् इसके अध्ययन एव मनन मे ही उन्हे बुद्धि विलास तथा शक्ति मिलती है तभी शायद नैषध को नैषध ''विद्वदौषधम्'' कहा गया है। किसी विद्वान् ने नैषधकार की प्रशसा करते हुए यहॉ तक कह दिया कि -

---

1 तुलनीय H S.L S N Das Gupta 8 Day. P 325-328 कवि और काव्यशास्त्र - डॉ0 सुरेशचन्द्र पाण्डे, पृ० 66-67 स0सा0 इति वलदेव उपाध्याय, पृ० 233 35

2 सस्कृत साहित्य का इतिहास प वकदेव उपाध्याय .233 34

3 कवि और काव्यशास्त्र - प्रो0 सुरेश चन्द्र पाण्डे-पी-66

4. संस्कृत साहित्य का इतिहास- बहादुर चद छाबड़ा - पृ० 866

5 सस्कृत साहित्य का इतिहास-डा0 कपिलदेव द्विवेदी - पृ० 225,226

तावद् भा भारवेर्भाति, यावन्माघस्य नोदय। उदिते नैषधे काव्ये, क्व माघ क्व च भारवि।

अर्थात् यदि भारवि सौर कान्ति को माघ के माघ मास ने निष्प्रभकर दिया है तो श्रीहर्ष की वासन्ती सुषमा ने माघ के कम्प को भी निरस्त कर दिया है। वृहत्त्रयी के इस अतिम महाकाव्य के रचयिता, जो कि चिन्तामणि मत्र सिद्धि से सम्पूर्ण विद्याओ मे पारगत थे, सस्कृत साहित्य के श्रेष्ठ विद्वान् थे, तभी तो मध्यकाल से लेकर आज भी सस्कृत जगत मे इनका नाम आदर के साथ स्मरण किया जाता है।

श्रीहर्ष का कृतित्व कर्म

राजशेखर ने अपने प्रबन्ध कोश के अन्तर्गत श्रीहर्षकविप्रबन्ध मे यह विवरण समुपस्थापित किया है कि तत्त्वचिन्तामणि मत्र सिद्धयानन्तर श्रीहर्ष ने सैकडो ग्रथ की रचना की थी "बोध्यावगासीत्" खण्डनादिग्रनान् पर शताञ्जग्रथ। कृतकृत्यीभूय काशीमायासीत्।[1] श्रीहर्ष जैसे विदग्ध मनीषी ने इतने ग्रथो की रचना अवश्य किये होगे परन्तु उनके उन ग्रथो के नाम एव उनका उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता। राजशेखर ने प्रबन्धकोश मे भी उनका विवरण नहीं दिया। ग्रथो की ससारसरणि मे श्रीहर्ष के दो ग्रथ ही जुड पाये है एव अपने मूल रुप मे उपलब्ध भी है। वे है नैषधीयचरित खण्डनखण्डखाद्य|हॉ, श्रीहर्ष ने अवश्य अपने ग्रथ नैषधीयचरित मे आठ ग्रथो का एव खण्डनखण्डखाद्य मे एक ग्रथ का उल्लेख किया है। इस प्रकार श्रीहर्ष रचित ग्रथो की सख्या दस ही परिगणित की गयी है जिनका विवरण निम्नाकित है-

(1) नैषधीयचरित- इसमे निषध देश के राजानल के जीवनचरित के बारे मे श्रीहर्ष ने 22 सर्गो एव 2828श्लोको मे इस ग्रथ कीरचना की। श्रीहर्ष ने इस ग्रथ पुष्प को शृगार रस की रचनाकृति[2] एव शृगार रुपी अमृत बरसाने वाला काव्य कहा है।[3] इस ग्रथ मे श्रीहर्ष ने नल दमयन्ती के जीवन का पूरा विवरण नहीं दिया जैसा कि महाभारत के नलोपाख्यान से विदित होता है। इस बात के साथ-साथ अन्य तथ्यो यथा-जीवन की आगामी घटनाओ की ओर सकेत[4] एव महाकाव्य के सभी लक्षणो यथा-जीवनवृत्तविस्तृत को लक्ष्य लेकर प्रो0 नीलकमलभट्टाचार्य,[5] डॉ0 कृष्णामाचार्य[6] एव डॉ अरुणोदय नटवरलालजानी[7] ने नैषधीयचरित को पूर्ण ग्रथ नहीं मानते। श्री नीलकमल भट्टाचार्य, डॉ वात्वे, एव कृष्णामाचारी नैषधीयचरित मे 60 से 120 सर्ग मानते है, जब कि काव्य प्रकाश के टीकाकार अच्युताचार्य 100 सर्ग मानते है। श्रीहर्ष ने 21 प्रकार के छन्दो[8] का प्रयोग किया है जिनमे छोटे छन्दो की अधिकता है। स्रग्धरा, मन्दाक्रान्ता एव शिखरिणी जैसे बडे छन्दो का प्रयोग कम किया है। यह भी सभव है कि श्रीहर्ष ने रत्नाकर के हरविजय

---

1 प्रबन्धकोष- पृ० 54

2 श्रृङ्गारभङ्ग्यामहाकाव्ये-नै० 1/145

3 श्रृगारामृतशीतगौ - नै० 11/130

4 कारिष्यते परिभव कलिना नलस्य। नै० 13/37 पूर्वपक्ति
चक्रदार विरहेक्षणक्षणे विभ्यती धवहसाय साभवत्। क्वापि वस्तुनि वदत्यनागत चित्तमुद्यदभिमित्तवैकृतम्।। नै० 18/69

5 The Conclusion, therefore, is inevitable that the current Naisadha is incomplete
सरस्वती भवन स्टडीज वैल्यूम 3,1924, पृ० 164-165

6 It is had that it is still lurking in some corner of Bangal and may one day be restord to नै० हिस्टी आफ सस्कृत लिटरेचर-कृष्णामाचारी प0 180

7 It is therefor pÜoaper to conclude that the present poem is incomplete and shows indications that its auther had in his mind to poetise the whole of the Mbh episode but he could not do so far one reason or another -, क्रिटिकल स्टडी आफ श्रीहर्ष नैषधीय चरितम् ए0ए0 जानी- पृ०-25

8. H.S L - S N. Das Gupta & S K day, valum-I-P 329

(50 सर्ग) को पछाडने हेतु अपने ग्रथ का विस्तार किये हो, परन्तु यह वास्तविकता के धरातल पर सही प्रतीत नहीं होता। यह तो सार्वजनीन तथ्य है कि भारतीय काव्य की परिणति सुखान्त की जाती है न कि दु खान्त, शायद इसी लिए श्रीहर्ष ने महाभारत से केवल वहीं तक का अश ग्रहण किया, जहॉ तक काव्य सृजन हेतु उसे शास्त्र सगत लगा, इसीलिए उन्होने नल दमयन्ती के कामोपभोगानन्द तक की स्थिति का वर्णन किया, साथ ही उन्होने नैषधीयचरित के अतिम सर्ग के अन्त मे कहा कि चन्द्रदेव हमारे (आनन्दाभिषेक आलिगन के समय) ऊपर एक सहस्र धार कलश की भाति अमृत वर्षा करते हुए हम लोगो को सुख एव सन्तोष पद हो[1] एव ग्रन्थ समाप्ति सूचक ग्रन्थान्त मेग्रन्थ प्रशस्ति श्लोक भी दिया है' इसलिए नैषधीयचरित एक पूर्ण ग्रथ माना जाना चाहिए, । डॉ ए0बी0 कीथ[2] एव नैषध के टीकाकार नारायण एव विद्याधर[3] भी नैषध को पूर्ण काव्य मानते है। नारायण ने स्पष्ट लिखा है कि ''आनन्दपदेन'' तुष्टयेस्तु इत्याशिषा च ग्रथसमाप्ति द्योतमति।''[4]

नैषधीयचरित महाकाव्य का स्रोत- शतपथ ब्राह्मण 2/2/4-(1-2), महाभारत वनपर्व (52-79) कथासरित्सागर, कुमारपालप्रतिबोध, पद्मपुराण-सृष्टिखण्ड, लिगपुराण 1/66,24-25, वायुपुराण 2/26/74, हरिवश पुराण 1/15, [illegible] 2/63, 173, 74, परन्तु प्रमुखतया महाभारत का नलोपाख्यान ही नैषध की कथा वस्तु का आधार है। नैषध की सम्पूर्ण कथा नलोपाख्यान के प्रथम छै अध्यायो मे ही समाहित है।

(2) स्थैर्यविचारण प्रकरण[5] इस ग्रथ मे सम्भवत श्रीहर्ष ने बौद्धो के क्षणिकवाद का खण्डन किया होगा। सम्प्रति यह ग्रथ अप्राप्य है।

(3) विजयप्रशस्ति-[6] इस अनुपलब्ध ग्रथ मे जय चन्द्र के पिता विजयचन्द्र की प्रशस्ति का वर्णन है।

(4) खण्डनखण्डखाद्य[7] इस उपलब्ध ग्रथ पुष्प मे श्रीहर्ष ने नैयायिको का खण्डन कर उन्हीं लोगो को खाड (गुड रो वनी चीनी) रुप मे खाने को दे दिया। अर्थात् इसमे उन्होने नैयायिको के सिद्धान्तो का न्याय विधि का अवलम्ब लेकर खण्डन किया एव अद्वैत सिद्धान्त का मण्डन किया। इसमे 4 परिच्छेद एव कुल 66 विभाग है यह अद्वैत वेदान्त का अत्यधिक दुरुह एव पाण्डित्य सम्पन्न ग्रथ है। 1200ई० मे गगेश उपाध्याय ने खण्डनखण्डखाद्य का खण्डन अपने ग्रथ ''तत्त्वार्थचिन्तामणि'' की रचना की' सोलहवीं शताब्दी मे शकर मिश्र ने इसी की शैली पर 'वादिविनोद' लिखा।

(5) गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति-[8] कवि प्रकृत्या यायावर होते है। श्रीहर्ष भी कभी भ्रमण करते करते गौड देश (बगाल) गये होगे, एव वहॉ के राजा ने उनका अत्यधिक सम्मान किया होगा, उस राजा की सेवाओ का परिणाम फल उनकी प्रशस्ति रुप मे परिणत हुआ। यह ग्रथ भी लुप्तप्राय है।

---

1 पुष्पेष्वासनतत्प्रिया परिणयानन्दाभिषेकोत्सवे, देव प्राप्तसहस्रधारकलशश्रीरस्तु नस्तुष्टये। नै० 22/148 उत्तरार्द्ध

2 It is happily in credible that even sriharsa should have thought it worthwhile further Elaborating this theme. हिस्ट्री ऑफ सस्कृत लिटरेचर- ए0बी0 कीथ- पृ० 140

3 ननु महाभारतेनलोपाख्यानस्येव वक्तुमुचितत्वात् श्रीहर्षेणोपाख्यानैकदेशे काव्यविश्रान्ति कथकृता।सकलनलोपाख्यानस्यैव वक्तुमुचितत्तवात् । सत्यम्। काव्य हि सहृदय-हृदयानामावर्जक भवति। हृदयावर्जक च काव्य स्वरसेन क्रियते । यत्र च पुनरैतिह्ये एक देशे सरसत्तव दृश्यते। तत्रेवानेनापि विश्रान्ति कृतेति भाव। -नैषध-विद्याधरी टीका

4. नैषधीयचरित-नारायणी टीका, (दाधीचिपडित शिवदत्त शर्मा) सन् 1912, पृ० 527

5 तुर्य स्थैर्यविचारण प्रकरण भ्रातर्यय तन्महाकाव्ये -------- नै० 4/123

6 तस्य श्री विजयप्रशस्तिरचनातातस्य नव्येमहाकाव्ये ----- नै० 5/138

7 षष्ठ खण्डनखण्डतयोऽपि सहजात् क्षोदक्षमे तन्महाकाव्ये ------ नै० 6/113

8 गौडोर्वीकुलप्रशस्तीाणिति भ्रातर्यय तन्महाकाव्ये ------ नै० 7/110

(6) अर्णववर्णन-[1] श्रीहर्ष गौडदेश मे रहते हुए समुद्र दर्शन का भी लाभ लिये होगे। फलत उसकी प्राकृतिक छटा से आकृष्ट होकर उन्होने अर्णववर्णन ग्रथ काव्य लिखा होगा। यह ग्रथ भी अनुपलब्ध है।

(7) छिन्दप्रशस्ति-'इस अप्राप्य ग्रथ मे छिन्द नामधारी किसी राजा की जीवनचर्या का प्रशसातमक विवरण श्रीहर्ष दिये होगे।

(8) शिवशक्तिसिद्धि-[3] श्रीहर्ष शिव, शक्ति (पार्वती) के उपासक थे, अत उन्होने इस ग्रथ की रचना की होगी। ध्यात्त्वय है कि वे चिन्तामणिमत्र (अर्धनारीश्वर) के साधक थे। यह ग्रथ भी अप्राप्य है।

(9) नवसाहसाकचरितचम्पू-[4] इस ग्रथ को राजा भोज के पिता नवसाहसाक उपाधिवाले सिन्धु राजा कीप्रशस्ति मे श्रीहर्ष ने लिखा होगा। यह भी अनुपलब्ध ग्रथ है।

(10) ईश्वराभिसन्धि-[5] इस ग्रथ के होने का उल्लेख श्रीहर्ष ने अपने ग्रथ खण्डनखण्डखाद्य मेदिया है। ईश्वर को लक्ष्य लेकर लिखा गया दर्शन का यह ग्रथ होगा जिसमे अनीश्वरवादियो का खण्डन श्रीहर्ष नेकिया होगा जेसा कि खण्डनखण्ड खाद्य मे ''अप्रसगात्मक तर्क निरुपणम्'' आये ईश्वरामिसन्धि से ध्वनित होता है परनतु यह ग्रथ भी अप्राप्य है।[6]

उपर्युक्त दस ग्रथो मे सम्प्रति श्रीहर्ष के दो ग्रथ ही प्राप्त है। नैषधीयचरित एव खण्डखण्डखाद्य। शेष आठ ग्रथ लुप्तप्राय है। नैषध मे जिन आठ ग्रथो का वर्णन मिलता है, वे अवश्य ही नैषध से पहले लिखे गये होगे परन्तु उन आठ ग्रन्थो मे खण्डनखण्डखाद्य पर यह बातनहीं लागू होती, क्योकि श्रीहर्ष ने नैषध मे लिखा है कि ये दोनो ग्रथ (नैषध एव खण्डनखण्डखाद्य) साथ-साथ लिखे गये।[7] साथ ही खण्डनखण्डखाद्य मे नैषध के 21वे सर्ग का उल्लेख प्राप्त होने से ऐसा मालूम होता है कि कवि ने खण्डनखण्डखाद्य को पूर्ण करने के पहले ही नैषधीयचरित को पूर्ण कर लिया हो, साथ ही यह भी स्मरणीय है कि उन्होने ईश्वराभिसन्धि ग्रथ के होनेका वर्णन नैषध मे न देकर खण्डनखण्डखाद्य के अतिम प्रकरण मे दिया है, इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ईश्वराभिसन्धि ही उनकी अतिम कृति रही होगी क्योकि खण्डनखण्डखाद्य मे उसका वर्णन भविष्य मे होने को सूचित करता है यथा- शेष चेश्वराभिसान्धौ स्वप्रकाशवादे निर्वक्ष्याम, श्रुतिप्रामाण्य सिद्धार्थप्रामाण्य चेश्वराभिसन्धौ साधयिष्यते'' ईश्वराभिसन्धि नामक ग्रथ को श्रीहर्ष ने पूर्ण कर लिया था या नहीं इस बारे मे कुछ कह पाने के लिए कोई भी विवरण नहीं मिलता। उपर्युक्त तथ्यो से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रीहर्ष के प्राप्त ग्रथपुष्पो मे कालक्रमदृष्ट्यानुसार नैषधीयचरित खण्डनखण्डखाद्य से प्राचीन कृति सिद्ध होती है।

---

1 सदृष्व्यार्णववर्णनस्य नवमस्तस्य व्यरसीन्महाकाव्ये ------ नै० 9/160

2 यात सप्तदश स्वसु सुसदृशि छिनप्रशस्तेर्महाकाव्ये ------ नै० 17/222

3 यातोऽस्मिञ्शिवशक्तिसिद्धिभगिनीसौभ्रात्रभव्ये-महाकाव्ये ----- नै० 18/154

4 नवसाहसाङ्कचरिते चम्पूकृतोऽय महाकाव्ये------ नै० 22/149

5 दृष्टव्योदाहरण चैतदीश्वराभिसन्धौ वेदप्रामाण्ये तथा, यथा न सौगताऽपि विप्रतिपत्तुमर्हति।---- दर्शित च विविच्येदमीश्वराभिसन्धौ। -खण्डनखण्डखाद्य-अप्रसगात्मकतर्कनिरूपणम्, प० 779-781

6 श्रीहर्ष ग्रथों के विवरण हेतु द्रष्टव्य H C S L M Krishnamachariar, Para-75 P 181

7 षष्ठ खण्डनखण्डतोऽपि सहजात् क्षोदक्षमे ---- नै० 6/113

परिवेश

श्रीहर्ष मध्यकालीन समय के प्रतिनिधि महाकाव्यकार थे। मध्यकाल मे सामन्ती प्रथा, एव राजशाही प्रशासन था। कवि युग द्रष्टा होते ही है, वे अपनी रचनाओ के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एव सास्कृतिक जनजीवन का चित्रण किसी न किसी रुप मे अवश्य कर देते है। कवि के ऊपर परिवेश का प्रभाव पडना स्वाभाविक है क्योकि परिवेश का आवरण हर मानव को ढक ही लेता है। तत्कालीन परिवेश से प्रभावित होकर श्रीहर्ष ने नैषधीयचरित मे जो वर्णन किया है, उससे उस समय की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सास्कृतिक, दार्शनिक, भौगोलिक स्थिति का आकलन किया जा सकता है।

श्रीहर्ष ने अपनी कृति मे मध्य कालीन राजनीतिक परिस्थिति का चित्रण किया है। मुगलो का भारत पर आधिपत्य करने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकी थी एव भारतीय नरेश आपसी रजिस के शिकार थे। वे मिलजुलकर बाहरी मुगल आक्रमण का सामना न कर आपसी शत्रुता मे ही अपनी शक्ति का अपव्यय कर रहे थे। ऋतुपर्ण के प्रसग मे कवि प्रतीक रुप से कन्नौज नरेश तथा दिल्लीपति (पृथ्वी राज चौहान) के कटु सम्बन्धो कीओर सकेत करता है-

द्वेष्याकीर्तिकलिन्दशैलसुतया नद्याऽस्ययद्दोर्द्धयी कीर्तिश्रेणिमयी समागमाद् गगा रणप्रागणे।
तत्तस्मिन्विपिनिमज्जय बाहुजजभटैरारम्भि रम्भापरी रभानन्दनिकेतनन्दनवनक्रीडादराडम्बर ।।[1]

कविगण अपने सम्राट की स्तुतिपरक ग्रथ लिखने मे ही स्वय को धन्य समझते थे उन्होने अपने सम्राट को यथास्थिति से परिचित कराने वाले काव्यो मे अपनी लेखनी नहीं चलायी। श्रीहर्ष भी अपने स्वामिवश की प्रशसा करते दिखते है,[2] परन्तु नैषधकार ने तत्कालीन सास्कृतिक गतिविधियो का भी वर्णन किया है। नैषधकार तत्कालीन सामाजिक दशा का चित्रण करते हुए कहते है कि उस समय भवन निर्माण कला पर्याप्त विकसित अवस्था मे विद्यमान थी। श्रीहर्ष ने कुण्डिनपुर का जो वर्णन नैषध मे किया हे वह तत्कालीन राजधानियो का परिचायक है। कुण्डिनपुर के भवन या यो कहे कि तत्कालीन राजभवन जिन्हे श्रीहर्ष ''सौध'' नाम से अभिहित करते है ऊँचे एव सुधा धविल रहते थे। भवनो पर पताकाये लहराती रहती थीं। भवन के स्तम्भ शालभञ्जिकाओ तथा सिहादिको की प्रतिमाओ से सुसज्जित रहती थीं। उन पर कलश बनवाने कीभी प्रथा थी, परकोटे से बाहर एक गहरी तथा चौडी परिखा भी बनायी जाती थी, प्रवेश हेतु विशाल कपाट बनाये जाते थे। नगर के मध्य मे बाजार था। आवागमन हेतु राजपथ थे। राजभवनो के द्वार पर सन्तरी खडे रहते थे, शुभ अवसरो पर भवनो , राजपथो को तोरणो मालाओ तथा चित्रो से सजाने की परम्परा थी। यद्यपि श्रीहर्ष ने ग्रामीण बस्तियो का विवरण नहीं दिया परन्तु राजधनियो मे रहने वाले व्यक्तियो के भवनो तथा उनमे स्थित वातायनो, राजपथ एव बाजारो आदि से श्रीहर्ष ने जो वर्णन किया है, वह शहरी आवास व्यवस्था की झलक ही उपस्थित करता है। राज्य मे अनेक कर्मचारी थे। राज्य का प्रधान कर्मचारी अमात्य कहलाता था। यह इतना योग्य एव विश्वासपात्र होता था कि राजा अपने समस्त उत्तर दायित्त्व को उस पर छोड देता था।[3] अमात्यो की सख्या एक से अधिक थी। वे राजा को सभी समाचारो से अवगत कराते थे। राजभवन के सेवको मे कञ्चुकी मुख्य कर्मचारी था। द्वारपाल सशस्त्र एव चौकन्ने रहते थे। प्रतीहारो के समान अन्त पुर मे प्रतीहारिणी होती थीं, जो दड धारण किये रहती थीं। सन्देश

---

1 नै० 12/12

2 इतिश्रुतिस्वादिततद्गुणस्तुति , सरस्वतीवाङ्गमय विस्मयोत्थया ।
शिरस्तिर कम्पनयैव भीमजा, न त मनोरन्वयमन्वमन्यत् ।। नै० 12 /93

3. न्यस्य मन्त्रिषु स राज्यमादरादारराध मदन प्रियासख। नैकवर्णमणिकोटिकुट्टिमे हेमभूमिभृति सौधमूधरे।। नै० 18/3

प्रेषणादि के लिए दूत एव दूतियॉ होती थी अन्त पुर मे दासियॉ थी, पर राजकुमारियॉ इनसे सखी जैसा व्यवहार करती थीं। स्वास्थ्य की देखभाल के लिए राजवैद्य थे। वैतालिक लोग प्रात काल स्तुति कर राजा को जगाने का कार्य करते थे । वस्त्रादि प्रच्छालन के लिए रजक एव रथ हाकने के लिए सूत (सारथी) होते थे, तथा शिविका (पालकी) ढोने के लिए कुशल यानवाहक थे लेखनकार्य हेतु स्याही तथा खडिया थीं। मद्यपान हेतु कलात्मक चषक थे। लेनदेन मे बहुमूल्य रत्न से लेकर कौडियो तक का प्रयोग किया जाता था।[1] शयन मे अच्छे पर्यंको का प्रयोग एव दहेज प्रथा विद्यमान थी।[2]

धार्मिक अवस्था का चित्रण करते हुए श्रीहर्ष कहते है कि उस समय जनसाधारण तथा राजपरिवार दोनो की ही धार्मिक क्रिया कलापो मे आस्था थी। इहलोक तथा परलोक मे लोगो का विश्वास था। ससार को क्षण-भगुर तथा मिथ्या माना जाता था। धर्म एव यश आदि के लिए जीवन तक को उत्सर्ग कर देना आदर्श था।[3] लोगो का जीवन भाग्यवादी था जो उनके विचारो से ध्वनित होता है यथा-

अवश्यभव्येष्वनवग्रहग्रहा यया दिशा धावति वेधस स्पृहा ।
तृणेन वात्येव तयानुगम्यते जनस्य चित्तेन भृशावशात्मना ।।[4]

स्पष्ट है कि लोगो की ज्योतिष मे भी आस्था थी। देवताओ के पूजन को अभीष्ट सपादक समझा जाता था। उनकी आराधना, प्रणाम, ध्यान , पूजन तथा स्तुति आदि से की जाती थी। सूर्य, विष्णु, शिव, प्रधान देवता थे पूजनोपरान्त ध्यानादि तथा दानादि की प्रथा थी।[5] तन्त्रमन्त्र का भी प्रचलन था। स्वय श्रीहर्ष भी चिन्तामणि मत्र (अर्धनारीश्वर) की सिद्धि किये थे। मातृभक्ति एव पितृभक्ति भी तत्कालीन समय मे थी। श्रीहर्ष स्वय इसके समर्थक थे। धार्मिक अनुष्ठान के साथ-साथ वेदपाठ भी होता था। धार्मिक स्नान के लिए तालाब, एव नादियॅं थी। साथ ही कलि प्रसङ्ग के माध्यम से श्रीहर्ष ने यह भी बतलाने की चेष्टा की है कि उस समय भी परस्त्रीगामी, पापाचारी कामी तथा स्वेच्छाचारी, ऋषियो एव मुनियो की खिल्ली उडाने वाले लोग थे।[6]

सास्कृतिक परिवेश का विवरण देते हुए श्रीहर्ष कहते है कि उस समय विभिन्न प्रथाएँ विद्यमान थीं। स्वयवर के साथ-साथ ब्राह्म विवाह का प्रचलन था। स्वय कुण्डिनपुरनरेश भीम ने नलदमयन्ती के परिणय सस्कार दोनो विधियो से किये थे। दहेजप्रथा भी थी, क्योकि भीम ने नल को दहेज रूप मे विभिन्न आभूषणो के साथ-साथ एक खजरी भी दी। वरमाला दूर्वाङ्कुरों एव बन्धूक पुष्पो की बनी होती थी। वरमाला पडने के बाद कुछ राजाओ के निराश होने पर युद्ध की भी स्थिति आ जाती थी। बारात की अगवानी, के बाद पाणिग्रहण सस्कार मे ग्रथिबन्धन, ध्रुवदर्शन, होम, सकल्प तथा दक्षिणा आदि का वैवाहिक व्यापारो मे समावेश था, जो आज तक भी भारतीय सस्कृति मे प्रचलन मे है। बारात तीन चार दिन तक रुकती थी। सिन्दूर दान की भी प्रथा थी। औरते चूडियॉ पहनती थीं, ओठो मे यावक एव पैरो मे आलक्तक (रग) लगाती थीं, केशो मे पुष्प लगाना, तथा रेशमी वस्त्र एव आभूषण स्त्रियो को प्रिय थे। सौन्दर्य के लिए अनुलेप एव कुकुम आदि का प्रयोग स्त्रियॉ करती थीं। स्त्रियॉ के साथ-साथ पुरुष भी ज्ञान विज्ञान की

---

1 बहुकम्बुमणिर्वराटिकागणनाटत्करकर्कटोत्कार। हिमवालुकयाच्छवालुक पटु दध्वान यदापणार्णव।। नै० 2/88

2 तदा निसस्वानतमा घन घन ननाद तस्मिन्नितरा तत ततम् ।
अवापुरुच्चै सुषिराणि राणितामममानमानद्धमियत्तयाध्वनीत् ।। नै० 16/16

3 नै० 5/118

4 नै० 1/120

5 21/118-119

6 नै० 17/37 83

शिक्षा लेते थे। भोज्य पदार्थो मे ओदन, पायस, घृत, दधि, विभिन्न पशुओ का मास, पानक, गोलक, लड्डू, सत्तू, नवनीत, ताम्बूल, पर्पट, द्राक्षासव एव मदिरापान मुख्य थे। मनोविनोद के साधनो मे नृत्य, गीत एव वाद्य (तौर्यत्रिक) थे। स्त्रीपुरुषो के सामूहिक नृत्य भी होते थे।[1] मृगया तथा उपवनविहार भी विनोदार्थ किये जाते थे। राजाओ के अन्त पुर मे विनोदार्थ हस, सारिका, शुक तथा कोकिल आदि पक्षियो को भी रखा जाता था, स्त्रीपुरुष आपस मे भी हासपरिहास कर लेते थे। वाद्यो मे वीणा, मृदङ्ग, विपञ्ची, वेणु, ढोल, तुरही, वशी आदि प्रमुख थे। स्त्रियॉ कन्दुक के साथ-साथ अभिनय के माध्यम से भी मनोविनोद करती थीं। कठपुतली नृत्य, चित्रकला तथा मूर्तियॉ भी मनोविनोद का साधन थीं। कविता पाठ एव विद्वत्गोष्ठियो का आयोजन भी तत्कालीन समय मे प्रचलित था। बारात मे भी हास-परिहास का प्रचलन था।

भौगोलिक दशा की स्थिति बताते हुए श्रीहर्ष कहते है कि उस समय (भारत) जम्बू द्वीप के राजाओ मे अवन्ती, गौड, मथुरा एव काशी नरेश सशक्त राजा थे। श्रीहर्ष ने अवन्ती के साथ उज्जयिनी नगरी तथा शिप्रा नदी, मथुरा के साथ यमुना नदी, वृन्दावन एव गोवर्धन पर्वत तथा अयोध्या के साथ सरयू का भी उल्लेख किया है । बदरिका आश्रम के निकट स्थित कल्पग्राम की सत्ता, तथा काशी के निकट असी के पास नलपुर का बसना भी भौगोलिक एव ऐतिहासिक तथ्य है। इसी प्रकार सरस्वती, यमुना ताम्रपर्णी तथा गगा आदि नदियो का सकीर्तन, गोवर्धन, हिमालय, मेरु, कैलाश, मलय, विन्ध्याचल आदि पर्वतो के सन्दर्भ तथा विभिन्न समुद्रो,[2] दारुवन तथा वृन्दावन का उल्लेख भी भौगोलिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

दार्शनिक परिवेश की स्थिति की मीमासा श्रीहर्ष के दोनो ग्रथो नैषधीयचरित एव खण्डनखण्डखाद्य मे वर्णित तथ्यो के माध्यम से की सकती है। वह यह है कि उस समय दार्शनिक क्रान्ति का बोलबाला था। स्वय श्रीहर्ष के पिता श्रीहीर को एक नैयायिक (उदयनाचार्य) से पराजित होना पडा था, उसी के प्रतीकारार्थ श्रीहर्ष ने खण्डनाखण्डखाद्य की रचना की। स्पष्ट है कि उस समय दार्शनिक स्थिति अवस्थित थी। एक ओर ईश्वर मे आस्था न रखने वाली बौद्ध परम्परा विपन्न हो चुकी थी, तो दूसरी ओर ईश्वर वादी शैव कापालिक, कालमुखादि भी मृत्युशय्या पर पडे थे। बौद्ध वज्रयानियो से लेकर वैदिकतन्त्र साधको तक एक ही अग्नि धधक रही थी। धर्मचक्र का स्थान भैरवी चक्र, उपोसथ व्रतो का स्थान अनीतियो एव कुरीतियो ने ले रखा था। चार्वाक, बौद्ध, जैन, मीमासा, न्याय, वैशेषिक साङ्ख्य, तथा वेदान्त आदि सभी दर्शनो की सत्ता उस युग मे विद्यमान थी[3] परन्तु तार्किक गण शाङ्कर के अद्वैतवाद की खिल्ली उडाने लगे थे। अनिवर्चनीयतावाद का घोर खण्डन किया जा रहा था। आचार्य शङ्कर को प्रच्छन्न बौद्ध कहने वालो का बोलबाला हो गया था। मीमासकगण बौद्ध प्रतिरोध से प्रभावित होकर अपने याज्ञिक पक्ष को छोडकर प्रमाण के क्षेत्र मे चिन्तनरत हो गये थे। ऐसी परिस्थिति मे प्रमाणमीमासा पर एक प्रबल प्रहार करने की आवश्यकता थी, अत श्रीहर्ष ने अपनी कृति खण्डनखण्डखाद्य की रचना कर नैयायिको और वैशेषिको के माध्यम से निर्वचनचर्चा पर आघात किया, फलस्वरूप वेद और वेदान्त के साधना पक्षो का द्वार उद्घाटित हुआ एव वेदान्तिक पक्ष प्रशस्त हुए। वैताण्डिक प्रतिवादियो की बात कम हुई, प्रत्येक वादी को अपने वाद प्रस्तुत करने का अवसर मिला, यद्यपि "कीरवदेतदुक्त्वा दिग्विजयाकौतुकमातनुध्वम्"[4] जैसी

---

1 यत्र वैणरववैणवस्वरैर्हुंकृतैरुपवनीपिकालिनाम्। कङ्कणालिकिलहैश्च नृत्यता कुब्जित सुरतकूजित तयो ।। नै० 18/17

2 नै० 20/2 21/27

3 नै० 17/37 214

4 खण्डनखण्डखाद्य- पृ- 12

युक्ति के साथ-साथ पतिवादियो की ओर से भी ''नित्यकथासु विजिगीषुभिरेष धार्य ''[1] इत्यादि नारे भी लगाये गये किन्तु विजयश्री ने श्रीहर्ष को ही वरण किया। यह सच है कि तार्किको की कुदृष्टियो का खण्डन करने के लिए श्रीहर्ष ने तत्काल चार्वाको एव सौगतो की प्रणाली को अपनाया, किन्तु पश्चात् अपनी खण्डन युक्तियो को व्यापक बनाकर उन तर्कपद्धतियो को भी अपनी खण्डनीय कोटि मे समेट लिया। उन्हीं की ओर सङ्केत करते हुए कहा गया-

तत्तुल्योहस्तदीय च योजन विषयान्तरे । श्रृङ्खला तस्य शेषे च त्रिधा भ्रमति मत्क्रिया।।[2]

स्पष्ट है कि श्रीहर्ष ने शाङ्कर अद्वैतवाद के मत की स्थापना करते हुए लोकजीवन मे सत्य एव अनृत (भ्रम माया) के सम्मिश्रण वाले व्यवहरित जीवन को ही अभीष्ट समझा होगा क्योकि सारा ससार सत्य तथा अनृत के मिथुनीभाव के बीच मे ही सचालित है, एव लोकजीवन की चरितार्थता भी इसी मे है कि वह पुत्रैषणा, लोकेषणा, एव वित्तैषणा की भावनाओ मे रमा रहे। अगर उसे यह ज्ञान हो जाय कि ससार मिथ्या है, तो सभव है वह लोक जीवन की क्रियाओ से विमुख हो जाए, तब सासारिक जीवन की क्रियाएँ ही बाधित हो जायेगी।

1 तार्किकरक्षा, मेडिकल हाल काशी, 1903, पृ० 364

2 खण्डनखण्डखाद्य- पृ० (791)

द्वितीय अध्याय

नैषधीयचरितम् में दार्शनिक संदर्भ

दर्शनशास्त्र

चिन्तन मनुष्य मात्र की सहज प्रवृत्ति है। नि सन्देह हर मनुष्य का चिन्तन अलग-अलग होता है। वैसे मानव, पशु, पक्षी, सभी की जीवन विधाओ मे 'चिन्तन' 'सामान्य' तत्व के रूप मे समाहित है किन्तु मानव के अतिरिक्त पशु पक्षी इत्यादिका चिन्तन केवल उनके जीवन धारण और जीविका दर्शन तक ही सीमित रहता है, जब कि बौद्धिक प्राणी होने के नाते मानव का चिन्तन यथार्थता के आलोक से प्रकाशित होने के कारण जीवन दर्शन के साथ साथ उनके यथार्थ का ज्ञान का प्रतिपादक होता है, क्योकि दर्शन यथार्थ ज्ञान का ही पर्याय है । आज विरासत रूप मे जो ससार हमारे सामने अवस्थित है, वह हमारे पूर्वजो ऋषि मुनियो एव विद्वज्जनो की गवेषणाओ की प्रतिबिम्ब कहा जा सकता है । स्पष्ट है कि हमारे सामने अनन्तकाल का प्रवाह वह रहा हे, एव हम उसी अनन्त प्रवाह से एक लोटा पानी निकालकर अपने ज्ञान की तृष्णा बुझाना चाहते है तथा ससार को विविध रूपो मे परिभाषित करते है । वेद, पुराण एव उपनिषदो से भी यह स्पष्ट होता है कि मानव मे कौतूहल एव पृच्छा की प्रवृत्ति उसकी मौलिक विशेषता थी[1] एव अपनी पृच्छा तथा कौतूहल की सन्तुष्टि मे मानव ने जिन विविध विचारो को अभिव्यक्त किया, उन सबका व्यवस्थित स्वरूप ही ''दर्शन'' नाम से अभिहित हुआ । दर्शन, जीवन दृष्टि को देखने की एक विशिष्ट विधा है । मानव जीवन से सम्बन्धित सम्पूर्ण तथ्यो यथा-सस्कृति, विज्ञान, धर्म, कला से दर्शन का अङ्गाङ्गिभाव सम्बन्ध है, क्योकि चाहे जिस, धर्म, सम्प्रदाय, वर्ण के लोग हो, उनका दर्शन से अटूट सम्बन्ध रहता है, हॉ विविधता भले हो सकती हे।[2] अगर धर्म जीवन की आचार पद्धति है, तो दर्शन मनुष्य की बौद्धिक परिपुष्टि का दस्तावेज या जीवन की जीवन्त दृष्टि है । यह तो यथार्थ सत्य है कि ससार के सम्पूर्ण मनुष्यो की चिन्तन की विधाये एक नहीं हो सकती क्योकि बुद्धि भी सामाजिक भौगोलिक, प्राकृतिक वातावरण या स्वय मनुष्य के पूर्वाग्रहो से प्रभावित होती है, इसलिए एक ही प्रश्न के मनुष्यो द्वारा विविध शैली मे अनेक उत्तर हो जाते है ।[3] अर्थात् निर्णय ऐकान्तिक न होकर अनैकान्तिक हो जाता है, इस रूप मे दर्शन भी अनेक हो गये । दर्शन को 'आन्वीक्षिकी' विद्या के नाम से भी जाना जाता है। अर्थशास्त्र के प्रणेता कौटिल्य का कहना हे कि दर्शनशास्त्रह सभी विधाओ का दीपक है, वह सभी कर्मों को सिद्ध करने का साधन है, साथ ही सभी धर्मों का अधिष्ठान भी हे।[4] लेकिन ग्रीक भाषा मे दर्शन का अर्थ विद्यानुराग, या ज्ञान के प्रति प्रेम, या

---

1 ~~आत्था~~ येम प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके ।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाह वराणामेष वरस्तृतीय ।। कठो 1/1/20
- कि कारण ब्रह्म कुत स्म जाता जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठा ।
अधिष्ठिता केन सुखेतरेषु वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम् ।। श्वेताश्वर उप १/१
- को अद्धा वेद क इह प्रवोचत कुत आ जाता कुत इय विसृष्टि । नासदीप सूक्त
- हिष्यममेन पत्रेण सत्यस्यापिहित मुखम् ।
तत्व पूषन्नपावणु सत्य धर्माय दृष्टये ।। इशिवास्यो मत्र 15
- मुण्ड 1/1/3 छान्दो 6/1/3 7/1/2, 7/23/1, वृ 2/4/5

2 All Philosophy is systematic symbolism and sympalism necessarily admits of alternatives There are Naturaly different schools.–K C Bhatacharya, The chief currents of contemparary philosophy D M Datta- p-133

3 एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति ऋ १/१४४/६६
- रूचीना वैचित्रयादृजुकुटिलनानापथ जुषा ।
मणिामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ।। पुष्पदन्त-शिवमहिम्नस्त्रोत्र
- मनुष्य की मूल्य चेतना बदलती और विकसित होती रहती है, उसी के अनुरूप दर्शन भी नये रूप धारण करता है । भारतीय दर्शन, नदकिशोर देवराज, पृ० 10

4 प्रदीप सर्व विद्यानामुपाय सर्वकर्मणाम् ।
आश्रय सर्वधर्माणा शश्वदान्वीक्षिकी मता ।। अर्थशास्त्र (कौटिल्य) 2/13

ज्ञान की चाह (Love of wisdom) है। पाश्चात्य दार्शनिको[1] के साथ साथ भारतीय विचारको ने दर्शन की विविध रूपो मे व्युत्पत्तियॉ की हे। यथा-दृश् धातु से भाव अर्थ मे ल्युट् प्रत्यय करने पर दर्शन का मौलिक अर्थ होगा दर्शन या दृष्टि (ख्यातिरेव दर्शनम्) अर्थात् देखना, जिसका तात्पर्य है तत्वसाक्षात्कार यदि दृश् धातु से ल्युट् प्रत्यय को करण अर्थ मे स्वीकार किया जाये तो दर्शन शब्द का अर्थ होगा, जिसके द्वारा देखा जाये (दृश्यते अनेन इति दर्शनम्) अर्थात् दर्शन वह विशिष्ट विधा है, जिसके द्वारा तत्वज्ञान की प्राप्ति होती है । भारतीय दर्शन की मीमासा के पश्चात् "दृश्यते आत्मादितत्वमनेनेति दर्शनम्" इस प्रकार का 'दर्शन' सम्बन्धी अर्थ भारतीय विचारको या भारतीय दर्शनो के लिए समीचीन जान पडता है, क्योकि इनकी दर्शन सम्बन्धी विवेचना मे अध्यात्म का समन्वय ,समाहित है । विलियम अर्न्स्ट हाकिग भी दर्शन को मौलिक रूप को अध्यात्मनाद से समन्वित मानते है[2] उपनिषदो मे भी ऋषियो ने आत्मत्व पर विचार किया है।[3] ईसा के अपने आप को जाना, (Know thy self) कथन मे उपनिषदो का प्रभाव माना जा सकता है। जबकि तथा महात्मा बुद्ध का सम्मादिट्ठि का उपदेश आत्मदीपो भव का सूचक है । इस रूप मे भी भारतीय दर्शन तत्वज्ञान का रास्ता दिखाता है, जो नित्यानन्द की अवाप्ति के साथ-साथ ब्रह्म जैसे अथाह समुद्र मे गोते लगाने के समान है ।[4] भगवान कृष्ण ने भी यही बात गीता मे कही है-

> तत्र त बुद्धिसयोग लभते पौर्वदेहिकम् । यतते च ततो भूम ससिद्धौ कुरुनन्दन ।।
> प्रयत्नाद् यतमानस्तु योगी सशुद्धकिल्विष। अनेकजन्मससिद्धस्ततो याति परा गतिम् ।।[5]

भारत के विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदाय अपनी-अपनी दृष्टि से उसी एक सार्वभौम तत्व का साक्षात्कार करने के विविध साधन प्रस्तुत करते है, जबकि उन सबका एक ही लक्ष्य है परमतत्व का ज्ञान या साक्षात्कार। पाश्चात्य दार्शनिक प्लेटो ने भी माना है कि विज्ञानस्वरूप शिवतत्व का साक्षात्कार मानव जीवन का चरम लक्ष्य है ।

सासारिक जन तो किसी भी अभिव्यक्ति का बाहरी कन्चुक मात्र देखता है, अभिव्यक्ति की अन्तप्रक्रिया से उसे क्या लेना देना ? यह कार्य तो योगकुशल परमहसो, दार्शनिको अथवा सन्तो का है, जो ससार मे रहते हुए ससारी नहीं होते । मानव सस्कृति के ऊषाकाल से ही भारत शास्त्रचिन्तन की भूमि रहा है एव इसी शास्त्र चिन्तन ने ही भारत को विश्वगुरू' बनने का गौरव प्रदान किया था।[6] प्रो0 जिमर भी यह मानते है कि पाश्चात्य विचारधारा, चाहे वह प्राचीन ग्रीक प्रत्ययवाद (Idealism) हो या आधुनिक ईसाई मत हो, की प्रमुख अभिरुचि मानवता ही रही है, जब कि भारत के सन्त महात्माओ के लिए मानवता से ऊपर उठना (और जीव मात्र तक फैल जाना ही) समस्त साधनाओ का लक्ष्य है ।[7] और ऐसा मनुष्य

---

1 – Philosphy aims at a knowledge of eternal and issential nature of things - Plato
– Philosphy is the scence, which investigates the nature of being, as it is in itself - Aristqtle
– Philosphy or Metaphysics is an attempt to know reality as against mere appearance - Bradly
– Philosphy is the Metaphysics of reality or a knowledge of that which is eternal - Hegel
– Philosphy is the science and criticism of cognition - Kant
– Philosphy is the science of knowledge - Fichte
– Philosphy is the sum total of all scientific knowledge - Paulser
– Philosphy is the science of all sciences - Comte
– Philosphy is the synthesis of science, a universal science or a super science - Harbort spancer
– Philosphy is the logical study of the foundations of science - Bertrand Russel
– Philosphy is the logical analysis of the proqsitions of science or critique of language - Witzenstein

2 Types of Philosophy-william 'Ernst hocking अनुवादक रमेशचन्द्र 14

3 आत्मा वाऽरेद्रष्टव्य श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यश्च मैत्रेयि। वृ०उ० 2/4/5

4 Schools of Indian philosophical thoughts स्वामी प्रज्ञानानन्द पृ० 1

5 गीता- 6/43-45

6 एत्तद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन । स्व स्व चरित्र शिक्षरन् पृथिसव्या सर्वमानवा ।। मनु 2/20

7 Philosophis of India - p-2/32 इह चदेवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टि । केनोप 2/5

तभी कर सकता है जब वह सम्पूर्ण स्वार्थो एव मानव केन्द्रित दृष्टिकोण से ऊपर उठेगा । इसके लिए उसे यथार्थ दृष्टा बनने की पात्रता हासिल करनी पड़ेगी, जो कि साधन चतुष्टय के अधिकारी बनने पर ही सम्भव हो सकती है । अररस्तू भी यह मानते है कि मनुष्य मे एक देवी तत्व है और हम इस दैवी तत्व के प्रति तभी न्याय कर सकते है, जब हम सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा करे, क्योकि एक ज्ञानी व्यक्ति का यही लक्षण है कि वह किसी भी विषय का सही सही ज्ञान प्राप्त करे [1] क्योकि दर्शन सत्य की खोज का एक प्रयास है ।[2] जर्मन कवि लेसिग ने भी कहा है यदि "सर्वशक्तिमान (ईश्वर) अपने दाहिने हाथ मे 'सत्य' और बाये हाथ मे 'सत्यान्वेषण' लेकर मुझे दोनो मे से एक चुन लेने का अधिकार दे, तो मे अत्यन्त नम्रतापूर्वक सत्यान्वेषण को ही चुनूँगा।" इस प्रकार दर्शन सत्य का शाश्वत अन्वेषण भी सिद्ध होता है[3] दूसरे शब्दो मे दर्शन सम्पूर्ण जीवन और विश्व की व्याख्या तथा इष्टत्व (Value) बोध का प्रयत्न भी है या मनुष्य का वह बोद्धिक प्रयास है, जिसके द्वारा वह किसी भी विषय से सम्बन्धित मूल तत्वो अथवा आधारभूत मान्यताओ की तर्कसगत एव निष्पक्ष परीक्षा करता है, और उसके सम्बन्ध मे केवल तर्क के आधार पर अपना मत निश्चित करता है[4] इस प्रकार अनवरत तथा प्रयत्नशील चिन्तन के आधार पर विश्व की समस्त अनुभूतियो की बोद्धिक व्याख्या तथा उनके मूल्याकन (Evaluation) के प्रयास को दर्शन कहा जा सकता है । डॉ0 राधाकृष्णन ने भी कहा है कि "दर्शन उस प्रयास का ही दूसरा नाम है जो मानव समाज के बढते हुए अनुभव की व्याख्या के लिए किया जाता है, किन्तु जिस खतरे से हमे सावधान रहना होगा वह यह कि कही श्रद्धा को ही दार्शनकि विज्ञान का परिणाम न स्वीकार कर लिया जाय।"[5]

दर्शन से सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक एव वैज्ञानिक सभी मनुष्य प्रभावित है। हरबर्ट स्पेन्सर जैसा वैज्ञानिक, विज्ञान को आशिक रूप से एकीकृत ज्ञान के रूप मे परिभाषित करता है जबकि दर्शन को पूर्णरूप से एकीकृत ज्ञान मानता है[6] डेकार्ट, बर्कले, बेकन, लॉक, लाइबनिन्ज ह्यूम आदि दार्शनिक दर्शन को विज्ञान का चरम विकास मानते थे।[7] स्पष्ट है कि दर्शन एव विज्ञान मे विरोध नहीं - अपितु यह एक दूसरे के पूरक कहे जा सकते है।[8] हॉ, यह बात अवश्य स्वीकरणीय है कि जहॉ पाश्चात्य दार्शनिको ने

---

1 It is the mark of an educated mind to expect that amount of exactness in each kind, which the nature of the particular subject admits-Aristotle- Nicomachaen Ethic, Book-I 1094 b25

2 Every Philosophy is an attempt to find out the true reality The Idealistic thought of India-P T Raju-p 38 Allen &Unwin, London- 1953g while the salvation of soul is the end of religion, the discovery of truth is the object of Philosphy - S Radakrishnan - Philosphy of religion - A R Mahapatra, P 3 स उद्धृत

3 If we are careful we will notice that the great metaphysical systems which are warked out in a logical way are really points of view, Darasan as they are called in India, Visions of reality fow which we discaver reasans - Radhakrishan - Recovery of faith- p 1

– Philosophy of sarvepalli Radhakrishnan -पृ० 824

– An Iducatist view of life P 152 My serach ofer truth - P- 152

4 यह सच है कि दर्शन तर्कशास्त्र की भाति किसी एक ही बात को निश्चित रूप से नहीं रख पाता, पर हमारे पूरे मानसिक दृष्टिकोण मे परिवर्तन ला सकने मे सक्षम है । How I see philosophy- वायसमैन का लेख, ए जे एयर द्वारा सम्पादित "लाजिकल पाजिटिविज्म" से सग्रहीत, पृ० 37, 40, 377 ,

सुकरात भी यह जानते है कि अपरीक्षित जीवन (Unexaminationed life) किसी भी मनुष्य द्वारा जीने योग्य नहीं है प्लेटों - एपोलॉजि, पृ० 37

5 भारतीय दर्शन - राधाकृष्णन भाग-2, पृ० 11

6 First principal Val-II, Chapt I

7 Introduction to metaphysics - Paulsen P 23 (Ed 1930)

8 Science and philosophy mutually criticise each other and suply imaginative material for each other A N whitehead- adventure of Idedas- P 187

The science are the children of the old mother philosophy It is only recently comparativsely peeking that the children have matured to place of independence and set up their own several households V Ferm - First Adventures in philosophy p 24

दर्शन को बुद्धि विलास समझा या इसका उद्देश्य ज्ञानात्मक स्तर पर सत्य को अधिष्ठत करना बतलाया, वहीं प्राचीन भारतीय दार्शनिको ने इसे तत्वज्ञान की प्राप्ति का माध्यम बतलाया, परन्तु आज पाश्चात्य दार्शनिक भी यह मानने लगे है कि दर्शन का उद्देश्य कुछ ऐसे सिद्धान्तो को प्रस्तुत करना होना चाहिए, जिससे आधुनिक जीवन की अशाति मिट सकती हो[1] और यह अशाति तो मानव मे हमेशा से रही है तथा भविष्य मे रहेगी, क्योकि दु ख और दु ख के योग से ही इस ससार की सृष्टि सचालित है, यह तो अनुभव गम्य तथ्य है कि ससार मे विषयो से उत्पन्न होने वाले जितने भी सुख है उनमे दु ख किसी न किसी रूप मे अवश्य छिपा रहता है[2] एव पहिये के दाते के समान मनुष्य के जीवन मे क्रम से ये आते जाते रहते है ।[3] मनुष्य को दु ख से छुटकारा दो ही रूपो मे मिल सकता है, या तो उसकी मृत्यु हो जाये, जैसा कि भौतिकवादी दार्शनिक मानते है। (मणम् एव अपवर्ग) या तो उसे तत्त्वज्ञान का साक्षात्कार (मोक्ष) हो जाये, जो कि यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति से ही सभव है (ऋते ज्ञानान्मुक्ति) जो कि भारतीय दर्शन का मुख्य प्रयोजन एव उद्देश्य है । भारतीय दर्शन केवल जिज्ञासा की शाति तक ही सीमित नहीं है, जैसा कि पाश्चात्य दार्शनिक मानते है, वरन् वह परमपुरुषार्थाधिगम का उपाय है, एक प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से हम आध्यात्मिक जीवन जीकर (अदृश्य) परम तत्व का साक्षात्कार कर सकते है। इस रूप मे दर्शन को मनुष्य की नैतिक चेतना के समीक्षात्मक मूल्याकन का प्रतिबिम्ब कहा जा सकता है।[4] जब कि मोक्षमार्ग का दिग्दर्शन कराने के कारण मनुस्मृति मे दर्शन को 'सम्यग्दर्शन' कहा गया है । ससार और परमार्थ दोनो के लिए उचित उपाय बतलाना भारतीय दार्शनिको का मुख्य ध्येय रहा है, एव सासारिक सुख और पारमार्थिक मोक्ष दोनो मार्ग का निरूपण भारतीय दर्शन का मुख्य प्रयोजन भी है जैसा कि शास्त्रो मे भी वर्णन मिलता है। यथा-

यद् आभ्युदयिक चैव नैश्रेयसिकमेव च । सुख साधयितु मार्ग दर्शयेत् तद्धि दर्शनम् ॥

दर्शन के बीजग्रथ नि सन्देह वेद एव उपनिषद है, परन्तु दर्शनो की सख्या का परिचय सर्वप्रथम हमे महाभारत मे मिलता है जहॉ साख्य, योग, पाचरात्र, पाशुपत, तथा वेदमत, आदि पाच दर्शन गिनाये गये है । तदनन्तर पुष्पदन्त के शिवमहिम्नस्तोत्र मे सांख्ययोग, पाशुपत एव वैष्णव इन दर्शनो का वर्णन मिलता है कुछ स्मृतिग्रथो मे समस्त दर्शनो को न्याय तथा मीमासा इन दो दर्शनो के अन्तर्गत माना गया है, जब कि साख्य दार्शनिक पचसिख ने केवल एक ही दर्शन माना, और वह है ज्ञानमीमासा (एकमेव दर्शनम्, ख्यातिरेव दर्शनम्,) । ग्यारहवीं शताब्दी के आचार्य जयन्तभट्ट ने मीमासा, न्याय, वैशेषिक, साख्य आर्हत (जैन), बौद्ध तथा चार्वाक दर्शनो का उल्लेख किया, जबकि सर्वसिद्धान्त सग्रह' नामक ग्रथ मे लोकामतपक्ष, आर्हतपक्ष, बौद्धपक्ष, वैशेषिक पक्ष, न्यायपक्ष, भट्टपक्ष, प्रभाकरपक्ष, साख्यपक्ष, पतन्जलिपक्ष, तथा वेदान्तपक्ष आदि ग्यारह दर्शनो का विवरण मिलता है । माधवाचार्य ने अपने 'सर्वेदर्शन सग्रह' मे

---

1 Where as the aim of philosophy is to rise to pure thought In such passages we are still on the level of symbolism and philosophy only begins when symbolism has been surpassed No doubt it is possible to take the line that man's thought is not capable of grasping the infinite as it is in itself, and can only fall back upon symbols But that is another question, and at any rats, whether it is or is not possible to rise from sensuous to pure thought philosophy is essentially the attempt to do so W T Stace - A critical History of Greek Philosophy, P -16

2 यो हि सस्पर्शजा भोगा दु खयोनय एव ते । गीता 5/22

3 कालक्रमेण जगत परिवर्तमाना, चक्रारपक्तिरिव गच्छति भाग्यपक्ति ॥ भास, स्वप्न 1/4
- एव लोकस्तुल्यधर्मो वनाना काले काले छिद्यते रुह्यते च ॥ भास, स्वप्न 5/10
- सुख हि दु खान्यनुभूय शोभते घनान्धकारेष्विव दीपदर्शनम् ।
  सुखात्तु यो याति नरो दरिद्रता धृत शरीरेण मृत स जीवति "शूद्रक, मृ 1/10
- सयोज्यैतो बिगलितशुचौ दम्पती हृष्टचित्तौ । भोगानिष्टानविरतसुख भोजयामास शश्वत् ॥ कालि उत्तरमेघ 62

4 Philosophy begins with the reflective and critical examination of the habitual data of consciousness Modes of direct apprehension such as sensation and interopection give phenomenal appearances subsisting as the content of awareness, although they might at the same time refer beyond themselves-Prof G C Pande- The Meaning and Process of culture, p 142

चर्वाक, बौद्ध, आद्वैत, रामानुज, पूर्णप्रज्ञ (माध्व), नकुलीश, पाशुपत शैव, रसेश्वर, औलूक्य, अक्षपाद, जैमिनि, पाणिनि, साख्य, पातजल और शाकर इन सोलह दर्शन का उल्लेख किया है । भारतीय दार्शनिक परम्परा आस्तिक एव नास्तिक[1] रूप मे दर्शन के प्रमुख दो प्रकार मानती है । हरिभद्रसूरि ने अपने षड्दर्शन समुच्चय मे जैन, मीमासा बौद्ध, साख्य तथा नास्तिक दर्शनो को षड्दर्शन माना है, जब कि सामान्यत चार्वाक, जैन एव बौद्ध दर्शन के चार भेदो सौत्रान्तिक मत, वैभाषिक मत, योगाचार मत एव माध्यमिक मत को नास्तिक षड्दर्शन के अन्तर्गत रखा जाता है एव साख्य, योग,न्याय, वैशेषिक एव मीमासा तथा- वेदान्त को आस्तिक षडदर्शन के जाता है । आधुनिक युग के महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा ने अपने परमार्थ दर्शन को सप्तम दर्शन कहा हे इसके अतिरिक्त भी अन्य अर्वाचीन दार्शनिको एव सन्तो के दर्शन है जो षड्दर्शन के अतिरिक्त ही प्रतीत होते है।, किन्तु इस विषय मे यही कहा जा सकता है ''नासौ मुनिर्यस्य मत न भिन्नम्''। साथ ही नैषधकार, जो कि बारहवीं शताब्दी के प्रतिष्ठित दार्शनिक थे, उनके सन्दर्भ मे भी षड्दर्शनो के अतिरिक्त अन्य दर्शनो को यहॉ विवेचन का विषय नहीं बनाया जा सकता, क्योकि इसमे असमीचीनता एव अप्रासगिकता का दोष उपलब्ध होगा । यदि पाश्चात्य एव भारतीय दर्शनो की तुलनात्मक मीमासा की जाये, तो षड्दर्शनो का औचित्य ही प्रतीत होता है, क्योकि नास्तिक दर्शनो मे चार्वाक भौतिकवादी हे, जेन लोकमत वादी है, वैभाषिक वस्तुवादी है एव माध्यमिक निरपेक्षतावादी । इसी तरह वेशेषिक, न्याय, साख्य, योग, मीमासा और वेदान्त भी क्रमश भौतिकवादी, लोकमतवादी, वस्तुवादी, विपरिगत प्रत्ययवादी आलोचनात्मक वस्तुवादी और निरपेक्षतावादी कहे जा सकते है।[2]

हर्ष के समय बारहवीं शताब्दी मे दार्शनिक शान्ति अवस्थित थी। प्राचीन दर्शनो के अस्तित्व के विरुद्ध पॉचवीं छठी शताब्दी मे बोद्ध एव जेन दर्शनो का प्रादुर्भाव तो हुआ, परन्तु उनके सिद्धान्तो की व्यवहारिक पृष्ठभूमि अपने अधिक अनुयायी बना पाने मे अक्षम रही। यही हालत सभी दर्शनो की थी, बस एक दूसरे की आलोचना एव कटाक्ष ही उस समय का केन्द्र विन्दु था। उसी का प्रतिफल था कि, श्री हर्ष के पिता श्रीहीर को उदयनाचार्य नैयायिक ने शास्त्रार्थ मे राजा जयचन्द्र की राज्य सभा मे परास्त किया एव श्रीहीर अपने पुत्र से यह वचन लेकर, कि वह उसके शत्रु को शास्त्रार्थ मे पराजित करेगा, स्वर्गलोकगमन कर गये। श्रीहर्ष ने अपने पिता के विरोधियो के विचारो का खण्डन किया तथा उदयनाचार्य ने विना शास्त्रार्थ किये ही उनसे हार मान ली एव उनकी विद्वत्ता की प्रशस्ति की। जैसा कि राजशेखर सूरि के कथन से ज्ञाप्त होता है।[3] उनका खण्डनखण्डखाद्य ग्रथ तो अद्वैत वेदान्त का आधार ग्रथ ही है, जिसमे उन्होने तार्किको की कुदृष्टियो का खण्डन करने के लिये चार्वाको एव सौगतो की तर्क प्रणाली को अपना कर, अपनी खण्डन युक्तियो को व्यापक बनाकर, उन तर्क पद्धतियो को भी अपनी खण्डनीय कोटि मे समेट लिया।[4] अर्थात् अपने विरोधियो, विशेषकर वैशोषिक एव नैयायिको का खण्डन कर उन्हीं को खाड रूप मे खाने के लिये खण्डनखण्डखाद्य रूप मे प्रेषित कर दिया (रचा)। साथ ही अपने ग्रथ नैषधीयचरितम् में भी उन्होने चार्वाक दर्शन के (उपहास रूप मे) साथ अन्य दर्शनो का वर्णन किया है एव अद्वैतवेदान्त का मण्डन कर भी अपनी श्रेष्ठ दार्शिनिकता का परिचय दिया है। नैषधकार ने नैषधीयचरित को

---

1 योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्रनयाद् द्विज । स साधुभिर्बहि कार्यो नास्तिको वेद निन्दक ।। मनु 2/11

2 विस्तृत विवरण हेतु दृष्टव्य-आधुनिक दर्शन की भूमिका, प्रो सगम लाल पाण्डेय, का प्राक्कथन भाग

3 पितृवैरिण तु वादिन दृष्ट्वा (श्रीहर्ष) सकटाक्षमाचष्टे–
साहित्ये सुकुमारवस्तुनि दृढन्यायग्रह ग्रन्थिले, तर्के वा मायि सविधातरि सम लीलायते भारती ।
शय्या वास्तु मृदूत्तरच्छदवती दर्भाड्कुरैरास्तृता, भूमिर्वा हृदयङगमो यदि पतिस्तुल्या रतिर्योषिताम् ।।
एतच्छ्रुत्वा स वादी प्राह - देव! वादीन्द्र! भारतीसिद्ध तव समोऽपि न, न वाधिक ।
हिंस्रा सन्ति सहस्रशोऽपि विपिने शौण्डीर्यवीर्योद्धता , तस्यैकस्य पुन स्तवीमहि मह सिहस्य विश्वोत्तरम् ।
केलि कोलकुलैर्मदो मदकलै कोलाहल नाहलै सहर्षो महिषैश्च मस्य मुमुचे साहङ्कृतेर्नुङ्कृते ।।
इद श्रुत्वा श्रीहर्षो निष्क्रोध इवासीत्। भूपेनोक्तम् - अत्र श्रीहर्षो इदमेव अन्योन्य गाढालिङ्गनमचीकरद् द्वयोरपि वसुन्धरासुधाशु। निरन्तरेण सौधमानीय माङ्गलिकानि कारयित्वा गृह प्रति प्रहित। लक्षसख्यानि हेमानि ददिरे।
प्रबन्धकोशान्तर्गत - श्रीहर्षकविप्रबन्ध, पृ० 54,55

4 तत्तल्योहस्तदीय च योजन विषयान्तरे । श्रखला तस्य शेषे च त्रिधा भ्रमते मत्क्रिया ।। ख ख ख्वा पृ० 79।

खण्डनखण्डखाद्य का सहोदर कहा है,[1] इससे भी स्पष्ट है कि इस ग्रन्थ मे भी उन्होने दार्शनिक विचारो का समावेश किया है। साथ ही उनकी उक्तियो[2] तथा नैषध एव खण्डनखण्डखाद्य के प्राचीन टीकाकारो या व्याख्याओ की प्रशस्तियो[3] से भी नेषधकार श्रेष्ठ दार्शनिक सिद्ध होत हे, जिन्होने नैषध मे लगभग सभी दर्शनो की विषय वस्तु का प्रतिपादन किया है।

हाण्डिका महोदय का कथन है कि "लगता है कि नैषधकार नैषधकोदार्शनिक सिद्धान्तो का एक परिचय ग्रन्थ बनाना चाह रहे थे।[4] श्रीहर्ष के दो अन्य ग्रथ स्थैर्यविचारप्रकरण एव ईश्वराभिसन्धि भी दर्शन सम्बन्धीग्रथ है, परन्तु अप्राप्य होने के कारण उनके विषय मे कुछ भी कह पाना मुश्किल है।

नास्तिक दर्शन

चार्वाक दर्शन - नैषधकार ने चार्वाक मत का निदर्शन नैषधके सत्रहवे सर्ग मे किया है, जहाँ दमयन्ती स्वयवर, पश्चात् देवताओ के स्वर्गारोहण काल मे देवताओ एव कलि तथा उसकी सेना और द्वापर आदि का आपस मे सम्मिलन होता है तथा कलिप्रतिनिधि के रूप मे काम, क्रोध, लोभ, मोह सभी मूर्तरूप मे अवस्थित दिखायी पडते हे एव देवो को किसी व्यक्ति के अत्यन्त कर्कश शब्द सुनने को मिलते है, जो चार्वाक दर्शन सम्बन्धी सिद्धान्तो के तीर छोडते चले जा रहा था।[5] वास्तव मे यह श्रीहर्ष की नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का ही विलास है कि उन्होने बारहवीं शताब्दी मे स्थित होते हुए भी इस प्राचीन दर्शन की मीमासा को नेषध मे जगह दी, क्योकि इस दर्शन के बीज तो वेदो, उपनिषदो, महाभारत, रामायण, इत्यादि सभी मे अवस्थित है।[6] इस दर्शन के प्रणेता आचार्य वृहस्पति माने जाते है इसलिए इस

---

1 षष्ठ खण्डनखण्डतोऽपि सहजात्क्षोदक्षमे तन्महा। काव्येऽय व्यगम्नलस्य चरिते सर्गो निसर्गोज्ज्वल ॥ नै 6/113

2 य साक्षात्कुरुते समाधिषु पर ब्रह्म प्रमोदार्णवम्। यत्काव्य मधुवर्षि धर्षितपरास्तर्केषु यस्योक्तय ॥ नै ग्रथ प्रशस्ति -4
– तर्केष्वप्यसमश्रमस्य दशमस्तस्य व्यरसीन्ममहाकाव्ये - नै 10/138

3 – कवेरस्य स्वर्गप्रभुगुरुगरीयस्तरमते प्रमाणच्छायासु प्रकृतिरभिविश्राम्यति मुहु ।
न 'मे' तु व्युत्पत्त परिचितिरिह प्रायिकतया
ह्यते व्यत्यासेऽपि क्वचिदपि न वाच्योस्मि सुधिय ॥ –गदाधर (O I Ms No 1353, St 4)
– य सहित्यरसामृताब्धिलहरीजालेषु खेलाचलो यश्चात्यर्थगभीरतर्कजलधेर्मथे स मथाचल ।
मीमासायुग सिन्धुतारण विधौ य कर्णधार पर
केषामेष मनोविनोदयति न श्रीहर्षनामाकवि ॥ – रामचन्द्रशेष (Tanjore - 19 पृ० 2550)
– एतै खण्डन (खण्डखाद्यसहज) स्यन्दैरमन्दै शुच
कुल्यावर्त्मविसृत्वरै सुमनसामाप्लाविताना मुह ।
उन्मीलत्पुलकावलीविकसनव्याजेन जानीमहे
सर्वागीणतया स्फुरन्त्यविरलोद्भेदा प्रमोदाङ्कुरा ॥ – विश्वेश्वरभट्ट (O I Ms No 9850)
– प्रत्यक्ष लक्षण [illegible] दुर्दन्तिदन्तदलनानि विलासमात्रम् ।
येषा जयन्ति त इमे जगति प्रतीता श्रीहर्ष सिह नररूप करप्रहारा ॥ – वरदराज पण्डित – खण्डन मण्डन व्याख्या (T C nt, Ic, p 4819)

4 The Naisadh contains a large number of philosophical allusions Sriharsa in his tries tc establish the supremacy of the mqnistic vedant on a logical basis In tne Naisadh he refers to doctrines of all the system including the vedant and passes in review a number of characterstic theories as if the desired his poem to serve also as an interoduction to the study of the philosophical system — Naisadhacarita of Sriharsa, K K Handiqui Apendix - I, p 509

5 नै 17/13 36

6 ऋ 10/8/2 इन्द्र की सत्ता मे सदेह करने वालों की ब्रह्मद्विष् देवनिद् तथा अपव्रत कहकर निदा की गयी है।
– न साम्पराय प्रतिभाति बाल प्रमाद्यन्त वित्तमोहेन मूढम् ।
अय लोको नास्ति पर इतिमानी पुन पुनर्वश 'मापद्यते' मे ॥ कणे 1/2/6
– रामायण, अयोध्याकाण्ड, 108/7 17 तक जाबालि का नास्तिको के मत का अवलम्बन कर श्रीराम को वन छोडकर अयोध्या लौट जाने के समझाने मे चार्वाक मत का निरूपण मिलता है। यहाँ जाबालि चार्वाक के अनुयायी की तरह बात करते हे जब कि वह चार्वाक के अनुयायी नहीं थे।
– महाभारत–शान्तिपर्व के 186 अध्याय "जीव सत्ताविषये नानायुक्तिभि शङ्कापस्थानम्" मे भारद्वाज–भृगु के साथ सवाद मे जीव की सत्ता के विषय मे सदेह करते हैं, उस वर्णन मे चार्वाक मत का निरूपण मिलता है। द्रष्टव्य – महा शान्ति पर्व – 186/1 3, 8 12

दर्शन को वार्हस्पत्य दर्शन भी कहते है। कुछ लोग वृहस्पति के शिष्य चार्वाक के द्वारा प्रचारित करने के कारण इसे चार्वाकदर्शन कहते हे।[1] हो सकता है ऐन्द्रिय सुख के उपदेशक इन दार्शनिको के चारु (सुन्दर) वाक् वाक्यो(वाक्) को सुनकर लोगो ने इन्हे चार्वाक नाम प्रदान किया हो। गुणरत्न एव हेमचन्द्र का मानना है कि पुण्य पापादिक परोक्ष वस्तु जात के चर्वण कर जाने से इनका नाम चार्वाक पड़ा,[2] परन्तु वास्तव मे मे इस दर्शन का नाम लोकायत ही है[3] एव स्वय नैषधकार ने भी इस दर्शन के लिये लोकायत शब्द का ही प्रयोग किया है।[4] प्रतीत होता है सामान्य लोगो की तरह आचरण करने के कारण इन दार्शनिको को लोकायतिक या लोकायत नाम दिया गया हो।[5] लोक मे (इस दर्शन की मान्यताओ के सर्वाधिक व्याप्त होने के कारण के साथ-साथ इसे लोकायतिक इसलिए भी कह सकते है क्योकि यह दर्शन इस लोक के अतिरिक्त अन्य लोक (परलोक) को नहीं मानता। साथ ही लौकिक प्रमाणो के आधार पर ही तत्त्व की मीमासा करने के कारण तथा लोकमत से भी इसकी उत्पत्ति होने से इसका लोकायत नाम समीचीन जान पडता है। मध्याचार्य ने तो लोकायत या चार्वाक दर्शन को नास्तिक शिरोमणि की सज्ञा दी है।[6] मनुस्मृति तथा हिन्दू परम्परा मे नास्तिक उसे कहते है, जो वेद की प्रामाणिकता को स्वीकार नहीं करता,[7] एव पाणिनि के अनुसार परलोक को मानने वाला आस्तिक है और न मानने वाला नास्तिक।[8] जबकि ससार के अधिकधिक दर्शनो मे नास्तिक का अर्थ अनीश्वरवादी होना माना जाता है। इस तरह चार्वाक उपर्युक्त तीनो मतो के अनुसार नास्तिक सिद्ध होता है। अवधेय है कि साख्य दर्शन वेद को मानता है, किन्तु ईश्वर को नहीं, इस लिये वह आस्तिकदर्शन माना जाता है जब कि जैन, बौद्ध, वेद और ईश्वर को नहीं मानते, किन्तु परलोक को मानते हे, फिर भी वह नास्तिक दर्शन की कोटि मे ही परिगणित किय जाते है। लोकायत दर्शन को बाह्य भी कहते हे, क्योकि यह वेद विरुद्धहै।

जिस रूप मे चार्वाक दर्शन का साहित्य हमारे सामने अवस्थित है, उससे यही ज्ञात होता है कि इनके लिये प्रत्यक्ष ही एक मात्र प्रमाण है, अनुमान एव शब्द इत्यादि नहीं, इसी कारण इन्हे चार पदार्थों पृथ्वी, जल, तेज, वायु की ही सत्ता स्वीकार है। आकाश की सत्ता अनुमान प्रमाण से सिद्ध होने के कारण नहीं। जगत को ये इन्हीं चार भौतिक तत्वो से निर्मित मानते हैं, इस अर्थ मे यह दर्शन भोतिकवादी या जड़वादी भी कहा जाता हे।[9] आत्मा, ईश्वर, परलोक स्वर्ग,पुनर्जन्म, आदि को यह दर्शन नहीं मानता, साथ

---

1 चार्वाक मत के चार्वी नामक आचार्य का उल्लेख काशिकावृत्ति मे मिलता है– 'नयते चार्वी लोकायते चार्वी बुद्धिस्तत्सम्बन्धादाचार्योऽपि चार्वी। स लोकायते शास्त्रे पदार्थान् नयते – काशिकावृत्ति 1/3/36 सूत्र

2 चर्वन्ति भक्ष्यन्ति तवतो न मन्यते पुण्पपापादि परोक्षजातमिति चार्वाका। आचार्य हेमचनद्र गुणरत्न - षड्दर्शन समुच्चय की टीका, पृ - 301

3 – क्वचिन्न लोकायतिकान ब्राह्मणास्तात सेवते – बाल्मीकि रामायण -2/100/38
– लोकायतिकानामपि चेतन एव देह इति शकराचार्य
– लोकायत वदेन्त्येयमू-हरिभद्रमसूरि ष द स 1/8
– अनुमानमप्रमाणमिति लोकायतिका। वाचस्पति मिश्र- तत्वकौमुदी
– वरसाशयिकान्निष्कादसाशयिक कार्षापण इति लोकायतिका । – वा0 सू0

4 वेदैस्तद्वेषिभिस्तद्वत्स्थिर मतशतै कृतम्। पर करुते पर वाचा लोक लोकायत। त्यजेत् ।। नै 17/97

5 लोकगाथामनुरुन्धानानीतिक -शास्त्रानुसारेणार्थकामावेव पुरुषार्थो मन्यमाना।
पारलौकिकमर्थमपहनुवानाश्चार्व्वाकमतमनुवर्तमाना एवानुभूयन्ते अतएव तस्य चार्वाकमतस्य लोकायत मित्यन्वर्थमपर नामधेयम्।। मध्याचार्य सर्वदर्शनसग्रह, पृ० -2

6 अर्थ कथ परमेश्वरस्य नि श्रेयसप्रदत्त्वमभिधीयते बृहस्पतिमतानुसारिणा नास्तिक शिरोमणिना चार्वाकेण दूरोत्सारितत्त्यात्। दुरुच्छेदहि चार्वाकस्य चेष्टितम्। वही पृष्ठ - 2

7 नास्तिको वेद निन्दक - मनुस्मृति 2/11

8 अस्ति, नास्ति दिष्टमाते - अष्टा 4/4/60

9 भौतिकवादी मान्यता के कारण चार्वाक दर्शन, ग्रीक परमाणुवादियो के समीप है। यथा –
Man is naturally a materalist and that Philosophy is the movement from sensuous to non-sensuous thought As we should expect Then, philosophy begins in materialism The first answer to the question what the ultimate reality is, places the nature of that reality in a sensuous object, water The other members of the Ionic school, Anximander and Anaximenes are also materailists because the Ionic Philosophers were all materialists they are also sometimes called Hylicists, from the greek hule which means matter w t Stace - A critical history of Greek Philosophy, p 23-24

ही वेदो, एव पुरोहित कर्मो की यह निदा करता है। मनुष्य को पूर्णतया भूतो से निर्मित एव चैतन्यता को विशिष्ट गुण, तथा देह को ही यह आत्मा (देहात्मवाद)मानता है। काम को ही पुरुषार्थ मानता है, धर्म एव मोक्ष को नहीं। इस दर्शन का मन्तव्य जीवन को अधिक से अधिक सुखमय बनाने एव दु खो से दूर रहने का हे।[1] नैषधकार ने चार्वाक दर्शन सम्बन्धी जो विवरण दिये है, उसमे सर्वप्रथम चार्वाको द्वारा की गयी वेदो की अप्रामाणिकता का विवरण [illegible] देते हुए वे लिखते है कि "जैसे जल मे पत्थर का तैरना नहीं देखा जाता उसी प्रकार यज्ञ के फल के प्रति वेदवचन (स्वर्गकामोजे[illegible] सत्य) नहीं माना जा सकता, अतएव वेदो पर विश्वास नहीं किया जा सकता, एव प्रत्यक्ष प्रमाण को छोडकर धीवृद्धो (शब्द प्रमाण)के वचनो पर श्रद्धा करना मूर्खता ही है।[2] साथ ही कलिप्रतिनिधि बोधिसित्त्व (महात्मा बुद्ध) की वेदो की निदा करने के कारण प्रशसा करता है।[3] बुद्ध के मत मे जगत अस्थिर है क्योकि जो भी पदार्थ है वह क्षणिक हे। (यत् सत् तत् क्षणिकम्)[4] वेद के साथ-साथ मीमासको के मत का खण्डन करते हुए लोकायत दर्शन का मानना हे कि वेद के (अर्थवादात्मक) भाग को यदि प्रलाप (कार्यप्रतिपादक नहीं होने से निरर्थक) मानते हो, तो किस अभाग्य कारण से दु ख कारक दूसरे विधि (अग्निष्टोमादि यज्ञविधान प्रतिपादक भाग) को वैसा (प्रलाप अर्थात् अर्थवादात्मक होने से निरर्थक) नहीं मानते हो।[5] क्योकि मीमासा वाक्य "आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमेतदर्थानाम्" अर्थात् वेद के क्रियार्थक (क्रिया प्रतिपादक) होने से तदिभिन्न वचन अनर्थक है, इस पूर्व पक्षीय वचनानुसार "सोऽरोदीत्, यदरोदीत्" इत्यादि वचन अनर्थक है ऐसा पूर्वपक्ष होने पर "विधिना त्वेकवाक्यत्वात्" अर्थात् विधि के साथ एक वाक्यता होने के वचन एव स्तुत्यर्थक होने से अर्थवाद मानते है, फिर भी उनको जिस प्रकार कार्यप्रतिपादक नहीं होने से निरर्थक मानते हो, उसी प्रकार "अग्निष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत्" अर्थात् स्वर्ग चाहने वाला अग्निष्टोम यज्ञ करे, इत्यादि विधि वाक्यो को भी निरर्थक मानना चाहिए, क्योकि वेद के किसी भाग को सार्थक तथा तदितर भाग को निरर्थक मानना अनुचित एव अभाग्य का सूचक है, अतएव सभी वेद वचनो को निरर्थक मानकर स्वेच्छापूर्वक कार्य करो। मीमासा पर प्रहार करते हुए वह कहता है कि हे मीमास से परिपुष्ट (पक्षान्तर मे स्थूल) बुद्धि वाले। विक्षिप्त (प्रतिपक्षियो से पराजित होकर भ्रान्तचित्त, नुग्न लोग) वेद मे श्रद्धा करते हो, अर्थात् वेद वचन को प्रमाण मानते हो तथा प्रत्येक पक्ष स्तम्भ मे हाथी बाधकर ऋत्विजो के लिये दान या लाभ दिलाने वाली श्रुति (वेदवचन) को स्वयमेव प्रक्षिप्त कहते हो।[6] ऐसा श्रुति के विषय मे भेद भाव करना ठीक नहीं। वेद मे विधिवाक्य कहने के बाद "यूपे यूपे हस्तिनो बद्ध्वा ऋत्विग्भ्यो दद्यात्" अर्थात् प्रत्येक यूप

---

1 सस्कृत साहित्य विमर्श- पृ० 285 292

2 ग्रावोन्मज्जनवद्यज्ञफलेऽपि श्रुतिसत्यता ।
का श्रद्धा? तत्र धीवृद्धा। कामाद्धा यत् खिलीकृत ।। नै 17/37

3 केनापि बोधिसत्त्वेन जात सत्त्वन हेतुना ।
यद्वेदमर्मभेदाय जगदे जगदस्थिरम् ।। नै 17/38

4 बौद्ध दार्शनिको की मान्यता हे कि अज्ञाननामा जिन भट्टारक वेद के रहस्य के भेदन करने के लिये उत्पनन हुये थे, और उन्होने कहा था कि सत्त्व के कारण ससार अनित्य है, साथ ही बौद्धो के सिद्धान्त क्षणिकवाद की मान्यता भी है कि यत् सत् तत् क्षणिकम्" अतएव यह ससार भी अनित्य है, क्षणिक है, तथा ससार के अन्तर्गत ही सभी पदार्थो की सत्ता होने से सभी क्षणिक है, इस लिये श्रुतियों का यह कहना कि पाप पुण्य का भोक्ता आत्मा है, अप्रमाणिक है क्योकि जिस क्षण मनुष्य ने पाप या पुण्य किया, तो वह दूसरे क्षण ही नष्ट हो जायेगा, एव इस रूप में पाप पुण्य का भोक्ता आत्मा कदापि नहीं हो सकता है। ध्यातव्य है कि बौद्ध अनात्मवाद सिद्धान्त के पक्षधर थे। चार्वाक यहॉ इस सिद्धान्त को अपने पूर्वोक्त वचन की पुष्टि के लिये देता है कि चूँकि (श्रुति) वेद वाक्य ही अप्रमाणिक हैं, अत पाप से डरकर पार लौकिक सुख पाने की आशा से हस्तगत ऐहलौकिक सुख का त्याग नहीं करना चाहिए।

5 प्रलापमपि वेदस्य भाग मन्यध्वएव चेत् ।
केनाभाग्येन दु खान्न विधीनपि तथेच्छथ? ।। नै 17/60

6 श्रुति श्रद्धत्थ विक्षिप्ता प्रक्षिप्ता ब्रूथ च स्वयम् ।
मीमासामासलप्रज्ञास्ता यूपद्विपदापिनीम् ।। नै 17/61

मे हाथी बाधकर ऋत्विजो के लिये दान दे, इस वचन को जब कि यह वेदमूलक नहीं अपितु लोभमूलक ही है, उन्हीं लोगो (ऋत्विजो) के द्वारा यह कहा गया है, ऐसा कहकर अर्थवाद मानना युक्ति सगत प्रतीत नहीं होता। इसी तरह परलोक के विषय मे "श्रुतिवाक्य" "को हि तद्वेद यद्यमुष्मिल्लोकेऽस्ति वा न वा तथा 'दिक्ष्वतीकाशान् करोति" अर्थात परलोक के विषय मे कौन जानता है, या परलोक का तत्त्वज्ञाता कोई नहीं है, ऐसा जो श्रुति कहती है, उस (श्रुति) के प्रमाण से इस परलोक के विषय मे कौन विश्वास करेगा, अर्थात् कोई नहीं।[1] दूसरे शब्दो मे जब वेद ही इस विषय मे सशय ग्रस्त है, तो उनको प्रमाण मानने वाला या उन पर श्रद्धा रखने वाला ससार उन पर कैसे विश्वास करेगा। सर्वदर्शन सग्रह मे लोकायतो द्वारा वेदो एव उनके प्रणेताओ की आलोचना वीभत्स रूप मे वर्णित मिलती है।[2]

स्मृति ग्रथो यथा महाभारत, पुराण, (मत्स्यपुराण)[3] नमुस्मृति आदि की कथावस्तु पर आक्षेप एव स्मृतिकारो की निदा तथा उनकी प्रामाणिकता का खण्डन न करते हुए कविप्रतिनिधि कहता है कि मनु ने धर्म, अधर्म की बात कर, अधर्म के लिये दण्ड का विधान किया, परन्तु वास्तव मे उसने धन लोभ के कारण ही दण्ड विधान की व्यवस्था दी थी, किन्तु फिर भी विद्वान् लोग उस पर व्यर्थ ही श्रद्धा करते है।" मनु के बाद व्यास एव मत्स्य रूपधारी भगवान विष्णु की आलोचना करते हुए वह कहता है कि निषाद कन्या के साथ (पराशर द्वारा) व्यभिचार से उत्पन्न तथा भातृपत्नी से पुत्रोत्पादन करने वाले भी व्यभिचार परायण व्यास के वचन महाभारत मे विश्वास करते हो एव मनु मे श्रद्धा रखते हो, तो तुम सचमुच तान्त्रिक जुलाहे के समान मूर्ख हो अर्थात् व्यभिचारी होने से व्यास के वचन रूप महाभारत ग्रथ भी अश्रद्धेय है। मत्स्य (मत्स्यरूपधारी विष्णु) के भी उपदेश्य अर्थात् अनुशासनीय तुम लोगो (मनु आदि स्मृतिकारो से, अतिनीच) के साथ कौन बात चीत करे।[4] पाण्डवो की चाटुकारिता मे दक्ष व्यास को आप विद्वान् कवि, एव आप्त पुरुष समझते है, जब कि वास्तविकता यह है कि पाण्डवो ने जिसकी (कौरवो, दुर्योधन आदि की) निदा की, तो व्यास ने भी उसे निन्दित बताया, एव पाण्डवो ने जिसकी (कृष्ण की) प्रशसा की, तो व्यास ने भी उनकी स्तुति की।[5] ठीक है कि व्यास ने माता की आज्ञा से मृत भाई विचित्रवीर्य की पत्नी से नियोग[6] सम्बन्ध स्थापित किया था, काम भावना के वशीभूत नहीं तो फिर उस समय जो दासी (विदुर माता) से सम्भोग करने लगे, क्या उसमे उन्होने माता की आज्ञा ली थी, अर्थात् नहीं। वह कामवश ही उसके साथ अनुरक्त हुए थे।[7] श्रुति, स्मृति, पुराण एव ब्राह्मण आदि जो ग्रथ तुम्हारे लिये प्रमाण है, उन्होने 'गौ' को प्रमाण करने की बातकर (मानवआत्मा पशु से भी नीची होने के कारण), क्या अपना तिरस्कार नहीं किया।[8]

काम को मुख्य पुरुषार्थ घोषित करते हुए कलिप्रतिनिधि का कहना है–

---

1 को हि वेदास्त्यमुष्मिन्वा लोक इत्याह या श्रुति । तत्प्रामाण्यादमु लोक लोक प्रत्येतु वा कथम् ।। नै 17/62

2 त्रयो वेदस्य कर्त्तारो भण्डधूर्तनिशाचरा । जर्फरीतुर्फरीत्यादि पण्डितान, वच स्मृतम् ।।
अश्वस्यात्र हि शिश्न नु पत्नी ग्राह्य प्रकीर्तितम् । भण्डैस्तद्वत्पर चैव ग्राह्यजात प्रकीर्तितम् ।
मासाना खादन तद्वन्निशाचरसमीरितमिति ।
तस्माद् वहूना प्राणिनामनुग्रहार्थ चार्व्वाकमतमाश्रयणीयमिति रमणीयम्।। – स द स पृ० 12

3 A The School attacks the view of other system as far as Metaphysics and ethics are concerned It also attacks sruiti Smrti, ritual, Puranas and so on A N Jani, (A Critical study of Sriharsa,s Naisadhiya caritam), P 140
– धर्माधर्मौ मनुर्जल्पन्नशक्यार्जनवर्जनौ । व्याजान्मण्डलदण्डार्थी श्रद्दधायि मुघा बुधा ।। नै 17/63

4 व्यासस्यैव गिरा तस्मिञ्श्रद्धेत्यद्द्धा स्थ तान्त्रिका । मत्स्यस्याप्युपदेश्यान्व को मत्स्यानपि भाष्यताम् ।। नै 17/64

5 पण्डित पाण्डवाना स व्यासश्चाटुपटु कवि । निनिन्द तेषु निन्दत्सु स्तुवत्सु स्तुतवान्न किम् ।। नै 17/65

6 देवराद्वा सपिण्डाद्वा स्त्रिया सम्यड्नियुक्तया । एकमुत्पाद्येत्पुत्र न द्वितीय कथञ्चन ।। मनु 4/49

7 न भातु किल देव्या स व्यास कामात्समासजत् । दासीरतस्तदासीद्यन्मात्रा तत्राप्यदेशि किम् ।। नै 17/65

8 देवैर्द्विजै कृता ग्रन्था पन्थायेषा तदादृतौ । गा नतै कि न तैर्व्यक्त ततोऽप्यात्माधरीकृत ।। नै 17/67

कामिनीवर्गससर्गैर्न क सक्रान्तपातक । नाश्नाति स्नाति हा मोहात्कामक्षामव्रत जगत् ।।
ईर्ष्यया रक्षतो नारीर्धिक्कुलस्थितिदाम्भिकान् । स्मरान्धत्वाविशेषेऽपि तथा नरमरक्षत ।।
परदारनिवृत्तिर्या सोऽय स्वयमनादृत । अहल्याकेलिलोलेन दम्भोलिपाण्डिना ।।
गुरुतल्पगतौ पापकल्पना त्यजत द्विजा । येषा व पत्युरत्युच्चैर्गुरुदारग्रहे ग्रह ।।[1]

स्पष्ट है कि यह दर्शन परपत्नीगमन एव गुरुपत्नी गमन मे भी सकोच नहीं करने का उपदेश देता है, क्योकि इसके मत मे कामिनी ससर्ग से उत्पन्न ऐन्द्रिय सुख ही यथार्थ सुख है।' कलिप्रतिनिधि का कहना है कि तीनो वेदो के जानकार व्यास आदि जो वदनीय माने जाते है उन्होने भी कहा है कामार्तरमणी को स्वीकार करना चाहिए।[2] यथा-

स्मरार्ता विह्वला दीना यो न कामयते स्त्रियम ।
ब्रह्महा स तु विज्ञेयो व्यासो व्चनमब्रवीत् ।।

अपने तर्क देते हुए कलिप्रतिनिधि कहता है कि तब व्रत इत्यादि मे आप लोगो की इतनी आस्था क्यो है? कामिनी गमन मे क्यो नहीं। पुण्यफल तो जन्मान्तर मे मिलेगा, जो सदेहास्पद है, जब कि काम सुख काम वेला मे ही प्राप्त हो जाता है।[3] इसलिये आप लोग बलात् परस्त्री गमन (कार्य) किया करे,[4] क्यो कि मनु ने भी कहा है कि बलात किये गये सारे दोष अगण्य होते है यथा-

बलाद्दत्त बलाद्भुक्त बलाद्यच्चापि लेखितम् ।
[illegible]कृतान्दोषानकृतान्मनुरब्रवीत् ।।[5]

अवधेय है कि यहॉ चार्वाक छल से अपने पक्ष को पुष्ट करता है एव स्वेच्छार पूर्वक उपभोग करने को कहता है।[6] स्त्रियो के प्रति अनुचित वचन न कहने पर जोर देता हुआ कलिप्रतिनिधि उनके उपभोग से आनन्द लाभ प्राप्त करने को कहता है।[7] उसका यह भी कथन है कि ब्रह्मा आदि देवो से अनुलङ्घित कामरूपदेव (कामदेव) की आज्ञा मानकर तदनुरूप आचरण करो क्योकि वेद भी देव की ही आज्ञा है, फिर दोनो आज्ञाओ मे, जब कि दोनो समान है, किसी को अधिक महत्त्व क्यो दिया जाये।[8] वह यज्ञ कर्मो की पाखण्ड कहकर निन्दा करते हुए कहता है कि जो लोग यज्ञ करते है वह इसलिये कि मर कर भी

---

1 नै 17/41 44
–अङ्गनालिङ्गनादिजन्य सुखमेव पुरुषार्थ न चास्य दु खसभिन्नतया पुरुषार्थत्वमेव नास्तीति मन्तव्यम्। अव्वर्जनीयतया प्राप्तस्य दु खस्य परिहारेण सुखमात्रस्यैव भोक्तव्यत्वात्। तद्यथा मत्स्यार्थी सशल्कान सकण्टकान् मत्स्यानुपादत्ते स यावदादेय तावदादाय निवर्त्तते। यथा वा धान्यार्थी सपलालानि धान्यान्याहरति स यावदादेय तावदादाय निवर्त्तते। तस्माद्दु खभयान्नानुकूलवेदनीय सुख त्यक्तुमुचिनम्। न हि मृगा सन्तीति शालयो नोप्यन्ते, नहि भिक्षुका सन्तीति स्थाल्यो नाधिश्रीयन्ते यदि कश्चिद् भीरुर्दृष्ट सुख त्यजेत् तर्हि स पशुवन्मूर्खो भवेत्। तदुक्तम् -
त्याज्य सुख विषयसङ्गमजन्मपुसा दु खोपसृष्टमिति मूर्खविचारणैसा ।
व्रीहीन जिहासति सितोत्तमतण्डुलाढ्यान् को नाभ्ज्ञ भेस्तुषकणोपहितान् हितार्थी ।। स द स पृ० 3, 4 एव 11

2 यस्त्रिवेदीविदा वन्द्य स व्यासोऽपि जजल्प व ।
रामाया जातकामाया प्रशस्ता हस्तधारणा ।। नै 17/47

3 सुकृते व कथ श्रद्धा सुरते च कथ न सा ।
तत्कर्म पुरूष कुर्याद्येनान्ते सुखमेधते ।। नै 17/49

4 बलात्कुरुत पापानि सन्तु तान्यकृतानि व ।
सर्वान्बलकृतान्दोषानकृतान्मनुरब्रवीत् ।। नै 17/49

5 मनु 8/168

6 स्वागमाथेऽपि मा स्थास्मिस्तीर्थिका। विचिकित्सव । त तमाचरतानन्द स्वच्छन्द य यमिच्छथ ।। नै 17/50
श्रुति स्मृत्यर्थवोधेषु क्वैकमत्य महाधियाम् । व्याख्या बुद्धिबलापेक्षा सा नोपेक्ष्या सुखोन्मुखी ।। नै 17/51

7 तृणानीव घृणावादान्विधूनय वधूरनु । तवापि तादृशस्यैव का चिर जनवञ्चना ।। नै 17/58

8 कुरुध्व कामदेवाज्ञा ब्रह्माद्यैरप्यलङ्घिताम् । वेदोऽपि देवकीयाज्ञा तत्राज्ञा। काधिकार्हणा ।। नै 17/59

ललनाओ का उपभोग मिले।[1] इसलिये इस बात की चिन्ता किये बिना अमुक कर्म करने से पाप होगा, इसे छोडकर कामिनियो के ससर्ग को नहीं छोडना चाहिए।[2] स्पष्ट है कि यह दर्शन ललनारति सुख प्राप्ति मे जाति भेद के वन्धन का अस्वीकार कर स्वच्छाविहार पद्धति पर बल देता है यथा-

शुद्धो पित्रो पित्रोर्यदेकश ।
तदानन्तकुलादोषाददोषा जातिरस्ति वा ।।[3]

लोकायत दर्शन पुनर्जन्म मोक्ष, एव स्वर्ग की धारणा पर अविश्वास करता है। आचार्य वृहस्पति का कथन है कि मृत्यु से कोई बच नहीं सकता, अत जब तक जीवन मिला हुआ है, उसे सुख पूर्वक जीना चाहिए, क्यो कि जलाकर भस्म किये हुए देह की पुन उत्पत्ति नहीं होती।[4] इसी से सहमत होते, कलि प्रतिनिधि का भी कथन है कि शान्ति या वैराग्य क्या है? अर्थात् यज्ञादि करने से मरने के बाद स्वर्ग पाकर देवाङ्गनासङ्गम की इच्छा बने रहने के कारण शान्ति वैराग्य कुछ भी नहीं है, इसलिये केवल प्रिया (स्त्री) को पाने का अधिक परिश्रम करो, क्यो कि जले हुए शरीर का फिर आना, अर्थात् परलोक मे शरीरान्तर ग्रहण करना सभव नहीं है। आचार्य वृहस्पति भी कहते है कि यदि कोई आत्मा इस देह से निकलकर लोकान्तर मे जाता हो, तो बन्धुस्नेह से व्याकुल होकर पुन घर क्यो वापस नहीं आता? अत देह से भिन्न आत्मा नहीं है। यथा-

यदि गच्छेत्पर लोक देहादेष विनिर्गत ।
कस्माद् भूयो न चायाति बन्धुस्नेहसभाकुल ।।[5]

साथ ही आचार्य वृहस्पति स्वर्ग, मोक्ष, आत्मा एव वर्णाश्रम के कर्मों की सत्ता का निषेध करते हुए कहते है-

न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिक ।
नैव वर्णाश्रमादीना क्रियाश्च फलदायिका ।।[6]

स्वर्ग की कल्पना पर आक्षेप करते हुए कलिप्रतिनिधि कहता है-

हताश्चेदि्दव दीव्यन्ति दैत्या दैत्यारिणी रणे ।
तत्रापि तेन युध्यन्ता हता अपि तथैव ते ।।[7]

अवधेय है कि उपर्युक्त प्रसग मे स्वर्ग की अवधारणा का तिरस्कार करने के साथ-साथ कलिप्रतिनिधि श्री भगवत गीता मे प्रतिपादित "हत्त्वा वा प्राप्स्यसि स्वर्ग जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्" का खण्डन करता प्रतीत होता है, अतएव यह भी कहा जा सकता है कि गीता मे भी प्रतिपादित नीति सम्बन्धी मीमासा भी चार्वाक दर्शन को अभीष्ठ नहीं है।

---

1 साधुकामुकतामुक्ता शान्तस्वान्तैर्मखोन्मुखै । सारङ्गलोचनासारा दिव प्रेत्यापि लिप्सुभि ।। नै 17/68

2 एनसानेन तिर्यक्स्यादित्यादि का विभीषिका । राजिलोऽपि हि राजेव स्वै सुखी सुखहेतुभि ।। नै 17/72

3 नै 17/40

4 प्रायेण सर्वप्राणिनस्तावत्-
यावज्जीव सुख जीवेन्नास्ति मृत्योरगोचर ।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमन कुत इति ।। लोकगाथा मनुरुन्धाना नीतिकामशास्त्रानुसारेणार्थकामावेव पुरुषार्थो मन्यमाना पारलौकिकमर्थमपह्नुवानाश्चार्वाकमतमनुवर्तमाना एवानुभूयन्ते। – सर्वदर्शन सग्रह, पृ०2

5 क शम क्रियता प्राज्ञा प्रिया प्रीतौ परिश्रय । भस्मीभूतस्म भूतस्य पुनरागमन कुत ।। नै० 17/69

6 स द स , पृ० 10

7 नै 17/73

आचार्य वृहस्पति भी वेद, स्वर्ग, नरक, मोक्ष एव ईश्वर की धारणा पर आक्षेप करते हुए कहते है 'ननु पारलौकिकसुखाभावे बहुवित्तव्ययशरीरायाससाध्ये अग्निहोत्रादो विद्यावृद्धा कथ प्रवर्तिष्यन्ते इति चेत्। तदापि न प्रमाणकोटि प्रवेष्टुमीष्टे अनृतव्याघातपुनरुक्तदोषैर्दूषिततया वैदिकमन्यैरेव धूर्तबकै परस्पर कर्म्मकाण्डप्रामाण्यवादिभिर्ज्ञानकाण्डस्य ज्ञानकाण्डप्रामाण्यवादिभि कर्मकाण्डस्य च प्रतिक्षिप्तत्वेनत्रय्या धूर्त्तप्रलापमात्रत्वेन अग्निहोत्रादेर्जीविकामात्रप्रयोजनत्वात्। तथा चाभाणक -"अग्निहोत्र त्रयो वेदास्त्रिदण्ड भस्मगुण्ठनम्। बुद्धिपोरुषहीनाना जीवकेति वृहस्पति। अतएव कण्टकादिजन्य दु खमेव नरक लोकसिद्धो राजा परमेश्वर देहोच्छेद मोक्ष[1] अर्थात् लोकायत दर्शन के अनुसार दु ख ही नरक तुल्य है, शरीर का नाश (शरीपात) ही मोक्ष है। एव देह ही आत्मा है पृथ्वी, जल, तेज, एव वायु चार तत्वो से मादक द्रव्यसमुदाय से मदशक्तिवत्, चैतन्य उत्पन्न होता है।[2] जिससे मनुष्य चैतन्यता का अनुभव कर, मै मोटा हूॅ, मै पतला हूॅ, इत्यादि रूप मे स्वय को व्यवहरित करता है। यथा-

अत्र चत्वारि भूतानि भूमिवाय्वनलानिला ।
चतुर्भ्य खलुभूतेभ्यश्चैतन्यमुपजायते ।।
किण्वादिभ्य समेतेभ्यो द्रव्येभ्यो मदशक्तिवत् ।
अह स्थूल कृशोऽस्मीति समानाधिकरण्यत ।।
देह स्थौल्यादियोगाच्चस एवात्मा न चापर ।
मम देहोऽयमित्युक्ति सम्भवेदौपचारिकी।। इति ।।[3]

कलिप्रतिनिधि भी मोक्ष की निदात्मक चर्चा करते हुए कहता है कि यह तो नपुसक लोगो के लिए है। पुरुष एव स्त्री को हमेशा कामरत रहना चाहिए। यथा-

उभयी प्रकृति 'कामे सज्जेदिति मुनेर्मन ।
अपवर्गे तृतीयेति भणत पाणिनेरपि ।।[4]

स्पष्ट है कि लोकायत मत मोक्ष को मान्यता नहीं देता जैसा कि साख्य, योग, न्याय वेदान्त दर्शन देते है। उसके मत मे तो मृत्यु ही मोक्ष है, (देहोच्छेद मोक्ष) इसीलिए चार्वाक वेदान्त, न्याय आदि आस्तिक दर्शनो के अपवर्ग की भी आलोचना करता है।[5]

लोकायत मत आत्मा की सत्ता का निराकरण करता है। उसके मत मे चैतन्यविशिष्ट देह ही आत्मा हे अत उसके मत को देहात्मवाद कहा जाता है।[6] आचार्य वृहस्पति का कहना है कि "देहात्मवादे

---

1 सर्वदर्शन सग्रह पृ० 4 5
– पृथिव्यपस्तेजा वायुर्रात तत्त्वानि । तेभ्यश्चैतन्यम् ।।
किण्वादिभ्यो मद्शक्तिवद् विज्ञानम् । जले बुद्‌बुदवज्जीवा ।। वृहस्पति-सूत्र।

2 स द स - पृ० 5

3 तत्र प्रथिव्यदीनि भूतानि चत्वारि तत्वानि तेभ्य एव देहाकारपरिणतेभ्य किण्वादिभ्यो मद शक्तिवत् चैतन्यमुपजायते तेषु विनष्टेषु सत्सू स्वय विनश्यति। तदिह विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्य समुत्थाय तान्मेवानु विन श्यति स न प्रेत्य ससास्तीति। तत् चैतन्यविशिष्टदेह एवात्मा देहातिरिक्त आत्मनि प्रमाण अवात् प्रत्यक्षैक प्रमाण वादितया अनुमाना देर नङ्गीकारेण प्रामाण्याभावात्। स द स - पृ० 3

4 नै 17/70

5 स द स - पृ० 3

6 प्रो0 चण्डिका प्रसाद शुक्ल का चार्वाक दर्शन सम्बन्धी मत कि ''इस आत्मवाद का प्रवर्तक वृहस्पति को माना जाता है ' एव ''चार्वाक का अनात्मवाद नास्तिक दर्शनों में सर्वप्रथम तथा सर्वप्रधान माना जाता है'' दोनों कथन विरोधाभास सेयुक्त हैं। कहॉ तक न्यायसगत है इसमे सुधीजन ही प्रमाण हैं। जबकि चार्वाक देहात्मवाद मानता है। –दृष्टव्य-नैषधपरिशीलन पृ० 385

च' कृशोऽह कृष्णोऽह' इत्यादि समानाधिकरण्योपत्ति। मम शरीरम् इति व्यवहारे राहो शिर इत्यादिवदौपचारिक।[1] कलिप्रतिनिधि कहता है कि यदि आत्मा को देह रूप मे मान लिया जाय, तो इसके जल जाने पर पाप का फल भोगने वाला कोई बचता ही नहीं और यदि आत्मा इस शरीर से भिन्न कोई ओर वस्तु है की जैसा कि वेदो मे मान्यता है, तो फिर पुरुषो, स्त्रियो मे आत्मा समान होगी, तब किसी एक द्वारा किये गये कर्म को दूसरे क्यो नहीं भोगते।[2] वेदो या ब्राह्मणो का यह कथन भी कितना पाखण्ड पूर्ण है जब वह कहते है कि मरने पर प्राणी को अपने पूर्व जन्मो मे कृत कर्मों की फलपरम्परा को भोगना पडता है परन्तु यदि ब्राह्मण भोजन करवा दिया जाय, तो मृत आत्मा तृप्त हो जाती है।[3] स्पष्ट है कि ब्राह्मणो ने अपनी भोजन व्यवस्था एव दान दक्षिणा प्राप्ति हेतु ही ऐसा विधान किया है। मनुष्य भी कहते मिलते है कि यह (शरीर) मे हूँ, यह श्याम है इत्यादि, जब कि वेदो मे वर्णन मिलता है कि तुम यह शरीर नहीं हो, ''बल्कि तत्त्वमसि (परमात्मा का अश जीवात्मा) हो।[4] अर्थात् वेद वाक्य शरीर को आत्मा होने का खण्डन कर तद्विलक्षण अप्रत्यक्ष एव वचनागोचर किसी वस्तु को आत्मा कहते है, अतएव अनुभव विरुद्ध होने से ये वेदवाक्य अत्यन्त धूर्त एव अप्रामाणिक है।[5] इसी तरह एकमेवाद्वितीय ब्रह्म, ''नेह नानास्ति किञ्चन्'' का खण्डन करते हुए कलिप्रतिनिधि कहता है, कि सभी लोग जो पाप करते है उन समस्त पापो का बोझ उसे ही ढोना पडेगा।[6] दूसरे शब्दो मे जब आत्मा एक ही है तब कोई भी वस्तु ससार मे दूसरी या दूसरे की नहीं है, इस अवस्था मे कोई भी स्त्री पर स्त्री नहीं, अत स्वेच्छाचार से किसी भी ललना से ससर्ग मे पाप कैसा?

लोकायत दर्शन के केवल प्रत्यक्ष प्रमाण को ही मान्यता दी है।[7] जब कि पौराणिक लोग आठ प्रमाण मानते है।[8] नैषध मे भी कलिप्रतिनिधि का कथन है कि वेदो मे यह वर्णन मिलता है कि पाप करने वाले को मृत्युपरान्त दु ख मिलता है तथा पुण्य करने वाले को सुख, किन्तु प्रत्यक्षरूप से व्यावहारिक जीवन मे तो इसके विपरीत ही फल देखने को मिलता है, अर्थात् पुण्यार्जन से प्राप्त सुख (स्वर्गादिप्राप्त)की बात तो परोक्ष की बात है, जब कि स्त्रीप्राप्ति से प्राप्त सुख प्रत्यक्ष की बात है, अतएव प्रत्यक्ष तथा परोक्ष प्रमाण मे प्रत्यक्ष प्रमाण बलवान होने से यह मानना पडेगा कि पाप कर्म से ही सुख एव पुण्यकर्म से दु ख मिलता है, अत पाप कर्म (स्त्री या परस्त्रीगमन) मे सबको प्रवृतहोना चाहिए, क्योकि इसी से प्रत्यक्षत सद्य सुखानुभूति मिलती है। स्पष्ट है कि यहॉ कलिप्रतिनिधि शब्द प्रमाण को निसार मानता है एव उसकी

---

1 सर्वदर्शन सग्रह - पृ०-5

2 यस्मिन्नस्मीति धीर्देहे तदनाहे व किमेनसा ।
क्वापि तत्कि फल न स्यदात्मति परसाक्षिके ॥ नै० 17/52

3 मृत स्मरति जन्मानि मृते कर्मफलोर्मय ।
अन्यभुक्तैर्मृते तृप्तिरित्यल धूर्तवार्तया ॥ नै० 17/53

4 जनेन जानतास्मीति काय नाय त्वमित्यसौ ।
तयाज्यते ग्राह्यते चान्यदहो श्रुत्यादिधूर्तया ॥ नै० 17/54

5 धूर्तप्रलापीत्रयी स्वर्गोत्पादकत्वेन विशेषाभावात् – वृहस्पति सूत्र

6 एकस्य विश्वपापेन तापेऽनन्ते निमज्जत ।
क श्रौतस्यात्मनो भीरो। भार स्याद्दुरितेन ते ॥ नै० 17/56

7 नापि चरम अन्त करणस्य बाहिरिन्द्रियतन्त्रत्वेन बाह्यऽर्थे स्वातन्त्रयेण प्रवृत्यनुपपत्ते तदुक्तम् चक्षुराद्युक्तविषय परतन्त्र बहिर्हर्म्मन इति।। स0द0 सग्रह पृ० 6

8 प्रत्यक्षमेव प्रमाणम् - वृहस्पति सूत्र
प्रत्यक्ष मेव चार्वाका कणाद सुगतौ पुन । अनुमान च तच्चापि साख्या शब्द च ते उभे ॥
न्यायैकदोशिनोऽप्येव भुपमान चकेचन । अर्थापत्या सहैतानि चत्वार्याहु प्रभाकरा ॥
अभावषष्टान्येतानि भाट्टा वैदान्तिनस्तया । सभवैह्यियुक्तानि तानि पौराणिका जगु ॥ मानसोल्लास 2/17-20

आलोचना करता है।[1] अनुमान प्रमाण का खण्डन करते हुए कलिप्रतिनिधि का कहना है कि तर्क (प्रमाण्योपपादक युक्ति या अनुमान) के अनन्त होने के कारण (सुन्दोपसुन्द न्याय से परस्पर को दूषित करते (विरोधी प्रमाण होनेसे परस्पर मे फलनिश्चय नहीं करते) हुए किन मतो (सिद्धान्तो अर्थात् प्रमाणाभाव से समान अनुमानादि का अथवा सत्त्व-असत्त्व, ऐकात्म्य-नानात्म्य, ईश्वरत्व-अनीश्वरत्व आदि)का सत्प्रतिपक्ष के सामन अप्रामाण्य (प्रमाणाभावत्व)नहीं होगा? अर्थात् सबका अप्रामाण्य हो जायेगा।[2] दूसरे शब्दो मे इसका आशय यह है कि जिस प्रकार वेशेषिक घट आदि का दृष्टान्त देते हुए कार्य होने से (घट) शब्द को अनित्य मानते है, और मीमासक आत्मा आदि का दृष्टान्त देते हुए निरवयव होने से शब्द को नित्य मानते है, इस अवस्था मे पूर्वोक्त दोनो मतो के समबल होने से किसी एक मे प्रामाण्यनिश्चय नहीं होने के कारण तटस्थ (वैशेषिक तथा मीमासक से भिन्न तृतीय)व्यक्ति को, शब्द नित्य है या अनित्य? ऐसा सन्देह होने पर उक्त दोनो मतो मे अप्रामाण्य बुद्धि हो जाती है, उसी प्रकार प्रामाण्य निश्चायक तर्कों की अनेकता होने से और सब मे समानता होने से उन सभी मतो का अप्रामाण्य हो जायेगा, एव अनुमान (तर्क) की प्रासगिता धरी की धरी रह जायेगी। इसी तथ्य से सगति करते हुए कलि प्रतिनिधि कहता है कि सदेह युक्त दो परिणामो (अनुष्ठानादि से पुत्रलाभादि रूप इष्ट की सिद्धि होना या नहीं होना) मे किसी एक की प्राप्ति तो अवश्यमेव होगी, यदि इष्ट उद्देश्यकी प्राप्ति हो गयी, तो धूर्त लोग (तान्त्रिक या ब्राह्मण) यह कहते है कि यह अनुष्ठान का प्रभाव है, एव यदि इष्टप्राप्ति नहीं हुई तो इसे गलत मन्त्रोच्चारण या कम दानादि पर दोष मढकर अपना पिण्ड छुडा लेते है।[3] चार्वाको का तो यहॉ तक मानना है कि वेशेषिको के शब्द प्रमाण का अन्तर्भाव अनुमान प्रमाण मे ही हो जाता है[4] एव जब अनुमान प्रमाण स्वय ही सदिग्ध हो, तो उससे सम्बन्धित व्याप्ति या उसके प्रकार स्वार्थानुमान, परार्थानुमान तथा अपमान, अर्थापत्ति एव अनुपलब्धि (अभाव) आदि सभी नैयायिको के प्रमाण स्वत ध्वस्त हो जाते है। ध्यातव्य है कि आचार्य वृहस्पति ने केवल प्रत्यक्ष प्रमाण को ही मान्यता दी है क्योकि वह चक्षुरादि का विषय है, एव अन्य सभी प्रमाणो का खण्डन किया है।[5] बर्कले के "Esse ıs per cıpı" (सत्ता ही दृश्यता है) की तुलना चार्वाको के प्रत्यक्ष प्रमाण से उचित मानी जा सकती है।

---

1 पापात्तापा मुद पुण्यात्परासो स्युरिति श्रुति । वैपरीत्य द्रुत साक्षात्तदारव्यात बलबले ।। नै 17/45

2 तर्काप्रतिष्ठया साम्यादन्योऽन्यस्य व्यतिघ्नताम् । ना प्रामाण्य मताना स्यात्केषा स्त्प्रतिपक्षवत् ।। नै 17/79

3 एक सदिग्धयोस्तावद्भावि तत्रेष्ट जन्मनि । हेतुमाहु स्वमन्त्रादीनसङ्गानन्यथा विटा ।। नै 17/55

4 शब्दोपमानयोर्नैव पृथक् प्रामाण्यमर्हति । अनुमाने गतार्थत्वादिति वैशेषिक मतम् ।। स0द0स0, पृ० 7

5 स्यादेतेत-स्यादेष मनोरथो यद्यनुमानादे प्रामाण्य न स्यात् अस्ति च प्रामाण्य कथमन्यथा धूमोपलम्भानन्तर धूमोपलम्भानन्तर धूमध्वजे प्रेक्षावता प्रवृत्तिरुपपद्येत। नद्यास्तीरे फलानि सन्तीति वचनश्रवणसमनन्तर फलार्थिना नदीतीर प्रवृत्तिरिति। तदेतन्मनोराज्यविश्रृम्मण व्याप्तिपक्षधर्म्मताशील लिग गमकमभ्युगतमनुमानप्रामाणण्यवादिभि व्याप्तिश्चोभयविधोपाधिविधुर सम्बन्ध। स च स्वसत्तया चक्षुरादिवन्नागभाव भजते किन्तु ज्ञाततया। क खलु ज्ञानोपाया भवेत्। न तावत् प्रत्यक्ष तच्च बाह्यमान्तर वाभिमतम् न प्रथम। तस्य सम्प्रयुक्तविषयज्ञानजनकत्वेन विद्यमाने प्रसरसम्भवेपि भूतभविष्यतोस्तदसम्भवेन सर्व्वोपसहार वत्यव्यापतेर्दुर्ज्ञानत्वात्।। न च व्याप्तिज्ञान सामान्यगोचरमिति मन्तव्य, व्यक्त्योरविनाभावा प्रसगात् ।।12।।
- नाप्यनुमान व्याप्तिज्ञानोपाय, तत्र तत्राप्येवमिति अनवस्थादौस्थ्यप्रसगात्। नापि शब्दस्तुपाय काणादमतानुसारेणानुमान एवान्तर्भावात् अनन्तर्भावे वा वृद्धव्यवहाररूप लिगावगति सापेक्षतया प्रागुक्तदूषणलङ्घनाजङ्घालत्वात् ।।14।।
- धूमधूमध्वजयोरविनाभावोऽस्तीति वचनमात्रे मन्वादिवद् विश्वासाभावाच्च। अनुपदिष्टाविनाभावस्य पुरुषस्यार्थन्तरदर्शनेनार्थरानुमित्यभावेस्वार्थानुमानकथाया कथाशेषत्वप्रसगाच्च ।15।।
- उपमानादिक तु दूरापास्त तेषा सज्ञासज्ञिसम्बन्धादिवोधकत्वेनानौपाधिकत्वसम्बन्धबोधकत्वासम्भवात् ।।16।।
- किञ्च उपाध्यभावोऽपि दुखगम उपाधीनां प्रत्यक्षत्वनियमासम्भवेन प्रत्यक्षाणामभावस्य प्रत्यक्षत्वेऽपि अप्रत्यक्षाणामभावस्याप्रत्यक्षतया अनुमानाद्यपेक्षा यामुक्तदूषणानतिवृत्ते ।।17।।
- अपि च साधनाव्यापकत्त्वे सति साध्यसमव्याप्तिरिति तल्लक्षण कक्षीकर्तव्यम्। तदुक्तम्–अव्याप्तसाधनो य साध्यसमव्याप्तिरुच्यते स उपाधि· इति। शुद्धेऽनित्यत्वे साध्ये सकर्तृकन्च घटत्वमश्रावणताञ्च व्यावर्तयितुमुपात्तान्यत्र क्रमतो विशेषणानि त्रीणि ।।18।।
- तस्मादिदमनवद्य समासमेत्यादिनोक्तमाचार्य्यैश्चेति ।।19।। उक्तार्थ मे आचार्य सम्मति कहते हैं कि समासमेति-समासमाविनाभाववेकत्र स्तो यदा तदा। समेन यदि नो व्याप्तस्तयोर्हीनोऽप्रयोजक ।। इति
- तत्र विध्यध्यवसायपूर्वकत्वान्निषेधाध्यवसाय स्योपाधिज्ञाने जाते तदभाव विशिष्टसम्बन्धरूप व्याप्तिज्ञान व्याप्तिज्ञानाधीन चोपाधिज्ञानमिति परस्पराश्रयवज्रप्रहारदोषो वज्रलेपायते। तस्मादविनाभावस्य दुर्बोधितया नानुमानाद्यवकाश। धूमादिज्ञानानन्तरमग्न्यादिज्ञाने प्रवृत्ति प्रत्यक्षमूलतया भ्रान्त्या वा युज्यते ।।20।। स द स, पृ० 5 9

कलिप्रतिनिधि ने मोक्ष की सत्ता का उच्छेद करने के बहाने वेदान्त एव न्यायदर्शन की भी निदा की। वेदान्त मत के अनुसार जिस प्रकार घटाकाश की घटोपाधि के निवृत्त हो जाने पर केवल आकाश ही रह जाता है उसी प्रकार ससारोपाधि (जीवात्म) के निवृत्त हो जाने के बाद केवल शुद्ध ब्रह्म ही रह जाता है, 'एकमेवाद्वितीयं' का यही अभिप्राय भी है किन्तु दशा मे (स्व) जीवात्मा का अर्थात् अपना ही उच्छेद कर वेदान्ती चतुर नहीं, वरन् महामूर्ख सिद्ध होते है[1] क्योकि लोक मे भी जो काई व्यक्ति अपना ही उच्छेद (विनाश) स्वीकार कर दूसरे की स्थिति स्वीकार करता है, उसे मुर्ख ही माना जाता है, इस रूप मे वह वेदान्त दर्शन की अलाचना करता है, परन्तु इससे यह भी ध्वनित होता है चार्वाक उच्छेदवादी दर्शन है।[2] अवधेय है कि उच्छेदवाद के प्रवर्तक अजितके ककम्बल का सिद्धान्त भी लोकायत मत के अनुरूप ही है। न्यायदर्शन की आलोचना करते हुए वह कहता है कि जिसने (गौतम ने) चेतना युक्त प्राणियो के (सुख, दु खादि का अनुभव नहीं होने से) पाषाणस्वरूपा मुक्ति[3] के लिए ग्रथ बनाया, उसे गोतम (मुनि पक्षान्तर मे विशिष्ट गो) ही जाने, और जैसा (मुनि एव गो) जाते हो, वह वैसा (महापशु) ही है।[4] इस प्रकार यहाँ कलिप्रतिनिधि का मन्तव्य न्याय दर्शन के साथ-साथ उसके प्रणेता की भी आलोचना करना है।

चार्वाकदर्शन यदृच्छावाद एव स्वभाववाद की मान्यता[5] का प्रतिपादक है। इस दर्शन मे कार्यकारणभाव का कोई स्थान नहीं हे। सभी पदार्थो की तात्त्विक विवेचना उनके स्वभाव के आधार पर की जाती है[6]। आचार्य वृहस्पति का भी कथन है कि अग्नि जल एव वायु मे उष्ण, शीत एव स्पर्श गुण स्वभावत होते है।[7] ईश्वर की सत्ता का पला एव स्वभाववादी मान्यता स्थापन पर जो देते हुए कलि प्रतिनिधि कहता है कि यदि ससारियो को अपने अपने कर्मानुसार सुख दु खादि भोगना ही है तो ईश्वर का, उस दु ख को ससारियो के द्वारा भोगने मे निमित्त होना (मानना), हम ससारियो के साथ मे अकारण दोष करना ही है, क्योकि दूसरे लोग तो परस्पर मे अपकार करने के कारण एक दूसरे के बैरी बनते है

---

1 स्वञ्च ब्रह्म च ससारे मुक्तौ तु ब्रह्म केवलम् ।
इति स्वोच्छित्तिमुक्त्युक्तिवैदधी वेदवादिनम् ।। नै० 17/74

2 This is the doctrine of annihilation know as Ucchedavada and refered to in works like Aryasura's Jatakamala (Mahabodhijatake)-
अपर उच्छेदवादकथाभिरन कामभोग प्रसग एव प्रतारयामास दारुणि नैकविधवर्णगुणाकृतीनि कर्मात्मकानि न भवन्ति भवन्ति चैव। नष्टानि नेव च यथा पुनरुद्भवन्ति लोकस्तथायमिति सौख्यपरायण स्यात् ।। -हाण्डिकी पृ० 536 एव द्रष्टव्य जानी, पृ० 141

3 न्याय के अपवर्ग की मीमासा इसी शोध प्रबन्ध के न्यायदर्शन के अन्तर्गत द्रष्टव्य।

4 मुक्तये य शिलात्वाय शास्त्रामूचे सचेतसाम् ।
गोतम तमवेतैव यथा वित्थ तथेव स ।। नै० 17/75

5 अपरे लोकायतिका स्वभाव जगत कारणमाहु। स्वभावादेव जगद् विचित्रमुत्पद्यते, स्वभावतो विलययाति।-भट्टोत्पल-वृ० सहिता 1/7 की टीका
हेतुभूतिनिषेधो न स्वानुपाख्यविधिर्न च ।
स्वभावर्णना नैवमवधेर्नियत्त्तन्तवत ।। न्याय कु0 1/5

6 शिखिन चित्रयेत् को वा कोकिलान् क प्रकूजयेत्।
स्वभावव्यतिरेकेण विद्यते नात्र कारणम्। सर्वसिद्धान्त सग्रह, लोकायत प्रकरण, श्लोक 5

7. क्वचित् फलप्रतिलम्भस्तु मणिमन्त्रौषधादिवत् यादृच्छिक अतस्तुसाध्यमदृष्टादिकमपि नास्ति।
नन्वदृष्टानिष्टौ जगद्वेचित्रमाकस्मिक स्यादिति चेत् न तद्भद्रम अग्निरुष्णो जल शीत शीतस्पर्शस्तथानिल।
केनेद चित्रित तस्मात स्वभावात्तद्व्यवस्थितिरिति ।।21।। स द स, पृ० 10

किन्तु वह ईश्वर तो अकारण ही दु ख भोग कराने मे निमित्त होकर हम ससारियो के साथ द्वेष करता है।[1] अतएव वह ईश्वर कारुणिक आदि गुणो से युक्त है, यह कथन सर्वथा मिथ्या है एव दु ख भोग कराने मे कर्म की प्रधानता होने से भी ईश्वर का अस्तित्व खण्डित होता है।

देवताओ यथा-- विष्णु तथा शिव के अस्तित्व पर प्रहार करते हुए कलिप्रतिनिधि का कथन है कि धार्मिक मान्यतानुसार तो विष्णु एव शिव का जो एक बार भी नाम ले लेता है, वह मुक्त हो जाता है किन्तु उन्हीं देवताओ की पत्नियाँ लक्ष्मी एव गौरी (उमा), जो हमेशा उन देवो (विष्णु एव शिव) मे अत्यन्त सलग्नचित्ता है, वे क्यो नहीं मुक्त हो गयीं? प्रत्युत वे तो काम के कारागार के (जेल-बन्धन) मे है अर्थात् काम के परवश (ही दिखायी पडती) है।[2] अतएव "सकृदुच्चरित येन शिव इत्यक्षरद्वयम्" तथा "मय्यर्पितमनोबुद्धिर्य स मामेति पाण्डव[3] इत्यादि शिव, कृष्ण तथा विष्णु आदि की उपासना से मुक्ति प्राप्ति बतलाने वाले शास्त्र मिथ्या ही है। ईश्वर की सत्ता का निराकरण करता हुआ वह कहता है कि यदि सर्वज्ञ, दयालु एव (वेदरूप) सत्यभाषी ईश्वर (परमात्मा) की सत्ता है तो वह मोक्ष चाहने वाले हम लोगो को अपनी स्वीकृति के शब्द (एवमस्तु) से कृतार्थ क्यो नहीं करता है,[4] या मोक्ष प्रदान क्यो नहीं करता? और यदि सर्वज्ञादि विशेषणो से विशिष्ट होने पर भी (नैयायिक सम्मत ईश्वर) वह हम मोक्ष प्रदान करने मे समर्थ नहीं है तब तो यह मानना पडता है कि ईश्वर नामक कोई देव है ही नहीं।

ऋषि, मुनि, तपस्वी, जो भारतीय सस्कृति के सवाहक रहे है, कलि प्रतिनिधि उनकी भी आलोचना करने मे नहीं चूकता, वह कहता है कि दुर्वासा आदि ऋषि जो स्वय महाक्रोधी है, एव तपस्वी होते हुए भी क्रोध करते है और दूसरो को यह उपदेश देते है कि क्रोध का सर्वथा त्याग करना चाहिए, उनका यह उपदेश दूसरो को वञ्चित करना मात्र है वास्तविक नहीं, इसलिए उन ऋषि मुनियो का उपदेश भी मानने योग्य नहीं है। यथा –

अक्रोध शिक्षयन्त्यन्यै क्रोधना ये तपोधना ।
निर्धनास्ते धनायैव धातुवादोपदेशिन ।।[5]

दान आदि क्रियाओ की निन्दा करते हुए कलिप्रतिनिधि कहता है लक्ष्मी तो उसी से प्रसन्न रहती है जो कजूस होता है। दान व्यसनी महादानी बलि ने तो अपना सर्वस्व दान कर (वामन रूपधारी विष्णु द्वारा) बन्धन को ही प्राप्त हुआ था।[6] अतएव दानादि करने का उपदेश वञ्चना एव अपनी उदरपूर्ति का

---

1 भाविना भावयन्दु ख स्वकर्मजमपीश्वर ।
स्यादकारणबैरी न कारणादपरे परे ।। नै० 17/78

2 दारा हरिहरादीना तन्मग्नमनसो भृशम् ।
कि न मुक्ता ? पुन सन्ति कारागारे मनोभुव ।। नै० 17/76

3 भ0 गीता- 8/7

4 देवश्चेदस्ति सर्वज्ञ करुणाभागबन्ध्यवाक् ।
तत् कि वाग्व्ययमात्रान्न कृतार्थयति नार्थिनि ।। नै 17/77, एव

5 नै० 17/80

6 कि वित्त दत्त? तुष्येयमदातरि हरिप्रिया ।
दत्त्वा सर्वं धन मुग्धो बन्धन लब्धवान्बलि ।। नै० 17/81

साधन मात्र है[1] परलोक मे,सुखोत्पादक नहीं, अतएव दान नहीं करना चाहिए, क्योकि एक दो व्यक्ति भले ही लोभ के वशीभूत न हो, शेष सभी लोग धनवानो से धन ही लेना चाहते है। यथा -

दोग्धा द्रोग्धा च सर्वोऽय धनिनश्चेतसा जन
विसृज्य लोभसक्षोभमेकद्वा यद्युदासते ।।[2]

आचार्य वृहस्पति ने भी दानादि पुण्य कर्मों का उपहास किया है।[3]

चार्वाक दर्शन स्वछन्दतावादी दर्शन है। नैषध मे भी श्रीहर्ष ने इस तथ्य का प्रतिपादन कलिप्रतिनिधि मुखेन करवाया है जहॉ वह कहता है कि आनन्द का मूलकारण स्वच्छन्दता (श्रुति-स्मृति, पुराणोक्त धर्मों का त्यागकर स्वेच्छाचारिता) है। मनुस्मृति इत्यादि मे जो चीजे अभक्ष्य कहीं गयी है यथा लशुन, पलाण्डु (ग्राम्यसूकर कुक्कुट का) मास आदि न खाना, पेट को वञ्चित करना है, अचौर्य दीनता का जन्मदाता है, अत चोरी करके दीनता से छुटकारा पाना ही उत्तम है।[4] वेदो के कथन - "आत्माराम स्यात्" की व्याख्या वह अपने पक्ष मे करता हुआ कहता है कि स्वेच्छा पूर्वक जो भाये वही आत्माराम है।[5] यज्ञ निष्पादन को वह दुखदायी ही मानता है।[6] वह कहता है कि अग्निहोत्र, तीनो वेद, त्रिदण्ड धारण करना, भस्मलेपन या तिलक लगाना, ये सब बुद्धिहीन एव दरिद्रो की जीविका के साधन मात्र है। यथा–

अग्निहोत्र त्रयीतन्त्र त्रिदण्ड भस्मपुण्ड्रकम् ।
प्रज्ञापौरुषनिस्वाना जीवो जल्पति जीविका ।।[7]

लोकायत दर्शन के प्रणेता आचार्य वृहस्पति ने भी उपर्युक्त मत की अभिव्यक्ति की थी।[8]

मूर्तिपूजन पर वज्राघात करते हुए कलिप्रतिनिधि कहता है कि डाली से फल तोडकर देवता पर चढाने से क्या लाभ? यदि वह फूल डाली मे रहता तो फल ही देता, इस तरह तो एक फल की उत्पत्ति रोककर तुमने लाभ के स्थान पर हानि ही की और यदि देवता के ऊपर फूल चढाने से अभीष्ट सिद्धि होती है, ऐसी भावना से शिवलिङ्ग या शालिग्राम की मूर्ति पर पुष्प चढाना ही है तो "सर्व शिष्णुमय जगत्" इस सिद्धान्त के अनुसार उक्त देवो या मनुष्यो के शिर भेद नहीं से पत्थर के ऊपर पुष्प चढाने की अपेक्षा,

---

1 सर्वथा लोकायतिकमव शास्त्रमर्थज्ञानकाले ।
एवमर्थायकरोत्यग्निहोत्रसन्ध्यजयादीन् ।। वा0सू0

2 नै० 17/82

3 स्वर्गस्थिता यदा तृप्ति गच्छेयुस्तत्र दानत ।
प्रासादस्योपरिस्थानामत्र कस्मान्न दीयते ।। स0द0स0पृ० 11

4 [illegible] कुक्षिवञ्चना ।
स्वाच्छन्द्यमृच्छतानन्दकन्दलीकन्दमेककम् ।। नै 17/83

5 स्वागमार्थेऽपि मा स्थास्मिस्तीर्थिका! विचिकित्सव ।
त तमाचरतानन्द स्वच्छन्द य यमिच्छथ ।। नै 17/50

6 नै 17/60

7 नै० 17/39

8 अग्निहोत्र त्रयो वेदास्त्रिदण्ड भस्मगुण्डनम् ।
बुद्धिपौरुषहीनाना जीविका धातृनिर्म्मिता ।।
पशुश्चेन्निहत स्वर्ग ज्योतिष्टोमे गामिष्यति ।
स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्नहिस्यते ।।
मृतानामपि जन्तूना श्राद्ध चेतृप्तिकारणम् ।
गच्छतामिह जन्तूना व्यर्थ पाथेयकल्पनम् ।।
ततश्च जीवनोपायो ब्राह्मणैर्विहितस्त्विह ।
मृताना प्रेतकार्य्याणि न त्वन्यद्विद्यते क्वचित् ।। स द स , पृ० 11

अपने ही शिर पर रखे होते, जिससे सुगन्धित लाभ तो अवश्य ले लेते, क्योकि दूसरो की सेवा की अपेक्षा स्वयमेव उपभोग करना श्रेष्ठ है। स्पष्ट है कि कलिप्रतिनिधि यहॉ चार्वाको के सिद्धान्त स्वार्थवाद का भी प्रतिपादन कर रहा है, साथ ही उसने मूर्ति पूजन (देवपूजन) एव देवपूजको का भी उपहास किया है।[1] "गङ्गे 'तव' दर्शनात् मुक्ति " की अवधारणा भी चार्वाक दर्शन को ग्राह्य नहीं है, व्रतो एव तीर्थ स्नान की निदा करते हुए कलिप्रतिनिधि कहता है, जब सासारिक जन कामपरायण है, तब एकादशी, अमावस्या एव चान्द्रायण पूर्णिमा को व्रत रखना, तीर्थो से स्नान करना सब दिखावा मात्र है।[2] वह गगास्नान कर स्वर्गप्राप्ति की कामना रखने वालो को भेड (मूर्ख) की सज्ञा देता है। यथा–

बिभ्रत्युपरियानाय जना जनित मज्जना ।
विग्रहायाग्रत पश्चाद्गत्वरोरभ्रविभ्रमम् ।।[3]

यदि हम लोकायत दर्शन की पाश्चात्य दर्शन से तुलना करे, तो हम पाते है कि जिस प्रकार लोकायत दर्शन आत्म सुख को परम शुभ मानते हुए इन्द्रिय सुख को ही सर्वोच्च सुख मानता है, उसी तरह सिरैनेक सम्प्रदाय का प्रर्वतक ऐरिस्टिपस (Aristippus) जो कि स्थूल (Gross) अथवा इन्द्रियपरक आत्मसुखवाद का प्रचारक था भी इन्द्रिय सुख या शारीरिक सुख को सर्वोच्च मानता था। उसके अनुसार सभी सुख एक ही प्रकार के होते है। सुखो मे भेद केवल उनकी तीव्रता अथवा मात्रा और स्थिति मे होता है, अर्थात् उनमे मात्रात्मक भेद होता है, गुणात्मक नहीं। शारीरिक सुख अथवा इन्द्रिय तृप्ति आध्यात्मिक सुखो की अपेक्षा अधिक वरण करने योग्य है, क्योकि शारीरिक सुख आध्यात्मिक सुख की अपेक्षा अधिक तीव्रतर होते है। अतीत मर चुका है और भविष्य सशयात्मक है। वर्तमान ही सब कुछ है। वर्तमान से ही हमे अधिक से अधिक सुख लाभ प्राप्त करना होगा।[4] खाओ, पिओ, और मौज उडाओ क्योकि कल तो मरना ही है। (Let us eat, drink and be merry for tomoorow we die)[5] एक भी क्षण तीव्रतम सुखभोग से खाली न जाये। इसलिये जीवन का सच्चा नियम यह है कि वर्तमान क्षणिक विषय सुखो के लिये अविचारपूर्वक अपना उत्सर्ग कर दो।[6] हाब्स भी सम्पूर्ण चारित्रिकगुणो को आत्मप्रेम मे विघटित कर देता हे। मैडेविल (Mandevile 1676-1771) और हेल्वेशियस (Helvetius 1715-77) भी इसी मत के अनुयायी है। उनके अनुसार आनन्द का अर्थ इन्द्रियो की तृप्ति से उत्पन्नसुख की उच्चतम मात्रा है, और वही परम शुभ भी है। उपनिषदो मे भी वर्णन मिलता है कि जब मनुष्य को सुख प्राप्त होता है, तब वह कर्म करता है बिना सुख मिले कोई कर्म नहीं करता, बल्कि सुख मिलने पर ही करता है, अत सुख की ही विशेष रूप से जिज्ञासा करनी चाहिए।[7] व्यास का भी कथन है कि दु ख से सभी उद्विग्न होते है, और सुख सभी को

---

1 कि ते वृन्तहृतापुष्पात्तन्मात्रेहि फलत्यद ।,
न्यस्य तन्मूर्ध्न्यनन्यस्य न्यास्यमेवाश्मनो यदि ।। नै 17/57

2 नै 17/41

3 नै 17/71

4 गते शोको न कर्त्तव्यो भविष्य नैव चिन्तयेत् ।
वर्तमानेन कालेन वर्तमन्ति विचक्षणा ।। चाणक्य नीति 13/2

5 Materialism in Ancient India - Published in the Bulletin of Allahabad University oriental society - 1928-29, P-44-53 एव द्रष्टव्य - सारस्वत सदर्शन - पृ० 158/166
– पिव खाद च जातशोभने - प्रबोधचन्दोदय 2/50

6 Weber History of Philosophy - E T (T Thilhy) 1986, P-71 विशेष विवरण हेतु द्रष्टव्य - William lillie - An introduction to Ethics - The Standard as Pleasure - 18 Chapt -9

7 यदा वै सुख लभतेऽथ करोति नासुख लब्ध्वा करोति सुखमेव लब्ध्वा करोति सुख त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति। छा उ0 7/22/1

अभीष्ट है।[1] उपयोगितावादियो मे वेथम, मिल तथा सिजविक ने भी स्वार्थपरक सुखवाद का पूर्ण समर्थन करते हुए उसे अपने उपयोगितावाद का अग बनाते हुए, सुख प्राप्ति को ही श्रेयस्कर माना है।[2] अरस्तू का भी कहना है कि शब्दत इस वात पर सामान्य मतैक्य है कि सर्वोच्च श्रेय क्या है, क्योकि प्राकृत जन तथा शिष्ट जन दोनो मानते है कि यह सुख है।[3]

चार्वाको के प्रत्यक्ष प्रमाण के आधारपर चार पदार्थो (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु) को मानने के कारण इसकी तुलना ग्रीक परमाणुवादियो या भौतिकवादी दर्शन से की जा सकती है, जैसा कि पूर्व मे विवेचन किया जा चुका है। पाश्चात्य दार्शनिको का व्यवहारवाद या फलवाद (Pragmatism) तथा भाववाद, विशेषकर तर्कमूलकभाववाद (Logical Positivism) की मान्यताएँ भी लोकायत दर्शन के समरूप ही देखी जा सकती है। यदि लोकायत दर्शन शारीरिक सुख के साथ-साथ मानसिक एव आध्यात्मिक सुख को मान लेता, तब हम उसे शिष्ट चार्वाक की सज्ञा से अभिहित कर सकते थे, जैसा कि पाश्चात्य दार्शनिक इपीकुरस ने माना था कि मानसिक इच्छाओ की तृप्ति भी सुख है। इस रूप मे चार्वाक दर्शन के दो भेद किये जा सकते हे। धूर्त चार्वाक एव शिष्ट चार्वाक[4]। धूर्त चार्वाको की श्रेणी मे लोकायत दर्शन तथा पाश्चात्य सिरेनाइक मत, एव शिष्ट चार्वाको की श्रेणी मे इपिकुरसवाद एव स्वय हम अपने सभी मनुष्यो के जीवन दर्शन को रख सकते है क्योकि यदि सभी मनुष्यो के जीवन दर्शन को परखा जाय एव चार्वाक दर्शन से उसकी तुलनात्मक मीमासा की जाये, तथा उसमे चार्वाको द्वारा वेद, स्वर्ग, ईश्वर, मोक्ष, आत्मा या नैतिक कर्मो की आलोचना पद्धति को त्याग दिया जाय तो हम सभी शिष्ट चार्वाकी ही ठहरते है क्योकि आधुनिक मनुष्य अपनी उन्नति एव सुख के लिये सब कुछ करने को उद्यत दिखता है। अन्तर सिर्फ इतना है कि हम ईश्वर, पुर्नजन्म, स्वर्ग एव नैतिक कर्मो को मान्यता देते है, जब कि चार्वाक दर्शन इनकी निदा करता है। हो सकता है कि चार्वाक दर्शन का रूप, जिस रूप मे आज हमे प्राप्त है उससे भिन्न रहा हो,[5] क्योकि चार्वाक दर्शन का जो पक्ष हमे देखने को मिलता है, वह गीता, मनुस्मृति योग न्याय वैशेषिक, एव वेदान्त द्वारा उसकी की गयी आलोचना मे ही प्राप्त होता है, और यह भी सभव है कि इन ग्रथो के ग्रथकारो ने चार्वाक द्वारा की गयी वेद आदि की निदा न सह सकने के कारण चार्वाको के दर्शन को इतना घृणित रूप

---

1 दु खादुद्विजते सर्व सर्वस्य सुखमीप्सितम्। महा शान्ति प 139/69

2 Betham - An introduction to the principal of morals and legislation - P 1
Each person, so for as he believes it to be attainable, desires his own happiness, happiness is a good, Each person's happiness is good to that person, the general happiness therefore, is good to the aggreate of all person — James Mill — Utilitarianism - chapt 4, third para
– द्रष्टव्य – Henery Sidgwick — Methods of Ethics - P - 375

3 द्रष्टव्य – Nichomachean Ethics - (रास का अनुवाद) P- 1095 - 15-20

4 भारत मे चार्वाको के अनन्तर सुखवाद के दो रूप हो गये, एक की स्थापना कौटिल्य या चाणक्य ने की और दूसरे की न्यायवार्तिककार उद्योतकर ने। चाणक्य ने मनुष्य को स्वार्थी मानकर, उनके स्वार्थ को नियत्रित करने के लिये राजसत्ता को अनिवार्य माना, एव उसने भारतीय नीति शास्त्र को वहीं योगदान किया जैसा कि कालन्तर मे हाब्स ने विट्रिश नीतिशास्त्र को दिया। इसे हम सुखवाद एव राजनैतिक सत्ता का गठजोड कह सकते हैं। तदनन्तर उद्योतकर ने मानव मनोविज्ञान के आधार पर घोषित किया कि सुखप्राप्ति य दु ख निवृत्ति ही मानवजीवन का काम्य (साध्य) है धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नहीं। बाद में न्याय वैशेषिक के मत में इस सुखवाद की प्रधानता रही। इस सुखवादी दृष्टिकोण की तुलना हम विट्रिश उपयोगितावाद से कर सकते हैं। द्रष्टव्य - 'प्रो हिरिन्ना लिखित Indian Philosophical studies पुस्तक मे प्रकाशित Indian Philosophy and Hedonism नामक लख एव न्यायवार्तिक (वाराणसी सस्करण) पृ० 13 से उद्धृत

5 Six systems of Indian Philosophy - MaxMuller -P. 100

प्रदान कर दिया हो, किन्तु जिस रूप मे आज चार्वाक दर्शन लोकायत हमे प्राप्त है उस रूप मे वह सवेदनशील और समझदार नरनारियो के लिये बरतने योग्य नहीं है।[1]

नैषधीयचरितम् के सत्रहवे सर्ग के साथ-साथ अर्थशास्त्र मे लोकायत दर्शन का वर्णन मिलता है जहाँ लोकायत (चार्वाक)की गणना आन्वीक्षिकी के अन्तर्गत साख्य और योग के साथ की गयी है।[2] वार्हस्पत्य सूत्र[3] तो चार्वाक दर्शन के मूल ही है परन्तु पतञ्जलि के समय (ई पू द्वितीय शताब्दी) मे लोकायत दर्शन के "भागुरी" नामक टीका ग्रथ के विद्यमान होने का वर्णन मिलता है।[4] लगभग 10वीं शाताब्दी मे जयराशि भट्ट द्वारा निलिखत 'तत्त्वोपप्लवसिह' नामक ग्रथ मे चार्वाक तथ्यो का प्रतिपादन मिलता है। कृष्णायति मिश्रकृत प्रबोध चन्द्रोदय[5] के द्वितीय अक शान्तरक्षित के तत्त्वसग्रह, माधवाचार्य के सर्वदर्शन सग्रह, हरिभद्रसूरि के षडदर्शन समुच्चय, कमलशीलकृत तत्वसग्रह की पञ्जिका, सर्वमत सग्रह, [illegible] सग्रह, विवरण प्रमेय सग्रह, ब्रह्मसूत्र के 3/3/53-54 सूत्रो के भाष्य तथा न्यायमजरी मे चार्वाक दर्शनो का प्रतिपादन मिलता है तथा पूर्वपक्ष के रूप मे लगभग सभी अस्तिक दर्शन के ग्रथो मे भी लोकायत दर्शन के विवरण देखे जा सकते है।

जैन दर्शन

नैषधीयचरितम् मे जैन दर्शन सम्बन्धी जो विवरण देखने को मिलते है, उनसे यही प्रतीत होता है कि नैषधकार को यह दर्शन दर्शनशास्त्र के रूप मे अभिप्रेत नहीं था, क्योंकि जैन धर्म की विशेषताओ का

---

1 भारतीय योग दर्शन - देवराज, पृ० 146

2 साख्य योग लोकायत चेत्यान्वीक्षिकी - अर्थशास्त्र उपोद्घात (से उद्धृत)

3 (i) पृथिव्यप्तेजावायुरिति तत्वानि।
  (ii) तत्समुदाये शरीरेन्द्रिय विषय सज्ञा।
  (iii) तेभ्यश्चैतन्यम्।
  (iv) किण्वादिभ्यो मदशक्तिवद् विज्ञानम्।।
  (v) मदशक्तिवद् विसानम।
  (vi) चैतन्यविशिष्ट काय पुरुष।
  (vii) काम एवैक पुरुषार्थ।
  (viii) मरणामेवापवर्ग।
  – भास्कर रचित ब्रह्मसूत्र (एक आत्मन शरीरे भावात् 3/3/53), तथा शाकर भाष्य एव गीता (16/11) की नीलकण्ठी श्रीधरी तथा मधुसूदनी ओर अद्वैत ब्रह्मसिद्धि मे निम्नसूत्र द्रष्टव्य हैं जबकि प्रबोधचन्द्रोदय में चार्वाक मत के निम्न
  वृहस्पति सूत्र मिलते हे –
  (i) लोकायतमेव शस्त्रम्।
  (ii) अत्र प्रत्यक्षमेव प्रमाणम्।
  (iii) अर्थकामौ पुरुषार्थौ।
  (iv) भूतान्येव परलोक
  (v) नास्ति परलोक
  (iv) मृत्यरेवापवर्ग। अन्य वृहस्पति सूत्र अनुपलब्ध है।

4 वर्णिका भागुरी लोकायतस्य - महाभाष्य - 7/3/45, सूत्र - 7
  – वर्तिका भागुरी लोकायतस्य, महाभाष्य - 7/3/45/, सूत्र 8
  – वर्णिकेति व्याख्यातीत्यर्थ भागरी टीका विशेष - कैयट, महाभाष्य 7/3/45 –व्याकरण महाभाष्य,III खण्ड, मोती, वना , पृ० 210

5 वाचस्पतिना प्रणीय चार्वाकाय समर्पितम्।
  तेन च शिष्योपशिष्य द्वारेण बहुलीकृत तन्त्रम्।।

विवरण ही नैषध महाकाव्य मे मिलता है, एव जैन दर्शन के सिद्धान्तो यथा स्याद्वाद, अनेकान्तवाद आदि का नामोल्लेख तक श्रीहर्ष ने इस महाकाव्य मे नहीं किया है। सभवत इन्हे धार्मिक सम्प्रदाय के रूप मे ही यह दर्शन अभिप्रेत है। अर्वाचीन विद्वान् प्रो एम हिरियन्ना महोदय ने भी जैन दर्शन का प्रतिपादन 'दर्शनो के युग' के पूर्व रखा है।[1] जैन दर्शन का भी दर्शन के क्षेत्र मे असीम योगदान है, एव इसका विवरण विभिन्न ग्रथो यथा-प्रमेय कमल मार्तण्ड, सर्वार्थसिद्धि, तत्त्वार्थसूत्र, भगवती सूत्र, आचाराग सूत्र, षड्दर्शनसमुच्चय एव सर्वदर्शन सग्रह आदि प्रसिद्ध ग्रथो मे देखने को मिलता है। जैन दर्शन के तीर्थकरो के साथ-साथ त्रिरत्नो का अप्रतिम महत्त्व है, उन्हे मोक्ष मार्ग भी माना जाता है।[2] श्रीहर्ष ने जैन दर्शन की त्रिरत्न की अवधारणा का सकेत नवे सर्ग मे दूतकार्य मे सलग्न नल एव दमयन्ती के वार्तालाप प्रसङ्ग मे किया है जहाँ दमयन्ती कहती है कि मै अपने चरित्र रूपी धर्म का त्याग कर कुल मे कलङ्क नहीं लगाऊँगी, अर्थात् एक बार नल को वरण (मन से पति मान लने पर) कर लेने पर पुन इन्द्रादि देवो मे से किसी को भी वरण नहीं करूँगी। यथा-

न्यवेशि रत्नत्रितये जिनेन य स धर्म चिन्तामणिरुज्झितो यया ।
[illegible] कृते तदेव भस्म स्वकुलेस्तृत तया ।।[3]

अर्थात् जिनेन्द्र[4] या अर्हत्[5] ने जिस धर्मरूप चिन्तामणि को (रत्नत्रय) तीन रत्नो यथा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यक् चरित्र के रूप मे रखा है, उस धर्मरूपी चिन्तामणि को जिस स्त्री ने कपालधारी (शिवजी, पक्षान्तर मे कपाल धारण करने से अकिञ्चत व्यक्ति विशेष) के क्रोधाग्नि से भस्म अर्थात् कामदेव के लिए छोड दिया (कामवशीभूत होकर चरित्र का त्याग कर दिया) उस स्त्री ने अपने वश मे वही भस्म फैला दिया अर्थात् अपने कुल को दूषित कर दिया। परन्तु मै (दमयन्ती) ऐसा करके अपने पितृकुल को दूपित नहीं करूँगी। जैन दार्शनिक उमास्वामी के अनुसार यथार्थज्ञान के प्रति सच्ची श्रद्धा या आस्था का होना ही सम्यग्दर्शन है।[6] तथा यथार्थ ज्ञान बिना आस्था या श्रद्धा के प्राप्त नहीं हो सकता (श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्) और यह तो सिद्ध तथ्य है कि सम्यग्दर्शन ही मानव मे सम्यग्दृष्टि उत्पन्न करता है, जिससे स्पष्ट है कि सम्यग्दर्शन प्राप्ति होने पर ही मनुष्य समदर्शी बन सकता है। सम्यग्दर्शन को जैन दर्शन मे कर्णधार कहा गया है क्योकि इस दर्शन का उद्देश्य भी साधक को मोक्ष प्राप्ति कराना है, तथा मोक्ष के लिए (जैन धर्म एव सिद्धान्तो मे) आस्था होनी आवश्यक है। जैन ग्रथो मे सम्यग्दर्शन के प्रमुख आठ अग बताये गये है- नि शकता, नि काक्षिता, निर्विचिकित्सा, अमुद्धदृष्टि, उपवृहण स्थितीकरण, वात्सल्य तथा प्रभावना। जैन विद्वानो के अनुसार सम्यग्ज्ञान का अर्थ है जीव तथा अजीव के पार्थक्य का ज्ञान।[7] शास्त्र तथा आचार्यों के

---

1. भारतीय दर्शन-एम हिरियन्ना, पृ० १७५
2. रत्नत्रयपदवेदनीयतया प्रसिद्ध सम्यग्दर्शनादित्रितयमर्हत्प्रवचनसग्रहपरे परमागमसारे प्ररूपित "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग" स0द0स0, पृ० 61
3. नै. 9/71
4. नारायण जिनेन्द्र का अर्थ बुद्ध किया है, जब कि आचार्य मल्लिनाथ ने अर्हत । यहाँ मल्लिनाथ का अर्थ ही तर्कसगत है, क्योंकि जैन शब्द की व्युत्पत्ति 'जिन' से मानी गयी है, जिसका अर्थ है इन्द्रिय जित एव इन्हीं जिनो के उपदेशो तथा सिद्धान्तो को जैन दर्शन नाम दिया । द्रष्टव्य 9/71 नारायणी एव मल्लिनाथी टीका।
5. जैन धर्म में अर्हत् की सज्ञा दी गयी है। यथा-
सर्वज्ञो जितरागादिदोषवस्त्रैलोक्यपूजित। यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हत् परमेश्वर।। स द स ,पृ० 6
एव अर्हतो द्वारा प्रचाति होने के कारण जैन दर्शन आर्हत दर्शन भी कहलाता है।
6. तत्वार्थश्रद्धान सम्यक् दर्शनम्। तत्वार्थाधिगमसूत्र 1/3 द्रष्टव्य यशस्तिलक 2/152
7. स्वपरान्तर जानाति य स जानाति-इष्टोपदेश-33

उपदेशो को भी सम्यग्ज्ञान माना जाता है, यदि वह उपदेश मोक्ष मे सहायक हो तथा मिथ्या दृष्टि का निवारक सिद्ध हो।[1] दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि सम्यग्ज्ञान मे जीव और अजीव के मूल तत्त्वो का विशेष ज्ञान प्राप्त होता है।[2] साथ ही यह असदिग्ध तथा दोषरहित होता है। सम्यग्ज्ञान सविशेष ज्ञान होने से ही प्राप्त होता है।[3] एव इसकी प्राप्ति के लिए कर्मों का नाश होना आवश्यक है।[4] सम्यक् चरित्र अहित कार्यों तथा पाप कर्मों का वर्जन, तथा हित कार्यों का आचरण करना है।[5] जैन विद्वान्, कुण्डकुण्डाचार्य कहते है-

चारित्त खलु धम्मो धम्मो जो सो समोत्ति णिदि्दट्ठी ।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो हु समो ।।[6]

जयसेन तो चरित्र को मन की निश्चल (शात) आकृति मानते है।[7] जैन दार्शनिको की अवधारणा के अनुसार सम्यक चरित्र के द्वारा जीव अपने कर्मों से मुक्त हो सकता है, एव अपने जीवन लक्ष्य (मोक्ष)को प्राप्त कर सकता है, क्योकि कर्मों के कारण ही, बधन एव दुख प्राणी को प्राप्त होते है। सम्यक्चरित्र पचमहाव्रतो के अनुशील से ही सम्भव हो सकता है वे है अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य ओर अपरिग्रह। जैन विद्वानो ने इन पाचो को सन्यासियो के लिए बताया है एव ग्रहस्थो के लिए पहले तीन ही व्रत निधोरित किये है। मध्वाचार्य का कथन है कि स्वभावत सन्यासी के नियम अधिक कडे (कठोर) है इसलिए उन्हे महाव्रत तथा गृहस्थो के नियम को अणुव्रत कहा गया है।[8] अहिसा का प्रभाव नैषधकार के ऊपर भी देखा जा सकता है, जहाँ उन्होने हस को पकडने पर नल की निदात्मक अभिव्यक्ति को नैषधीयचरितम् मे स्थान दिया है[9] क्योकि नल ने [illegible], छल से हस को हस्तगत किया था। जैन विद्वान् कुण्डकुण्डाचार्य का कथन है कि असावधानी से कार्य करने वालो को ही हिसा का पाप लगता है। सावधान व्यक्ति से जीव का घात होने पर नहीं (जैसे आत्मरक्षार्थ जीव हिसा या कृषि कर्म मे जीव हिसा)। यथा-

---

1 एव पवयणसार पचत्थिय सग्रह किमाणिता ।
जो मयदि रागदोसे सो गाहदि दुखपरिमोक्ख।। पञ्चास्तिकाय 103

2 द्रव्य सग्रह-श्लोक-42

3 Samyagjnana means a thraugnt knowledge of the doctrines propounded in the scripture-K K Handiqui-P-535

4 द्रव्य सग्रह श्लोक - 45

5 प्रवचनसार - कुण्डकुण्डाचार्य - 1 7

6 कर्मादाननिमित्ताया क्रियाया परम शमम्। चारित्रोचितचातुर्याश्चारुचारित्रमूचिरे।। यशस्तिलक, द्वितीय भाग पृ० 269
– औदासीन्य पर प्रहुर्वृत्त सर्वक्रियोज्झितम्- वहीं पृ० 326

7 सर्व द स , पृ० 33, Outliness of Jainism, पृ 69, एव 133

8 न वासयोग्या वसुधेयमीदृशस्त्वमङ्ग। यस्या पतिरुज्झितस्थिति ।
इति प्रहाय क्षितिमाश्रिता नभ खगास्तमाचुक्रुशुरारवै खलु ।। नै 1/128
न जातरूपच्छदजातरूपता द्विजस्य दृष्टेयमिति स्तुवन्मुहु ।
अबादि तेनाथ स मानसोकसा जनाधिनाथ करञ्जरस्पृशा ।। नै 1/129
धिगस्तु तृष्णातरल भवन्मन समीक्ष्य पक्षान्मम हेमजन्मन ।
तवार्णवस्येव तुषारसीकरैर्भवेदमीभि कमलोदय कियान् ।। नै 1/130।
न केवल प्राणिवधो वधो मम त्वदीक्षणाद्विश्वसितान्तरात्मन ।
विगर्हित धर्मधनैर्निबर्हण विशिष्य विश्वासजुषा द्विषामपि ।। नै 1/131
पदे पदे सन्ति भटा रणोद्भटा न तेषु हिसारस एष पूर्यते ।
धिगीदृश ते नृपते। कुवक्रिम कृपाश्रये य कृपणे पतत्रिणि ।। नै 1/132
फलेन मूलेन च वारिभूरुहा मुनेरिवेत्थ मम यस्य वृत्तय ।
त्वयाद्य तस्मिन्नपि दण्डधारिणा कथ न पत्या धरिणी हृणीयते ।। नै 1/133

9 प्रवचनसार 1/16

मरदु वा जीवदु जीवो अजदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा ।
पयदस्स णत्थि बधो हिंसामेत्तेण समिदस्स ॥

उमास्वामी ने इन त्रिरत्नो को मोक्षमार्ग माना है।[2] सोमदेव ने यशस्तिलक मे इन त्रिरत्नो को बोधि शब्द से अभिहित किया है।[3] तथा उपमितिअवप्रपचकथा मे इन्हे जीवात्मा की तीन महौषधि माना गया है।[4] चन्द्रप्रभाचरित[5] एव धर्मशर्माभ्युदय मे भी त्रिरत्नो का वर्णन मिलता है, जिसमे धर्मशर्माभ्युदय[6] मे इन्हे मोक्ष का साधन माना गया है। मध्वाचार्य ने भी इन त्रिरत्नो का विस्तार से वर्णन करते हुए इन्हे मोक्ष का साधन माना है।[7]

नैषधकार ने जैन धर्म के सम्प्रदायो की तरफ भी सकेत किया है। नैषध के बीसवे सर्ग मे नल दमयन्ती एव उसकी सखियो के हासपरिहास वार्तालाप मे दमयती का पक्ष लेते हुए नल ने वरुण से प्राप्त वरदान का चमत्कार दिखाते हुए, दमयती की सखियो के ऊपर अजुलि से भरे जल को छिडक दिया, जिससे भीगने के कारण उनके अग झलकने लगे। नल ने दमयती से कहा कि देखो तुम्हारी दोनो सखियाँ (कला एव उसकी सखी) भीगने के कारण जैन प्रव्राजिका बन गयी है। दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि पतले वस्त्रो के भीग जाने के कारण उनके स्तनादि दृष्टिगोचर हो रहे होगे, तथा नग्नता प्रतीति के कारण वह दिगम्बर जैन प्रव्राजिका प्रतीत हो रही थीं।[8] ध्यातव्य है कि जैन सम्प्रदाय तीन भागो मे विभक्त किया जाता है दिगम्बर, श्वेताम्बर एव यापनीय किन्तु यापनीय सम्प्रदाय अब लुप्त हो चुका है। दिगम्बर आचार पालन मे अधिक कठोर है, एव श्वेताम्बर कुछ उदार। दिगम्बर सम्प्रदाय मे मुनि निर्वस्त्र रहते है, परन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदाय मे मुनि श्वेत वस्त्र धारण करते है। स्मरणीय है कि यह नियम केवल मुनियो पर ही लागू होता है, ग्रहस्थो तथा श्रावको, स्त्रियो आदि पर नहीं। तब नैषधकार ने यहाँ पर जैन प्रव्राजिकाओ (साध्वीं या अर्जिका याक्षुल्लिका का व्रत ग्रहण करने वाली स्त्रियो) को नग्न किस कारण माना और यदि यहाँ अमरकोषकार का जिन को बौद्ध मानने का[9] मत भी माना जाये, तब भी बौद्ध सम्प्रदाय मे भी नग्न

---

1 सम्यग्दर्शनज्ञानचरित्राणि मोक्षमार्ग। तत्त्वार्थाधिगम सूत्र। 1/1

2 यशस्तिलक-2/114, 157

3 उपमिति भवप्रपञ्चकथा पृ० 105, 113, 116, 140

4 उपमितिभवप्रणचकथा, पृ 105, 113, 116, 140

5 चन्द्रप्रभाचरित- 18/123-124

6 नि शेषकर्मनिर्मोक्ष स मोक्ष कथ्यते जिनै।
ज्ञान दर्शनचारित्रैरूपायै परिणामिन । भव्यस्यायमनेकाङ्गविकलैरेव जायते ।
तत्त्वस्यावगतिर्ज्ञान श्रद्धान तस्य दर्शनम् । पापारम्भनिवृत्तिस्तु चारित्र वण्यते जिनै ॥ धर्मशर्माभ्युदय 21/160-162

7 'ससरणकर्मोच्छित्तावुद्यतस्य श्रद्दधानस्य ज्ञानवत पापगमनकारणक्रियानिवृत्ति सम्यक्चारित्रम्। तदेतत् सप्रपञ्चमुक्तमर्हता॥ सर्वथावद्ययोगाना त्यागश्चारित्रमुच्यते। कीर्तित तदहिसादिव्रतभेदेन पञ्चधा। अहिसासूनृतास्तेयब्रह्मचर्य्यापरिग्रहा। न यत् प्रमादयोगेन जीवितव्य परोपणम्। चराणा स्थावराणा च तदहिसाव्रत मतम्। प्रिय पथ्य वचस्तथ्य सुनृत व्रतमुच्यते। तत्त्यमपि नो तथ्यमप्रिय चाहित च तत्॥ अनादानमदत्तस्यास्तेयव्रतमुदीरितम्। बाह्य प्राणा नृणामर्थो हरता त हता हि ते॥ दिव्यौदयिककामाना कृतानुमतकारितै। मनोवाक्कायतस्त्यागो ब्रह्माष्टादशधा मतम्। 24॥

– सर्वभावेषु मूर्छायास्त्याग स्यादपरिग्रह। यदसत्स्वपि जायेत मूर्छया चित्तविप्लव। भावनाभिर्भावितानि पञ्चभि पञ्चधाक्रमात्। महाव्रतानि लोकस्य साधयन्त्यव्यय पदम्। इति। भावनापञ्चकप्रपञ्चन च प्ररूपितम् "हास्यलोभभयक्रोधप्रत्याख्यानानैर्निरन्त रम्। आलोच्य भाषणेनापि भावयत् सूनृत व्रतम्॥ इत्यादिना। एतानि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मिलितानि। मोक्षकारण न प्रत्येक यथा रसायनसाधनानि सम्भूय रसायनफल साधयन्ति न प्रत्येकम् न प्रत्येकम्। स द स पृ 63 64

8 तेनापि नापसर्पन्त्यौ दमयन्तीमय तत। हर्षेणादर्शयत् पश्य नन्विमे तन्वि मे पुर॥ नै 20/128
क्लिन्नीकृत्याम्भसा वस्त्र जैनप्रव्रजितीकृते। सख्यौ सक्षौमभावेऽपि निर्विघ्नस्तनदर्शने॥ नै 20/129

9 सर्वज्ञ सुगतो बुद्धो धर्मराजस्तथागत। समन्तभद्रो भगवान्मारजिल्लोकजिज्जिन। अमरकोष 1/1/13
षडभिज्ञो दशबलोऽद्वयवादी विनायक। मुनीन्द्र श्रीघन शास्ता शास्ता मुनि। अमरकोष 1/1/14

रहने का शास्त्रीय विधान नहीं मिलता, तब नैषधकार का यह कथन किस आधार पर हो सकता है? विद्वानो को इसका विचार अवश्य करना चाहिए। मध्वाचार्य ने जैन सन्यासियो के आचरण का वर्णन करते हुए कहा कि उनके स्नानादि न करने से देह मे सदा मैल (धूल) भरा रहता है। भिक्षान्न भोजन, केशलुञ्चन, हाथ मे छोटे-छोटे जीवो को उडाने के लिए पिच्छिका रखना, जलपात्र रखना, खडे-खडे भिक्षा देने वालो के घर मे भोजन करना दिगम्बर जैन सन्यासियो का अनुष्ठान (कर्म) है।[1] परन्तु आज वास्तव मे इनके आचरण की मीमासा करने की जरूरत है, क्योकि जैन धर्म मे इतने कठोर नियमो के परिपालन का ही परिणाम है कि यह अपने बहुत अनुयायी नहीं बना सका। स्त्रियो के प्रति इनकी नकारात्मक सोच अछूत मानने का परिणाम यह हे कि जैन आश्रमो मे व्यभिचार, की घटनाए सम्भव होती है एव जन्म से ही जैन धर्म मे कन्याओ को दीक्षा दिया जाना (साध्वी बनाना) भी उपर्युक्त परिणाम मे साधन बनता है। नि सदेह जैन सन्यासी एव साध्वी, जैन धर्मानुयायियो की पूज्य एव जैन धर्म के प्रचार प्रसार के आधार है, परन्तु जैन धर्म यदि मध्यममार्ग अपनाने की अपील करता, तब नि सदेह आज उसका रूप दूसरा होता।

यदि जैन दशन को साराश रूप मे देखा जाये, तो यह दर्शन प्रमाणत्रय (प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द) को मानता है। मोक्ष को मानने की अवधारणा भी इस दर्शन मे देखी जाती है किन्तु इसका रूप वेदान्तादि दर्शनो से भिन्न है। यह अनीश्वरवादी दर्शन है लेकिन जिनो या तीर्थंकरो की यह ईश्वर रूप मे पूजा करने का विधान करता है। यह दर्शन वस्तुवादी है, क्योकि यह ब्राह्य जगत के अस्तित्व को मानता है, बहुसत्तवादी भी है, क्योकि यह अनेक तत्त्वो को मानता है। इसके प्रमुख सिद्धान्त स्याद्वाद एव अनेकान्तवाद है, जिसके कारण यह सापेक्षवादी दर्शन है। साथ ही यह ससार को नित्य एव अनित्य दोनो मानता है, द्रव्यो के गुण परिवर्तनशील नहीं है इस दृष्टि से यह ससार को नित्य मानता है एव द्रव्यो के पर्याय बदलते रहते है इस कारण इनकी दृष्टि मे ससार अनित्य तथा परिवर्तनशील भी है। यह आत्मा को भी मानता है लेकिन उसमे मात्रात्मक भेद की' परिगणना करता है। पुनर्जन्म की अवधारणा भी इस दर्शन को मान्य है। इनकी मान्यता है कि सचित कर्मो के कारण जन्म पुनर्जन्म के चक्र मे पडने से जीव अनेक शरीर धारण करता है। उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि नैषधकार ने जैन दर्शन के किसी सिद्धान्त की मीमासा नैषध मे नहीं की, हॉ जैन धर्म की कुछ विशेषताओ की चर्चा अवश्य की है। यह तो सर्वविदित ही स्मरणीय है कि जैन दर्शन के प्रवर्तक महावीर (जैन) माने जाते है।

बौद्ध धर्म

बौद्ध धर्म एव दर्शन के प्रवर्तक महात्मा बुद्ध माने जाते है। इनके उपदेश ही बौद्ध दर्शन के आधारशिला है। नैषधकार ने अपने ग्रथ खण्डनखण्डखाद्य मे बौद्ध दर्शन के सिद्धान्तो का खण्डन तो अवश्य किया है किन्तु महात्मा बुद्ध को उन्होने दोनो ग्रथो नैषध एव खण्डनखण्डखाद्य मे सम्मान का पात्र समझा है।[2] साथ ही बुद्ध का जितेन्द्रिय कहते हुए उन्हे, ईश्वरावतार[3] भी माना है। ऐतिहासिक दृष्टि से छठी

---

1 सरजोहरणा भैक्षभुजो लुञ्चितमूर्द्धजा । श्वेताम्बरा क्षमाशीला नि सङ्गा जैन साधव ।।
लुञ्जिता पिच्छिकाहस्ता पाणिपात्रादिगम्बरा । ऊर्द्धाशिनो गृहे दातुर्द्वितीया स्युर्जिनर्षय ।
भुङ्क्ते न केवल न स्त्रीं मोक्षमेति दिगम्बर । प्राहुरेषामय भेदो महान श्वेताम्बरै सह।।57।। स द स पृ० 83

2 तदुक्त भगवता लङ्कावतारसूत्रे-ख0 खा0 7 पृ०, 62
- सुगत एव विजित्य जितेन्द्रिय त्वदुरुकीर्तितनु यदनाशयत्।
तव तनूमवशिष्टवतीं तत समिति भूतमयीमहरद् हर । नै० 4/80 एव 12/87

3 सुगत एव विजित्य जितेन्द्रियस्त्वदुरुकीर्तितनु यदनाशयत्। नै -4/80 पूर्वार्द्ध
एक चित्ततितिरद्वयवादिन्न त्रयीपरिचितोऽथ बुधस्त्वम्। पाहि मा विधुतकोटिचतुष्क पञ्चवाणविजयी षड्भिज्ञ ।। नै 21/87
तत्र मारजयिनि त्वयि साक्षात्कुर्वति क्षणिकतात्मनिषेधौ। पुष्पवृष्टिरणतत्सुरहस्तात्पुष्पशस्त्रशरसन्ततिरेव। नै० 21/88
तावके हृदि निपात्य कृतेय मन्मथेन दृढधैर्यतनुत्रे। कुण्ठनादतितमा कुसुमाना छत्रमुखतैव शराणाम्।। नै 21/89
यत्तव स्तवविधौ विरिञ्चिरास्ये चातुरीं चरति तच्चतुरास्य। त्वय्यशेषविदि जाग्रति शर्व सर्वविद्ब्रुवतया शितिकण्ठ ।। नै 21/90

शताब्दी ईसापूर्व से ग्यारहवीं शताब्दी तक बौद्ध धर्म एव दर्शन का समय माना जा सकता है, दूसरे शब्दो मे विम्बसार से लेकर बगाल के पाल वश तक यह धर्म पल्लवित रहा, किन्तु नैषधकार के समय बारहवीं शताब्दी तक इस धर्म का ह्रास होना प्रारम्भ हो चुका था, इस धर्म की उत्पत्ति भारत मे हुई, लेकिन इसका प्रचार प्रसार विश्व के अनेक भागो मे हुआ। भारत मे बारहवीं शताब्दी से बीसवीं शताब्दी के अतिम चरण तक बौद्ध धर्म अपनी अतिम श्वासे ले रहा था, किन्तु आज पुन भारत मे इस धर्म के अनुयायिओ की सख्या उसी तरह से बढने लगी है, जैसे कि महात्मा बुद्ध के समय हुई थी, अन्तर सिर्फ इतना है कि आज बौद्ध धर्म का केन्द्र बिन्दु डॉ० भीमराव अम्बेडकर को माना जा रहा है एव महात्मा बुद्ध तथा उनके उपदेशो को बाह्यावरण रूप मे रखा जा रहा है। बुद्ध की निर्वाण प्राप्ति के बाद उनके उपदेशो मे वाद विवाद के चलते बौद्ध धर्म मे अनेक सम्प्रदायो का जन्म हुआ एव अकेले भारत मे उनकी सख्या अठारह तक पहुँच गयी।[1] यथा- स्थविरवाद, महीशासक, सर्वास्तिवादी, हैमावत, वात्सीपुत्रीय, धर्मगुप्तिक, काश्यपीय, महासाधिक आदि। किन्तु इन सभी सम्प्रदायो को दो मुख्य सम्प्रदायो के अन्तर्गत मानने मे स्वय महात्मा बुद्ध तथा अन्य विद्वानो की सहमति है और वे है हीनयान एव महायान।[2] हीनयान को श्रावकयान भी कहा जाता है तथा महायान को एकयान, अग्रयान, बोधिसत्त्वयान, एव बुद्धयान भी कहते है।[3] हीनयान व्यक्तिगत निर्वाण पर जोर देता है, जबकि महायान समष्टि के निर्वाण को आदर्श मानता है, परन्तु तथागत (बुद्ध) का अभिप्राय प्रत्येक श्रावक (साधक) को सम्यक् बुद्ध बनने पर जोर देना था[4] जिसको महायान सम्प्रदाय ने अपना आधार माना है। हीनयान के दो सिद्धान्त सौत्रान्तिक एव वैभाषिक माने जाते है जबकि महायान के योगाचार (विज्ञानवाद) एव माध्यमिक (शून्यवाद)।[5] ये चारो ही सम्प्रदाय अनीश्वरवादी है। नैषधकार ने तीन सम्प्रदायो का वर्णन नैषध के दशवे सर्ग मे सरस्वती के वर्णन प्रसङ्ग मे किया है, जहॉ वह कहते है-

या सोमसिद्धान्तमयाननेव शून्यात्मतावादमयोदरेव ।
विज्ञानसामास्त्यमयान्तरेव साकारता सिद्धिमयारिवलेव ।।[6]

अर्थात् वह (सरस्वती देवी) मानो सोमसिद्धान्त (कापालिक दर्शन, पक्षान्तर मे पूर्ण चन्द्र) रूप मुखवाली, शून्यतावाद (माध्यमिक दर्शन, पक्षान्तर मे-अभाववाद) रूप उदरवाली (कृशोदरी) विज्ञान सामस्त्य (निराकार विज्ञानमात्रवादी बाह्यालापी योगाचार, पक्षान्तर मे विशिष्ट ज्ञान) रूप चितवाली और साकरता सिद्ध (साकारज्ञानवादी सौत्रान्तिक ज्ञान, नील पीतादिरूपता से सिद्ध पक्षान्तर मे सुन्दर आकृति) रूप सम्पूर्ण अवयवो वाली थी। या वह अतीव सुन्दरी थी।[7] सोम सिद्धान्त कापालिक दर्शन के अन्तर्गत परिगणित

---

1 Pudnistic Philosophy — A B Kaith- P , 149-50

2 अहमपि सारिपुत्र सत्वाना नानाधात्वाशयानामाश विदित्वा धर्मं देशयामि कमेव यानमारभ्य सत्वाना धर्मं देशयामि यदिद बुद्धयान । सद्धर्मपुण्डरीक- पृ० 32

3 बौद्ध धर्म का विकास- डॉ0 जी0सी0 पाण्डे -पृष्ठ-302।

4 उक्त भगवता श्रीमाला सूत्रे। श्रावको भूत्वा प्रत्येक बुद्धो भवति पुनश्च बुद्ध इति। सूत्रालकार, पृ० 70

5. चतु प्रस्थानिका बौद्धा ख्याता वैभाषिकादय। अर्थो ज्ञानान्वितो वैभाषिकेण बहु मन्यते। सौत्रान्तिकेन प्रत्यक्षग्राह्योऽर्थो न बर्हिमतः। आकारसहिता बुद्धियोगाचारस्य सम्मता। केवला सविद स्वस्था मन्यन्ते मध्यमा पुन। रागादिज्ञानसन्तानवासनाच्छेद सम्भवा। चतुर्णामपि बौद्धाना मुक्तिरेषा प्रकीर्तिता। सर्व0 द0 स0 पृ० 46

6 नै० 10/88

7 चन्द्रानना, अतिकृशोदरी, सर्वविज्ञानमयी अतिसुन्दरी चेति भाव। नै 18/88 नारायण। "शून्यात्मतावादो माध्यमिकाख्यबौद्धविशेषदर्शन तन्मयमुदर यस्या सा तथोक्तेव। अपि च अस्या उदर नास्तीति शून्यात्मतया यो वाद कथन तन्मय तद्विषय उदर यस्या सेवेति व्यज्यते। अतिकृशोदरीति तात्पर्यम्। विज्ञानस्य सामस्त्य साकल्य तन्मय गोघटादिक सर्वमेव विज्ञानमिति योगाचाराख्य बौद्धविशेषदर्शन तन्मयमित्यर्थ अन्तर चित्त यस्या सा तया भूतेव। अन्यच्च विज्ञान शिल्पशास्त्रविषयकज्ञानस्य सामस्त्य साकल्यं तन्मय तद्व्याप्तमन्वन्तर मनो मस्या सेवेति ध्वन्यते। तथा साकारतासिद्धि विज्ञानाकारनुमेयक्षणिक बाह्यार्थ इति सौत्रान्तिकाज्ञानबौद्धविशेषदर्शन तन्मयम् अखिल सर्वमङ्गप्रत्यङ्गादिक यस्या सा तथाविधेव। परञ्च साकारतासिद्धिमय सौन्दर्यसम्पत्तिप्रचुरम् अखिलमङ्ग यस्या सा तथोक्तेवेति सा सूच्यते। नै० 10/87 जयन्ती टीका एव 10/88 मल्लिनाथी एव नारायणी टीका भी द्रष्टव्य।

होता है। परन्तु यहॉ बौद्ध दर्शन के सन्दर्भ इसकी प्रासगिता असमीचीन होते हुए भी सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि इसका रहस्य "पश्यामि योगाञ्जनशुद्धदर्शनो जगन्मिथोभिन्नमभिन्नमीश्वरात्"[1] मे छिपा है अर्थात् इस सिद्धान्त की मान्यता है कि मेरा (शैव उपासक योगीका) नेत्र योग रूपो अञ्जन से शुद्ध है और मे आपस मे भेदयुक्त जगत को भी ईश्वर से अभिन्न देखता हूँ, जैसे अँगूठी और ककण मे भेद होने पर भी दोनो सुवर्ण से अभिन्न होते हे। ध्यातव्य है कि उपर्युक्त प्रसग ने नैषधकार मे बौद्ध दर्शन के तीन सिद्धान्तो का निर्देश किया है, शून्यात्मवाद या माध्यमिको का शून्यवाद, योगाचार का विज्ञानवाद एव सौत्रान्तिको का साकारता सिद्ध या साकारवाद (ब्रह्मानुमेयवाद) जब कि बौद्ध दर्शन के चार सम्प्रदाय पूर्व मे गिनाये जा चुके है। इस रूप मे श्रीहर्ष अद्वयवज्र से प्रभावित दिखते है, क्योकि अद्वयवज्र (११वीं शताब्दी) ने अपने ग्रथ तत्त्वरत्नावली मे योगाचार, माध्यमिक, एव सौत्रान्तिको को महायान के अन्तर्गत माना है[2] जब कि महायान के अन्तर्गत योगाचार एव माध्यमिक आते है एव हीनयान के अन्तर्गत सौत्रान्तिक एव वैभाषिक। तब नैषधकार ने वैभाषिक को छोडकर इन तीनो का विवरण किस कारण दिया है? यह विद्वज्जनो द्वारा शोध का विषय है। हॉ, यदि सर्वास्तिवाद के सदर्भ मे भामतीकार के कथन 'यद्यपि वैभाषिकसौत्रान्तिकयोरवान्तरमतभेदोऽस्ति तथापि सर्वास्तितायामस्ति सप्रतिपत्तिरित्येकी कृत्योपन्यास[3] के आधार पर वैभाषिको की उपस्थिति भी सौत्रान्तिको के साथ साथ मान ली जाय तो और बात है।

शून्यवाद (माध्यमिक) की मान्यता है कि यह ससार शून्य है। बाह्य तथा आन्तरिक, सभी विषय असत् है। इस मत मे शून्य ही एक मात्र तत्त्व है जो न सत् है न असत् है, और न सत् और असत् दोनो है और न दोनो ने भिन्न है,[4] अर्थात् इन चारो कोटियो से विलक्षण तत्त्व है जिसे माध्यमिको ने परमतत्व माना है^ एव शून्य को परमतत्व मानने के कारण इस मत को शून्यवाद कहते है! इस शून्यवाद को बौद्धो का अद्वयवाद या अद्वैतवाद भी कहा जाता है क्योकि बुद्ध को अद्वयवादी भी कहा जाता है[5] एव श्रीहर्ष भी बुद्ध को अद्वयवादी मानते है।[6] स्पष्ट है कि यह सिद्धान्त किसी पदार्थ का स्वभाव (यथार्थ सत्ता) नहीं मानता है। इस सिद्धान्त का मानना है शून्य ही जगत का उपादान है, एव अन्त मे जगत शून्य मे ही परिणत हो जाता है। हम घट, पट एव मनुष्य आदि का जो कुछ अनुभव करते है, वह सब माया है। अविद्या (माया) के नाश से इन सब वस्तुओ का ध्वश हो जायेगा।[7] बाद मे जगत और "मै" (मनुष्य) दोनो ही शून्यता मे परिणत हो जायेगे। "मै" शून्यतामात्र हूँ, इस ज्ञान के उत्पन्न होने से निर्वाण प्राप्ति होती है। नार्गाजुन ने भी, जो इस सिद्धान्त के प्रधान सस्थापक थे, कहा है कि जो प्रतीत्यसमुत्पाद है, वही शून्यता है, और वही मध्यमप्रतिपदा है।[8]

श्रीहर्ष ने शून्यवाद का सदर्भ सरस्वती वर्णन मे दिया है, जहॉ वह उनके उदर को माध्यमिको के सिद्धान्त शून्यवाद से निर्मित बताते हैं।[9] पुन· बाइसवें सर्ग में नल एव दमयन्ती द्वारा सन्ध्या वर्णन प्रसग मे

---

1 प्रबोधचन्द्रोदय (नाटक) से उद्धृत

2 अद्वयवज्रसग्रह – गायकवाड ओरयिन्टल सिरीज, पृ० 14

3 शाङ्करभाष्य, भामती टीका 2/2/18

4 न सन्नासन्नसदसन्नचाप्यनुभवात्मकम् ।
चतुष्कोटि विनिर्मुक्त तत्तव माध्यमिकाविदु ।। माध्यमिक कारिका, 1/7 एव बोधिचर्यावतारपजिका, पृ० 359

5 भिन्नापि देशनाभिन्ना शून्यता द्वयलक्षणा-भामती टीका, ब्रह्मसूत्र 2/2/18

6 एकचित्ततितिरद्वयनादिन नै 21/ 97 पूर्वार्द्ध अद्वयवादी विनायक अमरकोश 1/1/14

7 एव च न निरोधोऽस्ति न च भावोऽस्ति सर्वदा ।
अजातमनिरुद्ध च नस्तस्मात्सर्वमिद जगत ।। बौधिचर्यावतार 9/150 एव 9/1/44 149

8 य प्रतीत्यसमुत्पाद शून्यता त प्रचक्ष्महे । सा प्रज्ञप्तिरूपादाय प्रतिपत् सैव मध्यमा ।। माध्यमिक कारिका, 28/18

9 शुन्यात्मतावादमयोदरेव नै 10/88 पूर्वार्द्ध।
– शून्यात्मवादो माध्यमिकदर्शन तन्मय तद्रूपमुदर यस्या सेव (आत्मानो न सन्तीति शून्यात्मतावादो बौद्धसिद्धान्त।10/88, नारायण
– तथा आत्मानो न सन्तीतिवाद शून्यात्मतावाद माध्यमिकबौद्धविशेष दर्शन, तन्मय तदेव उदर यस्या सा तादृशीव, अथ च शून्यात्मता निस्वरूपता तद्वादो नास्तिवाद , तन्मयमुदर यस्या सा अतिकृशोदरीत्यर्थ। नै० 10/88, मल्लिनाथ

शून्यवाद की विषय वस्तु को प्रतिपादित करते हुए नैषधकार लिखते है कि जिस प्रकार जागरण समयात्मक दिन मे (सूर्य प्रकाश से) अदृष्ट ताराओ को आकाशपुष्प (ये कुछ नहीं है ऐसा) दिखलाती हुई यह रात्रि शून्यमार्ग मे स्पष्ट दिखायी पडते हुए भी आकाश को (अधकाराच्छन्न होने से) जिस प्रकार असत्य बतलाती है उसी प्रकार सम्यग्ज्ञान होने के समय मे बाधित (भ्रान्तिकारण नाश होने से उत्पत्ति शून्य) नक्षत्र रूपी आकाश पुष्पो का दृष्टान्त देती हुई यह बौद्ध योगिनी (योग द्वारा सिद्धि को प्राप्त की हुई स्त्री) ज्ञानभिन्न सब पदार्थ को शून्य कहने वाले बौद्धो या शून्यवादियो के रहस्य को जानती हुई स्पष्ट दृष्यमान ससार को भी असत्य कहती है।[1] शून्यवाद की मान्यता है कि आकाशपुष्प के समान यह जगत भी अयथार्थ है। ज्ञान ही बाह्य रूप मे घटपटादि रूप से प्रतीत होता है। ज्ञान से भिन्न घटपदादि रूप कोई भी पदार्थ नहीं है, सब कुछ असत्य है। ठीक इसी सिद्धान्त को मानने वाली योगिनी उपर्युक्त प्रसग मे ससार को मिथ्यारूप मे वर्णित करना चाहती है, क्योकि जिस प्रकार भ्रान्ति के कारण आकाश पुष्पो का होना प्रतिभासित होता है(जबकि यथार्थ मे उनकी सत्ता है ही नहीं) उसी प्रकार भ्रान्ति रहने पर ही स्थावरजगमरूप यह ससार प्रतीत होने लगता है,[2] ठीक यही स्थिति आचार्य शकर के माया या अविद्या सिद्धान्त मे दृष्टिगोचर होती है। अवधेय है कि शून्यवाद सम्प्रदाय का उदय हीनयान के दोषो को दूर करने एव बुद्धोपदिष्ट अद्वैतवाद की पुन प्रतिष्ठा के लिए हुआ था, क्योकि हीनयानियो ने प्रतीयसमुत्पाद को वास्तविक कार्य कारणवाद मान लिया था एव इसके आधार पर उन्होने सार्वभौम क्षणभगवाद की स्थापना की, जिसका माध्यमिको ने खण्डन किया।

बौद्धो के सिद्धान्त क्षणिकवाद, अनित्यवाद[3] या क्षणभगवाद की मान्यता है कि जो सत् है, वह क्षणिक है।[4] जिसकी उत्पत्ति होती है उसका विनाश भी अवश्यम्भावी है, जो उत्पत्ति के तुरन्त बाद नष्ट हो जाता है। वह क्षणिक है। उत्पाद का अर्थ इस दर्शन मे कार्य क्षण का कारण-क्षण के अनन्तर विद्यमान होना एव विनाश[5] का अर्थ कारण क्षण का कार्य क्षण के समय विद्यमान न रहना माना जाता है। उत्पाद और विनाश एक ही वस्तु के दो रूप है और दोनो ही क्षणभगवाद की सिद्धि करते है क्योकि यह दर्शन उत्पत्ति तथा विनाश मे आनन्तर्य नियम मानता है[6] अर्थात् कारण और कार्य समकालीन नहीं है क्योकि कारण प्रथम क्षण मे और कार्य द्वितीय क्षण मे उत्पन्न होता है। इनके अनुसार कारण की सत्ता मात्र से कार्य अवश्य उत्पन्न होता है। क्योकि सत्ता का अर्थ ही अर्थक्रियासामर्थ्य या कार्योत्पादव्यापार है और परमार्थ सत् का लक्षण अर्थक्रिया सामर्थ्य है।[7] बुद्ध भी सभी वस्तुओ को परिवर्तनशील एव नाशवान मानते थे। उनका कथन है कि जितनी वस्तुए हैं सभी की उत्पत्ति कारणानुसार हुई है, ये सभी वस्तुएँ सब तरह से अनित्य हैं[8], इस रूप मे बुद्ध अनित्यवाद का प्रतिपादन करते दिखते है वहीं उनके अनुयायी क्षणिकवाद का,

---

1 प्रबोधकालेऽहनि बाधितानि तारा खपुष्पाणि निदर्शयन्ती।
निशाह शून्रुध्वनि योगिनीय मृषा जगदृष्टमपि स्फुटाभम्।। नै 22/23

2 सर्वदर्शन सग्रह, 31, 45 पृ 28-36

3 क्षणिकवाद के विस्तृत विवेचन हेतु द्रष्टव्य, बौद्ध धर्म दर्शन- आचार्य नरेन्द्र देव, पृ 238-241

4 यत्सतत्क्षणिक यथा जलधर सन्तश्च भावा अमी सत्ता शक्तिरिहार्थकर्म्मणि मित्ते सिद्धेषु सिद्धा न सा। नाप्येकैव विधान्यथा परकृतेनापि क्रियादिर्भवेद् द्वेधापि क्षणभङ्गसगतिरत साध्ये च विश्राम्यति। (24)। सर्व द0 स0 पृ० 24

5 यो हि भाव क्षणस्थायी विनाश इति गीयते। तत्त्व0 स0 का0 375

6 उत्पादानन्तरास्थायि स्वरूप यच्च वस्तुन। तदुच्यते क्षण सोऽस्ति यस्य तत् क्षणिकम् मतम्।।
असत्यप्यर्थभेदे च सोऽस्त्यस्येति न बाध्यते। इच्छा रचितस के तमात्रभावि हि वाचकम्।। तत्व स की 388/389

7 अर्थक्रियासामर्थ्यलक्षण परमार्थ सत् - न्याय बिन्दु 1/15

8 तस्मादनष्टात् तद्धेतों प्रथमक्षणभाविन। कार्यमुत्पद्यते शक्ताद् द्वितीय क्षण एव तु।। वही, 512
सत्तैव व्याप्ततिस्तस्या कार्योदयो यत। य आनन्तर्यनियम सैवापेक्षाऽभिधीयते।। वही, 521
एव द्रष्टव्य - प्रमाणवार्तिक, I भाग, पृ० 270 -282, II भाग पृ० 284-285, III भाग पृ० 110

क्योकि उनके अनुसार किसी भी वस्तु का अस्तित्व कुछ काल तक भी नहीं रहता, बल्कि एक ही क्षण रहता है। उनकी मान्यता मे नदी के प्रवाह का जल एक क्षण दूसरा, तो दूसरे क्षण और रहता है, परन्तु एक प्रवाह दूसरे प्रवाह को जन्म देता है। यह प्रवाह नित्यता है, हम भ्रमवश इसे शाश्वत मानते है। साराशत क्षणभगवाद स्वय प्रतीत्यसमुत्याद से सिंद्ध होता है एव अनित्यवाद की स्थापना करता है और नित्यवाद तथा शाश्वतवाद का विरोध करता है। श्रीहर्ष ने क्षणभगवाद का विवरण नैषध मे दो स्थलो पर दिया है, प्रथम सत्रहवे सर्ग मे चार्वाक प्रतिनिधि द्वारा बौद्धो के सिद्धान्त को अपने पक्ष मे मानते हुए वेदो के खण्डन मे, जहाँ वह कहता है कि बुद्ध अनिवर्चनीय महिमा वाला हुआ, क्योकि वेद के रहस्य का अर्थात् उसकी प्रामाणिकता को नष्ट करने के लिये सत्त्व के कारण ससार अनित्य है, यह कहा।[1] अन्यत्र इक्वीसवे सर्ग मे बुद्धावतार रूप ईश्वर की अर्चना प्रसग मे क्षणिकवाद का प्रतिपादन करते हुए नैषधकार ने बुद्ध को षड्भिज्ञ (दिव्यचक्षु श्रोत्र, परचित्तज्ञान, पूर्वनिवास का अनुसरण आत्मज्ञान, आकाशगमन या छै कामव्यूह सिद्धियो का ज्ञाता, अथवा छै पारमिताओ- यथा, ज्ञान, शील दान[2] क्षमा, वीर्य, धन और प्रज्ञा या अविद्या आदि पचक्लेशो तथा अणिमादि छै सिद्धियो का ज्ञाता) माना।[3] साथ ही यह भी अभिहित किया कि उस बुद्धावतार मे कामदेव को जीतने वाले आपने जिस समय 'सर्वक्षणिक' के सिद्धान्त पर अत्मसत्ता के निषेध का साक्षात् ज्ञान किया, उस समय देवो ने आकाश से पुष्प वृष्टि की। यथा-

तत्र मारजयिनि त्वयि साक्षात्कुर्वति क्षणिकात्मनिषेधौ ।
पुष्पवृष्टिरपतत्सुरहस्तात्पुष्पशस्त्रशरसततिरेव ।।[4]

स्पष्ट है कि यहाँ बौद्धो के क्षणिकवाद के साथ-साथ अनात्मवाद का भी प्रसग नैषधकार रखना चाह रहे थे। बौद्धो के अनात्मवाद सिद्धान्त की मान्यता है कि सर्व अनात्मम्। अर्थात् वे इस मत को नहीं मानते कि आत्मा नित्य है, ध्रुव है, अजर, अमर है, वह आत्मा को क्षणिक विज्ञानो का प्रवाह मात्र परिवर्तनशील मानते है। (इनका यह अनात्मवाद अनत्तवाद भी कहलाता है। सयुक्त निकाय, विशुद्धिमग्ग एव मज्झिमनिकाय मे इस सिद्धान्त का विशिष्ट रूप से वर्णन प्राप्त होता है।)[5]

इस दर्शन मे पचस्कन्धो का समुदाय अर्थात् रूप, वेदना, सज्ञा, सस्कार और विज्ञान पाचो का समुदाय ही आत्मा कहलाता है। इस प्रकार बुद्ध पारमार्थिक नित्य आत्मा का तो निषेध करते है किन्तु अनित्य व्यावहारिक आत्मा को स्वीकार करते है। व्यक्ति की सत्ता है, परन्तु व्यक्ति पच स्कन्धो का समुदाय है, इससे भिन्न कोई नित्य, अविनाशी, आत्मा नहीं, जिस प्रकार रथ के अनेक अगो को मिलाकर हम उसे

---

1 क ।।पि बोधिरात्वे । जात सत्त्वेन हेतुना । यद्वेदगर्मभेदाय जगदे जगरिथरग्।। नै 17/37

– यत् सत् तत् क्षणिकम् 'इति कारणेन, जगत इद विश्वम्, स्थिर क्षणिकम्, इति जगदे गदितम्। अय भाव जगत क्षणिकत्त्वे सिद्धे आत्मनोऽपि जगदन्तर्गततया क्षणिकत्त्व सिद्धमेव, ततश्च येनात्मना पाप कृत तस्यात्मन क्षणोत्तर नाशात् कथ तस्य फल भोगसम्भव। नै 17/37 मल्लिनाथ एव 17/37 नारायणी टीका भी द्रष्टव्य

2 दान पारिमिता का वर्णन देव नारद सवाद में नैषधकार ने किया है। यथा -
तद्भुजादतिवितीर्णसपर्याद्द्युद्रुमानापित विवेद मुनीन्द्र ।
स्व सहस्थिति सुशिक्षित्या तान्दानपारमितयैव वदान्यान्।। नै० 5/11

3 एकचित्ततितिरद्वयवादिन्नत्रयीपरिचितोऽथबुधस्त्वम् ।
पाहि मा विधुतकोटिचतुष्क पञ्चबाणविजयी षडभिज्ञ ।। नै 21/87 एव द्रष्टव्य नै 2'/37 नारायणी तथा मल्लिनाथी एव जयन्ती टीका।

4 नै० 21/88

5 यथा हि अग सम्भार' होति सद्दौ रथौ इति। एव भन्धेसु सन्तेसु होति सत्तोनि सम्मुति ।।
सयुक्त निकायएसक नामरूप च उमो अञ्ञअनिस्सिता ।
एकस्मि भिज्जमानस्मि उमो भिज्जन्ति पक्चया ।। मज्झिम निकाय 1/1/2

आकार ज्ञात वस्तु के अनुसार ही होता है, एव ज्ञान प्राप्ति के चार प्रयत्न है आलम्बन, समनन्तर अधिपति ओर सहकारी प्रत्यय। इनकी मान्यता है कि चित्त तथा बाह्य जगत दोनो की सत्ता हे, क्योकि यदि बाह्य वस्तुओ की सत्ता न होती, तो हमे उनकी प्रतीति कैसे सम्भव होती। जब हमे घट का प्रत्यक्ष होता है, उस समय घट हमारे बाहर होता है, और ज्ञान अन्दर, इसका स्पष्ट अनुभव भी होता है। इस प्रकार यह बाह्य पदार्थो का ज्ञान प्रत्यक्ष न मानकर अनुमान से प्राप्त मानते है, इसी कारण बाह्यानुमेयवादी कहे जाते है। इन्द्रियसवेदन द्वारा हमारे मानस पर अपनी छाप छोडते है, हमे प्रत्यक्ष इन्हीं चित्रो का होता है जिनके आधार पर हम मूल पदार्थो का अनुमानकर उनका ज्ञान प्राप्त करते है।[1] नैषधकार द्वारा सरस्वती के शरीर का सर्वाग चित्रण करने के बाद साकारवाद से उनके रूपराशि या सर्वागो का ज्ञान अनुमान से ही हो सकता था, या यह कह ले कि सरस्वती के सम्पूर्ण अवयवो के द्वारा ज्ञान ही आकार को प्राप्त हुआ था। अत इस सदर्भ मे श्रीहष का यह विवरण सर्वथा उचित है।

स्मरणीय है कि दार्शनिक दृष्टि से बाह्यानुमेयवाद के साथ-साथ अनित्यवाद, अनात्मवाद और अनीश्वरवाद[2] हीनयान के सिद्धान्त है। बौद्ध अनीश्वरवादी भी है क्योकि यह ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानता किन्तु अनन्तर मे इस दर्शन मे महात्मा बुद्ध एव तारा देवी की पूजा की परम्परा इस दर्शन के अनुयायियो ने भी प्रारम्भ कर दी थी। नैषधकार ने भी इस तथ्य का निदर्शन किया है जिससे प्रतीत होता है कि बारहवीं शताब्दी मे यह परम्परा विद्यमान थी। बाइसवे सर्ग मे ऐसे बौद्ध उपासको की सन्ध्या वर्णन प्रसग (के पक्षान्तर) मे श्रीहर्ष ने प्रशसात्मक अभिव्यक्ति की है।[3] सक्षेप मे बौद्धो के मुख्य सिद्धान्तो को निम्न रूप मे रख सकते है। यथा –

मुख्यो माध्यमिको विवर्तमखिल शून्यस्य मेने जगद् योगाचारमते तु सन्ति मतयस्तासा विवर्तोऽखिल।
अर्थोऽस्ति क्षणिकस्त्वसावनुमितो बुद्ध्येति सोत्रान्तिक प्रत्यक्ष क्षणभगुर च सकल वैभाषिको भाषते ।।[4]

श्रीहर्ष ने बौद्ध दर्शन मे प्रख्यात पारमिताओ मे दानपारमिता का भी सकेत नैषध के तृतीय सर्ग मे देवऋषि नारद के इन्द्रपुरी पहुॅचने के क्रम मे दिया है।[5] महायानियो के अनुसार जो बुद्धत्व की प्राप्ति के लिये यत्नवान है, अर्थात् जो बोधि पद प्राप्ति का इच्छुक है, उसे षट्पारमिताओ को ग्रहण करना चाहिए। दानशीलादि गुणो मे जिसने पूर्णता प्राप्त की है उसके लिये कहा जाता है कि इसने दान शीलादि पारमिता हस्तगत करली है। यही बोधि, शिक्षा है, और इसी को वे बोधिचर्या भी कहते है, षट्पारमिताए निम्नलिखित है, दान, शील, क्षान्ति, वीर्य, ध्यान और प्रज्ञा।[6] श्रीहर्ष लिखते है कि देवताओ के द्वारा सम्मानित देवर्षि नारदको कल्पवृक्ष को देखकर यह ज्ञान हुआ कि कल्पवृक्षो ने दानशीलता इन्द्र के अत्यन्त दानशील हाथो

---

1 साकारविज्ञानवादी सोत्रान्तिक। विज्ञानस्य साकारतासिद्धिस्तद्दर्शनम्।। नारायण, नै० 10/88 में नारायण
- परामाणुसञ्चयरूपोऽर्थ साकारज्ञानजनक - अद्वयवज्रसग्रह, पृ 17
- इन्द्रिय सन्निकृष्टस्य विषयस्योत्पाद्ये ज्ञाने स्वकारसमर्पकतया समर्पितेन चाकारेण तस्यार्थस्यानुमेय तोपपत्ते। – सर्व द स , पृ 36
- ज्ञाने ज्ञेयप्रतिबिम्बो बिम्बपुर सर प्रतिबिम्बत्वात् दर्पणगतमुखप्रतिबिम्बवादिति। एवञ्च प्रत्यक्षग्राह्यो बाह्यर्थो नास्ति। सर्वमत सग्रह, पृ 2

2 अनात्मवाद एव अनीश्वरवाद के विस्तृत विवेचन हेतु द्रष्टव्य-बौद्ध धर्म दर्शन-आचार्य नरेन्द्रदेव, पृ० 241-249

3 ताराविहारभुवि चन्द्रमयीं चकार, यन्मण्डलीं हिमभुव मृगनाभिवासम्।
तेनैव तन्वि! सुकृतेन मते जिनस्य, स्वर्लोकलोकतिलकत्वमवाप धाता ।। वै 22

4 भारतीय दर्शन - बलदेव उपाध्याय, पृ 134 से उद्धृत।

5 तद्भुजाददतिवितीर्णसर्ण्याद्द्यु द्रुमानपि विवेद मुनीन्द्र ।
स्व सहस्थितिसुशिक्षितया तान्दानपारमितयैव वदान्यान्।। नै 5/11

6 बौद्ध धर्म दर्शन - आचार्य नरेन्द्रदेव, पृ 184

से खूब सीखी है, क्योकि वे स्वर्ग मे इन्द्र के साथ रहते है। नैषध मे अन्य प्रसग मे भी दानशीलता का विवरण माना जा सकता हे।[1] नल द्वारा हस को सुशील मानने[2] मे शील पारमिता का प्रसग तथा नल की देवार्चना प्रसग मे ध्यान, पारमिता के प्रसग माने जा सकते है किन्तु नैषधकार ने प्रत्यक्ष रूप से उनका विवरण नैषध मे नहीं दिया हे।

आस्तिक दर्शन

न्याय- वैशेषिक दर्शनः

"नैषधीयचरितम्" मे आस्तिक दर्शनो के अन्तर्गत परिगणित न्याय एव वैशेषिक दर्शन के विवरण भी प्रभूत मात्रा मे पिरोये गये हे। ये दोनो दर्शन समानतत्री माने जाते है, क्योकि ये आपस मे परस्पर सम्बद्ध हे, या यह कहे कि इन दोनो दर्शनो की मान्यताएँ या विशेषताएँ समान है, केवल पदार्थों के विषय मे इनमे भिन्नता दिखायी पडती है। वेशेषिक दर्शन मे जहाँ तत्त्वमीमासा का प्रधान्य है, वहीं न्याय मे तर्कशास्त्र और ज्ञानमीमासा का प्राधान्य हे। श्रीहर्ष ने बौद्धो एव नैयायिको की तर्कशैली अपनाकर ही उनका खण्डन किया, जिसका विवरण उनके ग्रथ खण्डनखण्डखाद्य मे प्राप्त होता है। श्रीहर्ष अद्वैत वेदान्ती होते हुए भी सम्पूर्ण दर्शनो मे गति रखते थे, न्याय दर्शन मे तो उनकी अप्रतिम गति थी, जैसा कि उनके कथन "धर्षितपरास्तर्केषु यस्योक्तय "[3] से जाहिर होता है प्राचीन न्याय दर्शन के प्रवर्तक गौतम (अक्षपाद) है,[4] जिनका प्रमुख ग्रथ न्यायूसत्र है। न्यायदर्शन को तर्कशास्त्र, प्रमाणशास्त्र, हेतुविद्या, वादविद्या, तथा आन्वीक्षिकी एव न्यायशास्त्र के नाम से भी जाना जाता है। श्रीहर्ष सरस्वती के दातो को 'तर्कशास्त्र' की सज्ञा देते हुए लिखते हे कि जिस प्रकार तर्कों के बिना वाद (शास्त्रार्ध) की शक्ति नहीं होती ("वादे-वादे जायते तत्त्वबोध ") स्वपक्ष स्थापन, और परपक्षखण्डन नहीं होता तथा प्रतिवादी गुणी विद्वत्समूह की युक्तियो का खण्डन भी नहीं हो सकता, उसी प्रकार सरस्वती के मुख से भी दातो के बिना भाषण, काषायादि गुण युक्त सुपारी का खण्डन तथा ताम्बूलचर्वण नहीं हो सकता था।[5] स्पष्ट है कि जिस प्रकार मुख की शोभा दतपक्तियो से है उसी प्रकार न्यायदर्शन तर्कों से ही सम्पुष्ट एव महिमामण्डित होता हे क्योकि सम्यक्तया अविज्ञात अर्थ मे कारणोपक्ति द्वारा उसके तत्त्वज्ञान की जिज्ञासा करना तर्क कहलाता है।[6] इस प्रकार तर्कों का इस दर्शन मे महनीय स्थान है। वाद-प्रतिवाद तर्कों द्वारा ही सम्पन्न होते है, इस तथ्य का भी नैषधकार ने सरस्वती के ओष्ठ वर्णन प्रसग मे विवरण दिया है। यथा -

---

1 अय दरिद्रो भवितेति वेधसीं लिपि ललाटेऽर्थिजनस्य जागृतीम्।
मृजा न शक्रेऽल्पित कल्पपादप प्रणीय दारिद्रय दरिद्रता नल।। नै 1/15, एव 3/25

2 नै 2/51

3 नै० प्रशस्ति श्लोक -4

4 भारतीय दर्शन का इनिहास - एस0एन0 दास गुप्त पृ० 318
- गौतम के अन्य नाम अक्षचरण एव मोघातिथि भी हैं - यथा
  योऽक्षपादिमृषि न्याय प्रत्यभाद् वदता वरम्। तस्य वात्स्यान इद भाष्य जातनर्वयत्।। न्याय भाष्य
- यदक्षपाद प्रवरो मुनीना शमाय शास्त्र जगतो जगाद्। कुतार्किकाज्ञार्निवृत्तिहेतो करिष्यते तस्य मया निबन्ध ।। न्यायवार्तिक
- अथ भगवता अक्षपादेन नि श्रेयसहेतौ शास्त्रे प्रणीते व्युत्पादिते च भगवता पक्षिलस्वामिना किमपरमवशिष्यते यदर्थ वार्तिकारम्भ। न्याय वार्तिक तात्पर्य टीका।
- मेघातिथिर्महा प्राज्ञा गौतमस्तपसि स्थित। विमृश्य तेन कालेन पत्न्या सस्थाप्यक्तव्रम म् ।। महाभारत शान्तिपर्व
- मामवीय धर्मशास्त्र माहेश्वर योगशास्त्रम्। वार्हस्पत्यमर्थशास्त्र मेघातिथेर्न्यायशास्त्रम् ।। भास प्रतिमानाटक

5 तर्का रदा यद्वदनस्य तर्क्या वादेऽस्य शक्ति क्व तथाऽन्यथा तै।
पत्र क्व दातु गुणशान्पिूग क्व वादत खण्डयितु प्रभुत्त्वम्?।। नै० 10/83

6 अविज्ञाततत्त्वेऽर्थेकारणापत्तिनस्तत्त्वज्ञानार्थमूहस्तर्क। न्याय सूत्र 1/1/40

अवैमि वादिप्रतिवादिगाढस्वपक्षरागेण विराजमाने । ते पूर्वपक्षोत्तरपक्षशास्त्रे रदच्छदौ भूतवती यदीयौ ।।[1]

न्याय दर्शन मे सोलह पदार्थों की परिगणना की गयी है एव इन पदार्थों के तत्त्वज्ञान से मोक्ष (अपवर्ग) की प्राप्ति सम्भव बतलायी गयी है। वे पदार्थ है प्रमाण, प्रमेय, सशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त अवयय, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्त्वाभास, छल, जाति, निग्रह स्थान।[2] साथ ही वात्स्यायन ने इन सोलह पदार्थो का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करने के लिए तीन उपाय बतलाया है, उद्देश अर्थात नामोल्लेख, लक्षण या असाधारण धर्म, और परीक्षा अर्थात् उन पदार्थों के लक्षणो की उपयुक्तता एव अनुपयुक्ता का विचार करना।[3] नेषधकार ने न्याय के इन सोलह पदार्थो की तुलना सरस्वती के सोलह-सोलह वाली दोनो दन्तपक्तियो से करते हुए उन्हे आन्वीक्षिकी विद्य के समान माना है जो नाम निर्देश (सोलह पदार्थो का नाम के द्वारा वर्णन करना) तथा लक्षण निर्देश (प्रत्येक पदार्थ का पुन लक्षण द्वारा वर्णन करना) द्वारा दोहराये हुए प्रमाण प्रमेय आदि सोलह पदार्थो से युक्त है तथा मुमुक्षु लोग जिसका अभ्यास करते है।[4]

नैषधीयचरितम् मे न्यायदर्शन के अपवर्ग (मोक्ष) का भी वर्णन सत्रहवे सर्ग मे कलिप्रतिनिधि द्वारा न्याय दर्शन एव उसके प्रणता महर्षि गौतम के उपहास रूप मे वर्णित मिलता है, वह देवो से कहता है कि जिसने चैतन्यवालो (सचेतन मनुष्यो) को पाषाणावस्थारूप जड मुक्ति का प्रतिपादन करने के लिये न्याय दर्शन लिखा है, उस गौतम मुनि को तुम स्वय विचार कर जैसा जानते हो वह सचमुच वैसा ही (गौदम प्रकृष्ट बैल) है।[5]

न्याय वैशेषिक दर्शन मे अपवर्ग (मोक्ष) विशुद्ध बौद्धिक एव तार्किक रूप मे वर्णित मिलता है। मोक्ष के साधक को श्रवण मनन, निदिध्यासन द्वारा न्याय वैशेषिक के ज्ञानमीमासा एव तत्त्वमीमासा के पदार्थो का सम्यक ज्ञान प्राप्त करना चाहिए क्योकि दु ख निवृत्ति रूप अपवर्ग तत्त्वज्ञान के द्वारा ही सम्भव हैं।[6] अर्थात् दु खो की आत्यन्तिक निवृत्ति ही न्याय दर्शन मे अपवर्ग या मोक्ष कहलाता है।[7] जबकि श्रीधर ने अपनी न्यायकन्दली मे कहा है कि वैशेषिक के अनुसार आत्मा के ज्ञान आदि नौ विशेष गुणो का उच्छेद ही मोक्ष है। मीमासक तथा श्रीधर जेस न्याय-वैशेषिक के विद्वान् ज्ञानकर्म समुच्चय को भी मुक्ति का साधन मानते

---

1 नै० 10/88

2 प्रमाणप्रमेयसशय प्रयोजन दृष्टान्त सिद्धान्त अवयवतर्क निर्णय-वाद जल्पवितण्डाहेत्त्वाभासच्छल जाति निग्रहस्थानाना तत्त्वज्ञानान्नि श्रेयसाधिगम - न्यायसूत्र 1/1/1

3 त्रिविधा चास्य शास्त्रस्य प्रवृत्ति - उद्देश, लक्षण, परीक्षाचेति। तत्रनामधेयेन पदार्थ मात्रस्याभिधानमुद्देश। तत्रोद्दिष्टस्य तत्त्वव्यच्छेदेको धर्मो लक्षणम्। लक्षि तस्य "यथालक्षणमुपपद्यते न वा" इति प्रमाणैरवधारण परीक्षा। न्या0सू0 1/1/3, प्रमाण प्रकरणम् पर वा0भा0

4 उद्देशपर्वण्ययि लक्षणेऽपि द्विधोदितै षोडशभि पदार्थैः।
आन्वीक्षिकीं यद्दशनद्विमालीं ता मुक्तिकामाकलिता प्रतीम।। नै० 10/82

5 मुक्तये य शिलात्वाय शास्त्रमूचे सचेतसाम्। गौतम तमवेक्ष्यैव यथा वित्थ तथैव स ।। नै 17/75

6 दु खजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानाम् उत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायाद् अपवर्ग - न्या0 सू0 1/1/2

7 तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्ग न्याय सूत्र 1/1/22
- ऋणक्लेशप्रवृत्त्यनुबन्धादपवर्गाभाव। वही 4/1/59।
- सुषुप्तस्य स्वप्नादर्शने क्लेशाभावदपवर्ग। वही, 4/1+63।
- मोक्षोऽपवर्ग। स चैकविशति प्रभेदभिन्नस्य दु खस्यात्यन्तिकी निवृत्ति। सोऽयमेकविशति प्रभेदभिन्नदु खहा निर्मोक्ष। सोऽपवर्ग इत्युच्यते। नर्कभाषा पृ 260-261
- (मोक्ष) चरम दु ख वस तर्कदीपिका, (मोक्ष) आत्यन्तिको दु खाभाव न्ययवार्तिक,
- न्या0 वार्तिक- 1/1/3, पृ० 25, न्यायवार्तिक तात्पर्य टीका, 1/1/2, पृ 95, 96
- तस्मादनिष्टनिवृत्तिरात्यन्तिकी निश्रेयसम्-उदयन, किरणावली, बनारस प्रकाशन पृ० 8
- आत्यन्तिकदु खानिवृत्तिलक्षण पाषाणसदृशो मोक्षो भवतीति वैशेषिकमतम् - प्रपञ्चहृदय- षड्वर्गप्रकरण, पृ० 65, त्रिवेन्द्रम सस्कृत सिरीज 1915
- न्यायकन्दली प्रकासक, सस्कृत विश्व विद्यालय वाराणसी पृ 610। अशेष विशेषगुणोच्छेदो मोक्ष

है। वात्स्यायन ने शान्तदशा को मोक्ष माना है जिसमे सभी उपाधियो एव अनुभवो का अभाव रहता है।[1] साथ ही इस अवस्था मे आत्यन्तिक दु खाभाव के अतिरिक्त किसी नित्य सुख का अनुभव नहीं होता है।[2] क्योकि न्यायवैशेषिक दर्शन मे सुख दु ख इच्छा, द्वेष, कर्तृत्व इत्यादि सभी धर्म आत्मा के आकस्मिक धर्म माने गये है अत मोक्षावस्था मे आत्मा इन सब का त्याग कर देती है।[3] एव शान्त तथा निर्विकार हो जाती है। उस अवस्था मे न सुख रहता है न दु ख। चैतन्य तथा ज्ञान भी तिरोहित हो जाता है क्योकि आत्मा के सुख दु ख ज्ञान आदि समस्त धर्म शरीर सापेक्ष है, इस प्रकार अपवर्गावस्था मे आत्मा की स्थिति गाढ सुषुप्तावस्था, जड, या पाषाणवत् सज्ञाशून्य हो जाती है।[4] आचार्य जयन्तभट्ट का भी मानना है कि (न्याय वैशेषिक मे) अपवर्ग आत्मा की वह निष्क्रिय शान्त अवस्था है, जिसमे वह अपनी विकारहीन नैसर्गिकपवित्रता को प्राप्त करती है, जिसमे किसी प्रकार के ज्ञान, आनन्द, सुख, दुख, सकल्प आदि का स्थान नहीं रह जाता है।[5] किन्तु आत्मा का अचेतन रूप मे मानना एव मोक्ष को आनन्द रहित तथा सज्ञाशून्य मानना बौद्धिक तो हो सकता है, परन्तु आध्यात्मिक तो कदापि नहीं। श्रीहर्ष तो कट्टर अद्वैतवेदान्ती थे, तब फिर वह श्रुतियो से प्रतिपादित आत्मा की स्थिति के विरूप प्रतिपादन को कैसे सह सकते थे, फिर मोक्ष जो परमानन्द की अवस्थासदृश वेदान्त मे प्रतिपादित है, उसे सज्ञाशून्य मानना उनके गले नहीं उतरा, और उन्होने अपनी नैयायिको के प्रति विरोध रखने की भावना को नैषध मे कलिप्रतिनिधि मुखेन रख ही दी एव कहा कि जिस प्रकार पाषाणखण्ड अचेतन, सज्ञाशून्य, एव निर्विकार होता है, ठीक उसी प्रकार इन नैयायिको का यह अपवर्ग भी है एव ऐसे सिद्धान्त के प्रणेता को मूर्ख ही समझना चाहिए, परन्तु समीक्षत यदि हम देखे तो यही प्रतीत होता है कि न्यायवैशेषिको के अनुसार अपवर्गावस्था मे आत्मा चैतन्य एव आनन्द से शून्य केवल सत्ता मे रहती है, इसे हम मोक्ष के सम्प्रत्यय के विकास की प्रथम अवस्था मान सकते है। मध्वाचार्य ने भी कहा है कि न्याय वैशेषिक शास्त्र को मोक्षानुपयोग भी नहीं कह सकते, क्योकि यह शास्त्र दु.ख के आत्यन्तिक निवृत्ति का प्रयोजक है।[6] अपवर्ग की प्राप्ति के लिए ईश्वर का चिन्तन मनन भी आवश्यक है।[7] कुछ आचार्य अपवर्ग मे नित्यसुख की प्राप्ति मानते है जैसा कि परवर्ती नैयायिक भासर्वज्ञ मानते है।[8] परन्तु वात्स्यायन, उद्योतकर, श्रीधर जयन्तभट्ट आदि आचार्यों ने इस मत का

---

1 शान्त खल्वय सर्वविप्रयोग सर्वोपरमोऽपवर्ग न्या0 सू0 1/1/2 पर वात्स्यायन भाष्य

2 न्याय सू0 1/1/22 वा0 भाष्य।

3 विशेष गुणोच्छेदेहि सति आत्मन स्वरूपेणावस्थानम् न्यायकदली।

4 Nyaya Manjarı- Englısh translatıon-by Jankı Vallabh Battacharyaya-voli, ı, P- 15-20

5 दु खेन वियोगोऽपवर्ग। आत्यन्तिकी दु खव्यावृत्तिरपवर्गों न सावधिका। को हि नाम शिलाशकलकल्पम-पगतसकलसुखसवदनसम्पदमात्मानमुपपादयितु यतते अतश्च ससारान्मोक्ष श्रेयान् यत्रायम्यानतिदु ख-प्रबलन्धोऽवलुप्यते। वरमियत कादाचित्की सुखकणिकात्यक्ता। न तस्या कृते दु खभार इयानूढ इति। तस्मान्न सुखोपभोगात्मको मोक्ष। न्यायमञ्जरी-नवममाह्निकम्-अपवर्गनिरूपणम्, पृ० 499-533 एव सस्कृत गद्यालोक- 13वॉ गद्याश सकलनकर्ता इलाहाबाद विश्वविद्यालय 1985 द्वितीय सस्करण

6 न चास्य पुरुषार्थोपरिकत्व नास्तीत्याशङ्कनीय दु खात्यन्तोच्छेदापरपपर्यायनि श्रेयसरूपत्वेन परम पुरुषार्थत्वात् सर्व0द0स0, पृ० 199

- तत्त्वज्ञानादु खात्यन्तोच्छेदलक्षण नि श्रेयस भवतीत समानतन्त्रेऽपि प्रतिपादतिम् - सर्व0 द0स0 पृ 200

7 द्रष्टव्य प0ध0 स पृ 18 एव न्याय कु0 प्र0 पृ० 12
तस्मात् परिशेषात् पर[illegible] पौरुषधौरेयस्य दु खनिवृत्तिरात्यन्तिकी नि श्रेयसमिति निरवद्यम्। 1/237 सर्व द स - पृ 211

- परमेश्वर साक्षात्कारश्च श्रवणमननभावनाभिर्भावनीय। यदा ह आगमेनानुमानेन ध्यानाभ्यासबलेन च त्रिधा प्रकल्पयन् प्रज्ञा लभते योगमुत्तमम्।। सर्व द स पृ 186

8 द्रष्टव्य न्याय भूषण- पृ - ५९५

- सर्वसिद्धान्तसग्रहकार ने यह मत रखा है कि (न्याय के अनुसार) मोक्ष दशा मे विषयरहित आनन्द की अनुभूति होती है किन्तु वैशेषिक मत के अनुसार नहीं यथा-
न्याय मत- नित्यानन्दानुभूति स्यान्मोक्षे तु विषयादृते पृ० 28 श्लोक 45 वैशेषिक मत करणोपरमेत्वात्मापाषाण वदस्थित। दु खसाध्यसुखोच्छेदो दु खोच्छेदवदेवन। पृ० 23 सर्वसिद्धान्तसग्रह, शवबहादुर एम रगाचार्य द्वारा प्रकाशित मद्रास 1909 ई0

- नित्यानन्द प्रतिपादक श्रुतिरात्यन्तिके दु खवियोगे भवतीतियुक्तमितिभाव। वाचस्पति न्यायवार्तिक तात्पर्य टीका 1/1/1, के-एस एस पृ 241

निराकरण किया है।[1] उद्योतकर ने तो अपवर्ग या नि श्रेयस को अपर एव पर नि श्रेयस के रूप मे निरूक्त किया है।[2] इनके मत मे अपरनि श्रेयस जीवन्मुक्ति तथा परनि श्रेयस को विदेह मुक्ति कहा जा सकता है। दीर्घकाल तक अविच्छिन्न रूप मे श्रद्धा के साथ बद्धमूल तत्त्वसाक्षात्कार से मिथ्या ज्ञान के निवृत्त हो जाने पर, जब तत्काल साधक की अग्रिम प्रवृत्ति रुक जाती है तब वह जीवन्मुक्ति प्राप्त करता है,[3] एव जब प्रतिरोधक कर्म के उपभोग से प्रारब्ध एव सचित कर्मों का अन्त हो जाता है, तब साधक का शरीर आदि के साथ सदैव के लिए सम्बन्ध समाप्त हो जाता है, वह स्वरूप प्रतिष्ठित हो जाता है, यह परनिश्रेयस या विदेहमुक्ति कहलाता है।[4] साख्य योग मे मुक्त पुरुष विशुद्ध चैतन्य का अनुभव करता है। वह सर्वज्ञ है, परन्तु आनन्द का अनुभव वह नहीं कर सकता, इसे मोक्ष के सम्प्रत्यय की दूसरी अवस्था कह सकते है, तथा वेदान्त मे वर्णित मोक्षावस्था मे आत्मा स्वय ब्रह्म से अभिन्न हो जाती है, यह मोक्ष की सर्वोच्च अवस्था कही जा सकती है।

न्याय दर्शन मे ईश्वर सर्वज्ञ, सख्या परमाणु आदि गुणो से युक्त धर्मज्ञान समाधि सम्पत्ति से युक्त, जीवात्मा से भिन्न, अणिमा आदि आठो ऐश्वर्यों से सम्पन्न, सकल्पवान, कृपालु, जगनिर्माणकर्ता एव आप्तपुरुष सदृश माना गया है[5] परन्तु श्रीहर्ष ने कलिप्रतिनिधि मुखेन उनके ईश्वर का उपहास करवाया हे, वह लिखते हे कि यदि उनके (नैयायिको के) ईश्वर सर्वज्ञ, कृपालु तथा सफलवचन वाले है, तो केवल वाणी व्यय से (एवमस्तु कहकर) हम प्रार्थियो को क्यो कृतार्थ नहीं करते? या हमारी इच्छाए पूर्ण क्यो नहीं करते।[6]

न्याय दर्शन ज्ञानमीमासा के सदर्भ मे वस्तुवादी[7] है क्योकि यह ज्ञान को ज्ञाता और ज्ञेय का सम्बन्ध मानता है। बिना ज्ञेय पदार्थ या विषय के, ज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता "नाऽविषया काचिदुपलब्धि" और ज्ञान का कार्य ज्ञेय पदार्थों को प्रकाशित करना है (अर्थप्रकाशो बुद्धि) तथा ज्ञान भी, प्रमेय होने के कारण घटपदादि के समान ज्ञानान्तरवेद्य है। (ज्ञानमपि ज्ञानान्तरवेद्य प्रमेयत्वात् पटादिवत्)। समस्त व्यवहारो के कारणभूत गुण को ज्ञान अर्थात् बुद्धि कहते है, वह दो प्रकार का होती है स्मृति और अनुभव।[8] सस्कार मात्र से उत्पन्न ज्ञान को स्मृति[9] कहते है तथा स्मृति भिन्न ज्ञान को अनुभव कहते है[10] यह दो प्रकार का होता है, यथार्थ और अयथार्थ। किसी वस्तु का जो वह है, उसी रूप मे ज्ञान यथार्थ

---

1 न्या0 भाष्य 1/1/12, 28 इस पर न्यायवार्तिककार तात्पर्यटीकाकार, न्या मञ्जरीकार का मत तथा न्याय कन्दली पृ 690 दृष्टव्य है।

2 न्यायवार्तिक, 1/1/2, पृ० 23

3 तात्पर्य टीका 1/1/2, पृ० 71

4 तात्पर्य टीका 1/1/2, पृ० 72

5 गुणविशिष्टमात्मान्तरम् ईश्वर तस्यात्मकल्पात्कल्पान्तरानुपपत्ति। अधर्ममिथ्याज्ञानप्रमादहान्या धर्मज्ञानसमाधिसम्पदा च विशिष्टमात्मान्तरमीश्वर, तस्य च धर्मसमाधिफलमणिमाद्यष्टविधमैश्वर्यम्। सकल्पानुविधायी चास्य धर्म प्रत्यात्मवृत्तीन् धर्माधर्मसञ्चयान् पृथिव्यादीनि च भूतानि प्रवर्तयति। एव च स्वकृताभ्यासगमस्य लोपेन निर्माणप्राकाम्यमीश्वरस्य स्वकृतकर्मफल वेदितव्यम। आप्तकल्पश्चायम्। यथापिताऽपत्यानाम् तथा पितृभूत ईश्वरो भूतानाम्। आगमाच्च दृष्टा, बोद्धा, सर्वज्ञाता, ईश्वर इति। न्यायसूत्र 4/1/21 पर वात्स्यायन भाष्य, पृ 284
 – **तत्रेश्वरः सर्वज्ञ** परमात्मा एक एव-तर्कभाषा, **चौखम्भा** संस्कृत सिरीज, 1934 पृ० 31
 – तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम् वैशेषिक सूत्र 1/3, एव 10/2/9

6 देवश्चेदस्ति सर्वज्ञ करूणाभागबन्ध्यवाक्।।

7 तत्कि वाग्व्ययमात्रान्न कृतार्थयति नार्थिन। नै 17/77

8 विस्तृत विवेचन हेतु द्रष्टव्य- Indian Idealism-chapt III, P 114-174 The chief currents of contemporary Philosophy- Prof D M Datta

9 सर्वव्यवहारहेतुर्गुणो बुद्धिर्ज्ञानम् (सर्वव्यवहारहेतुर्ज्ञानम् बुद्धि) सा द्विविधा स्मृतिरनुभवश्च तर्कसग्रह पृ 28-29

10 सस्कारमात्रजन्य ज्ञान स्मृति। तद्भिन्न ज्ञानमनुभव। स द्विविध -यथार्थोऽयथार्थश्च। तर्कसग्रह पृ 28-29

अनुभव है। उदाहरणार्थ रजत मे यह रजत ही है'' इस तरह की विवक्षा या ज्ञान होना। इसे प्रमा कहते है और किसी वस्तु का, जो वह नहीं है, उस रूप मे ज्ञान अयथार्थ अनुभव है, जैसे सीपी मे ''यह रजत है'' यह ज्ञान होना। इसे ही अप्रमा कहते है। यथार्थ ज्ञान या प्रमा चार प्रकार की होती है, प्रत्यक्ष अनुमिति, उपमिति और शब्दज्ञान जो चार प्रमाणो यथा- प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, और शब्द से क्रमश उत्पन्न होती है। वहीं अयार्थज्ञान या अप्रमा तीन प्रकार की होती है सशय विपर्यय और तर्क।[1] न्याय दर्शन के उपर्युक्त यथार्थज्ञान एव अयथार्थ ज्ञान का सदर्भ नैषध मे सत्रहवे सर्ग मे कलि देव सवाद प्रकरण मे मिलता है जहॉ इन्द्र कलि को समझाते हुए कहते है कि अत्यन्त विनम्रशील दमयन्ती उसी प्रकार अकारण वैर करने वाले आप जैसे लोगो से पीडनीय नहीं है जिस प्रकार अज्ञान विरोधी प्रभाज्ञान (यथार्थज्ञान) निष्फल और अयथार्थ वस्तु की प्रतीति कराने वाले भ्रम ज्ञानो से बाधित होने के योग्य नहीं होता।[2] पूर्व मे वर्णित स्मृति का भी वर्णन श्रीहर्ष ने हस नल सवाद मे किया है जहॉ हस दमयन्ती से कहता है कि राजन्! तुम्हारे इस असीम सौन्दर्य ने आज मेरे उस पूर्व सस्कार को पुन प्रबुद्ध कर दिया है जिससे चिर अवलोकित होने पर भी वह सुहासिनी (दमयन्ती) पुन मेरे स्मृति पथ पर आ गयी।[3] स्पष्ट है कि स्मृति सस्कार मात्र से उत्पन्न ज्ञान रूपा होती है।[4] वैसे श्रीहर्ष ने अपने ग्रथ खण्डनखण्डखाद्य मे न्याय वैशेषिक के प्रमाणवाद का उन्हीं की शैली मे विस्तार से खण्डन किया है[5] एव यह माना है कि प्रमेयमात्र ही सद्सदविलक्षण होने के कारण लक्षणशून्य एव अनिवर्चनीय है।[6] वह स्वय कहते है कि उनके खण्डनो की सार्वपथीनता निर्बाध है तथा विषयान्तर मे भी उनका यथेच्छ योजन किया जा सकता है। श्रीहर्ष ने सगर्व कहा भी है ''लोकेषु दिग्विजयकौतुकमातनुध्वम्।[7] प्रो एस एन दास गुप्त का इस सदर्भ मे कथन सत्य ही प्रतीत होता है कि यदि श्रीहर्ष के खण्डन, न्याय लक्षणो की भाषा की अपेक्षा उनके विचारो पर अधिक प्रहार करते, तो उत्तरकालीन नव्य नैयायिको को (श्रीहर्ष के खण्डनो से बचने के लिए) वाग्जाल बुनने का कष्ट नहीं उठाना पडता। अत श्रीहर्ष प्रथम महान दार्शनिक है, जिन पर परोक्षरीति से नव्यन्याय की भाषा शैली के विकास का उततरदायित्व है।[8]

नैषधीयचरितम् मे न्याय के प्रामाण्यवाद[9] का सकेत भी श्रीहर्ष ने दिया है। न्याय परत प्रमाण्यवाद एव परत अप्रामाण्यवाद को मानता है। इसके अनुसार पहले ज्ञान उत्पन्न होता है, तदनन्तर ज्ञान मे प्रामाण्य एव अप्रामाण्य दोनो बाहर से आते है। अत इस रूप मे न्यादर्शन को प्रमा के स्वभाव के विषय मे

---

1 तद्वति तत्प्रकारकोऽनुभवो यथार्थ। यथा रजते ''इद रजतम'' इति ज्ञानम्। सैव प्रमोच्यते। तद् भाववति तत्प्रकारकोऽनुभवोऽयथार्थ (यथा शुक्तौ ''इद रजतम्'' इति ज्ञानम्। सैवाप्रमेत्युच्यते। यथार्थानुभवश्चतुर्विध, प्रत्यक्षानुमित्युपमितिशब्द भेदात्। तत्करणमपि चतुर्विध प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दभेदात्। अयथार्थानुभयस्त्रिविध सशयविपर्ययतर्कभेदात्। एकस्मिन् धर्मिणि विरुद्ध नानाधर्मवैशिष्ट्यावगाहि ज्ञान सशय यथा स्थाणुर्वा पुरुषो वा। मिथ्याज्ञान विपर्यय। यथा, शुक्तौ रजतमिति। व्यापारोपेण व्यापकारोस्तर्क। यथा ''यदि वह्निर्न स्यात् तर्हि धूमोऽपि न स्यात्। तर्कसग्रह पृ 29-31, 58-60।

2 सा विनीतमा भैमी व्यर्थानर्थग्रहैरहो। कथ भवद्विधैर्बाध्या प्रमितिविभ्रमैरिव ॥ नै 17/145

3 अनया तव रूपसीमया कृतसस्कारविवोधनस्य मे।
चिरमप्यवलोकिताद्य सा स्मृतिमारूढवती शुचिस्मिता ॥ नै 2/43

4. सस्कारमात्रजन्य ज्ञान स्मृति तर्कसग्रह, पृ 28

5. **खण्डनखण्डरखाद्य** - पृ 122-436

6 मेयस्वभावानुगामिनीयमनिर्वचनीयता-वही पृ-32

7 वही पृ 2

8 A History of Indian Philophy-Volu-II, P 146

9 प्रामाण्यवाद के विशिष्ट विवरण हेतु द्रष्टव्य- Interoduction- Knowledge and the Methods of Knowledge (Prama and Pramana The six ways of Knowing by Prof D M Datta P- 19 .28

वस्तुवादी होने के साथ-साथ यथार्थता के व्यावहारिक परीक्षण के विषय मे उपयोगितावादी या प्रवृत्तिसाफल्यवादी भी माना जा सकता है। प्रमा चार प्रकार की, होती है, क्योकि न्याय दर्शन चार प्रमाण।[1] (प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द और उपमान) स्वीकार करता है। प्रमा मे प्रयुक्त प्रत्यक्ष एव प्रमा का विवरण श्रीहर्ष के नल के दौत्य वर्णन प्रसग मे प्राप्त होता है जिसमे श्रीहर्ष लिखते है कि कुण्डिनपुर मे दमयन्ती के महल मे सब सखियॉ एव दमयन्ती नल का दृष्टि से पान करने लगी[2] परन्तु नल के नेत्रो की किरणे दमयन्ती को देखने के उद्देश्य से अपाग तक भी न पहुँची थी कि मदनबाण उस सुन्दरी के प्रत्येक अग मे सम्पूर्णतया प्रविष्ट हो गया।[3] यहॉ नैषधकार इन्द्रिय सन्निकर्ष का विवरण प्रत्यक्ष प्रमाण के परिप्रेक्ष्य मे रख रहे है एव महर्षि गौतम का भी यह मानना है कि इन्द्रिय का अर्थ के साथ सम्बन्ध होने से उत्पन्न ज्ञान प्रत्यक्ष कहलाता है, जो कि अशाब्द हो, व्यभिचार शून्य हो तथा विशेष्यविशेषणभावावगाही हो।[4]

न्याय दर्शन मे प्रत्यक्षज्ञान का कारणभूत इन्द्रिय और पदार्थ के बीच का सम्बन्ध छै प्रकार का होता है, स्वय प्रत्यक्षज्ञान भी छै प्रकार का होता है, प्राणज, रासन, चाक्षुस श्रौत या श्रावण, त्वाच्च और मानस। स्मरणीय है कि न्यायदर्शन मे प्रत्यक्ष के दो भेद क्रमश लौकिक प्रत्यक्ष एव अलौकिक प्रत्यक्ष होते है। अलौकिकप्रत्यक्ष के तीन भेद क्रमश सामान्य लक्षण, ज्ञान लक्षण एव योगज तथा लौकिक प्रत्यक्ष के दो भेद बाह्य तथा मानस, या दूसरी दृष्टि से निर्विकल्पक (प्रत्यक्ष का अविकसित रूप) सविकल्पक (प्रत्यक्ष का विकसित रूप) तथा इन दोनो प्रत्यक्षो के बीच एक और प्रत्यक्ष होता है जिसे प्रत्यभिज्ञा कहते है। न्याय दर्शन मे लौकिक प्रत्यक्ष प्रमाण के अगीभूत षड्विध सन्निकर्ष या षोढा सन्निकर्ष के द्वारा विषयो का ग्रहण बुद्धि एव मन से ही होता है।[5] इस तथ्य का सकेत दौत्य वर्णन प्रसग मे देवो के कथन का वर्णन करने वाले नल के कथन मे मिलता है कि प्रत्येक रात्रि मे स्वप्न मे तुम्हे (दमयन्ती को) पाकर ये आखे तुम्हारी सुषमा मे, ये कान तुम्हारे गान रूप सुधासागर मे, त्वचा तुम्हारे देहकुसुम की सुकुमारता मे, नासिका तुम्हारे नि श्वास की सुगन्ध मे, जिह्वा तुम्हारे अधररस मे तथा चित्त तुम्हारे चरित्र मे निमग्न हो जाते है।

---

1 प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दा प्रमाणानि। न्या सू 1/1/3

2 अथाद्भुतेनास्तनिमेषमुद्रमुन्निद्रलोमानममु युवानम् ।
दृशा पपुस्ता सुदृश समस्ता सुता च भीमस्य महीमघोन ।। नै 8/1

3 अपाङ्गमप्याप दृशोर्न रश्मिर्नलस्य भैमीमभिलष्य यावत् ।
स्मराशुग भुवि तावदस्या प्रत्यङ्गमापुङ्खशिख ममज्ज ।। नै 8/3

4 इन्द्रियार्थसन्किर्षोत्पन्न ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मक प्रत्यक्षम्- न्या सू 1/1/4
प्रत्यक्ष ज्ञानकरण प्रत्यक्षम्। -इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्य ज्ञान प्रत्यक्ष-तर्कसग्रह, पृ 36
तस्मादशाब्दमर्थज्ञानमिन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नमिति-न्या सू 1/1/4 पर वा भा

5 साक्षात्कारिप्रमाकरण प्रत्यक्षम्। साक्षात्कारिणी च प्रमा सैवोच्यते या इन्द्रियजा। सा च द्विधा सविकल्पक निर्विकल्पक भेदात्। तस्या करण त्रिविधम् (कदाचित् इन्द्रिय, कदाचित् इन्द्रियार्थसन्निकर्ष , कदादित् च ज्ञानम्। तर्क भाषा, पृ 46
- अक्षजा प्रमितिर्द्वेधा सविकल्पाविकल्पिका। करण त्रिविध तस्या सन्निकर्षश्च षड्विध । तर्क भाषा पृ 58
  प्रत्यक्षमप्यनुमितिस्तथोपमितिशब्दजे।
  घ्राणजादि प्रभेदेन प्रत्यक्ष षड्विध मतम्।। न्यायकारिकावली- 52, न्यायसिमुक्ता0 धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री, पृ 20
- प्रत्यक्षज्ञानहेतुरिन्द्रियार्थसन्निकर्ष षड्विध -सयोग सयुक्तसमवाय , सयुक्तसमवेतसमवाय , समवाय , समवेतसमवाय , विशेषणविशेष्यभावश्चेति। तर्कसग्रह, पृ 38।
- स्मृत्यनुमानागमसशयप्रतिभास्वप्नज्ञानोहा सुखादिप्रत्यक्षमिच्छादयश्च मनसोलिङ्गानि। तेषु सत्स्वियमपि-युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसोलिङ्गम्-न्या सू 1/1/16 एव द्रष्टव्य वात्स्यायन भाष्य।
- ज्ञानाकरणक ज्ञान प्रत्यक्षम्-गगेश उपाध्याय, तत्त्वचिन्तामणि, पृ 52
- बुद्धयादिषटक स्पर्शान्ता स्नेह सासिद्धिको द्रव। अदृष्ट भावनाशब्दा अभी वैशेषिका गुणा।। कारिकानली प्रत्यक्ष **खण्ड**, पृ० 63

इस कारण हे कृशागी, हमारे किसी भी इन्द्रिय रूप मृग से तुम्हारा जाल अतिक्रमण नहीं किया गया है।[1] आचार्य मल्लिनाथ का कथन भी उपर्युक्त तथ्य की सिद्धि भी सहायक है।[2] न्यायसूत्रकार द्वारा सन्निकर्ष का वृहद्विवरण भी इस सन्दर्भ की समीचीनता की पुष्टि करता है।[3]

श्रीहर्ष ने न्यायदर्शन के हेत्वाभास का विवरण भी देवकलि सवाद मे दिया है। हेत्त्वाभास न्याय दर्शन के सोलह पदार्थों मे से एक है। हेत्वाभास उस हेतु को कहते है कि जो वस्तुत हेतु नहीं है किन्तु हेतु जैसा ही प्रतीत होता है जैसा कि हेत्वाभास के अर्थ से स्पष्ट है। (हेतु का आभास होना) गौतम ऋषि का भी मानना है कि हेतु लक्षण न घटने से वस्तुत जो अहेतु हो, परन्तु हेतु सादृश्य से जिनका हेतु की तरह आभास (प्रतीत) होता हो, वे हेत्वाभास कहलाता है। दुष्ट हेतु से भी अनुमान मे हेत्वाभास दोष आ सकता है, अत सामान्यत अनुमान के दोषो को हेत्वाभास कह लिया जाता है। सत् हेतु मे पॉच गुण होते है पक्षसत्त्व सपक्षसत्त्व विपक्षाऽसत्व, असत्प्रतिक्षत्व और अबधित्त्व व। इनमे से किसी भी गुण की त्रुटि होने पर वह हेतु, हेतु न रहकर हेत्वाभास बन जाता है। (हेतुवद् आभासन्ते, न तु हेतव इति हेत्वाभासा) हेत्त्वाभास पॉच प्रकार का होता है, सव्यभिचार, विरुद्ध, प्रकरण सम या सत्प्रतिपक्ष, साध्यसम असिद्ध और कालातीत या बाधित।[4] इनमे सत्प्रतिपक्ष या प्रकरणसम हेत्वाभास का विवरण नैषध मे प्राप्त होता है, जहॉ सत्रहवे सर्ग मे ईश्वर की सत्ता सिद्धि मे दिये गये नैयायिको के तर्को के खण्डन मे कलिप्रतिनिधि कहता है कि "तर्क की प्रकृति अस्थिर होने के कारण क्या कोई ऐसामत है जो आपस मे एक दूसरे के विरुद्ध होकर शक्ति मे समान होने से, सत्प्रतिपक्ष के समान अप्रामाणिक न हो।[5] ध्यातव्य है कि जिस हेतु के साध्य का अभाव दूसरे हेतु द्वारा सिद्ध किया जा सके, उसे सत्प्रतिपक्ष कहते है। यह दोष तब होता है जब एक अनुमान का कोई दूसरा प्रतिपक्षी अनुमान सभव हो। जैसे (१) शब्द नित्य है क्योंकि यह आकाश की भॉति अदृश्य है।[6] (२) शब्द अनित्य है क्योंकि यह घट की भॉति एक कार्य है। उपर्युक्त उदाहरण मे द्वितीय अनुमान प्रथम अनुमान के निगमन को खडित कर दे रहा है। प्रथम अनुमान मे हेतु अदृश्य के द्वारा शब्द की नित्यता सिद्ध की गयी है, किन्तु द्वितीय अनुमान मे हेतु कार्य के द्वारा उसकी अनित्यता सिद्ध की गयी

---

1 स्वप्नेन प्रापिताया प्रतिरजनि तव श्रीषु मग्न कटाक्ष श्रोत्रे गीतामृताब्धौ त्वगपि ननु तनूमञ्जरीसौकुमार्ये।
नासा श्वासाधिवासेऽधरमधुनि रसज्ञा चरित्रेषुचित्त, तन्नस्तन्वङ्गि! कैश्चिन्न करणहरिणैर्वागुरा लघितासि ॥ नै 8/106

2 अत्र चतुर्थपादार्थस्य पूर्वषड्वाक्यार्थहेतुकत्वाद्वाक्यार्थ हेतुक काव्यलिङ्ग तच्च करणहरिणैरित्यादिरूपकेण सकीर्यते। नै 8/106 मल्लिनाथ

3 द्रष्टव्य- न्याय सूत्र 3/1/34 47

4 सव्यभिचाराविरुद्ध प्रकरणसमसाध्यसमकालातीता हेत्त्वाभास। न्या0 सू0 1/2/4
- अनैकान्तिक सव्यभिचार। वही 1/2/5
- सिद्धान्तमभ्युपेत्य तद्विरोधी विरुद्ध। वही 1/2/6
- यस्मात् प्रकरणचिन्ता स निर्णयार्थमपदिष्ट प्रकरणसम। वही 1/2/7
- साध्याविशिष्ट साध्यत्वात साध्यसम। वही 1/2/8
- कालात्यापदिष्ट कालातीत न्या0सू0 1/2/9, एव 1/2/4-9 तक वात्स्यायन भाष्य भी द्रष्टव्य
- सव्यभिचार विरुद्ध सत्प्रतिपक्षासिद्ध बाधिता पञ्च हेत्वाभासा - तर्कसग्रह पृ० 49

5 तर्काप्रतिष्ठया साम्यादन्योन्यस्य व्यतिघ्नताम्।
ना प्रामाण्य मताना स्यात्क्वेषा सत्प्रतिपक्षवत् ॥ नै० 17/79

6 . . . सोऽम हेतुरुभौ पक्षौ प्रवर्तयन्नन्यतस्य निर्णयाय न प्रकल्पते। न्या सू 1/2/7,वा0भा0
- उभय साधर्म्यात् प्रक्रियासिद्धे प्रकरणसम न्या सू 5/1/16, एव वा0 भा0 भी द्रष्टव्य.
- प्रकरणसमस्तु स एष यस्य हेतो साध्यविपरीतसाधक हेत्वन्तर विद्यते। यथा- शब्दोऽनित्योनित्यधर्मरहितत्वात्, शब्दो नित्योऽनित्यधर्मरहितत्वादिति। अयमेव हि सत्प्रतिपक्ष इति चोच्यते। तर्कभाषा, व्याख्याकार, बद्रीनाथ शुक्ल, पृ 122 एव आचार्य विश्वेश्वर, पृ 94-95
- यस्य साध्याभावसाधक हेत्वन्तर सत्प्रतिपक्ष। यथा-शब्दो नित्य श्रावणत्वात् शब्दत्ववद इति, शब्दोऽनित्य कार्यत्वाद् घटवदिति। तर्कसग्रह, पृ 52

है। दूसरे अनुमान का हेतु सही है इसलिए इसके द्वारा पूर्व अनुमान का हेतु खडित हो जाता है, अत पहले अनुमान मे सत्प्रतिपक्ष का दोष है परन्तु यहॉ दोनो बली है, इस कारण एक का भी प्रामाण्य मान्य नहीं है।

नैषधीयचरितम् मे न्यायवैशेषिक के कार्य कारणवाद का विशिष्ट एव मनोरञ्जक शैली मे दमयन्ती के सौन्दर्य वर्णन प्रसग मे विवरण देखने को मिलता है। इस सन्दर्भ मे ये दर्शन असत्कार्यवादी या आरम्भवादी माने जाते है क्योकि इनके अनुसार कार्य अपनी उत्पत्ति से पूर्व कारण मे विद्यमान नहीं रहता। कार्य की सत्ता का आरम्भ उसकी उत्पत्ति के साथ ही होता है।[1] कारण कार्य का अनन्यथासिद्ध नियतपूर्ववृत्ति होता है अर्थात् कारण उसे कहते है जो नियत रूपसे कार्य के पहले (पूर्वभावी) हो, एव जिसकी सत्ता अनावश्यक एव अन्यथासिद्ध न हो तथा कार्य उसे कहते है जो नियत रूप से कारण के बाद (पश्चाद्भावी) म हो तथा जिसकी सत्ता अनावश्यक एव अनन्यथासिद्ध न हो। कारण कार्य के इस सम्बन्ध का विवरण नैषधकार ने दमयन्ती की प्रेम विकलता के वर्णन मे किया है, जहॉ वह लिखते है कि दमयन्ती ने कामिनी मर्यादा विरोधी उस अधीरता (चचलता) को हस गमन से ही सीखा होगा, क्योकि जो जिसके बाद बिना किसी व्यवधान के होता है, वह उसी से सम्पन्न माना जाता है।[2] कारण तीन प्रकार के होते है- समवायिकारण, असमवायि कारण तथा निमित्त कारण। समवायिकारण कारण द्रव्य रूप होता है, जिससे कार्य उत्पन्न होता है, एव यह कार्य मे समवाय सम्बन्ध से रहता है और उससे इसको पृथक् नहीं किया जा सकता जैसे घडे का समवायिकारण मिट्टी तथा कपडे का समकायिकारण तन्तु है। इस प्रकार समवायि कारण उपादान कारण रूप मे ही ग्रहीत होता है।[3]

स्मरणीय है कि समवायिकारण को साख्य वेदान्त आदि मे उपादान ही कहा जाता है। असमवायिकारण सदा गुण या कर्म रूप मे होते है, अर्थात् असमवायि कारण समवायिकारण (उपादान कारण) मे समवाय सम्बन्ध[4] से रहते हुए कार्योत्पत्ति मे सहायक होने से कारण कहा जाता है।

---

1 अनन्यासिद्धनियतपूर्वभावित्व कारणत्वम्- उदयनाचार्य, न्यायकुसुमाञ्जलि, 4/1/19 पृथिव्या रूपरसगन्धस्पर्शा कारणगुणपूर्वका इति रूपाश्रयस्य घटादेर्यत्समवायिकारण कपालादि तद्गुणपूर्वका। तथा च कपालरूप कारणैकार्थसमवायप्रत्यासत्याघटरूपाद्यसमवायिकारणम् एव रसादपि- वै सू 7/1/6 पर उपस्कार
- कारण त्रिविध समवाय्यसमवायिनिमित्तभेदात्। यत्समवेत कार्यमुत्पद्यते तत् समवायिकारणम्। यथा - तन्तव पटस्य, पटश्च स्वगतरूपादे। तर्क सग्रह, पृ 34
- कारणभावात्कार्यभाव वै सू 4/1/3
- रूपादीना कारणै सद्भावात् कार्यं सद्भाव। कारणगुणपूर्वका हि कार्यगुणाभवन्तिघट-पदादौ तथादर्शनात्- वै सू 4/1/3 पर उपस्कार
- उत्पत्तिधर्मकस्य द्रव्यस्य गुणा कारणात् उत्पद्यन्ते। न्या सू 3/1/25 पर वा0भा0
- स्थाल्यादिषु च तुल्यजातीयानामेककार्यारम्भ दर्शनाद् भिन्नजा[illegible]रम्भानुपपत्ति -न्या सू 3/1/31 वा0भा0
- कारणमिति ज्ञानेतरे कार्यनियतपूर्ववर्तित्तातीयवृत्तिपदार्थविभाजकोपाधिमत्तवम्, विवक्षितम्। वै सू 1/1/8 पर उपस्कार
- अनन्यथासिद्धनियतपश्चाद्भावित्व कार्यत्वम्-तर्क भाषा पृ 21
- कार्य मितिप्रागभाव[illegible]पदार्थविभाज्कोपाधिमत्त्व विवक्षितम्। वै सू 1/1/8 पर उपस्कार

2 ध्रुवमधीतवतीयमधीरता दयितदूतपतद्गतवेगत।
स्थितिविरोधकरीं द्वयणुकोदरीं तदुदित स हि यो यदनन्तर। नै 4/3

3 यस्य कार्यात् पूर्वभावो नियतोऽनन्यथासिद्धश्च तत्कारणम्। यथा तन्तुवेमादिक पटस्य कारणम् । तेनानन्थासिद्धनियतपूर्वभावित्व कारणत्वम्। अनन्यथासिद्धनियतपश्चाद्भावित्व कार्यत्वम्। तच्च कारण त्रिविधम्। समवायि-असमवायि निमित्तभेदात्। तत्र यत्समवेत कार्यमुत्पद्यते तत्समवायिकारणम्। यथा तन्तव पटस्य समवायिकारणम्। यतस्तन्तुष्वेव समवेतो जायते, न तुर्यादिषु। तत्रायुतसिद्धयो सम्बन्ध समवाय, ययोर्मध्ये एकमविनश्यदपराश्रितमेवावतिष्ठते तावयुतसिद्धौ। तावेवायुतसिद्धौ द्वौ विज्ञातव्यौ ययोर्द्वयो। अनश्यदेकमपराश्रितमेवावतिष्ठते।। यत्समवेत कार्यमुत्पद्यते तत्समवायिकारणम्। अतस्तन्तुरेव समवायिकारण पटस्य न तु तुर्यादि। पटश्च स्वगतरूपादे समवायिकारण, घटश्च स्वगतरूपादे समवायिकारणम्। तर्क भाषा पृ 19-38

4 नित्यसम्बन्ध समवाय। अयुतसिद्ध वृत्ति। यतोद्वयोर्मध्ये एकमविनश्यदपराश्रितमेवावतिष्ठते, तावयुतसिद्धौ। यथा- अवयवावयविनौ, गुणगुणिनौ, क्रियाक्रियावन्तौ, जातिव्यक्ती, विशेषनित्यद्रव्ये चेति। तर्क सग्रह- पृ 75
तत्रायुतसिद्धयो सम्बन्ध समवाय -तर्कभाषा, पृ 26

जैसे-तन्तुसयोग, जो तन्तुओ (समवायि कारण) मे समवाय सम्बन्ध से रहता है, पट का असमवायि कारण है, और तन्तु इस पट के समवायि कारण है, परन्तु तन्तुरूप पटरूप का असमवायि कारण है।[1] इस प्रकार कार्य और उसका असमवायिकारण दोनो ही समवायिकारण मे समवाय सम्बन्ध से रहते है, परन्तु निमित्त कारण उक्त दोनो कारणो से भिन्न होता है। यह द्रव्य, गुण या कर्म किसी भी रूप मे हो सकताहै। तर्कभाषाकार का कहना है कि जो न समवायिकारण है, न ही असमवायिकारण किन्तु फिर भी जो कारण है, अर्थात् जिसमे कारण का लक्षण अनन्यथासिद्धनियतपूर्वभ्भावित्वम्'' घट जाता है वह निमित्त कारण कहलाता है, जैसे वेम आदि पट का निमित्त कारण है।[2] उपर्युक्त कारणवाद की चर्चा नैषधकार ने अनेक स्थलो मे की है। दमयन्ती के शरीरागो मे कुचो के वर्णन की चारुता मे श्रीहर्ष (हस नल से कहता है) लिखते है कि सभवत (कुम्हार के चाक को) घुमाने का गुण कलश मे अपने निमित्त कारण दण्ड से उत्पन्न हुआ है, क्योकि वह कलश उस (दमयन्ती) का विशाल स्तनद्वय होता हुआ प्रभा प्रवाह समूह (प्रभा प्रवाह रूप चाक या प्रभा प्रवाह से चकवा पक्षी)[3] का भ्रम (भ्रान्ति, पक्षान्तर मे भ्रमण) को उत्पन्न करता है।[4] अवधेय है कि न्याय वैशेषिक दर्शन की मान्यतानुसार समवायिकारण का गुण कार्य मे आता है, यथा मृत्पिण्ड का गुण कलश मे। किन्तु निमित्त कारण का गुण कार्य मे नही आता, जैसे कि दण्ड, चक्र, चीवरादि का गुण कलश रूप कार्य मे नहीं आता, परन्तु यहॉ श्रीहर्ष ने अपनी वर्णन चारुता दिखलाने के लिए सब कुछ न्याय दर्शन के विपरीत ही दिखा डाला, इससे जहॉ यह प्रतीत होता है कि इस रूप मे वह न्यायदर्शन की या तो आलोचना करना चाह रहे है, और या तो उन्हे उनका यह सिद्धान्त मान्य नहीं है, क्योकि उपर्युक्त वर्णन मे कुम्हार के चाक के घुमाने का अपने निमित्त कारणभूत दण्ड का गुण कार्यरूप कलश मे आ गया है, इस कारण से वह कलश दमयन्ती के विशाल स्तनद्वय रूप होकर प्रभासमूह से कुम्हार के चाक का भ्रम कराता है, अर्थात् दमयन्ती के कलशतुल्य विशाल स्तनो की कान्ति समूह को देखकर मनुष्य नीचे ऊपर घूमने लगता है, चकरा जाता है। पक्षान्तर मे यहॉ यह भी अर्थ निकलता है कि वह प्रभा प्रवाह मे चकवा (सामुद्रिक शास्त्रानुसार चकवा पक्षी सुन्दर कुच के उदाहरण माने जाते है) का भ्रम करता है, अर्थात् उक्तरूप स्तनो को देखकर ये चकवापक्षी (दमयन्ती के कुच उनसे सुन्दर होने के कारण) प्रवाह मे घूम रहे है, ऐसी अनुभूति होने से, भ्रम के कारण सभी मनुष्य आश्चर्य से चकित हो जाते है। इस प्रकार उपर्युक्त प्रसग मे दमयन्ती के कुचकलश का निमित्त कारण कुलालचक्र का भ्रम कार्यभूत दमयन्ती के कुचकलश मे द्रष्टव्य है। नैषध के प्राचीन टीकाकार नारायण एव नरहरि जहॉ यहा निमित्त कारण का

---

1 यत्समवायिकारण प्रत्यासन्नमवधृतसामर्थ्यं तदसमवायिकारणम्। यथा तन्तुसयोग पटस्यासमवायिकारणम्। तन्तुसयोगस्य गुणस्य, पटसमवायिकारणेषु तन्तुषु गुणिषु, समवेतत्वेन समवायिकरणे प्रत्यासन्नत्वात्।, अनन्यथासिद्धनियतपूर्वभावित्वेन पट प्रति कारणात्वाच्च एव तन्तुरूप पटरूपस्य असमवायिकारणम्। तर्कभाषा पृ 36, 37

–कार्येण कारणेन वा सहैकस्मिन्नर्थे समवेत सत् कारणमसमवायिकारणम्। यथा तन्तु सयोग पटस्य, तन्तुरूप पटरूपस्य। तर्क सग्रह, पृ 34

विशेष- डॉ0 चण्डिका प्रसाद शुक्ल ने नैषधपरिशीलन, पृ 354 मे दण्ड, चक्र सूत्र आदि को असमवायिकारण माना है, जो उनकी भ्रान्ति या अज्ञानता का परिचायक है, क्योकि असमवायिकारण गुण, या कर्म (क्रिया) ही होता है, जैसे-तन्तु सयोग पट का एव तन्तु रूप पट रूप का असमवायिकरण है।

2 यन्न समवायिकारण, नाप्यसमवायिकारणम्। अथ च कारण तन्निमित्तकारणम्। यथा- वेमादिक पटस्य निमित्तकारणम्। तर्कभाषा पृ० 39

तदुभयभिन्नकारण निमित्तकारणम यथा- तुरीवेमादिक पटस्य। तर्क सग्रह पृ 34

3 चक्रो गणे चक्रवाके चक्र सैन्यरथाङ्गयो। ग्रामजाले कुलालस्य भाण्डे राष्ट्रास्त्रयोरपि।। इति विश्व

4 कलसे निजहेतुदण्डज किमु चक्रभ्रमकारितागुण। स तदुच्चकुचौ भवन् प्रभाझरचक्रभ्रममातनोति यत्।। नै 2/32

प्रसग मानते है,[1] वहीं मल्लिनाथ समवायिकारण का प्रसग रखते है।[2] चाण्डूपण्डित दण्ड को असमवायिकारण मानते हुए असमवायि एव निमित्त दोनो को असमवायिकारण मे सम्मिलित करना चाहा है,[3] जो कि न्याय वैशेषिक दर्शन की मान्यता के विपरीत है। हॉ, उपर्युक्त प्रसग मे यथार्थ रूप मे निमित्त कारण का एव आलकारिक रूप मे समवायिकारण का प्रसग उपस्थित मिलता है, असमवायिकारण का तो बिल्कुल ही नहीं।

नैषध मे कार्य तथा समवायिकारण के गुणो के विवरण की चर्चा हस दमयन्ती सवाद मे भी द्रष्टव्य हे जहॉ हस दमयन्ती से अपने रूप समृद्धि का कारण बताते हुए कहता है कि हम हसो ने स्वर्ग गगा की स्वर्णकमलिनियो के मृणालाग्र खाने के कारण उस भोजन के अनुरूप ही रूप सम्पत्ति का अर्जन किया है, क्योकि कार्य अपने गुणो को अपने कारण से ही प्राप्त करता है।[4] दूतरूपधारी नल के कथन मे भी समवायिकारण का सदर्भ देखने को मिलता है, जहॉ वह सोचते है कि दमयन्ती ने मानो स्तन रूप कलश बनाने वाले यौवन रूप कुम्भकार का उपयोगी सारा उपकरण धारण कर रखा है, क्योकि यदि देखा जाये तो, रोमावलियॉ चक्रदण्ड है, उसके गुण ही सूत है, तथा लावण्य ही जल रूप है।[5] इसी प्रसग का विवरण नल की वीरता के विवरण मे,[6] राजा वपुष्मान के वर्णन[7] तथा राजा पृथु के वर्णन[8] प्रसग मे भी द्रष्टव्य है। साथ ही न्यायवेशेषिक मे प्रसिद्ध उदाहरण 'घट' का विवरण भी श्रीहर्ष ने दमयन्ती के सौन्दर्य वर्णन प्रसग म किया हे, जिसका सदर्भ आज भी सुरक्षित है।[9] नारायण का कथन है कि 'ख्यातस्य प्रसिद्धस्य घटस्य न्यायशास्त्रदिषु'' यत्कृतक तदनित्य, यथा घट'' इति, यन्नित्य न तदकृतकमपि न यथा घट'' इत्यन्वयव्यतिरेकाभ्या निदर्शनत्व दृष्टान्तत्वमजनिजातम्। प्रसिद्धस्य हि दृष्टान्तत्वम्।[10]

न्याय दर्शन मे मन की सत्ता के विषय मे वर्णन मिलता है कि ''मन अणु है, तथा एक है। मन धर्मसमुच्चय रूप तभी सिद्ध होता है जब हम ज्ञानायोगपद्य सिद्धान्त मानते है, अन्यथा मन के महत होने

---

1 हे राजन्! चक्रभ्रम करोत्येवशीलश्चक्रभ्रमकारी तस्य भावश्चक्रभ्रमकारितातल्लक्षणो गुण स्वभाव (य) कलसे घटे दृश्यते स निजस्य स्वस्य घटस्य हेतुर्निमित्तकारण दण्डस्तस्याज्जात किमु? समवायिकारण गुण कार्ये गुणमारभते न निमित्तगुण। अत्र तु निमित्तगुण कार्ये गुणमारभत इति असभाव्यमेतत्तया कुत्र चिदृिष्टिमिति प्रश्नार्थ किमु मया तु दृष्ट। तुङ्गत्वेन कान्तिमत्वेन च तत्कुचौ घटचक्रवाकतुल्याविति भाव। निज सहजश्चासौ हेतुश्च। समवायिकारणमिति यावत्। तादृशो न भवतीति अनिजहेतुर्निमित्तकारण। तादृशादण्डाज्जात किमु इत्युत्प्रेक्षा, आक्षेपा वा। नै 2/32 नारायण
– अन्यत्र समवायिकारणगताद्गुणात् कार्यगुणोत्पत्ति अत्र निमित्तकारणाद्दण्डादपि गुणोत्पत्तिराशङ्क्यते। नै 2/32 नरहरि

2 अत्र समवायिकारणगुणा रूपादय कार्ये सक्रामन्ति न निमित्तगुणा। नै 2/32 मल्लिनाथ

3 निमित्तकारण सहकारिकारणस्य च द्वयस्याप्यसमवायित्तवात्।
अत्र घटे चक्रभ्रमकारिता लक्षणौ गुणो दृश्यते स च असमवायिकारणद्दण्डाजात।नै 2/32 चाण्डू पण्डित

4 स्वर्गापगाहेममृणालिनीना [illegible] भजाम।
अन्नानुरूपा तनुरूप ऋद्धि कार्य निदानाद्धि गुणानधीते।। नै 3/17

5 रोमावलीदण्डनितम्बचक्रे गुण च लावण्यजल च बाला।
तारुण्यमूर्ते कुचकुम्भकर्तुर्बिभर्ति शङ्के सहकारिचक्रम्।। नै 7/90

6 यशो यदस्याजनि सयुगेषु कण्डूलभाव भजता भुजेन।
हेतोर्गुणादव दिगापगालीकूलङ्कषत्वव्यसन तदीयम्।। नै 3/39

7 ता भारती पुरनभाषत नन्वमुष्मिन्काशीरपङ्कनिभग्नजनानुरागे।
श्रीखण्डलेपमयदिग्जयकीर्तिराजिराजद्भुजे भज महीभुजि भैमि! भावम्।। नै 11/72

8 पूजाविधौ मखभुजामुपयोगिनो ये विद्वत्करा कमलनिर्मलकान्तिभाज। लक्ष्मीमनेन दधतेऽनुदिन वितीर्णैस्ते हाटकै स्फुटवराटकगौरगर्भा।। नै 11/101

9 एतत्कुचस्पर्द्धितया घटस्य ख्यातस्य शास्त्रेषु निदर्शनत्वम्। तस्माच्च शिल्पान्मणिकादिकारी प्रसिद्धनामाजनि कुम्भकार।। नै 7/75

10 नै 7/75 नारायण

पर एक ही समय म अनेक इन्द्रियो के साथ मन का सयोग होने पर अनेक ज्ञान उत्पन्न होने लगेगे, चूकि ऐसा होता नहीं है, अत सिद्ध है कि मन अणु तथा एक है।[1] श्रीहर्ष ने न्याय दर्शन के इस तथ्य की सगति नल के अश्वो के विवरण प्रसग मे की है जिसमे वर्णन मिलता है कि नल के अश्वो द्वारा उडायी गयी धूलि इस प्रकार प्रतीत होती थी मानो लोगो के मन परमाणु रूप धारण करके उस अश्व से वेगातिशय सीखने आये हुए है।[2] नारायण भी उपर्युक्त सदर्भ मे लिखते है "अणुपरिमाण मन इति तार्किका[3] उपर्युक्त तथ्य की नैषध मे सगति अन्यत्र भी प्राप्त होती है, यथा हस द्वारा नल के अश्वो की वेगशीलता के विवरण मे, कि वह पखहीन गरुण है, दृष्टिगोचर पवन है, तथा अणु परिमाण से भिन्न (विशाल) मन है, उन अश्वो ने भला कौन सी दिशा को पार नहीं किया है? क्योकि अणु प्रमाण मन ही सब दिशाओ को शीघ्र पार करने मे समर्थ है।[4] आचार्य मल्लिनाथ के कथन से इस तथ्य की स्पष्टता परिलक्षित होती है। यथा- अनणुप्रमाणै अणुपरिमाण मन इति तार्किका तद्विपरीतैर्महापरिणैर्मनोभिर्वैनतेयादिसमानवेगैरित्यर्थ।"[5] साथ ही नारद द्वारा इन्द्र से दमयन्ती के पुरुष विशेष (नल) के अनुराग वर्णन मे भी मन के परमाणु रूप का सन्दर्भ श्रीहर्ष ने रखा है जहॉ वह लिखते है कि दमयन्ती ने उस प्रिय (नल) को अपने परमाणु रूप मन की लज्जा रूपी गुफा मे प्रसुप्त सिह की भाति छिपाकर रखा है।[6] इसलिए तुम्हारे (इन्द्र के) पूछने पर भी मै उस युवक का नाम योग बल से भी बता पाने मे असमर्थ हूँ, क्योकि वह युवक दमयन्ती के परमाणु परिमाण वाले मन के भीतर रहने से उस मन से भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म होने से अज्ञेय है। आचार्यमल्लिनाथ के कथन से भी उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि मिलती है।[7] दमयन्ती के प्रेम विकलता के विवरण मे भी नैषधकार ने नैयायिको के मन को परमाणु रूप मानने की अभीप्सा का प्रतिपादन किया है।[8]

वैशेषिक दर्शन को श्रीहर्ष ने औलूक्य दर्शन मानने की स्वय की अभिव्यक्ति का प्रतिपादन किया है।[9] न्याय के साथ-साथ वैशेषिक दर्शन की मान्यताऍ उन्हे अभीप्सित नहीं थीं, क्योकि वह अद्वैतवेदान्त के समर्थक थे, इस कारण यह कहा जा सकता है कि उन्होने वैशेषिक दर्शन की निन्दात्मक या आलोचनात्मक अभिव्यक्ति के लिए ही औलूक्य दर्शन कहा। इस दर्शन के प्रवर्तक आचार्य महर्षि कणाद है,

---

1 ज्ञानायौगपद्यादेक मन तथा यथोक्तहेतुत्वाच्चाणु- न्या सू 3/2/56 तथा 3/2/59
अणु मन एक चेति धर्मसमुच्चय ज्ञानायौगपद्यात्। महत्त्वे मनस सर्वेन्द्रियसयोगाद् युगपद्विषयग्रहण स्यादिति। न्या सू 3/2/59 पर वात्स्यायन भाष्य।

2 अजस्रभूमीतटकुट्टनोद्धतैरुपास्यमानं चरणेषु रेणुभि । रयप्रकर्षाध्ययनार्थमागतैर्जनस्य चेतोभिरिवाणिमाड्कितै ॥ नै 1/59

3 नै 1/59 में नारायण

4 विनापतत्र विनतातनूजै समीरणैरीक्षणलक्षणीयै। मनोभिरासीदनुप्रमाणैर्न लड्घिता दिक्कतमा तदश्वै ॥ नै 3/37

5 नै. 3/37 मल्लिनाथ

6 यत्पथावधिरण परम सा योगिरधीरपि न पश्यति यस्मत्। बालयानिजमन परमाणौ ह्रीदरीशयहरीकृतमैनम्॥ नै 5/29

7 बालया निजमन एव परमाणु, अणुपरिमाण मन इति सूत्रणात्।
तस्मिन् ह्रीरेव दरी गुहा तच्छयहरीकृत, तद्गतसिहीकृतम्, एन युवान, यस्मान्नपश्यति तस्मान्न कथ्यत इति पूर्वेणान्वय। योगि बुद्धेरपि परमाणु स्वरूप ग्राहित्वमेव नान्त प्रवेशे शक्तिरित्यज्ञानादकथन, न कपटात्। सा तु मन्दाक्षमन्थरतया न कथयतीत्यर्थ नै 5/29 मल्लिनाथ एव 5/29 मे नारायणी टीका भी द्रष्टव्य

8 विधिरनशमभेद्यमवेक्ष्य ते जनमन खलु लक्ष्यमकल्पयत्। अपि स वज्रमदास्यत चेत्तदा त्वदिषुभिर्व्यदलिष्यदसावपि॥ नै 4/88
– विधि अणुपरिमाणत्वान्निरश निरवयम् अत एवभेद्य भेत्तुमशक्य जनमनोऽवेक्ष्य खलु निश्चित ते लक्ष वेध्यमकल्पयद्व्यरचयत्। नै 4/88 में नारायण

9 ध्यान्तस्य वामोरु! विचारणाया वैशेषिक चारुमत मत मे।
औलूक्यमाहु खलु दर्शन तत्क्षम तमस्तत्वनिरूपणाय ॥ नै 22/35

जिन्हे कणभुक्, कणभक्ष, कणव्रत, काश्यप एव औलूक[1] नाम से भी जाना जाता है। वैशेषिक[2] नाम दिये जाने मे अनेक मतो का विवरण मिलता है[3] किन्तु बहुमत मान्यतानुसार विशेष नाम के पदार्थ की नवीन कल्पना के कारण ही इस दर्शन को वैशेषिक नाम दिया गया है।[4] ध्यातव्य है कि जहॉ न्याय दर्शन मे 16

---

1 श्रीनारायण मिश्र ने वशषिक सूत्र की प्रशस्तपाद भाष्य की भूमिका पृ 8,9 मे महर्षि कणाद को उलूक ' मानने क विविध मतों का उल्लेख किया है वे निम्नलिखित हैं-
(अ)डॉ उई द्वारा प्रस्तुत आर्यदेव के शतशास्त्र के व्याख्याकार चीनी विद्वान् चित्सान के अनुसार कणाद का नाम उलूक इसलिए पडा कि ये दिन मे ग्रथ रचना करते थे और रात में उलूक के समान जीविकोपार्जन करते थे- Ui-Vaisheshik Phi- P-3
(ब) व्योमशिवाचार्य किसी कारण का उल्लेख किये बिना ही कणाद का नाम उलूक बतलाते हैं। यथा- अन्ये तु धर्मे सह धर्मिण उद्देश कृत। केनेति बिना पक्षिणा उलूकेन। व्योमवती पृ 114
(स) जैन विद्वान् राजशेखर ने अनुसार उलूक' रूपधारी भगवान शकर के द्वारा इस शास्त्र का उपदेश कणाद का मिला है। यथा- मुनये कणादाय स्वयमीश्वर उलूकरूपधारी प्रत्यक्षीभूय द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायलक्षण पदार्थषटकम् उपदिदेश (राजशेखर) (न्याय लीलावती- भूमिका पृ2 मे उद्धृत) इस दृष्टि से कणाद तथा इनके दर्शन को ओलूक कहा जाता हे।
(द) मिथिला विद्यापीठ से प्रकाशित वैशेषिक सूत्रवृत्ति (2/1/12) मे इन्हे उलूक वेषधारी कहा गया है।
(य) 'वाचस्पत्यम्' कणाद को उलूक ऋषि की सन्तान मानकर औलूक्य कहने के पक्ष मे है एव जैनाचार्य अभयदेवसूरि ने इसी तथ्य का अनुमोदन सम्मति तर्क की व्याख्या मे किया है यथा- एतदेवोक्त भगवता परमर्षिणा ओलूक्येन पृ 140
(र) नैषधीयचरितम् के प्राचीन व्याख्याकार नारायणभट्ट उलूक को कणाद का पर्याय मात्र मानते है।
यथा- नैशेषिकमपि उलूकापरनाम्ना कणादमुनिनाप्रोक्तमित्यौलूक दर्शनम्। नै 22/35

2 द्वित्वे च पाक जोत्पत्ती विभागे च विभागजे। यस्य न स्खलितो बुद्धिस्त वै वैशोषिक विदु।। माधवाचार्य सर्व०द०स० 1/2

3 प्रशस्तपादभाष्य-श्रीदुर्गाधर झा ने भूमिका, पृ 1, 2 में वैशेषिक नाम सम्मत छ प्रकार की अभिव्यक्तियॉ में की हैं एव द्रष्टव्य प्रशस्तपाद भाष्यम्- वैशेषिक सूत्रव्याख्याकार, श्रीनारायण मिश्र, पृ 7-9
– कणान् अत्तीति कणाद तमिति। विशिष्टाऽऽहारनिमित्तसञ्ज्ञोपदर्शनेन असच्चोद्यनिरास। तच्च-कणान् वा भक्षयेत् काम य (मा) हिषाणि दधीनि च। इत्यादि युक्तिसिद्धम्, आचार्य व्योमशिव, व्योमवती, पृ 20 (छ) चौखम्भा प्रकाशन
– कणादमिति तस्य कापोतीं वृत्तिमनुष्ठित रथ्यानिपतितास्तण्डुलकणानादाय प्रत्यह कृताऽऽहारनिमित्ता सज्ञा। अतएव "निरवकाश कणान् वा भक्षयतु इति (तत्र तत्र) उपालम्भ तत्रभवताम्। श्रीधाराचार्य, न्यायकन्दली, पृ 4 स वि वि वाराणसी
– कणान् परमाणून अत्ति सिद्धान्तत्वेन आत्मसात्करोतीति कणाद-Ui-vaisheshika Philosophy, (चौखम्बा प्रकाशन) पृ 6
– पदार्थधर्मसग्रह (प्रशस्तपादभाष्य) तथा किरणावली मे कश्यप गोत्र मे इनकी उत्पत्ति होने के कारण काश्यप कहा गया है।
– परमाणुवाद के आधार पर इस सम्प्रदाय तथा इसके आचार्यों को पैलव (पीलु - परमाणु) कहा गयाहै।- पैलुकेन कणादशिष्येण, धर्मोत्तराचार्य न्यायबिन्दु टीका, (चौखम्बा प्रकाशन) पृ 88

4 डॉ उई में चीनी विद्वान् की एक परम्परा के अनुसार विशिष्ट उपदेष्टा कणाद के द्वारा उपदिष्ट होने के कारण तथा साख्यशास्त्र से विशिष्टतर होने के कारण इस सम्प्रदाय को वैशेषिक नाम देने का विवरण दिया है Ui-Vaisheshik Philosophy, P 4, 9
– वैशेषिकदर्शन के अर्वाचीन भाष्यकार चन्द्रकान्त "अन्य दर्शनों की अपेक्षा इस दर्शन में विशिष्ट तत्त्वो के व्याख्यान से ही इस दर्शन का नाम वैशेषिक मानते हैं- यथा- "यदिद वैशेषिक नाम शास्त्रमारब्ध तत्खलु तन्त्रान्तरात विशेषस्यार्थस्य अभिधानात् चन्द्रकान्तभाष्य (गुजराती प्रेस) पृ 5
– मणिभद्रसूरि ने षड्दर्शनसमुच्चय की व्याख्या मे नैयायिकों की अपेक्षा द्रव्यगुणादितत्त्व को लेकर कणाद क सिद्धान्तो के उत्कर्ष के कारण ही इसे वैशेषिक माना है। यथा-नैयायिकेभ्यो द्रव्यगुणादिसामान्या विशिष्टमिति वैशेषिकम्'' षड्दर्शनसमुच्चयवृत्ति। पृ० 5
– न्यायकोशकार द्वारा भी विशेष नाम के नवीन पदार्थ की कल्पना के कारण इस दर्शन को वैशेषिक नाम दिया गया है, शास्त्ररूपार्थ वैशेषिकशब्दव्युत्पत्ति विशेष पदार्थ भेदमधिकृत्य कृतो ग्रन्थ -न्यायकोश
– श्रीवल्लभ ने अपनी न्यायलीलावती मे 'श्लाघ्या विशेषस्थिति' कहकर सभव है इसी तथ्य (विशेष को पदार्थ मानने की) का सकेत किया हो। न्यायलीलावती, श्लोक-2
– उदयनाचार्य ने किरणावली में तत्त्वनिश्चयपूर्वक व्यवहार करने वालों को वैशेषिक कहा है। यथा-विशेषो व्यवच्छेद तत्त्वनिश्चय तेन व्यवहरतीत्यर्थ। किरणावली (एशियाटिक सोसायटी) पृ 613
– नारायणभट्ट (नैषध के प्राचीन टीकाकार) ने द्रव्य गुण आदि पदार्थों को विशेष मानते हुए इन पदार्थों के तत्त्वज्ञ होने के कारण इस दर्शन का नाम वैशेषिक बतलाया है-नै 22/35
– राधाकृष्णन ने (Indian Philosophy, II Volu, P-176), भारतीय दर्शन (अनुवादक -नन्दकिशोरगोभिल) द्वितीय भाग, पृ 151 मे विशेष (पदार्थ) के कारण वैशेषिक नाम देने के समर्थक हैं एव मूर्धन्य विद्वान् उई (Ui-Vaisheshik Philosophy-P-7) तथा महामहोपाध्याय कालीपद तर्काचार्य उपर्युक्त मत के समर्थक हैं।
– डॉ0 श्रीनारायण मिश्र ने वैशेषिक नाम देने की निम्नलिखित अभिव्यक्तियों का प्रतिपादन किया है। यथा- विशेषाभ्या व्यवच्छेदकाभ्या साधर्म्यवैधर्म्याभ्या (चतुर्थी) प्रभावतीति वैशेषिक शास्त्र, वैशेषिकश्च दार्शनिक अथवा विशेषाभ्या साधर्म्यवैधर्म्याभ्या व्यवच्छेदकाभ्या (तृतीया) व्यवहरतीति वैशेषिक दर्शन, वैशेषिकश्च दार्शनिक। जिसमें उन्होंने व्यवहरतीति वैशेषिक दर्शन को वैशेषिक की उपयुक्त परिभाषा माना है, जो यथार्थ भी है एव विशेष की परिभाषा-विशिष्यते सर्वतो व्यवच्छिद्यते येन स विशेष'' भी उचित है। -द्रष्टव्य प्रशस्तपादभाष्य, वैशेषिक सूत्र व्याख्याकार, श्रीनारायण मिश्र, पृ 11

पदार्थों को मान्यता मिली है, वहीं वैशेषिक दर्शन मे सात पदार्थों को स्वीकार किया गया है, वे है, द्रव्य गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय एव अभाव[1] द्रव्य वह है जो गुण तथा कर्म का आश्रय हो और अपने कार्य का समवायि कारण हो।[2] द्रव्य नौ प्रकार के है- पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, नामक पचमहाभूत तथा काल, दिक्, आत्मा और मन।[3]

अवधेय है कि वैशेषिक दर्शन न्याय से प्राचीन दर्शन है, एव न्याय दर्शन ने प्रमेय के अन्तर्गत वैशेषिक के सातो पदार्थो को समाहित माना है। वैशेषिक दर्शन सम्बर्ध, गवेषण नैषधकार के नल दमयन्ती द्वारा किये गये सन्ध्यावर्णन प्रसड्ग मे द्रष्टव्य है जहॉ नल दमयन्ती से कहते है कि प्रिये। इस तमस के विषय मे मुझे वैशेषिको का सिद्धान्त अत्यन्त रुचिकर प्रतीत होता है, क्योकि वे ही तमस् के निरूपण मे समर्थ है, एव वैशेषिक दर्शन को औलूक दर्शन भी तो कहते है ओर बिना उलूक के तमस् का उचित निरूपण कौन कर सकता है?[4] ध्यातव्य है कि वैशेषिक दर्शन मे तम भाव स्वरूप है? या अभावस्वरूप? ऐसासन्देह होने पर ''तेजो का अभाव ही तम है'' एतदर्थक'' भासामभाव एव तम '' इस सूत्र के (अविरोध) समर्थन या साहाय्य के लिए व्योमशिवाचार्य[5] ने छै पदार्थों के वैधर्म्य से अभाव रूप तम को युक्तियुक्त माना, किन्तु श्रीधराचार्य ने अपनी न्यायकन्दली मे तमस् को द्रव्य न मानकर आरोपित भूरूप ही अधकार है'' ऐसा निश्चय कर तेजो के अभाव मे वास्तविक रूप से अधकार का ज्ञान होने से तेज का अभाव (तेजोभाव) ही तम है ऐसा कहकर उक्त सूत्र के विरोध का परिहार किया है,[6] परन्तु उदनाचार्य ने अपने ग्रथ किरणावली मे तमस् तेजस् का अभाव है, यह सिद्ध कर श्रीधराचार्य के मत का खण्डन किया है। उनका मानना है कि सामान्य, विशेष, समवाय, क्रिया, गुण, दिक्, काल, मन आत्मा, आकाश, तथा वायु मे कहीं भी तम का अन्तर्भाव नहीं हो सकता।[7] अनन्तर वेदान्तदेशिक (वेकटनाथ) ने भी श्रीधराचार्य के मत का खण्डन किया है।[8] उपर्युक्त सदर्भ का आशय है कि जैसे उलूक पक्षी अधकार मे घटपटादि की विशिष्टता

---

1 धर्मविशेषप्रसूताद् द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेष समवायाना पदार्थाना साधर्म्य वैधर्म्याभ्या तत्त्वज्ञानान्नि श्रेयसम् वैशेषिक दर्शन 1/1/4
प्रमेयेषु अपवर्ग (दु खाभावरूप) एव मूर्धाभिषिक्त -न्यायवार्तिक तात्पर्य टीका (चौखम्भा प्रकाशन), पृ 35
तद्भावे सयोगाभावोऽप्रादुर्भावश्च मोक्ष वैशेषिक दर्शन- 5/2/18
- वस्तुतो मोक्षस्याभावरूपतया सोऽभ्यर्हित -वर्धमान न्यायलीलावती प्रकाश, (चौखम्बा प्रकाशन) पृ 16
- अभावश्च वक्तव्य निश्रेयसोपयोगित्वात्-न्यायलीलावती- पृ 16
- षण्ठामपि पदार्थानामस्तित्वाभिधेयत्वानि, प्र पाद भाष्य, पृ-41

2 क्रियागुणवत् समवायिकारण द्रव्यम्- वै सू 1/1/15

3 पृथिव्यापतेजो वायुराकाश कालो दिगात्मा मनइति द्रव्याणि। वैशेषिक दर्शन 1/1/5

4 नै 22/35

5 यच्चेदभागमान्माधुर्य शैत्य वा [illegible]यास्तदप्युपचारात् व्योमवती प्रशस्तपादभाष्य सहित (C S S, N 316, P-47)

6 आरम्भानुपपत्ते नीलिमामात्रप्रतीतेश्च द्रव्यमिद न भवतीति ब्रूम। तर्हि भासामभाव एवाय प्रतीयते। न, तस्य नीलाकारेण प्रतिभासनायोगात् (न्यायकदली)
– तस्मात् रूपविशेषोऽय अत्यन्ततेजोऽभावे सति सर्वत समारोपितस्तम इति प्रतीयते। अभाव पक्षे च भावधर्माध्यारोपो दुरुपवाद तदुरुक्तम् ''न च भासामभावस्य तमस्तत्व वृद्धसमतम्। छायाया कार्ष्ण्यमित्येव पुराणे भूगुणश्रुते ।।
दूरासन्नप्रदीपार्चिर्महदल्पचलाचला देहानुवर्तिनी छाया न वस्तुत्वाद्विना भवेत्।। हाण्डिकी, पृ 504, एव अनिरुद्ध की सांख्यसूत्रवृत्ति 1/56 पर भी द्रष्टव्य। इस पर अनिरुद्ध का मत है ''रूपविशेषोऽय यत्रावरकमस्ति तत्रारोप्य गृह्यते'' अनिरुद्ध तमस् का अभाव रूप न मानकर गुण या द्रव्य रूप मानते हैं।

7 तमो नील न तु नीलिमा तम इति। न चारोपितेन वास्तवेन वा नीलिम्ना तमोबुद्धिव्यपदेशौ समानार्थौ न चायमचाक्षुष प्रत्यय तदनुविधानस्यानन्यथा सिद्धत्वात्। किरणावली, पृ 15 17 (बनारस पकाशन)
– उपर्युक्त तथ्य चित्सुख के तत्त्वप्रदीप, पृ 28 में भी द्रष्टव्य हैं-(N S Ed , 1931)
पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाश कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि- वै सू 1/1/5

8. वेंकटदेशिक कृत न्यायसिद्धाजन, रामानुज स्कूल द्वारा प्रकाशित, पडित भाग-23, एव उनके ग्रथ न्यायपरिशुद्धि (चौखम्बा प्रकाश, पृ 506) पर भी द्रष्टव्य यथा-एतेन वियति वितताना सूक्ष्माणा पृथिव्यवयवाना कृष्णो गुणस्तम इति पक्षोऽपि निरस्त -गुणमात्रतया च कस्याप्यनुलम्भात्।

बता सकता है, वैसे ही कणाद का औलूकदर्शन भी तमस् तत्व के निरूपण मे समर्थ हो सकता है (या अधकार मे उलूक ही देख सकता है) अन्य कोई नहीं। स्मरणीय है कि तम के विषय मे जहॉ कणाद की अभिमति'' द्रव्यगुणकर्मनिष्पत्तिवैधर्म्यादभावस्तम , तेजसो द्रव्यान्तरेणावरच्च है,[1] वहीं कुमारिल मतानुयायी मीमासक एव वेदान्ती तम को द्रव्य मानते है एव प्रभाकर मतानुयायी मीमासक तम को रूपदर्शन का अभाव ;इेम्दबम वि्ज्ञीम् ट्पेवद विब्सिवनत्रद्धमानते है।[2] परन्तु उपर्युक्त सदर्भ मे नैषधकार श्रीधर के साथ-साथ उदयनाचार्य से अधिक प्रभावित दिखते है।

वैशेषिक दर्शन मे द्रव्य वह है जो गुण तथा कर्म का आश्रय हो, और अपने कार्य का समवायी कारण हो,[3] एव गुण वह पदार्थ है जो किसी द्रव्य मे रहते है, परन्तु उसमे स्वय कोई गुण नहीं रहते, अपितु उनमे द्रव्य का ही गुण हो सकता है, अर्थात् गुण अपनी सत्ता के लिए किसी द्रव्य पर आश्रित रहते है, तथा किसी भी पदार्थ के वह समवायिकारण नहीं होते, क्योकि गुण मूर्त रूप नहीं होते। अत गुण द्रव्य के असमवायिकारण ही होते है।[4] वैशेषिक के गुण पदार्थ के विवरण का सकेत नैषध मे इक्वीसवे सर्ग मे नल दमयनी वार्तालाप मे नल द्वारा दमयन्ती के सौन्दर्य वर्णन मे मिलता है, जहॉ वह कहते है कि पीला, वर्ण का गुण है, वह तुम्हारे शरीर पर वर्तमान है (अर्थात् तुम सुवर्णा हो), इस कारण अत्यन्तमधुर हे, सुवर्ण इसी रग को धारण करता है, इस कारण उसे कौन सुवर्ण नहीं कहता? यहॉ नैषधकार पीले वर्ण को सुवर्ण पदार्थ (द्रव्य) का आश्रयी गुण मानते है।[5] महर्षि कणाद ने १७ गुणो का उल्लेख किया है, जिनमे प्रशस्तपाद ने ७ और जोडकर गुणो की सख्या २४ मानी है[6] वे है, रूप, रस, गध,स्पर्श, सख्या, परिमाण, पृथकत्व, सयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दु ख, इच्छा, द्वेष प्रयत्न, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, सस्कार, शब्द, धर्म तथा अधर्म। उपर्युक्त प्रसग मे श्रीहर्ष ने द्रव्यत्व का प्रसग रखना चाहा है।

नैषधीयचरितम् मे वैशेषिक के सात पदार्थो मे सामान्य एव विशेष पदार्थों की चर्चा सन्ध्यावर्णन प्रसग मे दमयन्ती के कथन से प्राप्त होती है जब वह नल से कहती है कि ''भगवान सूर्य की प्राची मे यात्रा करने वाली किरणो ने उस दिशा के स्वामी इन्द्र देव को भलीभॉति देखा है, और शीघ्र ही वे आपको भी देखेगी। वे किरणे सामान्य विशेष का विचार करने मे तथा सदसत् का विवेक करने मे बडी पटु है, अत इन्द्र और आप के सौन्दर्य के तारतम्य का वे उचित विवेचन करेगी।[7] वैशेषिक दर्शन मे सामान्य को नित्य,

---

1 वै सू 5/2/19, 120।

2 रूपदर्शनाभाव -विवरणप्रमेयसग्रह (V S S , P-10) एव सर्वमत सग्रह (T S S P-31)
- आलोकज्ञानाभाव सर्वदर्शनसग्रह (प्रभाकरमत)
- पद्मनाम कृत प्रशस्तपादभाष्य की सेतु टीका (C S S NO 316, P 36) पर भी तम पर विचार द्रष्टव्य हैं।
- वेदान्त मत के समर्थक चित्सुख, विवरणप्रमेय सग्रह एव न्यायसिद्धाजन गथ हैं।
- तम पर विशेष विवरण द्रष्टव्य हण्डिकी, P- 503, 505, 509, 512

3 क्रियागुणवत् समवायि कारणमिति द्रव्य लक्षणम्- वै सू 1/1/15

4 द्रव्याश्रयय्यगुणवान् सयोगविभागेष्वकारणमनपेक्ष इति गुण लक्षणम्। वै सू 1/1/16
- रूपादीना गुणाना सर्वेषा गुणत्वाभिसम्बन्धो द्रव्याश्रितत्व निर्गुणत्व निष्क्रियत्वम्। प्रशस्त पा भा कारण त्वसमवायिनो गुणा 5/2/24
- अथ द्रव्याश्रिता ज्ञेया निर्गुण निष्क्रिया गुणा भाषा परिच्छेद

5 पीतोवर्णगुण सचातिमधुर कायेऽपि तेऽय यथा। य विभ्रत्कनक सुवर्णमिति कैरादृत्य नोत्कीर्त्यते का वर्णान्तरवर्णना धवलिमा राजैव रूपेषु यस्तद्योगादपि यावदेति रजत दुर्वर्णतादुर्यश ।। नै 21/151

6 रूपरसगन्धस्पर्शा सड्ख्या परिमाणानि पृथकत्त्व, सयोगविभागौ परत्वापरत्त्वे बुद्धय सुखदु खे इच्छाद्वेषौ प्रयत्ना गुणा। वै सू 1/1/6 तथा मुक्तावली कारिका 86, एव द्रष्टव्य प्रशस्तपादभाष्य श्रीनारायणमिश्र, पृ 13-15

7 प्रथमककुभ पान्थत्वेन स्फुटेक्षितवृत्तहाण्यनुपदमिह द्रक्ष्यति त्वा महासि महस्यते। पटिमवहनादूहापोहक्षमाणि वितन्वतामहह युवयोस्तावल्लक्ष्मीविवेचन चातुरीम्।। नै 19/26

एक और अनेकानुगत माना गया है। इसे जाति भी कहते है,[1] इनके मत मे सभी मनुष्यो मे अनुगत रहने वाला मनुष्यत्व ही सामान्य है। यह द्रव्य, गुण एव कर्म मे रहता है।[2] स्मरणीय हे कि वस्तुवादी होने के कारण न्याय वैशेषिक जहॉ सामान्य की वस्तुगत सत्ता स्वीकार करता है, वहीं बौद्ध अपोहवाद सामान्य की सत्ता न मानते हुए उसे कल्पना मात्र या नाम मात्र मे स्वीकार करते है तथा, जैन और अद्वैत वेदान्त दर्शन सामान्य की सत्ता व्यक्तियो के अतिरक्त और उनसे भिन्न नहीं मानता, साथ ही कल्पना मात्र भी नहीं मानता, जबकि आधुनिक दार्शनिक (वस्तुवादी) बर्टेन रसेल का मानना है कि सामान्य एक नित्य कालातीत पदार्थ है जो अनेक विषयो मे व्याप्त रह सकता है।[3] विशेष के विषय वैशेषिक दर्शन की मान्यता हे कि जो द्रव्य निरवयव होने के कारण नित्य है, उनके विशिष्ट व्यक्तित्त्व को ही विशेष कहा जाता है। प्रत्येक नित्य द्रव्य मे, परमाणु, आत्मा और मन मे, आकाश, काल और दिक् मे अपना विशेष होता है, जो उसे अन्य द्रव्यो से भिन्न करता है। इस प्रकार जिन नित्य द्रव्यो मे किसी प्रकार का भेद करना सभव न हो, उन द्रव्यो मे भेद करने के लिए विशेष नामक पदार्थ की कल्पना वैशेषिक दर्शन मे की गयी है। यह "विशेष" स्वभावत व्यावर्तक होता है[4] अर्थात् एक नित्य द्रव्य मे रहने वाला विशेष उसे अन्य नित्य द्रव्यो से भिन्न करता है साथ ही एक विशेष दूसरे विशेष से स्वत भिन्न भी होता है। यदि विशेष को स्वतोव्यावर्तक नहीं माना जाय, तो अनवरथा दोष उत्पन्न हो जायेगा।[5] उपर्युक्त प्रसग मे नैषधकार ने नल एव इन्द्र के सोन्दर्य विवरण को अलग-अलग, एव उनकी विशिष्ट विशेषताओ को अलग-अलग बताने के लिए सामान्य विशेष का प्रसग रखा है, जिनका गवेषणा विधा मे महनीय स्थान भी है।

न्याय वैशेषिक वर्णन मे परमाणुओ का अप्रतिम महत्व है। ये नित्य अनन्त निरवयन, स्वभाव से निष्क्रिय परस्पर भिन्न एव जगत के उपादान कारण के रूप मे वैशेषिक दर्शन को अभीष्ट है।[6] बाह्यार्थवादी ये दोनो दर्शन परमाणुओ से ही सृष्टि एव सहार की प्रक्रिया को सचालित मानते है, जो ईश्वर (महेश्वर) के सकल्पों से ही सम्पन्न होता। प्रलय के विषय मे इनकी मान्यता है कि, पृथ्वी जल तेज और वायु, जिनको दोनो दर्शन कार्य रूप मे मानते हैं प्रलयावस्था मे सभी कार्य द्रव्यो का नाश हो जाता है, परन्तु फिर भी वे परमाणु रूप मे आकाश मे रहते है, इस अवस्था मे जीवात्माओ का अदृष्ट फल देने से विमुख हो जाता है।[7] सृष्टि के विषय मे इनकी मान्यता ,है कि जब महेश्वर मे सृष्टि की इच्छा उत्पन्न होती है, तब

---

1 जातिरेवाऽऽकृति प्राह व्यक्तिर्विज्ञायते तया सामान्य तच्च पिण्डानामेकबुद्धि निबन्धकम्।। श्लोकवार्तिक-3

2. **नित्यमेकमनेकानुगत सामान्यम् द्रव्यगुणकर्मवृत्ति।**
तर्कसग्रह पृ-70 नित्यत्त्वे सति अनेकसमवेतत्त्वम् तथा अनुवृत्तिप्रत्ययहेतुभूतो नित्य धर्म सामान्य , वही पृ 71
द्रव्यगुणकर्मणा द्रव्य कारण सामान्यम्-वै0सू0 1/1/18
-द्रव्याणा द्रव्य कार्य्यं सामान्यम्-वै0सू0 1/1/23, एव वै0सू0 1/2/3 16 भी द्रष्टव्य
द्रष्टव्य तर्क भाषा, पृ०-28,87, एव Outlines of Jainism-J L Jani, P-115, वेदान्त- परिभाषा-अध्याय-1, तर्कामृत अध्याय-1, भाषापरिच्छेदमुक्तावली, पृ 8, 14, 15, पदार्थ धर्म सग्रह, पृ 164, न्यायलीलावती, पृ 80-81।

3 Problems of Philosophy- Bertrand Russel, Chapt.IX

4 नित्यद्रव्यवृत्तयो व्यावर्तका विशेषा तर्कसग्रह- पृ 73,स्वतो व्यावर्तकत्व विशषत्वम्, अन्त्यत्व सति नित्यद्रव्य वृत्तित्वविशेषत्वम्, स्वतोव्यावर्तकत्व विशेषत्वम्। तर्क सग्रह- पृ 74 एव 75 पर भी द्रष्टव्य

5 नित्यद्रव्यवृत्तयो व्यावर्तका विशेषास्त्वनन्ता एव। व्यावृत्तिबुद्धिमात्रहेतु -तर्कभाषा, पृ० 248, तकीमृत अध्याय-1, पदार्थधर्म सग्रह, पृ०-168। भाषापरिच्छेदमुक्तावली-10 पर भी द्रष्टव्य

6 विशेष विवरण हेतु द्रष्टव्य- तर्कभाषा, पृ० 182-83 न्या0 भा0 4/2/16,20 मुक्ता, कारि 36-37, सेतु टीका पृ 218 व्योमवती, पृ० 224, न्या0वा0 4/2/25 न्या0कन्दली पृ० 262-263, वै0सू0 7/1/18-22, न्या0 सू0 4/2/17

7 यदा सहरार्था तदा तदनुरोधात् अदृष्टाना वृत्तिनिरोध औदासीन्यलक्षणो जायते। यदा त्वसौ सृष्टयर्था भवेत्तदा वृत्तिलाभ स्वकार्यजनन प्रति व्यापारो भवति। न्यायकन्दली- गगानाथ झा ग्रथमाला पृ० 128 एव विशेष विवरण हेतु द्रष्टव्य- **पदार्थधर्मसंग्रह**, पृ० 122-131, वै0सू0 4/2/1 5 न्या0 कन्दली पृ० 80 129, व्योमवती पृ० 300-301, तर्कभाषा- पृ० 185, किरणावली, पृ० 310-313,

जीवात्माओ के अदृष्ट जो कुण्ठित रूप मे जीवात्माओ मे विद्यमान रहते है, फल देने के लिए उन्मुख हो उठते है, इस प्रक्रिया मे उन्मुख अदृष्ट, जीवात्मा और परमाणुओ के सयोग से पहले वायु के परमाणुओ मे क्रिया उत्पन्न होती है, इससे दो दो परमाणुओ के सयोग से द्वयणुओ की उत्पत्ति होती है, फिर सब द्वयणुको मे परस्पर क्रिया प्रतिक्रिया से तीन-तीन द्वयणुको से त्रयणुक, चार-चार त्रपणुको से चतुरणुक, एव पाच-पाच चतुरणुको से एक-एक पचाणुक की उत्पत्ति होती, इसी परम्परा से बढते बढते एक महावायु की उत्पत्ति होती, एव इसी रीति से क्रमश जल, पृथ्वी और तेज नाम महाभूतो की उत्पत्ति भी होती है। इन महाभूतो के उत्पन्न हो जाने पर महेश्वर के सकल्प से एक अण्ड की उत्पत्ति होती है, जिसे ब्रह्माण्ड कहा जाता है, इसमे तेज के परमाणु उपादान कारण एव पृथ्वी के परमाणु निमित्त कारण रूप मे रहते है, फिर ब्रह्मा (ईश्वर) जीवात्माओ के अदृष्टो के अनुरूप असख्य प्राणियो एव उनके भोग सामग्री का निर्माण करता है।[1] एव उनके कर्मों के अनुसार उन्हे फल भी देता है।

न्याय वैशेषिक सम्मत सृष्टि की सगति का विवरण नैषध मे दमयन्ती से विदा लेते हुए हस के कथन मे उपलब्ध होता है, जिसमे वह दमयन्ती से कहते है, कि अब तुम दोनो का परस्पर सगम हो, तुम दोनो के मन अपनी-अपनी विलास कलाओ को व्यक्ते करते हुए सुशोभित हो, एव परस्पर सयोग के कारण उसी तरह कामदेव की रचना मे प्रवृत्त हो, जैसे दो परमाणु द्वयणुक उत्पन्न करते है।[2] स्पष्ट है कि यहॉ हस नल तथा दमयन्ती के दो परमाणु रूप मनो (अणु परिमाण मन) के मिलने से एक नई सृष्टि का पुन. निर्माण करता दिखता है। आचार्य नारायण भी यहॉ वैशेषिको के सृष्टि सिद्धान्त रखने के श्रीहर्ष के विवरण को रखते हुए नल दमयन्ती के मन को एक होने का भाव उपर्युक्त सदर्भ मे मानते है। स्मरणीय है कि न्याय वैशेषिक दर्शन के परमाणुवाद तथा पाश्चात्य दार्शनिको के परमाणुवाद मे पर्याप्त सम्यता है क्योकि वे भी परमाणुओ के विभिन्न सयोग से शरीर की उत्पत्ति तथा इनके वियोग से नाश मानते है, किन्तु दोनो की इस मान्यता मे गुणात्मक एव परिणामात्मक' अन्तर भी है, क्योकि जहॉ न्यायवैशेषिक के अनुसार परमाणु मे गति अदृष्ट के कारण होती है एव अदृष्ट भी ईश्वराधीन[3] है वहीं पाश्चात्यो के मत मे परमाणुऔ का सयोग यन्त्रवत एव सयोग विभाग के कारण परमाणुओ मे आन्तरिक गति होती, एव डिमाक्रिट्स ने तो ईश्वर को भी परमाणु निर्मित माना है[4] और यदि अन्तर या वैषम्य की ही बात की जाय तो स्वय न्याय एव वैशेषिक दोनो मे, परमाणुवाद के सदर्भ मे अन्तर दिखायी पडता है, क्योकि जहॉ वैशेषिक दर्शन पीलुपाकी कहा जाता है क्योकि वह परमाणुओ मे ही पाक क्रिया (Chemical action) स्वीकार करता है, अवयवी मे नहीं, वहीं न्यायदर्शन परमाणुओ एव उसके अवयव अवयवी (द्वयणुक आदि) मे भी पाक क्रिया स्वीकार करता है, इसीलिए इन्हे पिठरपाकी कहा जाता है।[5]

---

1 तर्स्मिश्चतुर्वदनकमल सर्वलोकपितामह ब्रह्माणा सकलभुवनसहितमुत्पाद्य प्रजासर्गे विनयुङ्क्ते। स च महेश्वरेण विनयुक्तो ब्रह्मा अतिशयज्ञानवैराग्यैश्वर्यसम्पत्र प्राणिना कर्म विपाक विदित्वा कर्मानुरूपज्ञानभोगायुष सुतान प्रजापतीन् मानसान् मनुदेवर्षि पितृगणान् मुखबाहूरुपादतश्चतुरो वर्णानयानि च उच्चावचानि भूतानि च सृष्टयाऽऽशयानुरूपैर्धर्मज्ञान वैराग्यैश्वर्य सयोजयतीति । वैशेषिक दर्शन भाष्य, गगानाथझा, ग्रथ माला पृ० 130, न्याय कन्दली पृ० 48-54, एव द्रष्टव्य वै सू0 2/1/25, तर्कभाषा- व्याख्याकार, बद्रीनाथ शुक्ल, पृ० 240 244 भारतीयदर्शन, उमेशमिश्र पृ० 232 234, भारतीय दर्शन-एन, के देवराज, पृ० 308-311, 360, 368 भारतीय दर्शन का इतिहास, पृ० 335 337

2 अन्योन्यसङ्गभवशादधुनाविभातातस्यापितेऽपिमनसीविकसद् विलासे।
सष्टु पुनर्मनसिजस्य तनु प्रवृत्तमादाविव द्वयणुककृत परमाणुयुग्मम् ॥ नै० 3/125

3. कि भूतं परमाणुयुग्मम्? मनसिजस्य कामस्य तनु शरीर पुन सृष्टप्रवृत्तम्। अत एवादौ द्वयणुक करोति द्वयणुक्कृत। सक्रियाभ्यां द्वाभ्यां परमाणुभ्यामेक द्वयणुमारभ्यते एव क्रमेण महत्कार्यमारभ्यते इति सिद्धान्त· ततश्च युवयोरेव मनोद्वयेन कर्तुं शक्यते नान्येति भाव5। नै० 3/125 नारायण

4 द्रष्टव्य, History of Phiosophy- Frank Thili - P- 48

5 विशेष विवरण हेतु द्रष्टव्य- भारतीय दर्शन, देवराज - पृ० 310

न्याय दर्शन की सृष्टि प्रक्रिया एव ईश्वर के अस्तित्व के विवेचन मे "अदृष्ट" का महनीय योगदान है। अदृष्ट का विवरण भी नैषध्कार ने इन्द्र कलि सवाद मे इन्द्र द्वारा कलि को समझाने मे रखा है, जहॉ इन्द्र कलि को नल स शत्रुता छोड देने की सलाह देते है, और कहते है कि अदृष्ट (देश, काल, ईश्वरेच्छा) आदि तुम्हारे अधीन नहीं है, क्योकि तुम कार्य साधक द्रष्ट सामग्री को ही जुटा सकते हो, अदृष्ट (सामग्री) को नहीं। यदि नल दमयन्ती के भाग्य मे दु ख नहीं लिखा होगा, तो तुम व्यर्थ मे पाप के भागी बनोगे और यदि दुख ही लिखा होगा तो तुम्हारे उद्योग नहीं करने से भी होगा ही, किन्तु उसमे निमित्त बनने से तुम्हे दोष का भागी होना पडेगा। इस रूप मे नैषधकार ईश्वर के अस्तित्व का भी प्रतिपादन करना चाह रहे हे, क्योकि न्याय दर्शन आगम प्रमाण से ईश्वर की सत्ता के अस्तित्व को स्वीकार करता है।[1] उनके मत मे ईश्वर इस जगत का निमित्तकारण, ज्ञान, इच्छा, यत्न आदि गुणो से युक्त, नित्यमुक्त सर्वज्ञ, जीवात्माओ के अदृष्टो का उद्बोधन करने वाला सर्वशक्ति सम्पन्न आत्मा है[2] एव अदृष्ट, जीवात्माओ के कर्म और फल के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है तथा पुण्य तथा पाप को ही अदृष्ट कहते है,[3] तथा इसी अदृष्ट के द्वारा कर्मफल का उदय होता है, और ईश्वर उस अदृष्ट का नियन्ता है। आचार्य मल्लिनाथ एव नारायण के कथन भी अदृष्ट के सन्दर्भ की उपर्युक्त सदर्भ मे पुष्टि करते दिखते है।[4]

वास्तव मे जिसे देखा नहीं जा सकता, उसे हम अदृष्ट शब्द से अभिहित कर लेते है। न्याय वैशेषिक दर्शन के अनुसार ससार मे सम्पादित होने वाले प्रत्येक कार्य अदृष्ट के द्वारा ही निष्पन्न होते है, जैसा कि महर्षि कणाद के कथन से निगमित किया जा सकता है।[5] उनकी यह भी मान्यता है कि विहित कर्मों के अनुष्ठान से धर्म तथा उसके नहीं करने से अथवा निषिद्ध कर्मों के अनुष्ठान से अधर्म उत्पन्न होता है।[6] अनुमान से अदृष्ट की सिद्धि तो हो सकती ही है, परन्तु उदयनाचार्य ने जागतिक वैचित्र्य एव सासारिक व्यवहार की क्रियाओ के द्वारा भी अदृष्ट को सिद्ध करने का प्रयास किया है[7] उनकी भी मान्यता है कि अदृष्ट के कारण ही भोग का प्रत्यात्मनियमत्त्व उत्पन्न होता है, अन्यथा किसी एक व्यक्ति के द्वारा किये गये कर्म का फल अन्य व्यक्ति को मिलने लगता। साथ ही एक ही परिवार के दो व्यक्तियो मे एक को दु ख एव दूसरे को सुख मिलना भी इसी के कारण होता है और यह अदृष्ट के कारण ही होता है। फलत. हम कह सकते है कि न्याय शास्त्र के अनुसार कार्यमात्र के प्रति अदृष्ट का निमित्तकारणत्व, वैचित्र्य और विश्ववृत्तित्व हेतुओ से उसकी सिद्धि तथा भोग के प्रत्यात्मनियमत्व के कारण अदृष्ट का जीवनिष्ठत्व उत्पन्न होता हे।

---

1 करिष्येऽवश्यमित्युक्ति करिष्यन्नकप दुष्यसि। दृष्टादृष्टा हि नायत्ता कार्यीया हेतवस्तव।। नै 17/147

2 कार्यायोजनधृत्यादे पदात्प्रत्ययत श्रुते। वाक्यात् सख्याविशेषाच्च साध्योविश्वविदव्यय ।। न्या०कु0 5/1
तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्- वै०सू० 1/1/ एव 10/2/9 न्या०कु० 1/1, न्या० वार्तिक - 4/1/21, पृ० 459-60, न्या०क० पृ 141

3 भारतीय दर्शन - आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ 205

4 वृद्धाच्छ दृष्टादृष्टा लक्षितालक्षिता ,हेतव कारणानि, दण्डचीवरादयो दृष्टहेतव , कालकर्मेश्वरेच्छादयोऽदृष्टा हेतव इत्यर्थ तव ते, आयत्ता अधीना , न किन्तु तत्कार्योत्पादिका सामग्री कालवशाददृष्टवशाच्च स्वयमेव सम्पाद्यते, न तु त्वया सम्पादयितु शक्या, तथा च करिष्येऽवश्यमित्युक्त्वा पापकार्येऽकृेऽपि मनसि तच्चिन्तथया मुखे तदुच्चारणेन च भवद्विधाना पातक जातमिति भाव। नै 17/146 मल्लिनाथ एव द्रष्टव्य 17/147 नारायण

5 वृक्षाभिसर्पणमित्यदृष्टकारित्वम्- वै.सू 5/2/7

6 अभिषेचनोपवासब्रह्मचर्य गुरुकुलवासवानप्रस्थयज्ञदानप्रोक्षणदिङ्नक्षत्रमन्त्रकालनियमाश्चादृष्टाय- वै०सू० 6/2/2, न्याय०कु 1/7

7 विफलाविश्ववृत्तिर्नो न दु खकफलापि वा। दृष्टलाभफलानापि विप्रलम्भोऽपि नेदृश ।। नया0 कु 1/8 एव 1/8 का गद्यखण्ड भी द्रष्टव्य

अवधेय है कि साख्य दर्शन जहॉ अदृष्ट की कल्पना को अपेक्षित नहीं समझता, क्योकि उसके अनुसार महत्तत्त्व आदि पदार्थ से सासारिक वैचित्र्य उत्पन्न हो सकते है, वहीं मीमासको के "अपूर्व" ओर न्याय वैशेषिको अदृश्ट मे बहुत कुछ साम्य दिखायी पडता है "स्वर्गकामोऽश्वमेधेन यजेत् "श्रुतिवाक्य से हम यह निगमित कर सकते हे कि यागसम्पादन तथा स्वर्ग प्राप्ति के मध्य एक अपूर्वात्मक व्यापार की परिकल्पना होती है, एव यही स्थिति नैयायिको के अदृष्ट की भी है। ये दोनो एक जैसे प्रतीत तो होते है, परन्तु यथार्थ मे अदृष्ट व्यापक हे एव अपूर्व व्याप्य। अदृष्ट जहॉ कार्यमात्र के प्रति निमित्त कारण होता है, वहीं अपूर्व नहीं क्योकि अपूर्व केवल मन्त्र के द्वारा अनुष्ठान से उत्पन्न होता है। प्रायश्चित से जहॉ अदृष्ट का नाश होता है, वहीं अपूर्व मे ऐसा कुछ नहीं होता। हॉ, भोगनाश्यत्व दोनो मे है, किन्तु जहॉ अपूर्व भोग्य, यागोपकरण तथा जीव मे रहता है,[1] वहीं अदृष्ट केवल जीवनिष्ठ माना गया है, जो जड रूप है एव ईश्वरेच्छा से चलायमान होता है। अत प्रत्यक्षाविषयत्त्व तथा अनुभवगम्यत्त्व से जहॉ दोनो समान है, वहीं अपूर्व सस्कार विशेष होने से, एव अदृष्ट धर्माधर्मरूप होने से एक दूसरे से पृथक भी है। नैषधकार ने उपर्युक्त प्रसग मे जो अदृष्ट की सगति दिखायी है, उससे यह प्रतीत होता है कि वह अदृष्ट (पाप पुण्य) से अत्यधिक प्रभावित थे। श्रीहर्ष के साथ-साथ महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण[2] एव महाभारत आदि काव्यो मे भी नैयायिक सम्मत अदृष्ट का विवरण मिलता है। महर्षि व्यास लिखते है कि -

पौरुष दैवसम्पत्या काले फलति पार्थिव ।
त्रयमेतन्मनुष्याणा पिण्डित स्यात् फलावहम् ।।

न्याय दर्शन के अनुसार ईश्वर अशरीरी भाव से सृष्टि करता है।[3] वैशेषिक आचार्य प्रशस्तपाद तथा उनके अनुयायी भी ईश्वर को अशरीरी मानते है।[4] श्रीहर्ष ने इस तथ्य की सगति कलिप्रतिनिधि द्वारा कामदेव के वर्णन प्रसग मे की है, जिसमे कलिप्रतिनिधि कहता है कि यह कामदेव, मानो बुद्ध की स्पर्धा से, लोकजित होने का भाव धारण करता है, और जगत मे मानो ईश्वर की स्पर्धा से, अशरीरी होकर कर्त्ता बनता है।[5] उपर्युक्त तथ्य के स्पष्टीकरण मे यह कहा जा सकता है कि शिवजी की नेत्राग्नि मे भस्म हो जाने के कारण शरीर रहित अर्थात् अनङ्ग (कामदेव) ही इस लोक मे (शरीर रहित) शिवजी का कर्तत्त्व है, एव जिस प्रकार नैयायिको के मत से अशरीरी शिवजी ही लोक के द्रष्टा या सृष्टिकर्ता है, उसी प्रकार यह कामदेव भी मानो उन शिवजी के साथ स्पर्द्धा करता हुआ अशरीरी (अनग) होकर इस ससार मे कामियों के मनोविकार या मैथुन द्वारा सब लोगो के प्रति कर्तत्त्व धारण कर रहा है।[6] इस सदर्भ मे कलिप्रतिनिधि ने नैयायिको द्वारा मान्य ईश्वर की अवधारणा का खण्डन करना चाहा है। ध्यातव्य है कि

---

1 तस्मात् फले प्रवृतस्य यागादे शक्तिमात्रकम्। उत्पत्तौ वापि पश्वादेरपूर्वं न तत पृथक्।। श्लोकवार्तिक, चोदनासूत्र, श्लोक-1199

2 यद्चिन्त्य तु तद्दैव भतेष्वपि न हन्यते। व्यक्त मयि च तस्या च पतितोहि विपर्यय कश्चदैवेन सौमित्रे योद्धुमुत्सहते पुमान यस्य नु ग्रहण किचित् कर्मणोऽन्यन्न दृश्यते।।
-सुखदु खे भयक्रोधौ लाभालाभौ भवाभवौ। सस्य किञ्चित्तयाभूत ननु दैवस्य कर्म तत्।। रामायण 2/22/20 22

3 इतश्चानुपपत्तिस्तार्किकपरिकल्पितस्येश्वरस्य। सहि परिकल्प्यमान कुम्भकार इव मृदादीनि प्रधानादीन्यधिष्ठाय प्रवर्तयेत्। न चैवमुपपद्यते। न ह्यप्रत्यक्ष रूपादिहीन च प्रधानमीश्वरस्याधिष्ठेय, मृदादिवैलक्षण्यात्। ब्र0 सू0 2/2/39 पर शा भा न्या सू 3/2/63, 4/1/18, एव वा भा दृष्टव्य।

4 व्योमशिवाचार्य व्योमवर्ती- पृ 304,-305, श्रीधराचार्य-न्याय कन्दली-पृ 138-139

5 बिभर्ति लोकजिद्भाव बुद्धस्य स्पर्द्धयेव य। यस्येशतुलयेवात्र कर्तृत्वमशरीरिण ।। नै 17/16

6 यस्य स्मरस्य ईश तुलया इव ईश्वरसाम्यापेक्षया इवेत्यर्थ। देहदाहकारीश्वरस्पर्द्धयेवेति यावत्, शरीर न भवतीति अशरीरि तस्य अशरीरिण दग्धदेहत्वाद् अनङ्गस्य सत, अत्र लोके, कर्तृत्वम् एकत्र-जेतृत्वम्, अन्यत्र स्रष्टत्वम् उपादानादिगोचरापरोक्षज्ञानादिमत्वादेवेश्वरस्य कर्त्तृत्व शरीरमतन्त्रमिति तार्किका। नै 17/16 मल्लिनाथ -यथा
- अशरीरिण एवेश्वरस्य कर्तृत्वमिति न्यायविद, तथा अयमप्यनङ्ग एव सन् कार्यकारीत्यर्थ। जिनमहेशाभ्या जितोऽपि लोकजित्त्वेनाशरीरकर्तृत्वेन च य पुनस्ताभ्या सम। नै 17/16 नारायण

अधिकाश नैयायिको[1] एव वैशेषिक विद्वानो के साथ प्रसिद्ध मीमासक कुमारिलभट्ट[2] ने भी ईश्वर रूप मे भगवान शिव की वन्दना की है। बोधिचर्यावतारपञ्चिका[3] मे न्याय के ईश्वर विवरण प्रसग मे जहॉ शकर ही ईश्वर के रूप मे वर्णित मिलते है, वहीं न्यायसार के प्रणेता भासर्वज्ञ ने शिव तथा परमेश्वर को एक बताते हुए शिवदर्शन से ही मोक्षप्राप्ति मिलने का सन्दर्भ भी रखते है।[4]

सांख्य दर्शन

आस्तिक दर्शनो मे साख्य दर्शन भी परिगणित है। महर्षि कपिल मुनि इस दर्शन के प्रवर्तक माने जाते है।[5]व्यास के वाक्य "साख्य वै मोक्षदर्शनम्" से इस दर्शन की महनीयता का पता भी चलता है। यह

---

1 शास्त्रेषु नैयायिका सदाशिवभक्तत्वाच्छैवा इत्युच्यन्ते, तेन नैयायिकशासनशैवमाख्यायते। हरिभद्रकृत षडदर्शनसमुच्चय पर गुणरत्न की टीका, पृ 51, एशियाटिक सोसाइटी प्रकाशन वर्ष 1904
- चूणामणी कृतविधुर्षलयीकृतवासुकि । भवो भवतु भव्याय लीलाताण्डव पण्डित ।। श्रीविश्वनाथ न्याय पञ्चानन मुक्तावली-1
- शङ्कोन्मेषकलङ्किभि किमपरैस्तन्मे प्रमाण शिव ।। उदयनाचार्य, न्याय कुसुमाञ्जलि 4/4 उत्तरार्द्ध
- निधायहृदि विश्वेश विधायगुरुवन्दनम् अन्नमभट्ट-तर्कसग्रह-1
- तेन स्यान्मुदितो हिमाचल सुतावामार्धदेह शिव , तर्कसग्रहदीपिका के भास्करोदया नाम की टीका के टीकाकार लक्ष्मीनृसिह
- तस्मै नम सहजदीर्धकृपानुबन्ध लब्धत्रितत्वतनवे पुरुषोत्तमाय। वल्लभाचार्य न्यायलीलावती
- प्रणम्य शम्भु जगत पति पर समस्ततत्वार्थविद स्वभावत । भासर्वज्ञ न्यायसार
- मयि जल्पति कल्पनाधिनाथे रघुनाथ शिरोमणि, तत्त्वचिन्तामणि, के दीधिति नाम की टीका के टीकाकार
- गुणातीतोऽ[illegible]चिवस्त्रय क्षरमय । तत्त्वचिन्तामणि, गगेश उपाध्याय
- ससारजलधिसेतै वृषकेतो सकलदु खसमहेतौ फलमखिलमर्पितमेतेन प्रीयनाभीश ।न्यायवार्तिक- उद्योतकर
- नमामि धर्मविज्ञान वैराग्यश्वर्यशालिने- न्याय दर्शन (गौतम- वात्स्यायन भाष्य)
- योगाचारविभूत्या यस्तोषयित्वा महेश्वरम्। प्रशस्तपादाचार्य, प्रशस्तपाद भाष्य, ग्रथ के अत से उद्धृत

2 विशुद्धविज्ञानदेहाय त्रिवेदीदिव्यचक्षुषे। श्रेय प्राप्ति निमित्ताय नम सोमार्थधारिणे।। श्लोकवार्तिक। 1/1/1
- विश्वेश्वर महादेव स्तुतिपूर्व नमस्यति। न्याय रत्नाकर, प्रथम श्लोक का उत्तरार्द्ध

3 ईश्वर इति शकरस्याख्या। बोधिचर्यावतारपजिका- पृ 544

4 एको रुद्रो न द्वितीययायतस्थे य इमाल्लोकानीशतईशनीधिरित्याद्यागमाच्चेति।
नयायसार, आगम परिच्छेद, त्रिवेन्द्रम सस्कृत सिरीज, पृ 125
- **एवमेतानि योगाङ्गानि मुमुक्षुणा सर्वेषु ब्रह्मादिस्थानेष्वनेकप्रकारदु** ख भावमानयानभिरतिसञ्ज्ञित पर वैराग्य महेश्वरे च परा भक्तिमाश्रित्यात्यन्ताभियोगेनसेवितव्यानि। ततोऽचिरेणैव कालेन भगवन्तमनौपम्यस्वभावभाव .शैवमवितथ प्रत्यक्षत पश्यति। त द्रष्ट्वा निरतिशय श्रेय प्राप्नोति। तथा चोक्त-
यदाचर्मवदाकाश वेष्टयिष्यन्ति मानवा । तदाशिवमविज्ञाय दु खस्यान्तो भविष्यति।।
तमेव विदित्वा[illegible] इत्यादि च। तस्माच्छिवसन्देशनादेव मोक्ष इति। वही पृ 140-141

5 भारतीय दर्शन, राधाकृष्णन द्वितीय भाग, पृ० 219-220
एभि सम्यक् प्रयुक्तैर्हि प्रीयन्ते देवता क्षितौ। निर्माणमेतद् युष्माक प्रवृत्तिगुणकल्पितम्।
मयाकृत सुरश्रेष्ठा यावत्कल्पक्षयादिह। चिन्तयध्व लोकहित यथाधीकारमीश्वरा ।
मरीचिरङ्गिराश्चात्रि पुलस्त्य पुलह कृतु। वशिष्ठ इति सप्तैते मानसा निर्मिता हिते।।
एते वेदविदो मुख्या वेदाचार्याश्च कल्पिता। प्रवृत्तिधर्मिणश्चैव प्राजापत्ये च कल्पिता ।।
अय क्रियावता पन्था व्यक्तीभूत सनातन। अनरुिद्ध इति प्रोक्तो लोकसर्गकर प्रभु ।।
सन सनत्सुजातश्च सनक ससनन्दन। सनत्कुमार कपिल सप्तमश्च सनातन।।
सप्तैते मानसा प्रोक्ता ऋषयो ब्राह्मण सुता। स्वयमागतविज्ञाना निवृत्ति धर्ममास्थिता ।।
एते योगविदो मुख्या सांख्य ज्ञान विशारदा। आचार्या धर्मशास्त्रेषु मोक्षधर्मप्रवर्तका ।। महा0भा0 12/340/67 74
- साख्यस्य वक्ता कपिल परमर्षि पुरातन । हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्य पुरातन ।। श्वे0 उप0 5/2
- कपिलोऽग्रज इति पुरावचनात् कपिलो हिरण्यगर्भो वा व्यपदिश्यते। श्वे0उप0 5/2 पर शा0भा0
- रामायण -1/4 41,
- भागवत पुराण 2/7/3, 3/24/36
- साख्यप्रवचनभाष्य - 6/70
- कपिलोनाम विष्णोरवतारविशेष प्रसिद्ध स्वयम्भूर्हिरण्यगर्भस्तस्यापि साख्य योगप्राप्तिर्वेदे श्रूयते। स एवेश्वर आदिविद्वान् कपिलो विष्णु स्वयम्भूरिति भाव । तत्व वैशारदी 1/25
- कपिल परमर्षि च य प्राहुर्यतय सदा। अग्नि स कपिलो नाम साख्ययोगप्रवर्तक ।। महा0 11/3/65
पञ्चमो कपिलोनाम सिद्धेश कालविप्लुतम् । प्रोवाचासुरये साख्य तत्त्वग्रामविनिश्चयम्।। श्रीमद्भागवत 1/3/11
- गन्धर्वाणा चित्ररथ सिद्धाना कपिलो मुनि।। गीता 10/26

प्रकृति एव पुरुष दो मूल तत्त्व मानता है एव इन्हीं के परस्पर सम्बन्ध से जगत के आविर्भाव को सभव बताता है। न्याय वैशेषिक एव बौद्धो के असत्कार्यवाद के विरुद्ध साख्य दर्शन सत्कार्यवाद मानता है, जो इस दर्शन का मूल (आधार) सिद्धान्त है उनकी मान्यता है कि उत्पत्ति से पूर्व कार्य कारण मे अव्यक्त रूप से विद्यमान रहता है। जहॉ वाचस्पति मिश्र ने बौद्धो, वैशेषिको, नैयायिको एव वेदान्तियो के कार्यकारण सिद्धान्त का खण्डन किया है[1] वहीं ईश्वर कृष्ण ने सत्कार्यवाद के पक्ष मे यथार्थ तथ्यो का साक्ष्य भी रखा है।[2] साख्य दर्शन के सत्कार्यवाद या कार्यकारणवाद पर उसका प्रकृतिवाद भी निर्भर है क्योकि प्रकृति की सिद्धि कारण के रुप मे उसके कार्यों द्वारा होती है। सत्कार्यवाद के दो रूप होते है। प्रथम परिणामवाद, जिसके अनुसार कार्य की उत्पत्ति का अर्थ है कारण का वास्तव मे रूपान्तरित हो जाना जैसे दूध का परिणाम दही बनना, परिणामवाद है, साख्य दर्शन को यही मत अर्थात् परिणामवाद (प्रकृति परिणामवाद) ही मान्य है, द्वितीय रूप, विवर्तवाद की मान्यता है कि कारण मे जो विकार या रूपान्तर दिखायी पडता है, वह यथार्थ नहीं बल्कि आभासमात्र है, जैसे रस्सी मे सर्प का आभास होना, इसमे कार्य की प्रतीति होती है, यह मत अद्वैत वेदान्त का हे, जिनकी मान्यता है कि कार्यकारण का यथार्थ रूपान्तर नहीं, बल्कि विवर्त (आभास) मात्र है। साख्य के सत्कार्यवाद को नैषध मे विविध प्रसगो मे श्रीहर्ष ने सम्पुटित किया हे यथा हस द्वारा दमयन्ती से अपने रूप सम्पत्ति को प्राप्त करने मे,[3] हस द्वारा दमयन्ती सवाद मे कारण मे कार्य का लय हो जाने के सकेत मे,[4] गाय के शुद्ध घृत वर्णन मे कारणगतगुण का कार्य मे होना, उचित मानने मे[5] साख्य दर्शन के अभीप्सित मत का, कि कार्य कारण मे जन्य जनक भेद नहीं होता, अर्थात् कारण कार्य मे अभिन्नता होती है, तथा कार्य कारण के अन्दर विद्यमान रहता है तथा कार्य व्यापार, जो कारण मे पहले से तिरोहित था, आविर्भूत मात्र कर देता है।[6] एव बीज रूप मे कारण मे कार्य की सत्ता होने से वह सत् भी होता है, की सगति भी नैषध महाकाव्य मे नल एव याचक बने देवगणो के सवाद मे देखने को मिलती है, जहॉ नल देवताओ से कहते है कि "जन्य जनक अर्थात् कार्यकारण मे भेद नहीं होता, और यह जन शरीर अन्न (भक्ष्य पदार्थ) से उत्पन्न है, यह दोनो कथन सत्य है। अमृत को खाने वाले आप लोगो के शरीर को देखकर मेरी दृष्टि अमृत मे निमग्न हो रही है।[7] उपर्युक्त प्रसग मे अमृत कारण तथा इन्द्रादि देवो का शरीर अमृत भक्षण करके उत्पन्न होने से कार्य रूप मे रखने की अभीप्सा नैषधकार ने व्यक्त की है।[8] उपर्युक्त तथ्य का अर्थात् कारण मे ही कार्य का लय होता है, साख्य दर्शन की इस मान्यता का विवरण श्रीहर्ष ने नल द्वारा परशुरामावतार की स्तुति मे भी किया है, जिसमे नल कहते है कि प्रभो! सृष्टि करते

---

1 साख्य कारिका -3 की वृत्ति, एव द्रष्टव्य साख्य तत्त्वकौमुदी व्याख्याकार रम.शकर भट्टाचार्य पृ 27 32

2 असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात्।
शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम्।। साख्यकारिका, 9 एव साख्य तत्त्वकौमुदी, वही पृ० 75 88

3 स्वर्गापगाहेममृणालिनीना नालामृणालाग्रभुजो भजाम।
अन्नानुरूपा तनुरूपऋद्धि कार्यं निदानाद्धि गुणानधीते।। नै० 3/17

4 सत्त्वसु तत्स्वेतमधूत्थसान्द्रे तत्पाणिपद्मे मदनोत्सवेषु।
लग्नोत्थितास्त्वत्कुचपत्रलेखास्तन्निर्गतास्त प्रविशन्तु भूय ।। नै० 3/123

5. यदादि हेतु सुरभि समुद्भवे भवेद्यदाज्य सुरभिर्ध्रुव तत ।
वधूभिरेभ्य प्रवितीर्य पायस तदोघकुल्यातटसैकत कृतम्।। नै० 16/70

6 तत्त्वकौमुदी का ---------- 9

7 नास्ति जन्यजनकव्यतिभेद सत्यमन्नजनितो जनदेह।
वीक्ष्य व खलु तनूममृतादा दृड्निमज्जनमुपैति सुधायाम्।। नै० 5/94

8 जन्यजनकयो कार्यकारणयोर्व्यतिभेदो नास्ति, कार्यं स्वोपादानादभिन्नमित्यर्थ। जनदेह अन्नजनित भुक्ताहारपरिणामश्चेत्येतदुभय सत्यमित्यर्थ। कुत, अमृतमदन्तीत्यमृताद। जनदेहानामन्नजन्यत्वे तद्वदेव युष्माद्देहानामपि तथात्वे कथमेतत्सुधाकार्यकारित्व न स्यादित्यर्थ। नै० 5/94 मल्लिनाथ

हुए ब्रह्मरूप तुम्हारे ही बाहुद्वय से जो क्षत्रिय जाति उत्पन्न हुई, उस क्षत्रिय जाति के लय (नाश) के लिए परशुराम शरीरधारी आपके बाहुद्वय विजयी हो।[1] यहॉ नैषधकार कारण रूपी भुजाओ मे कार्यरूपी क्षत्रिय जाति का लय मानते है, जो ऋग्वेद के "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहूराजन्य कृत ऊरूतदस्य यद्वैश्य पद्भ्या शूद्रो अजायत्।[2] एव तैत्तरीय सहिता के "स मुखतस्त्रि वृत निरमिमीत्"[3] तथा महाभारत के वाक्य, "अपनी-अपनी उत्पत्ति के कारण मे सभी का शमन होता है,[4] की सगति साख्य के सिद्धान्त, "नाश कारणालय (कारण मे कार्य का लय होना ही नाश है) से की है, परन्तु अद्वैत वेदान्त, जो जाति को नित्य मानता है, उनके मत मे यहॉ क्षत्रिय जाति का आविर्भाव एव तिरोभाव ही समझना तर्कसगत होगा।[5] साथ ही साख्यो के प्रकृतिपरिणामवाद का सदर्भ नैषध मे इक्कीसवे सर्ग मे शुक सोन्दर्य वर्णन मे प्राप्त होता है, जहॉ श्रीहर्ष अभिहित करते है कि पके हुए (लाल रग के) विम्बफल खाने के परिणाम स्वरूप लालचोच वाले तथा कच्चे फल (आम) खाने के परिणामस्वरूप योग्य (हरे-हरे) पखो वाले सौन्दर्य राशि के समान शुक को (पिजडे को) कर कमल मे धारण करती हुई कोई एक सखी (भोजन कर चुकीं, तथा सगति सभा जाती हुई) दमयन्ती के पीछे चली।[6] इस विवरण मे नैषधकार द्वारा 'कारणगत गुण को कार्य मे आने से लाल बिम्ब फल को खाने से उनके परिणाम योग्य (कीर की) चोच को लाल रग का, तथा हरे फल के खाने को उसके परिणाम के योग्य पखो को हरे रग का होने मे, साख्यो के प्रकृतिपरिणाम (सत्कार्यवाद) का सकेत माना जा सकता है।[7] परिणाम का अर्थ साख्य दार्शनिको के मत मे एक तत्त्व का दूसरे तत्त्व के रूप मे वास्तविक परिवर्तन है, अर्थात्, अवस्थित (स्वरूपत स्थिर या अक्षुण्ण) द्रव्य के एक धर्म की निवृत्ति (तिरोधान) और दूसरे धर्म के प्रादुर्भाव (प्रकट होने) का नाम ही परिणाम है।[8] चूॅकि साख्य का कार्यकारण सिद्धान्त मूलतत्त्व प्रकृति पर आधारित है, इसलिए इनके कार्यकारण सिद्धान्त को प्रकृतिपरिणाम कहा जाता है। आचार्य शङ्कराचार्य ने भी सत्कार्यवाद का सुन्दर निरूपण वृहदारण्यक भाष्य मे किया है,[9] जब कि न्याय वैशेषिको के असत्कार्यवाद का खण्डन।[10]

---

1 क्षत्रजातिरुदियाय भुजाभ्या या तवैव भुवन सृजत प्राक्।
जामदग्न्यवपुषस्तव तस्यास्तौ लयार्थमुचितौ विजयेताम्।। नै० 21/65

2 ऋ0स0 8/4/18

3 तै0 स0 7/1/1/4

4 अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मत क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम्। तेषा सर्वत्रग तेज स्वासु योनिषु शाम्यति।। महा0 शान्तिपर्व 56/24

5 नाश कारणालय इति साङ्ख्यादिसिद्धान्तात् कार्यहि कारणे एव लीन भवतीति सर्वत्र दर्शनाच्च कार्यभूता क्षत्रजाति प्रति तव भुजयोरेव कारणतात् क्षत्रजातेस्तव भुजयोरेव लीनत्वस्यौचित्यादिति भाव। नै० 21/63 मल्लिनाथ
–तस्या क्षत्रजातेर्लयार्थ क्षयार्थं जामदग्न्यवपुषस्तव तौ (यौ) भुजौ उचितौ, कारणे कार्यलयस्यौचित्यात्। नै० 21/65 नारायण

6 तामन्वगादशितबिम्बविद्याकचञ्चो, स्पष्ट शलाटुपरिणत्युचितच्छदस्य।
कीरस्य काऽपि करवारिरुहे वहन्ती सौन्दर्यपुञ्जमिव पञ्जरमेकमाली।।नै० 21/22

7 परिणते परिणामस्य, उचितौ योग्यौ, नीलौ इति यावत्,। नै० 21/108 मल्लि0
– तस्य परिणतिरतिनीलता तस्या उचितास्तद्योग्या अतिनीलश्च्छदा प्रक्षा यस्य, अपक्वानि श्यामानि भक्षितानि फलान्तराणि बिम्बीफलान्येव वा यदीयच्छदाकारेण परिणतानीति यावत्-नै० 21/122 नारायण

8 जहद् धर्मान्तर पूर्वमुपादार्ते यदा परम्। तत्त्वादप्रच्युतो धर्मी परिणाम स उच्चये।। युक्तदीपिका सा का-16
– परिणामो नामावस्थितस्य द्रव्यस्य धर्मान्तरनिवृत्ति धर्मान्तर प्रवृत्तिश्च।-युक्तदीपिका, का0 9
– साख्य का यह मत कि कारण अपने आप को कार्य के रूप मे निरन्तर परिणत करता रहता है, परिणामवाद कहा जाता है। वेदान्तियो का मत विवर्तवाद कहा जाता है, क्योंकि वे मानते हैं कि कारण सदा वही रहता है, उससे जो कार्य दिखायी देते है वे केवल नाम और रूप के मिथ्या आभास हैं- माया मात्र हैं। एस एन दास गुप्ता-भारतीय दर्शन का इतिहास पृ० 264

9 द्रष्टव्य-वृहदारण्यक उप0 भाष्य-1/2/1

10 द्रष्टव्य- ब्रह्मसूत्र श0 भाष्य- 2/1/18

साख्य दर्शन मे प्रकृति त्रिगुणात्मिका, चेतन, परिणामशालिनी एव समस्त जगत का मूल कारण है[1] एव तीनो गुणो सत्व, रज, तथा तम की साम्यावस्था ही प्रकृति है।[2] आस्तिक दर्शन होने के कारण इस दर्शन की यह भी मान्यता है कि स्वर्गादि प्राप्तिजनित सुख त्रैगुणिक है। प्रत्येक सुखभोग भोक्ताजीव को अवश्य ही भोगान्त मे अवसन्न कर देता है, और वह स्वय भी दु खोत्पत्ति का द्वारभूत हो जाता है। इस प्रकार यज्ञादि कर्मों मे जो हिसारूप तामसभाव है, उसके द्वारा उत्पन्न फल के भोग करने के साथ-साथ जो सात्विक भाव है उसके फल का भी भोग, जीव (मनुष्य) को करना पडेगा [3] साख्यो के उपर्युक्त तथ्य का सकेत नैषध महाकाव्य मे चन्द्र वर्णन प्रसग मे चन्द्रमा के विषय मे दमयन्ती के उद्गारो मे मिलता है, जहॉ वह नल से कहती है कि यह सुधाशु जिसका सम्पूर्ण वैभव ही देवो का भोग्य बनता है, वास्तव मे साक्षात् यज्ञ रूप ही है, ओर जिस प्रकर सर्वतोविशुद्ध होते हुए भी यज्ञ मे पशुहिसा एक मलिनता सी होती है, उसी प्रकार इस चन्द्र का कलङ् उसकी मलिनता बनी है।[4] स्मरणीय है कि न्याय वैशेषिक की तरह साख्य एव योग दर्शन भी वस्तुवादी है, दोनो दर्शन मिलकर एक पूर्ण दर्शन बनते है[5] क्योकि जहॉ साख्य बौद्धिक तत्त्व चिन्तन की पृष्ठभूमि निर्मित करता है, वहीं योग उसे प्राप्त करने की क्रिया या साधना प्रदान करता है। गीता मे भी साख्य को ज्ञान एव योग को कर्म रूप माना गया है।[6] साख्य एव योग की तत्त्वमीमासा एव ज्ञानमीमासा की समान है[7] क्योकि साख्यो के २५ तत्त्वो, एव प्रमाणत्रय (प्रत्यक्ष अनुमान, शब्द) को योग उसी रूप से स्वीकार करता है अन्तर[8] सिर्फ इतना हे कि योग साख्य के २५ तत्वो के

---

1 मूल प्रकृतिरविकृतिर्महदाद्या प्रकृतिविकृतम सप्त।
षोऽशकस्तु विकारो न प्रकृतिन। विकृतिर्न विकृति पुरूष ।। साख्यकारिका -3
– त्रिगुणमविवेकि विषय सामान्यमचेतनम्प्रसवधर्मि। व्यक्त तथा प्रधानस्य तद्विपरीतस्तथा च पुमा।। वही कारिका-11 –
तत्कारण साख्ययोगाभिपन्न ज्ञात्वा देव मुच्यते सर्वपाशै। श्वे0 उप0 6/13
साख्ययोगौ पृथग्बाला प्रवदन्ति न पण्डिता। एकमप्यास्थित सम्यगुभयोर्विन्दते फलम्।।
यत्साख्यै प्राप्यते स्थान तद्योगैरपि गम्यते। एक साख्य च योग च य पश्यति स पश्यति।। गीता 5/4,5
प्रीत्यप्रीते विषादात्मका प्रकाशप्रवृत्तिनियमार्थ। अन्योन्याभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्तयश्च गुणा। सा0का0 12
सत्व लघु [illegible] चल च रज। गुरुवरणकमेव हि तम0 प्रदीपवच्चार्थतो वृत्ति। वही कारि0 13
भेदाना परिमाणात् समन्वयात् शक्तित प्रवृत्तेश्च। कारणकार्यविभागादविभागाद् वैश्वरूप्यस्य।।वही का0-16
– कारणमस्त्यव्यक्तम् का0 16, साख्य तत्त्वकौमुदी

2 गुणाना साम्यावस्था प्रकृति प्रकृतिरिति उच्यते विचारोत्पादकत्वात्, अविद्या ज्ञानविरोधत्वात् माया सृष्टिकरणत्वात्- साख्यप्रवचन भाष्य

3 दृष्टवदानुश्रविक स ह्यविशुद्धिक्षयातिशययुक्त। तद्विपरीत श्रेयान् व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात्।। साख्यकारिका-2 एव तत्त्वकौमुदी पृ० 17-21 भी द्रष्टव्य।

4 इज्येव देवव्रजभोज्यऋद्धि शुद्धा सुधादीधितिमण्डलीयम्।
हिसा यथा सैव तथाऽड्गमेषा कलकमेक मलिन विभर्ति।। नै० 22/74
– अस्मिञ्शिशौ न स्थित एव रड्कुर्यूनि प्रियाभिर्विहितोपदाऽयम्।
आरण्यसन्देश इवौषधीभिरड्के स शड्के विधुना न्यधायि।। नै० 22/76
– शुद्धाया मालिन्ययोगस्या नौचित्यादित्यर्थ शुद्धस्यापि श्रौतधर्मस्य साख्यैर्दोषारोपणान्मालिन्य मुधैवेत्यर्थ। नै०22/74, नारायण एव मल्लिनाथ।

5 प्रत्यिप्राति विषादात्मका प्रकाशप्रवृत्तिनियमार्था। अन्योन्याभिवाश्रयजननमिथुन्वृत्तयश्च गुणा।। सा0का0 -12
सत्व लघु प्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भक चल च रज। गुरुवरणकमेव हि तय प्रदीपवच्चार्थतो वृत्त। वही कारि0-13

6 लोकेऽस्मिन द्विविधा निष्ठा पुराप्रोक्ता मयानघ। ज्ञानयोगेन साख्याना कर्मयोगेन योगिनाम्।। गीता 3/3

7 साख्य एव योग समान विद्या के प्रतिपादक शास्त्र हैं। साख्य अध्यात्म विद्या का सैद्धान्तिक रूप (विवेक ज्ञान से कैवल्य प्राप्ति मानने के कारण) है, योग उसका (विवेक ज्ञान किस प्रकार प्राप्त होता है) व्यावहारिक रूप है। दोनो एक दूसरे के पूरक हैं, दोनों दर्शनो की ज्ञानमीमासा, कर्ममीमासा, प्रमाणमीमासा, सृष्टिमीमासा, तत्वमीमासा, ससारमीमासा तथा कैवल्य मीमासा तुल्य है। एम0के देवराज भारतीय दर्शन- पृ० 406

8 तत्त्वमीमासा के अनेक सिद्धान्तों पर साम्य होने पर भी साख्य और योग में महान अन्तर है। साख्य स्फोटवाद का खण्डन करता है, परन्तु योग मण्डन करता है। आचार्य बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, पृ० 285

अतिरिक्त ईश्वर[1] की भी सत्ता स्वीकार करता है, शायद इसीलिए योग को सेश्वरसाख्य भी कहते है। जहॉ तक साख्य दर्शन की बात है, तो महाभारत, गीता आदि ग्रथो मे साख्य दर्शन का जो स्वरूप मिलता हे, वह ईश्वरवादी माना जा सकता है[2] किन्तु ईश्वर कृष्ण के समय मे साख्य का (शास्त्रीय) स्वरूप निरीश्वरवादी हो गया, जो कि जैन, एव बौद्ध दर्शन के प्रभाव का परिणाम माना जा सकता है किन्तु बाद के साख्याचार्यो यथा- विज्ञानभिक्षु आदि ने साख्य दर्शन मे ईश्वर की सत्ता को पुन प्रतिष्ठापित करने का प्रयास किया परन्तु योग दर्शन के ईश्वर को उसी रूप मे साख्य द्वारा न अपनाना, दोनो को सेश्वर साख्य (योग) और निरीश्वर साख्य (साख्य) रूप मे विभेदित तो करता ही है।[3]

योग दर्शनः

"नैषधीयचरितम्" मे योग दर्शन की विषय सामग्री प्रभूतरूप मे उपलब्ध है। अन्याय प्रसङ्ग स्थलो के साथ-साथ नल कृत देवार्चना विवरण मे योग दर्शन की नैषधकार ने इस रूप मे विषयवस्तु प्रतिपादति की है, मानो वह योगशास्त्र का सहारा लेकर इस ग्रथ को लिख रहे हो। हस एव दमयन्ती सवाद मे नैषधकार ने हस मुखेन कहलवाया है कि विरचि के अनेक मुखो द्वारा प्रतिपादित योगशास्त्र के श्रवण से मेरे कर्ण पूर्णपूत हो चुके है, इसलिए मै (हस) अपने निर्दोष हृदय मे जिस बात को धारण करता हूँ, वह दूसरे तक नहीं जाने पाती।[4] महर्षि पतञ्जलि के अनुसार चित्तवृत्तियो का निरोध ही योग है, चूँकि चित्तवृत्तियो (प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति) का निरोध समाधि मे होता है, अत योग को समाधि भी कहते है।[5] योगदर्शन के अनुसार शरीर, इन्द्रिय और चित्त की शुद्धि के लिए अष्टाग योग अर्थात् यम (अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एव अपरिग्रह), नियम (शौच, सतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्राणिधान), आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि द्वारा ही होती है।[6] साधक (योगी) योग क्रिया काल मे शान्त तथा मौन रहता है, एव योगपट्ट (ऊर्ध्ववस्त्र रूप मे) भी धारण करता है,[7] इस तथ्य का सकेत भी श्रीहर्ष ने कुण्डिनपुरी के वर्णन मे किया है, वे लिखते है कि जब निशीथ वेला मे कुछ क्षण के लिए नगरी मे नीरवता होती है, तो ऐसा प्रतीत होता है, मानो वह नगरी प्राकार (चार दीवारी) पक्ति का योगवस्त्र धारण कर मणिभवनरूपी किसी विशुद्ध अन्तर्जोति की उपासाना कर रही है।[8]

महर्षि पतञ्जलि के अनुसार ध्येय वस्तु के ज्ञान की एकतानता का नाम ध्यान है[9] अर्थात् ध्येयवस्तु मे जब साधक की चित्तवृत्तियाँ निरन्तर एकाकार रूप से प्रवाहित हो, तब साधक की इस स्थिति को ध्यान कहते है। ध्यान की स्थिति मे साधक को ध्याता, ध्येय, और ध्यान की अलग-अलग रूप से प्रतीति होती रहती है जब कि समाधि की स्थिति मे साधक के चित्त की ध्येय वस्तु मे विक्षेपरहित एकाग्रता रहती है,

---

1 क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्ट पुरुषविशेष ईश्वर यो-सू 1/24

2 एव षड्विशक प्राहु शारीरमिह मानवा साख्य साख्यात्मकत्वाच्च कपिलादिभिरुच्चये।। मत्स्य पु० 4/28

3 तत्त्ववैशारदीन 4/3 योग वार्तिक, 1/24, प्रवचनभाष्य 5/1-2, दास गुप्ता, भारतीय दर्शन, पृ० 265

4 वार्तापि नासत्यपि सान्यमेति योगादरन्ध्रे हृदि या निरुन्धे।
विरञ्चिनानाननवादधौतसमाधिशास्त्रश्रुतिपूर्ण कर्ण ।। नै० 3/44

5 योगश्चित्तवृत्ति निरोध तदाद्रष्टु स्वरूपेऽवस्थानम्। योगासूत्र – योग समाधि योगभाष्य 1/1

6 यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टाङ्गानि। यो सू 2/29
– मैत्रायणी उपनिषद मे योग के छै अग बताये गये हैं यथा- प्राणायामप्रत्याहारध्यानधारणतर्कसमाधिषडग इत्युच्यते योग ।। मैत्रा0 उप0 6/8

7 अन्ययापि योगिन्या क्षणमौनिन्या आश्रितयोगपट्टया च निर्मलमविद्यादिदोष रहित किमपि वाड्मनसयोरविषयम् अवाह्यमाभ्यन्तरमात्मलक्षण ज्योतीरात्रौ पूज्यते, विषयीक्रियत इत्यर्थ। नै० 2/78 नारायण

8 क्षणनीरवया यया निशि श्रितवप्रावलियोगपट्टया । मणिवेश्यमय स्म निर्मल किमपि ज्योतिर बाह्यमिज्यते।। नै० 2/78

9 तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्- यो सू 3/2
– तस्मिन्देश ध्येयालम्बनस्य प्रत्ययस्यैकतानता सदृश प्रवाह प्रत्ययान्तरेणापरामृष्टो ध्यानम्।। यो0सू0 3/2 पर भाष्य

तथा साधक का ध्यान ध्येय वस्तु का आकार ग्रहण कर लेता है। सम्पूर्ण बाह्यविषयो से साधक का पूर्ण रूप से अलगाव, समाधि की अवस्था मे ही होता है अर्थात् समाधि मे ध्याता, ध्यान और ध्येय की त्रिपुटी म ध्याता तथा ध्यान ध्येकार हो जाते है एव केवल ध्येय ही शेष बचता है। समाधि एव ध्यान की इस स्थिति का सकेत हस एव दमयन्ती वार्तालाप प्रसग मे मिलता है जहॉ हस दमयन्ती से कहता है कि दमयन्ती, पुण्य से आज तुम्हे प्राप्त करके, तुम मे ध्यान (मन) लगाने वाले नल की, अमृततुल्य प्राप्त करने वाली बाह्येन्द्रियॉ, जो अब तक तप के कारण उपवास करती थीं, आज अपने देवत्त्व को चरितार्थ करे।[1]

महर्षि पतञ्जलि ने समाधि के दो प्रकार गिनाये है, सम्प्रज्ञात समाधि तथा असम्प्रज्ञात समाधि। सम्प्रज्ञात समाधि (सम्यक् ज्ञायते साक्षात्क्रियते ध्येयमस्मिन् इति सम्प्रज्ञात) मे साधक (योगी) को ध्येय वस्तु का ज्ञान बना रहता है किन्तु ध्याता तथा ध्यान दोनो ध्येयाकार हो जाते है, इनकी ध्येय से पृथक् अनुभूति नहीं होती।[2] यह चतुर्विधा होती है-सवितर्क, सविचार, सानन्द और सास्मित,[3]या वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत, तथा अस्मितानुगत चार भेद सम्प्रज्ञात योग के होते है। सम्प्रज्ञात समाधि को सबीज समाधि, सवितर्क समापत्ति एव सविकल्पक समाधि कहते है। सम्प्रज्ञात समाधि का विवरण भावनावश हुए नलकृत विष्णु की प्रार्थना मे द्रष्टव्य होता है, जहॉ नल भावना मे विष्णु का साक्षात्कार करके भक्ति के उद्रेक मे प्रेम तथा भक्ति के योग्य (नृत्य, गीत) आदि का आचरण करने लगे।[4] यहॉ नैषधकार द्वारा साकार ईश्वर की स्तुति करने मे ध्येय तथा ध्यानकर्ता के भावयुक्त साकार ध्यान को सम्प्रज्ञात समाधि कहा गया है। श्रीमद्भागवत् मे भी कहा गया है कि-

श्रण्वन्सुभद्राणिरथाङ्गपाणेर्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके ।
गातानि नामानि तदर्थकानि गायन्विलज्जो विचरेदसङ्ग ।।

असम्प्रज्ञात समाधि मे चित्त सर्वथा निरुद्ध हो जाता है एव ध्येय वस्तु का ज्ञान भी नहीं रहता तथा ध्याता, ध्येय, ध्यान की त्रिपुटी का अनिवर्चनीय तत्त्व मे विलय हो जाता है। असम्प्रज्ञात समाधि को निर्बीज एव[5] निर्वितर्कसमापत्ति एव वेदान्त मे निर्विकल्पक समाधि कहते है। ब्यास भाष्य के अनुसार असम्प्रज्ञात समाधि या योग दो प्रकार का होता है, भवप्रत्यय एव उपाय प्रत्यय।[6] उपाय प्रत्यय समाधि मे प्रकृतिलीन व्यक्तियो के समान विदेह देवता की लीन रहते है। असम्प्रज्ञात समाधि का सकेत श्रीहर्ष ने विष्णु अवतार के वर्णन मे किया है जहॉ वह लिखते है कि जीव को अनन्त काल तक कर्मफल का भोग करना पडता है, एव मुक्ति आपके पावन ध्यान द्वारा समाधि से ही सुलभ हो सकती है, क्योकि उस

---

1 त्वद्वद्धबुद्धेर्बहिरिन्द्रियाणा तस्योपवासिव्रतिना तपोभि ।
त्वामद्य लब्ध्वामृततृप्तिभाजा स्व देवभूय चरितार्थमस्तु। नै० 3/101

2 यस्त्वेकाग्रे चेतसि समुद्भूतमर्थं प्रद्योतयति, क्षिणोति च क्लेशान्, कर्म बन्धनानि श्लथयति निरोधमभिमुख करोति, स सप्रज्ञातो योग इत्याख्यायते। योग भाष्य 1/1
– ता एव सबीज समाधि। योग सूत्र 1/46-
तेषुगृहीतृग्रहणग्राह्येषु स्थितस्य धारितस्य ध्यानपरिपाक वशादपहतरजस्तमोमलस्य चित्तसत्वस्य या तदजनता तदाकारता सा समापत्ति सम्प्रज्ञात लक्षणो योग उच्ये। योग सूत्र 1/46 पर वाचस्पति, तत्त्ववैशारदी।

3 वितर्कविचारानन्दाऽस्मिताप्रमानुगमात्सप्रज्ञात। यो सू समाधिपाद-17।

4 इत्युदीर्य स हरिं प्रति सम्प्रज्ञातबासिततम समपादि।
भावनाबल विलोकितदिष्णौ प्रीतिभक्तिसदृशानि चरिष्णु।। नै० 21/118
– सम्प्रज्ञातेन तदाख्येन साकारध्यानेन हेतुना, वासिततम अतिशयेन सञ्जातभावन सन् अत्यर्थं तन्मय सन्नित्यर्थ।
नै 21/104 मल्लिनाथ एव द्रष्टव्य- 21/118 नारायण की टिप्पणी।

5 तस्यापि सन्निरोधे वा निरोधान्निर्बीज समाधि। यो0सू0 - समाधिपाद - 51

6 यो0 सू0 1/19, 20

(असम्प्रज्ञात) समाधि मे वह शक्ति है, जिससे सम्पूर्ण कर्मबन्धन टूट जाते है।[1] स्मरणीय है कि सम्पूर्ण कर्मबन्धनो से पूर्ण रूप से अलगाव असम्प्रज्ञात समाधि मे हो होता है। महर्षि पतञ्जलि के अनुसार असम्प्रज्ञात समाधि मे चित्तवृत्ति निरोध होने पर यदि चित्त अविद्या म लीन हो जाय तो यह अवस्था प्रकृति लय, भवप्रत्यय (अज्ञानावस्था जड समाधि) कहलाती है। यह यथार्थ मे समाधि नहीं, वरन्, अज्ञानावस्था ही है, हॉ वृत्तिनिरोध के कारण इस स्थिति को उपचारवश, असम्प्रज्ञात समाधि कह दिया जाता है, परन्तु वास्तविक असम्प्रज्ञात समाधि तो उपायप्रत्यय ही है, अर्थात् जब शुद्ध ज्ञान या प्रज्ञा के उदय से अविद्या का नाश हो जाता है एव वृत्तियो तथा सस्कारो का सर्वथा निरोध हो जाता है, और द्रष्टा या साधक की अपने स्वरूप (परमात्मा या नित्य विशुद्ध चैतन्य) मे प्रतिष्ठा हो जाती है, उस समय विशुद्ध चैतन्य मात्र रहता हे, जो द्रष्टा पुरुष का "यथार्थ स्वरूप" है। श्री हर्ष ने उपर्युक्त प्रसग मे असम्प्रज्ञात समाधि एव मोक्ष दोनो का सकेत देना चाहा है।[2] योग दर्शन का भी चरम लक्ष्य (स्वरूपावस्थान कैवल्य) मोक्ष है। असम्प्रज्ञात समाधि का सकेत दमयती की सखियो के हस के दर्शन प्रसग मे[3] तथा नैषधकार की स्वय की अभिव्यक्ति "य साक्षात् कुरुते समाधिषु पर ब्रह्म प्रमोदार्णवम्" मे माना जा सकता है, परन्तु यदि नैषधकार की स्वय की अभिव्यक्ति मे असम्प्रज्ञात समाधि का प्रसग माना जाये, तो उन्होने जो बाद मे खण्डनखण्डखाद्य ग्रथ एव ईश्वराभिसन्धि ग्रथ लिखे, वह आचार्य मम्मट के शब्दो मे (काव्य यशसे") तथा शिवेतरक्षतये" से भले ही तर्कसगत ठहरे, किन्तु ऐसा प्रसग असम्प्रज्ञात समाधि के परिप्रेक्ष्य मे सटीक नहीं बैठता, साथ ही सम्प्रज्ञात समाधि मे भी उतना सटीक तो नहीं ठहरता, क्योकि इस समाधि का साधक मुक्त पुरुष हो जाता है फिर उसके लिए सासारिक विषयो मे अनुरक्ति होना, तो तर्कसगत नहीं है, हॉ समाज हित मे यदि उनके ग्रथ रचना को रखा जाय, तो और बात होगी। नैषधकार की स्वय की अभिव्यक्ति को यदि केवल आत्मश्लाघा माना जाय तो शायद उचित होगा। लेकिन एक बात और अवश्य कहनी होगी, कि नैषधकार भी योग साधना जरूर करते रहे होगे[4] और महर्षि पतञ्जलि के अनुसार योगाड्ग के अनुष्ठान से अशुद्धि क्षय होने से विवेकख्याति पर्यन्त ज्ञान दीप्ति होती रहती है।[5] अत यह कहा जा सकता है कि इसी ज्ञानदीप्ति एव कवि स्वभाव के आधार पर उन्होने ऐसी अभिव्यक्ति की होगी।

योग दर्शन के अनुसार प्रसख्यान या विवेकज ज्ञान मे भी विराग युक्त होने पर सर्वथा विवेकख्याति होने से धर्ममेघ समाधि उत्पन्न होती है, उससे क्लेश कर्म की निवृत्ति होने पर भी विद्वान् जीवित रहते हुए भी सासारिक विषयो से विमुक्त रहते है, एव ऐसे कुशल योगी पूर्व सस्कारवश कोई काम नहीं करते है।[6] अर्थात् मुक्त पुरुष ससारी नहीं होता, एव ससारी (व्यावहारिक गतिविधियो मे लिप्त) व्यक्ति मुक्त नहीं हो सकता। योग दर्शन के इस तथ्य का सकेत भी नैषधकार ने चमत्कारिक शैली दमयन्ती की नल दर्शन के समय की दशा निरूपण मे किया है कि (अलभ्य) नल दर्शन से आनन्द परिपूर्ण होकर तथा

---

1 प्राग्वैरुदगुदग्भवगुम्फान्मुक्तियुक्तिविहताविह तावत्। नापर स्फुरति कस्यचनापि त्वत्समाधिमत्रस्य समाधि ॥ नै० 21/103

2 उक्तरीत्या यद्यपि मुक्तिविहतिस्तथापि तव ध्यानादिद्वाराप्राप्तपरमात्मरूपसाक्षात्कारेणैव प्राचीनतत्तज्जन्मार्जितकर्मणा समुन्मूलनादिदानीमन्यकर्मारम्भे प्रारब्धकर्मणा भोगादेव क्षयान्नैष्कम्ये सम्पन्ने युक्तिर्दुर्लभत एवेति सर्वेषामपि वादिना त्वत्समाधिरेव सिद्धान्त इत्यर्थ । मुक्ति हेतुस्त्वमेवेतिभाव । नै० 21/03 नारायण

3 नैत्राणिक वैदर्भसुतासखीना विभुक्ततन्तद्विषयग्रहाणि। प्रायुस्तमेक निरुपाख्यरूप ब्रह्मेव चेतासि यतव्रतानाम्।। नै० 3/3

4 किन्तु य समाधिषु अष्टाड्गयोगेषु ध्यानेषु वा विषये प्रमोदार्णव परमानन्द स्वरूप वर वागाद्यगोचर ब्रह्म साक्षात्कुरते। नै० 22/153 नारायण

5 योगाड्गानुष्ठानदशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्याते। यो0सू0 2/28

6 प्रसख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्यातेधर्ममेघ समाधि , लत क्लेशकर्मनिवृत्ति। योग सू0 4/29,30
– जीवन्नेव विद्वान विमुक्तो भवति। यो सू0 4/30 भाष्य से उद्धृत
– कैवल्य प्राप्तास्तर्हि सन्ति च बहव केवलिन। त0 वै0 - पृ० 67

अत्यन्त अनिर्वनीय मोह (अज्ञान, या किकर्त्तव्यमूढता, अथवा अतिशय सुरक्षित अन्त पुर मे नल कैसे आ गये, वे नहीं हं क्या? (इत्यादिभ्रम वाली इस दमयन्ती ने ब्रह्मतुल्य नलदर्शन जन्य आनन्द से) मुक्त तथा (मोक्ष या भ्रम होने से) ससारी की अवस्थाओ से शुद्ध उल्लास या मधुर द्विविधि स्वाद का अनुभव कर रही थी।[1] उपर्युक्त प्रसग मे श्रीहर्ष ने मुक्त एव ससारी दोनो ही व्यक्तियो की स्थितियो का एक साथ सगम दमयन्ती की मनोदशा के वर्णन मे किया है, जो उनकी दार्शनिकता एव काव्यचारुता के नैपुण्य का सूचक है।

महर्षि पतञ्जलि के अनुसार सिद्धियॉ, जन्म, औषधि, मत्र, तप और समाधि इन पाच उष्पाओ से उत्पन्न होती है।[2] ईश्वर की अष्ट सिद्धियॉ जो भूत जय से उत्पन्न होती है, उन सिद्धियो को सयम एव योगाभ्यास के बल से योगासिद्ध व्यक्ति भी प्राप्त कर लेते है वे सिद्धिया है अणिमा लघिमा, महिमा प्राप्ति[3] प्राकाम्य, वशित्व, ईशित्व, यत्रकामावशायित्त्व।[4] उपर्युक्त अष्टसिद्धियो का विवरण नल द्वारा दमयन्ती के सौन्दर्य वर्णन मे द्रष्टव्य है जहॉ नल दमयन्ती से कहते है सुन्दरि! तुम्हारी कटि मे अणिमा (कृशता) है, नितम्ब तथा स्तनो मे गरिमा (गुरुता) एव महिमा (स्थूलता) है, चित्त मे वशित्व (जितेन्द्रियता या पतिव्रत्य) है, मुस्कार मे लघिमा (अल्पता) है, मेरे (नल के) ऊपर (तुम्हारा) ईशित्त्व (अधिकार) है, माधर्यादि युक्त भाषण करने से रमणीय हो, (पूर्वादि) चारो दिशाओ तथा (आग्नेयादि चारो) विदिशाओ मे यश (सौन्दर्य प्रसिद्धि) से कामावसाय रूप सिद्धि अर्थात् इच्छानुसार अनवरुद्ध प्रखरगति (स्वच्छा प्रखर) प्राप्त कर चुकी हो, शायद इसी कारण से तुम्हारी रचना करके ईश्वर ने अपनी शिल्पभूत तुम्हारे लिए आठो विभूतियो (सिद्धियो) को दे दिया है।[5] श्रीहर्ष ने अणिया नामक सिद्धि या विभूति की चर्चा हस दमयन्ती के वार्तालाप प्रसग मे[6] तथा दमयन्ती स्वयवर से वापस लौटते हुए देवताओ के वर्णन प्रसग मे भी की है, जहॉ श्रीहर्ष लिखते हैं कि जाते-जाते दूर पहुॅचे देवताओ की अणिमा (नामकसिद्धि) ऐसी स्पष्ट मालूम होती थी, मानो वह उनके अष्टगुणो के ऐश्वर्य से पृथक हो गई हो।[7]

महर्षि पतञ्जलि के अनुसार बन्धकारण[8] का शैथिल्य एव प्रचार सवेदन होने पर चित्त का पर शरीर मे आवेश सिद्ध होता है, अर्थात् सिद्ध योगी दूसरे के शरीर मे भी प्रवेश कर सकता है।[9] महर्षि व्यास

---

1 तत्कालमानन्दमयी भवन्ती भवत्तरानिर्वचनीयमोहा । सा मुक्तससारिदशासाभ्या द्विस्वादभुल्लासमभुङ्मिष्टम्।। नै० 8/15

2 जन्मौषधिमन्त्रतप समाधिजास्सिद्धय । यो0 सू0 कैवल्यवाद - 1

3 स्थूसयमजयाच्चतस्र सिद्धयो भवन्तीति -त0 वै0 पृ० 369
एताश्चतस्र स्थूलसयमसिद्धय - यो0वा0, पृ० 369

4 – ततोऽणिमादिप्रादुर्भाव कायसम्पत्तर्द्धर्मानभिधातश्च। यो0 सू0 3/45
– तत्राणिमा भवत्यणु लघिमा लघुर्भवति, महिमामहान् भवति, प्राप्तिरङ्गल्यग्रेणापि स्पृशति चन्द्रमस, प्राकाम्यमिच्छानभिघातो भूमावुन्मज्जति निमज्जति यथोदके, वशित्व भूतभौतिकषु वशी भवति अवश्यचान्येषाम् ईशितृत्व तेषा प्रभवाप्ययव्यूहा नामीष्टे। यत्र कामावसायित्व सत्यसकलपस्ता यथा सकल्पस्थता भूतप्रकृतीनामवस्थान न च शक्तोऽपि पदार्थविपर्यास करोति, कस्माद् अन्यस्य यत्र कामावसायिन पूर्वसिद्धस्य तथा भूतेषु सकल्पादिति एतान्यष्टा वैश्वर्याणि। यो0 सू0 3/45 भाष्य

5 मध्ये बद्धाणिमा [illegible] जाग्रेच्चेतोवशित्वा स्मितधृतलघिमा मा प्रतीशित्वमेषि।
सूक्तौ प्राकाम्यरम्या दिशि विदिशि यशोलब्धकामावसाया भूतीरष्टावपीशस्तददित मुदित स्वस्य शिल्पाय तुभ्यम्।। नै० 21/159
– अणिमादौ, गुणवचनत्वादिमनिच्। वश इन्द्रियाणा स्वाधीनत्वम् तदस्यास्तीति वशी, तद्भावो वशित्व जितेन्द्रित्वम्। ईशनमीशऐश्वर्यं तदस्यास्तीति तद्भाव। नै० 21/159 नारायण
– यथा सन्तुष्टो हि पित्रादि अपत्यादिभय स्वकीयमैश्वर्यादिक प्रददाति, तथेश्वरेण सन्तुष्टेन स्वकीयम् "अणिमा महिमा, गरिमा, लघिमा, वशित्वमीशित्वं प्राकाम्य कामावसायिता च" इत्येवमष्टविधमैवश्चर्यं तुभ्य दत्तम् अन्यथा एतत् सर्वं त्वयि कथ स्यादिति भाव। नै० 21/145 मल्लिनाथ

6 ईशाणिमैश्वर्यविवर्तमध्ये। लोकेशलोकेशयलोकमध्ये। तिर्यञ्चमप्यञ्च मृषानभिज्ञरसज्ञतोपज्ञसमज्ञमज्ञम्।। नै० 3/64

7 क्रमाद्दवीयसा तेषा तदानीं समदृश्यत। स्पष्टमष्टगुणैश्वर्य्यात् पर्यवस्यान्निवाणिमा।। नै० 17/5

8 मनसो धर्माधर्मवशादेव शरीरे या प्रतिष्ठा ज्ञानहेतु सम्बन्धविशेष , स बन्ध इत्यर्थ। यो ना , पृ० 355

9 बन्धकारणशैथिल्यात् प्रचारसवेदननाच्चचित्तस्य पर शरीरावेश। यो0 सू0 3/38

ने भी लिखा है कि कर्मबन्धक्षय तथा नाडी मार्ग मे स्वचित्त का सचार होने पर योगी चित्त को अपने शरीर से निकालकर दूसरे शरीर पर निक्षेप कर सकते है।[1] भोजराज ने भी उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि अपने ग्रथ राजमार्तण्डवृत्ति मे किया है।[2] श्रीहर्ष ने योग दर्शन के उपर्युक्त तथ्य का सकेत दूतरूप धारी नल के वर्णन मे किया है, जहॉ वह लिखते है कि वियोगी होते हुए भी योगी की भॉति वह राजा (नल) अदृश्य होकर दूसरे के पुर (शरीर, नगर कुण्डिनपुर) मे प्रवेश करके मणिजरित भूमियो मे अपने प्रतिबिम्ब रूप कार्यसमूह का विस्तार करते हुए सुशोभित थे।[3] इसके अतिरिक्त दमयन्ती के कथन मे भी कि मेरा पति कई रूप धारण कर मुझसे परिहास तो नहीं कर रहा है, "मे योग दर्शन का पुट माना जा सकता है।"[4]

पूर्व मीमांसा या मीमासा दर्शन

नैषधीयचरितम्' मे पूर्वमीमासा दर्शन की विषयवस्तु के सन्दर्भ भी अत्यधिक रूप से श्रीहर्ष ने पिरोया है। मीमासा शास्त्र का साहित्य बहुत विस्तृत है।[5] स्वय नैषधकार ने इस दर्शन की व्यापकता एव महत्ता का विवरण इन्द्रनारदसवाद मे देते हुए लिखा है कि विष्णु ने तो विश्वरूप धारण किया है, अत उनका जैमिनि रूप होना भी उचित है। यज्ञभोग करने वाले देवताओ के विग्रह (युद्ध तथा शरीर) को न चाहने वाले विष्णु ने (सम्पूर्ण देत्यो का सुदर्शन चक्र से नाश करके जैमिनिरूप से देवताओ को मन्त्रात्मक सिद्ध करके) मेरा वज्र ही व्यर्थ कर दिया है।[6] ध्यातव्य है कि जैमिनिकृत पूर्वमीमासा के अनुसार मन्त्र ही सब कुछ है, वे ही देवता है, अलग देवताओ की कोई सत्ता पूर्वमीमासा शास्त्र नहीं मानता। उपर्युक्त सदर्भ मे श्रीहर्ष ने जैमिनिमुनि के प्रति बहुमान प्रकट किया है। सक्षेप मे पूर्व मीमासा दर्शन, वस्तुवादी, बाह्यार्थसत्तावादी, या बाह्यार्थवादी, बहुवादी[7], अनेकेश्वरवादी (बहुदेववादी) स्वत प्रामाण्य एव परत अप्रामाण्यवादी, जगत की व्यावहारिक सत्ता को मानने के साथ-साथ, नि श्रेयस या मोक्ष (स्वर्गकामो यजेत, प्रपञ्चसम्बन्धविलयो मोक्ष, आत्यन्तिकस्तु देहोच्छेद मोक्ष) मानने वाला, कर्मकाण्डवादी, अनेकात्मवादी (परन्तु आत्मा को विभु रूप मे स्वीकार करने वाला), भ्रम के विषय मे विपरीतख्यातिवादी (कुमारिल) एव अख्यातिवादी (प्रभाकर) तथा पाश्चात्य दार्शनिक शब्दावली मे मनोवैज्ञानिक सुखवादी प्रवृत्ति का समर्थ है। साथ ही आचरण की शुद्धता पर भी यह दर्शन जोर देता है।[8] और यदि पूरे मीमासा मत को एक शब्द मे व्यक्त किया जाये तो उस शुद्ध इन्द्रियानुभववाद की सज्ञा देना अभीप्सित लगता है।[9] वैसे तो पूर्वमीमासा दर्शन अत्यधिक प्राचीन दर्शन है, क्योकि इनके विवरण धर्मसूत्र[10] जैसे प्राचीन ग्रथो मे मिलने के साथ-साथ

---

1 कर्मबन्धक्षयात् स्वचित्तस्य प्रचारसवेदनाच्च योगी चित्त श्वशरीरान्निकृष्य शरीरान्तरेषु निक्षिपति। निक्षिप्तचित्त चेन्द्रियाण्यनु पतन्ति यथा मधकरराजान मक्षिका उत्पतन्तमनूत्पतन्ति निविशमानमनु निविशन्ते तथेन्द्रियाणि परशरीरावेशे चित्तमनुविधीयन्त इति। यो सू 3/38 पर व्यास भाष्य।

2 चित्तस्य च योऽसौ प्रकारो हृदयप्रदेशादिन्द्रियद्वारेण विजयाभिमुख्येन प्रसरस्तस्य सवेदन ज्ञानमिय चित्तवहा नाडी, अनया चित्त वहति, इयञ्च रसप्राणादिवहाभ्यो नाडीभ्यो विलक्षणेति। स्वपरशरीरयोर्यदा सञ्चार जानाति तदा परकीय शरीर मृत जीवच्छरीर वा चित्तसञ्चारद्वारेण प्रविशति। रा0मा0वृ0- पृ० 75

3 भवन्नदृश्य प्रतिबिम्बदेहव्यूह वितन्वन्मणिकुट्टिमेषु। पुर परस्य प्रविशन्वियोगी योगीव चित्त स रराज राजा।। नै० 6/46

4 कि वा तनोति मयि नैषध एव काय व्यूह विहाय परिहासमसौ विलासी।
विज्ञान वैभवभृत किमुतस्य विद्या सा विद्यते न तुरगाशयवेदितेव ।। नै० 16/43।

5 द्रष्टव्य, मीमासा कुसुमाञ्जलि (क्रिटिकल बिब्लिओग्राफी आफ पूर्णमीमासा) उमेश मिश्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित

6. विश्वरूपकलनादुपपन्न तस्य जैमिनिमुनित्वमुदीये। विग्रह मखभुजामसहिष्णुर्व्यर्थता मदशनि न निनाय।। नै० 5/39

7 विलक्षणस्वभावत्वात्, भावानाम्। शास्त्रदीपिका, पृ० 102

8 आचारहीन न पुनन्ति वेदा। वेदान्तसूत्रभाष्य 3/1/10 से उद्धृत

9 यथा सदृश्यते तथा श्लोकवार्तिक। श्लोक 29 पृ० 552

10 Karma-Mimansa A B Keith, P 2

पतञ्जलि[1] (१५० ई०पू०) महाभाष्य मे भी इस दर्शन का उल्लेख मिलता है लेकिन महर्षि जैमिनिकृत मीमासासूत्र[2] या जैमिनि सूत्र ही इस दर्शन का प्राचीन एव सर्वांगपूर्ण ग्रथ माना जाता है। इस ग्रथ मे बादरायण, बादरि, ऐतिशायन, कार्ष्णाजिनि, लावुकायन, कामुकायन, आत्रेय, तथा आलेखन आदि आठ आचार्यों एव उनके मतो का उल्लेख मिलता है, किन्तु आपिशालि, उपवर्ष[3], बौधायन, भवदास,[4] हरि [5] भर्तृमित्र[6] आदि अन्य मीमासा के प्राचीन आचार्य है, जिनके मत विभिन्न ग्रथो मे उद्धृत मिलते है। परन्तु इस ग्रथ पर समस्त परवर्ती लेखो का आधार शबरमुनि[7] (प्रथम शदी ई०पू०) का भाष्य है जो जैमिनि ग्रथ के प्राचीन भाष्यकार माने जाते है। शबर स्वामी के बाद पूर्व मीमासा के इतिहास मे तीन आचार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण माने जाते हे, कुमारिलभट्ट (६०० ई० इनके मत को भाट्ट मत कहा जाता है), प्रभाकर मिश्र (६५० ई० इनके मत को प्रभाकर मत या गुरु मत कहा जाता है, मुरारिमिश्र[8] (११वीं शताब्दी, के मत को मिश्रमत कहा जाता है)। इसके अतिरिक्त, भवदेव, पार्थसारथिमिश्र, मण्डनमिश्र, आपदेव, सालिकनाथ मिश्र एव खण्डदेव तथा डॉ० गगानाथ झा भी मीमासादर्शन के महनीय विद्वान् माने जाते है।

षड् आस्तिक दर्शनो मे मीमासा दर्शन का सर्वोपरि स्थान माना जा सकता है क्योकि इसमे वैदिक वाक्यो को पूर्णत प्रमाण माना गया है। वेद के दो भाग है कर्मकाण्ड एव ज्ञानकाण्ड (ब्रह्मकाण्ड), पूर्व अर्थात् कर्मकाण्ड के विवेचन करने वाले को पूर्वमीमासा या मीमासा (दर्शन) कहा जाता है तथा उत्तर या पश्चात् भाग, ज्ञानकाण्ड के विवेचन करने वाले को उत्तर मीमासा या वेदान्त दर्शन कहा जाता है। उत्तरमीमासा की विवेचना आगे की जायेगी, उपर्युक्त प्रसग मे पूर्वमीमासा दर्शन की विवेचना ही समीचीन है। पूर्वमीमासा दर्शन मे वैदिक कर्मकाण्डो के साथ वैदिक मत्रों की यागपरक व्याख्या उपस्थित मिलती हे। वेदो का प्रतिपाद्य विषय धर्म हे, जिसके लिए वह यज्ञ आदि का विधान करता है। मीमासको का भी मुख्य विषय धर्म है,[9] और वह कर्म (यागादि) को ही धर्म का लक्षण मानते है।[10] उनके अनुसार धर्म का अर्थ

---

1 महाभाष्य- 4/1/14

2 डॉ0 राधाकृष्णन जमिनिसूत्र का समय चौथी शताब्दी ई0पू0 रखने की वकालत करते हैं (भारतीय दर्शन, प्रभाग पृ० 332, 323) जबकि हिरियन्ना महोदय 200 ई0 (भारतीय दर्शन की रूपरेखा पृ 299) आचार्य बलदेव उपाध्याय 300 ई0पू0 जैमिनि का समय मानते हैं (भारतीय दर्शन पृ० 310) जबकि एस एन दास गुप्त महोदय 200 ई0पू0 (भारतीय दर्शन का इतिहास पृ० 378)

3 शावरभाष्य 1/1/5

4 श्लोक वार्तिक 1/63

5 शास्त्रदीपिका 10/2/59 60

6 काशिका, पृ० 10 न्याय रत्नाकर 10

7 प्रभाकर स्कूल आफ पूर्वमीमासा, गगानाथ झा, पृ० 6-7

– शबरस्वामी का समय भारतीय विद्वान् राधाकृष्णन गगानाथ झा से सहमत होते हुए प्रथम शताब्दी मानते हैं। भारतीय दर्शन, द्वितीय भाग, पृ० 323), वहीं हिरियन्ना महादेय, 400 ई (भारतीय दर्शन की रूपरेखा पृ० 300) आचार्य बलदेव उपाध्याय, 200 ई0 (भारतीय दर्शन, पृ० 311), उमेश मिश्र 400 ई0 से पूर्व (भारतीय दर्शन पृ० 242) तथा एस एन दास गुप्त महोदय, डॉ0 गगानाथ झा से सहमत होते हुए प्रथम शताब्दी (57 ई0पू0 के आसपास) मानते हैं जब कि स्वामी द्वारिका दास शास्त्री ई0पू0 तीसरी शताब्दी मानते हैं यथा (अत स शबरस्वामीति नाम्ना लोके विख्यातोऽभूत्। अयम् ईशात पूर्व तृतीय शताब्या भारत भूमिमलञ्चकार इति ऐतिवाविद प्रमाणयन्ति (श्लोकवार्तिक प्रास्ताविकम्, पृ० 9) एव जैकोबी 200-500 ई0 के बीच तथा कीथ 400 ई0 शबरस्वामी का काल मानते हैं।

8 मुरारि मिश्र के मतो का सग्रह एव पुस्तकों के प्रकाशन का प्रथम गौरव "उमेश मिश्र" को प्राप्त है द्रष्टव्य मुरारेस्तृतीय पन्था -उमेश मिश्र पञ्चम ओरियन्टल कान्फ्रेन्स लाहौर

9 धर्माख्य विषय वस्तु मीमासाया प्रयोजनम्। श्लोकवार्तिक-11

10 अथातो धर्म जिज्ञासा। मीमासा सूत्र-1/1/1
- चोदनालक्षणोऽर्थो धर्म। मीमासा सूत्र-1/1/2
- आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानाम्-वही 1/2/1
- चोदनेति क्रियाया प्रवर्तकवचनमाहु - शाबरभाष्य
- चोदनाचोपदेशाच्च विधिश्चैकार्थवाचिन -श्लोकवार्तिक
- यागादिरेव धर्म। शास्त्रदीपिका-पृ० 25
- देवतामुद्दिश्य द्रव्यत्यागो याग। न्यायमालाविस्तर 4/2/27/8

वैदिक यज्ञो का पालन है। लौगाक्षिभास्कर कहते है ''यागादिरेव धर्म वेदप्रतिपाद्य प्रयोजनवदर्थ। जैमिनिमुनि के प्रथम सूत्र'' अथातो धर्म जिज्ञासा'' से भी स्पष्ट है कि मीमासा दर्शन का प्रधान विषय धर्म ही है, तथा स्वर्गकामो यजेत, से यह तथ्य भी स्पष्ट हो जाता है कि मीमासक यज्ञ को ही धर्म मानते है, एव स्वर्गादि प्राप्ति ही धर्म का प्रयोजन है, जैसा कि श्रीभास्कर कहते है. वेदप्रतिपाद्यो प्रयोजनवदर्थो धर्म'' तथा वेदोऽखिलोधर्ममूलम् से वेदो की महनीयता का भी पता चलता है। मीमासा दर्शन मे कर्म का तात्पर्य वैदिक यज्ञ सम्बन्धी कर्मकाण्ड के अनुष्ठानो से है, और कर्मकाण्ड तो मीमासा दर्शन का सार ही है (कर्मेति मीमासका)। परन्तु यहा यह तथ्य अवगम्य है कि अन्य दर्शनो मे जो स्थान ईश्वर का है, वही इस दर्शन मे कर्म का है। कर्म सिद्धान्त को महत्वपूर्ण मानने के कारण इस दर्शन को कर्ममीमासा भी कहा जाता है। यह दर्शन ईश्वर के प्रयोजन की कोई आवश्यकता नहीं समझते, लेकिन कस्मै देवाय हविषा विधेम् इत्यादि वैदिक वाक्यो से स्पष्ट है कि यह अदृश्य ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करते है, भले ही वह मत्र रूप मे ही मानते हो। मीमासक कर्म एव कर्मफल के बीच अपूर्व नामक शक्ति को मानते है, जो यागादि कर्म करने से उत्पन्न होती है, एव वही कर्मफल का निर्णायक भी होती है। यह दर्शन वेदो मे प्रतिपादित तीन प्रकार के कर्मों यथा-नित्य, नैमित्तिक, प्रतिसिद्ध और काम्य को विधि अनुसार अपनाने की वकालत भी करता है। स्वय नैषधकार ने वेद विहित, कर्मों, धर्मों एव यज्ञो का विवरण नैषध मे प्रभूत मात्रा मे दिये है।[1] रही वेदो के प्रभेदो की बात, तो श्रीहर्ष ने इस तथ्य का सकेत भी सरस्वती के सौन्दर्य वर्णन मे दिया है, जहॉ वह लिखते है कि सुन्दर वस्त्र से आच्छादित, उस सरस्वती के मासल एव सुन्दर उरुयुगल, परमत (न्याय नैशेषिक आदि के मत) को खण्डन करने वाली कर्मार्थक (कर्मकाण्ड) एव ब्रह्मार्थक (ब्रह्मकाण्ड) रूप दो भागो मे विभक्त मीमासा से बनाये गये थे।[2] यहॉ नैषधकार ने पूर्वमीमासा एव उत्तरमीमासा (वेदान्त) दोनो को वेद का अग स्वीकार किया है अन्तर सिर्फ इतना है कि जहॉ पूर्वमीमासा कर्मकाण्ड के प्रतिपादन पर जोर देता है, वही उत्तरमीमासा (वेदान्त या ब्रह्मकाण्ड) ब्रह्मचिन्तन एव ज्ञानप्राप्ति (ऋते ज्ञानान्मुक्ति) पर जोर देता है। नैषध के चन्द्रकला हिन्दी एव सस्कृत व्याख्याकार ने उपर्युक्त तथ्यो को निम्न भावो मे समेटा है।

सुन्दरवसनाच्दादितमूर्वोर्युगल गिरा देव्या । ब्रह्मार्थकर्मार्थद्वयोत्तरपूर्वमीमासा दैवविरचितम् ।।

स्पष्ट है कि मीमासा वेदस्वरूपा है, शायद इसीलिए हर्ष ने वेद के कर्मकाण्ड एव ब्रह्मकाण्ड दो विभागो मे स्थित मीमासा को परमत (न्याय वैशैषिक आदि सिद्धान्तो के) खण्डन करने वाला तथा पुष्ट (दूसरे से अखण्डनीय, पक्षान्तर मे उत्तम वस्त्र से आच्छादित होने से सुन्दर एव मासल सरस्वती देवी की दोनो जघाओं को बनाया है, रूप मे होने की अभिव्यक्ति की है।)[3]

कुमारिलभट्ट[4] के विवरणानुसार ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन पूर्वमीमासा दर्शन नास्तिक रहा होगा। जबकि कुमारिल भट्ट ने श्लोकवार्तिक के मगलारण मे वैदिक यज्ञ पुरुषो के रूप मे भगवान शिव की वन्दना की है।[5] साथ ही उन्होने यह भी अभिहित किया है कि यह शास्त्र जिसे वेद कहा जाता है जो शब्दो के रूप मे ब्रह्म है, एक सर्वोपरि आत्मा का स्थापित किया हुआ है।[6] जिससे यह स्पष्ट होता है परवर्ती

---

1 द्रष्टव्य-इसी शोध प्रबन्ध के धर्मशास्त्र एव वेद वेदाग नामक अध्याय

2 ब्रह्मार्थकर्मार्थक वेदभेदात् द्विधा विधाय स्थितयाऽऽत्मदेहम्।
चक्रे पराच्छादनचारु यस्या मीमासया मासलमूरुयुग्मम्।। नै० 10/81

3 ताभ्या ब्रह्मकाण्डकर्मकाण्डाभ्या, यो वेदस्य भेद द्वैविध्य तस्माद्धेतो द्विधा विधाय पूर्वोत्तरमीमासारूपेण द्विविध, स्थितया प्रतिष्ठितया मीमासया द्वैविध्यया चक्रे कृतमिति गम्योत्प्रेक्षा। नै० 10/81 मल्लिनाथ
– उत्तरमीमासया पूर्वमीमासया चोरुयुग्म रचितमित्यर्थ। नै-10/81 नारायण

4 प्रायेणैव हि मीमासा लोके लोकायतीकृता। तामास्तिकपथे कर्तुमय यत्न कृतो मया। श्लोक वार्तिक 1/1/10

5 विशुद्धज्ञानदेहाय त्रिवेदीदिव्यचक्षुषे। श्रेय प्राप्ति निमित्ताय नम सोमार्धधारिणे।। वही 1/1/1

6 शब्द ब्रह्मेति यच्चेद शास्त्र वेदाख्यमुच्यते। तदप्यधिष्ठित सर्वमेकेन परमात्मना।। तन्त्रवार्तिक, पृ० 719

मीमासको ने ईश्वर की सत्ता स्वीकार की है, चाहे उसे शब्दब्रह्म के रूप मे माना जाय अथवा यज्ञ पुरुष के रूप मे रखा जाया या मन्त्र रूप देवता की आकृति मे माना जाय। आपदेव एव लौगाक्षिभास्कर भी समस्त कार्यों के फल को ईश्वर मे समर्पण कर देने की बात स्वीकार कर ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करते दिखते है।[1] प्रभाकर भी वेदिक वाक्यो से प्रमाणित किये गये ईश्वर को मानते है।, अनुभवगम्य ईश्वर को नीं, यही स्थिति प्रभाकर विजय के कर्ता की भी है।[2] मैक्समूलर के साथ-साथ पशुपतिनाथ शास्त्री का भी मानना है कि मीमासको ने ईश्वर के सृष्टिकर्ता रूप के विरुद्ध जो आपत्तियाँ की ह, (कि उसमे क्रूरता पक्षपात आदि का दोष लग जाता है) उससे मीमासा दर्शन निरीश्वरवादी नहीं माना जा सकता, क्योकि जैमिनि भी ईश्वर के पुरस्कारो का वितरण करने वाले रूप का तो खण्डन करते है, किन्तु ईश्वर के सृष्टि का सृष्टा होने का निषेध नहीं करते।[3] रही धर्म, अधर्म के आरोपण की बात, तो धर्म और अधर्म गुण रूप होने के कारण, अन्य आत्माओ मे भले समवाय सम्बन्ध से रहे, किन्तु ईश्वर मे नहीं रह सकते।[4] कुमारिल नैयायिको के तर्क के द्वारा ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने, एव वेदो को ईश्वर की कृति मानने की आलोचना करते हुए वद को सृष्टि से पूर्ववर्ती मानते है।[5] इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मीमासा दर्शन देवो को स्थूल रूप मे नहीं, अपितु मन्त्र रूप या यज्ञपुरुष मे स्वीकार करता है। नैषधकार ने पूर्वमीमासा दर्शन [6]के इसी मन्त्र रूप ईश्वरवाद का सन्दर्भ इन्द्र नारद सवाद के साथ-साथ स्वयवर के अन्त मे इन्द्रदेव द्वारा नल को कपटहित दौत्यकर्म के फलरूप मे वरदान मे दिया है जहाँ इन्द्र नल से कहते है कि ''नल प्रत्यक्ष दिखायी पडने वाली मूर्ति धारण करके तुम्हारे यज्ञो मे दी हुई आहुतियो को हम ग्रहण करेगे, क्योकि साक्षात् रूप से हमारे द्वारा यज्ञो का उपभोग न देखकर (मीमासकादि) विद्वानो का मन्त्ररूपात्मक देवताओ के अतिरिक्त हमारी सत्ता मे भी सन्देह बना रहता है।[7] इस प्रकार यहाँ श्रीहर्ष ने मीमासको के ईश्वर को मन्त्ररूप, अशरीरी, होने के साथ-साथ उनकी बहुदववादी मान्यता का प्रतिपादन किया है।[8] जिसका खण्डन शकराचार्य एव रामानुज ने किया है क्योकि रामानुज का मानना है कि ईश्वर का साकार रूप ही लोक जीवन मे व्यवहरित नर नारियो की उपासना एव भक्ति भावना के लिए युक्तियुक्त हो सकता है[9] परन्तु नैषधकार ने कुशद्वीपाधिपति के प्रसग मे मीमासको द्वारा ईश्वर के साकार रूप (शकर) को न मानने की अभिव्यक्ति का प्रतिपादन भी किया है[10] जब कि कुमारिल भट्ट ने श्लोक

---

1 ईश्वरार्पण बुद्धया क्रियामाणस्तु निःश्रेयसहेतु, न च तदर्पणबुद्धयानुष्ठाने प्रभाणाभाव। 'यत्करोषि यदश्नासीति भगवद्गीतास्मृतेदेद प्रमाण्त्वात्। स्मृतिचरणे तत्प्रामाणस्य श्रुतिमूलकत्वेन व्यवस्थापनात्। मीमासा न्यायप्रकाश पृ० 197, एव द्रष्टव्य- अर्थसग्रह, पृ० 196

2 एव चानुमानिकत्वमेवेश्वरस्य निराकृतम्, नेश्वरोऽपि निराकृत। अत एव न प्रभाकरगुरुभिरीश्वरनिरास कृत। तत्समर्थन च वेदान्तमीमासाया क्रियत इत्यभिप्रेतम्-प्रभाकर विजय पृ० 82

3 The six systems of Indian Philosophy-Maxmuller-chap, V, Introdution to the Purva Mimamsa P N Sastri, P 3

4 Prabhakar school of Purva Mimamsa-G N Jha, P -80-87

5 श्लोकवार्तिक सम्बन्धाक्षेपपरिहार सूत्र 44-72, 14-116 एव चोदनासूत्र 142।

6. नै० 5/39

7 प्रत्यक्षलक्ष्यामवलम्ब्य मूर्ति हुतानि यज्ञेषु तवोपभोक्ष्ये। सशेरतेऽस्माभिरवीक्ष्य भुक्त मख हि मन्त्राधिकदवभावे।। नै०4/73

8 मन्त्रादधिके देवेषु भावे विश्वासे सति। ''मन्त्रमयी देवता'' इत्येतत्पक्षापेक्षया प्रत्यक्षाया देवतायामधिकस्य मनोविश्वासस्य युक्त्वादित्यर्थ। अस्माभिरिति बहुबचन देवतान्तराभिप्रायम्। नै० 14/73 नारायण
 – "अशरीरी देवता इति मीमासका, तत्सदेहनिवृत्यर्थं ते विग्रह दर्शयिष्यामि, तेन भवतस्तादृशसशयनिरासरूपलाभो भविष्यतीति भाव।। नै० 14/70 मल्लिननाथ -

9 अत एव न देवता भूत च। साक्षादप्यविरोध जैमिनि। ब्रह्मसूत्र 1/3/27, 28 पर शाकरभाष्य एव श्रीभाष्य द्रष्टव्य

10 वैदैर्वचोभिरखिलै कृतकीर्तिरत्ने हेत विनैवधृतनित्यपरार्थयत्नै।
मीमासयैव भगवत्यमृताशुमालौ तस्मिन्महीभुजितयानुमतिर्न भेजे।। नै० 11/64

वार्तिक मे शिव वन्दना की है, इससे यह प्रतीत होता है कि यहॉ श्रीहर्ष ने प्राचीन मीमासा की विषयवस्तु को नैषध मे जगह दी है। स्मरणीय है कि जहॉ मण्डन मिश्र,[1] वाचस्पति[2] वात्स्यायन आदि ने ईश्वर की सत्ता का प्रतिषेध किया वहीं वैशेषिक के पार्थसारथिमिश्र[3] के साथ-साथ उदयन ने ईश्वर की सत्ता मानते हुए उसे भव या शिव नाम दिया है एव मीमासाको के ईश्वर विषयक मत का खण्डन भी किया है।[4] परन्तु नैयायिको ने भी मीमासको (कुमारिल) के ईश्वर विषयक मत का उल्लेख करते हुए उन्हे नास्तिक सिरोमणि की सज्ञा दी है।[5] सर्वमतसग्रहकार के मत मे मीमासक न तो नैयायिको के ईश्वर विषयक मत को स्वीकार करते है न उपनिषदो के।[6]

मीमासा दर्शन नैयायिको के समान ईश्वर को न तो निमित्त कारण रूप मे मानता है[7] और न ही वेदान्तियो के समान कर्म फल दाता रूप मे[8] लेकिन जैमिनि धर्म या यज्ञ रूपी कर्म से ही फल प्राप्ति

---

1 न तावत् युगपदसख्येयस्थावरादिलक्षणकार्यदर्शनादखिलविषयनित्यविज्ञानमात्रशाली षड्गुण ईश्वर सेद्धुमर्हति। मण्डनमिश्र, विधिविवेक- बनारस प्रकाश पृ० 216

2 विधि विवेक- न्यायकणिका टीका (वाचस्पतिमिश्र) बनारस प्रकाशप भदृन, पृ० 210
– लब्धपरिपाकाऽदृष्टवत् क्षेत्रज्ञसयोगादेव क्षित्यादि लक्षणकार्योत्पत्तावेकस्यापीश्वरस्यानुमाने तुल्यैवाऽनवस्थेत्यर्थ -विधिविवेक पर न्यायकणिका टीका, पृ० 233, बनारस प्रकाशन
स्वार्थेपरानुग्रहे वा दु खोत्तरसर्गदर्शनात् प्रयोजनाभावनिराकृतापि चैतन्यमात्रसिद्धि स्यात्
मण्डनमिश्र विधि विवेक, पृ० 222, जबकि वाचस्पति मिश्र ईश्वर को परानुग्रहस्वभाववाला भी बताते हैं वाचस्पति मिश्र-तात्पर्य टीका, पृ० 597, काशी सस्कृत सिरीज

3 वैशेषिक भी ईश्वर को शिव रूप मानते हैं किन्तु मीमासक उनके मत को स्वीकार नहीं करते। द्रष्टव्य-श्लोक वार्तिक-सम्बन्धाक्षेपपरिहार, श्लोक 66 में पार्थसारथि की व्याख्या
विश्वेश्वर का मत है कि मीमासक ईश्वर (शिव) के साकार रूप को नहीं मानते यथा-मीमासका हीश्वरस्य विग्रहवत्त्व नाङ्गीकुर्वन्ति। यही मान्यता पार्थसारथि मिश्र की भी है यथा-सोमस्य अर्ध स्थान ग्रहचमसादि तद्धारिणे इति यज्ञपक्षेऽपि सगच्छते न्याय सू0 4/119-20 पर वा0भा0
– मिथ्याशुक्ल रचित (12वीं शताब्दी के) लाटकमेलका मे वर्णित शिव के स्वरूप का भी मीमासकों द्वारा मान्य शिव रूप से विरोध दिखायी पडता है, क्योंकि इस नाटक में शिव कापालिक रूप में वर्णित हैं यथा- कोणस्थोऽपि पुरस्कृतोऽपि यजुषा गौरी भुजङ्गों मया। हव्याशाविकल कपालिकधिया निष्कासितो धूर्जटि। द्वितीय अक

4 उदयनाचार्य-न्यायकुसुमाञ्जलि-स्तवक-5, पृ० 76-77, चौखम्ब प्रकाशन

5 तदुक्त भट्टाचार्ये पयोजनमनुदिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते। जगच्च सृजतस्तस्य कि नाम न कृत भवेत्।। अत्रोच्यते। नास्तिकशिरोमणे तावदीर्ष्याकषायिते चक्षुषी निमील्य परिभावयतु भवान्। माधवाचार्य कृत-सर्वदर्शन सग्रह, पृ० 255 पूना प्रकाशन

6 अथ तैस्तार्किकाभिमत ईश्वर एव निरस्तो नोपनिषदभिमत क्षेत्रज्ञस्वरूप इतिचेत। तन्न कर्मैव देहिनामिष्टानिष्टफलद नेश्वर'' इति वदता वेदस्य धर्मैकनिष्ठता चाभ्युपगच्छता क्षेत्रज्ञस्वरूपस्येश्वरस्याकिञ्चित्करत्वात् प्रमाणप्रतिपन्नत्वाभावाच्च सर्वमतसग्रह, प्रभाकरमीमासा, त्रिवेन्द्रम् सस्कृत सिरीज-6

7 द्रष्टव्य न्या कु -5/1, ईश्वर कारणम्, पुरुषकर्माफल्य दर्शनात्, न्या सू 4/1/19, तत्कारितत्वादहेतु। 4/1/21
– पराधीनपुरुषस्य कर्मफलाराधनम् इति, यदधीन ईश्वर। तस्यादीश्वर कारणमिति। न्या सू 4/1/19 पर वा0 भा0
– पुरुषकारमीश्वरोऽनुगृहणाति, फलाय, पुरुषस्य यतमानस्येश्वर फल सम्पादयतीति। न्या सू 4/1/21 पर वा भाष्य
– अत पर प्रावादुकाना दर्शनान्युपन्यस्य कानिचित् प्रतिषिध्यन्ते, कानिचिदुपगम्यन्ते इति-उद्योतकर, न्या वा 4/1/19
– कारुणिकोऽप्यय वस्तुस्वभावमनुविधीयमानो धर्माधर्मसहकारी जगद्वैचित्र्य विधन्ते। वाचस्पतिमिश्र, तात्पर्य टीका काशी, स0 ग्र, सि , पृ० 596
– विशेष विवरण हेतु द्रष्टव्य, न्यायशास्त्रीय ईश्वरवाद-डॉ किशोरनाथ झा, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम सस्करण-1978

8 सापेक्षोहीश्वरो वेषमा सृष्टि निर्मिमीते। किमपेक्षत इति चेत्-धर्माधर्भावपेक्षत इति वदाम। अत सृज्यमानप्राणिधर्माधर्माधर्मापेक्षा विषया सृष्टिरिति नायमीश्वरस्यापराध। ईश्वरस्तु पर्जन्यवद द्रष्टव्य- ब्र0 सू 2/1/34 पर शाकर भाष्य।
– एव जीवकृतप्रयत्नापेक्ष ईश्वरस्येषा शुभाशुभ विदध्यादिति श्लिष्यते। ननु कृतप्रयत्नापेक्षत्वमेव, जीवस्य परायत्ते कर्तृत्वे करोत्येव जीव , कुर्वन्त हि तमीश्वरं कारयति। ब्र0सू0 2/3/42 पर शाकर भाष्य
– फलमत ईश्वराद्भवितुर्महति वही। 3/2/38 पर शा0 भा0
– श्रुतत्वादपीश्वरमेव फलहेतु मन्यामहे। वहीं 3/2/39 पर शा0 भा0
– ईश्वरवस्तु फल ददातीत्यनुपपन्नम्- वही 3/2/40 शा0 भा0
– वादरायणस्त्वाचार्य पूर्वोक्तमेवेश्वर फलहेतु न मन्यते धर्माधर्मयोरपि हि कारयितृत्त्वे नेश्वरे हेतुव्यपदिश्यते फलस्य च दातृत्वेन सर्ववेदान्तेषु चेश्वरहेतुका एव सृष्टयो व्यपदिश्यन्ते। तदेव चेश्वरस्य फलहेतुत्व यत्स्वकर्मानुरूपा प्रजा सृजतीति। वही 3/2/41 एव 2/3/42- 3/2/41 वेदान्तसूत्र पर भामती टीका भी द्रष्टव्य

मिलने का विधान करते है, उनके अनुसार यज्ञ से ही तत्तत्फल की प्राप्ति होती है, ईश्वर के कारण नहीं।[1] मीमासको नैयायिको के सृष्टि को ईश्वरेच्छा या निमित्तकारणरूपता तथा वेदान्तियो के कर्मफलदाता रूप को अस्वीकार किया है, क्योकि मीमासको के मतानुसार अपूर्व[2] के द्वारा ही जीव के कर्मो का फल सञ्चित होता रहता है जिससे जन्म तथा मरण का क्रम चलता रहता है। अतएव मीमासक जीवो के कर्मों के फलदाता रूप मे ईश्वर का निषेध करते है।[3] अपूर्व का मीमासा दर्शन मे जो स्थान है वहीं न्याय मे अदृष्ट का है। किन्तु प्रसिद्ध नैयायिको उद्योतकर वापस्पतिमिश्र वात्स्यायन तथा अद्वैतवेदान्ती शकराचार्य ने भी मीमासको के अपूर्व को मान्यता न देकर ईश्वराधीन कर्मो एव उनकी अदृश्य शक्ति को मान्यता देने के साथ-साथ, कर्मफलदाता रूप मे भी ईश्वर को मान्यता दी है।[4] जबकि कुमारिल भट्ट का मानना है कि यदि जगत या सृष्टि का कारण ईश्वरेच्छा है, तब तो कर्म की कल्पना करना ही व्यर्थ है, और तब तो मनुष्य को होने वाले धर्माधर्म (पापपुण्य) के अनुभव भी ईश्वरेच्छा से ही होने चाहिए परन्तु ऐसा नहीं होता क्योकि वह कर्म द्वारा ही धर्माधर्म एव जगत की व्यावहारिकता की अनुभूति करता है।[5] नैयायिको, वेदान्तियो एव मीमासको की ईश्वर एव कर्म सम्बन्धी विवेचना की सगति दमयन्ती के कथन मे मिलती है, इन्द्रदूती द्वारा इन्द्र को वरण करने की प्रार्थना पर दमयन्ती की सखी कुछ बोलना ही चाहती थी, किन्तु दमयन्ती ने उसे बीच मे रोककर कहा कि सखियो जब मानव बुद्धि अनादिकाल से प्रवाहित इस जन्ममरण की परम्परा के कारण भूत स्वय के ही शुभाशुभ कर्मों के अधीन है, या ईश्वर के वशीभूत, तब फिर मानव (दमयन्ती), अपने किसी कार्य मे कैसे उत्तरदायी ठहराया जा सकता? वह जो कुछ भी कर्म करता है, या तो ईश्वरेच्छा वश करता है या कर्मवश। अत तुम लोग मेरे विषय मे कुछ मत बोलो क्योकि भाग्य कुछ नहीं है, ऐसा कहनेवाला व्यक्ति भी मुख श्रम रूप कर्म को भोगता है, अर्थात् कहने वाले का मुख तो

---

1 धर्मो जैमिनिरत एव- ब्र0 सू0 3/2/40
 – जैमिनिस्त्वाचार्यो धर्मं फलस्य दातार मन्यते। वही शा0भा0

2 यागादेव फल तद्धि शक्तिद्वारेण सिद्धयति। सूक्ष्म शक्त्यात्मक वा तत् फलमेवाप जायते।तन्त्रवार्तिक पृ० 395

3 लब्धपरिपाकादृष्टवत् क्षेत्रज्ञसयोगादेव क्षित्यादि लक्षणकार्योत्पत्यावेकस्यापीश्वरस्यानुमाने तुल्यैवानवस्थेत्यर्थ। विधि विवेक न्यायकणिका टीका, पृ० 223
 – कस्यचिद्धेतुमात्रत्व यद्यधिष्ठातृतेष्यते। कर्मभि सर्वजीवाना तत्सिद्धे सिद्धसाधनम्। इच्छामात्रकपक्षेऽपि तत्पूर्वत्वेन कर्मणाम्। इच्छानन्तरसिद्धिस्तु दृष्टान्तेऽपि न विद्यते।। श्लोकवार्तिक सम्बन्धाक्षेपपरिहार, श्लोक 75, 76, पृ० 467, 468

4 बुद्धिमत कारणाधिष्ठिता परमाणव कर्माणि च प्रवर्तन्त इति। न्याय0 वार्तिक पृ० 460
 नास्य पारमार्थिक रूपमाश्रित्यतच्चिन्त्यते किन्तु साख्यावद्वारिकम् वेदान्त सूत्र 3/2/38 भामती टीका
 – अपूर्वस्य चेतनस्य काष्ठलोष्ट समस्य चेतने नाप्रवर्तितस्य प्रवृत्यनुपपत्ते। ब0 सू0 -3/2/38 पर शा0 भा0, परन्तु शकराचार्य के मत मे कर्म की सूक्ष्म उत्तरावस्था या फल की पूर्वावस्था अपूर्व कहलाती है-यथा- न चाप्यनुत्पाद्य किमपि अपूर्वम्, कर्मविनश्यत्, कालान्तरित फल दातु शक्नोति, अत कर्मणो वा सूक्ष्मा काचिदुत्तरावस्था, फलस्य वा पूर्वावस्थाऽपूर्वनामास्तीति तर्क्यते। ब्र0 सू0 3/2/40 शा0 भा0
 – कारुणिकोप्यय वस्तुस्वभावमनुविधीयमानो धर्माधर्मसहकारी जगद्वैचित्र्य विधत्ते। वाचस्पते, तात्पय टीका- पृ० 596
 – जैमिनि सूत्र के व्याख्याता शबरस्वामी के अनुसार मीमासाशास्त्र निरीश्वरवादी है। वह न ईश्वर को मानता है और न जगत के सर्ग और प्रलय को। इस अश में वह जैन मत के बहुत समीप है, किन्तु कुछ व्याख्याता (या परवर्ती मीमासक) मीमासाशास्त्र को ईश्वरवादी, और उसमें जगत के सर्ग और प्रलय को स्वीकार करते हैं। शाबर भाष्य के मतानुयायियो मे भाट्टमत, गुरुमत एव मिश्र मत प्रसिद्ध हैं और ये अपने-अपने ढग से शाबरभाष्य की व्याख्या करते हुए, उसकी कठोर आलोचना भी करते है। द्रष्टव्य- जैमिनीय मीमासा भाष्यम्, प्रथम भाग, व्याख्याकार-युधिष्ठिर मीमासक, भूमिका-पृ०5
 – पुरुषकारमीश्वरोऽनुगृह्णाति फलाय पुरुषस्य यतमानस्मेश्वर फल सम्पादयतीति। न्या सू 4/1/21

5 ईश्वरेच्छा यदीष्येत सैव स्याल्लोककारणम्। ईश्वरेच्छावशित्वे हि निष्फला कर्म कल्पना।। श्लोकवार्तिक सम्बन्धाक्षेपपरिहर - श्लोक,72
 – स्वाधीनत्वाच्च धर्मादेस्तेन क्लेशो न युज्यते। तद्वशेन प्रवृत्तौ वा व्यतिरेक प्रसज्यते।। वही श्लोक-83

दु खता ही है, लेकिन उसका कुछ फल नहीं निकलता[1] यहाँ नैषधकार ने उपर्युक्त तथ्य के साथ-साथ इस तथ्य का भी वर्णन किया है कर्मो (अपूर्व या अदृष्ट) का फल भोग अवश्यमेव प्राप्त होता है।[2]

मीमासा दर्शन मे वेदो का प्रामाण्य निर्धारण करने के लिए प्रम , प्रमाण एव प्रामाण्य का भी विशद विवेचन मिलता है। इस दर्शन के अनुसार प्रमा या यथार्थज्ञान अज्ञाततत्त्व का अर्थज्ञान कराने वाला, दूसरे प्रमाणो से अबाधित एव निर्दोष ज्ञान है, और ऐसे अनधिगत अर्थ के ज्ञान को उत्पन्न करने वाला करण प्रमाण है।[3] स्मृति तथा सशय आदि को यह दर्शन प्रमा नहीं मानता। वास्तव मे प्रमा या यथार्थ ज्ञान के कारण को प्रमाण कहा जाता है, किन्तु नैयायिक जहाँ प्रमा के अत्यन्त साधक (साधकतम्) को प्रमाण मानते है, वहीं मीमासक अनधिगतार्थ ज्ञापक को प्रमाण कहते है।[4] परन्तु स्मरणीय तथ्य यह है कि मीमासा दर्शन प्रमा एव प्रमाण दोनो को एक रूप मे स्वीकार करता है। मीमासा दर्शन मे प्रमाणो की सख्या वैसे तो छै मानी गयी है प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान, अर्थापत्ति, एव अभाव या अनुपलब्धि[5] परन्तु इनमे जहाँ जैमिनि प्रथम तीन प्रमाण ही मानते है, वहीं प्रभाकर प्रथम पाच प्रमाण मानते है, अनुपलब्धि को प्रभाकर मीमासा मे स्वीकार नहीं किया गया है, तथा कुमारिल भट्ट (भाट्ट मीमासक) छै प्रमाण स्वीकार करते हे जैसा कि उत्तरमीमासा या वेदान्त स्वीकार करता है। अर्थापत्ति को मीमासा दर्शन के दोनो प्रधान दार्शनिक कुमारिल एव प्रभाकर स्वतत्र प्रमाण के रूप मे स्वीकार करते है। शवरमुनि के शब्दो मे "दृष्ट या श्रुत अर्थ की उपपत्ति जिस अर्थ के अभाव मे न हो सके, उस अर्थ की कल्पना को अर्थापत्ति कहते है [6] अर्थात् अर्थोपपत्ति हेतु अर्थान्तर की कल्पना ही अर्थापत्ति कहलाता है। यथा - जीवित देवदत्त घर मे नहीं है, इस वाक्य के दो तथ्यो उसके जीवित होने तथा घर मे न होने मे जो असगति या विरोधाभास को अनुभूति होती है, उसका निराकरण "देवदत्त दिन मे भेजन नहीं करता फिर भी मोटा है", उसके मोटापे की कल्पना रात्रि के भोजन से कर ली जाती है और यहीं अर्थान्तर कल्पना ही अर्थापत्ति कहलाती हे। नैषधीयचरितम् मे अर्थापत्ति प्रमाण की सगति कलिप्रतिनिधि के तथ्यो[7] का खण्डन करते हुए इन्द्र के कथन मे देखने को मिलती है, जहाँ इन्द्र कहते है कि हे नास्तिको पति सहवास के होने पर भी गर्भ आदि का धारण होना अनिश्चित होने से आक्षिप्त (अर्थापत्ति प्रमाण से सिद्ध) कर्म (धर्माधर्मरूप जन्मान्तरीय अदृष्ट) तुम लोगो के मर्म (हृदय) का भेदन क्यो नहीं करता।[8] नैषध के प्राचीन टीकाकार आचार्य मल्लिनाथ एव नारायण भी उपर्युक्त सदर्भ मे अर्थापत्ति प्रमाण के साथ-साथ न्याय के अदृष्ट के विवरण देने के नैषधकार के विवरण की पुष्टि करते है।[9] अर्थापत्ति प्रमाण दो प्रकार का होता है- (१) दृष्टार्थापत्ति (२) श्रुतार्थापत्ति।

---

1 अनादिधाविस्वपरम्पराया हेतुस्रजस्स्रोतसि वेश्वरे वा।
आयन्तधीरेषजनस्त्वदार्या । किमीदृश (पर्यनुयुज्म कार्य) पर्यनुयोगयोग्य ।। नै० 6/102
– नित्यं नियत्या परवत्यशेषे क सविदानोऽप्यनुयोगयोग्य ।
अचेतना सा च न वाचमर्हेद्वक्ता तु वक्त्रश्रमकर्म भुङ्क्ते।। नै० 6/103

2 पर्यभूद्दिनमणिद्विजराज यत्करैरहह तेन सदा तम्। पर्यभूत् खलु करैर्द्विजराज कर्म क स्वकृतमत्र न भुङ्क्ते।। नै० 5/6

3 कारणदोषबाधकरहितमगृहीतग्राहि ज्ञान प्रमाणम्। शास्त्रदीपिका, 1/1/2, पृ० 45

4 प्रमाणकरणमेवात्र प्रमाण तर्कपक्षवत्। प्रमा चाज्ञाततत्त्वार्थज्ञानमेवात्र विद्यते।। मानमेयोदय, पृ०2

5 प्रत्यक्षमनुमान च शाब्द चोपमितिस्तथा। अर्थापत्तिरवाश्च षट्प्रमाणानि मादृशाम्।। मानमेयोदय, पृ०7

6 अर्थापत्तिरपि दृष्ट श्रुतो वाऽर्थोन्यथा नोपपद्यते इत्यर्थ कल्पना। शाबर भाष्य 1/1/5,
– विशेष विवरण हेतु द्रष्टव्य, The six ways of Knowing - D M Datta, Book V, P 235 246, शास्त्रदीपिका, पृ० 76 83, प्रकरणपचिका, पृ० 113 118

7 मृते कर्मफलोर्मय – नै० 17/53

8 सत्येव पतियोगादौ गर्भादेरध्रुवोदयात्। अक्षिप्त नास्तिका कर्म न कि मर्म भिनत्ति व ।। नै० 17/89

9 आक्षिप्तम् अर्थापत्तिसिद्धम्, अर्थापत्तिप्रमाणसिद्ध स्त्रीपुरुष सहवाससादिरू पदृष्टकारणक लापसद्भावेऽपि गर्भोदयादिरुपकार्यस्य कादाचित्कत्व धर्माधर्मरूपादृष्टकारण विनाऽनुपपन्नम् इत्यनुपपत्तिज्ञानरूपादर्थापत्तिप्रमाणात प्रमितिमित्यर्थ । . एतेनैव अदृष्टमस्तीति बोधव्यम् इति भाव । नै० 17/88, मल्लिनाथ
– तस्माल्लोकप्रवादपारम्पर्यादर्थापत्तिरदृष्ट कारणान्तरमङ्गीकरणीयम्।। नै० 17/89, नारायण

लिये अपना अवलम्ब बनने को कहता है, साथ ही यह भी कहता है कि स्वत इस कर्म के लिये उद्यत आपको लगाना मेरा पिष्टपेषण मात्र है, क्योकि ज्ञान के प्रमाण के समान सज्जन स्वयमेव (बिना किसी की प्रेरणा किये ही परोपकारी होते है, ठीक वैसे ही जैसे यथार्थज्ञान की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिये किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती।[1] आचार्य मल्लिनाथ भी उपर्युक्त सदर्भ मे मीमासको के स्वत प्रमाण्यवाद का सदर्भ रखते हुए कहते है कि स्वत प्रवृत्तिविषयत्वात् पिष्टपेषणकल्पेत्यर्थ। हि यस्माद् ग्रहणाना ज्ञानाना यथार्थता याथार्थ्य यथा प्रामाण्यमिव स्वत सर्वप्रमाणाना प्रामाण्यमिव गृह्यता जाता मनीषा स्वत एव मानमिति मीमासका। सता परार्थता परार्थप्रवृत्ति स्वत एव न तु परत।[2]

~~नारायण की भी यही सम्मति है।~~[3] कुमारिल भट्ट एव प्रभाकर दोनो बाह्यार्थवादी है, एव दोनो के मत मे ज्ञान स्वत प्रकाशित होता है, लेकिन कुमारिल जहॉ अनुभूति या स्मृति को प्रमाण नहीं मानते[5] वहीं प्रभाकर स्मृति को अनुभूति से भिन्न मानता है।[6] मीमासको के अनुसार अप्रामाण्य परत होता है, क्योकि यथार्थज्ञान तो स्वय सिद्ध होता है, परन्तु जब यथार्थ ज्ञान के उत्पादक कारणो मे यदि दोष दिखलायी पढजाये, तो हमे पूर्व निश्चय को छोड देना पडता है और हम अपने पूर्व ज्ञान को अयथार्थ या अप्रामाणिक कहने लगते है स्पष्ट है कि ज्ञान के उत्पादक कारणो के दोषपूर्ण रहने पर ही ज्ञान की अयथार्थता होती है इसे सिद्ध करने के लिये हमे अनुमान के रूप मे बाह्य साधन को ग्रहण करना पडता है, यही मीमासा का परत प्रामाण्यवाद कहलाता है। प्रामाण्यवाद के सदर्भ मे नैयायिको एव मीमासको मे बल विरोध की स्थिति दिखायी पडती है, जब कि दोनो अप्रामाण्य को परत स्वीकार करते है, लेकिन स्वत प्रामाण्यवाद मे नैयायिको का मानना है ज्ञान होने पर भी उसकी यथार्थता को हमे अनुमान से जानना पडता है अत प्रमाण्य परत' होता है न कि स्वत[7] जब कि मीमासक असकी आलोचना करते हुए कहते है कि फिर अनुमान की यर्थाथता के लियेदूसरे अनुमान की एव दूसरे अनुमान की यथार्थता के लिए तीसरे अनुमान की शरण लेनी पडेगी, इस प्रकार अनवस्था दोष होगा, अत स्वत प्रामाण्य ही दोष रहित होने से स्वीकरणीय है।[8] यदि स्वत प्रामाण्य वाद की भी सूक्ष्ममीमासा कीजाये, तो जहॉ प्रभाकर इसमे त्रिपुटीप्रत्यक्ष की सगति करते दिखते है,[9] वहॉ कुमारिल ज्ञाततावाद की[10], तथा मुरारिमिश्र न्याय दर्शन से प्रभावित दिखते है, उनके अनुसार ज्ञान के प्रत्यक्षीकरण मे इन्द्रिय सयोग के अनन्तर उत्पन्न होने वाला अनुव्यवसायात्मक ज्ञान ही प्रामाण्य का उत्पादक होता है।[11] तीनो विद्वानो के विचारो के समीक्षोपरान्त

---

1 अथवा भवत प्रवर्तना न कथ पिष्टमिय पिनष्टि न। स्वत एव सता परार्थता ग्रहणाना हि यथा यथार्थता।। नै० 2/61

2 नै० 2/61, मल्लिनाथ

3 यथा ग्रहणाना ज्ञानाना यथार्थता प्रामाण्य स्वत एव। ज्ञान स्वत प्रमाणमिति मीमासका। यद्वा, गृह्यते ज्ञायतोऽर्थो यैस्तानि शब्दास्तेषा यथार्थतानुगतार्थता स्वत एव। 'वृक्ष' शब्दोच्चारणमात्रे मूलशाखापत्रादि प्रत्यक्षमिव स्फुरति यथा तथा सतो नाम मात्रे गृहीते तेषा परोपकारित्व स्फुरत्येव। नै० 2/61, नारायण

4 स्वत सर्वप्रमाणाना प्रामाण्यमिति गम्यताम्। नहि स्वतोऽसती शक्ति कर्तुमन्येन शक्यते।। श्लोकवार्तिक 2/47
– तस्माद्बोधात्मकत्वेन प्राप्ता बुद्धा प्रमाणता – वहीं 2/53
– तस्माद् दृढ यदुत्पन्न नापि सवादमृच्छति। ज्ञानान्तरेण विज्ञान तत् प्रमाण पतीयताम्।। वही 2/80
– स्वत एव यदुपपद्यते न तत्र परापेक्षा युक्ता। मेयाना मातुश्च स्वत प्रकाशो नोपपद्यत इति युक्ता तयो परापेक्षा। मितौ च काचिदनुपपत्तिर्नास्तीति स्वय प्रकाशैव मिति। प्रकरणपञ्चिका, पृ० 57

5 प्रकरणपञ्जिका, पृ० 42, 43, 127

6. शास्त्रदीपिका, पृ० 45

7 न्यायकन्दली, पृ० 91

8 शास्त्रदीपिका, पृ० 213–214

9 तन्त्ररहस्य, पृ० 5 8, प्रकरणपञ्जिका, पृ० 38-53 शास्त्रदीपिका, पृ० 213-214, न्यायकन्दली, पृ० 91

10 न्यायरत्नमाला, पृ० 31-35, शास्त्रदीपिका पृ० 97 106, मानमेयोदय, पृ० 4-6

11 मनसैव ज्ञानस्वरूपवत् तत्प्रामाण्यग्रह इति मुरारिमिश्रा - वर्धमान, कुसुमाञ्जलि प्रकाश, पृ० 219

मथुरानाथ तर्क वागीश का मानना है, प्रभाकर का प्रामाण्यवाद (स्वत प्रामाण्यवाद या त्रिपुटीप्रत्यक्षवाद) ही सर्वश्रेष्ठ है।[1]

मीमासा दर्शन मे यथार्थ ज्ञान के विवरण के साथ-साथ (अयथार्थानुभव) मिथ्याज्ञान या भ्रम का विवेचन भी प्राप्त होता है। भ्रम विवेचन के सदर्भ मे जहाँ प्राचीन साख्य एव रामानुज सत्ख्यातिवाद के, न्याय अन्यथाख्यातिवाद के, उत्तरसाख्य तथा जैन दर्शन सदसत्ख्याति के, बोद्ध विज्ञानवाद विज्ञानख्यातिवाद (आत्मख्यातिवाद), शून्यवादी दार्शनिक शून्यताख्यातिवाद (असत्ख्यातिवाद) एव अद्वैत वेदान्ती अनिवर्चनीयख्यातिवाद के पोषक है, वहीं मीमासा दर्शन के भ्रम सम्बन्धी निरूपण मे दो मत है,प्रथम कुमारिल भट्ट जिनका भ्रम सम्बन्धी विवेचन विपरीत ख्यातिवाद कहलाता है, क्योकि उनके मत मे भ्रम भेदग्रह या अज्ञान मात्र नहीं है, अपितु विपरीतग्रहण या या अन्यथाग्रहण या मिथ्याज्ञान है एव मीमासक व्याधिकरणधर्म - तादात्म्य प्रतीति को ही भ्रान्ति या भ्रम कहते है।[2] यथा - शुक्ति मे रजत का ज्ञान, दोनो के अशो को मिलाने से होता है जब कि दोनो अलग-अलग स्थानो पर सत् है, परन्तु दोनो को एक मान लेने की दशा मे भ्रम या विपर्यय के कारण विपरीत विषय का यथार्थ अनुभव होने लगता है[3] जब कि प्रभाकर, कुमारिल के विपरीत भ्रम को एक ज्ञान न मानकर, दो ज्ञानो अर्थात प्रत्यक्ष एव स्मृति का योग मानते है। यथा- ''इद रजतम्'' मे यदि इद अश प्रत्यक्ष जन्य है जबकि रजतम्- स्मृतिजन्य, परन्तु स्मृति प्रमोष के कारण विवेकाग्रह होता है[4] एव इसके कारण ही हमे ''इद रजतम्'' की प्रतीति होती है, परन्तु विवेकाग्रह (दोनो मे भेद न कर पाने का सामर्थ्य) के आभाव मे हमे भ्रम होता है, वस्तुत भ्रम की सत्ता नहीं होती, यह तो ज्ञान का अभाव या अख्याति है। प्रभाकर का भ्रम सम्बन्धी यह मत अख्यातिवाद कहलाता है। वह भ्रम या विपर्यय की सत्ता भी स्वीकार नहीं करता, क्योकि उसके मत मे ज्ञान मात्र ही यथार्थ होता है, भ्रम तो अज्ञान मात्र है।[5] प्रभाकर के अख्यातिवाद सिद्धान्त की सगति दमयन्ती के अन्त पुर मे नल की उपस्थिति वर्णनप्रसग मे द्रष्टव्य होती है, जहाँ नल सर्वत्र दमयन्ती को ही भ्रातिवश देखते थे, एव दमयन्ती भी प्रेमविह्वलता के कारण सर्वत्र नल के दर्शन कर रही थी, दोनो एक दूसरे के समीप न होते हुए भी भ्रान्ति या कल्पित रूप को सत्य समझते हुए एक दूसरे का (कल्पना मे) आलिगन भी कर रहे थे।[6] नैषधकार ने उन दोनो के आलिगन को प्रभाकर के अख्यातिवाद के आधार पर रखना चाहा है[7] एव चाण्डू पण्डित ने प्रभाकर मत के अनुसार इस सदर्भ की विशद् व्याख्या की भी है।[8]

---

1 स्वत स्वाश्रयजनकसामग्रीत। स्व प्रमात्वम्। एतच्च गुरुमते।
परत तदन्यसामग्रीत , एतच्च मिश्रमत भट्टमतन्यायमतेषु।। चिन्तामणिरहस्य, पृ० 117

2 शा दी – पाथसारथि मिश्र - तर्कपाद, पृ० 57

3. यादृशं हि ज्ञानस्य स्वरूप तादृशमेवाहर्थेऽध्यारोपयतीति यावत् -श्लोकवार्तिक 2/85 पर भाष्य एव द्रष्टव्य पृ० 242 246

– सर्वत्र सरार्गमात्रमसदेवावभासते ससगिर्णस्तु सन्त एव सेय विपरीतख्यातिरित्युच्यते मीमासकै शास्त्रदीपिका, पृ० 58

4 ऋजुविमला , पृ० 19-20

5 रजतमिदमिति नैक ज्ञानम्, किन्तु द्वे एते विज्ञाने। तत्र रजतमितिस्मरण तस्याननुभवरूपत्वान्न प्रामाण्यप्रसग। इदमिति विज्ञानमनुभवरूप प्रमाणमिष्यत एव। भ्रान्तिरूपता चात्र रजतज्ञानस्य स्मरणरूपस्यैव ग्रहणव्यवहारप्रवर्तकतया व्यवहारकाले विसवादकत्वात्। प्रकरणपञ्जिका, पृ० 43 एव द्रष्टव्य, तन्त्र रहस्य पृ० 2 5, नयविवेक, पृ० 86 93, श्लोकवार्तिक, पृ० 242 246, शास्त्रदीपिका, पृ० 58-59

6 विशद व्याख्या हेतु द्रष्टव्य नै० 6/51, नारायण एव मल्लिनाथ की टिप्पणी

7 अन्योन्यमन्यत्रवदीक्षमाणौ परस्परेणाध्युषितेऽपिदेशे।
आलिङ्गितालीकपरस्परान्तस्तथ्य मिथस्तौ परिषस्वजाते।। नै० 6/51

8 अयमर्थ तत्पूर्वमन्यत्र नले न क्वापि सत्यालिङ्गनमनुभूत गृहीतम्। दमयन्त्या च सखीभि सहालिङ्गनमनुभवगृहीतम्। तदेवेदम् अध्युषित देशेस्मृतम्। अतोन्योन्यालिङ्गनग्रहणज्ञान चोभयमपि तथ्यमेव न तु मिथ्या। अतस्तथ्यो मिथ परिष्वङ्ग स्मरण ज्ञानस्य अबाधितत्वात् इति मीमासकैक देशिना प्राभाकरणामाशय। अतोन्योन्यपरस्परमिश्रशब्दानामपौनरुक्त्यम्। अन्योन्यशब्द एक पूर्वानुभूताश्लेषवाची। अपर परस्पर शब्द पुरोवर्तिनि देशे स्मरणज्ञान वाचक। तृतीय अपरवादिना सम्प्रतिपन्नाम् अलीकता भ्रान्तिसज्ञामनूद्य ग्रहणस्मरण ज्ञानयोरेकत्रमेलक चतुर्थोमिथ शब्द प्राभाकरसिद्धान्तसिद्धा प्रतिज्ञा प्रतिपादयति। अत सर्वप्रकारेण तथ्य मिथस्तौपरषिस्वजाते। नै० 6/51 चाण्डू पण्डित

ज्ञान सागर, परमोत्साह सम्पन्न एकमात्र नल, को ही अपने प्रणय का लक्ष्य बनाया और उसी मे अपनी प्रीति निष्ठा प्रदर्शित की। अत वह भीमपुत्री दमयन्ती उपनिषद् के समान थी। छान्दोग्योपनिषद् मे आत्मा के वास्तविक स्वरूप के निरूपण मे सनत्कुमार भी नारद से कहते है कि यह आत्मा सारे भौतिक पदार्थों तथा मानसिक कार्यकलापो से परे है, वाक्, मन, सकल्प, चित्त, ध्यान, विज्ञान, बल, अन्न, आप, तेजस, आकाश, स्मृति, आशा, प्राण आदि मे सबसे उत्कृष्ट आत्मा ही है, इन सबकी सत्ता आत्मा से ही है, क्योकि आत्मा सर्वव्यापी है।[1] शायद इसीलिए इस सदर्भ मे नैषधकार ने अन्य तत्त्वो का निराकरण तो किया है, किन्तु आत्म तत्त्व का नहीं एव उपर्युक्त प्रसग की मीमासोपरान्त यह कहा जा सकता है कि यहॉ श्रीहर्ष ने नल को ब्रह्म रूप मे, एव दमयन्ती को आत्मा, (जीवात्मा) रूप मे चित्रित करने का प्रयास किया है तथा ब्रह्म की सभी विशेषताओं[2] को नल मे आरोपित भी किया है। साथ ही जिस प्रकार सम्पूर्ण उपनिषदो मे ब्रह्मात्मैक्य (ऐकात्म) का प्रतिपादन मिलता है, [3] ठीक उसी तरह नैषधकार यह बताना चाह रहे है कि अन्य नरेशो या देवो के वरण को अस्वीकार कर दमयन्ती (आत्मा या जीव रूप) नल (ब्रह्मरूप) को ही वरण करना चाह रही थी। दमयन्ती की मधुरवाणी के वर्णन मे, तथा नल के कथन मे भी श्रीहर्ष ने उपनिषदो को अद्वैत का प्रतिपादनकर्ता बताया है।[4] साथ ही अद्वैत प्रतिपादक महावाक्यो-यथा तत्त्वमसि (छा उप ६/८/७), स वा एष महानज आत्मा (वृ० उप ४/४/२५)[5], एकमेवाद्वितीय ब्रह्म (छा उ ६/२/१), नेहनानास्ति किचन (वृ उप ४/४/१९)[6] के विवरण भी नैषधकार ने कलि वर्णन प्रसग मे दिया है, जहॉ कलि प्रतिनिधि अपने सिद्धान्तो के मण्डन मे इन महावाक्यो का उपहास एव खण्डन करता है। साथ ही नल की देवार्चना प्रसग मे उनके द्वारा की गयी शिव के साथ-साथ विष्णु वदना मे भी सर्वं खलु इद ब्रह्म (छा उप ३/१४/१) की अवधारणा (जो कि रामानुजाचार्य के शब्दो मे सर्व विष्णुमय जगत है) का उल्लेख करते हुए श्रीहर्ष लिखते है कि युक्तियुक्त अनेक प्रकार की बाधाओ तथा विरोध से पदार्थ भेदाश्रित

---

1 विस्तृत विवेचन हेतु द्रष्टव्य-छान्दोग्योपनिषद् अध्याय-7

2 विशिष्ट विवरण हेतु द्रष्टव्य0 जन्माद्यस्य यत - ब्र सू 1/1/2, तत्तु समन्वयात् ब्र सू 1/1/4 एव इन पर शा0 भा0
- अखण्ड सच्चिदानन्दमवाङ्मनसगोचरम्। आत्मानमखिलाधारमाश्रयेऽभीष्ठ सिद्धये।। वेदान्तसार-1
- अस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घमलोहित न तदश्नाति कश्चन्। बृ उ 3/8/8
- नेति-नेति बृ उ 2/3/6
- सत्य ज्ञानमनन्त ब्रह्म । तै उप 2/1/1
- आनन्दो ब्रह्मेति व्याजानात्-तै उप 3/6/1
- यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसविशन्ति तद्विजिज्ञास्व तद् ब्रह्मेति।तै0उप0 3/1/1
- यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनाना सह। तै0 उप 2/3/1
- आनन्दरूपममृत यद् विभाति। मुण्ड उप 2/2/7, एव 2/2/10 भी द्रष्टव्य
- येन्मनसा न मनुते येनाहुर्मतो मतम्। केन उप0 1/4/5, श्वेता उप 6/14
- नैव वाचा न मनसा प्राप्तु शक्यो न चक्षुषा- कठो0 2/3/12
- तमेव भान्त अनुभाति सर्व तस्य भाषा सर्वमिद विभाति- कठो0 2/2/15

3 तत्त्वमसि (श्वेतकेतो) -छान्दो उप 6/8/7।
- सदैव सोम्येदमग्र आसीदिमेवाद्वितीयम्-छा उप 6/2/1
- ऐक्यावधारणद्वैत प्रतिषेधैस्त्रिभि क्रमात्। पचदशी 2/21 उत्तरार्द्ध
- एष उ ह्येव सर्वे देवा। वृह उप 1/4/6
- अह ब्रह्मास्मि-वृहदा उप 1/4/10
- **अयमात्मा ब्रह्म- माण्डू0-2**

4 प्रसूनबाणाद्वयवादिनी सा काचिद्द्विजेनोपनिषत्पिकेन। अस्या किमस्याद्विजराजतो वा नार्थ्यते भैक्षभुजातरुभ्य ।।नै० 7/48

5 जनेन जानतास्मीति काय नाय त्वमित्यसौ। त्याज्यते ग्राह्यते चान्यदहो श्रुत्यादि धूर्तया।। नै० 17/54

6\. **एकस्य विश्वपापेन तापेऽनन्ते निमज्जत। क. श्रौतस्यात्मनो भीरो। भार. स्याद्दुरितेन ते।। नै० 17/56**

7 केयमर्धभवता भवतोह मायिना ननु भव सकलस्त्वम्। शेषतामपि भजन्तमशेष वेद वेदनयनो हि जनस्त्वाम्।। नै० 21/102

(भेदयुक्त) नहीं होते, किन्तु तुम्हारी (विष्णु की) चेष्टा के विजृम्भित से परन्तु भेदाश्रित होते हे, यही तात्त्विक सिद्धान्त हे[1] दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि तत्त्वमसि या "सर्व विष्णुमय जगत् अर्थात् "सर्व खलु इद ब्रह्म," आदि श्रुतिवचन या महावाक्यो के अनुसार घट पदादि पदार्थो मे वास्तविक विचार से कोई भेद प्रतीत नहीं होता, किन्तु (व्यावहारिक जगत मे) आपकी (विष्णु या ब्रह्म की) इच्छा (माया या चित शक्ति) के विलास से (एक चन्द्र होते हुए भी अविद्यावश) दो चन्द्रमा के समान भेद प्रतीति होती है। अतएव श्रवणमननादि क्रम से आपका साक्षात्कार होने पर एक मात्र आप ही सम्पूर्ण जगत्स्वरूप दिखायी पडते है, आपसे भिन्न किसी पदार्थ का भेदज्ञान नहीं होता। प्रसगत तो नैषधकार यहॉ विष्णु के अवतार का वर्णन कर रहे हे, जैसा कि रामानुज भी मानते है कि ईश्वर एक है किन्तु आपने भक्तो पर अनुग्रह करने के कारण वे स्वय को पॉच रूपो मे प्रकट करते है, अन्तर्यामी, पर, व्यूह विभव आर अर्चावतार, जिसमे यहॉ अन्तर्यामी, पर, एव विभव जैसे रूपो की कल्पना रामानुज के मतानुसार मानी जा सकती है एव जगत की विभिन्नता की प्रतीति भी नारायण की लीला रूप मे मानी जा सकती है, किन्तु नल के इस कथन से कि "आपकी इच्छा से ही समस्त वस्तुओं की सत्ता मे पृथकता की प्रतीति होती हे, इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष रामानुज के मत का नहीं, अपितु शकराचार्य के मत "ब्रह्म की इच्छित शक्ति माया या अविद्या है", का ही उल्लेख यहॉ करना चाह रहे है, क्योकि रामानुज तो ईश्वर को चिदचिद् विशिष्ट मानते है जिसमे चित् और अचित् दोनो नित्य और परस्पर स्वतत्र द्रव्य है, ईश्वर दोनो का नियन्ता है।[2] यदि तत्त्वमसि जैसे महावाक्य की शकराचार्य एव रामानुज के अनुसार विवेचना की जाये तो शकराचार्य के मत मे जहॉ तत्त्वमसि मे 'तत्' पद, परब्रह्म को सूचित करता है, जो अधिष्ठानभूत तत्त्व है, 'त्वम्' पद जीव को सूचित करता है, जो साक्षी और अविद्या का मिश्रण है, एव 'असि' पद से दोनो के पूर्ण तादात्म्य (ऐकात्म) का प्रतिपादन होता है, इस प्रकार शकराचार्य के अनुसार यह महावाक्य जीव के आरोपित जीवत्त्व का निषेध करके उसके ब्रह्मस्वरूप का पुनर्विधान करता है (कि तुम ब्रह्म हो या जीव ब्रह्म ही है) अर्थात् मोक्ष की दशा मे वह जीव और ब्रह्म के स्वरूपैक्य का प्रतिपादन करते है।[3] वहीं रामानुज के मतानुसार त्वम् पद का तात्पर्य है" अचिद्‌विशिष्टजीवशरीरक ब्रह्म, अर्थात् देहेन्द्रियान्त करण विशिष्ट जीव रूपी शरीर मे अन्तर्यामी आत्मभूत ब्रह्म, तथा 'तत्' पद का तात्पर्य है- सर्वज्ञ सत्यसकल्प जगत्कारण ब्रह्म जो सम्पूर्ण विश्व मे व्याप्य है, अर्थात् कर्त्ता, धर्त्ता, हर्ता, नियन्ता परब्रह्म या ईश्वर है[4] अत रामानुज के मत मे इस महावाक्य का अर्थ जीव का अन्तर्यामी ईश्वर, और जगत्कारण ईश्वर दोनो है, क्योकि जो ईश्वर जीव रूपी शरीरका आत्मा है वही ईश्वर जगत रूपी शरीर का भी आत्मा है, और जीव की अलग से सत्ता मानने के कारण रामानुज जीव और ब्रह्म का स्वरूपैक्य नहीं मानते, बल्कि मोक्ष दशा मे वह ब्रह्मसायुज्य मानते है।

---

1 वस्तु वास्तु घटते न भिदाना यौक्तनैकविधवाधविरोधै। तत्त्वदीहितविजृम्भिततत्तद्भेदमेतदिति तत्त्वनिरुक्तै ।। नै० 21/107 वस्तुविश्वमुदरे तव दृष्ट्वा बाह्यवत् किल मृकण्डुतनूज। स्व विमिश्रमुभय न विविञ्चन् निर्ययो स कतमस्त्वमवैषि।। नै० 21/108 – विशिष्ट विवरण हेतु दृष्टव्य- नै० 21/107-108 नारायण, एव नै० 21/93 94 मल्लिनाथ की टिप्पणियॉ

2 त्रितय ब्रह्ममेतत्– श्वे उप 1/12

3 तत्त्वमसीत्येतद्‌वाक्य त्व पदार्थस्य तत्पदार्थभावमाचष्टे-शारीरक भाष्य 4/1/2

4 तत्पद हि सर्वज्ञ सत्यसकल्प जगत्कारण ब्रह्म परामृशति। तत्समानाधिकरण त्व पदञ्च अचिद्‌विशिष्टजीव शरीरक ब्रह्म प्रतिपादयति-श्रीभाष्य-पृ० 80

वेदान्त दर्शन मे मोक्ष निरूपण अत्यन्त विशिष्ट रूप से विवर्णित है। आचार्य शकराचार्य के मत मे मोक्ष नित्य, सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा या ब्रह्म की अपरोक्षानुभूति है। जब जीव की आत्मज्ञान द्वारा अविद्या निवृत्ति हो जाती है,[1] तो जीव नित्य, शुद्ध बुद्ध मुक्त ब्रह्मभाव को प्राप्त कर लेता है। शाकर वेदान्त मे मोक्ष के तीन लक्षण वर्णित मिलते है, मोक्ष अविद्या निवृत्ति है, मोक्ष ब्रह्मभाव या ब्रह्मसाक्षात्कार है, एव मोक्ष नित्य अशरीरत्व है।[2] शकराचार्य के मत में मोक्ष पारमार्थिक सत् है, कूटस्थनित्य है, आकाश के समान सर्वव्यापी है, सम्पूर्ण विकारो से रहित है, नित्यतृप्त है, निरवयव है, स्वयज्योतिस्वभाव है। यह धर्म और अधर्म नामक शुभाशुभ कर्मों से तथा (सुख, दुख, रूपी) उनके कार्यों से अस्पृष्ट है, यह कालत्रयाधीत है, यही अशरीरत्व मोक्ष कहलाता है,[3] परन्तु साधन चतुष्ट्य अर्थात् नित्यानित्यवस्तुविवेक, इहामुत्रार्थफलभोगविराग, शमादिषट्कसम्पत्ति और मुमुक्षत्व सम्पन्न व्यक्ति ही मोक्ष का अधिकारी बन सकता है[4] एव ब्रह्मसाक्षात्कार कर सकता है। श्रीहर्ष ने वेदान्त दर्शन के मोक्ष या ब्रह्मसाक्षात्कार पद्धति की सगति नैषध मे अनेक प्रसगो मे की है। यथा- दमयन्ती के उपवन मे हस को दमयनती की सखियो द्वारा हस को (ब्रह्म रूप मे देखने के वर्णन मे) देखने के वर्णन मे, जहॉ वर्णन मिलता है कि दमयन्ती की सखियो के नेत्र अन्य विषयो का ग्रहण छोडकर अवर्णनीय सौन्दर्य वाले हस पर जा पडे जैसे योगियो के चित्त सासारिक विषयो को छोडकर अवर्णनीय तथा अद्वितीय परमात्मा (ब्रह्म) पर जाते है।[5] साथ ही दमयनती भी उस सम्य हस को पकडने के लिए, (पक्षान्तर मे ब्रह्म दर्शन के लिए) शरीर निश्चल करके इस प्रकार खडी रही, जैसे अपने शरीर मे, स्थित तथा मनु आदि से निरन्तर ध्यान किये गये परमात्मा को आदरपूर्वक ग्रहण करने के लिए योगी की मानोवृत्ति निश्चल हो जाती है।[6] अन्यत्र नारद द्वारा आकाशमार्ग से इन्द्रपुरी पहुँचने के वर्णन मे श्रीहर्ष लिखते हैं कि "मध्य मे विशाल आकाश का अतिक्रमण करके नारद इन्द्र के भवन मे इस भॉति पहुँचे, जैसे यति, अनादि ससार समुद्र को पार करके, आनन्द की राशि सुन्दर ब्रह्म को प्राप्त करता है।[7] यहॉ पर श्रीहर्ष ने "आनन्द ब्रह्मणो रूपम् (तै०उ० २/४) की सगति भी की है तथा आचार्य मल्लिनाथ ने उपर्युक्त प्रसग मे श्रीहर्ष के वेदान्त समन्वित तथ्य की पुष्टि भी की है।[8]

ऋग्वेद[9] के साथ-साथ वृहदारण्यकोपनिषद[10] मे वर्णन मिलता है कि आत्मज्ञान होने पर योगी या साधक आत्मा तथा प्रकृति को विवेक द्वारा जान लेता है। इस तथ्य की सगति भी श्रीहर्ष ने दौत्यप्रसग मे नल की स्थिति के निरूपण मे की है, जहॉ नल दमयनती के करुणविलाप को सुनकर भावोद्रेक मे स्वय को प्रकट कर प्रकृत दशा (देवदूत रूप छोडकर नल रूप मे) मे आते है, तत्क्षण ऐसी अनुभूति हुई कि जैसे

1 मोक्षप्रतिबन्धनिवृत्तिमात्रमेव आत्मज्ञानस्य फलम्-शा0 भा0 1/1/4

2 अविद्यानिवृत्तिरेव मोक्ष , ब्रह्मभावश्च मोक्ष , नित्यमशरीरत्व मोक्षाख्यम्, वही 1/1/4

3 इद तु पारमार्थिक, कूटस्थनित्य व्योमवत्, सर्वव्यापि सर्वविक्रियारहित, नित्यतृप्त, निरवयव, स्वयज्योतिस्वभाव, यत्र धर्माधर्मौ सह कार्येण, कालत्रयं च, नोपावर्तते, तदेतत् अशरीरत्व मोक्षाख्यम्- शा0 भा0 1/1/4

4 साधनानि नित्यानित्यवस्तुविवेकेहामुत्रार्थफलभोगविराग शमादिषट्क सम्पत्तिमुमुक्षुत्वानि। प्रशान्तचित्ताय जितेन्द्रियाय च प्रहीण दोषाय यथोक्तकारिणे गुणान्वितायानुगताय सर्वदा प्रदेयमेतत् सकल मुमुक्षवे (उपदेश साहस्री 16/72) एव वैदान्तसार- पृ० 53-54

5 नेत्राणि वैदर्भसुतासखीना विमुक्ततत्तद्विषयग्रहाणि। प्रापुस्तमेक निरुपाख्यरूप ब्रह्मेव चेतासि यतव्रतानाम्।। नै० 3/3

6 हस तनौ सन्निहित चरुत मुनेर्मनोवृत्तिरिव स्विकायाम्। ग्रहीतुकामादरिणा शयेन यत्नादसौ निश्चलता जगाहे।। नै० 3/4

7 स व्यतीत्य वियदन्तरगाध नाकनायक निकेतनाप। सम्प्रतीर्य भवसिन्धुमनादि ब्रह्म शर्मभरचारु यतीव।। नै० 5/8

8 स मुनि , अगाध वियदन्तर्नभोऽभ्यन्तर व्यतीत्य नाकनामक निकेतनम् इन्द्रभवन, यती योगी अनादि भवसिन्धु ससाराब्धि सम्प्रतीर्य शर्मभरचारु परमानन्दसुन्दर, ब्रह्म परमात्मानमिव प्राप। नै० 5/8 में मल्लिनाथ

9 अह मनुरभव सूर्यश्चाह कक्षी वा ऋषिरस्मि विप्रा। ऋ 4/3/26/1, मैक्समूलर द्वारा सम्पादित, सन् 1856

10 अह मनुरभव सूर्यश्चाह कक्षीवानृषिरस्मि विप्र। अह कृत्समार्जुनेय सृजेऽह कविरुशनापश्यतामा (वृ उप 1/4/10) इत्यादि वासुदेव ऋषियदित्यर्थ। एव द्रष्टव्य वृ उ 2/4/5

कोई मुनि आत्म ज्ञान प्राप्त कर अपने प्रकाश स्वरूप (परमात्मा) को तथा प्रकृति को अलग-अलग रूप से जान लेता है, उसी प्रकार नल को भी प्रबोध (दूत एव नल की पृथकता को बता देने का) प्रबोध होने पर, पुन वह उसी रूप (दूतरूप) मे आकर दूतोचित वचन बोलने लगे।[1] स्मरणीय है कि साधनचतुष्ट्य सम्पन्न साधक योग आदि के द्वारा ससार के आवागमन को दूर करने के समर्थ ज्ञान को प्राप्त कर लेता है या योगी अपने को स्वप्रकाश सच्चिदानन्द स्वरूप "अह ब्रह्मास्मि" अर्थात् मै ही ब्रह्म हूँ, ऐसा जान लेता है, और वैसा जानते हुए भी पूर्व सस्कारो से या प्राप्त ब्रह्मज्ञान से सत्त्वादि गुणत्रयरूप एव ससारोत्पादिनी अनादि अविद्या को पृथग्भूत जानकर "मै पहले मनुष्य था" इत्यादि भी जानता है, और इस प्रकार आत्मा तथा प्रकृति को विवेक के द्वारा जानकर बाते करता है। ठीक इसी स्थिति का निरूपण श्रीहर्ष ने नल की स्थिति मे दोहरायी है, एव जैसा वेदान्त मे जीवन्मुक्त व्यक्ति की स्थिति होती है, उसी स्थिति का आरोपण नैषधकार ने नल मे किया है।

श्रीहर्ष ने वेदान्तदर्शन की उस मान्यता का भी विवरण, नल द्वारा दमयन्ती के सौन्दर्य वर्णन मे किया है कि ईश्वर ही भक्त को पापकर्म करने से रोकता है।[2] साथ ही इस तथ्य को भी उद्घाटित किया है कि परमात्म ज्ञान होने पर किसी अन्य ज्ञान की आवश्यकता भी नहीं होती[3] एव परमात्म ज्ञानानन्तर मोक्ष के प्रदाता ईश्वर ही है।[4] विष्णु को ससार रचयिता एव परब्रह्म रूप मे[5] मानते हुए तथा उन्हीं के ध्ययानानन्तर कर्मक्षयपूर्वक मुक्ति प्राप्ति होने मे ईश्वर को मोक्ष का कारण भी माना है।[6] नैषधीयचरितम् मे उपलब्ध उपर्युक्त तथ्यो की सगति रामानुज वेदान्त एव गीता मे प्रतिपादित विषयवस्तु से की जा सकती है[7] क्योकि रामानुज के अनुसार परज्ञान और पराभक्ति एक ही है, और यही मोक्ष का कारण है। निम्बकाचार्य,[8] एव मध्वाचार्य[9] भी रामानुज से उपर्युक्त मत मे सहमत है साथ ही पुष्टिमार्ग के वल्लभाचार्य भी मानते है, भवगद् भक्ति से ही मुक्ति सभव है।[10]

---

1 मुनिर्यथात्मानमथ प्रबोधवान् प्रकाशयन्त स्वमसावबुध्यत।
अपि प्रपन्ना प्रकृति विलोक्य तामवाप्तसस्कारतयासृजद्गिर ।। नै० 9/121
– यथा मुनिर्योगलब्धात्मतत्वावबोधोऽपि वासनावशात् बाह्यमनुसन्धत्ते तथा नलोऽपि प्रकटितात्मा पुन सस्कारवशात् दूत्यमेवान्नुसरन्न्वाचेत्यर्थ । नै० 9/121 मल्लिनाथ
– मुनिरप्यात्मान प्रकृति च विवेकेन ज्ञात्वा युक्त सन् वागादिव्यवहारान्सृजति मुञ्चतीति केचित्। नै० 9/121 नारायण

2 पुण्ये मन कस्य मुनेरपि स्यात्प्रमाणमास्ते यदघेऽति धावत्।
तच्चिन्ति चित्त परमेश्वरस्तु भक्तस्य हृष्यरुणो रुणद्धि।। नै० 8/77

3 मुधार्पित मूर्धसु रत्नमेभिर्यन्नाम तानि स्वयमेत एव। स्वत प्रकाशो परमात्मबोधे बोधान्तर न स्फुरणार्थमर्थ्यम्।।नै० 10/63

4 धर्मबीजसलिला सरिदङ्घ्रावर्थमूलमुरसि स्फुरति श्री । कामदैवतमपि प्रसवस्ते ब्रह्म मुक्तिदमसि स्वयमेव।।नै० 21/110

5 विश्वरूप! कृत विश्व! कियत् ते वैभवाद्भुतमणौ हृदि कुर्वे।
हेम नह्यति कियन्निजचीरे काञ्चनाद्रिमधिगत्य दरिद्र ।। नै० 21/117

6 प्राग्वैरुदगुदग्भवगुम्फान्मुक्तियुक्ति विहताविह तावत्। नापर स्फुरति कस्यचनापि त्वत्समाधिमवधूय समाधि ।। नै० 21/103

7 'सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेक शरण व्रज। अह त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिस्यामि मा शुच । गीता 18/66
– श्रवण कीर्तन विष्णो स्मरण पाद सेवनम्। अर्चन वन्दन दास्य सख्यमात्मनिवेदनम्। भागवत् 7/5/23 एव 6/11/26, 7/7/52
– भवतु मम परस्मिन् शेमुखी भक्तिरूपा-श्रीभाष्य मगलाचरण।
साक्षात्काररूपा ध्रुवा स्मृतिरेव भक्तिशब्देनाभिधीयते-वही
– अपरोक्षानुभूतिर्या वेदान्तेषु निरूपिता। प्रेमलक्षण भक्तेऽस्तु परिणाम स एव।। नरहरि स्वामी, बोधसार 32/10

8 स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोषमशेषकल्याणगुणैकराशिम।
व्यूहाङ्गिन ब्रह्म पर वरेण्य ध्यायेय कृष्ण कमलेक्षण हरिम्।। दशश्लोकी 4 एव द्रष्टव्य श्लोक 1 5

9 ज्ञानपूर्वपरस्नेहो नित्यो भक्तिरितीर्यते। -महाभारत तात्पर्य निर्णय पृ० 1/107

10 ध्यान चेतरतिरस्कारपूर्वक भगवद्विषयाऽखण्डस्मृति -मध्वसिद्धान्तसार, पृ० 139
– माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढ सर्वतोऽधिक ।
– स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्न चान्यथा।। तत्वार्थदीप, पृ० 55

ब्रह्मसाक्षात्कार से उत्पन्न ब्रह्मानन्दानुभूति का वर्णन भी श्रीहर्ष ने नल द्वारा दमयन्ती के प्रथम दर्शन मे साहित्यरसप्रसविनी विधा मे किया है, वे लिखते है कि नल ने दमयन्ती के रोमाग्र या रोमावलियो को देखने पर अद्वैतब्रह्मानन्द का आनन्द प्राप्त किया, अनन्तर उसके सर्वागो को देखने के बाद तो ब्रह्मानन्द से अधिक (कामदेवजन्य आनन्द या मदनानन्द) आनन्द प्राप्त किया।[1] वेदान्तदर्शन मे वर्णन मिलता है कि ब्रह्मसाक्षात्कार के बाद व्यक्ति जीवन्मुक्त रूप मे विचरण कर सकता है,[2] किन्तु व्यावहारिक विषयो मे उसकी अनुरक्ति नहीं होती। इस तथ्य की सगति श्रीहर्ष ने दमयन्ती के अन्त पुर मे नल की उपस्थिति को देखकर दमयनती की स्थिति के निरूपण मे की है, वे अभिहित करते है कि उस (नल को देखने के) समय (नल के अलभ्य दर्शन लाभ से) आनन्दस्वरूपा तथा अत्यन्त अनिर्वचनीय मोह[3] (अज्ञान या किकर्त्तव्यमूढता, अथवा अत्यन्तसुरक्षित अन्त पुर मे नल कैसे आ गये, वे नहीं है क्या? इत्यादि भ्रम) वाली उस दमयन्ती ने (ब्रह्मतुल्य नलदर्शन जन्य आनन्द से) मुक्त (जीवन्मुक्त) तथा (मोह या भ्रम होने से) ससारी की अवस्थाओ से शुद्ध उल्लास या मधुर द्विविध (मुक्त तथा ससारी व्यक्ति की अनुभूतियो का) स्वाद प्राप्त किया।[4] यहॉ नैषधकार ने जीवन्मुक्त तथा ससारी व्यक्ति दोनो की विशेषताओ या अवस्थाओ का चित्रण कर यह बताना चाहा है कि मुक्त व्यक्ति ससारी नहीं होता, एव ससारी रहता हुआ व्यक्ति मुक्त भी नहीं होता, किन्तु दमयन्ती ने एक साथ दोनो ही अवस्थाओ का आनन्द प्राप्त, किया यह अत्यन्त आश्चर्य का विषय है।

नैषधकार के साथ विविध कविपण्डितो ने मुक्ति का विवेचन किया है।[5] परन्तु ध्यातव्य तथ्य यह है कि कोई ज्ञान (विवेक) से इसकी प्राप्ति मानते हैं, तो कोई कर्म से, तो कोई भक्ति से और शायद यही

---

1 ब्रह्माद्वयस्यान्वभवत्प्रमोद रोमाग्र एवाग्रनिरीक्षितेऽस्या। यथौचितीत्थ तदशेषदृष्टावथ स्मराद्वैतमुद तथासौ।। नै० 7/3

2 मोक्षप्रतिबन्धनिवृत्तिमात्रमेव आत्मज्ञानस्य फलम् अत्र ब्रह्म समश्नुते। इहैव तदाप्नोति।
तस्मान् मिथ्या प्रत्ययनिमित्तत्वात् सशरीरत्वस्य, सिद्ध जीवितोऽपि विदुषोऽशरीरत्वम्। शा0 भा0 1/1/4
– अशरीर वाव सन्त न प्रियाप्रिये स्पृशत। छा0 उप0 8/12/1
– अथायम् अशरीरोऽमृत ब्रह्मैव-बृहदा उप 4/4/7
– देह च नश्वरमवस्थितमुत्थित वा सिद्धो न पश्यति यतोऽध्यगमत स्वरूपम्।
देवादपेतमुत दैववशादुपेत वासो यथा परिकृत मदिरामदान्ध ।। भागवत 11/13/36

3 सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिका नो भिन्नाप्यभिन्नाप्युभयात्मिको नो।
साङ्गाप्यनङ्गाप्युभयात्मिका नो, महाद्भुतानिर्वचनीयरूपा।। विवेकचूडामणि-111
– दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया-गीता 7/14,
– अजामेका लोहितशुक्लकृष्णा बह्वी प्रजा सृजमाना सरूपा। श्वे0 उप0 4/5, एव 1/3 भी द्रष्टव्य
– माया तु प्रकृति विद्यान्मायिन तु महेश्वरम्-श्वे उप0 4/10
– सत्वशुद्ध्यविशुद्धिभ्या माया विद्ये च ते मते-पचदशी, 1/16
– माया बिम्बो वशीकृत्य ता स्यात् सर्वज्ञ ईश्वर। अविद्यावशगस्त्वन्यस्तद्वैचित्र्यादनेधा। पचदशी 1/17
– तुच्छानिर्वचनीया च वास्तवी चेत्यसौ त्रिधा। ज्ञेया माया त्रिभिर्बोधै श्रौतयौक्तिकलौकिकै ।। पचदशी-6/130
– एव द्रष्टव्य - वृहदारण्यकवार्तिक, श्लोक 181, इन्द्रो मायाभि पुरुरूप ईयते- ऋ0 6/47/10

4 तत्कालमानन्दमयी भवन्ती भवत्तरा अनिवर्चनीय मोहा।
सा मुक्तससारिदशारसाभ्या द्विस्वादमुल्लासमभुङ्क्तमिष्टम्।। नै० 8/15

5 इत्येषा व्युपशान्तये न रतये मोक्षार्थगर्भा कृति श्रोतृणा ग्रहणार्थमन्यमनसा काव्योपचारात्कृता।
यन्मोक्षात्कृतमन्यदत्र हि मया सत्काव्यधर्मात्कृत, पातु तिक्तमिवौषध मधुयुत हृद्य कथ स्यादिति।। सौन्दरनद-18/63
– साधुऽना तव बन्धे मोक्षे च प्रभावति-मेघदूत- 61, एव 19 भी द्रष्टव्य
– धुर्याणा च धुरो मोक्षम्। रघुवश - 17/19, एव 10/84
– लब्धमोक्षा शुकादय रघुवश 17/20
– कु 3/31, गीता 5/28, 18/30, भर्तृ0 2/62,
– ते वै विदन्त्यतितरन्ति च देवमाया, स्त्री शूद्र हूण शबरा अपि पापजीवा।
यद्यद्भुतक्रमपरायणशील शिक्षा स्तिर्यग्जना अपि किमु श्रुतधारणा ये ।। भागवत 2/7/46
– यदत्र न स्वर्गसुखावशेषित स्विष्टस्य सूक्तस्य कृतस्य शोभनम्।
तेनाजनाभे स्मृतिमज्जन्म न स्याद्, वर्षे हरिर्यद भजता श तनोति।। वही 5/19/28 एवं 5/19/21
– तुलनीय कबीर विचार में मुक्ति का स्वरूप यथा-
तन प्रारब्धि को साथ है, परखि स्मरण न्यार। आसक्ति सबै निर्मूलकरि, आप आप ही प्यार।।
कारण कारज तत्त्व नहि, सनमुख जीव के होय। विदेह मुक्ति है जीव की, परख प्रकाश सदोय।। मुक्तिद्वार-निवृत्ति साहस शतक, साखी, 103, 104
– पारख को प्रकाश जहँ शुद्ध स्वरूप स्वदेश। मन वाणी को अत तहँ, आप आप ही शेष।। वही 130
– साथ ही आचार्य मम्मट द्वारा काव्यानद से मोक्ष प्राप्ति मानना एव ओशो रजनीश द्वारा "सम्भोग से समाधि" ग्रथ में कामानन्द को ही मोक्ष या असम्प्रज्ञात समाधि बताना, धार्मिक दृष्टि से नितात असगत है, किन्तु तार्किक दृष्टि से कहॉ तक न्याय सगत है, विद्वज्जन ही प्रमाण हैं।

कारण है कि मुक्ति के भी कई स्वरूप या कह ले, प्रभेद दर्शनशास्त्र मे स्वीकृत किये गये है। जहॉ चार्वाक "मरणमेवापवर्ग" रूप मे इसकी परिकल्पना करता है, वहीं बौद्ध निर्वाण या बोधि रूप मे, साख्य विवेकख्याति रूप मे, योग असम्प्रज्ञात समाधिरूप में, न्याय प्रमाणमीमासोपरान्त तत्त्वज्ञान रूप मे, वैशेषिक धर्म वैधर्म्य के ज्ञान के द्वारा तत्त्वज्ञान रूप मे, मीमासा कर्म (यागादि) फल के समाप्त्यानन्तर शरीर के पूर्ण रूप से निरोध[1] या सुखदु खाभाव स्थिति या (पार्थसारथि के शब्दो मे) प्रपच सम्बन्ध विलय रूप मे, शकराचार्य आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञान (ऋतेज्ञानान्मुक्ति) मे एव रामानुज, वल्लभ, निम्बार्क आदि आचार्य ईश्वरप्रणिपत्ति रूप मे मोक्ष की स्थिति स्वीकार करते हैं[2] फिर भी उनकी मान्यताओ मे काफी वैषम्य है। वेदान्त दर्शन मे मुक्ति को दो अवस्थाओ से स्वीकार किया जाता है, जीवन्मुक्ति एव विदेहमुक्ति। जीवन्मुक्ति प्राप्त व्यक्ति का शरीर प्रारब्ध कर्मों की समाप्ति तक बना रहता है किन्तु इस अवधि मे नवीन कर्मसचय नहीं होता, एव प्रारब्ध कर्मो की समाप्ति होने पर जीवन्मुक्त का देहपात हो जाता है, एव यही विदेहमुक्ति कहलाती है। जीवन्मुक्त व्यक्ति का विवरण नैषध मे दमयन्ती के सौन्दर्य वर्णन के साथ-साथ[3], चन्द्र वर्णन प्रसग मे नल के कथन मे मिलता है, जहॉ वह कहते है कि हे दमयन्ती। गुरुपत्नी गमन करने पर भी वह चन्द्रमा पतित न हुआ, क्योकि स्वय प्रकाशमान (पक्षान्तर मे परमात्म रूप प्रकाश को प्राप्त आत्मवादी ब्रह्मज्ञानी) तथा तेजो रूप शरीर या पूर्णता को पाये हुए (जीवन्मुक्त) लोग धर्माधर्म के कारणभूत कार्यारम्भ के बन्धन मे नहीं पडते है।[4] विदेहमुक्ति का वर्णन, नैषध मे कलिप्रतिनिधि द्वारा वेदान्तियो द्वारा मान्य मोक्ष की अवधारणा के खण्डन मे प्राप्त होता है, जहॉ वह कहता है कि जब तक मनुष्य ससार मे है, तब तक उसे जीव रूप अपनी, तथा ब्रह्म की भावनाओ का पृथक् भाव होता है, किन्तु मुक्ति (विदेहमुक्ति) मिलने पर अकेला ब्रह्म ही शेष रह जाता है, इस प्रकार अपनी सत्ता का उच्छेद कर इन वेदान्तियो ने मुक्ति की अवधारणाा प्रतिपादित कर अपना उपहास ही कराया है।[5] अद्वैत- वेदान्त दर्शन की मान्यतानुसार मुक्तिदशा मे जीवात्मस्वरूप प्रपच और अनादि अविद्या विलास भावना से रहित परब्रह्म का अविद्यादि प्रपंचजनित जीवात्म रूप भेद मिट जाता है, और एक मात्र ब्रह्म ही रह जाता है। परब्रह्म आकाश के समान है, और जीवात्मा घटाकाश के समान, जिस प्रकार घट से आवृत आकाश घट के न रहने पर मुक्त हो आकाशमात्र मे अभिन्न हो जाता है, उसी प्रकार देहावरण से मुक्त जीवात्मा परमात्मा मे लीन हो जाता है[6] परन्तु रामानुज का मानना है कि मुक्तावस्थाा मे जीवात्मा का ब्रह्म से स्वरूपैक्य नहीं होता, केवल साम्य होता है। रामानुज, विदेहमुक्ति तो स्वीकार करते हैं किन्तु शाकर वेदान्त द्वारा मान्य जीवन्मुक्ति स्वीकार नहीं करते, क्योकि उनका मानना है कि जब तक शरीर है, तब तक कर्मों का आत्यन्तिक क्षय नहीं हो सकता, साथ ही मुक्त जीव[7] का ब्रह्म मे विलय नहीं होता क्योकि अविद्या तथा कर्म की निवृत्ति हो जाने पर भी जीवात्मा का स्वरूप नाश नहीं होता, उसकी सत्ता बनी रहती है, क्योकि वह नित्य तत्त्व है, हॉ मुक्त जीव ईश्वर का शुद्ध अग बनकर ईश्वर (ब्रह्म) के समान हो जाता है, इस प्रकार वह ईश्वरीय ज्ञान एवं आनन्द का अनुभव भी करता है। एव इस रूप मे वह ब्रह्म प्रकार या ब्रह्म समान सिद्ध होता है, यही

---

1 The Prabhakara School of Purva Mimamra-G N Jha-P-84

2 मोक्ष के विस्तृत विवरण हेतु द्रष्टव्य, भारतीय दर्शन मे मोक्षचिन्तन एक तुलनात्मक अध्ययन-डॉ अशोक कुमार लाड, म0प्र0 हिन्दी ग्रथ अकादमी, प्रथम सस्करण-1973

3 गुरोरपीमा भणदोष्ठकण्ठ निरुक्तिगर्वच्छिदया विनेतुम्।
श्रम स्मरस्यैव भव विहाय मुक्ति गतानामनुतापनाया।। नै० 10/132

4 नास्य द्विजेन्द्रस्य बभूव पश्य दारान्गुरोर्यातवतोऽपि पात।
प्रवृत्तयोऽप्यात्ममयप्रकाशान्घ्नन्ति न घ्नन्तिमदेहमाप्तान्।। नै० 22/118

5 स्व च ब्रह्मच ससारे मुक्तौ तु ब्रह्म केवलम्। इति स्वोच्छित्तिमुक्त्युक्तिवैदग्धी वेदवादिनाम्।। नै० 17/74

6 नित्यशुद्धब्रह्मस्वरूपत्वान्मोक्षस्य- शा0 भा0 1/1/4
विस्तृत विवरण हेतु द्रष्टव्य - ब्र0स0 1/1/4 पर शा0भा0, एव 10/73 मल्लिनाथी एव 10/74 नारायणी टीका

7 नापि साधनानुष्ठानेन निरस्ताविद्यस्य परेण स्वरूपैक्यसम्भव अविद्याश्रयत्वयोग्यस्य तदनन्यत्वासम्भवात्। श्रीभाष्य। 1/1/1
एव गुणा समाना स्युर्मुक्तानामीश्वरस्य च। सर्वकर्त्तत्वमेवैक तेभ्यो देवे विशिष्यते। स द.स - पृ० 47

रामानुज द्वारा मान्य सामुज्यमुक्ति है मध्वाचार्य सायुज्य मुक्ति को सर्वश्रेष्ठ मानते है, जब कि इसमे भी तारतम्य बना रहता है। जैसा कि मध्वाचार्य (सायुज्य नाम भगवन्त प्रविश्य तच्छरीरेण भोग) मध्वगीताभाष्य मे वर्णन मिलता है कि "मुक्ता प्राप्य पर विष्णु तद्देह सश्रिता अपि। तारतम्येन तिष्ठन्ति गुणैरानन्दपूर्वकै ।। यह मुक्ति शास्त्रो मे वर्णित मुक्ति के चतुर्विध रूपो सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य मे से एक है। नैषध मे सायुज्य मुक्ति का विवरण काशीनरेश के वर्णन प्रसग में नैषधकार ने सरस्वती मुखेन दिया है, जहॉ सरस्वती काशी नगरी को मुक्ति नगरी[1] मे अभिहित करते हुए (काशी नरेश को वरण करने के सदर्भ मे) कहती है कि हे दमयन्ती, जिस प्रकार अस् धातु भूतकाल के कहने मे समर्थ अद्यतन विभक्ति (लुड्गलकार) को प्राप्त कर भूभाव (अस्तेर्भू पा सू० २/४/५२) से भू आदेश को प्राप्त करता है, उसी प्रकार इस नगरी मे पहुँचकर ससारी जीव शिवजी के सायुज्य को प्राप्त करते है, अर्थात् वाराणसी मे शरीर त्याग करने पर शिवजी प्राणी को श्रेष्ठ तारकमत्र का उपदेश देते है, जिससे प्राणी सायुज्य मुक्ति प्राप्त कर लेता है[2] एव इच्छानुसार सुखोपभोग करते हुए प्राणान्त के समय पार्वती और शिव के (अर्धनारीश्वर रूप) साथ पूर्ण एकता को प्राप्त होते है।[3] नारायण एव मल्लिनाथ के मत से यहॉ श्रीहर्ष ने सायुज्य मुक्ति का विवरण दिया है।[4] रामानुजाचार्य चार प्रकार की मुक्ति[5] स्वीकार करते है सानिध्य (जीवात्मा, परमात्मा के समीप निवास करता है), सालोक्य (जीवात्मा, परमात्मा विष्णु के लोक मे निवास करता है), सायुज्य (जीवात्मा एव परमात्मा का सम्बन्ध हो जाता है,) एव सारूप्य (जीवात्मा भी परमात्मा के प्रकार का हो जाता है) मध्वाचार्य भी रामानुज सदृश मुक्ति भोग चार प्रकार का मानते है, सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य । नैषधकार ने सालोक्य मुक्ति की सगति स्वयवरपूर्व का दमयन्ती का श्रगार करते समय सखियो द्वारा उन्हे रूप दर्शन हेतु दर्पण दिखाने के प्रसग मे की है। वे लिखते है कि दो सखियो द्वारा दिखलाये गये दो दर्पणो मे दमयन्ती का मुख (बिम्बरूप मुख) एक (पक्षान्तर मे मुख्य) है, तथा दूसरे (प्रतिबिम्ब रूप) बहुत कमल है, अर्थात् ब्रह्मरूप मुख के उपमान कमल अनेक हैं, जिन्हे लोग हिम (शिशिर ऋतुपक्षान्तर मे केदार आदि तीर्थ के बर्फ) मे नष्ट होकर (पक्षान्तर मे मुक्ति प्राप्त कर) रात्रियो मे समाधियो (मुकुलित होने, पक्षान्तर मे परमात्मा का दर्शन आदि उपायो) से उसकी (दमयन्ती पक्षान्तर मे परमात्मा की) सालोक्य (सौन्दर्य, पक्षान्तर मे सालोक्य मुक्ति) को प्राप्त हुए के समान देखते है ।[6] आशयार्थ यह है कि जिस प्रकार योगिजन बदरीनाथ, केदारनाथ आदि हिम क्षेत्रो मे तपश्चर्या आदि अनेक ईशदर्शनोपायो द्वारा शरीर त्याग कर सालोक्य मुक्ति प्राप्त करते है, और भगवान के लीलाधाम मे प्रविष्ट हो जाते है, उसी तरह कमल भी शीत (पाले) मे नष्ट हो जाते है लेकिन ऐसा लगता है कि शीत (पाले) मे शरीर त्याग करने वाले कमल मुक्ति कामी योगी है, जिन्होने दमयन्ती मुख रूप ब्रह्म का प्राप्ति के लिए देह त्याग किया है। परन्तु

---

1 वाराणसी निविशते न वसुन्धराया तत्र स्थितिर्मखभुजा भुवने निवास ।
तत्तीर्थमुक्तवपुषामत एव मुक्ति , स्वर्गात्पर पदमुदेतु मुदे तु कीदृक्।। नै० 1·/ 16

2 सायुज्यमृच्छति भवस्य भवाब्धियादस्ता पत्युरेत्य नगरीं नगराजपुत्र्या ।
भूताभिधानपटुमद्यतनीभवाप्य, भीमोद्भवे। भवति भावमिवास्तिधातु ।। नै० 11/117

3 निर्विश्य निर्विरति काशिनिवास भोगान्निर्माय नर्म च मिथो मिथुन यथेच्छम्।
गौरीगिरीधटनाधिकमेकभाव शर्मोर्मिकञ्चुकितमञ्चति पञ्चतायाम्।। नै० 11/118

4 देहान्ते देव पर तारक ब्रह्मोपदिशतीति भवाब्धियादसश्च भवसायुज्य युक्तम्।। नै० 11/117 नारायण
– भवस्य ईश्वस्य सयुजोभाव सायुज्य तादात्म्य ऋच्छति गच्छति। नै० 11/117 मल्लिनाथ
– स्वर्गादिसुखपरित्याग ध्यानादियोग च विना काशीनिवासमात्रेण परमानन्द रूप ब्रह्मसामुज्य भवति। तस्मात् सर्वाभिलाषसिद्धयर्थमेन वृणीष्वेतिभाव। नै० 11/118 नारायण
– अन्यत्र सन्यासादिक्लेशान्मुक्ति , इह भोगपूर्वकदेहत्यागादेव मुक्तिरिति भाव·।। नै० 11/118 मल्लिनाथ

5 अथ कर्मणा सम्बन्धस्य पर ज्योतिरूपसपद्य बन्धनिघत्तिरूपामुक्ति । श्रीभाष्य 4/4/2

6. कियालियुग्मार्पितदर्पणद्वये तदास्यमेक बहु चान्यदम्बुजम्।
हिमेषु निर्वाप्य निशासमाधिभिस्तदास्यसालोक्यमित व्यलोक्यत।। नै० 15/52

स्मरणीय है कि यहाँ श्रीहर्ष ने शीत मे निशा समाधि द्वारा कमलो को दमयन्ती मुख रूप ब्रह्म (ईश्वर) के सालोक्य पाने का वर्णन दमयन्ती के मुख को कमलो से श्रेष्ठ बताने के सन्दर्भ से किया है।[1]

ब्रह्म या आत्मा ही अद्वैतवेदान्त के अनुसार परम तत्त्व है। यह सर्वथा निष्प्रपच एव चतुष्कोटि विनिर्मुक्त है। "अययात्मा पर ब्रह्म", एव "सर्व खलु इद ब्रह्म" जैसे वाक्यो मे यह भी सिद्ध है कि आत्मा या ब्रह्म एक ही है। स्मरणीय तथ्य यह है कि अमरकोष मे बुद्ध को भी अद्वयवादी कहा गया है (अद्वयवादी विनायक) एव शकराचार्य के परम गुरु गौडपाद ने भी आत्मा को अस्ति, नास्ति, अस्ति नास्ति, नास्तिनास्ति इन चार कोटियो से परे माना है अर्थात् उनके मत मे आत्मा न सत् है न असत् है न सत् असत् उभयात्मक है और न सत् असत् से विलक्षण है।[2] इसी तथ्य को नागार्जुन ने भी माना है।[3] रही, अद्वैत तत्त्व की बात तो जिस तरह शकराचार्य का ब्रह्म या आत्मा है, इसी तरह बौद्ध दर्शन मे विज्ञानवादियों एव शून्यवादियो का विज्ञान या शून्य नामक तत्त्व या पदार्थ है।[4] शकराचार्य से पूववर्ती जैनाचार्य समन्तभद्र ने भी अद्वैतमत का उल्लेख किया है[5] तथा शाक्त एव शैवागम विचारधाराओ मे भी अद्वैत मत के प्राधान्य के विवरण उनकी विचारधाराओ मे द्रष्टव्य है। इसी अद्वैत तत्त्व को लेकर कुछ विद्वानो ने ''मायावाद असच्छास्त्र प्रच्छन्न बौद्धमेव च'' रूप मे शकराचार्य को प्रच्छन्न बौद्ध तक कह डाला, एव भास्कर ने भी इसी कारण शकराचार्य के प्रति आक्षेप किया है,[6] किन्तु लगता है कि शकराचार्य पर उपर्युक्त आक्षेप पूर्वाग्रह वश ही किये गये है, जो निराधार है, क्योकि अपने-अपने दृष्टिकोण से परमतत्त्व का प्रतिपादन करने मे सभी विचारधारा के विद्वान स्वतत्र है। स्वय नैषधकार ने, जो अद्वैतवेदान्त के अधिकारी विद्वान् है, ने नैषध मे एक ही स्थल पर अद्वैत एव बौद्ध समर्थित आत्म तत्त्व की गवेषणा नल के स्वयवर प्रसग मे की है, जहाँ नल रूपधारी चार देवो एव स्वय नल ने अर्थात् पाँच व्यक्तियो मे अन्तिम मुख्य नल ही वास्तविक नल है, ऐसा "अविज्ञातेऽपि बन्धौ हि बलात्प्रह्लादते मन"[7] से जान लिया, किन्तु उन पर श्रद्धा नहीं की, उसी प्रकार चार नलो के होने पर पाचवे नल अर्थात्, नल को भी यह सन्देह रहा कि क्या इनके (देवताओ के) होने पर मुझे यह (दमयन्ती) वरण करेगी?[8] यदि प्रत्येक दर्शन की आत्मा

---

1 आलोकेन दर्शनेन सह वर्तते इति सालोक तस्यभाव सालोक्यम् आलोकनीयत्व रम्यत्वम् इति यावत्, तदाननसालोक्य तदाननसमानालोकत्व सालोक्यरूपमुक्तिञ्च निर्वाणकाले या देवता ध्यायन्ति तत्त्वसालोक्य लभन्ते इत्यागम। भैमीमुखस्य दर्पणस्थप्रतिबिम्बानाञ्च परस्परसानिध्यात् दर्पणस्थ प्रतिबिम्बानि कि शिशिरर्त्तुषुनष्टानि तन्मुखसदृशानि तत्समीपस्थानि पद्मानि इति लोकेरुप्रेक्षितमिति भाव।। नै० 15/52 मल्लिनाथ

2 अस्ति नास्त्यस्ति नास्तीति नास्ति नास्तीति ना पुन। चलस्थिरोभयाभावैरावृणोत्येष वालिश।।
कौट्यश्चतस्र एतासु ग्रहैर्यासा सदावृत। भगवानाभिरस्पृष्टो येन दृष्ट स सर्वदृक्।। गौडपादकारिका अलातशान्तिप्रकरण, 4/83, 84

3 न सन्नासन्न सदसन्न चाप्यनुभयात्मकम्। चतुष्कोटिविनिर्मुक्त तत्त्व माध्यमिका विदु।। माध्यमिक कारिका

4 द्रष्टव्य ब्र0 सू0 1/1/2, 1/1/4 एव उसी पर शा0 आ0
– असत् सत् सदसत् सर्व सकल्पादेव नान्यत।
कल्प सदसच्चैवमिह सत्य किमुच्यताम्।। योगवाशिष्ठ, स्थितिप्रकरण 53/45
– न स्वतो नापि परतो न द्वाभ्या नाप्यहेतुत। उत्पन्ना जातु विद्यन्ते भावा क्वचन केचन्।। बोधिचर्यावतार पृ० 357
– स्वतो वा परतो वापि न किञ्चिद्वस्तु जायते।
दसत् सदसद्वापि न किञ्चिद्वस्तु जायते।। गौडपादकारिका, अलातशान्तिप्रकरण।

5 अद्वैतैकान्तपक्षेऽपि दृष्टो भेदो विरुद्ध्यते-आप्तमीमासा, पृ० 24

6 विगीत विच्छिन्नमूल महायानिकबौद्धगाथित मायावाद व्यावर्णयन्तो लोकान् व्यामोहयन्ति।
ये तु बौद्धमतावलम्बिनो मायावादिनस्तेऽप्यनेन न्यायेन सूत्रकारेणैव निरस्ता वेदितव्या। भास्करभाष्य 2/2/29

7 किरात 14/35

8 प्राप्तु प्रयच्छति न पक्षचतुष्टये ता तल्लाभशसिनि न पञ्चमकोटि मात्रे।
श्रद्धा दधे निषधराड्विमतौ मतानाममद्वैततत्त्व इव सत्यतरेऽपि लोक।। नै० 13/36
– विशिष्ट विवरण हेतु द्रष्टव्य नै० 13/36 नारायण टीका, 13/35 मल्लिनाथी टीका

सम्बन्धी मान्यताओ का विवेचन किया जाय, तो जहॉ सद्वादी साख्यमतानुयायी प्रत्येक शरीर मे भिन्न शुद्धज्ञान स्वभाव वाले बहुत आत्माओ (पुरुष रूप मे) मानते है, वहीं असद्वादी नैयायिक प्रत्येक शरीर मे भिन्न, सर्वव्यापक ज्ञानादि नौव विशेष गुणो से युक्त आत्मा को मानते हैं, सदसद्विलक्षणवादी आर्हत (जैन) प्रत्येक शरीर में भिन्न शरीर के बराबर प्रमाण वाले सकोच तथा विस्तार करने वाले बहुत आत्माओ को मानते हैं, एवं असद्वादी बौद्ध प्रत्येक शरीर में भिन्न क्षणिक ज्ञान, सन्तान रूप अनेक आत्माओ को मानते है इस प्रकार सत्, असत्, दसत्, सदद्विलक्षण चारपक्ष अद्वैत की मान्यताओ के खिलाफ है, क्योकि वेदान्त मत मे ब्रह्म या आत्मा एक हीतत्त्व है, जो अद्वैतरूप मे है। उपर्युक्त सन्दर्भ मे ईशानदेव ने बौद्धो के मत की [illegible] मानी है[1] जब कि शकराचार्य रचित भाष्य के टीकाकार आनन्दगिरि[2] ने यहॉ पर क्रमश वैशेषिक, विज्ञानवादी बौद्ध दिगम्बर जैन, तथा शून्यवादी बौद्धो का मत बतलाया है। दमयन्ती का पाचो नलो मे सन्देह होना, तो व्यावहारिक दृष्टि से तर्कसगत है, एव इसी व्यावहारिक अनुभूति का प्रतिपादन भी नैषधकार ने किया है किन्तु अतिम नल (वास्तविक नल) मे दमयन्ती की प्रीति होने का विवरण कर, एव अनन्तर उसी का वरण करने मे, नैषधकार ने यह दिखाना चाहा है कि तत्वज्ञानी ही आत्म तत्व के विषय मे जान सकते है, लौकिक प्राणी नहीं। साथ ही उन्होने वेदान्त मे वर्णित आत्म तत्त्व के विषय मे होने वाली जागतिक प्राणियो के अनुभूतियो का भी इस प्रसग मे वर्णन करना चाहा है। न्याय जैसे वेदान्त के मुख्यप्रतिपक्षी का यह आरोप है कि वेदान्त आत्म (ब्रह्म) तत्त्व को चतुष्कोटिविनिर्मुक्त मानते हुए उसे अज्ञेय क्यो मानता है?[3] इसके उत्तर मे वेदान्तियो का मत है कि ब्रह्म का बुद्धि द्वारा अज्ञेय होने का ज्ञान वस्तुत ब्रह्म का ज्ञान नहीं है, अपितु ब्रह्म विषयक अज्ञान का ज्ञान है, जिसका बुद्धि को अपनी सीमा का अपने ही अज्ञान का ज्ञान होता है। स्वय श्रीहर्ष ने अपने ग्रथ खण्डनखण्डखाद्य मे माध्यमिको एव नैयायिको, द्वारा मान्य आत्म तत्त्व मे विसगति बताते हुए एव उनका खण्डन कर[4] यह सिद्ध किया है कि ब्रह्म ही अद्वितीय परमार्थ सत है, स्वात्मसिद्ध है।[5] अत केवल अद्वैत वेदान्त ही, जिसे श्रीहर्ष ने भी स्वप्रकाश विज्ञानवाद की सज्ञा दी है, विशुद्ध विज्ञानवाद है, जो केवल स्वप्रकाश और स्वत सिद्ध नित्य आत्म चैतन्य को एक मात्र परमार्थ सत् मानता है। चित्सुखाचार्य भी मानते है कि प्रपञ्च के व्यावहारिक सत्यता की प्रतीति आत्म तत्त्व पर अध्यस्त होने से होती है, वास्तव मे आत्म तत्त्व ही सत्य या परमार्थ है।[6]

अद्वैत दर्शन के माया सिद्धान्त या मायावाद की विशिष्ट भूमिका की महनीयता व्यावहारिक जन जीवन की दैनन्दिनी मे देखी जा सकती है। वेदान्त दर्शन मे माया, अविद्या, अज्ञान, अध्याय[7], अध्यारोप, विवर्त, भ्रम, सदसदनिर्वचनीयता, आदि शब्दो का प्रयोग पर्याय रूप मे होता है। नैषधकार ने भी भ्रम इत्यादि

---

1 यद्वा अद्वैततत्वे बौद्मते यथालोक श्रद्धा न दधाति। कीदृशे पञ्चमकोटि मात्रे, यदुक्तम् नसन्नासन्नसदसन्न चाप्यनुभयात्मकम्। चतुष्कोटिविनिर्मुक्त तत्त्व माध्यमिकाविदु। पक्षचतुष्टये ता मुक्ति न प्रयच्छतीत्यादियोज्यम्। अद्वैतवादिनश्च बौद्धा। यदुक्तम् अद्वयवादी जिन इति) नैषधचरित हाण्डिकी, पृ० 451 से उद्धृत

2 प्रमातादेहातिव्यतिरिक्तोऽस्तीत्यादौ वैशेषिकादिपक्ष। देहादिव्यतिरिक्तोऽपिनासौ बुद्धेव्यतिरिच्यते क्षणिकस्यविज्ञानस्येव आत्मत्वादिति द्वितीयो विज्ञानवादिपक्ष। तृतीयो दिगम्बरपक्ष। चतुर्थे तु शून्यवादिपक्षे शून्यस्यात्यन्तिकत्वद्योतनार्था वीप्सा। नैषधचरित, हाण्डिकी, पृ० 530 से उद्धृत

3 तत्त्वे द्वित्रिचतुष्कोटिव्युदासेन यथायथम्। निरुच्यमाने निर्लज्जैरनिर्वाच्यत्वमुच्यते।। वेंकटनाथ न्यायसिद्धाञ्जन, पृ० 93

4 खण्डनखण्डखाद्य, पृ 21 61

5 तदेव भेदप्रपञ्चोऽनिवर्चनीय ब्रह्मैव तु परमार्थसदद्वितीयमिति स्थितिम्। वही, पृ० 34
– एक ब्रह्मास्त्रमादाय नान्यदगणयत क्वचित्। आस्ते न धीरवीरस्य भङ्ग सङ्गरकेलिषु।। वही पृ० 47

6 द्वश्यप्रपञ्चस्य स्वत परतश्चासिद्धे दृगात्मनि अध्यस्ततयैव सिद्धिरिति सिद्ध मिथ्यात्वम् तत्त्वपदीपिका, पृ०22
– वस्तुतोऽसत्यस्यैव यावद् वाध लौकिकवैदिकव्यवहाराङ्गतया सत्यत्वेन व्यवहारात्। वही पृ० 43

7 अध्यासो नाम स्मृतिरूप परत्र पूर्वदृष्टावभास। ब्र0 सू0 1/1/1 पर शा भा0, अन्यस्य
अन्यधर्मावभासता-वही , "अतस्मिन् तद्बुद्धिरिति" वहीं
– असर्पभूताया रज्जौ सर्पारोपवद् वस्तुन्यवस्त्वारोपोऽध्यारोप -वेदान्तसार- पृ० 7।
– अज्ञानेनावृत ज्ञान तेन मुह्यन्ति जन्तव -गीता-5/15, नाह प्रकाश सर्वस्य योगमायासमावृत - वही 7/25

के विवरण कई प्रसगो मे दिये है। यथा-दमयन्ती द्वारा स्वयवर प्रसग मे पाच नलो मे एक का वरण करने मे,[1] इन्द्र द्वारा कलि को नल से विरोध त्यागने मे[2] एव चन्द्रवर्णन प्रसग मे।[3] माया ब्रह्म की अभिन्न शक्ति है, अनादि तथा भावरूप एव सदसदनिर्वचनीय भी है। इसकी दो शक्तियॉ होती है आवरण एव विक्षेप। आवरण शक्ति प्रमाता की बुद्धि को ढकलेती है एव आत्मा मे भेदबुद्धि को उत्पन्न कर ससार का कारण बनती है, अर्थात् आवरण शक्ति का कार्य है किसी वस्तु के यथार्थ स्वरूप का आवरण करना, तथा विक्षेप शक्ति का कार्य है उसे दूसरे रूप मे प्रकट करना।[4] यथा रज्जु मे सर्प का ज्ञान, तो तत्क्षण यथार्थ प्रतीत होता है जब कि प्रकाश (ज्ञान) के होने पर उसका बाध हो जाता है, ठीक इसी स्थिति का निरूपण करते हुए श्रीहर्ष ने इन्द्रमुखेन कहलवाया है कि जिस प्रकार रजत मे शुक्ति का ज्ञान रूप विशिष्ट भ्रमप्रमा (ज्ञान) को बाधित नहीं कर सकता, उसी प्रकार अतिशय विनम्र दमयन्ती को भी तुम पीडित नहीं कर सकते। साथ ही चन्द्रवर्णन प्रसग मे उन्होने माना है कि भ्रम या अदिद्या का विनाश तो अवश्यम्भावी है, परन्तु यह सच है कि अज्ञानी (मूर्ख) व्यक्तियो के भ्रम को अवश्य दूर नहीं किया जा सकता।[5] अद्वैत दर्शन की भी यह मान्यता है कि आत्मा मे ससारित्व अविद्या से आरोपित है, जबकि आत्मा ससारी नहीं, फिर भी इसी के कारण आत्मा रूपी धर्मी मे "यह मैं हूँ", ऐसी अनात्म बुद्धि होती है, इसी के कारण ससार भी चल रहा है किन्तु जिस दिन या जिस समय अविद्या का निवारण तत्त्वज्ञान या विवेकज्ञान से हो जाता है, उसी दिन या उसी समय व्यक्ति को जीवन्मुक्ति, तत्पश्चात् विदेहमुक्ति प्राप्त हो जाती है, एव इसी ब्रह्मात्मैकत्त्व ज्ञान प्राप्ति के लिए सभी वेदान्तो का आरम्भ होता है।[6]

वेदान्त दर्शन मे पञ्चीकरण सिद्धान्त के प्रसग मे स्थूल शरीर एव सूक्ष्म शरीर का विवरण प्राप्त होता है।[7] सूक्ष्म शरीर को लिङ्ग शरीर भी कहते है,[8] जो सत्रह अवयवो अर्थात् पॉच ज्ञानेन्द्रियो पॉच कर्मेन्द्रियो, पच प्राणो तथा बुद्धि एव मन से युक्त होता है।[9] शकराचार्य के साथ-साथ विद्यारण्य[10] स्वामी ने

---

1 अस्तिद्विचन्द्रमतिरस्ति जनस्य तत्र भ्रान्तौ दृगन्तचिपिटीकरणादिरादि।
स्वच्छोपसर्पणमपि प्रतिभाऽभिमाने भेदभ्रमे पुनरमीषु न मे निमित्तम्।। नै० 13/42

2 सा विनीतमा भैमी व्यर्थानर्थग्रहैरहो। कथ भवद्विधैबाध्या प्रमितिर्विभ्रमैरिव।। नै० 17/144

3 इन्दु मुखाद्वहुतृण तव यद् गृणन्ति नैन मृगस्त्यजति तन्मृगतृष्णयेव।
अत्येति मोहमहिमा न हिमाशु बिम्बलक्ष्मी विडम्बिमुखि/ वित्तिषु पाशवीषु।। नै० 22/135

4 अस्याज्ञानस्यावरणविक्षेपनामकमस्ति शक्तिद्वयम्। विक्षेपशक्तिलिङ्गादि ब्रह्माण्डान्त जगत्सृजेत। वेदान्तसार पृ० 91-92, एव 94, 97

5 अतस्मिंस्तद्बुद्धि प्रभवति विमूढस्य तमसा विवेकाभावाद् वै स्फुरति भुजगे रज्जुधिषणा।
ततोऽनर्थव्रतो निपतति समादातुरधिकस्ततो योऽसद्ग्राह स हि भवति बन्ध श्रृणु सखे।। विवेकचूडामणि,श्लोक-140
– माया बिम्बो वशीकृत्य ता स्यात् सर्वज्ञ ईश्वर। अविद्यावशगस्त्वन्यस्तद्वैचित्र्यादनेकधा।। पचदशी 1/17
– बुद्धो मुक्त इति व्याख्या गुणतो मे न वस्तुत। गुणस्य मायामूलत्वान्न मे मोक्षो न बन्धनम्।। श्रीमद्भागवत 11/11/1

6 अत्यन्त विविक्तयोर्धर्मर्मिणो मिथ्याज्ञाननिमित्त सत्यानृते मिथुनीकृत्य "अहमिदम्, ममेदम्, इति नैसर्गिकोऽय लोकव्यवहार एवमयमनादिरन्तो नैसर्गिकोऽध्यासो मिथ्या प्रत्ययरूप कृर्तत्यभोक्तृत्वप्रवर्तक सर्वलोकप्रत्यक्ष। अस्यानर्थहेतो प्रहाणाय, आत्मैकत्वविद्याप्रतिपत्तये सर्वे वेदान्ता आरभ्यन्ते। ब्र सू 1/1/1 पर शा0 भा0

7 पचदशी- 1/27

8 सूक्ष्मशरीराणि सप्तृदशावयवानि लिङ्गशरीराणि।
अवयवास्तु ज्ञानेन्द्रियपञ्चक बुद्धिमनसो कर्मेन्द्रियपञ्चक वायुपञ्चक चेति। वेदान्तसार, पृ० 101
– लिङ्यते ज्ञाप्यते प्रत्यगात्मसद्भाव एभिरिति लिङ्गानि, लिङ्गानि च तानि शरीराणि चेति लिङ्गशरीराणि।

9 बुद्धीन्द्रियाणि खलु पञ्च तथापराणि कर्मेन्द्रियाणि मन आदिचतुष्ट्य च।
प्राणादिपञ्चकमथो नियदादिक च कामश्च कर्मश्च तय पुनरष्टमीपू।। वृ उ 4/3/2 पर शा0 भा0

10 बुद्धिकर्मेन्द्रियप्राणपञ्चकैर्मनसा धिया। शरीर सप्तदशभि सूक्ष्म तल्लिङ्गमुच्यते।। पचदर्शी 1/23
– तुलनीय- साख्य दर्शन भी सूक्ष्म शरीर का अस्तित्व तो स्वीकार करता है, किन्तु वह इसमें अठारह अवयव मानता है। यथा-
पूर्वोत्पन्नामसक्त न्यित महदादिसूक्ष्मपर्यन्तम्। ससरति निरुपभोग भावैरधिवासित लिङ्गम्।। साख्यकारिका-40, एव उसकी तत्त्वकौमुदी, व्याख्या, दृष्टव्य- पृ० 250-257
– महदहङ्कारैकादशेन्द्रियपञ्चतन्मान्नपर्यन्तम- साख्यतत्त्व कौमुदी

भी लिङ्ग शरीर की रचना के विधान का वर्णन किया है। सूक्ष्म शरीर के अन्तर्गत तीन कोश विज्ञानमयकोश, मनोमय कोश, और प्राणमय कोश होते है, जिसमें बुद्धि, ज्ञानेन्द्रियो सहित विज्ञानमयकोश, मन ज्ञानेन्द्रियों सहित मनोमयकोश, एवं पञ्चवायु कर्मेन्द्रियों के साथ मिलकर प्राणमय कोश बनाती है। इनमे विज्ञानमय कोश ज्ञान शक्ति से युक्त होने के कारण कर्ता रूप है, मनोमपकोश इच्छाशक्ति से युक्त होने के कारण करण रूप है, एव प्राणमय कोश क्रियाशक्ति से युक्त होने के कारण कार्य रूप है।[1] इसमे करण की प्रधानता वृहदारण्यक उपनिषद् के साथ-साथ शकराचार्य ने भी स्वीकार की है, जिसमे उन्होने मन को ही लिङ्ग शरीर के रूप मे स्वीकार किया है।[2] वेदान्त सम्मत उपर्युक्त तथ्यो की सगति का सकेत विरहव्यथिता दमयन्ती के करूण रोदन प्रसग मे माना जा सकता है, जहॉ दमयन्ती देवदूत बने नल के इन्द्रादि देवताओं के वरण पर जोर डालने पर कहती है कि हाय! ये क्षण नहीं, वरन् क्षण रूप से युग बीत रहे हैं, कहॉ (कब) तक वेदना सहन करूँ? मृत्यु भी तो नहीं आती, क्योकि यह स्पष्ट है कि मेरा प्रिय भीतर (विज्ञानमयकोश), से मुझे नहीं छोड़ता, मन (मनोमयकोश) मेरे प्रिय को नहीं छोडता और मेरे प्राण (प्राणमय कोश) मन को नहीं छोडते।[3] वृहदारण्यक उपनिषद मे वर्णन मिलता है कि मरण के समय सर्वप्रथम आत्मा शरीर से निकलता है, तदनन्तर प्राण एव फिर सारी इन्द्रियो के निकलने पर (स्थूल) शरीर व्यर्थ (मृत) हो जाता है।[4] आचार्य नारायण भी उपर्युक्त संदर्भ मे वेदान्तमत की पुष्टि करते हैं।[5]

शकराचार्य जगत की व्यावहारिक सत्ता स्वीकार करते है, केवल पारमार्थिक रूप से जगत का निषेध करते हे, इस रूप मे वह जगत की व्यावहारिक गतिविधियो को भी व्यावहारिक स्तर तक सत्य मानते है[6] क्योकि व्यवहार का मिथ्यात्त्व पारमार्थिक ब्रह्मात्मता के अनुभव से विदित होता है, इसके पूर्व नहीं, इस रूप मे ब्रह्मात्मात्मैक्य के पूर्व सभी जगद् व्यवहार सत्य है, जिस प्रकार जाग्रतावस्था के पूर्व सुषुप्तावस्था के स्वप्न व्यवहार तत्क्षण सत्य ही प्रतीत होते है।[7] शायद इसीलिए स्वप्न मे देखा हुआ सिहनाद पारमार्थिक रूप से असत् तो होता है किन्तु स्वप्न देखने वाला भयभीत हो जाता है, एव स्वप्नकृत सहवास असत् होने पर भी वास्तविक स्खलन करा ही देता है।[8] वृहदारण्यकोपनिषद् मे भी वर्णन मिलता है कि जिस तरह जाग्रतावस्था में आत्मा अदृष्टवश सुखदु ख आदि भोगों को भोगता है उसी तरह स्वप्नावस्था में भी स्वप्नकाल के विषयों का भोग कर पुन: पूर्व (स्थूल) शरीर में प्रविष्ट हो जाता है,[9] आचार्य शकर की भी मान्यता है कि स्वयम्प्रकाश आत्मा इन्द्रियों के उपरत हो जाने पर स्वप्न देखा करता है।[10] वेदान्त दर्शन सम्मत उपर्युक्त तथ्य की सगति दमयन्ती की स्थिति निरूपण प्रसग मे नैषधकार ने की है। चारणो द्वारा नल की प्रशसा भर दमयन्ती ने सुनी थी, उन्हे प्रत्यक्ष रूप से देखा नहीं था, फिर भी वह दमयन्ती

---

1 वेदान्तसार, पृ० 103-109

2 काम सकल्पो विचिकित्सा- अन्यत्रमना अभूवं नादर्शमन्यत्रमना अभूव नाश्रौषमिति मनसा ह्येव पश्यति मनसा श्रृणोति। वृ0 उप0 1/5/3
– लिङ्गमन , मन प्रधानत्वात् लिङ्गस्यि मन लिङ्गमित्युच्यते। वृ उ 4/4/6 पर शा0 भा0

3. अमूनि गच्छन्ति युगानि न क्षण· कियत्सहिष्ये न हि मृत्युरस्ति मे।
स मां न कान्त: स्फुटमन्तरोज्झिता न तं मनस्तच्च न कायं वायव.।। नै० 9/94

4. तमुत्क्रामन्तं प्राणोऽनूत्क्रामति, प्राणमनूत्क्रामन्तं सर्वेप्राणा अनूत्क्रामन्ति। वृ.उ. 4/4/2

5 द्रष्टव्य 9/94 नारायणी टीका

6 प्रागब्रह्मात्मता प्रतिबोधात् उपपन्न सर्वो लौकिको वैदिकञ्च व्यवहार। ब्र सू 2/1/14 पर शा0 भा0

7 सर्वव्यवहाराणामेव प्राग्ब्रह्मात्मताविज्ञानात् सत्यत्वोपपत्ते। स्वप्नव्यवहारस्येव प्राक् प्राबोधात्। वही0

8 बौद्ध दर्शन और वेदान्त- डॉ चन्द्रधाशर्मा, पृ० 204

9 प्राणेनरक्षन्नवर कुलाय बहिष्कुलायादमृतश्चरित्वा। स ईयते मृतो यत्र काम हिरण्मय पुरुष एक हंस।वृ उ 4/3/12

10. उपरतेषु हीन्द्रियेषु स्वप्नान पश्यति वृ0 उ0 4/3/12 पर शा0भा0

नल को पति रूप मे प्रत्येक रात्रि मे देखती थी, क्योकि स्वप्न अदृष्ट वस्तु को भी भाग्य से दृष्टिगोचर करा ही देता है। दमयन्ती की निद्रा (स्वप्नावस्था) ने बन्द हुए नेत्रो से तथा बाहर की इन्द्रियो के विषय न ग्रहण करने के कारण अशक्त हुए मन से भी छिपाकर कभी न देखे गये नल को, बड़े रहस्य की तरह उसे (नल रूप दर्शन कराया)[1] दिखाया। इस प्रकार नैषधकार ने भी, शकराचार्य जैसे मनीषियो के मत को माना, कि यथार्थ मे भले स्वप्नादि व्यावहारिक क्रियाओ की सत्ता न हो, लेकिन व्यावहारिक रूप से उसकी सत्ता का निषेध नहीं किया जा सकता। उपर्युक्त सदर्भ मे अदृष्ट शब्द के प्रयोग से नैषधकार मीमासको से,[2] एव अदृष्टवश स्वप्न विवरण देने के प्रसग मे वैशेषिक दर्शन से प्रभावित दिखते है।[3]

---

1 मनोरथेन स्वपतीकृत नल निशि क्व सा न स्वपती स्म पश्यति।
अदृष्टमप्यर्थमदृष्टवैभवात्करोति सुप्तिर्जनदर्शनातिथिम्। नै० 1/39
– निमीलितादक्षियुगाच्च निद्रया हृदोऽपि बाहेन्द्रियमौनमुद्रितात्।
अदर्शि सगोप्य कदाप्यवीक्षितो रहस्यमस्या स महन्महीपति ।। नै० 1/40

2 तथा हि सुप्ति स्वप्न अदृष्टम् अत्यन्ताननुभूतमप्यर्थं किमुत दृष्टमिति भाव। अदृष्टवैभवात् प्राक्तनभाग्यबलात् जनदर्शनातिथि लोकदृष्टिगोचर करोति, तदत्रापि निमित्ताददृष्टात्तादृक् स्वप्नज्ञानमुत्पन्नमित्यर्थ नै० 1/39 मल्लिनाथ
– अदृष्टमिति- सुप्ति स्वप्न कदाचिददृष्टमप्यर्थं वस्तु अदृष्टवैभवाद्धर्माधर्मसामर्थ्याज्जनदर्शनातिथि जनदर्शनगोचर करोति। यदृष्ट दृश्यते स्वप्नेऽननुभूत कदापि न, इति न्यायेन जन्मान्तरस्थानान्तरानुभूत समुत्पन्नसस्कारमस्मिञ्जन्मन्यदृष्टमप्यर्थं धर्माधर्माविव दर्शयत इति भाव।
चित्रादौ- नलदर्शने सत्यपि साक्षात्तद्दर्शनाभावद्दृष्ट त्वोक्तिर्युक्त ।
साक्षाच्चित्रे तथा स्वप्ने तस्य स्याद्दर्शन त्रिधा- नै० 1/39 नारायण।।
– अदर्शन चात्र मनसो बाहेन्द्रियमौनमुद्रितदिति विशेषणसामर्थ्यादिन्द्रियार्थसप्रयोगजन्यज्ञानविरह एवेति ज्ञायते, स्वप्नज्ञान तु मनोजन्य मेव। नै० 1/40 मल्लिनाथ, एव विस्तृत विवेचन हेतु नै० 1/40 नारायणयी टीका भी द्रष्टव्य

3 यदा बुद्धिपूर्वादात्मन । तत्र त्रिविधम्, सस्कारपाटवाद्धातुदोषादृष्टाच्च। (अदृष्टात्) यत्स्वयमनुभूतेष्वननुभूतेषु वा प्रसिद्धेष्वप्रसिद्धार्थेषु, वा यच्छुकभावेदक गजारोहणच्छत्रलाभादि तत्सर्वं सस्कारधर्माभ्या भवति, विपरीत च तैलाभ्यञ्जनखरोष्ट्रारोहणादि तत्सर्वमधर्मसस्काराभ्यां भवति। अत्यन्ताप्रसिद्धार्थेष्वदृष्टादेवेति। स्वप्नान्तिक यद्यप्युपरतेन्द्रियग्रामस्य भवति, तथाप्यतीतस्य ज्ञानप्रबन्धस्य प्रत्यवेक्षणात् स्मृतिरेवेति भवत्येषा चतुर्विधाऽविद्येति। वैशेषिक सूत्र 17 पर प्रशस्तपाद भाष्य, पृ० 149-152

तृतीय अध्याय

नैषध में व्याकरणात्मक संदर्भ

व्याकरणशास्त्र

मानव के अन्तरथल मे उमडे भावो, विचारो एव सवेदनाओ को व्यक्त करने का माध्यम भाषा ही रही है, एव आज भी है, भले ही भावो के अभिव्यजन मे भाषाओ की विविधता देखी जाती है। भाषा ओर विचार के तारतम्य वे सुष्ठरूप या सौशब्द प्रदानकर्ता व्याकरण है। विद्वानो ने इसकी व्याख्या करते हुए कहा- "व्याक्रियन्ते व्युत्पादन्ते शब्दा येन"[1] (वि+आ+कृ+ल्युट् के योग से व्याकरण शब्द की निष्पत्ति होती है)। अर्थात् जिस शास्त्र से शब्दो का व्याख्यान एव व्युत्पादन हो, उसे व्याकरण शास्त्र ~~शास्त्र~~ कहते है। यह शब्दो की व्युत्पत्ति एव व्याख्यान तक ही सीमित है, इसलिए इसको शब्दानुशासन, पदशास्त्र या शब्द शास्त्र भी कहते है, शायद इसीलिए वैयाकरणो को शाब्दिक भी कहा जाता है। व्याकरणशास्त्र का ध्येय या उद्देश्य शब्द साधुत्व का प्रतिपादन है तथा इसका कार्य शब्दानुशासन है, शब्द शासन नहीं। शायद तभी वैयाकरणो के बारे मे कहा जाता है- "अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सव मन्यते वैयाकरणा"। वेद ब्राह्मण, उपनिषद्, प्रातिशाख्य आदि सभी प्राचीन ग्रथो मे व्याकरणिक विश्लेषण का प्रसङ्ग, उनके अध्ययन मे सौकर्य हेतु, पद विभाग करने मे द्रष्टव्य है।[2] वैसे तो व्याकरण की गणना वेदाङ्ग के अन्तर्गत[3] भी की जाती हे, परन्तु वैदिक ऋचाओ को विभक्त करने मे उपलब्ध पदो एव पदो मे प्रयुक्त प्रकृति, प्रत्यय, सन्धि, समास, आगम, लोप, वर्णविकार के विवेचन मे (नाम, आख्यात, उपसर्ग एव निपात, अर्थात्) निरुक्त का भी योगदान रहता है इस प्रकार "शास्त्र हि शास्त्रान्तरानुबन्धि" इस उक्ति के अनुसार व्याकरण शास्त्र का अन्य शास्त्रो से भी महत्वपूर्ण सम्बन्ध है।

ऋक्तत्र मे वर्णन मिलता है कि व्याकरणशास्त्र के ज्ञान को ब्रह्मा ने वृहस्पति से कहा, वृहस्पति ने इन्द्र से तथा इन्द्र से भरद्वाज, भरद्वाज से ऋषियो एव ऋषियो से वही ज्ञान परम्परा ब्राह्मणो को मिली।[4] इस दृष्टि से व्याकरणशास्त्र के आदिम वक्ता ब्रह्मा, वृहस्पति, इन्द्र, भारद्वाज, आदि ऋषि एव ब्राह्मण हुए। निरुक्त के वृत्तिकार दुर्गाचार्य ने 8 शाब्दिक आचार्यों का उल्लेख किया है।[5] वे आठ सभवत वोपदेवकृत कविकल्पद्रुम मे वर्णित, इन्द्र, चन्द्र, काशकृत्स्न आपिशलि, शाकटायन, पाणिनि, अमर, एव जैनेन्द्र आदि ही थे[6] इनके अतिरिक्त भोजकृत सरस्वतीकण्ठाभरण की टीका, तथा भास्कराचार्य की

---

1 सस्कृत हिन्दी कोश- वी0एस0 आप्टे, पृ० 988

2 य सहासि सहसा सहन्ते - ऋ0- 6/66/9
धान्यमसि धिनुहि देवान्- यजु0 1/20
येन देवा पवित्रेणात्मान पुमते सदा- साम0उप0 5/2/8/5
तीर्थैरतरन्ति अथर्व- 18/4/8

3 छन्द पादौ 'तु' वेदस्य, हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते। ज्योतिषामयन चक्षुर्निरुक्त श्रोत्रमुच्यते।।
शिक्षा घ्राण तु वेदस्य मुखं व्याकरण स्मृतम्। तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।। पाणिनीय शिक्षा-श्लोक41, 42
ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्म षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च। महाभाष्य, पस्पश आहिनक, पृ० 15 पर उद्धृत।

4 व्याकरण शास्त्र का इतिहास युधिष्ठर मीमासक- पृ० 67, ऋक्तत्र 1/4
ऐतरेय ब्रा0 8/26, कामसूत्र 1/17, अष्टाग हृदय, पृ० 18 (निर्णय सागरप्रेस) महाभारत 1/1/1, तै0स0
6/4/7 तथा सायण, का ऋग्भाष्य उपोद्घात-भाग। पृ० 26 (पूना सस्करण)

5 निरुक्त विवृति- दुर्गाचार्य - पृ०- 74-78

6 इन्द्रश्चन्द्र काशकृत्स्नापिशली शाकटायन । पाणिन्यमरजैनेन्द्रा जयन्त्यष्टादिशाब्दिका. ।।
यान्युज्जहार माहन्द्राद् व्यासो व्याकरणार्णवात्। पदरत्नानि कि तानि सन्ति पाणिनिगोष्पदे ।। महाभारत टीका- देवबोध।

लीलावती मे भी आठ वैयाकरणो का उल्लेख मिलता है।[1] देवनन्दी ने सात[2], जबकि रामायण[3], गीतासार इत्यादि मे 9 एव काशिकावृत्ति मे[4] केवल 5 वैयाकरणो का वर्णन प्राप्त होता है। परन्तु व्याकरण की इस सुदीर्घ परम्परा के महनीय आचार्य पाणिनि ही रहे, वैसे पाणिनि पूर्व 23 वैयाकरणो का वर्णन मिलता है[5], परन्तु व्याकरण का सारा अस्तित्व अष्टाध्यायी मे ही सिमट कर रह गया! बाद मे कात्यायन एव पतजलि ने व्याकरणशास्त्र मे वार्तिक एव भाष्यलिखकर व्याकरणिक ज्ञान को प्रतिष्ठा प्रदान किया जिसमे भर्तृहरि के वाक्यपदीय का भी यथेष्ट योगदान है। प्रसिद्ध काव्यमनीषी, सहृदय चक्रवर्ती आनन्दवर्धन (92 शताब्दी) ने जहॉ मीमासको का खण्डन किया, वहीं वैयाकरणो को प्रथम विद्वान् की पद्वी से भी अलकृत किया।[6] स्पष्ट है कि काव्यशास्त्र व्याकरण से अत्यधिक प्रभावित था और शायद यही कारण था कि प्रसिद्ध महाकाव्यकारो ने अपने-अपने महनीय ग्रथो मे व्याकरण तत्र का भी यथेष्ट रूप से प्रतिपादन किया, उनमे कालिदास,[7] अश्वघोष[8], भारवि,[9] भट्टि[10] माघ,[11] एव श्री हर्ष प्रमुख है। पचतत्र[12] एव अग्निपुराण[13] मे भी व्याकरणशास्त्र सम्मत विवरण मिलता है। "नैषधीयचरितम्" मे प्राप्त व्याकरणिक सन्दर्भों से यह प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष अपने पूर्व महाकवियो से प्रभावित थे एव उन्होने भी उसी परम्परा का निर्वहन किया हे जो उन्हे अपने पूर्व महाकवियो से मिली थी।

महाकाव्यकारो की परम्परा का अर्थात् अपने महाकाव्यो मे शब्दसाधुत्व या व्याकरणत्व प्रतिपादन की परम्परा को श्रीहर्ष ने भी बखूबी निभाया है। उन्होने तो अपने काव्य के बारे मे स्पष्ट रूप से घोषणा ही कर दी थी, कि "मैने (श्रीहर्ष ने) जान-बूझकर इसमे व्याकरणात्मक गुत्थियॉ सजोयी है, जिससे कोई पण्डितम्मन्य खल अवज्ञा पूर्वक इस ग्रथ को न पलट सके।[14] श्रीहर्ष के उपर्युक्त कथन की पुष्टि का नैषध के प्राचीन टीकाकारो यथा – चाण्डू पडित, विद्याधर, मल्लिनाथ एव नारायण की टीकाओ के अध्ययन से पता चलता है जहॉ उन्होने ग्रथ की टीका मे पदे-पदे व्याकरण की गुत्थियो को सुलझाया हे। विद्याधर ने उनकी व्याकरण विषयक बहुज्ञता का वर्णन करते हुए कि कहा कि-

---

1 सस्कृत शास्त्रों का इतिहास पी०वी०काणे- पृ०- 49, फुटनोट 1,2
2 जैन साहित्य और इतिहास - पृ० 160।
3 रामायण- उत्तरकाण्ड 36/47
4 काशिकावृत्ति 4/2/60।
5 सस्कृत साहित्य का इतिहास- बहादुर चद छाबडा- पृ०- 620।
6 प्रथयो हि विद्वासो वैयाकरणा , व्याकरणमूलत्वात् सर्वविद्यानाम्। ध्वन्या लोक, पृ० 138।
7 रघु वश 15/7,9
8 सौन्दरनन्द - 1/44, 45, 47, 49, 50, 51, 56, 2/10, 15, 22, 26, 44, 6/34 बुद्धचिरत - 2/16 33, 35, 44, 8/25
9 किरात - 1/44, 13/19, 15/14, 16, 38
10 भट्टिकाव्य (रामबध) 1/3, 13/28, 39, 22/33, 34, 35
11 शिशुपाल बध - 1/47, 2/14, 72, 95, 112, 19/66, 84, 98, 100, 102, 103 108, 114, 5/28, 10/15, 16/80
12. सिहो व्याकरणस्य कर्तुरहरत्प्राणान् प्रियान् पाणिने। पचतत्र 2/33।
13 अग्निपुराण- 349-361 अध्याय तक। वक्ष्ये व्याकरण सार सिद्धशब्दस्वरूपकम। कात्यायन विबोधाय बालाना बोधनाय च। प्रत्याहारादिका संज्ञा शास्त्र सव्यवहारगा ।। अग्निपुराण 349/1।
14 ग्रन्थग्रन्थिरिह क्वचित्क्वचिदपि न्यासि प्रयत्नान्मया, प्राज्ञमन्यमना हठेन पठिती मास्मिन्खल खेलतु ।। श्रद्धाराद्धगुरूश्लथीकृतदृढग्रन्थि समासादय,- त्वेतत्काव्यरसोर्मिमज्जनसुखव्यासज्जन सज्जन ।।
नै० कविप्रशस्ति- श्लोक- 3

अष्टौ व्याकरणानि तर्कनिवह साहित्यसारो नयो,
वेदार्थावगति पुराणपठितिर्यस्यास्यान्यशास्त्राण्यपि।
नित्य स्यु स्फुरितार्थदीप विहता ज्ञानान्धकाराण्यसौ,
व्याख्यातु प्रभवत्यमु ' सुविषम सर्गं सुधी कोविद ।।[1]

व्याकरणशास्त्र मे विभक्ति, कारक, शब्दरूप, धातुरूप, लिगनिर्धारण, सन्धि, समास, प्रकृति, प्रत्यय, सज्ञा, आदेश, काल लकार आदि का विस्तृत विवेचन किया जाता है। नैषधकार ने भी इन शब्दो की अनेकार्थकता का लाभ उठाते हुए अपने बौद्धिक कलाबाजी का सुन्दर प्रदर्शन करते हुए व्याकरणशास्त्र की मीमासा नैषध महाकाव्य मे की है।

व्याकरण तत्र मे विभक्तियो का अप्रतिम स्थान है। विभक्तियॉ व प्रकार की होती हैं, प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पचमी, षष्ठी एव सप्तमी एव इनमे एकवचन द्विवचन एव बहुवचन का निर्धारण क्रमश सु, औ, जस् इत्यादि सुप् प्रत्ययो से किया जाता है। नैषध मे हस दमयन्ती के सम्मुख जब नल की प्रशसा करता हे, तब श्लेष बल से उपर्युक्त तथ्य का प्रयोग उपस्थित होता है।

हस कहता है कि यदि सज्जनो (महापुरुषो) को श्रेणियो मे विभजित किया जाय तो वह (नल) ही प्रथम व्यक्ति होगा, जो अपने पराक्रम के विलासो से बहुत से शत्रुस्थानो को वश मे करने मे समर्थ है।[2] पक्षान्तर मे यदि (सुप्-तिड् रूप) साधु विभक्तियो का विचार किया जाय तो प्रथमा नाम से प्रसिद्ध (वह व्यक्ति) होगी, जो सु, औ, जस्, (एकवचन, द्विवचन तथा बहुवचन) के विलासो से बहुत से 'नाम' प्रातिपदिक, आदि पदो को सिद्ध करने के लिए समर्थ है। स्मरणीय है कि व्याकरणशास्त्र मे प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाण वचन मात्रे प्रथमा[3] से नियमानुसार सभी विभक्तियो मे से किसी विभक्ति विशेष की प्राप्ति नहीं रहने पर प्रातिपदिकार्थ' मे प्रथमा विभक्ति का प्रयोग सामान्यत होता है। अतएव वह प्रथमा विभक्ति ही सु, औ, जस् रूप प्रत्ययो के विसर्ग लोप, वृद्धि, दीर्घ आदि कार्यों के विलास से 'प्रातिपदिक' पद को सिद्ध करने मे समर्थ होती है एव यदि एकबचन आदि विभक्तियो मे साधु विभक्तियो का विचार किया जाय, तो सु, औ, जस् के बीच मे प्रथमा (पहली) विभक्ति अर्थात् 'सु' विभक्ति होगी, जो अपने विसर्ग लोपादिरूप बल के विलासो से प्रातिपदिक पद को सिद्ध करने के लिए समर्थ है। 'अपद न प्रयुञ्जीत्' एकवचनमुत्सर्गत '' अर्थात् अपद (साधुत्व हीन) शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहिए, क्योकि- एकवचन का प्रयोग स्वभावत (किसी विभक्ति विशेष की आकाक्षा नहीं रहने पर भी स्वत ही) किया जाता है। इस प्रकार सु, औ, जस्, विभक्तियो मे पहली सु विभक्ति सभी प्रातिपदिक पदो को सिद्ध करने मे सर्वथा समर्थ है, वैसे ही नल अपने असख्य शत्रुओ को अपने पराक्रम से अधीन करने मे सर्वथा समर्थ है।

व्याकरणतत्र मे तृतीया विभक्ति का एक नियम है कि "जितने समय तक (कालावधि पर्यन्त) या जितनी दूरी मे कोई कार्य सम्पन्न होता है उस (समय एव दूरी वाचक शब्द) मे तृतीया विभक्ति होती है।"[4] नैषध मे चार्वाक एव देवताओ के वार्तालाप प्रसङ्ग मे शब्दच्छल द्वारा चार्वाक इस सूत्र को अपने मत के समर्थन मे व्यक्त करते हुए कहता है कि- उभयी प्रकृति अर्थात् स्त्री-पुरुष रूप मे व्यक्त प्रकृति

---

1 0 I Ms No 9, Folio - 2780 एव जानी Appendex- 10/2

2 क्रियेत चेत्साधुविभक्तिचिन्ता व्यक्तिस्तदा सा प्रथमाभिधेया। या स्वौजसा साधयि तु विलासैस्तावत्क्षमा नामपद बहुस्यात्।। – नै० 3/23।

3 पा०सू० 2/3/46।

4 अपवर्गे तृतीया - पा०सू० 2/3/6।

काम अर्थात् तृतीय पुरुषार्थ (मैथुन) मे आशक्त हो,[1] यह अपवर्गे तृतीया अर्थात् स्त्री पुरुषातिरिक्त तृतीया प्रकृति[2] (नपुसक) अपवर्ग अर्थात् मोक्षाशक्त हो, ऐसा पाणिनि ऋषि को भी अभिप्रेत है। दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि- "अपवर्गे तृतीया" ऐसा कहते हुए पाणिनि मुनि का भी "स्त्री पुरुष काम (मैथुन रूप तृतीय पुरुषार्थ) मे आशक्त होवे, ऐसा मत है। यद्यपि उक्त पाणिनि सूत्र का अभिप्राय यह है कि फलप्राप्ति द्योत्य रहने पर काल तथा मार्ग के अत्यन्त सयोग मे तृतीया विभक्ति होती है जैसे- अह्नाऽनुवाकोऽधीत , क्रोशेनानुवाकोऽधीत" तथापि नैषधकार का चार्वाक नामक पात्र जो कलि का प्रतिनिधि है, शब्दच्छल से अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन करता हुआ उक्त सूत्र का अर्थ करता है कि "तृतीया प्रकृति शण्ढ क्लीब षण्डो नपुसकम्" से तृतीया प्रकृति अर्थात् नपुसक व्यक्ति (काम मे असमर्थ होने के कारण) मोक्ष मे आशक्त हो (ऐसा देवताओ के लिए कहता है) और शेष उभयी प्रकृति अर्थात् स्त्रीपुरुष हमेशा कामाशक्त रहे" ऐसा मेरे (चार्वाक के) आचार्य का नहीं, अपितु तुम लोगो के सर्वमान्य पाणिनि का मत है। यहाँ "अपि' शब्द से यह ध्वनित होता है ("अथ च धर्मार्थकाममोक्षा स्यु") कि– मोक्ष अर्थात् अपवर्ग के अव्यवहित पूर्व "काम' का कथन होने से "तृतीय प्रकृति' वाले अर्थात् नपुसक व्यक्ति मोक्ष का और शेष दो प्रकृति स्त्रीपुरुष कामसेवन करे, यह पाणिनि का भी मत है। यहा पर नैषधकार ने चार्वाकमुखेन पाणिनि के सूत्र अपवर्गे तृतीया की प्रकारान्तर से व्याख्या करवायी है।

व्याकरणशास्त्र मे छै. प्रकार के कारकों का वर्णन मिलता है। वे है-कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान एव अधिकरण। सम्प्रदान कारक[3] का वर्णन करते हुए नैषधकार कहते हैं कि लाखो वृक्ष ससार मे है, परन्तु प्रशसनीय कल्पवृक्ष ही है जो केवल अमृतभोगी देवो को ही अपना फल देता है।[4] अपादान कारक अलगाव अर्थ मे होता है।[5] इसका वर्णन देवकलि वार्तालाप प्रसङ्ग में मिलता है, जहॉ देवतागण कलि से कहते है कि "त्रैलोक्य मे सुन्दर युवकों के गर्व को नष्ट करने वाला वह स्वयवर समाप्त हो चुका है, क्योकि हम लोग वहीं से आ रहे है।[6] ध्यातव्य है कि उपर्युक्त प्रसङ्ग मे श्रीहर्ष ने कारको के नाम की विवक्षा रखकर व्याकरणशास्त्र के इस अगभूत तत्त्व (कारक) की मीमासा करने की चेष्टा की है।

व्याकरणशास्त्र मे स्वर तीन प्रकार के माने जाते है, उदात्त, अनुदात्त एव स्वरित।[7] वैतालिको ने नल दमयन्ती को शय्यापरित्याग करने के लिए अपने प्रशसापरक वाक्यो मे कहा कि "रवि की प्रभातकालीन किरणो रूपी ऋचाओ के ओकारो पर स्पष्ट और निर्मल अनुस्वार विन्दु लगाने के लिए आकाश मे कोई तारो को चुनता जा रहा है और उन्हीं ऋचाओ के ऊपर "उदात्त स्वर"[8] के चिन्ह की रेखाऍ बनाने के लिए ही चन्द्रमण्डल से निसन्देह किरणे चुन ली गयी है।[9] उदात्त स्वर का विवरण देवो

---

1 उभयी प्रकृति कामे सज्जेदिति मुनेर्मतम् । अपवर्गे तृतीयेति भणत पाणिनेरपि ।। नै० 17/68

2 तृतीया प्रकृति शण्ढ क्लीब षण्डो नपुसकम्। अमरकोश - 2/6/39

3, कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्- अष्टा 1/4/32

4, किं न द्रुमा जगति जाग्रति लक्षसंख्यास्तुल्योपनीतपिककाकफलोपभोगाः ।
स्तुत्यस्तु कल्पविटपी फलसम्प्रदान कुर्वन्स एष विबुधानमृतैकवृत्तीन् ।। नै० 11/125

5 ध्रुवमपायेऽपादानम्- अष्टा0 1/4/24, अपादाने 'पचमी' 2/3/28

6 अतिवृत्त स वृत्तान्तस्त्रिजगद्युवगर्वनुत् । आगच्छातामपादान स स्वयवर एव न ।। नै० 17/118

7 उच्चैरुदात्त , नीचैरनुदात्त समाहार स्वरित । पा0 सू0 1/2/29-----31

8 उच्चैरुदात्त , पा0सू0 1/2/29

9. रविरुचिऋचामोङ्कारेषु स्फुटामलबिन्दुतां, गमयितुममुरुच्चीयन्ते विहायसि तारका ।
स्वर विरचनायासामुच्चैरुदात्ततयाऽऽहताः, शिशिरमहसो विम्बादस्मादसंशय रश्मय ।। नै० 19/7

द्वारा नल को दूत बनाने की अभ्यर्थना मे भी दृष्टव्य है।[1] महाकवि माघ ने भी उदात्त स्वर का विवरण देत हुए लिखा कि – सामान्यतया वैदिक व्याकरण मे अन्य स्वरो को समाप्त कर एक पद मे एक ही उदात्त स्वर शेष बचता है। यथा –

त्वयीशिरे ये चेदीना भवास्तमवमस्त मा । निहन्त्यरीनेकपदे य उदान्त स्वरानिव ।।[2]

ध्यातव्य है कि इसमे "अनुदात्त पदमेकवर्जम् (पा०सू० 6/1/58) इति परिभाषाबलाच्चेति भाव" दृष्टव्य है। महाकवि माघ ने इस तथ्य का भी वर्णन किया है कि वर्णमाला के 'क' आदि वर्णों पर सम्पूर्ण वाङ्मय उसी तरह आश्रित है जिस तरह स,र,ग,म, आदि सप्त स्वरो पर सम्पूर्ण सगीतशास्त्र।[3] इसके साथ साथ माघ मे अष्टाध्यायी (1/1) के महत्व का विवरण समुपस्थापित करते हुए कहते हे कि जिस प्रकार सूत्र (माहेश्वर सूत्र) के अविरूद्ध पद (कृदन्त, तद्धितान्त, समस्त आदि पद) तथा न्यास (काशिकावृत्ति का व्याख्यान ग्रथ) हे, जिसमे ऐसी सुन्दर वृत्ति काशिका सूत्रो के व्याख्यानात्मक ग्रथ वाली तथा श्रेष्ठ निबन्धन (पतजलि मुनि प्रणीत महाभाष्य ग्रन्थावली) भी शब्द विद्या (व्याकरणशास्त्र), पस्पश (व्याकरण के प्रयोजन को निर्दिष्ट करने वाला भाष्य पस्पश नामक आह्निक) के बिना नहीं सुशोभित होती, उसी प्रकार सम्पूर्ण गुणो से युक्त राजनीति भी गुप्तचरो की नियुक्ति से शून्य होने पर शोभा नहीं देती।[4]

स्मरणीय हे, कि महर्षि पतजलि ने अष्टाध्यायी सूत्र के स्वरचित महाभाष्य मे "रक्षोहागमलघ्वसन्देहा प्रयोजनम्" कहते है, अर्थात लोप आगम, तथा वर्ण मे विकारो का ज्ञाता ही वेद का रक्षण कर सकता है क्योकि यज्ञ मे मत्रो की विभक्तियो (ऊह) का कर्मकाण्ड की प्रक्रिया के अनुसार परिवर्तन करने की आवश्यकता होती है, तथा आगम (वेद) स्वय व्याकरण के अध्ययन पर आग्रह रखता हे और शब्दो का लघु उपाय से ज्ञान व्याकरण के द्वारा ही सम्पन्न किया जा सकता है, एव मन्त्रो क उच्चारण नही कर सकता है। इसीलिए पस्पश आह्निक के न जानने से लोगो की "अनुसूत्र पदन्यास सद्वृत्ति नही होती एव उसके बिना व्याकरण सुशोभित भी नहीं होता। इस प्रकार सातवी शताब्दी के सस्कृत वाङ्मय के अनर्धरत्न माघ, जिन्होने शिशुपालबध महाकाव्य मे कालिदास के काव्य सौन्दर्य, भारवि के अर्थगौरव एव भट्टि से व्याकरण पाटव का अनुकरण कर इस काव्य को उपर्युक्त तीनो महाकवियो से श्रेष्ठ ग्रथ रचित करने की उद्योग किया, एव जिनके काव्य के विषय मे माघे सन्ति त्रयो (उपमा, अर्थगौरव, एव पदलालित्य) गुणा एव मेघे माघे गत वय " जैसी उक्तियॉ प्रचलित है, ने शिशुपाल वध मे काव्य शास्त्रीय सन्दर्भो के साथ साथ व्याकरण शास्त्रीय[5] पक्षो के वर्णनमे अपने बौद्धिक व्यायाम की अपूर्व चातुरी दिखायी है। नैषधकार भी उन्हीं का अनुकरण करते प्रतीत होते है।

---

1 इष्ट न प्रति ते प्रतिश्रुतिरभूद्याद्य स्वराह्नादिनी धर्मार्थो गतता श्रुतिप्रतिभटीकृत्यान्विताख्यापदाम् ।
त्वत्कीर्तिः पुनती पुनस्त्रिभुवन शुभ्राद्वयादेशनाद, । द्रव्याणा शितिपीतलोहितहरिन्नामानि च लुम्पतु !! नै० 5/135

2 शिशु बध0 2/95

3 वर्णे कतिपयैरेव ग्रथितस्य स्वरैरिव । अनन्ता वाङ्मस्याहो गेयस्येव विचित्रता ।। शिशु, ब0 2/72

4 अनुसूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना । शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा ।। शिशु0 2/112

5 सटाच्छटाभिन्नघनेन विभ्रता नृसिह ! सैंहीमतनु तनु त्वया ।
स मुग्धकान्तास्तनसङ्गभङ्गुरैरूरोविदार प्रतिचस्करे नखै ।। शिशु0 1/47
- तत सपत्नापनयस्मरणानुशयस्फुरा । ओष्ठेन रामो रामोष्ठबिम्बचुम्बनचुञ्चुना ।। शिशु0 2/14
- सस्नु पय पपुरनेनिजुरम्बराणि, जक्षुर्बिस धृतविकासिबिसप्रसूना ।
सैन्या श्रियामनुपभोगनिरर्थकत्वदोष प्रवादममृजन्नगनिम्नगानाम् ।। वही 5/28
- सन्तमेव चिरमप्रकृतत्वादप्रकाशितमदिद्युतदङ्गे । विभ्रम मधुमद प्रमदाना धातुलीनमुपसर्ग इवार्थम् ।। वही 10/15
- परित प्रमिताक्षरापि सर्वं विषय व्याप्तवती गता प्रतिष्ठाम्।। वही 16/80

शब्दशास्त्र मे प्रयुक्त आदेशो का भी नैषधकार ने वर्णन नैषध मे किया है।[1] आदेश (किसी वर्ण या शब्द के स्थान पर किया गया अन्य वर्ण या शब्द) स्थानी के (जिसके स्थान पर किया जाता है उसके) तुल्य होता है, किन्तु पाणिनि का कथन है कि स्थानी के किसी अल् (वर्ण) के आश्रय से यदि कोई (व्याकरण सम्बन्धी) विधान करना हो तो उस आदेश को स्थानिवद्भाव प्राप्त नहीं होता।[2] श्रीहर्ष स्वयवर प्रसङ्ग मे नल रूपधारी इन्द्र के प्रति व्यक्त वाक्यो मे उपर्युक्त सूत्र की व्यञ्जना निर्धारित करते हुए कहते है कि-

स्व नैषधादेशमहो ! विधाय कार्यस्य हेतोरपि नानल सन् ।
किं स्थानिवद्भावमधत्त दुष्ट तादृक् कृतव्याकरण पुन स ?[3]

अर्थात् इन्द्र ने अपने को नल का आदेश (दमयन्ती के परिहार वचन को अन्यथा (अप्सराओ से सम्बद्ध अभिप्राय रहते हुए भी मानवोचित) अर्थ बतलाकर, पाठान्तर मे दमयन्ती के प्रति नल को दूत बनाकर भेजना भी व्यर्थ होने पर) कार्य (दमयन्ती प्राप्ति) के लिए नलभिन्न नहीं होता हुआ अर्थात् नल होता हुआ, तथा वैसा (दमयन्ती विषयक अनुराग के अधीन होकर विपरीत) व्याख्यान करता हुआ स्थानी (जिसके स्थान पर आदेश होता है, वह स्थानी कहलाता है) के समान दुष्टभाव (परस्त्री विषयक चाह) को क्यो धारण किया है? पक्षान्तर मे, व्याकरण (ऐन्द्र व्याकरण को बनाने वाला यह इन्द्र (नलरूप को धारण कर) नैषधादेश होकर अल् (अल् नामक वर्ण समूह के प्रत्येक अक्षर का बोधक प्रत्याहार विशेष) से अभिन्न "अल' कार्य के लिए दुष्ट (स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ के विरुद्ध) स्थानिवद्भाव, (देवत्व छोडकर मनुष्यत्व) को क्यो धारण किया? ऐसा करना (इन्द्र जैसे) प्रसिद्ध वैयाकरण के लिए उचित नहीं था। क्योकि व्याकरण मे "नहो ध "[4] से "ध' आदेश होने पर अल् प्रत्याहार सम्बन्धी कार्य मे स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ से स्थानिवद् कार्य का निषेध होता है, एव स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ सूत्र से अलाश्रित कार्य मे स्थानिवद्भाव का निषेध होने पर भी पथिममथ्यृभुक्षामात्[5] सूत्र से अल् करने पर स्थानिवद्भाव से आये हुए हलत्व का "हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्त हल्"[6] से सु का लोप नहीं होता है, किन्तु (वैयाकरण) इन्द्र ने वहाँ पर भी स्थानिवद्भाव, किया है, यह आश्चर्य का विषय है। नैषधकार

---

1 दयोदयश्चेतसि चेत्तवाभूदलंकुरु द्या विफलो विलम्ब ।
भुव स्वरादेशमथाचरामो भूमौ धृति यासि यदि स्वभूमौ ।। नै08/96

2 स्थानिवदादेशोऽनलविधौ- पा0सू0 1/1/56

3 नै0 10/136

4 नहो ध 1/8/2/34, नहो हस्य ध रयाज्झलि पदान्ते च। उपानत् उपानद्। उपानहौ। उपानह। उपनद्भ्याम्। उपानत्सु।। उत्पूर्वात्ष्णिह प्रीत्यावित्यस्मादृत्विगादिना क्विन्। निपातनाद्दलोपषत्वे। क्विन्नत्वात्कुत्वेन हस्य घ। जश्त्वचर्त्वे। उष्णिक् उष्णिग्। उष्णिहौ। उष्णिह। उष्णिग्भ्याम्। उष्णिक्षु। द्यौ। दिवौ। दिव। द्युषु। गी। गिरौ। गिर। चतुरश्चतस्रादेश। चतस्र 21 चतसृणाम्। किम कादेशे दाप्। का। के। का। सर्ववित्। सिद्धान्तकौमुदी सूत्र, 590, पृ 122 एव नहो ध। द इत्येव तु नोक्तं, तथा हि सति नद्धमित्यत्र रदाभ्याम्-4024, इति नत्व स्यात् झषस्तथो -3047' इति च न स्यात्। नहो हस्येति। हो ढ 447 इत्यतोऽनुवृत्ते 'अलोऽन्त्यस्य 66' इत्यनेन वा हस्यैवादेश इति भाव "झलो झलि 3048" पदस्य 539' स्को सयोगाद्योरन्ते च 516" इत्यतो झलपदान्तग्रहणान्यनुवर्तन्ते तदाह-झलीत्यादि। झलि परत पदान्ते वा विद्यमानस्येत्यर्थ।। उपानदिति। उपपूर्वान्नहे. सपादित्वालिपि "नहिवृत्ति'1489' इति पूर्वपदस्य दीर्घ, सोर्हल्ङ्यादिलोपे धत्व जश्त्वचर्त्वे। अत्रेद बोध्यम् सुष्ठु अनड्वाहो यस्यामिति बहुब्रीहौ स्वनड्वानिति पुवदेव रूपम्। केचित्तु गौरादिङीष कृत्वा निगरणे" गृ शब्दे इत्यस्माद्वा क्विप् "ऋत इद्धातो 3183" इतीत्वे रपरत्वम्। र्वोरुपधाया दीर्घ 580' इति दीर्घ।। पूरिति। पृ पालनपूरणयो उदोष्ठ्यपूर्वस्य 3312" इत्युत्वम्।। चतस्र इति। इह चतुरड्डुहो -455, इत्याम्र भवति, परत्वादाम बाधित्वा चतस्रादेशे कृते सकृद्गतिन्यायेन पुनस्तस्याप्रवृत्ते। चतसृणामिति। न तिसृचतसृ 418' इति न दीर्घ। सर्वावदिति। तेन तुल्यम्-2409" इति वति। सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे-1053' इति पुवद्भाव.।
सिद्धान्त कौमुदी, सूत्र 590 तत्वबोधिनी व्याख्या, पृ0 122-123 । पा0 सू0 8/2/34

5 पा0 सू0 6/1/85

द्वारा वर्णित पाणिनि के उपर्युक्त सूत्र की यदि दमयन्ती स्वयबर प्रसडग के साथ-साथ सम्पूर्ण वस्तुस्थिति पर ध्यान दिया जाय, तो उसके अनेक पक्ष दृष्टिगोचर होते है। इन्द्र नल रूप धारण कर दमयन्ती को प्राप्त करना चाहता है। यहाँ इन्द्र को स्वय नल का रूप ग्रहण कर नल के स्वभाव (परस्त्री-विषयक चाह या कपट युक्त अन्यथा अर्थ करने का अभाव) का भी ग्रहण करना उचित था, किन्तु इन्द्र ने नलादेश होकर (नल का रूप धारण कर) भी अपने कहे हुए वाक्य के मनोगत वास्तविक अर्थ को छिपाकर अन्यथा अर्थ कहना इन्द्रत्वावस्था मे रहने के समान दुष्ट भाव को प्रकट करता है। दूसरा, ना (मनुष्य) नल एव विद्वान भी उस प्रकार अन्यथा अर्थ का स्थानी (इन्द्र पद) के समान क्यो दुष्ट भाव धारण किया? क्योकि इन्द्र का यज्ञ तप आदि मे विघ्न डालने से दुष्ट स्वभाव होना तो कथञ्चित उचित हो सकता है, परन्तु मनुष्य नल एव विद्वान् होकर भी काम के लिए इन्द्र स्वभाव को नहीं छोडना और अपनी बात को अन्यथा समझना उचित नहीं है। यहाँ व्याकरणिक सदर्भ के परिप्रेक्ष्य मे यह कहा जा सकता है कि विद्वान तथा वैयाकरण होते हुए भी इन्द्र ने 'ध' आदेश (नहो ध पा0सू0 8/2/34 से) करके 'अल्' प्रत्याहार' सम्बन्धी कार्य मे स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ (या0सू0 1/1/56) से स्थानिवत् कार्य का निषेध होने पर भी स्थानिवद्भाव नहीं किया क्या? अथात् अवश्य ही किया। स्थानिवत् सूत्र से अलाश्रित कार्य मे स्थानिवद्भाव का निषेध होने पर भी 'पथिमथ्यृभुक्षामात्' (पा०स्० 6/1/85) सूत्र से अल् करने पर स्थानिवद्भाव से आये हुए हल्त्व का आश्रय कर- "हल्ड्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्त हल्' (पा०सू० 6/1/68) से 'सु' लोप नहीं होता है, किन्तु उक्त प्रसग मे महावैयाकरण इन्द्र ने वहाँ पर भी स्थानिवद्भाव किया है। इसके अतिरिक्त यहाँ इस तथ्य का भी स्पष्टीकरण होता है कि अपने को नैषधादेश (नल के स्थान पर) करके स्वकार्य सिद्धि प्राप्ति हेतु इन्द्र ने विशिष्ट आकृति देवत्व को छोडकर मनुष्य नल की आकृति धारण करने के साथ-साथ दुष्ट स्थानिवद्भाव को क्यो धारण किया अर्थात् देवभाव को छोडकर मनुष्य भाव क्यो ग्रहण किया, यह अतीव आश्चर्य का विषय है।[1]

व्याकरणशास्त्र मे पाणिनि से पूर्ववर्ती अनेक शब्दशास्त्रवित् थे, परन्तु उनमे मुख्य रूप से आपिशलि, काश्यप, गार्ग्य, गालव, चाक्रवर्मण, भारद्वाज, शाकटायन, शाकल्य, सेनक, स्फोटायन, इन्द्र, काशकृत्स्न, पौष्करसादि, भागुरि, माध्यन्दिनि, वैयाघ्रपद्य, गौतम एव व्याडि थे[2] परन्तु पाणिनि ने उपर्युक्त मे से दस वैयाकरणो यथा- आपिशलि, काश्यप, गार्ग्य, गालब, चाक्रवर्मण, भारद्वाज, शाकटायन,

---

1 नै010/136 मल्लिनाथी व्याख्या, एव नारायणी व्याख्या भी द्रष्टव्य है। – स्वामिति। इन्द्रस्याप्यसडगतव्यवहारादिवेषादे अहो शब्द। स इन्द्र कर्य्यस्य दमयन्ती प्राप्ति रूपस्य उद्देश्यस्य हेतो स्वम् आत्मानम्, नैषधस्य नलस्य आदेशो रूपारोपो यस्मिन त नैषधादेश विधाय नलरूप कृत्वेत्यर्थ नलो ना नलरूपो मनुष्य सन् भवन्नपि, पुन पश्चात्, तादृक् पूर्वश्लोकस्य मत्याचित कृत व्याकरण व्याख्यान येन स तथोक्तो भवन् कि कथन् स्थान प्रसडगोऽयास्तीति स्थानी पूर्वरूप इन्द्राकार इत्यर्थ स इवेति स्थानिवत् दुष्ट निन्दितम् भावम् अभिप्रायम्, अधा विहितवान्। तथा च इन्द्र खलु परप्रतापरणाकुशल इति तदाकारत्वे सत्येव मर्त्योचितव्याख्यानेन नलप्रतारणा युज्यते, किन्तु सदाशय नलाकारत्वे नेति तदभिप्रायो दुष्ट एवेति भाव।

पक्षान्तरे तु एष ना प्रधानपुरूष कृत व्याकरण ऐन्द्रव्याकरण येन स अतएव नाना बहुविधाना शब्दानामयमिति लानो बहुविधशब्दोपदेशस्त नाति ददातीति नानल तादृक् सन्नपि तथाविधो विद्वान् भवन्नपि स इन्द्र, कार्य्यस्य "नद्ध' इत्यादि प्रयोगसिद्धिरूपोद्देश्यस्य हेतो धादेश "नहेर्ध" इत्यनेन धकारादेशम् विधाय, पुनर्दुष्ट निन्दितम्, स्थानिवद्भाव प्राक्तनहकारवद्भावम्, कि कथम्, अधन्त विहितवान्, अहो आश्चर्यम्। तथा च 'नहेर्ध इत्यनेन हकारादेश विधाय पुन स्थानिवद्भावे कृते धान्तत्वाभावात् "घढधमेभ्यस्ततोर्धोऽध" इति क्तप्रत्ययतकारस्य धकारो भवितु नार्हति। अत स्थानिवद्भावस्य दुष्टत्वम्। स च तेन कृत अतएव च तथाविधविदुषस्तदाश्चर्य्यमेवेति भाव। अत्र द्वितीयार्थ शब्दशक्तिमूलो वस्तुध्वनिरेव। नै010/136 जयन्ती टीका।

2 सस्कृत शास्त्रों का इतिहास- बलदेव उपाध्याय, पृ0 383, एव सस्कृत- व्याकरण का उद्भव और विकास- डॉ0 सत्यकाम वर्मा, पृ0 104-122

शाकल्य, सेनक एव स्फोटायन का ही उल्लेख किया है।[1] अलबरूनी ने कुछ प्राचीन व्याकरण ग्रथो एव ग्रन्थकारो की सूची दी है, उनमे 8 ग्रथो का विवरण मिलता है,[2] इसी प्रकार वोप्पदेव के गिनाये हुए आठ आचार्यों मे इन्द्र का नाम मिलता है।[3] कथासरित्सागर के अनुसार तो ऐन्द्र व्याकरण प्राचीनकाल मे ही नष्ट हो चुका था। महाभारत के टीकाकार देवबोध ने पाणिनि की अपेक्षा ऐन्द्र व्याकरण के परिमाण को बहुत ही अधिक एव विशाल बतलाया है।[4] श्रीहर्ष ने ऐन्द्र व्याकरण का सन्दर्भ देकर यह दिखाना चाहा है कि वह पाणिनि से पूर्ववर्ती प्रचलित इस व्याकरण से भी परिचित थे परन्तु व्याकरणशस्त्र मे मुनित्रयो (पाणिनि, कात्यायन एव पतजलि) के ग्रथो को ही आज अध्ययन अध्यापन का विषय बनाया जाता है। पाणिनि ने सूत्रो की रचना की, उनकी व्याख्या कात्यायन (वररूचि) ने वार्तिक लिखकर की, एव वार्तिको को और अधिक स्पष्ट करने के लिए पतजलि ने महाभाष्य की रचना की। इस तथ्य का विवरण श्रीहर्ष नेषध मे कुण्डिनपुरी वर्णन प्रसङ्ग मे रखते हुए कहते है कि – खाई के मण्डल के बहाने से मण्डलाकार रेखा को प्राप्त कराई गयी शत्रुओ के आक्रमण से बाहर ऐसी कुण्डिनपुरी नगरी दूसरे के ज्ञान का अविषय दुर्बोध, शेषनाग से कथित भाष्य की फक्किका (विनष्ट ग्रन्थ भाग) के सदृश थी।[5] अमरकोश के अनुसार "कुण्डली गूढपाच्चक्षु श्रवा काकोदर फणी", यहा पर फणी, पाणिनि की अष्टाध्यायी के महाभाष्यकार शेषनाग के अवतार पतञ्जलि मुनि का ही सन्दर्भ नैषधकार ने रखना चाहा है। ~~विवक्षित है~~। सूत्र की व्याख्या को भाष्य कहते है। पतञ्जलिमुनि के बारे मे ऐसी जनश्रुति है कि वे पर्दे के पीछे शेषनाग का अवतार ग्रहण कर अपने एक हजार शिष्यो को पाणिनि व्याकरण पर व्याख्यान दे रहे थे, उसमे किसी एक शिष्य ने जिज्ञासावश पर्दा हटा कर देखा तब पर्दा हटते ही शेषनाग के हजारफणो के तेज से सभी शिष्य जल गये, परन्तु उनमे एक शिष्य बीच मे ही उठकर शौच के लिए चला गया था, वह जितना सुन पाया था, उतना ही भाष्य रूप मे सुरक्षित है। उसे भी पतजलि ने शाप दिया था कि तुम तब तक नरराक्षस रूप वृक्ष मे निवास करोगे जब तक तुम अपने ज्ञान को किसी को समर्पित न कर दो, उन्होने पेड के पत्तो मे लिख-लिखकर महाभाष्य को सग्रहीत किया, एव एक ब्राह्मण को उचित पात्र जानकर उसे दे दिया, परन्तु वह ब्राह्मण जब उन भाष्य रचित पत्रो को लेकर जा रहा था, तो पेड के नीचे सोने पर कुछ पत्तो को बकरी ने खा लिया, स्पष्ट है कि जिस प्रकार पाणिनि के कुछ सूत्राश भाष्य की दृष्टि से दुर्ज्ञेय है, उसी प्रकार खाई से कुण्डलाकार घिरी हुई वह कुण्डिनपुरी नगरी भी शत्रुओ से दुर्जेय (अजेय) है। एव सामान्य जन के लिए दुर्बोध।[6]

---

1 सस्कृत साहित्य का इतिहास- बहादुर चद छावडा- पृ- 626

2 इन्द्ररचित ऐन्द्रव्याकरण बौद्धभिक्षुचन्द्रकृत चान्द्र व्याकरण, शाकटायन वशीय शाकट रचित शाकटायन व्याकरण पाणिनिकृत पाणिनीयव्याकरण शर्ववर्मन्कृत कातत्र व्याकरण शशि देव कृत शशिदेव वृत्ति, दुर्गविवृत्ति एव उग्रभूति रचित शिष्यहितावृत्ति। अलबरूनी का भारत, पृ0 40, एव सस्कृत साहित्य का इति0 छावडा पृ 632

3 इन्द्रश्चन्द्र काशकृत्स्नापिशली शाकटायन।
पाणिन्यमरजैनेन्द्रा जयन्त्यष्टादिशाब्दिका ।। सस्कृतशास्त्रो का इतिहास- बलदेव उपाध्याय पृ0 391 से उद्धृत।

4 यान्युज्जहार माहेन्द्राद् व्यासो व्याकरणार्णवात्।
पदरत्नानि किं तानि सन्ति पाणिनिगोष्पदे ।। वही पृ0 391 एव सत्यकामवर्मा, पृ 65

5 परिखावलयच्छलेन या न परेषा ग्रहणस्य गोचरा।
फणिभाषितभाष्यफक्किका विषमा कुण्डलनामवापिता ।। नै0 2/95

6 फणिभाषिता शेषोक्ता भाष्यस्य फक्किका ग्रन्थस्तद्वद्विषमा दुर्ग्रहा शेषव्यतिरिक्तेन ज्ञातुमशक्या। यथा- भाष्यफक्किका वररूचिना कुण्डलितेति प्रसिद्ध। नै0 2/95 नारायणी टीका
– फणिभाषितभाष्यफक्किका पतञ्जलिप्रणीत महाभाष्यस्थ कुण्डलिग्रन्थ। अत नगर्या कुण्डलिग्रन्थत्वेनोत्प्रेक्षा। सा च परिघावलयच्छलेन इत्यपह्नवोत्थापितत्वात् सापह्नवा व्यञ्जकाप्रयोगाद्गम्या। नै0 2/95 मल्लिनाथ टीका

श्रीहर्ष, व्याकरणशास्त्र के अन्तर्गत विवेचित शब्दरूपो एव धातुरूपो का भी नैषध मे वर्णन किया। अस्मद् और युस्मद् शब्द रूपो की नलदमयन्ती वार्तालाप प्रसङ्ग मे चर्चा करते हुए नल कहते है–

वृथा कथेय मयि वर्णपद्धति कयानुपूर्व्या समकेति केति च ।
क्षमे समक्षव्यवहारभावयो पदे विधातु खलु युस्मदस्मदी ।।[1]

किम् शब्द के बारे मे बैतालिको द्वारा राजा नल के शैय्यापरित्याग प्रसङ्ग मे वर्णन मिलता है जहॉ भावार्थ रूप मे वे कहते है कि राजन् कौवे तथा कोयल बोलने लगे है, अतएव आप शीघ्र निद्रा परित्याग कीजिए[2] – अर्थात् इस प्रात काल मे "कौ-कौ" कहता हुआ कौवा पाणिनीय महाभाष्य मे "तातङ्' के स्थानी कौन-कौन है? ऐसा प्रश्न करता है और कोकिल "तुहि, तुहि" कहकर उत्तर देती है। ध्यातव्य है कि पाणिनीय महाभाष्य मे "तुह्योस्तातङाशिष्यन्तरस्याम्"[3] से तातङ् के स्थान मे तु और हि आदेश होते है, इसलिए तातङ् के स्थानी "तु' और हि कहे जाते है।

धातु रूपो की चर्चा काशी नरेश के वर्णन मे श्लेषचमत्कार से नैषधकार ने किया है जहॉ नल दमयन्ती से कहते है कि जिस प्रकार अस् धातु (अस्-भुवि-अदादि परस्मैपद सञ्जक धातु) "भूत' काल के कहने मे समर्थ अद्यतन विभक्ति (लुङ् लकार) को प्राप्त कर भू-भाव अर्थात् अस्तेर्भू[4] से "भू' आदेश को प्राप्त करता है अर्थात पाणिनीय व्याकरणानुसार आर्धधातुक प्रत्यय के कार्यकाल मे अस् धातु को भू आदेश होता है । उसी प्रकार काशी नगरी मे पहुँचकर ससार के समस्त जीव शिव सायुज्य को प्राप्त करते है ।[5] व्याकरण मे दा और धा की तरह रूप वाली (दाप्, दैप् को छोडकर) धातुओ की "घु' सज्ञा की जाती है।[6] वैतालिको (वन्दीजनो) द्वारा नल को जगाये जाने की वेला मे ऐसे तथ्यो का प्रतिपादन श्लेष बल से मिलता है, जहा वे कहते है कि कबूतर भी मानो शब्दशास्त्र का ज्ञाता है, क्योकि शब्दो को साधते समय उसने जो प्रभूत खडिया (चाक) इस्तेमाल की उसके कारण उसके कण्ठ मे अब भी सफेद निशान बने मिलते है, परन्तु लगता है दैव वश उसका सारा पढा पाठ भूल गया है, केवल "दाधाध्वदाप्" से होने वाली "घु' सज्ञा ही याद है, एव प्रात काल उठकर वह उसी "घु' सज्ञा को घोख (गुनगुना) रहा है एव अध्ययन जन्मपूर्वसरकार से शिर कपा रहा है।[7] व्याकरण मे घु सज्ञा होने से फिर अनेक कार्य होते है, जैसे ध्वसोरेद्धावभ्यास लोपश्च[8] द्वारा एत्व और अभ्यास लोप होता है जिससे "एधि' निष्पन्न होता है, और "देहि' बनता है तथा – "घुमास्थागापाजहातिसा हलि"[9] से आकार को ईकार होता है और अध्यगीष्ट निष्पन्न होता है।

नैषधकार के पूर्ववर्ती महाकवियो ने भी अपने महनीय काव्यो मे व्याकरणशास्त्र से सम्बन्धित तथ्यो का पल्लवन किया है। महाकवि कालिदास ने रघुवश के पन्द्रहवे सर्ग मे व्याकरण सम्बन्धी[10] सकेत

---

1 नै० 9/9

2 इह किमुषास पृच्छशसि कि शब्दरूप प्रतिनियमितवाचा वायसेनैष पृष्ट।
भण फणिभवशास्त्र तातङ्स्थानिनौ काविति विहित तुहीवागुत्तर कोकिलोभूता।। नै० 19/60

3 पा० सू० 7/1/35

4 पा० सू० 2/4/52

5 सायुज्यमृच्छति भवस्य भवाब्धियादस्ता पत्युरेत्य नगरीं नगराजपुत्र्या ।
भूताभिधानपटुमद्यतनीमवाप्य भीमोद्भवे । भवतिभावमिवास्तिधातु ।। नै० 11/117

6. दाधाध्वदाप्- पा0सू0 1/1/20

7 दाक्षीपुत्रस्य तन्त्रे ध्रुवमयमभवत् कोऽप्यधीती कपोत , कण्ठे शब्दौघसिद्धिक्षतबहुकठिनीशेषभूषाऽनुयात. ।
सर्वं विस्मृत्य दैवात् स्मृतिमुषसि गता घोषयन् यो घुसज्ञा, प्राक्सस्कारेण सम्प्रत्यपि धुवति शिर पट्टिकापाठनेन ।। नै० 19/61

8 अष्टाध्यायी 6/4/119।

9 अष्टाध्यायी 6/4/66।

10 य कश्चन रघूणा हि परमेक परन्तप । अपवाद इवोत्सर्गं व्यावर्तयितुमीश्वर ।। रघुवश 15/7

देते हुए लिखा कि "यद्यपि शत्रुघ्न अकेले ही शत्रुसेना (लवणासुर की सेना) को परास्त कर सकते थे लेकिन फिर भी राम के आदेश से उनकी सेना उसी प्रकार उनके पीछे लगी रही जिस प्रकार इङ्ग धातु के पीछे अधि उपसर्ग हमेशा लगा रहता है।[1] क्योकि व्याकरणशास्त्र का नियम है "इङ् इको अधि उपसर्ग न व्यभिचररत। यहाँ इङ् धातु अध्ययनार्थक एव इक् धातु स्मरणार्थक है। अश्व घोष ने तो अपने ग्रथ सौन्दरनन्द एव बुद्धचरित मे व्याकरण का ऐसा सगुम्फन[2] किया है मानो वह अपने काव्य के बहाने व्याकरण की भी शिक्षा जनमानस को देना चाह रहे हो। यथा-

प्रणतानानुजग्राह विजग्राह कुलद्विष । आपन्नान् परिजग्राह, निजग्राहास्थितान पथि ।।[3]
यत्र रम मीयते ब्रह्म केश्चित् कैश्चिन्न मीयते । काले निमीयते सोमो न चाकाले प्रमीयते ।।[4]

उपर्युक्त सन्दर्भ मे 'उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्रनीयते" का स्पष्ट परिपाक द्रष्टव्य है। साथ ही एक ही श्लोक मे लिट् के बारह रूपो का प्रयोग उनके वैदुष्य का परिमापक माना जा सकता है।[5]

महाकवि भारवि ने भी अपने महाकाव्य "किरातार्जुनीयम्" मे व्याकरणतत्र मे प्रचलित पदावलियो[6] का प्रयोग करते हुए। व्याकरण की पारिभाषिक उपमाओ का विवेचन कर काव्य एव व्याकरण मे अभिन्न सम्बन्ध स्थापना को महत्व दिया है। जैसे वह कहते है कि धुञ् कम्पने धातु और क्त प्रत्यय मे दोनो प्रकृति प्रत्यय मिलकर कम्पित रूप अर्थ का बोधन करते है। उन दोनो के बीच मे धातु का अनुबन्ध 'क' (नष्ट) होने के लिए आता है, ठहरता नहीं है, उसी प्रकार शिव और अर्जुन के बीच मे वह सूकर नष्ट होने के लिए पड गया।[7] स्पष्ट है कि भारवि की अर्थ गाम्भीर्य पदावली के कारण ही आचार्य मल्लिनाथ ने उनके महाकाव्य की उपमा "नारिकेलफल" से दी, जो ऊपर से (व्याकरण एव अर्थ गाम्भीर्य आदि के कारण) कठोर एव अन्दर कोमल ओर सरस होता है।[8]

नैषधकार के पूर्ववर्ती महाकवि भट्टि ने अपने महाकाव्य "रावणबध" मे व्याकरण एव काव्य का ऐसा मणिकाञ्चन सयोग सृजा है कि यह काव्य उन्हीं के नाम से (भट्टिकाव्य) जाना जाने लगा। यह तथ्य अवधेय है कि महाकाव्यकारो मे केवल भट्टि को ही व्याकरणशास्त्र की कठिनाइयो को दूर करते हुए काव्य के द्वारा व्याकरण सिखाने का श्रेय प्राप्त है। इस ग्रथ की रचना उन्होंने अपने आश्रयदाता वल्लभी के श्रीधर सेन की प्रार्थना पर उन्हे सस्कृत व्याकरण अलकार शास्त्र तथा प्राकृत का ज्ञान देने के लिए की थी। उन्होने स्वय इस महाकाव्य की भाषा की व्युत्पत्ति के प्रतिपादक के रूप मे प्रशसा भी की है।[9] भट्टिकाव्य चार भागो मे विभक्त है एव प्रत्येक भाग मे भट्टि ने व्याकरणशास्त्र की क्रमश

1 रामादेशानुगता सेना तस्यार्थसिद्धये। पश्चादध्ययनार्थस्य धातोरधिरिवाभवत्।। रघु0 15/9
2 सौन्दर 1/44 -58 2/10 22 26-44, बुद्ध चरित 2/16, 33, 35, 44, 8/25
3 सौन्दर- 2/10
4 वही 1/15
5 रूरोद मम्लौ विरुराव जग्लौ व भ्राम तस्थौ विललाप दध्यौ ।
चकार रोष विचकार माल्य चकर्त वक्त्र विचकर्ष वस्त्रम् ।। सौन्दर 6/34
6 विधाय रक्षान्परित परेतरानाङ्किताकारमुपैति शङ्कित ।
क्रियापवर्गेष्वनुजीविसात्कृता कृतज्ञतामस्य वदन्ति सम्पद ।। किरात0 1/15 मे शास् का द्विकर्मक प्रयोग, अनुजीविसात्कृता मे देयेत्रा च पा0सू0 5/4/55 से सात् प्रत्यय की सन्निधि द्रष्टव्य है।
7 त स भवस्य भवक्षयैकहेतो सितसप्तेश्च विधास्यतो सहार्थम ।
रिपुराप पराभवाय मध्य प्रकृतिप्रत्यययोरिवानुबन्ध ।। किरात0 13/19 एव 15/14, 16, 38
8 नारिकेलफलसमित वचो भारवे सपदि तद् विभज्यते ।
स्वादयन्तु रसगर्भनिर्भर सारमस्य रसिका यथेप्सितम् ।। मल्लिनाथ
9 दीपतुल्य प्रबन्धोऽय शब्दलक्षणचक्षुषाम्। हस्तामर्श इवान्धाना भवेद् व्याकरणादृते।। भट्टि काव्य 22/33

व्याख्या की है। यथा-प्रथम भाग प्रकीर्णकाण्ड मे कृत प्रत्ययो का वर्णन्, द्वितीय भाग अधिकार काण्ड मे लुड्, कृत, षत्व, णत्व, कारक, आत्मने पद आदि का विवेचन, तृतीय भाग प्रसन्नकाण्ड मे शब्दालकार तथा अर्थालकार के साथ-साथ माधुर्य समन्वित भावो का विवरण, एव चौथे भाग तिङन्तकाण्ड मे)14 से 22 नो सर्गों मे) क्रमश नो लकारो यथा-लिट्, लुड्, लृट्, लड्, लट्, लिड्, लोट्, लृड्, और लुट् लकारो का प्रयोग वैशिष्ट्य तो इनकी गवेष्णात्मक शैली का मानदण्ड ही कहा जा सकता है। यथा-

सोऽध्येष्ट वेदास्त्रिदशानयष्ट पितृनपारीत् सममस्त बन्धून ।
व्यजेष्ट षडवर्गमरस्त नीतौ समूलधात न्यवधीदरीश्च ।।[1]

मे लुडड्लकार का प्रयोग उनकी व्याकरणतत्र मे गहरी पैठ का द्योतक है। भट्टिकाव्य मे भाषा सम अर्थात् सस्कृत और पाकृत दोनो भाषाओ पर उनके अधिकार का उदाहरण दोनो भाषाओ मे उनकी यथेष्ट गति की कहानी कहता है।[2] रावणबध के तेरहवे सर्ग मे समुद्र पारकर लका पहुँचने मे वानरो के आनन्द समन्वित होने पर उनके उछलने कूदने का वर्णन महाकवि भट्टि ने केवल क्रिया पदो मे ही किया।[3] जो व्याकरणशास्त्र के साथ-साथ काव्यशास्त्र मे उनके अप्रतिम वैदुष्य का परिचायक है। अपने पूर्ववर्ती ख्यातिलब्धमनीषी एव व्याकरणशास्त्र के मर्मज्ञ पण्डित भट्टि से नैषधकार का प्रभावित होना स्वाभाविक है। परन्तु महाकवि भट्टि एव श्रीहर्ष मे एक महान अन्तर भी देखने को मिलत है कि जहाँ नैषधकार ने काव्य को क्लिष्ट रूप प्रदान करने के लिए उसमे व्याकरणादि ग्रथियो का सगुम्फन किया है वहीं भट्टि ने व्याकरणशास्त्र की कठिनाइयो को दूर करते हुए अपने काव्य का सृजन किया है।

व्याकरण शास्त्र मे लिड्ग तीन माने गये है, पुल्लिग, स्त्रीलिग एव नपुसक लिग। पुल्लिग एव स्त्रीलिग की चर्चा करते हुए नैषधकार कहते है- "दमयन्ती द्वारा ज्योतिष्मान् राजा को अस्वीकार करने पर शिविकावाहक स्त्रीभाव से चलित पादवाली (स्पष्ट न कहकर पैर के अगुष्ठ को चलाकर आगे बढने का सकेत करने वाली) इस तन्वी (दमयन्ती) को उस राजा के पास से हटाकर, दूसरे राजकुमार के पास उसी प्रकार ले गये, जिस प्रकार याचक विचार कर अर्थात् मालूम कर, स्त्रीत्व से चालित पदवाली "याच्आ" को निर्धन व्यक्ति से हटाकर धनिक व्यक्ति के पास ले जाता है।[4] यह तो जाहिर सी बात है कि याच्आ शब्द स्त्रीलिग है, अत स्त्रीसुलभ स्वभाव से इधर-उधर दौडने वाली है चाहे जिस किसी से भी याचक याचना कर लेता है एव "यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षोयड्[5] से सिद्ध होने वाले प्रयोगो मे केवल याच्आपद ही स्त्रीलिड्ग है, अन्य सभी" यज्ञ यत्न , विश्न , प्रश्न और रक्ष्ण ' शब्द पुल्लिग ही है। अतएव यह स्त्रीत्व (स्त्रीलिग) मे आने वाला यह याच्आ पद है। जब याचक को मालूम हो जाता है कि यह (अमुक) व्यक्ति निर्धन है तो उससे याचना न कर धनिको के पास याचना करता है। तीनो लिगो की चर्चा एक साथ नैषध मे नैषधकार ने अन्य प्रसड्ग मे भी की है।[6]

---

1 भट्टिकाव्य- 1/3

2 चलकिसलयसविलास चारुमहीकमलरेणुपिञ्जरवसुधम् ।
सकुसुमकेसरवाण लवड्गतरुरूणवल्लरीवरहासम् ।। भट्टिकाव्य 13/39

3 भेमु-र्ववल्गु-र्ननृतु-र्जजक्षु-र्जगु समुत्पुप्लुविरे निषेदु । आस्फोटयाचक्रुरभिप्रणेदूरेजु-र्ननन्दु-र्विययु समीयु ।। 13/28

4 तस्मादिमा नरपतेरपनीय तन्वीं राजन्यमन्यमथ जन्मजन स निन्ये ।
स्त्रीभावधावितपदामभिमृश्य याच्आमर्थी निवर्त्यविधनादिव वित्तवित्तम्।। नै० 11/65

5 पा० सू० 3/3/90

6 नै० 17/70

शब्द शास्त्र मे सन्धियो एव छन्दो इत्यादि के विधान का भी विवरण मिलता है! प्रमुखतया छन्द दो प्रकार के होते है- मात्रिक एव वर्णिक। श्लोकार्द्ध मे विराम लगाना चाहिए, इत्यादि का विवरण श्रीहर्ष ने सरस्वती वर्णन प्रसङ्ग मे देते हुए कहा कि "सरस्वती की दोनो भुजाएँ मात्राओ के तथा वर्णों के भेद से दो तरह के छद थे तथा हर भुजा के बीच मे दो हिस्सो के जोड (सन्धि) का चिह्न था जो श्लोक के आधे भाग की बीच विश्रान्ति का सूचक था।[1] नैषधकार ने विभिन्न प्रकार के छन्दो को नैषध मे अपनाया है, तथा नल ने भी विभिन्न छदो से युक्त स्तुति रूप पुष्पगुच्छो से देवताओ की आराधना की। यथा-

वैशद्यहृद्यैर्म्रदिमाभिरामैरामोदिभिस्तानथ जातिजातै ।
आनर्च गीत्यन्वितषट्पदै सा स्तवप्रसूनस्तबकैर्नवीनै ॥[2]

व्याकरणशास्त्र मे स्वरितेनाधिकार "[3] से अधिकृतत्वम् अर्थ लिया जाता है अर्थात् व्याकरण मे स्वरितत्वयुक्त शब्द अधिकृत होता है, इसका वर्णन करते हुए नल कहते है कि हे दमयन्ति! देवताओ के अनुग्रह से ही मनुष्य मनुष्यभाव को छोडकर देवभाव को प्राप्त कर लेता है। सिद्ध पारे को स्पर्श करके स्वर्ण बने लोहे को भला फिर लौह निर्मित वस्तुओ मे रखना क्या इष्ट होगा? अर्थात् नहीं।[4] षण्णाम् शब्द का कलिप्रसङ्ग मे नैषधकार ने वर्णन कर व्याकरण के गूढ सूत्रो से भी जनसामान्य को परिचित कराने का प्रयास किया है। कलि के निषध देश जाने की प्रतिज्ञा पर इन्द्र कहते है वहा जाकर नल और दमयन्ती के मध्य (उनमे शत्रुता कराके भी) तुम उसी प्रकार प्रविष्ट नहीं हो सकते, जिस प्रकार "षण्णाम्" शब्द के वर्ण मध्य विसन्धि अवस्था मे उच्चरित "उ' वर्ण सहसा (ण रूप मे विकृत हुए बिना) नहीं प्रविष्ट होता।[5] अथवा जैसे 'षण्णाम् मे ड वर्ण ण रूप मे विकृत होकर प्रविष्ट हो सकता है वैसे ही तू (कलि) भी रूप परिवर्तन करके ही नल दमयन्ती के मध्य प्रवेश पा सकेगा (परन्तु ऐसा असम्भव है)। पाणिनीय व्याकरणानुसार "षट्' शब्द का षष्ठी बहुबचन मे "षण्णाम्' रूप बनता है। यहॉ षट्+आम्, इस स्थिति मे षट्चतुर्भ्यश्च[6] सूत्र से नुट् का आगम होता है। षट्+न्+आम्, इस अवस्था मे "स्वादिष्वसर्वनामस्थाने[7] से षट् की पद सञ्ज्ञा तत्पश्चात् झला जशोऽन्ते[8] से झल् 'ट्' का जश् 'ड्' होना अपेक्षित था, किन्तु 'न पदान्ताट्टोरनाम्"[9] से उसका निषेध हुआ परन्तु अनाम्नवतिनगरीणाम इति वाच्यम् वार्तिक से पुनर्निषेध होने पर डकार हो जाता है। षड्+नाम्- "ष्टुनाष्टु "[10] से नाम के नकार को "ण' होता है, षड्+णाम्-, इस अवस्था में "यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा"[11] से विकल्प से षड् के डकार को भी णकार हो जाता है, जिससे षण्णाम् एव षड्नाम् ये दो वैकल्पिक रूप सिद्ध होते है। परन्तु "वाऽवसाने[12] से अन्तिम झल् को

---

1 जात्या च वृत्तेन च भिद्यमान छन्दो भुजद्वन्द्वमभूत् यदीयम् ।
श्लोकार्द्धविश्रान्तिमयीभविष्णु पर्वद्वयीसन्धिसुचिह्नमध्यम् ॥ नै० 10/77

2 नै० 14/6

3 पा0 सू0 1/3/11

4 अनुग्रहादेव दिवौकसा नरो निरस्य मानुष्यकमेति दिव्यताम् ।
अयोऽधिकारे स्वरितत्वमिष्यते कुतोऽयसा सिद्धरसस्पृशामपि ॥ नै० 9/42

5 गत्वान्तरा नल भैमीं नाकस्मात्व प्रवेक्ष्यसि । षष्णा चक्रमसयुक्त पठ्यमान डकारवत् ॥ नै० 17/151

6 अष्टा0 7/1/55

7 अष्टा 1/4/17

8 अष्टा 8/2/38

9 अष्टा 4/8/42

10 अस्था 8/4/41

11 अष्टा 8/4/45

12 अष्टा 8/4/56

चर् आदेश प्राप्त होता है, इससे षड् का षट् भी विकल्प से प्राप्त हुआ, तो एक और रूप षट्णाम् बन'। कहने का आशय यह है कि पाठातर मे डकारवत् के स्थान पर टकारवत् भी है अर्थात पाठान्तर का अर्थ करते समय डकार के स्थान मे वही स्थिति मानी जानी चाहिए जो डकार की है। स्पष्ट है कि जैसे टकार और डकार षण्णाम् मे अकस्मात् बिना रूप बदले, बिना विकृत हुए प्रवेश नहीं पा सकते, वैसे ही कलि भी नलदमयन्ती के मध्य (बिना विकृत हुए) प्रवेश नहीं पा सकेगा।

गुण, दीर्घ भाव प्रत्यय और कृत्प्रत्ययो का वर्णन श्रीहर्ष ने सरस्वती के सोन्दर्य वर्णन मे किया है जहॉ वह अभिहित करते है कि सरस्वती की मेखला (करधनी) लडियो की दीर्घता को धारण करते हुए, शिञ्जित शब्दो (आवाज, ध्वनि) को करती हुई गुण, दीर्घ भाव, कृत् आदि शब्द परम्पराओ को साधने वाले व्याकरण शास्त्र से बनी थी।[1] अर्थात् पट्टसूत्र की लम्बाई से किये गये (पक्षान्तर मे गुण, दीर्घ, भाव प्रत्यय और कृत प्रत्ययो के) विस्तार को धारण करती हुई, तथा शब्द परम्परा को व्यक्त करने वाली अर्थात् बजने वाली (पक्षान्तर मे राम, पाक आदि शब्द समूह को सिद्ध करने वाली) जिस (सरस्वती) की करधनी (कटिभूषण काञ्ची) व्याकरण (वेदाड्गभूत मुख स्थानीय, ग्रथ विशेष) से बनायी गयी थी। ध्यातव्य है कि देवेन्द्र, देवाद्यान आदि पदो मे "आद्गुण"[2] से गुण भाव, दैत्यादि, श्रीश, इत्यादि पदो मे अक सवर्णे दीर्घ[3] "ल कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्य"[4] आदिसूत्र से भाव मे प्रत्यय और कर्त्तव्य, करणीय, आदि पदो मे "तव्यत्तव्यानीयर"[5] आदि सूत्रो से तव्य एव तव्यत् आदि कृत् सज्ञक प्रत्यय व्याकरण शास्त्रानुसार होते है, तथा वह व्याकरणशास्त्र राम, कृष्ण, नन्दन, गमन, आदि शब्दो की रचना (सिद्धि) भी करता है। अवधेय है कि "मुख व्याकरण स्मृतम्" के अनुसार व्याकरण को वेदो का मुख माना गया है अतएव उसका (प्रसड्गत करधनी का भी) शब्द करना अर्थात् बोलना (आवाज करना) उचित ही है।

श्रीहर्ष लौकिक जीवन मे व्यवहरित सभी प्रकार की गतिविधियो के जानकार थे। व्याकरणशास्त्र जैसे गम्भीर एव प्रौढ शास्त्र जिसे कि घमड था, कि जो वह शब्द सिद्ध (बनोयगा) करेगा, लोक को उसी को अपनाना पडेगा, श्रीहर्ष ने मान्यता नहीं दी, बल्कि उन्होने भाष्यकार (पतजलि) से अपनी सम्मति व्यक्त करते हुए कहा कि लोक व्यवहार की मुहर वाला शब्द ही व्यवहार्य भी है एव उचित भी। सामान्यत सभी वैयाकरणो को भाष्यकार की यह सम्मति सर्वमान्य है। महाकवि श्रीहर्ष ने तो व्याकरणशास्त्र तथा लोक के इस तारतम्य को दिखलाकर लोक को व्याकरणशास्त्र से अधिक महत्वशाली माना है। व्याकरण से बढकर लोक प्रामाण्य अधिक है, इस तथ्य का वह नैषध मे प्रतिपादन करते हुए कहते है कि "यह (शब्द व्यवहार करने वाला) लोक व्याकरण (अथवा लक्षणा से व्याकरणविदो) के (प्रकृति प्रत्यय के विभाजनपूर्वक शब्द विवेचन मै ही करता हूँ ऐसे) अभिमान को नष्ट करने के लिए समर्थ है, क्योकि यह चन्द्रमा "शश" है, इसका वह (शश अस्ति अस्य)[5] शशी (चन्द्रमा बोधक) कहलाता है, एव चन्द्रमा के लिए शशी का प्रयोग उचित है, परन्तु तदनुरूप मृग (मृग अस्तिअस्य) है, इसका वह

1 असशय सा गुणदीर्घभाव-कृता दधाना विततिं यदीया ।
विधायिका शब्दपरम्पराणा किञ्चारचि व्याकरणेन काञ्ची ।। नै० 10/78

2 अष्टा 6/1/87

3 अष्टा 6/1/10

4 अष्टा 3/4/69

5 अष्टा 3/1/96

6 शशोऽस्यातीति मतुबर्थे अतइनिठनौ- अष्टा 5/2/115

मृगी नहीं कहलाता, अर्थात् वह मृग का बोधक न होकर मृग की पत्नी का बोधक हो जायेगा, जिसका प्रयोग लोकबाह्य होने से अग्राह्य होगा।[1] स्पष्ट है कि जिस प्रकार चन्द्रमा को "शश' वाला होने से शशी शशी कहा जाता है, उसी प्रकार मृग वाला होने पर भी मृगी नहीं कहा जा सकता, क्योकि मृगी मृग का पर्याय न होकर, मृग पत्नी का सूचक है। साथ ही इसमे अतिव्याप्ति[2] एव अव्याप्ति[3] दोष आने से व्याकरणमूलक लोक प्रयोग होने का नियम नहीं है, परन्तु कृत-तद्धित समास भी उसमे नियामक ह इसलिए कहा जा सकता है कि लोक प्रयोग का अनुगामी व्याकरण होता है। व्याकरण का अनुगामी लोक प्रयोग नहीं होता।

श्रीहर्ष अपने ढग के अनूठे कविपण्डित थे। उन्होने नैषध मे अनेको नए शब्दो को गढा (बनाया) है। जैसे - भूजानि (1/2 राजा), सूननायक (18/129 कामदेव), अपततिचर (18/129 पहले से अज्ञात), अधिगामुका (18/129 जानने वाली), हसस्पृशम् (18/130 हसते हुए), साथ ही उन्होने अप्रचलित शब्दो का भी प्रयोग अपने इस महाकाव्य मे किया है- यथा-अगदकार (4/116 वैद्य), अकूपार (12/18 समुद्र), चिपिट (22/85 चपटा), श्यैनपाता (19/12 मृगया), मिहिकारुचम् (19/35 चन्द्रमा), इगाल (1/9 अगारा), विरूद (11/37 प्रताप), धोरणि (15/49 परम्परा) । परन्तु इसके साथ-साथ उन्होने प्रमाद (असावधानी) वश एकाध स्थल पर व्याकरणसम्मत नियमो का अतिक्रमण भी किया है। जैसे सोलहवे सर्ग के निम्न श्लोक मे-

> इति द्विकृत्व शुचिमृष्टभोजिना दिनानि तेषा कतिचिन्मुदा ययु ।
> द्विरष्टसवत्सरवारसुन्दरीपरीष्टिभिस्तुष्टिमुपेयुषा निशि ।।[4]

यहॉ द्विकृत्व की जगह द्वि होना चाहिए। यद्यपि व्याकरण शास्त्र मे सामान्य नियम है कि "सख्याया क्रियाभ्या वृत्तिगणने कृत्वसुच्" किन्तु इसका अपवाद (या इससे विशेष) नियम भी है। "द्वि त्रि चतुभ्य सुच्, इसलिए द्विकृत्व मे सुच् प्रत्यय ही लगना चाहिए, न कि कृत्वसुच्' क्योकि सामान्य की प्रशक्ति विशेष को छोडकर होती है, किन्तु यहॉ पर नैषधकार ने अपवाद के स्थान पर सामान्य नियम की प्रशक्ति की है।

हालाकि नैषधकार इस नियम से परिचित थे, क्योकि उन्होने "द्विरष्टसवत्सर" मे इस नियम का परिपालन किया है जबकि द्विकृत्व मे उल्लघन, अत यहॉ प्रमादजन्य दोष कहा जा सकता है न कि अज्ञानजन्य दोष, अथवा हम इसको च्युति सस्कृति दोष के अन्तर्गत रख सकते है। इसी बात को नारायण ने भी अपनी टीका मे इस रूप मे कहा है- "द्विरष्ट इतिवत्सुच कृत्वसुचो- बाधकत्वात् "द्वि इति प्राप्ते इत्यत्र अपवाद विषये क्वचिदुत्सर्ग स्यापि समावेशा" इति परिभाषया यथाकथचित्परिहर्तव्यम्"।[5] इसी तरह का च्युति सस्कृति दोष का उदाहरण कठोपनिषद् के शाङ्करभाष्य मे भी देखने को मिलता है,

---

1 भङ्क्तु प्रभर्व्याकरणस्य दर्प पदप्रयोगाध्वनि लोक एष ।
शशो यदस्यास्ति शशि ततोऽयमेव मृगोऽस्यास्ति मृगीतिनोक्त ।। नै० 22/82

2 अलक्ष्ये लक्षणगमनमतिव्याप्ति '' लक्ष्ये लक्षणागमनमव्याप्ति इति ज्ञेयम्- मल्लिनाथ नै० 22/82

3 तदुक्त भगवत्पतञ्जलिनामहाभाष्ये- 'नहि लक्षणेन पदकारा अनुवर्तनीया , पदकारैर्नाम लक्षणमनुवर्तनीयम्।'' इति । अत्र लक्ष्ण व्याकरणसूत्रादिकम्, पदकारा लोके पदप्रयोक्तारो जना इति बोध्यम्। नै० 22/82 मल्लिनाथी व्याख्या मे उद्धृत पादटिप्पणी।
– तस्मादतिव्याप्त्यादि दोषाद् व्याकरणमूल एव लोकप्रयोग इतिनियमो न युक्त , किन्तु कृत्तद्धितसमासानामभिधान नियामकम् । लक्ष्यमुद्दिश्य लक्षणप्रवृत्ति नतु लक्षणमुद्दिश्य लक्ष्यप्रवृत्तिरिति। तस्मात् प्रयोगमूल व्याकरण इति व्याकरणाल्लोक एव प्रयोगे बलीयानीति भाव। नै० 22/82, मल्लिनाथ एव नारायण की टिप्पणी।

4 नै० 16/112

5 नै० 16/112 नारायणी टीका में उद्धृत।

जहॉ शङ्कराचार्य ने 'त्रिणचिकेत त्रिभिरेत्यसन्धि'[1] श्लोक के भाष्य मे 'त्रिणाचिकेतस्त्रि कृत्वो नाचिकेतोऽग्निश्चितो येन सत्रिणाचिकेतस्तद्विज्ञानस्तदध्ययनस्तदनुष्ठानवान्वा।" मे त्रिकृत्व शब्द का प्रयोग किया है। स्पष्ट है कि नैषध सर्वथा दोषो से असम्पृक्त महाकाव्य हो, ऐसा नहीं है, नैषध ही क्यो, अन्य महाकाव्य भी दोषो से सर्वथा शून्य नही है और यह जाहिर सी बात है कि केञ्चित् दोषो से काव्य की कमनीयता नष्ट नहीं हो जाती। आचार्य विश्वनाथ का भी कथन है कि "नहि कीटानुवेधादयो रत्नत्स्य रत्नत्व व्याहन्तुमीशा।"[2]

परन्तु आचार्य दण्डी का यह कथन भी अवधेय है कि जिस प्रकार सुन्दर शरीर केवल एक मात्र स्वित्र (कुष्ठ) दोष (रोग) के कारण विरूप हो जाता है, उसी प्रकार अलकृत काव्य भी एक दोष की स्थिति मे भी दूषित हो जाता है। यथा-

तदल्पमपि नोपेक्ष्य काव्ये दुष्ट कथञ्चन । स्यादवपु सुन्दरमपि स्वित्रेणेकैन दुर्भगम् ।।[3]

एव आचार्य भामह का कथन हे कि काव्य निर्माता काव्य रचकर चाहे कीर्ति प्राप्त कर पाये या न कर पाये, किन्तु मनीषियो ने दोषपूर्ण काव्य के निर्माण को साक्षात् मृत्यु कहा है।[4] तथा वाग्भट्ट ने तो दोषरहित काव्य को कीर्ति तथा स्वर्गादि अभीष्टो का साधक माना है[5] और भोज ने तो स्पष्ट रूप से अपने ग्रथ सरस्वतीकण्ठाभरण मे कहा है कि पदो, वाक्यो एव वाक्यार्थों के दोष को जो कवि हेय अर्थात त्याज्य रूप मे जानता है, वही निर्दोष काव्य का निर्माण कर सकता है।[6] एव इस क्षेत्र मे व्याकरणशास्त्र ही काव्यशास्त्रियो का दिशा निर्देश करता है, क्योकि व्याकरणशास्त्र केवल पद विच्छेद विधायक ही नहीं अपितु वह सोचने की उस पद्धति का निर्माता भी है, जो विश्लेषण एव सश्लेषण दोनो करती चलती है। स्पष्ट है कि काव्यशास्त्र पर व्याकरणशास्त्र का अप्रतिम प्रभाव रहता है, शायद तभी काव्यशास्त्रीय आचार्यो ने शब्दविद्या (व्याकरणशास्त्र) को सभी विद्याओ का मूल कहा है एव उपनिषदो मे भी वर्णन मिलता है कि शब्द ब्रह्म मे निष्णात साधक परब्रह्म को प्राप्त करता है।[7] विभिन्न विद्वानो के साथ-साथ[8] महाभाष्यकार पतञ्जलि ने व्याकरणशास्त्र की प्रशसा करते हुए तो यहा तक कह दिया कि "एक शब्द सम्यग्ज्ञात शास्त्रान्वित सुप्रयुक्त। स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति।[9]

---

1 त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य सन्धि त्रिकर्मकृत्तरति जन्ममृत्यू ।
ब्रह्मजज्ञ देवमीड्य विदित्वा निचाय्येमा शान्तिमत्यन्तमेति ।। कठोपनिषद् 1/1/17

2 सा0 द0- पृ० 15

3 काव्यादर्श - 1/7

4 सर्वथा पदमप्येक न निगाद्यमवद्यवत् । विलक्ष्मणा हि काव्येन दु सुतेनेव निन्द्यते ।।
अकवित्वमधर्माय व्याधये दण्डनाय वा । कुकवित्व पुन साक्षान्मृतिमाहुर्मनीषिण ।। काव्यालकार- 1/11 12

5 अदुष्टमेव तत्कीर्त्यै स्वर्गसोपान पड्क्तये । परिहार्या नतो दोषास्तानेवादौ प्रचक्ष्महे ।। वाग्भटालकार 2/5

6 एव पदाना वाक्याना वाक्यार्थाना च य कवि। दोषान् हेयतया वेत्ति स काव्य कतुर्मर्हति ।। सरस्वतीकण्ठाभरण 1/58

7 द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म पर च यत् । शब्द ब्रह्मणी निष्णात पर ब्रह्माधिगच्छति ।। मैत्र्युपनिषद् 232/24

8 शब्दब्रह्म पदेक यच्चैतन्यञ्च सर्वभूतानाम् ।
यत्परिणामस्त्रिभुवनम् अखिलमिद जयति सावाणी ।। अथर्ववेद की भूमिका मे सायणाचार्य।
शब्दार्थसम्बन्धनिमित्ततत्त्व वाच्याविशेषेऽपि च साध्वसाधून् ।
साधुप्रयोगानुमितॉश्च शिष्टान्न वेद यो व्याकरण न वेद ।। भर्तृहरि वा0पा0 1/12
नापारयित्वा दुर्गाधमम्बु व्याकरणार्णवम् । शब्दरत्न स्वयड्गम्यमलड्कर्तुमय जन ।।
तस्य चाधिगमे यत्न कार्य काव्य विधित्सता । परप्रत्ययतोयत्तु क्रियते तेन का रति ।। भामह-का0ल0 7/3-4
इह शिष्टानुशिष्टाना शिष्टानमपि सर्वथा । वाचामेव प्रसादेन लोकयात्रा प्रवर्तते ।। दण्डी-काव्यादर्श 1/3
सर्वाथाना व्याकरणाद् वैयाकरण उच्यते । तन्मूलतो व्याकरण व्याकरोतीति तत्तथा ।। व्यास-महाभारत उद्योगपर्व 45/61
नम पाणिनये तस्मै यस्मादाविरभूदिह । आदौ व्याकरण काव्यमनु जाम्बतीजयम् ।। राजशेखर।

9. महाभाष्य - तृतीय पृ० 58

चतुर्थ अध्याय

नैषध महाकाव्य में काव्यशास्त्रीय संदर्भ

काव्य शास्त्र

वास्तव मे चिन्तनशीलता के साथ-साथ विवेकशीलता का गुण मानव को ही प्रकृति प्रदत्त है। मानव का हृदय जब विशिष्ट परिस्थितिजन्य अलौकिक भावानुभूति से परिपूर्ण होता है, तब उसके हृदय से काव्य का प्रस्फुटन होता है।[1] कवि की चिन्तन, मनन, भावुक प्रवृत्ति एव कल्पना शक्ति जब वस्तुस्थिति को शब्द जाल का तानाबाना पहनाकर आदर्शरूप दे देती है, उसे ही हम 'काव्य' शब्द से अभिहित करते है। काव्य की परिभाषा विभिन्न विद्वानो ने विविध रूपो मे दी है।[2] परन्तु यथार्थता के आलोक मे पण्डित राजजगन्नाथ की परिभाषा ही सटीक लगती है कि "रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाला शब्द ही काव्य है।"[3] काव्यशास्त्र का तात्पर्य काव्य के नियम विधान या उसके शासन से है, शास्त्र इसलिये शास्त्र माना जाता है, क्योकि वह शासन करता है, कवियो को शास्त्रीय नियमो मे बाधने का प्रयास करता है, यद्यपि कवि निरकुश होता है जैसा कि "ईशावास्योपनिषद्" मे कहा गया है "कविर्मनीषी परिभू स्वयम्भू" अर्थात् कवि अपने जगत का स्वतत्र सम्राट होता है। अग्निपुराणकार भी कहते है "अपारे काव्यससारे कविरेव प्रजापति। यथावै रोचते विश्व तथेद परिवर्तते।[4] "और यह तो सर्वविदित तथ्य है कि काव्यमनीषियो की रचनाए ईश्वर की सृष्टि की तरह कभी जीर्ण भी नहीं होती "पश्य देवस्य काव्य न ममार न जीर्यति।" आचार्य मम्मट भी सारस्वत कवि भारती की प्रशसा करते हुए कहते है–

> नियतिकृत नियमरहिता ह्लादैक मयीमनन्यपरतन्त्राम् ।
> नवरसरुचिरा निर्मितमादधती भारती कवेर्जयति ।।

परन्तु फिर भी काव्य सृजन काल मे वह सारस्वत कवि भी काव्य शास्त्रीय नियम विधान का अतिक्रमण तो कर सकता है, लेकिन वह काव्यशास्त्रीय नियम विधानो को जानने के कारण किञ्चितरूपेण उन सीमाओ मे आबद्ध भी रहता है, और शायद तभी उसका काव्य रमणीयरूप ले पाता है।

---

1. मा निषाद प्रतिष्ठास्त्वमगम शाश्वती समा।
   यत् क्रौञ्च मिथुनादेकमवधी काममोहितम्।। रामा बाल - 2/15
2 – शब्दार्थो सहितौ काव्य गद्य पद्य च तद् द्विधा-भामह-काव्याद 1/10
   – तै शरीर च काव्यानामलङ्काराश्च दर्शिता।
   शरीर तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली ।। - दण्डी-काव्याद 1/10
   – काव्यशब्दोऽय गुणालकार सस्कृतयो शब्दार्थयोर्वर्तते। – वामन – का०सू० वृत्ति0 1/1
   – ननु शब्दार्थौ काव्यम् – रूद्रट काव्याल 2/1 एव पृ० 17
   – शब्दार्थो सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि ।
   बन्धे व्यवस्थितौ काव्य तद्विदाह्लादकारिणि ।। – कुन्तक - वक्रो जी 1/7
   – अदोषौ सगुणौ सालङ्कारौ च शब्दार्थो काव्यम्-हेमचन्द्र- काव्यानु पृ० 16
   – शब्दार्थौ निर्दोषौ सगुणौ प्राय सालकारौ च काव्यम् - वाग्भट-वाग्भटाल - पृ० 14
   – गुणालकारसहितौ शब्दार्थौ दोषवर्जितौ- विद्यानाथ प्रतापरूद्रयशोभूषण, पृ० 42
   – शब्दार्थौ वपुरस्य तत्र विवुधैरात्माभ्यधायि ध्वनि। विद्याधर एकावली, 1/13
   – तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृति पुन क्वापि - मम्मट-का०प्र० 1/4
   – वाक्य रसात्मक काव्यम् - विश्वनाथ - सा०द०, I परिच्छेद पृ० 23
   – निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुणभूषणा - चन्द्रालोक
   – सालकारसानेक वृत्तिर्वाक् काव्यनामभाक् - अलकारशेखर 1/7
   – सक्षेपाद्वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली (काव्यम्) - अग्निपुराण - 337/6
   – शब्दार्थशरीर तावत् काव्यम् - आनन्दवर्धन - ध्वन्या०, पृ० 17
3 रमणीयार्थप्रतिपादक शब्द काव्यम् - जगन्नाथ र ग, पृ० 9
4 अग्निपुराण, 339/10

काव्य या साहित्य का मूल्याकन करने वाला या साहित्य सौन्दर्य की परख करने वाला शास्त्र (विद्या) काव्यशास्त्र कहलाता है।[1] इसे अलकारशास्त्र, साहित्य शास्त्र, आलोचनाशास्त्र, साहित्य विद्या, त्रियाकल्प आदि नामो से भी जाना जाता है। काव्यशास्त्र के प्रारम्भिक युग मे इसके लिये काव्यालकार शब्द भी प्रचलित था, तभी तो तत्कालीन आचार्यों ने इसी नाम से अपने-अपने ग्रथो का नामाकन किया था गथा- भामह कृत काव्यालकार, उद्भट का काव्यालकारसारसग्रह, वामनकृत काव्यालकारसूत्रवृत्ति तथा रूद्रट का काव्यालकार। कालान्तर मे यही अलकारशास्त्र[2] मध्ययुग तक साहित्य शास्त्र के नाम से जाना गया। राजशेखर ने काव्यशास्त्र को साहित्यविद्या नाम दिया।[3] रूय्यक रचित साहित्यमीमासा एव विश्वनाथ का साहित्यदर्पण इसी के उदाहरण है। काव्यशास्त्र के उपर्युक्त नामो मे 'क्रियाकल्प' सर्वाधिक प्राचीन है। इसका विवरण वात्स्यायनकृत कामसूत्र के चौंसठ कलाओ मे एक होने मे आया है, साथ ही ललितविस्तर मे क्रियाकल्प की व्याख्या करते हुए 'जयमगलार्क' ने इसे "क्रियाकल्प काव्यकरण विधि"[4] कहा है। वाल्मीकि ने रामायण मे क्रियाकल्प तथा काव्यविद् शब्दो का विवरण दिया है जो काव्यशास्त्री के परिचायक है। रामायण मे काव्यविद् शब्द सहृदय जन के लिये एव क्रियाकल्पविद्, काव्यशास्त्री या आलोचक के लिए प्रयुक्त हुआ है यथा– "क्रियाकल्प विदश्चैव तथा काव्यविदोजनान्"। इस प्रकार काव्य शास्त्र के लिये प्रयुक्त 'क्रियाकल्प' शब्द सबसे प्राचीन सिद्ध होता है। सस्कृत साहित्य की उपलब्ध पुस्तको के गहनाध्ययननान्तर यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि जब काव्य शास्त्र की अनेको विचार विधियो का निर्माण हुआ, तो अलकारशास्त्र मे उसकी वृहद् काया न समा पायी, फलत साहित्यशास्त्र एक शास्त्र विशेष न होकर अनेक शास्त्रो एव अनेक विचारधाराओ का एकीभूत रूप ही सिद्ध होता है। एव सस्कृत के अधिकाश विद्वान् उसे साहित्यशास्त्र या अलकार शास्त्र नाम न देकर 'काव्यशास्त्र' नाम देना अधिक वैज्ञानिक समझते है।[5]

वस्तुत काव्यशास्त्र काव्यनुसारी है, क्योकि काव्य ही लक्ष्य है एव काव्य शास्त्र लक्षण। महाकवि माघ ने काव्यशास्त्रीय अभिकथन करते हुए कहा "शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वय विद्वान् अपेक्षते।" स्पष्ट है कि सस्कृत काव्यशास्त्र काव्याङ्गो की विधि व्यवस्थाओ का विवेचन एव मूल्याकन करने वाला शास्त्र है, इसमे काव्य का स्वरूप, लक्षण, स्वभाव, गुण, दोष, प्रवृत्ति, प्रयोजन, उसकी विभिन्न समस्याओ एव विचारविभेदो का वैज्ञानिक निरूपण देखने को मिलता है।[6] राजशेखर ने काव्यशास्त्र के विषय मे विवरण देते हुए लिखा है कि भगवान शकर ने सर्वप्रथम ब्रह्मा को दीक्षित किया एव ब्रह्मा ने अपने मानस जात अठारह शिष्यो को उसका उपदेश दिया। इन मानस जात अठारह शिष्यो ने सम्पूर्ण काव्यशास्त्र को अठारह अधिकरणो मे विभक्त कर प्रत्येक अभिकरण पर एक-एक ग्रथ लिखा।[7] ये ग्रथ तो अप्राप्य है किन्तु इससे यह तथ्य तो स्पष्ट हो ही जाता है कि काव्यशास्त्र के आदि वक्ता भगवान शकर या ब्रह्मा थे। प्राय सभी काव्यमनीषी भरतमुनिकृत नाट्यशास्त्र को काव्यशास्त्र का प्राचीनतम ग्रथ मानते हैं। क्योकि इसमे काव्यशास्त्र के प्रमुख अङ्गो यथा रस, रीति, गुण, दोष, अलकार, तथा नाट्यशास्त्रीय तत्त्वो का विशद वर्णन मिलता है। इस

1 भारतीय साहित्य शास्त्र कोश, पृ० 427

2 यद्यपि रसालकाराद्यनेकविषयमिद शास्त्र छत्रिन्यायेन अलकारशास्त्र उच्यते। प्रतापरूद्रीय टीका।

3 पचमीसाहित्य विद्या इति यायावरीय - का०मी० पृ० 4

4 रामायण, उत्तरकाड – 94/7

5 सस्कृत साहित्य का इतिहास - गैरोला - पृ० 939

6 हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, डॉ० भागीरथ मिश्र, पृ० 4,5

7 तत्र कविरहस्य सहस्राक्ष समाम्नासीत्, औक्तिकमुक्तिगर्भ , रीतिनिर्णय सुवर्णनाभ , आनुप्रासिक प्रचेता, यमक यम , चित्र चित्रागद , शब्दश्लेष शेष , वास्तव पुलस्त्य , औपम्यमौपकायन , अतिशय पराशर, अर्थश्लेषमुत्तथ्य , उभयालकारिक कुबेर , वैनोदिक कामदेव रूपकनिरूपणीय भरत , रसाधिकारिक नदिकेश्वर , दोषाधिकरणधिषण , गुणैपादानिकमुपमन्यु , औषनिषदिक कचमार ।- का०मी० अध्याय - 1

प्रकार आज से लगभग दो हजार वर्षों की काव्यशास्त्रीय परम्परा मे नदिकेश्वर[1], भरत, मेधाविन, भट्टि, मामह, कालिदास, दण्डी, उद्भट, वामन, रूद्रट, भारवि, माघ, आनन्धवर्धन, राजशेखर, धनञ्जय, धनिक, अभिनवगुप्त, कुन्तक, महिमभट्ट, क्षेमेन्द्र, भोजराज, मम्मट, रुय्यक, मखक, वाग्भट्ट प्रथम, हेमचन्द्र, श्रीहर्ष, जयदेव, विश्वनाथ, भानुदत्त अप्पयदीक्षित, एव जगन्नाथ आदि प्रसिद्ध विद्वान् आते है। जिसमे श्रीहर्ष बारहवीं शताब्दी के प्रतिष्ठित काव्यमनीषी एव सुप्रसिद्ध दार्शनिक थे।

श्रीहर्ष के समय बरहवीं शताब्धी तक काव्यशास्त्र चिन्तन का परिपाक दृढमूल हो चुका था। नोवी शताब्दी के आचार्य आनन्दवर्धन द्वारा प्रवर्तित ध्वनि सिद्धात, काव्यशास्त्र मे अभिनवगुप्त तथा मम्मट जैसे आचार्यों द्वारा प्रतिष्ठापित हो चका था। इस ध्वनि सिद्धात ने एक प्रकार से काव्यशास्त्र के क्षेत्र मे युगान्तरकारी परिवर्तन कर दिया था, क्योकि उनके पूर्व गुणालकार का प्रस्थान ही मान्य था एव काव्य के समस्त सौन्दर्य का व्याख्यान गुण और अलकारो के माध्यम से ही होता था। आठवीं शताब्दी के आचार्य वामन द्वारा रीति सिद्धात प्रवर्तित हो चुका था, किन्तु वह रीति सिद्धान्त भी एक प्रकार से गुणो पर आधारित था। उपनागरिका आदि वृत्तियॉ भी अनुप्रास की जाति मे हुई थी। यह सब गुणालकार का प्रस्थान एक प्रकार से काव्य के वाच्यार्थ का ही मूल्याकन करने वाला प्रस्थान था किन्तु आचार्य आनन्दवर्धन ने, जो स्वय कवि भी थे और अभिनवगुप्त की दृष्टि मे सहृदयचक्रवर्ती भी, को ऐसी प्रतिति हुई कि अभी तक काव्यशास्त्र मे काव्य के अन्तश्चमत्कार का मूल्याकन नहीं हो पाया, यही काव्य का अन्तश्चमत्कारी पक्ष है प्रतीयमान अर्थ, जिसे हम ध्वन्यमान अर्थ भी कह सकते है। काव्य मे गुण, दोष, रीति, वृत्ति, अलकार और रस का समुचित स्थान ध्वनिकार ने ही सर्वप्रथम निर्धारित किया। तब से यह ध्वनि सिद्धान्त और ध्वनि सम्प्रदाय काव्यशास्त्रियो मे सर्वाधिक लोकप्रिय रहा। यद्यपि आचार्या कुन्नक ने ध्वनि सिद्धान्त के समानान्तर वक्रोक्ति सिद्धान्त का प्रवर्तन किया था तथापि उसके अनुयायी अधिक न हो रुके, जब कि आचार्य कुन्तक काव्य चमत्कार के अद्भुत दृष्टा थे एव उन्होने वक्रोक्ति जीवित जैसे ग्रन्थरत्न का प्रणयन कर काव्यशास्त्र को एक नया चिन्तन प्रदान किया था। कुन्तक के ही समकालीन आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य सिद्धान्त का प्रणयन कर कर काव्यशास्त्रविदो को निर्दोष काव्य रचना करने को प्रेरित किया इस प्रकार भरत से लेकर श्रीहर्ष के पूर्व तक संस्कृत काव्यशास्त्र मे रस रीति (गुण), अलकार ध्वनि, वक्रोक्ति तथा औचित्य इन छै काव्य शास्त्रीय सिद्धान्तो का पल्लवन एव परिवर्धन हो चुका था। श्रीहर्ष से परवर्ती काल मे कुछ विद्वानो ने चमत्कार सिद्धान्त (चौदहवीं शताब्दी के आचार्य विश्वेश्वर का) एव कुछ ने उत्कर्ष सिद्धान्त की भी परिकल्पना की, किन्तु इन सिद्धान्तो की प्रमुखता के विषय मे बहुत से काव्यशास्त्रीय मर्मज्ञ सहमत नहीं है, साथ ही नैषधमहाकाव्य से परवर्ती होने के कारण भी यहॉ विवेचन का विषय नहीं बनाये जा सकते। एक ओर मधुसूदन सरस्वती[2] जैसे काव्यशास्त्र के अर्वाचीन विद्वान् ने नौ काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तो का उल्लेख किया है, तो अलकार सर्वस्व के प्रचीन टीकाकार समुद्रबन्ध[3] ने पॉच सिद्धान्तो को ही मान्यता प्रदान की

---

1 राजशेखर ने भरत को रस के बदले रूपक का प्रामाणिक आचार्य एव नदिकेश्वर को रस सिद्धात के मूल व्याख्याता के रूप में निर्दिष्ट किया है।– स०सा का इतिहास, एस के डे खण्ड-।, पृ० 1,2,19

2 काव्य (साहित्य) शास्त्र के नौ तत्च है- रसप्रस्थान, अलकार प्रस्थान, रीति, (मार्ग या वृत्ति) प्रस्थान, ध्वनि प्रस्थान, ध्वनिध्वसक प्रस्थान, ध्वनि का अनुमान में अन्तर्भावक प्रस्थान, वक्रोक्ति प्रस्थान औचित्य प्रस्थान, एव नवीन (उत्कर्ष) प्रस्थान। –साहित्यशास्त्रीय तत्त्वों का आधुनिक समालोचनात्मक अध्ययन, पृ० 9 30

3 इह विशिष्टौ शब्दार्थौ काव्यम्। तयोश्च वैशिष्ट्य धर्ममुखेन, व्यापारमुखन, व्यग्यमुखेन, वेति त्रय पक्षा। आद्येप्यलकारतो गुणतो वेति द्वैविध्यम्। द्वितीयेपि भणिति वैचित्रयेण भोगकृतत्वेन वेति द्वैविध्यम्।। इति पचसु पक्षेषु आद्य उद्भटादिभिरगी कृत द्वितीयो वामनेन, तृतीयों, वक्रोक्ति जीवतिकारेण, चतुर्थों भट्टनायकेन, पचमो-आनन्दवर्धनेन। –अलकार सर्वस्व समुद्रबन्धकृत टीका

परन्तु भोजराज[1] जैसे अधिकाश काव्यमनीषी काव्यशास्त्र के उपर्युक्त छ सिद्धान्तो को ही प्रमुख मानते हे एव नैषधीयचरित, मे भी उपर्युक्त छहो सिद्धोन्तो का परिपाक देखने को मिलता है।

रस सिद्धान्तः-

रस सिद्धान्त काव्यशास्त्र का प्राचीनतम सिद्धान्त माना जाता है। नैषधकार इस सिद्धान्त से अत्यधिक प्रभावित थे। उन्होने स्वय यह अभिकथन किया कि उन्होने श्रृगार रस से मनोरम इस महाकाव्य की रचना की है, एव उनका यह महाकाव्य श्रृगार रूपी अमृत बरसाने वाला चन्द्रमा है।[2] उनके द्वारा की गयी ग्रन्थप्रशस्ति वचनो से भी उनकी रस सिद्धान्त मे असीम दक्षता का अनुमान सहजरूप मे लगाया जा सकता है। जहॉ वे कहते है कि मेरे इस महाकाव्य की रसलहरी मे वही सहृदय गोता लगाकर काव्यानन्द की प्राप्तिकर सकेगा जो गुरू परम्परा से इसका अध्ययन करेगा।[3] यह महाकाव्य अमृतरस की (अतिशय सरस होने से) वर्षा करने वाला है।[4] जिस प्रकार सुन्दर नवयौवनसम्पन्ना युवती युवको के मन को आकर्षित कर सकती है, शिशुओ के मन को नहीं, उसी प्रकार यह ग्रथ भी विद्वानो के हृदय मे ही अमृतरस टपकायेगा न कि अल्पज्ञ व्यक्तियो के।[5] हृदय मे काव्यशास्त्र के क्षेत्र मे अपनी विदग्धता की अहमन्यता की स्थापना करते हुए श्रीहर्ष ने कहा कि सूक्ति रचना मे (जड) कविगण अपने पद जोडा करे और उनमे ऊपरी अलकार,ध्वनि एव रसादि गुण लाने का भी प्रयत्न किया करे, किन्तु क्षीरसागर के समान वह श्रीहर्ष नाम का ही लोकोत्तर कवि है, जिसके वाणी प्रवाह मे परमानन्ददायी अमृतरस की प्राप्ति होती है।[6] यहॉ आनन्ददायी अमृतरस से उनका तात्पर्य काव्यरस से ही है, क्योकि काव्यरस को उनके पूर्ववर्ती आचार्य ब्रह्मानन्दसहोदर भी कह चुके है और पडितराज जगन्नाथ ने तो ''रसो वै स'' इस श्रुति वाक्य की पूर्ण सगति दिखाते हुए ''भग्नावर्णाचिदेव रस'' कहकर रस की विशुद्ध आनन्दरूपता को प्रतिपादित किया है। श्रीहर्ष ने भी कथारस (काव्यरस) को अमृतरस[7] से श्रेष्ठ एव अपनी वाणी को रस-क्षालना या काव्यरसपरिष्कारिका कहा है।[8]

रसविदो ने रसानुभूति को ऐन्द्रिय मानसिक आनन्द माना है, परन्तु वास्तव मे काव्यानद की रसानुभूति तो कल्पना जगत का आनन्द है, जो सभी प्रकार के लौकिक एवं आध्यात्मिक आनन्दो से भिन्न एक विलक्षण प्रकार का निरपेक्ष आनन्द है। वैयाकरणो ने रस (रस + अच्) शब्द की व्युत्पत्ति विविध रूपो मे की है यथा- रस्यते आस्वाद्यते इति रस , रस्यते अनेन इति रस , रसति रसयति वा रस , रसन रस

---

1 काव्य शास्त्रेतिहासौ च काव्यशास्त्र तथैव च।
काव्येतिहास शास्त्रेतिहासस्तदपि षड्विधम्।। स०क० 2/139
– रस सम्प्रदाय भरत, अलकार सम्प्रदाय - भामह, दण्डी, रीति सम्प्रदाय वामन, ध्वनि सम्प्रदाय आनन्दवर्धन, वक्रोक्ति सम्प्रदाय, कुन्तक, औचित्य सम्प्रदाय - क्षेमेन्द्र।

2 श्रृङ्गारामृतशीतगावयदेकादशस्तन्महा काव्ये चारुणि नैषधीयचरिते सर्गो निसर्गोज्जवल ।। नै० 11/130 उत्तरार्द्ध

3 ग्रन्थग्रन्थिरिह क्वचित्क्वचिदपि न्यासि प्रयत्नान्मया प्राज्ञ मन्यमना हठेन पठिती मास्खिल खेलतु ।
श्रद्धाराद्धगुरुश्लथीकृतदृढग्रन्थि सभासादय त्वेतत्काव्यरसोर्मिमज्जनसुखव्यासज्जनं सज्जन ।। नै० प्रशस्ति-3

4 यत्काव्य मधुवर्षि नै० प्रशस्ति - 4

5 यथायूनस्तद्वत्परमरमणीयाऽपि रमणी, कुमाराणामन्त करणहरण नैव कुरुते ।
मदुक्तिश्चेदन्तर्मदयपि सुधीभूय सुधिय , किमस्या नाम स्यादरसपुरुषानादरभरै ।। नै० प्रशस्ति - 1

6 दिशि दिशि गिरिग्रावाण स्वा वमन्तु सरस्वतीं, तुलयतु मिथस्तामापातस्फुरद्ध्वनिडम्बराम्।
स परमपर क्षीरोदन्वान् यदीपमुदीर्यते, मथितुरमृत'खेदच्छेदि प्रमोदनमोदनम्।। नै० प्रशस्ति - 2

7 रसै कथा यस्य सुधावधीरणी नल स भूजानिरभूद्गुणाद्भुत ।
सुवर्णदण्डैकसितातपत्रितज्वलत्प्रतापावलिकीर्तिमण्डल ।। नै० 1/2

8 पवित्रमत्रातनुते जगद्युगे स्मृता रसक्षालनयेव यत्कथा ।
कथ न सा मद्गिरमाविलामपि स्वसेविनीमेव पवित्रयिष्यति ।। नै० 1/3

आस्वाद। इस प्रकार रस मुख्यत आस्वादन के अर्थ को सूचित करता है, अभिप्राय यह है कि जिसके द्वारा भावो का आस्वादन हो, उसे रस कहते हैं। भरत एव अग्निपुराणकार रस को काव्य की आत्मा या काव्य शरीर का प्राण मानते है।[1] रसो की प्राचीनता इसी से स्पष्ट है कि इसका वर्णन वेदो, उपनिषदो तथा पुराण मनुस्मृति, रामायण, महाभारत, गीता मे विभिन्न अर्थो मे प्रयुक्त मिलता है।[2] संस्कृत काव्यविदो यथा भामह, रुद्रट, आनन्दवर्धन, दण्डी, कालिदास, भवभूति, भारवि, माघ, भर्तृहरि, शूद्रक, मम्मट, राजशेखर आदि मे भी रस का काव्य एव काव्यभिन्न अर्थो मे वर्णन कर इसके महत्त्व का प्रतिपादन किया है।[3] नैषधकार ने भी उसी काव्य परम्परा का अनुपालन करते हुए नैषधमहाकाव्य मे रसो की अन्विति कर अपने महाकाव्य को सरस बनाने के साथ-साथ काव्य शास्त्र मे रसो की व्यापक महनीयता का प्रतिपादन किया है। स्मरणीय है कि भरतमुनि ने अपने नाट्य शास्त्र मे रसो का विस्तार से विवेचन तो अवश्य किया है किन्तु वह रस को काव्य या नाट्य की आत्मा नहीं मानते तथापि ''इतिवृत्ततु काव्यस्य शरीर परिकीतिर्तम्'' कहकर उन्होने काव्यपुरुष की कल्पना की थी एव कथावस्तु को काव्य का शरीर भी माना था। इससे हम सहजतया अनुमान लगा सकते है कि उनको भी रस काव्य की आत्मा रूप मे अभिप्रेत रहा होगा। उनके परवर्ती अलकारिको ने गुणालकार को ही काव्य का सौन्दर्याधायक तत्त्व मानने के कारण रस को या तो गुण रूप

---

1 नहि रसादृते कश्चिदर्थ प्रवर्तते। इति ना०शा० षष्ठ अध्याय पृ० 92, एव ना०शा० 6/37
वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्। पृथकप्रयत्ननिर्वर्त्यं वाग्वक्त्रिम्णि रसाद् वपु ।। अग्निपुराण 337/33

2 रसेन समगस्महि - ऋ० 1/23/23 (जलसार का बोधक)
जम्भे रसस्य वावृधे - ऋ० 1/37/5 (गोदुग्धवाचक)
परिदाय रस दुहे - ऋ० 1/105/2
मध्वो रसो सुगमस्ति - ऋ० 5/43/4
सोम इन्द्रियो रस ऋ० 8/3/20
धन्जय पर्वते कृत्व्यो रसो विप्र कवि काव्यन - ऋ० 9/84/5
रस ह्येवाय लब्ध्वानन्दी भवति - तै०उ० 2/7
रसो वै स - तै०उ०
ब्रह्म तेजोमय शुक्र यस्यसर्वमिद रस - महा 12/240/9
अनेन नून वेदाना कृतमाहरण रसात् - वही 12/367/67
यष्टव्य पशुभिर्मुख्योरथो बीजै रसैरिति - वही 14/91/21
मय कूपरसेऽक्षिपत - भाग०पु० 7/10/59 6?
वाण्या च छन्दासि रसे जलेशम् - वही 8/20/27
जित सर्वं जिते रसे - वही 11/8/21
रसवर्जं रसोऽप्यस्य पर दृष्ट्वा निवर्तते, गीता 2/59
सोमो भूत्वा रसात्मक - वही 15/13
ज्योतिषश्च विकुर्वाणादापो रसगुणा स्मृता - मनु० 1/78

3 न्यस्ताक्षरा धातुरसेन यत्र - कु० 1/7
ददौ रसान् पङ्कजरेणुगन्धि - कु० 3/37
रसात्मकस्योडुपतेश्च रश्मय कु० 5/22
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रस रवि - रघु० 1/18
मनोबबन्धान्यरसान् विलङ्घ्य सा - वही 3/4
चिरातसुतस्पर्शरसज्ञता ययौ - वही 3/26
इष्टे वस्तुन्यपचितरसा प्रेमराशी भवन्ति, उ मेघ 55
प्रियवचनकृतोऽपि योषिता दयितजनानुनयो रसादृते - वि 2/21
आनन्दानि हृदयैकरसायनानि, मालवि 6/8
परायत्त प्रीते कथमिव रस वेत्तु पुरुष । मुद्रा 2/177
जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धा कवीश्वरा - नीतिश 24
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रस उ०रा० 1/39
मनश्च रसायनानि - उ०रा० 1/37
सासारिकेषु च सुखेषु वय रसज्ञा - उ०रा० 2/22
प्रसरति रसो निर्वृतिर्घन - उ०रा० 6/11

मे स्वीकार किया या अलकार रूप मे। काव्यशास्त्र मे रस को आत्मा के रूप मे स्वीकार करने वाले सर्वप्रथम आचार्य आनन्दवर्धन ही थे जैसा कि उनकी अधोलिखित कारिका से सुस्पष्ट है।

काव्यस्यात्मा स एवार्थ तथा चादिकवे पुरा ।
क्रौञ्चद्वन्द्व वियोगोत्थ शोक श्लोकत्वमागत ।।

इसके अनन्तर अभिनवगुप्त ने भी स्पष्ट रूप से कहा- "वस्तुत रस एव काव्यस्य आत्मा आचार्य भट्ट नायक[1] ने साधारणीकरण के सिद्धान्त को रसास्वाद के प्रसग मे उतारकर रस प्रतीति मे अलौकिकता प्रदान की। उन्होने अभिधा के अतिरिक्त काव्य मे दो व्यापार माने, भावना व्यापार और भोग-व्यापार' उनके मत मे भावना व्यापार से विभाव, अनुभाव सचारी भाव तथा स्थायीभाव का साधारणीकरण होता है और भोग व्यापर से प्रमाता को रस का भोग होता है, जो ब्रह्मानद तुल्य होता है। बाद मे आचार्य मम्मट[2] ने भी रस को ब्रह्मानद सहोदर माना था। भरममुनि ने बाद मे रस की व्याख्या एव उसकी प्रक्रिया[3] का विवरण देते हुए कहा कि 'विभावानुभवव्यभिचारिसयोगाद्रस निष्पत्ति।" अर्थात् विभावानुभाव और व्यभिचारी भावो के सयोग से रस की निष्पत्ति होती है। दूसरे शब्दो मे भावो की परिपक्वास्था को 'रस' कहते है। विभाव, अनुभाव, सचारीभाव का स्थायीभाव से किस प्रकार का सम्बन्ध है, तथा रस की प्रतीति किस्वरूपिणी है, इन दो समस्याओ को लेकर रससिद्धान्त के व्याख्याताओ मे मतभेद रहा है, परन्तु उसकी यहॉ विस्तार से चर्चा करना अप्रासगिक होगा। रामायण मे वाल्मीकि ने छै, रसो को मान्यता दी,[4] परन्तु भरत[5] दण्डी एव मम्मट ने आठ रसो को प्रधान माना। उद्भट ने शात रस सहित 9 रस माने,[6] रुद्रट ने प्रेयान रस को बढाकर 10 रस, जबकि उनके समकालीन रुद्रभट्ट ने अपने ग्रथ श्रृगारतिलक मे 9 रस ही माने, अभिनवगुप्त ने लौल्यरस को स्थान देकर 11 रस एव धनजय ने काव्य के लिए 9 एव नाट्य के लिए 8 रसो (शात को अभिनेव समझकर खडनकर) को उपयुक्त माना। भोज प्रेयान्, शात उदात्त और उद्धत आदि अनेक रसो के भेद मानते है।[7] विश्वनाथ ने वत्सल रस, रामचन्द्रगुणचन्द्र ने लौल्य एव स्नेह रसो के अतिरिक्त व्यसन, दु ख और सुख को भी रस का स्वरूप प्रदान किया। अग्निपुराण मे 9 एव हरिपाल के

---

1 तस्मात्काव्ये दोषाभावगुणालकारमयत्वेलक्षणेन नाट्ये चतुर्विधाभिनयरूपेण निविडनिजमोह सकटकारिणा विभावादिसाधारणीकरणात्मनाऽभिधातो द्वितीयाशेन भावकत्व व्यापारेण भाव्यमानो रसोऽनुभवस्मृत्यादि विलक्षणेन रजस्तमोऽनुवेधावैचित्र्यबलाद्द्रुतिविस्तारविकाससलक्षणेन सत्त्वोद्रेकप्रकाशानदमयनिजसविद्विश्रातिलक्षणेन परब्रह्मास्वादविधेन भोगेन पर भुज्यते ----------- । अभिनव भारती भाग,1, पृ० 277

2 सत्त्वोद्रेकादखडस्व प्रकाशानन्द चिन्मय । वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदर ।।
लोकोत्तरचमत्कारप्राण कैश्चित्प्रमातृभि । स्वाकारावदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रस ।। - सा०द० 3/2, 3

3 यथा हि नानाव्यञ्जनौषधिद्रव्यसयोगाद्रसनिष्पत्तिर्भवति, यथा हि गुडादिभिर्द्रव्यैर्व्यञ्जनैरोषधिभिश्च षाडवादयो रसा निर्वतन्ते, तथा नानाभावोपगता अपि स्थायिनो भावा रसत्वमाप्नुवन्तीति। अत्राह रस इति क पदार्थ ? उच्यते। आस्वाद्यत्वात्। कथमास्वाद्यते रस ? यथा हि नानाव्यञ्जनसस्कृतमन्न भुञ्जाना रसानास्वादयन्ति सुमनस पुरुषा हर्षादींश्चाधिगच्छन्ति तथा नानाभावाभिनयव्यञ्जितान् वागङ्सत्वोपेतान् स्थायिभावानास्वादयन्ति सुमनस प्रेक्षका, हर्षादींश्चाधिगच्छति तस्मान्नाट्यरसा। ना सा , षष्ठ अध्याय पृ० 93

4 रसै श्रृङ्गारकरूण हास्यवीरभयानकै । राद्रादिभिश्च सयुक्त काव्यमेतद् गायताम् ।। रामायण - 1/4/9

5 श्रृगारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानका। वीभत्साद्भुतसज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसा स्मृता ।। ना०शा० 6/16, एव का०प्र० 4/29

6 श्रृगारहास्यकरूणरौद्रवीरभयानका । वीभत्साद्भुतशाताश्च नव नाट्ये रसा स्मृता।। काव्याल, सारसग्रह 4/4

7 Bhoja is a mnist and pluralist combined regarding this question of the number of Rasas Fundamentally, Rasa is only one to him and that is, Ahankara or Srngara or Abhiman The Number of Rasas - V Raghavan, p 119
- वय तु श्रृगरमेव रसनाद्रसमामनाम - श्रृगारप्रकाश - 1/6
- रसोऽभिमानोऽहकार श्रृगार इति गीयते ।
योऽर्थस्तस्यान्वयात् काव्य कमनीयत्वमश्नुते ।। स क 5/1
- न च अष्टावेवेति नियम यत शात प्रेयास उद्धत ऊर्जस्विन च केचिद्रसमाचक्षते।
तन्मूलाश्च किल नायकाना धीरशात-धीरललितधीरोद्धतधीरोदान्तव्यपदेश ।। The Number of Rasas - p 122

सगीत सुधाकर मे तेरह रस माने गये है।[1] उनके ब्राह्य, सभोग और विप्रलम्भ ये तीन नवीन रस है अभिनवगुप्त ने जहॉ शात रस को सर्वश्रेष्ठ, मोक्ष रूप एव चरमपुरुषार्थ का साधक माना वहीं दशरूपककार ने नाट्य मे शान्त रस का निषेध करते हुए कहा कि नाट्य अभिनेय काव्य होता है, और शान्तरस, जिसमे राग-द्वेष या सुख दु ख की कुछ अनुभूति नहीं होती, अभिनेय नहीं हो सकता[2] यदि सभी रसो की ध्यान से मीमासा की जाय, तो ये सभी भरत कृत आठ रसो मे ही परिगणित हो जाते है[3] वे आठ रस है, श्रृड्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स एव अद्भुत जिनके स्थायिभाव क्रमश रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा तथा विस्मय कहलाते है।[4]

नैषधकार को श्रृगार रस[5] सर्वांगरूपेण अभीष्ट है। श्रृगार रस के दोनो भेद सभोग श्रृगार एव विप्रलम्भ श्रृगार उन्हे अभिप्रेत है। सभोग श्रृगार वहॉ होता है जहॉ नायक नायिका आदि के सुखद व्यापारो यथा- परस्पर दर्शन, आलिगन, अधरपान, चुम्बन या प्रेमालाप आदि का वर्णन होता है[6] एव विप्रलम्भ श्रृगार वहॉ होता है जहॉनायक नायिका मे वियोग या विरह की अवस्था का वर्णन मिलता है।[7] नैषध मे दोनो भेदो का विवरण नलदमयती प्रेमालाप, नल, हस एव दमयन्ती वार्ता मे उपलब्ध मिलता है। श्रृगार रस की शास्त्रीय मीमासा करते हुए बारात वर्णन प्रसगं मे नैषधकार लिखते है मधुर, आम्ल, लवण आदि षड्रस व्यञ्जन बारातियो को उतना सतोष नहीं दे सका जितना कि युवतियो की भावभगिमाओ से समुत्पन्न बढता हुआ श्रृगार नामक सातवे (भोज्य पदार्थ) रस न उन्हे सन्तुष्ट किया। यथा-

न षड्विध षिड्गजनस्य भोजने तथा यथा यौवतिविभ्रमोद्भव।
अपार श्रृगारमय समुन्मिन्भृश रसस्तोषमधत्त सप्तम ॥[8]

ध्यातव्य है कि नैषधकार का यह विवरण भरतमुनिकृत नाट्यशास्त्र का अनुगामी है।[9] नैषधकार ने चक्रवाक युगल पक्षियो को विप्रलम्भ श्रृगार का उचित उदाहरण मानते हुए[10] कहते है कि नल एव दमयन्ती दोनो एक दूसरे के वियोग मे अत्यधिक व्यथित थे परन्तु इससे उन्मे और अधिक प्रीतिसौख्यता की अभिवृद्धि हो रही थी ठीक वैसे ही जैसे अधिक तेल डालने पर दीपशिखा पहिले कुछ मद पडती है, परन्तु पुन द्विगुणित प्रकाशमान हो उठती है। यथा-

परस्परस्पर्शरसोर्मिसेकात्तयो क्षण चेतसि विप्रलम्भ ।
स्नेहादिदानादिव दीपिकार्चिर्निमिष्य किचिदद्विगुण दिदीपे ॥[11]

---

1 श्रृगारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानका ॥ वीभत्साद्भुतशान्ताख्या स्वभावाच्चतुरो रसा ।
लक्ष्मीरिव विना त्यागान्न वाणी भातिनीरसा ॥ अग्नि० पु० 339/8,9
श्रृगारोहास्यनामा च वीभत्स करुणस्तथा। वीरोभयानकाह्वानो रौद्राख्योऽद्भुतसञ्ज्ञक ॥
शातो ब्रह्माभिध पश्चात् वात्सल्याख्यमत परम्। सभोगो विप्रलम्भ स्याद्रसास्त्वेते त्रयोदश ॥-सगीत सुधाकर, अध्याय 4

2 शममपि केचित्प्राहु पुष्टिर्नाट्येषु नैतस्य। दशरूपक 4/35

3 It is not necessary to have a separate Rasa as Maya which is only the common name of All the eight mundane Rasas of Pravriti - The Number of Rasas - V Raghavan - p 139

4 रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भय तथा। जुगुप्साविस्मश्चेति स्थायिभीवा प्रकीर्तिता ॥ ना०शा० 6/18

5 अभिमानाद्रति सा च परिपोषमुपेयुषी । व्यभिचार्य्यादिसामान्यात् श्रृगार इति गीयते ॥ अग्नि 339/4

6 तत्र श्रृगारस्य द्वौ भेदौ-सम्भोगो विप्रलम्भश्च ।
तत्राद्य परस्परावलोकनालिड्गनाऽधरपानपरिचुम्बनाद्यनन्तत्वादपरिच्छेद एव गम्यते ॥ का०प्र० चतुर्थ उल्लास, पृ० 84

7 अपरस्तु अभिलाष विरहेर्ष्याप्रवासशापहेतुकपचविध । का०प्र० पृ० 85

8 नै० 16/109

9 ना०शा० षष्ठ अध्याय, पृ० 93

10 अभिलपतिपति प्रति रम भैमी सदय। विलोक्य कोकयोरवस्थाम् ।
मय हृदयमिमौ च भिदन्तीं हा क इव विलोक्य नरोन रोदिताम् ॥ नै० 21/145 एव 146, 147, 148, 161

11 नै० 6/55

ध्वनित होता है कि इष्ट विनाश या स्वदु ख 'स्थिति मे करुण क्रन्दन मे ही करुण रस की विद्यमानता दृष्टिगोचर होती है।[1] रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत रस के किञ्चित् विवरण राजाओ के वर्णन प्रसग एव कलिप्रसग मे दृष्टव्य होते है, परन्तु नैषधकार को ये शास्त्रीय रूप से अभिप्रेत नहीं थे। हॉ, साहित्यिक अध्ययन की परम्परा मे उन्होने इन रसो के विवरणो का उल्लेख अवश्य किया है नैषधकर की निम्न उक्तियॉ भी रस सिद्धान्त मे उनकी अप्रतिम गति की सूचक है-

एतत्काव्यरसोर्मिमज्जनसुखव्यासज्जन सज्जन - नै प्रशस्ति - 3
यत्काव्य मधुवर्षि --- ने प्रशस्ति - 4
श्रृगारभग्यामहाकाव्ये चारूणि नैषधीयचरिते - नै 1/145
श्रृगारामृतशीतगावयमगादेकादशतन्महाकाव्ये ---- नै 11/130
अण्याक्षुण्णरसप्रमेयभणितौ --- नै 20/162
मदुक्तिश्चेदन्तर्मदयति सुधीभूय सुधिय ।
किमस्यानाम स्यादरसपुरूरुगानादरभरै ।। नै 22/150 उत्तरार्द्ध

रीति एव गुण सिद्धान्त – नैषधकार ने काव्यशास्त्र के इस सिद्धान्त के सन्दर्भ भी नैषध महाकाव्य मे दिये है। वह रीतियो मे वैदर्भी रीति को ही प्रमुख एव उसके उदार गुणो को प्रधान मानते हुए हसमुखेन अभिहित करते है कि हे वैदर्भी (दमयन्ती)! तुम धन्य हो, क्योकि तुमने औदार्यादि गुणो से राजा नल को आकृष्ट कर लिया है। चन्द्रिका (चादनी) की इससे बढकर क्या प्रशसा होगी कि वह अतिशय गम्भीर समुद्र को भी चचल (उत्तरल) कर देती है। दूसरे शब्दो मे श्लेषबल से यह कहा जा सकता है कि वैदर्भी रीति ही है जिसने नैषध जैसे- गम्भीर काव्य को भी लोगो को अध्ययन के लिए रामाकृष्ट कर लिया है। यथा -

धन्यासि वैदर्भि! गुणैरुदारैर्यया समाकृष्यत् नैषधोऽपि ।
इत स्तुति का खलु चन्द्रिकाया यदब्धिमप्युत्तरलीकरोति ।।[2]

नारायण कहते है कि धन्यासि वैदर्भि – समाकृष्यत् नैषधोऽपि इत्यनेनास्मिन्ग्रन्थे ग्रन्थकृता वैदर्भीरीतिरादृतेति ध्वन्यते । मल्लिनाथ का कथन हैं धन्येति! हे वैदर्भि ! भैमि ! वैदर्भीरीतिरपि गम्यते । धन लब्धा धन्या असि कृतार्थासीत्यर्थ। धनगणलब्धेति यत्प्रत्यय। कुत? यया त्वया उदारैरुत्कृष्टैर्गुणैर्लावण्यादिभिरन्यत्रश्लषै प्रसादादिभि पाशैश्चेति गम्यते, नैषधो नलोऽपि तादृक् धीरोऽपीतिभाव। समाकृष्यत् सम्यगाकृष्टो वशीकृत इति भाव। एतेन वैदर्भीत्यादिविशेषणाद् गुणैभावुकमिवेत्युपमालकारो युज्यते --।[3] स्पष्ट है कि नैषधकार को वैदर्भी रीति ही अभीष्ट है। ध्यातव्य है कि मनीषीगण, जिस शैली विधा का मार्ग का आश्रय लेकर काव्य सृजन करते है वही प्रणाली ही सस्कृत वाङ्मय मे 'रीति' कही जाती है। रीति की निष्पत्ति रीड् गतौ या रीड् स्रवणो धातु से क्तिन् प्रत्यय के सयोग से होती है। जिसकी व्युत्पत्ति "रियन्ते परम्परया गच्छन्ति अनया इति रीति·" की जा सकती है। ऋग्वेदादि ग्रथो[4] मे इसका विवरण मिलने से इसकी प्राचीनता भी सिद्ध होती है। आचार्य वामन रीति

---

1 इष्टनाशादिभिच्चेतोवैक्लव्य शोक उच्यते। का प्र चतुर्थ उल्लास, व्याख्याकार सत्यव्रत सिह पृ० 91
2 नै० 3/116
3 नै० 3/116 नारायण एव मल्लिनाथ
4 महीविरीति शवसासरत पृ०थक् - ऋ० 1/28/14
वातेवाजुर्यानद्येवरीति - ऋ० 2/39/5
रीति गिरामृतवृष्टिकरीं तदीयाम्-भामिनीविलास 3/19
पुत्रादपि धनभाजा भीति सर्वत्रैषा विहिता रीति - Mahamudgara-2
तामस्य रीति परशोरिव - ऋ० 5/48/5

सिद्धान्त के प्रवर्तक माने जाते है। वामन रीति को काव्य की आत्म मानते हुए रीति की परिभाषा गुण विशिष्ट पद रचना रूप मे,[1] आनन्दवर्धन ने पदसघटना के रूप मे,[2] राजशेखर ने वचन विन्यास क्रम के रूप मे,[3] विश्वनाथ ने रीति को पदसघटना बताकर काव्य मे उसका स्थान अगस्थान विशेषवत् के रूप मे रखकर [4] एव अग्निपुराणकार ने वाग्विद्या के परिज्ञान के अर्थ के रूप मे दी है।[5] भामह ने रीति के दो प्रकार, वैदर्भी एव गौडी, दण्डी ने रीति के लिए मार्ग शब्द का प्रयोग करते हुए वैदर्भ मार्ग एव गौडमार्ग,[6] वामन ने रीति के तीन भेद, वैदर्भी, गौडी, एव पाचाली, रूद्रट ने 4, वैदर्भी, गौडी, पाचाली एव लाटी, राजशेखर ने वैदर्भी, गौडी, पाचाली एव मागधी आनन्दवर्धन ने 3, एव भोज ने 6 रीतियो वैदर्भी, पाचाली, लाटी, गोडी, अवन्तिका एव मागधी का उल्लेख किया।[7] भरत ने रीति के लिए प्रवृत्ति शब्द का प्रयोग करते हुए चार प्रवृत्तियो, आवती, दाक्षिणात्य, पाचाली तथा उर्धमागधी को स्थान दिया[8] एव वाण ने भौगोलिक विभाजनानुसार 4 रीतियो उदीच्या, प्रतीच्य, दाक्षिणात्य एव गौडी को मान्यता दी[9] जबकि कुन्तक ने कविस्वभाव के आधार पर रीति को मार्ग शब्द से अभिहित करते हुए तीन भेद किये, सुकुमार, विचित्र एव मध्यम।[10] हालाकि शारदातनय ने देशभेद प्रतिवचन, प्रतिपुरुष तथा उनकी अवान्तर भेदो सहित रीति के 105 भेदो का वर्णन किया[11] लेकिन आचार्य वामन कृत रीतियो के तीन भेद ही उचित एव तर्क सगत कहे जा सकते है। क्योकि आचार्य मम्मट (जो वृत्ति को ही रीति मानते है) ध्वनिवादी आचार्य, एव आचार्य कुन्तक ने भी तीन रीतियो को ही मान्यता प्रदान की है। परन्तु यह तथ्य भी स्मरणीय है कि श्रीहर्ष के परवर्ती जगन्नाथ आदि विद्वान चार रीतियो को ही प्रधान मानते है। यथा –

> सा पुन स्याच्चतुर्विधा। वैदर्भी चाथ गौडी च पाचाली लाटिका मता-जगन्नाथ, रसग-पृ 117
> रीतिरात्मा काव्यस्य कथ्यते सा चतुर्विधा - अमृतानद योगी,अलकारसारसग्रह, 5/1

वैदर्भी रीति को विशेषताओ की चर्चा सोलहवे सर्ग मे नैषधकार ने की है जहॉ देवताओ के साथ स्वर्गप्रस्थान करती हुई सरस्वती नल से कहती है कि हे राजसिरोमणि (राजाओ मे तिलक रूप) मै (सरस्वती) रूप लावण्यदि गुणो की आधार (जगत मे) नारी अर्थात उत्तम स्त्री से विख्यात, मन मे (नलविषयक) अनुराग रस से पूर्ण विदर्भकुमारी (दमयन्ती) को तुम्हारे (नल के) कण्ठमध्य आलिगनादि विलासक्रीडा के निमित्त तुम्हारे ही वश और श्लेषमाधुर्यादि गुणो की आधारभूता, पाचाली आदि रीतियो मे

---

1 रीतिरात्मा काव्यस्य - का०सू० वृ0 1/1/1
विशिष्टापदरचनारीति। विशेषेगुणात्मा।- का०सू० वृ0 1/2/7,8

2 असमासा समासेन मध्यमेन च भूषिता, तथा दीर्घसमासेति त्रिधा सङ्घटनोदिता।
गुणानाश्रित्य तिष्ठन्ती माधुर्यादीन् व्यसनक्ति सा। रसान्–तन्नियमो हेतुरौचित्य वक्तृवाच्ययो ।। ध्वन्या0 3/5,6
अस्फुट स्फुरित काव्यतत्त्वतेतद् यथोदितम्। अशक्नुवद्भिव्याकर्तुं रीतय सप्रवर्तिता ।। ध्वन्या0 3/47

3 का०मी० - अध्याय -3

4 पदसघटनारीतिरगसस्थानविशेषवत् - सा०द० 9/1

5 वाग्विद्या सप्रतिज्ञाने रीति सापिचतुर्विधा - अग्नि० पु० 340/1
अस्त्यनेको गिरा मार्ग सूक्ष्मभेद परस्परम्। तत्र वैदर्भगौडीयो वर्ण्येते प्रस्फुटान्तरौ। काव्यादर्श0 1/40

6 इतिमार्गद्वय भिन्न तत्स्वरूपनिरूपणात्। तद्भेदास्तु न शक्यन्ते वक्तु प्रति कवि स्थिता ।। वही 1/101

7 वैदर्भादिकृत पन्था काव्यमार्ग इति स्मृत।
रीगताविति धातो सा व्युत्पत्तया रीति रूच्यते ।। स०क० 2/51, एव 52 — 58,

8 चतुर्विधा प्रवृत्तिश्च प्रोक्ता नाट्यप्रयोक्तृभि। आवन्ती दाक्षिणात्या च पाञ्चाली चौड्रमागधी ।। ना०शा० 13/32
प्रवृत्तिरिति कस्मात्? उच्यते पृथिव्या नानादेशवेषभाषाचारवार्ता ख्यापयतीति प्रवृत्ति ।।

9 श्लेषप्रायमुदीच्येषु प्रतीच्येष्वर्थमात्रकम्। उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु गौडेष्वक्षरडम्बर।
नवोऽर्थे, जातिरग्राम्या श्लोषोऽक्लिष्ट स्फुटोरस विकटाक्षरबधश्च कृत्स्नमेकत्र दुर्लभम् ।। हर्षचरित-प्रस्तावना 1/7,8

10 सम्प्रति तत्र ये मार्गा कविप्रस्थान हेतव। सुकुमारो विचित्रश्च मध्यमश्चोभयात्मक ।। व०जी० 1/4

11 प्रतिवचन प्रतिपुरुष तदवान्तरजातित प्रतिप्रीति।
आनत्यात् सक्षिप्य प्रोक्ता कविभि चतुर्विधेत्येषा तासु पचोत्तरशत विधा प्रोक्ता मनीषिभि. ।। भावप्रकाशन

प्रसिद्ध, रचनामध्य मे नवश्रृगारादि रसो से परिपूर्ण वैदर्भीरीति को तुम्हारे चरित (नैषधीयचरित) के कवि के कण्ठमध्य श्लेषालकार और वक्रोक्ति विलास समग्र ज्ञान से पूर्ण प्रतिदिन (सदैव) अधिकाधिक सरचित करती रहूँगी। यथा-

गुणानामास्थानीं नृपतिलकनारीतिविदिता रसस्फीतामन्तस्तव च तव वृत्ते च कवितु।
भवित्री वैदर्भीमधिकमधिकण्ठ रचयितु परीरम्भक्रीडाचरणशरणामन्वहमहम् ॥[1]

अवधेय है कि सरस्वती का यह आशीर्वचन नल के प्रति दमयन्ती की अनुकूलता से सम्बद्ध तो है ही, नलचरित काव्य नैषधीयचरित के कवि श्रीहर्ष के लिए भी है। जहाँ नल को आशीर्वाद है कि ससार की श्रेष्ठ नारी रूप, सौन्दर्यादि गुणो से ओतप्रोत, पतिव्रता, अनुरागमयी (वैदर्भी) उसके साथ निरन्तर रसमयी प्रणयक्रीडाओ मे अनुरक्त रहे, वहीं कवि श्रीहर्ष को भी आशीवर्चन है कि उसकी काव्य रचना सदा श्लेषमाधुर्यादि गुणो से पूर्ण रहे एव नवरसमयी वैदर्भीरीति से समन्वित हो। इस विवरण से यह सकेत मिलता है कि कवि को वैदर्भी रीतिपरक काव्य ही अभीप्सित है। नारायण ने भी प्रथम चरण के नारीतिविदिताम् का पदच्छेद न रीति विदिताम् करके वैदर्भी रीति का सकेत किया है।[2] एव मल्लिनाथ महोदय का भी यही मन्तव्य है यथा- नृपतिलक! हे नृपश्रेष्ठ! गुणाना रूप लावण्यादीना, श्लेषप्रसादादीनाञ्च, आस्थानीम्, नारी उत्तमस्त्री, इति विदिता, विश्रुताम्, अन्यत्र रीतिषु गौडीपाञ्चाल्यादिषु विदिता प्रसिद्धा। साऽपि न भवतीति ता नारीतिविदिता रीतिषु विदितामित्यर्थ । अन्त मनसि श्लोकमध्येच रसस्फीता रसेन नलविषयकानुरागेण, स्फीता परिपूर्णाम, अन्यत्र-श्रृगारादिरसाढ्या, श्रृगारादौ विषे वीर्ये गुणे रागे द्रवे रस इत्यमर। वैदर्भी दमयन्ती, वैदर्भरीतिञ्च, यथासङ्ख्य तव च नलस्य च, तव वृत्ते च चरित्र विषये च, कवितु वर्णयितु श्रीहर्षादिकवेरित्यर्थ।[3]

"श्रृगाररस के साथ-साथ वैदर्भी रीति करुणरसोप्रेत भी होती है आचार्य रुद्रट का मत[4] नैषधकार को भी अभीष्ट है, जहाँ श्लेषबल से उनके निम्न विवरण मे इसका सकेत मिलता है। यथा -

भूभृद्भिर्लम्भिताऽसौ करुणरसनदीमूर्तिमद्देवताञ्च
तातेनाभ्यर्थ्य योग्या· सपदि निजसखीर्दापयामास तेभ्य ।
वैदर्भ्यास्तेऽप्यलाभत्कृतगमनमन प्राणवाञ्छा विजध्नु
सख्या सशिक्ष्य विद्या· सततधृत्वयस्यानुकाराभिराभि ॥[5]

---

1. नै० 14/91

2 हे नृपतिलक राजश्रेष्ठ नल! अह वैदर्भी भैमीम्। अथ च वैदर्भीसज्ञा रीतिमल्पपदसमासमसमा स या रचनाविशेष क्रमेण तव च नलस्य तव च वृत्ते त्वतसबन्धिनि चरित्रे विषये कवितु काव्यकरणोद्युक्तस्य श्रीहर्षादेश्चाधिकण्ठ कण्टेडन्वह सदा पररिम्भस्यालिङ्नस्य चुम्बनादि विलासस्य यदाचरण करण तदेव शरण जीवनोपायो यस्या एवभताम्। किभूताम्? गणाना सौन्दर्ययातिव्रत्यादिनाम्। अथ च श्लेषप्रसादादीनाम्। आस्थानी सभारूपापवस्थिति भूताम्। तथा नारी इति स्त्री विदिता नारी चेत तर्हि भैम्येव नान्येति प्रसिद्धाम्। अथ च रीतिषु पाञ्चालयादिरीतिषु मध्येऽतिप्रसिद्धामिति यावत्। तथा-तवान्त हृदय रसेन स्वीय सौभाग्येन नलविषयानुरागेण स्वस्मिन्नलानुरागेण वा स्फीतामतिपुष्टाम्। अथ च - अन्त श्लोकमध्ये रसै श्रृङ्रादिभि परिपुष्टाम्। एवभूता भैर्यी त्वत्कण्ठालिङ्नपरा त्वच्चरण शरणा त्वदेकवश्या प्रत्यहमह करिष्यामि। वैदर्भीमेव रमणीया रोतिमवलम्ब्य त्वच्चरितवर्णयितुश्च कण्ठे एवभूता वैदर्भी रीतिमधिक च रचयिष्यामि। वैदर्भीमेव रमणीया रीतिमवलम्ब्य त्वच्चरिवर्णको यथाभवति तथाऽह करिष्यामिती भाव। एतदपि वरदानम्। नर् इति सबुद्ध्यन्त पृ०थक्कृत्य राजश्रेष्ठन पुरुष इति सबोध्य पातिव्रत्यादिरीत्या विदिता पाञ्चाल्यादिरीतिषु च विदितामिति वा। नै० 14/91 नारायणी व्याख्या

3 नै० 14/91 मल्लिनाथी व्याख्या

4 वैदर्भीपाञ्चाल्यासौ प्रेयसि करूणे भयानकाद्भुतयो। लाटीयागौडीये रौद्रे कुर्यान् यथौचित्यम् ॥ काव्याल 15/20

5 नै० 14/97

स्मरणीय है कि श्रीहर्ष ने जहॉ वैदर्भी रीति के उदार गुणो की प्रशसा की वहीं आचार्य भामह ने इसमे तीन गुण माने ओज, प्रसाद एव माधुर्व, जबकि आचार्य दण्डी ने इसमे 10 गुणो का सगुम्फन किया श्लेष, प्रसाद, समता, माधुर्य, सुकुमारता, अर्थव्यक्ति, उदारता, ओज, काति एव समाधि[1] परन्तु आचार्य वामन ने कहा कि वैदर्भी रीति मे समग्र गुण होते है[2] अर्थात इसमे समग्र गुणे की स्फुट रूप मे विद्यमानता रहती है। इस रीति मे सानुनासिक वर्ण कोमल वर्ण तथा असमस्त पद प्रयुक्त होते है एव इसका व्यवहार श्रृगार, करुण एव शान्त रसो मे होता है। यह रीति दोषो की मात्रा से रहित, समग्र गुणो से युक्त तथा वीणा के स्वरो के समान मधुर होती है। यथा –

अस्पृष्टा दोषमात्राभि समग्रगुण गुम्फिता । विपञ्चीस्वर सौभाग्या वैदर्भीरीतिरिष्यते ।।
सति वक्तरि सत्यर्थे सति शब्दानुशासने । अस्ति तत्र विना येन परिस्रवति वाङ्मधु ।।[3]

आचार्य दण्डी वैदर्भी रीति को कुलाङ्गना की सज्ञा से विभूषित करते हुए कहते है कि –

गौडीया गणिका तुल्या वैदर्भी च कुलाङ्गना । अनेन पौरस्त्यदाक्षिणात्यरूपेण मार्गा ।।

भोज इस रीति मे श्लेषादि गुणो का सगुम्फन मानते है यथा –

तत्रसमासा नि शेषश्लेषादिगुणगुम्फिता । विपञ्चीस्वर सौभाग्या वैदर्भी रीति रिष्यते ।।[4]

आचार्य विश्वनाथ ने इस रीति मे तीन तत्त्वो को मुख्य माना माधुर्य गुण व्यजक वर्ण ललित पद अल्पसमास का अभाव। यथा-

माधुर्यव्यजकैर्वणै रचनाललितात्मिका । अल्पवृत्तिरवृत्तिर्वा वैदर्भी रीति रिष्यते ।।[5]

काव्यप्रकाशकार मम्मट ने वैदर्भी रीति को प्रमुख रीति मानते हुए[6] निम्न उदाहरण दिया जो श्रृगार रसोपेत है –

अनङ्गरङ्गप्रतिम तदङ्ग भङ्गीभिरङ्गीकृतमानताङ्ग्या ।
कुर्वन्ति यूना सहसा यथैता स्वान्तानि शान्तापरचिन्तनानि ।।[7]

नैषधकार ने गौडी रीति के विषय मे तो प्रत्यक्षत कुछ नहीं कहा लेकिन नैषध मे वैदर्भी रीति के साथ-साथ गौडीरीति को भी नैषधकार ने अपनाया है, क्योकि इस महाकाव्य के तेरहवे सर्ग मे पचनली प्रसग एवं सन्ध्या वर्णन, इक्कीसवे एव बाइसवे सर्ग मे इस रीति के दर्शन मिलते हैं। इसकी पुष्टि नैषध के प्राचीन टीकाकार गदाधर की श्रीहर्ष विषयक निम्न प्रशस्ति से भी होती है यथा-

यद्वक्त्रस्थसरस्वती श्रुतिवच शास्त्रेऽभवत्खण्डन
काव्येनैषधमुष्णरश्मिशशिनी जागीयते यद्युगम् ।
स्फूर्जत्स्फीति विपक्षपक्षदलनस्पद्धिष्णु विद्वद्भटै-
र्विद्यासयति हर्षमिश्र इडितो गौडेरगौडैर्गुणै ।।[8]

---

1 श्लेष प्रसाद समतामाधुर्य सुकुमारता । अर्थव्यक्तिरुदारत्वमोज कान्तिसमाधय ।।
इति वैदर्भ्यमार्गस्य प्राणा दश गुणा स्मृता । एषा विपर्ययो प्रायो दृश्यते गौडवर्त्मनि ।। काव्यादर्श 1/41,42

2 विदर्भादिषु दृष्टत्वात् तत्समाख्या। समग्रगुणा वैदर्भी - का०सू० वृत्ति 1/2/10

3 का०सू० वृत्ति - 1/2/11

4 स०क० 2/53

5 सा०द० 9/2

6 केषाचिदेता वैदर्भी प्रमुखो रीतियो मता - का०प्र० 9/87

7 का०प्र० - अष्टम उल्लास, उदाहरण - 347

8 O I MS - No 1353, st 2 एव जानी Appendix 10 पृ० 45

आचार्य वामन के मत मे गौडी रीति मे ओज एव काति गुणो का समावेश रहता है।[1] जिसके कारण इसमे ओजस्विता विद्यमान रहती है। आचार्य रूद्रट का भी यही मत है एव उन्होने इसे रौद्र रस मे उपयोगी माना।[2] भोज भी इस रीति मे काति एव ओज गुण मानते है यथा -

समस्तात्युद्भटपदाभोज कान्तिगुणान्वितम् ।
गौडीयेति विजानन्ति रीति रीति विचक्षणा ।।[3]

आचार्य दण्डी तो गौडी रीति को वैदर्भी रीति के दशो गुणो से रहित बताते है, परन्तु आचार्य भामह का कथन है कि वैदर्भी रीति यदि अपनी सीमा का अतिक्रमण करे तो वह भी अवाछनीय हो सकती है एव गौडी अपनी सीमा मे रहकर (काव्यगुणो से युक्त होने पर) सर्वथा प्रशसनीय बन जाती है यथा -

अपुष्टार्थमवक्रोक्तिप्रसन्नमृजुकोमलम् , । भिन्न ज्ञेयमिवेद तु केवल श्रुतिपेशलम् ।।
अलकारवदग्राम्यम् अर्थ्यं न्याम्यमनाकुलम् । गौडीयमपि साधीय , वैदर्भमपि नान्यथा ।।[4]

राजशेखर के अनुसार गौडी रीति मे अनुप्रासयुक्त दीर्घसमास, तथा योग वृत्तिपरम्परागर्भ वचन का समावेश होता है। ध्वनिवादी आचार्यो तथा वामन के मत मे गौडी मे ओजोगुण की प्रधानता रहती है। पाञ्चाली रीति मे ओजोगुण एव काति गुणो का अभाव परन्तु माधुर्य सौकुमार्य गुणो एव लघुसमासो की अनिवार्यता रहती है, अर्थात इसमे सामान्य गुणो का सतुलन होता है जबकि लाटीयारीति मध्यम समासो वाली एव रौद्र रस मे प्रयुक्त होती है।

नैषधकार गुण सिद्धान्त से भी प्रभावित थे। सरस्वती के नल को दिये गये आशीर्वचन विवरण से इसकी पुष्टि भी होती है, जहॉ सरस्वती कहती है कि मै प्रसाद, माधुर्यादि गुणो से युक्त रीति रूप मे विख्यात, शृगारादि रसो से सिक्त तथा श्लेषादि अलकार चमत्कारो का निधान वैदर्भी रीति को आपके चरितकाव्य रचनेवाले (श्रीहर्षादि) कवियो के कण्ठ मेसदा निवास कराऊँगी।[5] आचार्य वामन ने भी कहा था कि रीति पदो की विशिष्टरचना है, एव रचना मे यह विशेषता गुणो के कारण उत्पन्न होती है। स्पष्ट है कि रीति गुणो के ऊपर अवलम्बित रहती है। इसीलिए रीति सिद्धान्त को गुण सिद्धान्त के नाम से भी जाना जाता है। आचार्य दण्डी ने गुणो के द्वारा ही वैदर्भी एव गौडी रीति मे विभेद का स्पष्ट प्रतिपादन किया। उन्होने भरत[6] सम्मत 10 गुणो को वैदर्भी रीति का प्राण माना एव गौडी को उनसे रहित । आचार्य वामन ने गुण और अलकारो के भेद को पहली बार स्पष्ट रूप से प्रतिपादित करते हुए गुणो को शब्दगत (10 शब्दगुण) तथा अर्थगत (10 अर्थगुण) मानकर उनकी सख्या द्विगुणित (20) कर दी है। वामन ने भी 10 गुणो को वैदर्भी रीति के लिए आवश्यक माना, जबकि गौडी के लिये ओज और कान्ति की एव पाञ्चाली के लिए माधुर्य तथा प्रसाद गुण को आवश्यक माना। उनका कथन है कि काव्य शोभा के उत्पादक धर्म गुण है और उसके अतिशय (वृद्धि) करने वाले अलकार के उनके एव आचार्य मम्मट के मत मे गुण काव्य के

---

1 ओज कातिमती गौडीया - का०सू० वृ0 1/2/12

2 पाचाली लाटीया गौडीया चेतिनामतोऽभिहिता । लघुमध्यायतविरचनसमासभेदादिमास्तत्र ।।
द्वित्रिपदा पाचाली लाटीया पच सप्त का यावत् । शब्दा समासकतो भवति सथाशक्ति गौडीया ।। काव्यालकार 2/4,5

3 स०क० 2/55

4 काव्यालकार 1/34,35

5 नै० 14/91

6 श्लेष प्रसाद समना माधुर्य सुकुमारता । अर्थव्यक्तिरुदारत्वमोज कान्ति समाधय ।। ना0 शा0 16/96

नित्य धर्म है एव अलकार अनित्य धर्म।[1] आचार्य आनन्दवर्धन ने भी रीति को रसोपकारिणी तथा रसाभिव्यक्ति का साधन मानते हुए गुण को उसका अन्तरग तत्त्व एव समास को बाह्यमूलाधार बताते हुए ध्वनि की स्फुट रूप मे रहने की अभिव्यक्ति की[2] अर्थात उन्होने भी गुण को रीति का अन्तरग तत्त्व माना। आचार्य रुद्रट ने भी रीति को रसाभिव्यक्ति का साधन, गुण को रीति का अन्तरग एव समासादि को बाह्य तत्त्व माना जबकि भोज एव राजशेखर ने रीति का मूलाधार गुण एव समासादि को माना। भोज ने शृगारप्रकाश मे 48 गुण (भेदप्रभेद से 72 गुण) माने[3] एव उनके मत मे गुणविहीन अलकार युक्त काव्य आनन्दरहित है यथा –

अलकृतमपि श्रव्य न काव्य गुणवर्जितम् ।
गुणयोगस्तयोर्मुख्यो गुणालकारयोगयो ॥

जबकि अग्निपुराणकार ने 18 गणो[4] का वर्णन करते हुए कहा कि गुणाभाव मे अलकार युक्त काव्य भी आनन्दप्रद नहीं होता।[5] आचार्य आनन्दवर्धन मम्मट एव विश्वनाथ गुण को रस का मुख्य धर्म मानने के साथ साथ गौणरूप मे गुणो को शब्दार्थ के भी धर्म माना है। उनके मत मे आत्मा के शौर्यादि गुणो के समान रस के उत्कर्षधायक एव अपरिहार्य धर्म, गुण है एव काव्य मे इनकी स्थिति अचल होती है।[6] परन्तु इनमे आचार्य मम्मट ने लौकिक गुण एव अलकार मे भेद की स्थिति स्वीकार की।[7] जबकि उद्भट गुण एव अलकार मे कोई भेद नहीं मानते।[8] लेकिन काव्यशास्त्रीय परम्परा की श्रृखला के अन्तिम कडी के आचार्य पण्डितराज जगन्नाथ गुण को रस का धर्म मानते हुए शब्द और अर्थ से गुणो के प्रत्यक्ष सम्बन्ध की बात भी स्वीकार करते है। सम्पूर्ण तथ्यो को समटेने पर गुण सिद्धान्त के विषय मे दो प्रकार की मान्यताएँ मानी जा सकती है, प्रथम प्राचीन आलकारिको (भरत एव दण्डी) की दसगुण वाद की मान्यता एव द्वितीय परवर्ती आलकारिको की त्रिगुणवाद की मान्यता। त्रिगुणवाद के प्रथम प्रवर्तक आचार्य भामह थे। इन्होने माधुर्य, ओजस् एव प्रसाद इन तीन गुणो को ही काव्य मे स्थान दिया। नवीं शताब्दी के आचार्य आनन्दवर्धन से लेकर सोलहवीं शताब्दी के आचार्य पडितराज जगन्नाथ तक, अर्थात मम्मट विश्वनाथ आदि ने भी गुणत्रयवाद को मान्यता दी एव काव्य शास्त्र मे इन तीन गुणो को ही प्रतिष्ठा दिलायी। नैषधकार के विवरणो से भी त्रिगुणवाद की मान्यता का सकेत मिलता है।

श्रीहर्ष ने त्रिगुण वाद की शास्त्रीय मीमासा तो नैषध मे नहीं कि ये गुण कहाँ मिलते है इनकी क्या उपयोगिता है। परन्तु उन्होने शब्दत इन गुणो का आख्यान कर इनका वर्णन नैषध मे अवश्य किया है।

---

1 काव्यशोभाया कर्तारो धर्मा गुणा पूर्वेनित्या । तदतिशय हेत्वस्त्वलकार ॥ का०सू० वृ0 3/1/1, 2, 3
उपकुर्वन्ति त सन्त येऽगद्वारेण जातुचित् । हारादिवदलकारास्तेऽनुप्रासोपमादय ॥ का०प्र० 8/67

2 गुणानाश्रित्य तिष्ठन्ती माधुर्यादीन् व्यनक्ति सा । ध्वन्या० 3/6
तमर्थमवलम्बवन्ते येऽङ्गिन ते गुणा स्मृता ।
अङ्गाश्रितास्त्वलङ्कारा विज्ञेया कटकादिवत् ॥ ध्वन्या0 2/6

3 स०क० 1/60 -- 65

4 शब्दमाश्रयते काव्य शरीर स स तदगुण । श्लेषो लालित्यगाम्भीर्य्यमुदारता ॥ अग्नि०पु० 346/5 एव 6 20

5 अलकृतमपि प्रीत्यै न काव्य निर्गुण भवेत् । वपुष्यललिते स्त्रीणा हारो भारायते परम् ॥ अग्नि० पु० 346/1

6 ये रसस्याङ्गिनोधर्मा शौर्यादय इवात्मन । उत्कर्ष हेतवस्ते स्युरचलस्थितये गुणा ॥ का०प्र० 8/66,ध्व०2/6,सा०द० 8/1

7 समवायवृत्या शौर्यादय सयोगवृत्या तु हारादय इत्यस्तु गुणालकाराणा भेदा ।
ओज प्रभृतीनामनुप्रासोपमादीना चोभयेषामपि समवायवृत्यास्थितिरितिगड्ढलिकाप्रवाहेणैवैषा भेद ॥ का०प्र० 8/67, वृत्ति।

8 का०प्र० व्याख्याकार, आचार्य विश्वेश्वर पृ० 378

यथा – नैषधीयचरितम् के छठे सर्ग मे दमयन्ती द्वारा देवदूतियो को दिये गये प्रत्युत्तर मे श्लेषवल से माधुर्यगुण का सकेत मिलता है यथा-

तप फलत्वेन हरे कृपेयमिम तपस्येव जन नियुङ्क्ते ।
भवत्युपाय प्रति हि प्रवृत्तावुपेयमाधुर्यमधैर्य सर्जि ।।[1]

आचार्य भामह ने श्रुतिसुभगता और समासो के विरल प्रयोग को माधुर्य माना है।[2] आचार्य दण्डी ने रस युक्त वर्णरचना को माधुर्य गुण की सज्ञा दी[3] एव आचार्य वामन ने समास रहित पदो से युक्त रचना को माधुर्य गुण की सज्ञा दी तथा उक्ति वैचित्रय को भी माधुर्य गुण माना।[4] रसध्वनिवादी आचार्यो आनन्दवर्धन मम्मट एव विश्वनाथ ने चित्त को द्रवित कर देने वाले ह्लाद को माधुर्य गुण माना है।[5] नैषधकार ने नल वर्णन प्रसग मे[6] ओजो गुण का सकेत किया है। आचार्य दण्डी के अनुसार ओजो गुण मे समास बाहुल्य रहता है, एव वह गद्य काव्य का प्राण है।[7] दण्डी ओज को शब्दगुण मानते है। जब कि आचार्य वामन के मत मे गाढबन्धता या रचना की गाढता ही ओज गुण है, एव उन्होने अर्थ की प्रौढि को भी ओजोगुण कहा है।[8] मम्मट, विश्वनाथ आदि आचार्य चित्त के विस्ताररूप दीप्तत्त्व को ओजगुण मानते है। इसमे पदरचना समासबहुल एव औद्धत्त्वपूर्ण होती है।[9] उनके मत मे परम्पराप्राप्त श्लेष, समाधि उदारता और प्रसाद गुण, ओज मे गुण मे ही अन्तुर्भुक्त हो जाते है।[10] ऐसा प्रतीत होता है कि नैषधकार भी मम्मट आदि आचार्यो के मत से सहमत है क्योकि उन्होने प्रसाद गुण का शब्दत नाम नैषध मे नहीं लिया। आचार्य मम्मट के पूर्ववर्ती आचार्य वामन एव भामह ने प्रसाद गुण को मान्यता प्रदान की। वामन ने रचना की शिथिलता एव अर्थ की स्पष्टता को प्रसाद गुण माना[11] जब कि भामह के मत मे जिसका अर्थ विद्वानो से लेकर स्त्रियो और बच्चो तक की समझ मे आ जाय, वही प्रसाद (गुण) है यथा -

माधुर्यमभिवाञ्छन्त प्रसादञ्च सुमेधश । समासवन्ति भूयासि न पदानि प्रयुञ्जते ।।
केचिदोजोऽभिधित्सन्त समस्यन्ति बहून्यपि । यथा मन्दारकुसुमरेणुपिञ्जरितालका ।।
श्रव्य नास्तिसमस्तार्थ काव्य मधुरमिष्यते । आविद्वदङ्गनाबालप्रतीतार्थं प्रसादवत् ।।[12]

---

1 नै० 6/93

2 श्रव्य नास्तिसमस्तार्थं काव्य मधुरमिष्यते - काव्याल 2/3

3 मधुर रसवद्वाचि वस्तुन्यपि रसस्थिति । येन माद्यन्ति धीमन्तो मधुनेव मधुव्रता ।। काव्यादर्श0 1/51

4 पृ०थक्पदत्तव माधुर्यम् - का०ल०सू० 3/1/21
उक्ति वैचित्र्य माधुर्यम् - का०ल०सू० 3/2/10

5 श्रृगारे विप्रलम्भाख्ये करुणे च प्रकर्षवत् । माधुर्यमार्द्रता याति यतस्तत्राधिक मन ।। ध्वन्या० 2/8
- आह्लादकत्त्व माधुर्य श्रृगारेदुतिकारणम् । करुणे विप्रलम्भे तच्छान्ते चातिशयान्विनम् ।। का०प्र० 8/68
- मूर्ध्नि वर्गान्त्यगा स्पर्शा अटवर्गा रणौ लघू । अवृत्तिर्मध्यवृत्तिर्वा माधुर्ये घटना तथा ।। का०प्र० 8/74
- चित्तद्रवीभावमयो ह्लादो माधुर्यमुच्यते । - सा०द० 8/2

6 तदोजस्तद्यशस स्थिताविमौ वृथेतिचित्ते कुरुते यदा यदा ।
तनोति भानों परिवेषकैतवात्तदाविधि कुण्डलना विधोरपि ।। नै० 1/14

7 ओज समासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम् । पद्येऽप्यदाक्षिणात्यानामिदमेक परायणम् ।। काव्यादर्श 1/80

8 गाढबन्धत्वमोज - का०सू० वृ0 3/1/5
अर्थस्यप्रौढिरोज - वही 3/2/2

9 ओजश्चित्तस्य विस्ताररूप दीप्तत्वमुच्यते। तथा समासो बहुलो घटनौद्धत्यशालिनी। - सा०द० 8/4,7

10 श्लेष समाधिरौदार्य प्रसाद इति ये पुन ।।
- गुणाश्चिरन्तनैरुक्ता ओजस्यन्तर्भवन्ति ते । माधुर्यव्यञ्जकत्व यदसमासस्य दर्दितम् ।। सं०द० 8/9,10

11 शौथिल्य प्रसाद - का०सू० वृ0 3/1/6
- अर्थवैमल्य प्रसाद वही - 3/2/3

12 काव्याल० 2/1, 2, 3

अलङ्कार सिद्धान्त –

नैषधीयचरितम् मे अलङ्कार सिद्धान्त के कुछ सन्दर्भ देखने को मिलते है। अलङ्कारो के बीजतत्त्व वेद, उपनिषद्, अष्टाध्यायी एव ब्राह्मण ग्रथो[1] मे मिलने के साथ-साथ पूर्व मे काव्यशास्त्र को अलकारशास्त्र अभिहित किये जाने से भी अलकार की प्राचीनता की पुष्टि होती है। श्रीहर्ष ने अलकार शब्द के लिए अलकृत या अलकृति[2] शब्द का प्रयोग किया है, जिससे उनके ऊपर ऋगवेद के प्रभाव का आकलन किया जा सकता है, क्योकि ऋग्वेद मे अलकार के लिए 'अरकृति शब्द का प्रयोग मिलता है।[3] वैयाकरणो ने अलकार की व्युत्पत्ति, अलकरणम् अलकार , अलकृति अलकार , अल क्रियते अनेन इति अलकार (अलम् + कृ + घञ्),[4] विविध रूपो मे की है। विभिन्न काव्यशास्त्रीय मर्मज्ञों[5] की अलकार सम्बन्धी परिभाषाओ का सार यह है कि जो काव्य को अलकृत करे, वही अलकार है। जिसप्रकार लोक मे कुण्डलहारादि विविध आभूषणो से अलकृत ललनाओ का सौन्दर्य निखर उठता है, ठीक उसी तरह विभिन्न अलकारो से मण्डित कविताकामिनी भी शोभायमान होकर निखर उठती है। वास्तव मे काव्यसृजनकाल मे कवियो के अन्तर्मन मे भावो के सचरित होने पर सहजतया ही अलकारो का समावेश हो जाता है, क्योकि प्राय सभी प्रतिभावना कवि अपने काव्य को श्रेष्ठतम रूप देने की अभीप्सा रखकर ही काव्यसृजन मे प्रवृत्त होते है, उसी श्रृखला मे हम नैषधकार को भी रख सकते है। अलकारो का क्रमिक एव व्यवस्थित विवेचन काव्यशास्त्रीय रूप मे भामहकृत काव्यालकार मे मिलता है। राजानक रुय्यक ने तो इन्हे अलकार सिद्धान्त का प्राचीनतम आचार्य घोषित करते हुए इन्हे अलकारप्रजापति एव चिरन्तन आलकारिक की पदवी से भी समलकृत किया है।[6]

अलकारो के अन्तर्गत उपमा अलकार का सन्दर्भ नैषधकार ने नल द्वारा हस को पकड लेने के पश्चात हुई घटनाओं के वर्णनक्रम मे समुपस्थापित किया है जहॉ वह कहते है कि उस सुन्दरपक्षी से रहित सरोवर को त्यागकर तीरस्थ राजहसमण्डली चली जाने लगी, उस समय ऐसा लग रहा था मानो सरोवर की शोभा ही चली जा रही हो । यथा –

---

1 वाय वायाहि दर्शते मे शौभा अरकृता - ऋ० 1/2/1
- का ते अस्त्यरकृति सूक्तै - ऋ० 7/29/3
- वसनेन अलङ्कारेणेति सस्कुर्वन्ति - छा0 उ0 8/8/5
- अलङ्कृञ् - अष्टा० 3/2/136

2 वदनालकृतिमात्रमक्षिणी नै० 2/55
- अलकृतासन्नमहीविभागैरय ---- नै० 8/89
- अलकृताङ्गाद्भुतकेवलाङ्गी --- नै० 10/108

3 वाय वायाहि दर्शते मे शौभा अरकृता - ऋ० 1/2/1
- का ते अस्त्यरकृति सूक्तै - ऋ० 7/29/3

4 भावे घञ् - अष्टा० 3/3/18

5 काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलकारन् प्रचक्षते - दण्डी, काव्यादर्श 2/1
- काव्य ग्राह्यमलङ्कारात्। सौन्दर्यमलङ्कार। का०सू० वृ0 1/1।1,2
- अगाश्रितास्त्वलकार मन्तव्याकटकादिवत्। आनन्दवर्धन - ध्वन्या० 2/6
- हारादिवदलकारास्तेऽनुप्रासोपमादय। मम्मट का०प्र० 8/67
- काव्यात्मनो व्यग्यस्य रमणीयताप्रयोजका अलकारा । प रा जगन्नाथ-रसगगाधर
- शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्मा. शोभातिशायिन । रसादीनुपकुर्वर्कन्तोड तकारास्तेऽङ्गदादिवत् ।। विश्वनाथ, सा०द० 10/1
- उपकारत्वात् अलकार सप्तममगमिति यायावरीय । ऋते च तत्स्वरूपपरिज्ञानात् वेदार्थानवगति ।। राजशेखर, काव्यमीमासा।

6 इह तावद्भामहोद्भटप्रभृतयश्चिरतनालकारा प्रतीयमानमर्थं वाच्योपस्कारतयालकारपक्षनिक्षिप्त मन्यन्ते।
- अलकार सर्वस्व, पृ० 3

पतत्रिणा तद्र चिरेण वञ्चित श्रिय प्रयान्त्या प्रविहाय पल्वलम् ।
चलत्पदाम्भोरुहनूपुरोपमा चुकूजकूले कलहसमण्डली ।।[1]

यहॉ कवि के मत मे हसो के शब्द ही उसी (सरोवर के) शोभा के चरणकमलो के नूपुर शब्द थे। आचार्य मल्लिनाथ कहते है "उपमा शब्दोऽपि मुख्यार्थानुपपत्ते सम्भावना लक्षक इत्यवधेयम्। एव नारायण का मन्तव्य है" तत् पल्वलमल्पसर प्रविहाय त्यक्त्वा प्रयान्त्या गच्छन्त्या श्रिय शोभाया शब्दच्छलेन चलन्ती ये पदाम्भोरुहे चरणकमले तयोवर्तमानौ नूपुरौ तदुपमा तत्तुल्या। ----- तस्या नूपुरतुल्यत्तव वा।[2] काव्यशास्त्र मे अलकारो के प्रमुख तीन भेद होते है। शब्दालकार, अर्थालकार एव उभयालकार। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलकार अर्थालकार के अन्तर्गत आते है एव जो अलकार किसी शब्द विशेष के पर्यायवाची शब्द रख देने पर भी तिरोहित नहीं होते, वरन् अर्थगत सौन्दर्य का पोषण करते हैं, वह अर्थालकार कहलाते है। भरतमुनि के मत मे काव्यबन्धो मे जहॉ सादृश्य केआधार पर किसी वस्तु की किसी अन्य वस्तु से तुलना की जाती है वहॉ उपमा अलकार होता है। यह उपमा वर्ण, आकृति तथा गुण के सादृश्य के आधार पर सम्भव होती है, एव यह 4 प्रकार से दी जा सकती है एक की एक से एक को अनेक से, अनेक से एकी की, एव अनेक से अनेक की।[3] प्राय सभी काव्यमनीषियो से उपमा अलकार की अपनी परिभाषाओं[4] के वर्णन मे उपमा अलकार के चार प्रमुख अगो उपमेय, उपमान, साधारण धर्म तथा उपमा वाचक शब्द यथा-इव, सदृश, इत्यादि का प्रयोग किया है। श्रीहर्ष ने भी उपमा[5] के साथ उसके प्रमुख अगो का यथास्थान वर्णन कर उपमा अलकार के शास्त्रीय पक्ष को उजागर किया है।

---

1 नै० 1/127

2 नै० 1/127, मल्लिनाथ एव नारायण की टिप्पणी

3 यत्किञ्चित् काव्यबन्धेषु सादृश्येनोपमीयते । उपमा नाम सा ज्ञेया गुण कृतिसमाश्रया ।।
एकस्यैकेन सा कार्या ह्यनेकेनाथवा पुन । अनेकस्य तथैकेन बहूना बहुभिस्तथा ।। ना०शा० 16/44, 45

4 - यद्असद् तत्सदृशमिति गार्ग्य। तदासा कर्म - निरुक्त 3/3/14
- विरूद्धेनोपमानेन देशकालक्रियादिभि । उपमेयस्य यत्साम्य गुणलेशेन सोपमा ।। भामह - काव्याल० - 2/30
- यथाकथञ्चित् सादृश्य यत्रोद्भूत प्रतीयते । उपमा नाम सा तस्या प्रपचोऽय प्रदर्श्यते ।। दण्डी- काव्यादर्श 2/14
- यच्चेतोहारि साधर्म्यमुपमानोपमेययों । मिथो विभिन्नकालादि शब्दयोरुपमा तु तत्।। उद्भट-काव्या सारस-1/15
- उपमानोपमेयस्य गुणलेशत साम्यमुपमा - वामन का०सू० वृ0 4/2/1
- स्तुतिनिदातत्त्वाख्याख्यानेषु - वही 4/2/7
- उभयो समानेमेक गुणादिसिद्ध भवेद्यथैकत्र । अर्थेन्यत्र तथा तत्साध्यत इति सोपमा त्रेधा ।। रुद्रट-काव्याल - 8/4
- साधर्म्य उपमा भेदे । उपमानोपमेययोरेव न तु कार्यकारणयो साधर्म्य भवतीति तयोरेव समानेन धर्मेण सम्बन्ध उपमा - मम्मट का०प्र० 10/87 एव वृत्ति, पृ० 544
- विवक्षितपरिस्पद मनोहारित्वद्धिये, वस्तुन केनचित् साम्य तदुत्कर्षवतोपमा ।
ता साधारणधर्मोक्तौ वाक्यार्थे वा तदन्वयात् इवादिरपि विच्छित्यायत्रवक्ति क्रियापदम् ।। कुन्तक- वक्रो0 जी0 3/32,32
- तत्प्रसिद्ध्यनुरोधेन य परस्परमर्थयो । भूयोऽवयवसामान्ययोग सेहोपमा मता ।। भोज- स०क० 8/3
- उपमानोपमेययो साधर्म्ये भेदाभेदतुल्यत्वे उपमा । साधर्म्ये त्रय प्रकारा भेदप्राधान्य व्यतिरेकवत् । अभेदप्राधान्य रूपकवत् । द्वयोस्तुल्यत्व यथा स्याम् । यदाहु किञ्चित् कश्चिच्च् विशेष स विशद सदृशताया ।।- रुय्यक अल0 सर्व0, पृ० 21, 22
- साम्य वाच्य वैधर्म्य वाक्यैक्य उपमा द्वयो । विश्वनाथ, सा०द० 10/14
- उपमा यत्र सादृश्य लक्ष्मीरुल्लसतिद्वयो । जयदेव - चन्द्रलोक 5/11
- स्वत सिद्धेनभिन्नेनसम्मतेन च धर्मत। साम्य अन्येन वर्णस्य वाच्य चेदेकदोपमा ।। विद्यानाथ प्रतापरुद्रयशोभूषण पृ०254
- उपमिति क्रियानिष्पत्तिमत्सादृश्यवर्णनमुपमा ।
अलकारभूतोपमालक्षणत्व तदेवादुष्टाव्यग्यत्व विशेषितम् ।। अप्पय्यदीक्षित - चित्रमीमासा पृ० 20
- उपमा यत्र सादृश्यलक्ष्मीरुल्लसति द्वयो। -- यत्रोपमानोपमेययो· सहृदयाह्लादकत्वेन चारुसादृश्यमुद्भुमतयोल्लसति व्यग्यमर्यादा विना स्पष्ट प्रकाशते तत्रोपमालकार -अप्पय्यदीक्षित - कुवलयानद, पृ० 7
- सादृश्य सुन्दर वाक्यार्थोपस्कारकमुपमामिति सौन्दर्यचमत्कृत्याधायकत्वम् । चमत्कृतिरानदविशेष सहृदयप्रमाणक । प. जगन्नाथ रस गगा, पृ० 204

5 त्वयैकसत्या तनुतापशङ्कया ततो निवर्त्यं न मन कथचन् ।
हिमोपमा तस्य परीक्षणक्षणे सतीषु वृत्ति शतशो निरूपिता ।। नै० 9/55
सरोरुह तस्य दृशैव निर्जित जिता स्मितेनैव विधोरपि श्रिय ।
कुत पर भव्यमहो महीयसी तदाननस्योपमितौ दरिद्रता ।। नै० 1/24

नैषधीयचरितम् मे उपमान की चर्चा करते हुए नैषधकार कहते है –

सत्येव साम्ये सदृशादशेषाद् गुणान्तरेणोच्चकृषे यदङ्गे ।
अस्यास्तत स्यात्तुलनापि नाम वस्तुत्वमीषामुपमापमान ॥[1]

देवदूत बने नल स्वय अदृश्य रूप मे रहते हुए दमयन्ती का देखकर उसकी सुन्दरता का वर्णन करते हुए कहते हैकि इसके (दमयन्ती के) अग सभी समान वस्तुओं से सादृश्य रहने पर भी किसी न किसी अन्य गुण के कारण उत्कृष्ट हो गये हैं। अत इनकी समानता ता अन्य पदार्थो मे किसी प्रकार सम्भव हो सकती है, किन्तु इन अगो (दमयन्ती के अगो) की उपमा के लिए किसी अन्य को उपमान बनाना तो इनका अपमान करना होगा।[2] स्पष्ट है कि यहॉ नैषधकार की दृष्टि मे दमयन्ती के अगो का कोई भी उपमान विद्यमान नहीं है क्योकि साधारण धर्मत्वेन प्रसिद्ध पदार्थ ही उपमान होता है और ऐसा कोई उपमान नहीं है जिसमे सौन्दर्य रूप साधारण धर्म दमयन्ती के अगो की अपेक्षा अधिक सौन्दर्यमण्डित हो परन्तु मनीषी कवि चमत्कापूर्ण ढग से उपमेय उपमान की परिभाषा भी बदल दते है जैसा कि श्रीहर्ष ने भी यहॉ किया है जहॉ वह कहते है कि (बारात आगमन के समय) कुण्डिनपुरवासी प्रजा भी अलकारो से सुशोभित थी, सारे भवन सुन्दर चित्रो से दीप्तिमान हो रहे थे कुण्डिपुर की भूमि मणिजटित हो रही थी। इस प्रकार अब तक स्वर्ग उपमान था भूलोक उपमेय, परन्तु अब (असीम सौन्दर्यसज्जा से) भूलोक ही उपमान बन रहा था। यथा -

विभूषणै कञ्चुकिता बभु प्रजा विचित्रचित्रै स्नपितत्विषो गृहा ।
बभूव तस्मिन्मणिकुट्टिमै पुरे वपु स्वमुर्व्यां परिवर्तितोपमम् ॥[3]

इस सदर्भ मे नारायण का अभिमत है "तस्मिन्पुरे प्रजा पौरा जानपदाश्च विभूशणैरलकारै काञ्चुकिता नानारत्नकान्तिच्छादितसर्वावयवा सन्तो वभु शुशुभिरे , तथा वर्गमात्रकल्पितेषु निर्जीवेष्वपि रूपकेशु जीवद्भ्रमापादनादिचमत्कारकरणाद्विचित्रचित्रै राश्चर्यकारिभि कुड्यलिखितनानावर्णरूपकै स्नपितत्विष उज्ज्वलीकृतदीप्तयो गृहा बभु। एवं जगमस्थावररूपान्यतया तथा मणिकुट्टिमैश्च मणिबद्धभूमिभि कृत्त्वा उर्व्या स्व सहज मृन्मय वपु. केनापि ब्रह्मादिना परिवर्तिता उपमा यस्यतद्रूपान्तर

---

1 नै० 7/14

2 यत् अगैर्भैम्या अगैर्मुखाद्यवयवैरर्थाद्गुणान्तरेण वृत्तत्वादिना गुणेन चन्द्रादिना, सम साम्ये सत्येव सदृशात्कविसमये मुखादे सदृशत्वेनोपमानत्वेनाभिमताच्चन्द्रादेरशेषात्सकलाद्वस्तुन सकाशाद्गुणान्तरेण केनचिद्गुणान्तरेणान्येन गुणेन कृत्वा यद्यस्माद्, उच्चकृषे उत्कृष्टैर्जातम्। ततस्मादर्थात् अस्या अगै कृत्त्वा सदृशस्य चन्द्रादेर्वस्तुनस्तुलनापि समीकरणमपि तै सह साम्य वा स्यान्नाम। कविसमये सर्वत्रोपमानस्याधिक्यम्, उपमेयस्य च न्यूनत्व प्रसिद्धम्। तथा चान्यत्र रमणीमुखाद्यपेक्षया चन्द्रदेराधिक्यादुपमानत्वम्, मुखादेश्च न्यूनत्वादुपमेयत्व घटते। आस्यास्तु मुख यद्यपि वर्तुलत्वेन चन्द्रेण समान तथापि चन्द्रपेक्षयाऽधिकामृतयुक्तत्वेनाधिकगौरत्वेन कलकाभावेन च चन्द्राद‍धिकम्। नेत्रे अप्याकारेण नीलिम्ना च यद्यपि नीलोत्पलदलेन समाने तथापि नीलोत्पलदलस्य कटाक्षविक्षेपादिराहित्येन स्वस्य तत्साहित्येन नीलोप्तलदलापेक्षयाधिके। एवमोष्ठादेरपिकेनचिद्गुणेन साम्ये सत्येव गुणान्रेण वन्धूकाद्यपेक्षयाधिक्य दृष्टव्यम्। - तथा च चन्द्राद्ययाधिक्येनैतदीयवदनाद्यगानामुपमानत्वम्। चन्द्रदेश्चैतदीयवदनाद्यपेक्षया न्यूनत्वेनोपमेयत्वमिति चन्द्रो भैमीमुखसदृश नीलोत्पल च भैमीनयनसदृशमिति एव सदृशस्य चन्द्रादेर्भैमीवदनादिना समीकरण साम्य वा भवेदपि भैमीवदनादेरुपममानत्च चन्द्रदेश्चोपमेयत्व युक्तमेवेत्यर्थ। अभीषामेतदीयानामगाना तु पुनर्वस्तु चन्द्रादिलक्षणमुपमा उपमान अपमानो धिक्कार एव, अर्थादमीषामेव, हीनस्योपमानत्वाभावात्, अधिकरयोपमेयत्वाभावादिति भाव। यत उच्चकृषे ततोहेतोरस्या भैम्यास्तुलनापि स्थान्नाम। साम्य विनोत्कर्षो न सिध्यतीति गम्यमप्यस्तु नाम, वस्तु तु परमार्थस्तु अमीषामगानामुपमान तिस्कार इति वा। नै० 7/14 नारायण

- तथा हि वस्तुत परमार्थतस्तु अभीषामगानामुपमा तुलना तस्या अवमानोऽपमान उत्कृष्टानामसमानै सह समातपादनमवनं न एवेत्यर्थ। । नै० 7/14 मल्लिनाथ

3 नै० 15/15

प्रापितमिव बभूव। पातालस्य रम्यतरत्वात्पातालमुपरि जातमिवेत्यर्थ इत्युत्प्रेक्षा। परिवर्तिता विनिमयिता उपमा उपमान स्वर्गादि येन। उपमानत्वेन प्रसिद्धस्य स्वर्गस्योपमेयत्व कृतम्। स्वय च तस्योपमान जातमित्यर्थ इति वा।[1] उपमेय, उपमान एव उपमाता की चर्चा करते हुए श्रीहर्ष नलमुखेन (दमयन्ती सौन्दर्य वर्णन प्रसग मे) अभिहित करते है कि सुन्दर चन्द्र आदि उपमान पदार्थो ने दमयन्ती के मुख आदि अग (उपमेय) से जैसे-जैसे अपकर्षो को प्राप्त किया, वैसे, वैसे वे नाचने लगे, क्योकि उपमा देने वाला कवि (उपमाता) उत्कृष्ट दमयन्ती के मुख आदि अग की उन्हीं चन्द्र आदि पदार्थो को महत्त्व देगे। यथा-

भव्यानि हानीरगुरेतदङ्गाद्यथा यथानर्ति तथा तथा तै ।
अस्याधिकस्योपमयोपमाता दाता प्रतिष्ठा खलु तेभ्य एव ।।[2]

इस प्रसग मे मल्लिनाथ का कथन है ''अधिकस्योत्कृष्टस्यास्य भैम्यङ्गस्योपमया उपमानीकरणेन। अथवा गत्यन्तराभावात् तैरेव तुलनया तेषामेवोपमानीकरणेनेत्यर्थ। तभ्यश्चन्द्रादिभ्य एव प्रतिष्ठा दाता दास्यति। तथा च यथा कथचित् प्रतिष्ठालङ्कारे उपमेयत्वेन वा, उपमायामुपमानत्वेन वा कविप्रसादाच्चन्द्रादीना पुन प्रतिष्ठा भविष्यति इत्यनर्तीत्यर्थ।[3] एव नारायण के मत मे भी यहाँ उपमा के अगो के शास्त्रीय पक्ष का नैषधकार ने विवेचन उपस्थित किया है।[4] उपमा अलकार के प्रमुख अगो उपमेय, उपमान, साधारण धर्म तथा उपमा वाचक शब्दो को निम्न रूप से समझा जा सकता है -''कमलमिव मुख सुन्दरम्।'' इस वाक्य मे मुख उपमेय है, चन्द्रमा उपमान है सौन्दर्य साधारण धर्म है, तथा समान (इव) उपमा वाचक शब्द है।[5]

आचार्य पाणिनि ने भी ''उपमानानि सामान्यवचनै[6] के माध्यम से उपमान शब्द का पारिभाषिक अर्थ मे प्रयोग किया है एव आचार्य पतजलि ने उपमान तथा उपमेय के बीच भेदाभेद सम्बन्ध की परिगणना की है।[7] महर्षि पतञ्जलि के इसी अभिप्राय को अलकारसर्वस्वकार ने स्पष्ट करते हुए कहा है कि सदृशता का वह विषय है, जहाँ कुछ उभयनिष्ठ सामान्य धर्म हो एव कुछ विशिष्ट घर्म ।[8] पतजलि मुनि का अभिमत है कि अनिर्ज्ञात अर्थ के ज्ञान के लिए उपमान का प्रयोग होता है यदि उपमेय के धर्म ज्ञात न रहे तो भी

---

1 नै० 15/15 नारायण

2 नै० 7/16

3 नै० 7/16 मल्लिनाथ

4 भव्यानि शोभमानानि चन्द्रादीनि वस्तूनि एतस्या वदनाद्यगात् सकाशात् यथा यथा येन येन प्रकारेण यावद् यावद् हानीरपकर्षान् अगु प्रापु तैश्चन्द्रादिभिस्तथा तथा तावत्तावत् अनर्ति नृत्तम। अपकर्षप्रापवपि कथ नृत्तमत आह-खलु यस्मादधिकस्योत्कृष्टस्य (अस्य) एतदीयागस्य उपमया साम्येन उपमाता कविर्न्यूनेभ्योऽपि तेभ्यश्चन्द्रादिभ्य एव प्रतिष्ठा माहात्म्य दाता दास्यति। भैमीमुखसदृशश्चन्द्रादिरिति वर्ण्यमानास्तदुपमेयताप्रतिष्ठाप्राप्त्या अधिकानि भैम्यगान्यस्माकमुपमानानि वय धन्या इति उत्तमोऽस्माक प्रतियोगीत्यानन्देन नृत्यन्तीति भाव। भैमीमुख किवदिति पृष्टे चन्द्रस्य न्यूनत्वेऽप्यन्यस्योपमानस्याभावाच्चन्द्रवदित्येव वक्तव्य स्यात्। एव नयनादवपि द्रष्टव्यम् - नै० 7/16 नारायण

5 उप समीपे मीयते परिच्छिद्यते (उपमानेन कर्ता उपमेय कर्म) अनया इति उपमा। पकजादिपदवत् योगरूढिमिदम् उपमापदम्। साधारण धर्मत्तवेन प्रसिद्ध पदार्थ उपमानम् । साधरणधर्मवत्तया वर्णनीय पदार्थ उपमेयम्। उभयत्र (उपमाने उपमेये च) सगतो धर्म साधारणधर्म इवादियथादिपदानि उपमावाचकानि। प्रो लक्ष्मीकात दीक्षित- अलकारमजूषा, पृ०14
उपमाने उपमेये च सगतोधर्म साधारणो धर्म। यथा कमलमिव मनोज्ञ मुखमित्यत्र मनोज्ञत्वधर्मसम्बन्धात्तद्वत्तया प्रसिद्धेन कमलेन सह मुखमुपमीयते इति - मनोज्ञत्व साधारणो धर्म। का०प्र० नागेश्वरी टीका
- द्वयोः समानो यो धर्म उपमानोपययो ।
समास उपमानानां शब्दैस्तदभधीयते ।। वा०प० 3, वृत्तिसमुद्देश पृ० 362, एव 365, 368, 371

6 अष्टा० 2/1/55

7 कानिपुनरुपमाानि? कि यदोवोपमान तदेवोपमेयमाहोस्विदन्यदेवोपमानमन्यदुपमेयम्? कि चात? यदि यदोवोपमान तदेवोपमेय, क इहोपमार्थ 'गौरिव गौरिति'? अथान्यदेवोपमानमन्यदुपमेय क इहोपमार्थ -'गौरिवाश्व' इति। एव तर्हि यत् किञ्चित्सामान्य कश्चिच्च विशेषस्तत्रोपमानोपमेये भवत।—मान हि नामानिर्ज्ञातज्ञानार्थमुपादीयतेअग्निज्ञातार्थं ज्ञास्यामिति"। तत्सामीप्ये यन्नात्यन्तायमिमीते तदुपमान "गौरिवगवय'' इति। गौर्निज्ञातो, गवयोऽनिर्ज्ञात। म०भा० 2/1/55

उपमान के ज्ञात धर्मों से उनका ज्ञान हो जाता है । भर्तृहरि भी पतजलि के अनुरूप ही उपमेय एव उ की व्याख्या करते हुए कहते है कि मान वह जिससे अनिर्ज्ञात वस्तु का पूरी तरह ज्ञान हो सके जैसे पल आदि मापक साधनो से किसी मेय वस्तु का मान पूर्ण एव निश्चित रूप से ज्ञात हो जाता है।[1] उ से अनिर्ज्ञात वस्तु के समान धर्मो का पूर्ण रूप से ज्ञान भले न हो सके, किन्तु फिर भी उपमान उसके का माध्यम बनता है। इसीलिए वस्तु या द्रव्य के निर्ज्ञात तथ्य का ज्ञान उपमान के द्वारा कराया जात एव इससे उपमेय का स्वरूप भी स्वत स्पष्ट हो ही जाता है। नैषधकार ने भी दमयन्ती के अगो के जिन-जिन उपमानो की चर्चा की[3] साथ ही कुण्डिनपुर नगरी को स्वर्ग का उपमान बनाया उससे स्प जाता है कि दमयन्ती अनुपम सुन्दरीललना एव कुण्डिनपुर नगरी भी (बारात आगमन काल मे साज र के कारण) परम रमणीय बन गयी थी।

आचार्य भरत[4] ने उपमा के 4, दण्डी ने 35[5] भेदो का वर्णन किया जबकि मम्मट ने उपमा अ के दो भेद स्वीकार किये है। - पूर्णोपमा एव लुप्तोपमा। पूर्णपमा मे उपमा के चारो तत्त्वो का ग्रहण हो एव लुप्तोपमा मे कुछ तत्त्वो का लोप रहता है। परन्तु परवर्ती आलकारिको मे विश्वनाथ ने, जो नैषधक परवर्ती विद्वान् है उन्होने उपमा के 25 या 27 भेद माने है जबकि नागोजिभट्ट जैसे कुछ प्रमुख ि उपमा के अन्य भेदों के प्रति अपनी असहमति प्रकट की है।[6] एव नैषधकार भी उपमा के अन्य भेद शास्त्रीय मीमासा के विवरण मे मौन है। लेकिन फिर भी उपमा के अनेक भेदो का विवरण अ शास्त्रीय ग्रथो मे देखने को मिलता है, एव कवियो के द्वारा विवेचन का विषय भी बनाया गया है।

उपमा अलकार अलकारो मे सबसे प्राचीन अलकार माना जाता है। ऋग्वेद,[7] निर अष्टाध्यायी,[9] रामायण,[10] महाभारत[11] मे इसका वर्णन मिलने से इसकी प्राचीनता की पुष्टि होत काव्यशास्त्र का आदि ग्रथ माने जाने वाले भरतमुनिकृत[12] नाटशास्त्र मे वर्णित चार अलकारो मे 'उपम नाम सर्वप्रथम मिलता है। महाकवियो की परम्परा मे अश्वघोष[13], कालिदास,[14] एव माघ[15] तथा भा

---

1 अनिर्ज्ञातस्य निर्ज्ञात येन तन्मानमुच्यते । प्रस्थादि तेन मेयात्मा साकल्येनावधार्यते ।। वा०प० वृत्ति समुद्देश, पृ० 3

2 अनिर्ज्ञात प्रसिद्धेन येन तद्धर्म गम्यते । साकल्येनापरिज्ञानादुपमान तदुच्यते ।। वही पृ० 361

3 नै० 7/3 109

4 ना०शा० 16/44

5 काव्यादर्श 2/14 51

6 वस्तुतोऽय पूर्णालुप्ताविभागो शब्दशास्त्रव्युत्पत्तिकौशलपरत्वात् अत्र शास्त्रे न व्युत्पाद्यतामर्हतीति।- का०प्र० नागेश्वरी टीका

7 अभ्रातेव पुस एति प्रतीची गर्तारुरिव सनये धनानाम् ।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हृदेव निरिणीते अप्स ।। ऋ1/124/7

8 अथात उपमा यदेतत् सदृशमिति गार्ग्य -निरुक्त 3/3/14
यथेति कर्मोपमा, भूतोपमा, रूपोपमा, वदिति सिद्धोपमा- वही 3/4/18

9 उपमानाश्च - अष्टा० 5/4/137, उपमित व्याघ्रादिभि सामान्यप्रयोगे - अष्टा० 2/1/56 उपमानादाचारे - अष्टा० 3/1/10, तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्या तृतीयाऽन्यतरस्याम् - अष्टा०2/3/72

10 नीलमेघाश्रिता विद्युतस्फुरन्ती प्रतिभाति मे ।
स्फुरन्ती रावणस्याङ्के वैदेहीव तपस्विनी ।। रामा. 4/28/12 एव 4/1/13, 5/5/4, 4/3/48

11 पुष्प पुष्प विचिन्वीत् मूलच्छेद न कारयेत् । मालाकारइवारामे न यथाऽङ्गारकारक ।। महा उधोग 34/18

12 उपमा दीपक चैव रूपक यमक तथा । काव्यस्यैते ह्यलकाराश्चत्वार परिकीर्तिता ।। ना०शा० 16/43

13 अश्वघोष-सौ०न० 1/53, 3/39, 4/42, 8/20

14 कालिदास-कु० स० 1/28, 3/54,67, 4/30, 5/82, 9/38
रघु० 1/1, 11, 46 2/2, 20, 16, 6/67, 12/35, 13/60, 14/84, 15/7, 17/1

15 माघ शिशु 2/87, 9`, 11/40

16 भारवि किरात0 2/31,33 13/15 19,20 33 14/42 17/2 9

आदि ने भी उसी काव्यशास्त्रीय परम्परा का अनुपालन करते हुए उपमा अलकार की मीमासा नैषध मे की है।

श्रीहर्ष ने पञ्चनली प्रसग मे शब्दालकार के अन्तर्गत आनेवाले अनुप्रास अलकार के विलास की मीमासा अभिहित की है। स्मरणीय है कि जो अलंकार किसी शब्द विशेष के रहने पर रहते हैं लेकिन उस शब्द के पर्यायवाची शब्द रखने पर तिरोहित हो जाते है, वह शब्दालकार कहलाते है। इसके अन्तर्गत अनुप्रास, यमक एवं शब्द श्लेष आदि प्रमुख अलंकार आते हैं । नैषधीयचरितम् के तेरहवे सर्ग के पचनली प्रसग वर्णन मे, चारो देवो इन्द्र, अग्नि, वरूण एव यम द्वारा नल रूप धारण करने पर, साथ ही स्वय राजा नल के स्वयवर सभा मे उपस्थित होने पर पाच नल दमयन्ति को दृष्टिगोचर हुए। राजकुमारी दमयन्ती के सामने यह समस्या उत्पन्न हुई कि वह किसे वास्तविक नल समझकर उसको वरमाला पहनाये? वह मन ही मन सोचने लगती है कि यदि सरस्वती को वरमाला दे दूँ और कहूँ की आप ही इसे वास्तविक नल को पहना दीजिये, तो वह देवताओ की शत्रु बन जायेगी और यदि यह कहूँ कि जो वास्तविक नल हो वह खुद आकर मेरी वरमाला स्वीकार करे, तो ऐसा कहने मे लज्जा परित्याग करने के कारण लोगो द्वारा मेरा उपहास होगा। इस प्रकार सोच मे डूबी दमयन्ती, अपने मन में विचार करती हुई पुन सोचती है कि अन्य नलो के समान रूपधारी यह पॉचवें (अन्तिम) नल ही न जाने क्यों मुझे भावविभोर (स्नेह सुधा से सिक्त) कर रहा है। अर्थात् इन प्रथम चार नलो को छोड़कर यह पॉचवा नल मुझे रुचिकर लग रहा है। इस कारण यह सत्य नल प्रतीत होता है।[1] अथवा प्रथम तथा चरम (पहले तथा अन्त वाले) शब्दो के अक्षरो मे समानता रहने पर भी 'चरम' (अन्तवाले) शब्द में अनुप्रास (छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास, लाटानुप्रास आदि अलकार) चमत्कार स्फुरित होता है। यथा-

> इतरनलतुलाभागेषु शेष· सुधाभि· स्नपयति मम चेतो नैषध कस्य हेतो ।
> प्रथमचरमयोर्वा शब्दयोर्वर्णसख्ये विलसति चरमेऽनुप्रासभासा विलास ।।[2]

दूसरे शब्दो मे कहा जा सकता है कि जिस प्रकार अन्तिम चरण मे प्रास,भास एव विलास मे अनुप्रास अलंकार का चमत्कार स्फुरित होता है, उसी प्रकार इन पॉच नलो के तुल्य रूप होने पर भी, पॉचवानल ही दमयन्ती के चित्त को चमत्कृत कर रहा है। नैषध के प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ ने भी नैषधकार के इस विवरण में अनुप्रास विलास के वर्णन की पुष्टि की है।[3] नारायण भी मल्लिनाथ से सहमत दिखते हैं। इस प्रसंग में उनकी व्याख्यात्मक टिप्पणी का वर्णन भी समीचीन ही होगा वह कहते है "इतरैश्चतुर्भिर्नलैस्तुलां साम्य भजत इति भाग्, एष शेषः सुधाभिरमृतै· स्नपयति आप्लुतमिव करोति। रूपसाम्ये

---

1 इस विवरण से ऐसा प्रतीत हो रहा है कि नैषधकार महाकवि कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् में वर्णित निम्न कथन से प्रभावित हैं- असशय क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मन.। सता हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्त. करणप्रवृत्तय ।। अभि०शा० 1/22

2 नै० 13/54

3 एषु पञ्चसु मध्ये, इतरेषा चतुर्णा, नलाना तुलाभाक् सादृश्यभाक्, शेष पञ्चम , नैषध कस्य हेतो केनापि कारणेन, ममचेत सुधाभि स्नपयति, सताहि सन्तेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्त करणप्रवृत्तय."इति न्यायादनेनैन सत्यनलेन भाव्यमिति मन्ये इति भाव । सत्य नलत्वप्रमापिकामहैतुकीं मन प्रीति दृष्टान्तेन द्रढयति प्रथमेति। प्रथमचरमयो पूर्वोत्तरमयो पूर्वोत्तरयो द्वयो , शब्दयो वर्णसख्ये अक्षरसाम्ये सत्यपि चरमे उत्तरे शब्दे, अनुप्रासो वर्णावृत्तिलक्षण छेकानुप्रासादिशब्दालकार , तस्यभासां शोभाना, विलासो वा चमत्कारिता एव, "वा स्यात् विकल्पोपमयोरेवार्थेऽपि समुच्चये" "इत्यमर विलसति स्फुरति, तथा च अनुप्रासस्थले अन्तिमशब्दे वर्णसाम्य यथा चमत्कारविधायक भवति, तद्वदन्तिमे नैषध नलसाम्यमेव मम चेतसः परमप्रीतिसम्पादक भवति, न त्वत्र सत्यत्वं प्रयोजक, यत· सर्वे एव समानरूपा इतिभाव। अनुप्रासाना तादृशत्वे दृष्टान्तस्तु अलंकारग्रन्थे स्फुट एव, अथवा अस्यैव श्लोकस्य चरमचरणे विलस विलास· प्रासभास इति शब्दचतुष्टयेऽपि सम्भवति, अथवा प्रथमशब्दप्रयोगान्तर चरम शब्दे प्रयुक्ते एव तत्रानुप्रास सम्भवति, यथा वा अत्रैवानुप्रासभासा विलास इत्यत्र सर्वसकाराश्रयत्वे अनुप्रासस्यान्तिमसकारे स्फुरणम्, एवमन्तिमबुद्धौ विपरिवर्त्तमानत्वान्नलत्वाभिमानमात्रम्, एतावता अयमेवति निश्चयो युक्त इति भावः। नै० 13/54 मल्लिनाथ।

सत्यप्येष एव मम मनसे यतो रोचते, तस्मादयमेव सत्यनलो भविष्यतीत्याशय। सत्यनलत्वज्ञापक निरुपाधिकपरमप्रेमसवाद दृष्टान्तेन प्रथयति प्रथमेति। वाऽथवा युक्तमेतत्। प्रथमचरमयोरादिमान्त्ययो शब्दयोर्वर्णैरक्षरै सख्ये मैत्रया 'सम्यामपि चरमे पाश्चात्ये शब्देऽनुप्रासाभासा छेकानुप्रासवृत्यनुप्रासलाटानुप्रासाख्य शब्दालकारकान्तीना विलास, उल्लाश्चमत्कारो विलसति विशेषेण शोभते। वर्णसाम्ये सत्यपि प्रथमस्यानायासगतत्वात्, द्वितीयस्तु सङ्गस्य पश्चाद्भूरिप्रयत्नसाध्यत्वाचरमे यद्यनुप्रासत्व स्फुरति, तथापि द्वितीय साहित्ये प्रथमेऽपि यथानुप्रासत्वमस्ति तथा सुन्दरान्तरविच्छेदेन पश्चादवलोक्यमानतयैव पञ्चमश्चेतसे रोचते, नत्वत्र सत्यत्व प्रयोजकम्, अत सर्वेऽपि तुल्या एवेति भाव। अत्रायमेव श्लोको दृष्टान्त। अत्रत्ययोरेव प्रथमचरमशब्दर्वर्णसाम्ये सत्यपि चरमे चरम शब्द एवानुप्रासातिशय न प्रथम शब्दे। प्रथम इत्युक्ते नानुप्रास। प्रथमचरमयोरित्युक्ते तु चरम एवानुप्रासातिशयो दृश्यते न तथा प्रथम इत्यर्थ इति वा। यद्वा आद्यपादचतुर्थपादयोर्वर्णसाम्येसत्यपि चरमे चतुर्थपादेऽनुप्रासभासा विलासो विलसति। उभयोरनुप्रासत्वे सत्यपि चतुर्थेऽनुप्रासभासा विलास इत्युक्तेस्तत्रैवानुप्रासत्त्वम् न तु प्रथमे।[1] आचार्य मल्लिनाथ एव नारायण की व्याख्या से स्पष्ट होता है कि जिस प्रकार वर्णो के सादृश्य रहने पर अनुप्रास अलकार होता है उसी प्रकार (पॉच नलो मे) रूपाकृति समान होने के कारण नैषधकार ने अनुप्रास अलकार के विलासो की मीमासा (दमयन्तीमुखात्) की है।

अनुप्रास अलकार की मीमासा सर्वप्रथम भामह ने की थी। उनके मत मे समान रूप वर्णों की आवृत्ति को अनुप्रास कहते है।[2] तदनन्तर अनेको काव्यविदो ने अपने अपने ढग से अनुप्रास का विवेचन किया[3] परन्तु उनमे आचार्य मम्मट ने सबसे भिन्न पद्धति का आश्रय लेते हुए वर्णसाम्य तथा रसानुकुलवर्णनिबन्धन का प्राधान्य स्थापित करते हुए अनुप्रास की परिभाषा देते हुए कहा, "वर्णसाम्यम् अनुप्रास।" स्वरवैसादृश्येपि व्यञ्जनसदृशत्व वर्णसाम्यम्। रसाद्यनुगत प्रकृष्टो न्यासोऽनुप्रास।[4] उन्होने अनुप्रास के दो भेद किये-वर्णानुप्रास एव शब्दानुप्रास, इन्हे क्रमश निरर्थकवर्णानुप्रास एव सार्थकवर्णनुप्रास भी कहते है। मम्मट ने वर्णानुप्रास के अन्तर्गत छेकानुप्रास एव वृत्यानुप्रास का समावेश किया एव शब्दानुप्रास

---

1 नै० 13/54 नारायण

2 सरूपवर्णविन्यासमनुप्रास प्रचक्षते । - काव्याल० 2/5
नानार्थवन्तोऽनुप्रासा न चाप्यसदृशाक्षरा । युक्त्यानया मध्यमया जायन्ते चारवो गिर ।। काव्याल० 2/7

3 वर्णवृत्तिरनुप्रास पादेषु च पदेषु च। पूर्वानुभवसस्कार बोधिनी यद्यदूरता ।। दण्डी - काव्यादर्श 1/55
इत्यनुप्रासमिच्छन्ति नातिदूरान्तरश्रुतिम् । न तु रामामुखम्भोजसदृशश्चन्द्रमा इति ।। वही 1/58
- सरूपव्यजनन्यास तिसृष्वेतासु वृत्तिषु । पृ०थक् पृ०थगनुप्रासममुशति कवय सदा ।। उद्भट- का०सा०स० 1/7
- शेष सरूपोऽनुप्रास । पदमेकार्थमनेकार्थं च स्थाननियत तद्दिधमक्षर च शेष।
सरूपोऽन्येन प्रयुक्तेन तुल्यपोऽनुप्रास। अनुल्वणोवर्णानुप्रास श्रेयान्। उल्वणस्तु न श्रेय । वामन -का०सू० वृ0 1/2/8
- एकद्वित्रातरित व्यजनम विवक्षितस्वर बहुश। आवर्त्यते निरन्तरमथवा यदसावनुप्रास ।। रूद्रट - काव्या० 2/18
- आवृत्तिर्या तु वर्णाना नातिदूरान्तरस्थिता। अलकार स विद्वभिरनुप्रास प्रदर्श्यते ।। भोज-स क 2/70
- व्यजनस्यावृत्तिनुप्रास। हेमचन्द्र, शब्दानुशासन, पृ० 295
- अलकारप्रस्तावे केवलस्वरपौनरुत्यमचारुत्वान्न गण्यते। रूय्यक- अल०स० पृ० 16
- अनुप्रास शब्दसाम्य वैषम्येऽपि स्वरस्य यत् ।
स्वरमात्रसादृश्य तु वैचित्रयाभावान्न गणितम्।
रसाद्यनुगततत्त्वेन प्रकर्षेण न्यासोऽनुप्रास ।। विश्वनाथ सा०द० 10/3 एव वृत्ति
- एकेन द्वितैर्वा व्यञ्जनैरन्तरित व्यवहित अथवा निरन्तर अविवक्षितस्वर यद् व्यञ्जन बहुशो बहून वारान् आवर्त्यते ततोऽनुप्रास इति। आचार्य नेमिसाधु (रुद्रटालकार टीका)
- तुल्या श्रुति श्रवण येषा तथाभूतानाम् अक्षराणाम् आवृत्ति पुन पुन आवर्तनम् उच्चारणमित्यर्थ। स्फुरद्गुण स्फुरन्तो माधुर्यादयो गुणा यत्रतथा भूत सोऽनुप्रास.। वाग्भटालकार टीका

4 का०प्र० 9/79 एव वृत्ति

के अन्तर्गत लाटानुप्रास माना पुन लाटानुप्रास के दो भेद पदगत एव नामगत किये। पदगत के दो भेद अनेक पदगत एव एकपदगत तथा नामगत के तीन भेद समासासमासमगत् एक समासगत, एव विभिन्नसमासगत माने। इस प्रकार शब्दानुप्रास के पॉच भेदो को मम्मट ने अभिहित किया।[1] ध्यातव्य है कि नैषधकार ने पचनली प्रसग मे जिस अनुप्रास अलकार के विलास की चर्चा की है उससे यही प्रतीत होता है सभवत उनका आशय शब्दानुप्रास की ओर ही था।

काव्यशास्त्र मे श्लेष अलकार की गणना शब्दालकार (शब्दश्लेष) एव अर्थालकार (अथश्लेष) दोनो मे की जाती है। जहॉ शब्द का परिवर्तन होते ही वाक्य का वैचित्र्य या चमत्कार समाप्त हो जाय, वहॉ शब्दालकार, एव जहॉ शब्द के पर्यायवाची शब्द रखने पर भी वैचित्रय नष्ट न हो वहा अर्थालकार माना जाता है। अर्थात् पूर्वोक्त अन्वयव्यतिरेक भाव ही इन अलकारो के शब्दगत अथवा अर्थगत होने मे परमनियामक तत्त्व है। श्रीहर्ष ने चमत्कारात्मक शैली मे शब्दश्लेष अलकार की भी मीमासा नैषध मे की है जहॉ हस दमयन्ती के कथन के प्रत्युत्तर मे कहता है कि-

नृपेण पाणिग्रहणे स्पृहेति नल मन कामयते ममेति।
आश्लेषि न श्लेष कवेर्भवत्या श्लोकद्वयार्थ सुधिया मया किम् ।।[2]

अर्थात् श्लेष कवि की भॉति (श्लेषपण्डिता)[3] तुमसे उच्चारण किये गये द्विजरापणिग्रहाभिलाष[4] "चेतो नलकामयते"[5] के दोनो अर्थे को क्या सुधी ने नहीं समझा हैं? अर्थात् मैं (हस) आपके कथन को अच्छी तरह समझ गया हूँ यद्यपि तुमने स्पष्ट न कहकर श्लेष द्वारा अपना मनोरथ बतलाया है तथापि तुम नल को चाहती हूँ ऐसा तुम्हारे कथन के अभिप्राय (नलवरण) को मैने (हस) ने समझ ही लिया है। यहॉ नैषधकार ने दमयन्ती को श्लेष कवि की सज्ञाप्रदान की है, क्योकि उसने स्पष्टतया यह न कहकर कि मै नल से विवाह करना चाहती हूँ या मेरा चित्त नल को चाहता है बल्कि द्वयार्थक शब्दो को रखकर भी अपना मन्तव्य हस के सामने रखा है। श्लेष अलकार की प्रथम मीमासा आचार्य भामह ने की थी। उनके मत मे यदि गुण, क्रिया एव नाम के कारण उपमेय का उपमान के साथ तादात्म्य या अभेद स्थापन हो तो श्लेष अलकार कहलाता है।[6] भरतमुनि ने श्लेष को अलकार मे स्थान न देकर गुणो मे इसका निर्धारित किया

---

1 का०प्र० 9/79 82

2 नै० 3/69

3 श्लेषकवे श्लेषभङ्गया कवयित्र्या श्लिष्टशब्दप्रयोक्त्या इत्यर्थ। नै० 3/69 मल्लिनाथ

- हे भैमि। श्लेषकवे पूर्व राजकर्तृके पाणिग्रहणे मम वाञ्छेति, अनन्तर नम मनो नलमभिलष्यतीति च श्लिष्टकवित्वकारिण्या भवत्यास्तव क्रमेण – "का नाम बाला" (नै०3/59) चेतो लङ्कामयते (नै० 3/67) इत्यादे श्लोकद्वयस्यार्थोऽभिप्राय सुधिया विदुषापि केनचिन्नाश्लेषि नाज्ञायि, मन्दप्रज्ञेन मया नाज्ञायीति किं वाच्यम्। अथ च विदुषा श्लेषादिवर्णने पटुना मया नाज्ञायि किम्? अपितु ज्ञात एव, किमर्थं गोपायसीति भाव ॥ नै० 3/69 नारायण

4 मनस्तु य नोज्झति जातु यातु मनोरथ कण्ठपथं कथ स ।
का नाम बाला द्विजराजपाणिग्रहाभिलाष कथयेदलज्जा ॥ नै० 3/59

5 इतीरिता पत्ररथेन तेन ह्रीणा च हृष्टा च बभाण भैमी ।
चेतो नलकामयते मदीय नान्यत्र कुलापि च साभिलाषम् ॥ नै० 3/67

6. उपमानेन यत्तत्त्वमुपमेयस्य साध्यते। गुणक्रियाभ्या नाम्ना च श्लिण्ट तदभिधीयते ।
लक्षण रूपकेऽपीद लक्ष्यते काममत्र तु । इष्ट प्रयोगो युगपदुपमानोपमेययो ॥ काव्याल० 3/14,15

एव भरत के मत मे अभीष्ट अर्थ समूह के द्वारा परस्पर अनुबद्ध पदो की श्लिष्टता को श्लेष कहते है।[1] विभिन्न विद्वानो की सारणि मे[2] आचार्य मम्मट भी श्लेष की परिभाषा देते हुए कहते है कि श्लेष वह अलकार है जिसमे अर्थभेद के कारण परस्पर भिन्न शब्द भी उच्चारण सारूप्य के कारण एक रूप प्रतीत हुआ करते है। यह अक्षरो के सारूप्य के कारण आठ प्रकार का हुआ करता है[3] उपर्युक्त सभी विद्वानो की श्लेषसम्बन्धी मीमासा के अध्ययन से यह ससूचना मिलती है कि नैषधकार आचार्य दण्डी स अधिक प्रभावित दिखते है क्योकि उन्होने भी यह माना है कि श्लिष्ट पदो (अनेकार्थक वाची पदो) से अनेक अर्थो का अभिधान होने पर शब्द श्लेष की निष्पत्ति होती है एव दमयन्ती हस वार्तालाप प्रसग मे इसका आख्यान भी किया है। साथ ही शब्दश्लेष मे प्रयुक्त श्लिष्टपदो की सरणि का भी उन्होने दमयन्ती स्वयवर प्रसग मे यथेष्ट प्रतिपादन भी किया है, जहॉ दमयन्ती सरस्वती की वाग्रचना की प्रशस्ति करती हुई कहती है कि

सा भङ्गिरस्या खलु वाचिकाऽपि यद्भारती मूर्तिमतीयमेव ।
श्लिष्ट निगद्यादृत वासवादीन्विशिष्य मे नैषधमप्यवादीत् ।।
जग्रन्थ सेय मदनुग्रहेण वच स्रज स्पष्टयितु चतस्र ।
दृे ते नल तक्षयितु क्षमेते ममैव मोहोऽयमहो महीयान् ।।
श्लिष्यन्ति वाचो यदमूरमुष्या कवित्त्वशक्ते खलु ते विलासा ।
भूपाललीला किल लोकपाला समाविशन्ति व्यतिमेदिनोऽपि ।।[4]

---

1 ईप्सितेनार्थजातेन सम्बद्धानुपरस्परम् । श्लिष्टता या पदाना हि श्लेष इत्यभिधीयते ।।
विचारगहन यत्स्यात् स्फुट चैव स्वभावत । स्वत सुप्रतिबद्ध च श्लिष्ट तत्परिकीर्तितम् ।। ना०शा० 16/98,99

2 श्लिष्टमिष्टमनेकार्थमेकरूपान्वित वच । तदभिन्नपद भिन्नपदप्रायमिति द्विधा ।। दण्डी काव्यादर्श 2/310
- एकप्रयत्नोच्चार्याणा तच्छाया चैव विभ्रताम्। स्वरितादिगुणैर्भिन्नैर्बन्ध श्लिष्टमिहोच्यते ।
अलकारान्तरगता प्रतिभा जनयत्पदै । द्विविधैरर्थ शब्दोक्तिविशिष्ट तत्प्रतीयताम् ।। उद्भट का0सा0स0 4/9,10
- स च धर्मेषु तत्रप्रयोगो श्लेष । उपमानोपमेयस्य धर्मेषु गुणक्रियाशब्ददरूपेषु तत्तवारोप ।। वामन का०सू०वृत्ति 4/3/7
- वक्तु समर्थमर्थ सुश्लिष्टाक्लिष्ट विविधपदसन्धि । युगपदनेक वाक्य यत्र विधीयते स श्लेष ।।
वर्णपदलिगभाषाप्रकृतिप्रत्यय विभक्ति वचनानाम् । अत्राय मतिमद्भिर्विधीयमानाऽष्टधामवति ।। रुद्रट काव्याल० 4/1,2
यत्रैक मनैकार्थैर्वाक्य रचित पदैरनेकस्मिन् । अर्थे कुरुते निश्चयमर्थश्लेष स विज्ञेय ।। वही 10/1
- एकरूपेण वाक्येन द्वयोर्भणनमर्थयो । तत्रेण यत्सशब्दज्ञै श्लेष इत्यभिशब्दित ।। भोज0स०क० 2/68
श्लेषोऽनेकार्थकथन पदैनैकेन कथ्यते । पदक्रियाकारकै स्याद्भिन्नाभिन्नै स षड्विध ।। वही 4/58
- विशेष्यसमायि साम्ये द्वयोर्वोपादाने श्लेष ।
केवल विशेषणसाम्य समासोक्तवुक्तम् । विशेष्ययुक्तविशेषणसाम्य त्वधिकृत्येदमुच्यते।। रुय्यक अल0स0 पृ०121
- खण्डश्लेष पदस्तोमस्तस्यैव पृ०थगर्थता । अर्थश्लेषोऽर्थमात्रस्य यद्यनेकार्थ सश्रय ।। जयदेव-चद्रालोक 5/63,64,65
- श्लिष्टै पदैरनेकार्थाभिधानेश्लेष इष्यते, विश्वनाथ, सा०द० 10/11
शब्दै स्वभावादेकार्थे श्लेषोऽनेकार्थवाचनम् । वही 10/57
- नानार्थ सश्रय श्लेषो वर्ण्यावर्ण्योभयाश्रित । अप्पय्यदीक्षित कुवल पृ० 64
अनेकार्थशब्दविन्यास श्लेष - वही पृ० 98
- श्रुत्यैकयानेकार्थप्रतिपादन श्लेष । तच्चद्वेधा। अनेनधर्मपुरस्कारेणैकधर्मपुस्कारेण च। आद्य द्वेधा । चेति त्रिविध श्लेष । प0 रा0 जगन्नाथ रसगगा-पृ० 523
- **उभय विशेष्यान्वितयोरेकेनप्रोक्तिरर्थयो श्लेष. । अय च श्लेषो द्विधा सभगोऽभगश्च । अभिन्नानुपूर्वीकशब्दप्रतिसन्धान बोध्यार्थान्तरकत्त्य सभगत्वम्। समानानुपूर्वीकशब्दप्रतिसन्धानबोध्यार्थान्तरकत्वमभगत्वम्।**
आद्यश्चाष्टधावर्णपदलिगभाषाप्रकृतिप्रत्ययविभक्तिवचनभेदात्। विश्वेश्वर पडित, -अलकार कौस्तुभ - पृ० 241, 242

3 वाच्यभेदेन भिन्ना यत् युगपदभाषणस्पृ०श । श्लिष्यन्ति शब्दा श्लेषोऽसावक्षरादिभिरष्टधा ।। का०प्र० 9/84
अर्थभेदेन शब्दभेद इति दर्शने काव्यमार्गे स्वरो न गण्यते इति च नये वाच्यभेदेन भिन्ना अपि शब्दा यत् युगपदुच्चारणेन श्लिषन्ति भिन्न स्वरूपमपह्नुते स श्लेष । स च वर्णपदलिगभाषाप्रकृतिप्रत्ययविभक्तिवचनाना भेदादष्टधा। का०प्र० 9/84
वृत्ति - श्लेष स वाक्ये एकस्मिन् यत्रानेकार्थता भवेत्। का०प्र० 10/96

4 नै० 14/14,15,16

यहाँ दमयन्ती का कथन है कि सरस्वती की श्लेषयुक्त वाणी ने उसे (दमयन्ती) को पाँच नलो मे वास्तविक नल को इगित किया था।[1] एव वचनमालाओ यथा- "नामग्राह मया नलमुदीरितम्, नले राहजरागभरात् एव महीमहेन्द्र नलमुदीरित" से भी वास्तविक नल को जान लेने की पदावलियो का आख्यान किया था लेकिन मै (दमयन्ती) श्लिष्ट वाक्यो एव उनके कवित्त्व शक्ति के विलास को नहीं समझ पायी, यह आश्चर्य का विषय है। यहाँश्रीहर्ष ने दमयन्ती के मुख से सरस्वती को भी श्लेष पण्डिता की उपाधि से समलकृत किया है। कवि की कवित्त्व शक्ति के कारण नलभिन्न इन्द्रादि देवता भी नल की आकृति धारण करने के कारण श्लोको मे श्लेषशक्ति के द्वारा (नलरूप मे) मूर्तिमान होकर दिखायी पडते है। नलरूपधारी देवो एव नल का वर्णन नैषधकार ने श्लेषगुणसम्पन्नपदावली मे इतनी कुशलता से किया है कि चोसठ कलाओ मे प्रवीण दमयन्ती भी यथार्थ एव अयथार्थ नल मे भेद न कर सकी, यह कवि की अप्रतिम कवित्त्व शक्ति का प्रमाण कहा जा सकता है। दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि यहाँ परस्पर मे आकृति, कर्म स्थानादि के कारण भिन्न भी इन्द्रादि चारो देवता, लोकपाल अश द्वारा राजा नल बनकर एक हो रहे है अत लोकपालो का अश होने मे नल के लिए ही प्रयुक्त किये गये सरस्वती देवी के वचन श्लेष को कहते है। नैषधीयचरितम् के प्राचीन टीकाकारो मल्लिनाथ एव नारायण का भी यही अभिमत है।[2]

---

1 अत्याजिलब्धविजयप्रसरस्त्वया कि विज्ञायते रूचिपद न महमिहेन्द्र ।
प्रत्यर्थिदानवशता हितचेष्टयासौ जीमूतवाहनधिय न करोति कस्य ।। नै० 13/28
येनामुना बहुविगाढसुरेश्वराध्वराज्याभिषेकविकसन्महसा बभूवे ।
आवर्जन तमनु ते ननु । साधु नामग्राह मया नलमुदीरितमेवमत्र ।। नै० 13/29
यच्चण्डिमारणविधिव्यसन च तत्त्व बुद्ध्वाशयाश्रितममुष्य च दक्षिणत्वम् ।
सैषा नले सहजरागभरादमुष्मिन्नात्मानमर्पपितुमर्हसि धर्मराजे ।। नै० 13/30
त्व याऽर्थिनी किल नले न शुभायतस्या क्व स्यान्निजार्पणममुष्य चतुष्टये ते ।
इन्द्रानलार्यमततनूजपय पतीना प्राप्यैकरूप्यमिह ससदि दीप्यमाने ।। नै० 13/33
देव पतिर्विदुषि। नैषधराजगत्या निर्णीयते न किमु न व्रियते भवत्या ।
नाय नल खलु तवातिमहानलाभो यद्येनमुज्झसि वर कतर परस्ते । नै० 13/34

2 श्लिष्ट श्लिष्टार्थं यथा तथा निगद्य उक्त्वा, वासवादीन् इन्द्रादीन्, अ दृत आ तवती, तानेव उपाचरदेवेत्यर्थ। अथ च नैषध नलमपि मे मह्यम् विशिष्य इन्द्रादिभ्यो विशेष कृत्वा अवादीन् कि तु अहमेव न वेद्मीति भाव। नै० 14/14 मल्लिनाथ

- यत् श्लिष्टमुभयसबद्ध वचो निगद्यास्पष्टमुक्त्वा वासवादीनादृत गौरवेणावर्णयत्। यत् अत्याजि (नै० 13/28,29,30,33,34) इत्यादि श्लोकचतुष्टयेन ने मम मह्य वा नैषधमप्यवादीत्। सर्वलोकपालाशस्य नलस्यैव वर्णन युक्तमीति भाव। नै० 14/14 नारायण

- अत्याजीत्यादिश्लोकचतुष्टय नलमेवाचष्टे, किन्तु भङ्ग्या इन्द्रादिचतुष्टयमपि स्पृ०शतीत्याह, श्लिष्यन्तीति। अमुष्या देव्या , अमू वाच अत्याजीत्यादयो गाथा श्लिष्यन्ति नलमिवेन्द्रादीनपि स्पृ०शन्ति इति यत् ते तच्छलेषणमित्यर्थ विधेयीभूतविलासस्य प्राधान्यात्तलिग सख्यानिर्देश कवित्वशक्तें काव्यरचनानैपुण्यस्य, विलासा विकासा खलु कवित्वधर्मोऽय यदन्यपरेणापि शब्देन श्लेषभग्या अर्थान्तरप्रत्यायनम्, अलकारत्वान्न तु तात्पर्यमिति भाव। तथा च श्लेषमहिम्ना तेषा नलसारूप्याच्च तत्परत्वभ्रान्तिरित्याह भूपालस्य नलस्य लीला इव लीला येषा ते तद्रूपधारिण लोकपाला व्यतिभेदिन नलात् भेदवन्तोऽपि समाविशन्ति श्रोतृबुद्धौ लगन्ति किल, ततो ममैवाय व्यामोह इतिभाव। नै० 14/16 मल्लिनाथ

- अमुष्या देव्या अमू पूर्वोक्ता वाच यदनेकार्थतया श्लिष्यन्ति, श्लेष भजन्ते खलु निश्चित कवित्त्वशक्ते काव्यनिर्माणसहप्रतिभाया विलासा विजृम्भणानि कवित्त्वशक्ति विना श्लेषवचोरचना निर्मातुमशक्येत्यर्थ। किल यस्माद्व्यतिभेदिनोऽपि परस्परापेक्षया नलापेक्षया वा विशेषेण सहस्रनेत्रत्वादिनाऽतितरा भिन्ना अप्यमी लोकपाला भूपालस्य नलस्य लीला विलासान्समाविशन्त्यनुभवन्ति नलाकार बिभ्रति। अथ च, नलवर्णकेषु श्लोकेषु मूर्तीभूय प्रतिष्ठा एव दृश्यन्त इत्यर्थ। अत श्लेषवशान्मम भ्रमोऽभूदितिभाव। श्लेषवशान्नललीला सन्तो लोकपाला गाथा समाविशन्तीति वा। अन्योन्य भिन्ना अपि लोकपाला नललीला सन्तोऽशेन नृपत्त्व प्राप्ता सन्त किल एकीभवन्ति। अतो नलस्यैव लोकपालाशतया तत्र प्रयुक्तानि देवीवचासि श्लेष वदन्तीति कवित्त्वशक्ति विलासा एव । नै० 14/16 नारायण

ध्वनि सिद्धान्त :

काव्यशास्त्र मे ध्वनि सिद्धान्त का भी अप्रतिम महत्त्व है। इसके प्रवर्तक आचार्य आनन्दवर्धन (9वी शताब्दी) थे। स्पष्ट है कि नैषधकार के समय तक ध्वनिसिद्धान्त प्रतिष्ठित हो चुका था, एव श्रीहर्ष भी ध्वनिकार से प्रभावित थे, क्योकि उन्होने प्रकारान्तर से ध्वनि सिद्धान्त का सङ्केत अनेक स्थलो पर किया है। आचार्य आनन्नवर्धन ने अपने ग्रन्थ ध्वन्यालोक के प्रारम्भ मे प्रतीयमान अर्थ (ध्वन्यमान अर्थ) का वाच्यार्थ से पार्थक्य दिखाते हुए विधि से निषेध, निषेध से विधि तथा अनुभय रूप प्रतीयमान अर्थ की सत्ता सिद्ध की है। कभी वाच्यार्थ विधि रूप और व्यग्यार्थ निषेध रूप होता है, और कभी वाच्यार्थ निषेध रूप तथा व्यग्यार्थ विधिरूप मे भी प्राप्त होता है, इसी प्रसग को नैषधकार ने एक नये सदर्भ मे अधोलिखित रूप मे उपस्थित किया है–

निषेधवेषो विधिरेष तेऽथवा तवैव युक्ता खलुवाचि वक्रता ।
विजृम्भित यस्य किल ध्वनेरिद विदग्धनारी वदन तदाकर ।।[1]

दूतकर्म का निर्वाह करते हुए नल, दमयन्ती को इन्द्रादि देवताओ का वरण करने के लिये प्रेरित करता है, किन्तु दमयन्ती नल के अतिरिक्त किसी देवता को भी वरण नहीं करना चाहती। इस प्रकार देवताओ का निषेध उसका पार्यन्तिक अर्थ है, किन्तु नल चमत्कारपूर्ण ढग से दमयन्ती से कहता है कि मुझे तुम्हारा देवताओ का निषेध करना, उनको स्वीकार करना ही लगता है, अर्थात तुम्हारा निषेध तो वाच्यार्थ मात्र है, और विधि रूप अर्थ तुम्हे पार्यन्तिक रूप से अभिप्रेत है। इस प्रकार तुम्हारा कथन वाणी मे वक्रता लाता है, और यह तुम्हे शोभा भी देता है। इस विवरण से यह प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष आनन्दवर्धन के साथ-साथ भोज से भी प्रभावित है।[2] यहॉ पर नैषधकार ने 'वक्रता' शब्द के द्वारा आचार्य कुन्तक के वक्रोक्ति सिद्धान्त की ओर भी सकेत किया है, किन्तु उस सिद्धान्त का विवेचन आगे किया जायेगा। मल्लिनाथ एव नारायण ने भी यहॉ श्रीहर्ष के ध्वनि सम्बन्धी मीमासा की पुष्टि की है।[3] इस प्रसग मे नैषधकार को वस्तुध्वनि ही अभिप्रेत हैं। उत्कलनरेश के वर्णन मे भी श्रीहर्ष ने वस्तुध्वनि का निर्देश किया है[4]। यथा–

नृप कराभ्यामुदतोलयन्निजे नृपानय यान्पतत पतद्वये ।
तदीयचूडाकुरुबिन्दरश्मिभि स्फुटेयमेतत्करपादरञ्जना ।।[5]

किन्तु ध्वनियॉ तो तीन प्रकार की होती हैं, रसध्वनि, वस्तुध्वनि एव अलकारध्वनि। इनमे रसध्वनि सर्वश्रेष्ठ एव प्रधान है। आचार्य अभिनवगुप्त ने अपनी लोचन टीका मे कहा है "वस्तुत रस एवं काव्यस्य आत्मा, वस्त्वलकारध्वनी तु रस प्रति पर्यवस्येते।" अर्थात् वस्तुध्वनि एव अलकारध्वनि का पर्यवसान रसध्वनि

1 नै० 9/50

2 तात्पर्यमेव वचसि ध्वनिरेव काव्ये, सौभाग्यमेव गुणसपदि वल्लभस्य ।
लावण्यमेव वपुषि स्वदतेऽङ्गनाया श्रृगार एव हृदि मानवतो जनस्य ।। श्रृगार प्रकाश, पृ० 163, डॉ० राघवन

3. विदग्धनारीवदन सूक्तिचतुरस्त्रीमुख तदाकरस्तस्य ध्वनेरुत्पत्तिस्थानमित्यर्थान्तरन्यास। तत स्थूणानिखननन्यायेन विधिमेव द्रढयितु मेतन्निषेधनाटकमिति निषेधेन विधिरेव व्यजत इति भाव.– नै० 9/50, मल्लिनाथ
– खलु यस्मात् यस्य ध्वने ध्वनिसज्ञकस्योत्तमकाव्यस्य इद निषेधविधिरूप किल प्रसिद्ध विजृम्भित विलासितम्, तस्य आकर खनि उत्पत्तिस्थान विदग्धनारीवदन चतुरवनितामुखम्। वक्रोक्त्यादि ध्वनिविलसित वक्तु विदग्धा नार्येव जानाति, न त्वन्या।.. .नै० 9/50, नारायण

4 स्वाभाविककरपादरागे राजकिरीटमाणिक्यमयूखरञ्जनत्त्वोप्रेक्षणेनास्यानेकराजविजयित्व व्यज्येते, इत्यलङ्कारेण वस्तुध्वनि। नै० 12/80, मल्लिनाथ

5 नै० 12/80

मे होता है। ध्यातव्य है कि भरतमुनि के पश्चात् रस विवेचना की परम्परा शदियो तक अवरूद्ध रही। कालान्तर में नौवीं शताब्दी मे ध्वनि सिद्धान्त के अभ्युदय होने पर रस सिद्धान्त के अभ्युदय होने पर रस सिद्धान्त के स्वरूप मे भी कुछ परिमार्जन हुआ। ध्वनि सिद्धान्त के उदय के पूर्व तक प्रमुख पाच आचार्य आते हैं– भामह, दण्डी, उद्भट, रुद्रट एवं वामन। प्रथम तीन अलकारवादी है एव इन्होने रस को अलकार सिद्धान्त के अन्तर्गत मानने का पक्ष रखा, जब कि रुद्रट ने रस सिद्धान्त के साथ-साथ अलकार सिद्धान्त को भी मान्यता दी, लेकिन वामन ने रीति सिद्धान्त को ही प्रमुख माना। आनन्दवर्धन ने ध्वनिसिद्धान्त का प्रवर्तन कर रससिद्धान्त को बल प्रदान किया, जिसमे अलकार सिद्धान्त को हानि पहुँची।[1] आनन्दवर्धन ने ध्वनि सिद्धान्त का स्रोत वैयाकरणो के स्फोट सिद्धन्त को माना।[2] वैयाकरण श्रूयमाण वर्णो को ध्वनि कहते है। भर्तृहरि ने भी अपने वाक्यपदीय मे लिखा है कि वर्णों या शब्दो के सयोग वियोग से जो स्फोट जनित होता है, उसी शब्दज शब्द को विद्वानो ने ध्वनि कहा है।[3] साहित्य मे ध्वनि (ध्वन् + इन) उस विशेषता को कहते है, जो काव्य मे शब्दो के नियत अर्थो के योग से सूचित होने वाले अर्थ की अपेक्षा प्रसङ्ग से निकलने वाले अर्थ (Hidden meaning, Hint or implied meaning) मे होती है।[4] महाकवि ड्राइडन की उक्ति "More is meant than meets the ear" ध्वनि की ही प्रकारान्तर से ससूचना है। इसका अक्षरार्थ है कि जितना श्रवण होता है, उससे अधिक अर्थ मे कवि का तात्पर्य होता है।

काव्य शास्त्रियो ने वैयाकरणों के आधार पर ध्वनि शब्द को पॉच अर्थों मे प्रयुक्त किया है– व्यञ्जक शब्द, व्यञ्जक अर्थ, व्यग्य (रस, वस्तु अलकार) व्यजना व्यापार तथा व्यग्य प्रधान काव्य। ध्वनति य स व्यजक शब्द ध्वनि, या ध्वनति, ध्वनयति वा य स व्यजक अर्थ ध्वनि। ध्वन्यते इति ध्वनि के आधार पर रस, वस्तु, अलकार तीनो ही ध्वनित होने के कारण ध्वनि है। जिस शक्ति या (व्यजना) व्यापार के द्वारा ध्वनि की निष्पत्ति होती है, उसे भी ध्वनि अभिहित किया जाता है, तथा व्यग्य प्रधान काव्य के सदर्भ मे यह कहा जाता है कि उस काव्य को ध्वनि की सज्ञा दी जाती है जिसमे वस्तु, अलकार तथा रस ध्वनित हो "ध्वन्यतेऽस्मिन्निति ध्वनि"। आचार्य अभिनवगुप्त भी ध्वनि को पञ्चार्थी मानते है।[5] स्पष्ट है कि जिस काव्य मे सदर्भ का ध्वन्यर्थ, अभिहित अर्थ की अपेक्षा अधिक चमत्कारक हो या जहॉ मुख्यार्थ ध्वन्यार्थ के अधीन हो वह काव्य ध्वनि (काव्य) कहलाता है। जहॉ आचार्य आनन्दवर्धन वाच्य से अधिक उत्कर्षक व्यग्य को 'ध्वनि' कहते है,[6] वहॉ आचार्य मम्मट वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यग्यार्थ मे, अधिक चमत्कार (चारुता)

---

1 वाच्याना वाचकाना च यदौचित्येन योजनम्। रसादिविषयेणैतत् कर्म मुख्य महाकवे ॥ ध्वन्या, 3/62

2 यत्रार्थ शब्दो वा नमर्थमुपसर्जनीकृत स्वार्थो। व्यक्त काव्यविशेष ध्वनिरीति सूरिभि कथित ॥ ध्वन्या, 1/13
सूरिभि कथित इति विद्वदुपज्ञेयमुक्ति न यथाकथञ्चित्प्रवृत्तेति प्रतिपाद्यते। प्रथमेहि विद्वासो वैय्याकरणा व्याकरणमूलत्वात् सर्वविद्यानाम्। ते च श्रूयमाणेषु वर्णेषु ध्वनिरिति व्यवहरन्ति। तथैवान्यैस्तन्मतानुसारिभि सूरिभि काव्यतत्त्वार्थदर्शिभिर्वाच्यवाचकसम्मिश्र शब्दात्मा काव्यमिति व्यपदेश्यो व्यञ्जकत्वसाम्याद्ध्वनिरित्युक्त॥ ध्वन्या 1/13 वृत्ति।

3 य सयोगवियोगाभ्या करणैरुपजन्यते। स स्फोट शब्दज शब्दोध्वनिरित्युच्यते बुधै ॥ वाक्यपदीय-1
– स्फोटस्य ग्रहणे हेतु प्राकृतो ध्वनिरिष्यते- वाक्यपदीय-2
– लोके प्रतीतपदार्थक ध्वनि शब्द - महाभारत
– एव तर्हि स्फोट शब्द ध्वनि शब्दगुण - वही 1/2/70
– ध्वनि स्फोटश्च शब्दाना ध्वनिस्तु खलु लक्ष्यते। अल्पो महाश्च केषाचिदुभय तत् स्वभावत ॥ महाभारत
– ध्वनति स्फोटं व्यनक्ति इति ध्वनि। ध्वनति व्यग्यार्थं प्रकाशयति इति ध्वनि॥ का०प्र०, प्रथम उल्लास

4 The First and best of the three main division of Kavya or Poetry, in which the implied or suggested sense of a passage is more striking that the expressed sense, or where the expressed sense is made subordinats to the suggested sense V.S Apte - The Cractical Sanskrit English Dictionery, P 871

5 पचधाऽपि ध्वनिशब्दार्थे येन यत्रयितो यस्ययस्मै इति। - ध्वन्यालोकलोचन, पृ. 141 से 142

6 चारुत्वोत्कर्षनिबधनाहि वाच्यव्यग्यो प्राधान्यविवक्षा - ध्वन्या- 1/13 वृत्ति

होने को 'ध्वनि' की सज्ञा देते है,[1] एव श्रीहर्ष के परवर्ती आचार्य विश्वनाथ वाच्य से अधिक चमत्कारी व्यग्य को ध्वनि' मानते हुए उसे ही उत्तम काव्य की सज्ञा प्रदान करते है।[2] स्मरणीय है कि आनन्दवर्धन ने ध्वनि विरोधी तीन मतो अभाववादी, भाक्तवादी (भक्तिवादी), एव अलक्षणीयतावादी मतो का उल्लेख करते हुए यह स्वीकार किया कि उनके पूर्व ही काव्यात्मभूत ध्वनि तत्त्व का विवेचन एव विश्लेषण प्रारम्भ हो चुका था। उन्होने भरत के नाट्यशास्त्र, भामह, के काव्यालकार, उद्भटकृत काव्यालकार, रुद्रटरचित काव्यालकार तथा वामन कृत काव्यालकारसूत्रवृत्ति के आधार पर उपर्युक्त तीनो मतो का विवरण दिया, एव इन्हे अपने ग्रथ ध्वन्यालोक मे 'तस्याभाव भाक्त' तथा 'वाचा स्थितमविषये' शब्दो द्वारा अभिहित करते हुए इनका खण्डन कर ध्वनि सिद्धान्त की स्थापना की।[3] उन्होने ध्वनियो के 36 भेद माने।[4] इन्हीं भेदो की परिगणना करते हुए अभिनवगुप्त ने इनकी सख्या 7420 मानते है जब कि 284 सकीर्ण भेद X 35 शुद्ध भेद का गुणनफल 9940 होता है।[5] परन्तु आचार्य आनन्दवर्धन के सच्चे अनुयायी मम्मट ने ध्वनि के प्रमुख 51 भेद माने है।[6] लेकिन सभी भेदो, प्रभेदो को मिलाकर ध्वनियो की सख्या 10455 तक पहुँच जाती है।[7] ध्वनियो के एक प्रमुख भेद रसध्वनि का सकेत नैषधकार करते हुए कहते है–

तत्कर्णौ भारती दूनौ विराहाद्भीमजागिराम् ।
अध्वनि ध्वनिभिर्वैणैरनुकल्पैर्व्यनोदयत् ।।[8]

अर्थात् स्वयवर पश्चात् देवताओ के स्वर्गगमन काल मे मार्ग मे दमयन्ती की कण्ठध्वनि देवताओ को अप्राप्य थी, किन्तु सरस्वती देवी ने अपनी वीणा की (श्रृगारसोपेत) रसध्वनि से देवताओ का मनोविनोद किया। देवतागण दमयन्ती की अभ्यर्थना से प्रसन्न होकर, नल दमयन्ती दोनो को वरदान देने के पश्चात् स्वर्ग लोक जा रहे थे, अतएव वह प्रेमप्रफुल्लित थे, इसलिए तत्क्षण उन्हे श्रृगाररस समन्वित ध्वनि ही अभिप्रेत रही होगी, क्योकि उनका ध्येय (गन्तव्य) प्रियापेक्षी भी था। नारायण का कथन है "मार्गेऽनुकल्पैर्भैमीवाण्या सकाशान्न्यूनैर्वैणैर्वीणासंबन्धिभिर्ध्वनिभिव्यनोदयत्सुखिनौ चकार। मुख्याभावेऽनुकल्पोऽपि कार्यार्थमङ्गीक्रियते।"[9] आचार्य मम्मट भी रसध्वनि को ध्वनि का एक भेद मानते है, क्योकि असलक्ष्यक्रमता रूप साधारण धर्म के कारण इसकी एकभेदता सिद्ध हो जाती है।[10] सहृदय चक्रवर्ती आनन्दवर्धन के अनुयायी अभिनवगुप्त के अनुसार विभाव, अनुभाव तथा सचारी भावो के उचित सयोजन द्वारा व्यक्त हुए रति आदि स्थायीभाव की चर्वणा से प्रयुक्त आस्वादप्रकर्ष को रसध्वनि कहा जाता है।[11] चूँकि स्थायी भाव अन्य सभी भावो मे प्रधान होता है एव अन्य व्यभिचारी भाव उसका अभिभाव नहीं कर सकते,[12] अतएव

---

1 इदमुत्तममतिशयिनि व्यग्ये वाच्याद् ध्वनिबुधै कथित। का०प्र० 1/4

2 वाच्यातिशयिनि व्यग्ये ध्वनिस्तत्काव्यमुत्तमम्। सा०द०, 4/1

3 ध्वन्या0 1/1 एव 1/17 वृत्ति

4 सगुणीभूतव्यग्यै सालकारै सह प्रभेदै स्वै । सकरससृष्टिभ्या पुनरप्युद्योतते बहुधा ।। ध्वन्या 3/43

5 लोचन, पृ०-501, 502 एव ध्वनि सिद्धान्त विरोधी सम्प्रदाय- उनकी मान्यताए, पृ० 162

6 भेदास्तदेकपचाशत् - का०प्र० पृ० 185

7 भारतीय साहित्यशास्त्र कोश पृ० 589

8 नै० 17/12

9 नै० 17/12 नारायण

10 रसादीनामनन्तत्वाद्भेद एको हि गण्यते असलक्ष्यक्रमत्व तु सामान्यमाश्रित्य रसाध्वनिभेद एक एव गण्यते। का०प्र० पृ० 148

11 रसध्वनिस्तु स एव योऽत्र मुख्यतया विभावानुभावव्याभिचारिसयोजनोदितस्थायिप्रतिपत्तिकस्य प्रतिपन्तु स्थाय्यशचर्वणाप्रयुक्त एवास्वादप्रकर्ष। ध्वन्या0,II उद्योत, लोचनटीका, पृ० 179

12 परानभिभाव्यो मनोविकारो वा सकलप्रधानोविकारो व स्थायिभाव। रसतरगिणी पृ० 11

स्थाई भाव की प्रधानता के कारण तच्चर्वणारूप रसध्वनि का भी अन्य भाव ध्वनि की अपेक्षा प्राधान्य सिद्ध होता है। यही कारण है कि अभिनवगुप्त भावध्वनि आदि को रसध्वनि का निष्यन्दरूप मानते है।[1]

नैषधकार ध्वनि सिद्धान्त के एक अन्य भेद पदध्वनि का सङ्केत नैषध महाकव्य के उन्नीसवे सर्ग मे किया हे जहॉ वह कहते है–

निशि दशमितामालिङ्गन्त्या विबोधविधित्सुभि र्निषिधवसुधामीनाङ्कस्य प्रियाऽङ्कमुपेयुष ।
श्रुतिमधुपदस्रग्वैदग्धीविभावित भाविक स्फुटरशभृशाभ्यक्ता वैतालिकैर्जगिरे गिर ।।[2]

अर्थात् प्रात काल वैतालिक गणो ने कर्णप्रिय पदसमूह के चातुर्य से व्यजित (श्रृगारादि) रस के प्रकाशित होने से अतिशयसिक्त अर्थात् सरसवचनो से राजा नल एव दमयन्ती को जगाने के लिये श्रुतिप्रियमधुर पद (रचना) गान प्रारम्भ किया। मल्लिनाथ का कथन है "श्रुतिम्धुपदस्रजा श्रुतौ कर्णे, मधूना मधुराणाम्, पदाना सुप्तिङन्तशब्दाना, या स्रक् माला पक्तिरित्यर्थ। तासा या वैदग्धी रचनाचातुर्यम्, कोशिक्यादिवृत्तिसम्पत्तिरिति यावत्। तथा विभाविता व्यञ्जिता भाव स्थायिप्रभृतय अस्य सन्तीति भाविक रसबोधकदिभावादिचतुर्विधसन्दर्भम्। अतएव स्फुट अभिव्यक्त सवेद्यता प्राप्त इत्यर्थ। रस श्रृगारादि रसेव स स्नेहाद्रव तेन भृशम् अत्यर्थम् अभ्यक्ता म्रक्षिता स्निग्धीकृत इत्यर्थ। रसभरिता इति यावत्, गिर वक्ष्यमाणगीतवाच जगिरे गीयन्ते स्म[3] नारायण के मत मे भी नैषधकार के इस प्रसग मे पदध्वनि का सङ्केत मिलता है।[4] पदध्वनि सम्बन्धी एक अन्य उदाहरण देते हुए नैषधकार लिखते है–

चशशतचतुर्वेदीशाखाविवर्तनभूर्तय सविधमधुनाऽलकुर्वन्ति ध्रुव रविरश्मय ।
वदनकुहरेष्वध्येतृणामय तदुदञ्चति श्रुतिपदमयस्तेषामेव प्रतिध्वनिरध्वनि ।।[5]

नल एव दमयन्ती को प्रात काल होने पर निद्रापरित्याग करने के लिये वैतालिकगण कह रहे है कि प्रात काल वेदपाठियो के मुखरूपी गुहा मे अतात्त्विक विवर्तित वेदशाखाओ के सुप्तिङादिरूप पद समूह ही सूर्य किरण रूप होकर ऋचाओ की रास्ते की पदध्वनि ही प्रतिध्वनि ही वेदपाठ के रूप मे सुनायी पड रही हे अर्थात् सूर्योदय हो गया, वेदपाठी वेदाध्ययन करने लगे, अतएव आप (नल एव दमयन्ती) निद्रा त्याग कीजिए। यहा नारायण का मन्तव्य है– "तत्तस्मायदयमध्येतृणा वेद पठता वदनलक्षणेषु सूर्यकराणामेव श्रुतिपदमयो वेदपदरूप प्रतिध्वनि प्रतिशब्दो ध्वनि गगनउदञ्चत्यूर्ध्वं प्रसरति।"[6] आचार्य मल्लिनाथ के मत से भी इस प्रसग मे पदध्वनि होने की ससूचना मिलती है।[7] इस प्रकार ध्वनि सिद्धान्त व्याकरणशास्त्र से अधिक प्रभावित दिखता है। स्वय आननदर्धन ने वैयाकरणे को प्रथम विद्वान् माना था एव उन्होने यह भी

---

1 रसध्वनेरेवामी भावध्वनिप्रमृतयो निष्यन्दा आस्वादे प्रधान प्रयोजकमेवमश विभज्य पृ०थग्गयव्यवस्थाप्यते।- ध्वन्या ।। उद्योत लोचनटीका, पृ० 179

2 नै० 19/1

3 नै० 19/1, मल्लिनाथ

4 कीदृश्यो गिर ? श्रोतृणा श्रुत्यो श्रवणयोर्मधु अमृतरूपाऽतिमधुरा पदस्रक्सुप्तिङन्तपदमाला तस्या वैदग्ध्या वक्रोत्यादिरचनाचातुर्येण विभाविता ध्वनिवृत्या व्यञ्जनाव्यापारेण प्रकाशिता भाविका रत्यादिस्थायिव्यभिचारिसहचारिरूपैर्भावैर्युक्ता, ज्ञापिता इति यावत। तादृशा स्फुटा प्रसन्नतरत्वेन बालि शैरपि प्रतीता ये रसा श्रृगारादयस्तैर्भृश नितरामभ्यक्ता सर्वत सिक्ता। नै० 19/1, नारायण

5 नै० 19/10

6 नै० 19/10, नारायणी व्याख्या

7 तेषा रश्मीनामेव, अय श्रूयमाण, श्रुतिपदमय वेदाक्षरात्मक प्रतिध्वनि प्रतिशब्द रविरश्मी तवलम्ब्य अत्रागत सूर्यलोकीयवेदध्वने प्रतिशब्द इत्यर्थ। अध्येतृणाम् अत्रत्यवेदपाठकाना जनाना, वदनकुहरेषु मुखदरीषु तथा अध्वनि शब्दगुणमये आकाशमार्गे न, उदञ्चति उद्गच्छति। "ऋग्भि पूर्वाह्णे दिवि देव ईयते" इत्यादि श्रुत्त्वा रविरश्मय श्रुतिपदमया एव, सूर्यलोकवासिभिरपि, इदानीं वेदा अधीयन्ते "द्वितीये र तथा भागे वेदाभ्यासो विधीयते" इति दक्षवचनात् इदानीं मर्त्याना वेदाध्येतृणा मुखविवरेषु योऽय ध्वनिरुद्गच्छति स पुन सूर्यलोकवासिना वेदाध्ययनस्य रविरश्मीनवलम्ब्य आगत प्रतिध्वनिरिव प्रतिभातीति भाव। नै 19/10, मल्लिनाथी व्याख्या

माना कि उनके स्फाट सिद्धान्त के वह ऋणी है। साथ ही वह यह भी कहते है कि परिनिश्चित, अपभ्रशरहित शब्दो का स्वरूप ज्ञानपूर्वक प्रयोग करने वाले वैयाकरण विद्वानो के सिद्धान्तो को आधार मानकर ही मेरा ध्वनि सिद्धान्त पल्लवित हुआ है, अत उनके साथ मेरा कोई विरोध नहीं है।[1] आचार्य मम्मट ने भी आनन्दवर्धन का अनुकरण करते हुए ध्वनिव्यवहार को व्याकरणमूलक अभिहित किया है।[2] अवधेय है कि आनन्दवर्धन ने इस तथ्य को भी स्वीकार किया था कि वामनादि रीति आचार्यों ने इस ध्वनि सिद्धान्त को अस्फुट रूप (कुछ-कुछ या धुधले रूप मे) समझा था,[3] परन्तु ध्वन्यालोकार के मत मे पूर्व मे प्रसिद्ध, रस, गुण एक रीति सिद्धान्तो का पर्यवसान ध्वनि सिद्धान्त (रसध्वनि) मे हो जाता है।[4] यथा– एतद्ध्वनिप्रवर्तनेन निर्णति काव्यतत्त्वमस्फुटस्फुरित सदशक्नुवद्भि प्रतिपादयितु वैदर्भीगौडीपाचाली चेतिरीतय प्रवर्तिता। रीतिलक्षण विद्यायिना हि काव्यतत्त्वमेतद् स्फुटतया मनाक्स्फुरितमासादिति लक्ष्यते तदत्र स्फुटतया सम्प्रदर्शितेनान्येनरीतिलक्षणेन न किञ्चित्।

शब्दतत्त्वाश्रया काश्चिदर्थतत्वयुजोऽपरा । वृत्तयोऽपि प्रकाशन्ते ज्ञातेऽस्मिन काव्यलक्षणे ।। 3/47

अस्मिन् व्यग्यव्यजकभावविवेचनमये काव्यलक्षणे ज्ञाते सति या काश्चित्प्रसिद्धा उपनागरिकाद्या शब्दतत्त्वाश्रयावृत्तयो याश्चार्थतत्वसम्बद्धा कैशिक्यादयस्ता समग्रीतिपदवीमवतरन्ति। अन्यथा तु तासामदृष्टार्थानामिव वृत्तीयनामश्रद्धेयत्वमेव स्यान्नानुभवसिद्धत्त्वम्। एव स्फुटतयैव लक्षणीय स्वरूपमस्य ध्वने।[5] उपर्युक्त विवेचन की मीमासा के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि नैषधकार ने ध्वनि सिद्धान्त के अन्तर्गत वस्तुध्वनि, रसध्वनि एव पद ध्वनि का सकेत इस महतीय ग्रथ मे किया है। श्रीहर्ष के पूर्ववर्ती महाकवियो कालिदास एव भवभूति आदि ने भी अपने-अपने महाकाव्यो मे ध्वनि सिद्धान्त के भेदो यथा– शब्दध्वनि एव रसध्वनि का उल्लेख किया है।[6] वाल्मीकिकृत रामायण का "न स सकुचित पथा येन बाली हतो गत" तथा महाभारत का प्रसिद्ध "गृध्रगोमायु सवाद" भी ध्वनि के सुन्दर प्रसङ्ग कहे जा सकते है।

वक्रोक्ति सिद्धान्त –

'नैषधीयचरितम्' मे काव्यशास्त्र मे प्रतिपादित वक्रोक्ति सिद्धान्त के भी सदर्भ यत्र तत्र देखने को मिलते है। उनके पूर्ववर्ती आचार्य भामह ने वक्रोक्ति को सभी अलकारो का प्राण माना है क्योकि चमत्कार वक्रकथन के बिना असम्भव है। यथा–

सैषा सर्वैव वक्रोक्तिरनयार्थोविभाव्यते। यत्नोऽस्या कविना कार्य कोऽलकारोऽनया विना।।[7]

---

1 परिनिश्चितनिरपभ्रशशब्दब्रह्मणा विपश्चिता मतमाश्रित्यैव प्रवृत्तोऽय ध्वनिव्यवहार इति कि तै सह विरोधाविरोधौ चिन्त्येते। ध्वन्या, III उद्योत, पृ० 481

2 इदमुत्तममतिशयिनि व्यग्ये वाच्याद्ध्वनिर्बुधै कथित। का०प्र० 1/4

3 अस्फुटस्फुरित काव्यतत्त्वमेतद्यथोदितम्। अशक्नुवद्भिर्व्याकर्तुं रीतय सम्प्रवर्तिता ।। ध्वन्या० 3/46

4 रसाद्यनुगुणत्वेन व्यवहारोऽर्थ शब्दयो । औचित्यवान्यस्ता एता वृत्तयो द्विविधा स्थिता ।। ध्वन्या० 3/33
व्यवहारो हि वृत्तिरित्युच्यते। तत्र रसानुगुण औचित्यवान्वाच्याश्रयो यो व्यवहारस्ता एता कौशिक्याद्या वृत्तय। वाचकाश्रयोश्चोपनागरिकाद्या। वृत्तयो हि रसादितात्पर्येण सनिवेशिता कामपि नाट्यस्य काव्य चच्छायामावहन्ति। रसादयो हि द्वयोरपि तयोर्जीवितभूता। इति वृत्तादि तु शरीरभूतमेव। –ध्वन्या III उद्येत, पृ० 401

5 –ध्वन्या III उद्योत, पृ० 517

6 श्रोत्राभिराममध्वनिना रथेन स धर्मपत्नीसहित सहिष्णु। ययावनुद्घातसुखेनमार्गं स्वेनेव पूर्णेन मनोरथेन।। रघु० 2/72
भूर्जेशु मर्मरीभूता कीचकध्वनिहेतव। गङ्गाशीकारिणो मार्गे मरुतस्त सिषेविरे ।। रघु - 4/73
उषसि स गजयूथकर्णतालै पटुपटहध्वनिभिर्विनीतनिद्र ।
अरमत मधुराणि तत्र श्रण्वन्विहगविकूजितबन्दिमङ्लानि ।। रघु० 9/71
आस्फालित यत्प्रमदाकराग्रैर्मृदङ्गधीरध्वनिमन्वगच्छत् । रघु० 16/13
– अथ कोऽयमिन्द्रमणिमेचकच्छविर्ध्वनिनैव बद्धपुलक करोति माम् ।
नवनीलनीरधरधीरगर्जितक्षण बद्धकुड्मलकदम्बडम्बरम् ।। उ०रा० 6/17

7 काव्याल० – 2/85

'राघवपाण्डवीयम्' के रचयिता कविराज पण्डित (12वीं शताब्दी) ने अपने ग्रथ मे लिखा है कि सुबन्धु, बाणभट्ट और स्वय वह वक्रोक्ति मार्ग मे निपुण है, चौथा नहीं।[1] परन्तु वक्रोक्ति को शास्त्रीय दृष्टि से व्यापक रूप मे एक सम्प्रदाय बनाने का श्रेय आचार्य कुन्तक (11वीं शताब्दी) को ही जाता है। कुन्तक निश्चित ही नैषधकार के पूर्ववर्ती है, क्योकि वे भोज और अभिनवगुप्त के लगभग समकालीन है। वक्रोक्ति का सामान्य अर्थ वक्र उक्ति (Craaked Vaice) या विषय को घुमा फिरा कर किया गया कथन है, अर्थात् साधारण लागो के कथन से भिन्न, अलौकिक चमत्कार से युक्त कथन ही वक्रोक्ति है। कुन्तक ने वैदग्ध्य भगी भणिति को ही 'वक्रोक्ति' कहा है।[2] यह सामान्य अभिधा से हटकर विचित्रा अभिधा है एव यह स्वभावोक्तिमय कथन तो विल्कुल ही नहीं है। कुन्तक की षड्विधा (वर्णविन्यास पद्पूर्वार्द्ध, पदपरार्ध, (प्रत्यय) वाक्य प्रकरण, प्रबन्ध) वक्रोक्ति के अन्तर्गत आनन्दवर्धन की सभी ध्वनियो का अन्तर्भाव हो जाता है, यद्यपि उन्होने आनन्दवर्धन के ध्वनि सिद्धान्त का कहीं भी खण्डन नहीं किया है किन्तु अपने वक्रोक्ति सिद्धान्त के द्वारा एक समानान्तर चमत्कार पक्ष्ज्ञ को उजागर करके मानो उन्होने ध्वनि सिद्धान्त को निरवकाश ही कर दिया है। वस्तुत कथन प्रकार (अभिधान शैली) मे चमत्कार खोजने वाले आचार्य कुन्तक ही है, और कथ्य (व्यग्य) मे चमत्कार देखने वाले आनन्दवर्धन है। नैषधकार दोनो ही आचार्यो के सिद्धान्तो से प्रभावित है, एव उन्होने नैषधमहाकाव्य मे दोनो का यत्र-तत्र सदर्भ भी प्रस्तुत किया है।

'वक्रोक्ति' की व्याख्या विभिन्न विद्वानो ने[3] विविधरूपो मे की है किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि नैषधकार आचार्य कुन्तक से ही अधिक प्रभावित है। नवे सर्ग मे देवदूत बने नल दमयन्ती को चारो देवताओ

---

1 सुबन्धुबाणभट्टश्च कविराज इतित्रय। वक्रोक्तिमार्ग निपुणाश्चतुर्थो विद्यते न वा राघवपाण्डवीयम्- 1/41

2 वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभगीभणितिरुच्यते - वक्रोक्ति जीवितम् 1/10
वक्रोक्ति प्रसिद्धाभिधानव्यतिरोकिणी विचित्रैवाभिधा। कीदृशी- वैदग्ध्यभगीमणिति। विदग्ध्य विदग्धभाव कविकर्मकौशल तस्य भगी विच्छित्ति, तया भणिति विचित्रै वाभिधा वक्रोक्तिरित्युच्यते। वही 1/10 वृत्ति
वक्रोक्ति प्रसिद्धाभिधानव्यतिरेकिणी विचित्रैवाभिधा। वैदग्ध्य कविकौशल तस्य भङ्गी विच्छित्ति।। व०जी०1/11

3 वक्ता तदन्यथोक्त व्याचष्टे चान्यथा तदुत्तरत। वचन यत्पदभगैज्ञेया सा श्लेष वक्रोक्ति ।।
विस्पष्ट क्रियमाणादक्लिष्टा स्वरविशेषो भवति। अर्थान्तरप्रतीतिर्यत्रासौ काकुवक्रोक्ति ।। -रूद्रट-काव्याल 2/14 16
- यदुक्तमन्यथा वाक्यमन्यथाऽन्येन योज्यते। श्लेषेण काक्वा वाज्ञेया सा वक्रोक्तिस्तथाद्विधा ।। मम्मट- का०प्र० 9/78
- अन्यथोक्तस्य वाक्यस्य काकुश्लेषाभ्यामन्यथायोजन वक्रोक्ति। रूय्यक-अल०स० पृ० 77 एव 219
- युक्त वक्रस्वाभावोक्त या सर्वमेवैतदिष्यते। भामह-काव्या० - 1/30, एव 2/84,85,86
- वाचा वक्रार्थ शब्दोक्तिरलकाराय कल्पते। वही-5/ 66 एव 6/28
- श्लेषो सर्वासु पुष्णाति प्रायो वक्रोक्तिषु श्रियम्। वही 2/363
- भिन्न द्विधा स्वभावोक्तिर्वक्रोक्तिश्चेति वाङ्मयम्।। दण्डी०का०दर्श० 2/363
- वक्रा स्वभावमधुरा स्निग्धा शसन्त्यो रागमुल्बणम्। दृशो दूत्यश्च कर्वन्ति कान्ताभि प्रेषि प्रियान्।। का०दर्श०/316
- सदृश्याल्लक्षणा वक्रोक्ति। वामन- का०सू० 4/3/8
- यद्वक्र वच शास्त्रे लोके च वच एव तत्। वक्रं यदर्थवादौ तस्य काव्यमिति स्मृति। भोज०श्रृ०प्र० 9/6
- भोज वक्रोक्ति को सर्वालकाररूपा भी मानते हैं यथा- "इत्येतदपि सर्वालकारसाधारण लक्षण अनुसर्तव्यम्। अस्मिन् सति सर्वालकारजातयो वक्रोक्त्याभिधानवाच्या भवन्ति। वही, 9/6 की वृत्ति
- वक्रोक्ति श्लेषकाकुभ्यामपरार्थप्रकल्पनम्- अप्पदीक्षित-कुवलायनद - पृ० 259
- शब्दस्य हि वक्रता अभिधेयस्य हि वक्रता लोकोत्तीर्णेन रूपेणावस्थानमिति। -अभिनवगुप्त, ध्वन्या, लो लो पृ० 208
- अन्यस्यान्यार्थक वाक्यमन्यथा योजयेद्यदि। अन्य श्लेषेण काक्वा वा सा वक्रोक्ति स्ततो द्विद्या।। विश्वानाथ, सा०द० 10/9
- "A figure of speech consisting in the use of evasive speech or reply, either by means of a pun, or by on affected change of tone" V S Apte the cratical Sanskrit English Dictionary III Vol P 1378
- श्री पी वी काणे वक्रोक्ति' को क्रीणाडाप के अर्थ में उपयुक्त मानते हैं। स०ल० इति - काणे, पृ० 471
- राजशेखर ने 'वक्रोक्ति' का निरूपण नहीं किया। 'काकु', जिसे आलकारिकों ने वक्रोक्ति का एक भेद माना है, राजशेखर ने अलकार्य कहा है, अलकार नहीं। यथा- 'काकुवक्रोक्तिर्नाम शब्दालकारोऽयम' इति रूद्रट। अभिप्रायवान्पाठधर्म काकु, स कथमलकारी स्यात्, इति यायावरभि का मीमासा, पृ० 78
- सा पत्यु प्रथमेऽपराधसमये सख्योपदेरीय विना। नो जानाति सविभ्रमाङ्गवलनावक्रोक्ति ससूचनम्।। अमरूकशतक-29
- रूद्रट, ममट वाग्भट्ट, वाग्भट्टद्वितीय, विश्वनाथ तथा केशवमिश्र ने वक्रोक्ति को शब्दालकार, तथा वामन जयदेव विद्याधर विद्यानाथ, रुय्यक तथा अप्पयदीक्षित ने अर्थालकार जब कि भामट ने सर्वालकार रूप मे स्वीकार किया है।
- उक्तिप्रत्युक्तिमद् वाक्य वाकोवाक्य द्विधैव तत्। वरजुवक्रोक्तिभेदेन तत्राद्य सहज वच।।
सा प्रश्नपूर्विका प्रश्नपूर्वकेति द्विधा भवेत्। वक्रोक्तिस्तु भवेद् भङ्ग्या काकुस्तेन कृता द्विधा।। अग्नि०पु० 342/32-33
- द्रष्टव्य हेमचन्द्र काव्यानुशासन, पृ० 332, 333, जयदेव - चन्द्रालोक 5/111, विद्यानाथ-प्रतापरुद्रीय, पृ० 296/97 विद्याधर-एकावली 8/71 केशवमिश्र- अलकारशेखर 10/1 तथा पृ० 27

मे से किसी एक को वरण करने का निवेदन करते है किन्तु दमयन्ती नल के अतिरिक्त किसी अन्य को पतिरूप मे स्वीकार करने को तैयार ही न थी, एव नल की पतिरूप मे प्राप्ति न होने पर वह प्राणोत्सर्ग करने को भी उद्यत हो जाती हे, तब नल दमयन्ती से वक्रोक्ति युक्त कथन करते हुए कहते हे-

निषेधवेषो विधिरेष तेऽथवा तवैव युक्ता खलु वाचि वक्रता ।
विजृम्भित यस्य किलध्वनेरिद विदग्धनारीवदन तदाकर ।।[1]

नल दमयन्ती से कहते है कि अच्छा मै समझ गया कि जो तुम देवताओ के वरण का निषेध कर रही हो, वास्तव मे निषेधमुखेन यह तुम्हारी (देव वरण की) स्वीकृति ही है अर्थात् तुम इन्द्रादि देवताओ को ही स्वीकार कर रही हो, इस तरह की तुम्हारे वचनो मे वक्रोक्ति व्यग्योक्ति उचित भी है, क्योकि ध्वनिरूप काव्य के यह विधिनिषेध, विलास रूप है एव विदग्धाओ (चतुरस्त्रियो) के मुख ही उसके आकर होते हैं, अर्थात् चतुर स्त्रियो के मुख से ही उत्तम प्रकार की वक्रोक्ति वचन देखे जाते है। आचार्य मल्लिनाथ का कथन भी श्रीहर्ष के उपर्युक्त विवरण मे वक्रोक्ति विलास की प्रासङ्गिकगता एव समीचीनता को पुष्ट करता है।[2] साथ ही नारायण भी मल्लिनाथ के कथन से सहमत दिखते है। यथा- "अथवा इन्द्रादीन्न वृणे इति एष ते तव निषेधो वेषो रूप यस्यैतादृशो विधिरेव। न वृणे इति यथाश्रुतार्थग्राहिणा मया पूर्व न ज्ञात , इदानीं वृणे इति विधिरेव ज्ञात । लौकिक वचनरीतिरप्येवम्। निषेध विधिप्रतीत कथमित्यत। आह-खलु यस्मात् तवैव वाचि वक्रता युक्ता। वक्रोक्तिस्त्वद्वचनविषयैव युक्तेत्यर्थ।" वक्रोत्यादिध्वनिविलसित वक्तु विदग्धा नार्येव जानाति, न त्वन्या त्वादृशी वक्रोक्त्यादि वक्तु चतुरा ना (अ) स्तीत्यर्थ । विस्पष्ट क्रियमाणादक्लिष्टा स्वरविशेषो भवति। अर्थान्तरप्रतीतिर्यत्रासौ काकुवक्रोक्ति।। इति, "वार्पी स्नातुमितो गतासि न पुनस्तस्य प्रियस्यान्तिकम्" इत्यत्र स्नाननिषेधे स्नानविधि प्रियोपसरणविधौ तन्निषेध इति। तथा प्राणेश! विज्ञप्तिरिय मदीया तत्रैव नेया दिवसा कियन्त। सप्रत्ययोग्यस्थितिरेष देश कला यदिन्दोरपि तापयन्ति।!" इति। तत्रैव दिवसा नेया , नात्रागन्तव्यमिति निषेधो व्यज्यते, स निषेधोऽपि भङ्ग्या आगमनविधिरेव। यतस्तया आत्मनो भर्तविरहासहत्त्व भङ्ग्या सूचितमिति निषेधवेषो विधिज्ञातव्य।[3] इस प्रकार स्पष्ट है कि नारायण ने वक्रोक्ति को लौकिक रीति की सज्ञा दी। आचार्य मम्मट ने वक्रोक्ति के दो भेद माने है, श्लेष वक्रोक्ति एव काकु वक्रोक्ति[4] उन्होने श्लेषवक्रोक्ति का निम्नलिखित उदाहरण दिया–

नारीणामनुकूलमाचरसि चेज्जानासि कश्चेतनो वामाना प्रियमादधाति हितकृन्नैवाबलाना भवान् ।
युक्त कि हितकर्तन ननु बलाभावप्रसिद्धात्मन सामर्थ्य भवत पुरन्दरमतच्छेद विद्यातु कुत ।।

एव – अहो केनेदृशी बुद्धिर्दारुणा तव निर्मिता। त्रिगुणा श्रूयते बुद्धिर्न तु दारुमयी क्वचित् ।।

मम्मट द्वारा उद्धृत काकु वक्रोक्ति का उदाहरण निम्न रूप मे है–

गुरूजनपरतन्त्रतया दूरतर देशमुद्यतो गन्तुम् ।
अलिकुलकोकिलललिते नैष्यति सखि सुरभिसमयेऽसौ ।।[5]

---

1 नै० 9/50

2 हे विदग्धे! अथवा तव एष इन्द्रादिनिषेधो निषेधवेषो निषेधाकारो विधिरङ्गीकार एव । तथा हि-वाचि वचने वक्रता वक्रोक्तिचातुरी व्यग्योक्तिचातुरीति यावत्। सा तवैव युक्ता खलु। कुत , इद वक्र वाक्य वञ्चनाचातुभि यस्य ध्वनेर्व्यञ्जकवृत्तेर्विजृम्ति विजम्भण। विदग्धनारीवदन सूक्तिचतुरस्त्रीमुख तदाकरस्तस्य ध्वनेरुत्पत्तिस्थानमित्यर्थान्तरन्यास। तत स्थूणानिखननन्यायेन विधिमेव द्रढयितुमेतन्निषेधनाटकमिति निषेधेन विधिरेव व्यज्यत इति भाव। नै० 9/50, मल्लिनाथ

3 नै० 9/50, नारायण

4 यदुक्तमन्यथा वाक्यमन्यथान्येन योज्यते। श्लेषेण काक्वा वा ज्ञेया सा वक्रोक्तिस्तथा द्विधा ।। का०प्र० 9/78

5 का०प्र०, पृ० 492, 493

श्रीहर्ष ने भी वक्रोक्ति के दोनो भेदो को मान्यता देकर उनका वर्णन नैषध मे कथनक के प्रसङ्गानुसार किया है।[1] वक्रोक्ति काव्य के साथ-साथ व्यावहारिक जीवन मे भी अपनायी जाती है, एव हास परिहास के क्षणो मे इसका अद्वितीय योगदान रहता है।[2] आचार्य रुद्रट ने श्लेष वक्रोक्ति की व्याख्या करते हुए कहा–

वक्त्रा यदन्यथोक्त व्याचष्टे वाऽन्यथा तदुत्तरद ।
वचन यत्पदभगैर्ज्ञेया सा श्लेष वक्रोक्ति ॥

नैषधकार नल एव दमयन्ती दोनो को व्यवहार निपुण बताते हुए कहते है कि वे लोग व्यवहार मे इसलिये निपुण थे, क्योकि वे दोनो 'वक्रोक्ति' अभिधान से परिचित थे। वक्रोक्ति पूर्ण सरस्वती तो नलकण्ठ का आलिगन करके रसपरिपूर्ण ही थी। यथा–

अल सजन्धर्मविद्यौ विधाता रुणद्धि मोनस्यमिषेण वाणीम् ।
तत्कण्ठमालिङ्ग्य रसस्य तृप्ता न वेद ता वेदजड स वक्राम् ॥[3]

नल तो वाक्पटुता मे वृहस्पतिसदृश थे।[4] दमयन्ती के साथ-साथ उसकी सखियॉ भी वक्रोक्ति अभिधा से परिचित थीं। मिथिलानरेश के वर्णन प्रसङ्ग में, सखियो के वक्रोक्ति व्यग्य के साथ पूछने पर कि क्या हम लोग इन महाराज की प्रशसा मे कोई विघ्न कर रही है, दमयन्ती ने व्यग्यात्मक मुस्कान से अपनी अस्वीकृति की अभिव्यक्ति की। यथा–

सृजामि किं विघ्नमिद नृपस्तुतावितीङ्गितै पृच्छति ता सखीजने ।
स्मिताय वक्त्र यदवक्रयद्व्धूस्तदेव वैमुख्यमलक्षि तन्नृपे ॥[5]

नैषधकार के पूर्ववर्ती महाकवि भी यथा- बाण कालिदास, माघ, एव हर्ष इत्यादि भी वक्रोक्ति अभिधा से परिचित थे।[6] नैषधकार वक्रोक्ति की नयी विधाओ से परिचित होने के साथ-साथ किञ्चित् अश मे मेघदूत के कथानक से प्रभावित दिखते हैं, जहॉ नल वियोग मे दमयन्ती कहती है–

---

1 अम्बुन शम्बरत्वेन मायैवाविरभूदियम् । यत्पटावृतमाप्यङ्गमनयो कथयत्यद ॥ नै० 20/130
वाससो वाम्बरत्वेन दृश्यतेयमुपागमत् । चारुहारमणिश्रेणितारवीक्षणलक्षणा ॥ नै० 20/131
मद्विरोधितयोर्वाचि न श्रद्धातव्यमेतयो । अभ्यषिञ्चदिमे मायामिथ्यासिहासने विधि ॥ नै० 20/135
अहो! नामत्रपाक ते जातरूपमिद मुखम् ।
नातितापार्जनेऽपि स्यादितो दुर्वर्णनिर्गम ॥ नै० 20/141 एव नै० 13/28-30, 14/14,16, 3/69 9/93

2 द्रष्टव्य लोक एव काव्य में वक्रोक्ति शोधकर्ता का ही शोधपत्र, सम्मेलन पत्रिका, पौष फाल्गुन शक 1918
The Examples of slesavakrokti are met with in IV, 102 109 Thus the influence of vakrokti school is seen on our poet — Jani, P 244
लालित्यममरस्येह श्रीहर्षस्येव वक्रिमा । नयचन्द्रकवे काव्ये दृष्ट लोकोत्तर द्वयम्॥ नयचन्द्रसूरि, रम्भामजरी, 18

3 नै० 3/30

4 स भिन्नमर्मापि तदार्तिकाकुभि स्वदूतधर्मान्न विस्तुमैहत।
शनैरशसन्निभृत विनिश्वसन्विचित्रवाक्चित्रशिखण्डिनन्दन ॥ नै० 9/73

5 नै० 12/68

6 बालेन्दुवक्त्राण्यविकाशभावाद्बभु फ्लाशान्यतिलोहितानि ।
सद्यो वसन्तेन समागताना नखक्षतानीव वनस्थलीनाम् ॥ कु० 3/29
– वक्रः पन्था यदपि भवता प्रस्थितस्योत्तराशा- पूर्वमेघ-29
– प्रातिभ त्रिसरकेण गताना वक्रवाक्यरचनारमणीय ।
गूढसूचितरहस्यसहास सुभ्रुवा प्रववृते परिहास ॥ शिशु 2/12
– किमतैवक्रभणितै , रत्नावली, द्वितीय अक
– वक्रोक्ति निपुणेनाख्यायिकाख्यानपरिचयचतुरेण. . । कादम्बरी पूर्व, पृ० 178
– सा पत्यु प्रथमापराधसमये सख्योपदेश विना ।
नो जानाति स विभ्रमाग वलना वक्रोक्ति ससूचकम् ॥ अमरूकशतक-23

न काकुवाक्यैरतिवाममड्गज द्विषत्सु याचे पवन तु दक्षिणम् ।
दिशापि मद्भष्म किरत्वय तया प्रियो यया वैरविधिर्वधावधि ।।[1]

अवधेय है कि ध्वनिवादी आचार्यो ने रस, रीति, अलकार, आदि काव्यसिद्धान्तो का पर्यवसान ध्वनि सिद्धान्त मे करते हुए, ध्वनि सिद्धान्त को व्यापक काव्यचिन्तन का स्वरूप प्रदान कर दिया था, किन्तु इस सिद्धान्त के विरोध में कुन्तक ने प्रत्यक्ष रूप से ध्वनि सिद्धान्त की आलोचना नहीं की, हॉ आचार्य महिमभट्ट ने समस्त ध्वनि भेदो का अन्तर्भाव अनुमान मे करते हुए प्रतीयमान या व्यग्य अर्थ को अनुमेय सिद्ध किया एव शास्त्रादि के प्रसिद्ध मार्ग के अतिरिक्त वैचित्य या चमत्कार प्रतिपादन मे वक्रोक्ति माना।[2] साथ ही कुन्तक ने भी वक्रोक्ति के अन्तर्गत ध्वनि के समस्त भेदो का अन्तर्भाव करते हुए वक्रोक्ति को कवि कौशल रूप एव काव्य का प्राणतत्त्व स्वीकार किया।[3] आचार्य आनन्दवर्धन ने यदि "उपसर्जनीकृतस्वार्थौ" से शब्दार्थ को ध्वनि रूप दिया तो आचार्य कुन्तक ने शास्त्रादिप्रसिद्धशब्दार्थोपनिबन्धयतिरेकि मे वक्रोक्ति का रूप माना, परन्तु कुन्तक के वक्रोक्ति सिद्धान्त का खण्डन, उनके समकालीन आचार्य महिमभट्ट ने करते हुए कहा कि शास्त्र आदि मे प्रसिद्ध शब्द और अर्थ के प्रयोग से विलक्षण जिस वैचित्र्य रूप वक्रता को कुन्तक काव्य का जीवित रूप मानते है वह समीचीन नहीं लगता, क्योकि प्रसिद्ध व्यवहार व्यतिरेकित्त्व का पर्यवसान शब्द अर्थ के औचित्यमात्र मे होगा, या प्रसिद्ध वाच्यार्थ से भिन्न प्रतीयमान की अभिव्यक्ति मे। महिम भट्ट यह भी मानते है कि कुन्तक ने वक्रोक्ति के जो भेद, प्रभेद किये है, वह ध्वनि के ही है, इस रूप मे कुन्तक का वक्रोक्ति सिद्धान्त ध्वनि सिद्धान्त से अभिन्न सिद्ध होता है।[4] इस प्रकार महिमभट्ट वक्रोक्ति को ध्वनि का ही प्रकारान्तर मानते हुए वक्रोक्ति का अन्तर्भाव अनुमिति मे करते है। साथ ही यह तथ्य भी स्मरणीय है कि आचार्य मम्मट तथा विश्वनाथ ने वक्रोक्ति का खण्डन करते हुए इसे केवल अलकार का ही एक प्रकार माना है।[5] ध्यातव्य है कि आचार्य कुन्तक ने भी औचित्य के भी समादर भाव रखते हुए उनके किञ्चित् अभाव को भी सहृदय की आह्लादकता मे बाधक माना है।[6] उन्हे भी काव्य के सौन्दर्य को अक्षुण्य रखने मे औचित्य की भूमिका अनिवार्य तत्त्व के रूप मे अभिप्रेत थी।

औचित्य सिद्धान्त -

नैषधकार ने औचित्य सिद्धान्त के विवरण का सङ्केत भी ग्रन्थ मे कुछ स्थलो पर किया है। वास्तव मे औचित्य (उचित्+ष्यञ्,यलोपे ङीष्) का आदर्श जिस प्रकार लोकजीवन की विविध प्रणालियो या

---

1 नै० 9/93

2 प्रसिद्धमार्गमुत्सृज्य यत्र वैचित्र्य-सिद्धये। अन्यथैवोच्यते सोऽर्थ सा वक्रोक्तिरुदाहृता ।। व्यक्तिविवेक 1/66

3 शब्दाथौ सहितौ वक्र कवि व्यापारशालिनी । वक्रो जी 1/7
शास्त्रादि प्रसिद्ध शब्दार्थोपनिबन्ध व्यतिरोकि । वही वृत्ति,
- प्रसिद्ध प्रस्थानातिरेकिणा वैचित्र्येण । अतिक्रान्त प्रसिद्ध व्यवहार सरणि ।। वक्रो जी 1/18
प्रस्थित प्रस्थान व्यतिरोकि वैचित्र्यम्। वही वृत्ति
- चतुर्वर्गफलास्वाद मप्यतिक्रम्यतद्विदाम् । काव्यामृत रसेनान्तश्चमत्कारो वितन्यते ।। व०जी० 1/5
- शब्दार्थौ सहितो वक्र कवि व्यापार शालिनि । बन्धे व्यवस्थितौ काव्य तद्विदाह्लादकारिणि ।। व०जी० 1/10
- निरन्तर रसोद्गारगर्भसन्दर्भनिर्भरा । गिर कवीना जीवन्ति न कथा मात्रमाश्रिता ।। व०जी० 4/11

4 तेनध्वनिवदेषापिवक्रोक्तिरनुमानिकम्। व्यक्ति विवेक 1/70

5 एतेन "वक्रोक्ति काव्यजीवितम्" इति वक्रोक्तिजीवितकारोक्तमपि परास्तम् वक्रोक्तेरलकाररूपत्वात्। सा०द० 1/2 की वृत्ति, विमला टीका, पृ० 16

6 उचिताभिधानजीवितत्वात् वाक्यस्याप्येकदेशेऽप्यौचित्यविरहात् तद्विदाह्लाद कारित्वहानिः। व०जी० 1/57 की वृत्ति।

क्रियाओ मे अपने महत्त्व का प्रतिपादन करता दिखता है, ठीक उसी तरह काव्य को महान बनाने के लिये उसके प्रत्येक अग, पद, वाक्य, रस, रीति, अलकारादि मे भी औचित्य का होना परमावश्यक है! वैसे तो औचित्य सिद्धान्त की स्थापना आचार्य क्षेमेन्द्र (11वीं शताब्दी) मे की थी, लेकिन औचित्य के आद्य उद्भावक भरतमुनि ही है जिन्होने अभिनयावसर मे पात्रो के वेश, भूषा निर्धारण, पाठ्य आदि मे औचित्य तत्त्व का अनुसधान किया था, वह औचित्य या अनुरूपता को रस का सहायक मानते है।[1] भरत की भाति आचार्य भामह भी औचित्य का नियामक लोक स्वभाव को मानते है।[2] उनके मत मे असाधु पदार्थ भी साधु आश्रय का प्राप्त कर उसी प्रकार सुशोभित होता है, जिस प्रकार रमणी के आख मे काजल[3] भरत, भामह के अतिरिक्त दण्डी, आनन्दवर्धन, रुद्रट, अभिनवगुप्त, कुन्तक, भोज, अग्निपुराणकार, एव महिमभट्ट आदि काव्य शास्त्र के विधि काव्यमनीषियो ने औचित्य की परिभाषा विभिन्न रूपो मे करते हुए इसे अपने काव्य का विषय बनाया है[4] परन्तु औचित्य को काव्य शास्त्रीय या सिद्धान्त रूप देने का श्रेय आचार्य क्षेमेन्द्र को ही प्राप्त है, जो कि औचित्य को काव्य का जीवितरूप मानते है इनके मत मे औचित्य ही रस का जीवनभूत है, प्राण है, जो जिसके सदृश हो, जिससे मेल मिले, उसे उचित कहते है एव उचित का भाव ही औचित्य है।[5] उन्होने अपने ग्रथ औचित्यविचारचर्चा मे औचित्य के 27 भेदो का वर्णन

---

1 अदेशजो हि वेषस्तु न शोशा जनयिष्यति ।
मेखलोरसि बन्धे च हास्यायैवोपजायते ॥ ना शा 21/71, एव 1/109, 14/68 24/214, 26/113, 115, 35/1

2 युक्त लोकस्वभावेन रसैश्च सकलै पृथक। कावयाल, 1/21

3 सन्निवेश विशेषात्तु दुरुक्तमपि शोभते । नील पलाशमाबद्धमन्तराले सृजाभिव ॥
किञ्चित् आश्रयसौन्दर्यात् धत्तेशोभामसाध्वपि । कान्ताविलोचनन्यस्त मलीमसमिवाजनम् ॥ काव्याल, 1/54 55

4 विरोध सकलोऽप्येष कदाचित् कविकौशलात् । उत्क्रम्य दोषगणना गुणवीथीं विगाहते ॥ दण्डी-काव्यादर्श, 4/179
- गुणानाश्रित्य तिष्ठन्ती माधुर्यादीन् व्यनक्ति सा । रसास्तन्नियमे हेतुरौचित्य वक्तृवाच्ययो ॥ आनन्वर्धन, ध्वन्या 3/6
- एता प्रयत्नादधिगम्यसम्यगौचित्यमालोच्य तथार्थसस्थम् ।
मिश्रा कवीन्द्ररघनाल्पदीर्घा कार्यामुहुश्चैव गृहतिमुक्ता ॥ रूद्रट-काव्या 2/32
- तथाहि अचेतन शवशरीर कुण्उलाद्युपेतमपि न भाति, अलङ्कार्यस्य अभावात्। पतिशरीर कटकादियुक्त हास्यावह भवति, अलकार्यस्य अनौचित्यात्-अभिनवगुप्त लोचन, पृ० 75 (निर्णय सागर प्रकाशन)
- औचित्यनिबन्धन रसभावादिमुक्त्वा नान्यद् किञ्चिदास्ति, इति तदेवान्तर्भाति मुख्य जीवितम् इत्यभुपागन्तव्यम्। लोचन, पृ० 208
- औचित्यवतीजोवितमितिचेत्, औचित्यनिबन्धन रसभावादिमुक्त्वानान्यत् किञ्चिदस्तीति तदेवात भोसि मुख्य जीवित मित्यभ्युपगन्तव्य न तुसा। - अभिनवगुप्त, पृ० 260
- व्यवहारपरिस्पदसौन्दर्य व्यवहारिभि । सत्काव्याधिगमादेव नूतनौचित्यमाप्यते ॥ कुन्तक , व०जी०, 1/4 एव 1/35,53 54
- औचित्य वस्तुन स्वभावोत्कर्ष - वही 2/26
- उचिताभिधानजीवितत्त्वात् वाक्यस्याप्येक देशेऽप्यौचित्यविरहात् तद्विदाह्लाद कारित्वहानि - व०जी० 1/57, वृत्ति
- व्यक्त्यनुचितार्थं यत् पदमाहुस्तदेव तत् - जयदेव, चन्द्रालोक 2/5
- तत्र सस्कृतमित्यादिर्भारती जातिरिष्यते। सा त्वौचित्यादिभिर्वाचामलकाराय जायते।। भोज स क , 2/6
- तदाभाषा अनौचित्य प्रवर्तिता - मम्मट- का०प्र० 4/49 एव 8/77, 3/247
- अग्निपुराणकार ने औचित्य को शब्दार्थालकार माना है किन्तु उनका मन्तव्य भी औचित्य सिद्धान्त के निकट है। यथा– यथा वस्तु तथा रीतिर्यथा वृत्तिस्थता रस। ऊर्जस्विमृदुसन्दर्भादौचित्यमुपजायते ॥ - अग्निपुराण 345/5
- महिमभट्ट औचित्य को काव्य का स्वरूपाधायक तत्त्व मानते हैं, तथा रसप्रतीति को औचित्य का फल मानते हैं यथा- तस्य (औचित्यस्य) काव्यस्वरूपनिरूपणसामर्थ्य सिद्धस्य पृ०थगुपादान वैयर्थ्यात्। रसात्मक च काव्यमिति कुतस्तत्रानौचित्य सस्पर्श सभाव्यते, यन्निरासार्थमित्थ काव्यलक्षणमाचक्षीरन् विचक्षणम्मन्या।' व्यक्तिविवेक 2/126
- एतस्य (औचित्यस्य) विवक्षित रसादि प्रतीति विघ्नविधायित्त्व नाम सामान्यलक्षणम्। व्यक्ति विवेक, 2/152
- अनौचित्यप्रवृतत्त्वे आभासो वयो – विश्वनाथ, सा०द० 3/247

5 औचित्यस्य चमत्कारकारिणश्चारुचर्वणे । रसजीवितभूतस्य विचार कुरुतेऽधुना ॥ औ०वि०च०का० 3
- उचित प्राहुराचार्या सदृश किल यस्ययत् । उचितस्य च यो भावस्तदौचित्य प्रचक्षते ॥ वही कारिका, 7
- काव्यस्यामलकारै कि मिथ्याजनितैर्गुणै । यस्यजीवितमौचित्य विचिन्त्यापि न दृश्यते ॥
- अलकारास्त्वलकारा गुण एव गुणा सदा । औचित्य रस सिद्धस्य स्थिर काव्यस्य जीवितम् ॥
- उचितस्थानविन्यासादलकृतिरलकृति । औचित्यादच्युतानित्य भवन्त्येव गुणा गुणा ॥ औ०वि०च० 4,5,6, कारिका

किया[1] एव यह अभिहित किया कि औचित्य के अभाव मे न तो अलकार ही शोभावर्धक होते है और न गुण ही।[2] वास्तव मे आचार्य क्षेमेन्द्र ध्वनिकार से ही प्रभावित दिखते है, क्योकि आनन्दवर्धन ने भी रसौचित्य प्रवन्धौचित्य, वाचकौचित्य, वृत्यौचित्य, सघटनौचित्य, वक्तृ औचित्य, विषयौचित्य, अल्कारौचित्य आदि का विवेचन कर औचित्य को प्रशसात्मक अभिव्यक्ति दी थी, साथ ही वह अनौचित्य से बढकर रसभग का दूसरा कारण नहीं मानते। उनके मत मे औचित्य ही रस का परम रहस्य है[3] और क्षेमेन्द्र ने उन्हीं का अनुकरण करते हुए पद, वाक्य, प्रबन्ध, क्रिया आदि मे औचित्य की सत्ता का प्रतिपादन किया है। नैषधकार आचार्य क्षेमेन्द्र के साथ-साथ आचार्य आनन्दवर्धन से भी प्रभावित देखते हैं, जहॉ औचित्य सिद्धान्त मे प्रतिपादित गुणौचित्य का उत्कल नरेश के प्रसग मे निर्देश करते हुए वह कहते है कि इन्होने शत्रुओ के अहकारशील हृदय तथा न झुकने वाले कन्धो को जो खण्ड-खण्ड कर दिया, यह उदात्त गुणो वाले इनके लिये उचित ही था। यथा-

आत्मन्यस्य समुच्छ्रिकृतगुणस्याहोतारामौचिती यद्गात्रान्तरवर्जनादजनयद् भूजानिरेषद्विषाम् ।
भूयोऽह क्रियते स्म येन च हृदा स्कन्धो न यश्चानमत्तन्मर्माणि दल दल समिदल कर्नीण बाणव्रज ।।[4]

उपर्युक्त सदर्भ मे श्रीहर्ष ने कथानकानुसार गुणो के औचित्य का सुन्दर निर्देशन अभिव्यक्त किया है। नैषधमहाकाव्य के प्राचीन टीकाकार मल्लिनाथ एव नारायण का मन्तव्य भी गुणो के औचित्य की परिपुष्टि करता है।[5] आचार्य क्षेमेन्द्र का कथन है कि जब प्रस्तुत अर्थ के विषय के अनुरूप, माधुर्य, ओज एव प्रसाद गुणो का विधान किया जाय, तो गुणौचित्य होगा।[6] भट्टनारायणकृत वेणीसहार नाटक मे अश्वत्थामा की निम्नगर्वोक्ति मे भी गुणौचित्य का सन्दर्भ प्राप्त है।

महाप्रलयमारुतक्षुभितपुष्करावर्त्तकप्रचण्डघनगर्जितप्रतिरवानुकारी मुहु ।
रव श्रवणभैरव स्थगितरोदसीकन्दर कुतोऽद्य समारोदधेरयमभूतपूर्व पुर ।।

चन्द्रक कवि के निम्न वर्णन मे भी गुणौचित्य का विधान समाहित है। यथा-

---

1 पदे वाक्ये प्रबन्धार्थे गुणेऽलकरणे रसे । क्रियाया कारके लिङ्गे वचने च विशेषणे ।।
उपसर्गे निपाते च काले देशे कुले व्रते । तत्त्वे सत्त्वेऽप्यभिप्राये स्वभावे सारसग्रहे ।।
प्रतिभायामवस्थाया विचारे नाम्न्यथाशिषि । काव्यस्यागेषु च प्राहुरौचित्य व्यापि जीवितम् ।। औ वि च 8,9,10, कारिका
– एतेषु पदप्रभृतिषु स्थानेषु मर्मस्विव काव्यस्य सकलशरीरव्यापिजीवितमौचित्य स्फुटत्वेन स्फुरदवभाषते। औ०वि०च० 8,9 10 की वृत्ति
– इन 27 औचित्य स्थानो को 5 वर्गो में भी विभक्त किया जा सकता है- (A) मीमासा दर्शन के विषय पद, वाक्य प्रबन्ध (B) काव्य शास्त्र क विषय-गुण, अलकार, रस (C) व्याकरण शास्त्र के विषय-क्रिया कारक लिङ्ग वचन विशेषण, उपसर्ग नियात काल (D) लोक विषय- देश, कुल, व्रत (E) कवि सम्बन्धी-सत्त्व, तत्त्व, अभिप्राय, स्वभाव सारसग्रह, प्रतिभा, अवस्था, विचार, नाम, आशीर्वाद। इन 27 स्थानों को हम चाहें किसी भी वर्ग मे स्थान दे, परन्तु वे सब समष्टि रूप से काव्यशरीर के निर्वाहक हैं।

2 कठे मेखलया नितम्बफलके तारेह हारेण वा पाणौ नूपुर बन्धनेन चरणे केयुरपाशेत वा ।
शौर्येण प्रणतेरियौ करूणया नायान्ति के हास्यताम् औचित्येन विना रूचि प्रतनुते नालकृतिर्नोगुण ।। ओ०वि०च० 6 की वृत्ति

3 अनौचित्यादृते नान्यद् रसभगस्य कारणम् । औचित्योपनिबन्धस्तु रसस्योपनिषत् परा ।। ध्वन्या, 3/9

4 नै० 12/83

5 आत्मनि स्वस्मिन्नेव समुच्चितीकृतगुणस्य समाहृतसौन्दर्यादिनिखिलगुणस्य, अस्य राज्ञ औचिती आचित्यमेव। "अभीक्ष्ण्ये द्वे भवत इत्युपसख्यानात् द्विर्भाव यत् अजनयत् यद्दण्डनमरोदित्यर्थ, तदेतद्दण्ड्यमात्रदण्डन राज्ञ उचितमाश्चर्यतरञ्चेत्यर्थ, अहकारात् अनभ्रम् अरिं समूलघात हन्त्यमिति भाव। नै० 12/83, मल्लिनाथ
-अपराधी हि राज्ञा दण्ड्य। हृत्स्कन्धस्यैवापराधो नान्येषा तस्यैव दण्ड कृतवान्। नान्येषामित्यतितरामस्यौचितीत्यर्थ। अय च सगुण सदर्पाननम्राश्च मारयति शरणागास्तु रक्षतीति भाव। नै० 12/83 नारायग

6 प्रस्तुतार्थोचित काव्ये भव्य सौभाग्यवान् गुण ।
स्पन्दतींदुरिवानन्द सभोगाावसरोचित ।। औ०वि०च०, कारिका-14

युद्धेषु भाग्यचपलेषु न मे प्रतिज्ञा दैव नियच्छति जयञ्च पराजयञ्च ।
एषैव मे रणगतस्य सदा प्रतिज्ञा, पश्यन्ति यन्त्र रिपवो जधन हनानाम् ।।[1]

औचित्य सिद्धान्त के अन्तर्गत ही स्वभावौचित्य का निर्देश करते हुए उत्कल नरेश के परिचय वर्णन मे श्रीहर्ष लिखते है–

यत्कस्यामपि भानुमान्न ककुभि स्थेमानमालाम्बते जात यद्घनकाननैकशरणप्राप्तेन दावाग्निना ।
एषैतद्भुजतेजसा विचितयोस्तावन्तयोरौचिती धिक्त वाडवमम्भसि द्विषि भिया येन प्रविष्ट पुन ।।[2]

मल्लिनाथ का कथन है "एतस्य राज्ञ भुजतेजसा भुजप्रतापेन विजितयो तयोर्भानुदावाग्न्यो औचिती तावत् औचित्यमेव" एव नारायण की टिप्पणी है, "एतस्य भुजतेजसा विशेषेण जितयोस्तयो सूर्यदावानलयो तावन्निश्चित एषा औचिती युक्ततरता, भीतस्य व्याकुलता वनाश्रयण च युक्तमित्यर्थ।"[3] स्वभावौचित्य सम्बन्धी नैषधकार के अन्य प्रसङ्ग भी[4] सर्वथा सिद्धान्त सम्मत ही है।

नैषधकार ने भावौचित्य का सकेत दौत्यवर्णन प्रसग मे किया है, जहॅ दमयन्ती देवदूत बने नल से कहती है कि "नल के समान सुन्दर एव सज्जन तुमने भी, नहीं सुनाने योग्य (नल को पूर्व मे ही मेरे द्वारा पतिरूप मे वरण करने के बाद भी, अन्य पुरुष अर्थात् इन्द्रादि देवताओ के वरण करने का) को निवेदन कर, तुमने यमदौत्य का ही कर्म किया है क्योकि मैने (दमयन्ती) पूर्व ही नल का वरण कर लिया हे, इसलिये अन्य पुरुष को वरण करने की बात तो दूर, मै परपुरुषो (के वरण करने) का नामोच्चारण भी नहीं सुन सकती।" यथा–

विभिदता दुष्कृतिनीं ममश्रुति दिगिन्द्रदुर्वाचिकसूचिसञ्चयै ।
प्रयातजीवामिव मा प्रति स्फुट कृत त्वयाप्यन्तकदूततोचितम् ।।[5]

भावो के अनुरूप कथावस्तु का निरूपित होना ही भावौचित्य कहलाता है अर्थात् भावो का कथानकानुसार निरूपण ही भावौचित्य है। श्रीहर्ष ने भावौचित्य का सकेत बारात भोजन प्रसग मे अभिहित किया है, जहॉ कुशल मुग्धा अपने भावो को छिपाने की चतुराई करती है, किन्तु उसकी इस पहेली को बूझने मे नायक भी सकेतो से अपने हृदय के स्नेह भावो को व्यक्त करता है। यथा–

विदग्धबालेङ्गितगुप्तिचातुरी प्रवह्लिकोत्पाटनपाटवे हृद ।
निजस्य टीका प्रबबन्ध कामुक स्पृशद्भिराकूतशरैरनौचितम् ।।[6]

आचार्य क्षेमेन्द ने अपनी मुनिमत मीमासा मे कालौचित्य के जो उदाहरण "योऽभूद्गोपशिशु" एव "नो दौर्जन्याद् विरमति जडो नापि दैन्याद् व्यरसीत", आदि दिये, उन दोनो मे उनकी दृष्टि काल के क्रियाकृत, भूत, वर्तमान, भविष्यत्, भेदो पर ही केन्द्रित दिखती है। नैषधकार ने भी कालौचित्य[7] का आशिक

---

1 औ० वि० च० कारिका-14 की वृत्ति में उद्घृत्
2 नै० 12/81
3. नै० 12/81, मल्लिनाथ एव नारायण
4 जगति तिमिर मूर्च्छामब्जव्रजेऽपि चिकित्सत पितुरिव निजाद्दस्रावस्मादधीत्य भिषज्यत ।
अपि च शमनस्यासौ तातस्तत किमु नौचिती यदयमदय कह्लाराणामुदेत्यपमृत्यवे ।। नै० 19/50
क्षत्रिय जातिरुदियाय भुजाभ्या या तवैव भुवन सृजत प्राक्। जामदग्न्यवपुषस्तव तस्यास्तौ लयार्थमुचितौ विजयेताम्।। नै० 21/65
5 नै० 9/62
6 नै० 16/102
7 वृत्ते कर्मणि कुर्म कि तदा नाभूम तत्र यत्। कालोचितमिदानीं न श्रृणुतालोचित पुन ।। नै० 17/137

रूपेण सकेत नैषधमहाकाव्य मे कलिप्रसङ्ग मे किया है। वास्तव मे कथावस्तु की प्रासङ्गिकता तभी समीचीन कही जा सकती है जब कि कवि अवसरानुकूल (कालानुसार) अपने कथानक को भी गति प्रदान कर दे। आयार्य क्षेमेन्द्र के कथन "औचित्यरहित वाक्य सतत सम्मत सताम्"[1] के अनुसार यह कहा जा सकता है कि औचित्य पूर्वक रचित वाक्य काव्य मर्मज्ञो को आकृष्ट करता है या उन्हे अभीष्ट होता है। प्रतिभौचित्य मे कवि प्रतिभा के उचित प्रयोग से काव्य का चमत्कृत होना कहा गया है। दूसरे शब्दो मे कवि प्रतिभा का आवरण प्राप्त कर ही काव्य सुन्दर रूप धारण करता है नैषधकार द्वारा भी प्रतिभौचित्य एव अभिप्रायौचित्य का एक साथ निदर्शन उनकी प्रतिभा का ही चमत्कार कहा जा सकता है। यथा–

आननस्य मम चेदनौचिती निर्दय दर्शनदशधायिन ।
शोध्यते सुदति! वैरमस्य तत्कि त्वयावद विदश्य नाधरम् ।।[2]

उडुपरिषद कि नार्हत्व निश किमुनौचिती पतिरिह न यद्दृष्टस्ताभ्या गणेयरुचीगण।
स्फुटमुडुपतंराश्म वक्ष स्फुरन्मलिनाश्मन श्छवि यदनयोर्विच्छेदेऽपि द्रुत बत न द्रुतम् ।।[3]

सावादि सुतनुस्तेन कोपस्ते नायमौचिती ।
त्वा प्राप यत्प्रसादेन प्रिये! तन्नाद्रियते तप ।।[4]

महाकवि माघ ने भी प्रतिभौचित्य का प्रतिपादन अपने महाकाव्य "शिशुपालबधम्" मे किया है जहाँ वह कहते है कि राजा को उचित है कि वह न तो सदा कठोर बना रहे और न मृदु, उसे समय को देखकर तेज और क्षमा का, पराक्रम और दया का अवलम्बन लेना चाहिए जो न तो सदा अकेले ओजोगुण का ही अपने काव्य मे आश्रयण (निबन्धन) करता है और न प्रसाद का ही।[5] भोज का मन्तव्य भी कुछ इसी तरह का है।[6]

उपर्युक्त विवरणो से यह प्रतीत होता है कि नैषधकार काव्यशास्त्र के औचित्य सिद्धान्त से भी परिचित थे। आचार्य क्षेमेन्द्र निश्चित ही उनसे पूर्ववर्ती महाकवि हैं, अत नैषधकार का उनसे प्रभावित होना स्वाभाविक भी है। नैषधमहाकाव्य की कथावस्तु भी रस, अलकारादि के औचित्य की कसौटी पर खरी उतरती सिद्ध होती है क्योकि भावादि के अनुकूल ही श्रीहर्ष ने अपने काव्य को गति प्रदान की है। औचित्य के भीतर रहकर ही रस, रीति, गुण, अलकार, ध्वनि अपने गौरव और मर्यादा की रक्षा कर सकते है एव ओचित्य के मूलाधार पर ही इनके तत्त्वो की सत्ता प्रतिष्ठापित है। आचार्य क्षेमेन्द्र का भी कथन है कि औचित्य के बिना रस मे न सरसता आ सकती है और न ध्वनि मे महत्ता का उद्रेक समाहित हो सकता है। औचित्य के तथ्य पर ही काव्य के समग्र सिद्धान्त आश्रित हैं। यथा–

औचितीमनुधावन्ति सर्वे ध्वनिरसोन्नया.। गुणालङ्कृतिरीतीना नयाश्चानृजुवाङ्मया ।।[7]

---

1 औ०वि० च० –कारिका- 12

2 नै० 18/135

3 नै० 19/19

4 नै० 20/14

5 तेज क्षमा वा नैकन्त कालज्ञस्य महीपते। नैकमोज. प्रसादो वा रसभावविद कवे ।। शिशु 2/83

6 औचित्य वचसा प्रकृत्यनुगत, सर्वत्र पात्रोचिता पुष्टि स्वावसरे रसस्य च कथमार्गे न चातिक्रम।
शुद्धि प्रस्तुतसविधानकविधौ, प्रौढिश्च शब्दार्थयो। विद्वद्भि परिभाव्यतामवहिते रेतावदेवास्तु न.।। श्रृगार प्रकाश, भाग-2, पृ०411

7 औ०वि०च० कारिका-11

आनन्दवर्धन का भी मत है कि शब्द और अर्थ का व्यवहार रसादि पोषक होने पर ही औचित्य सम्पन्न कहा जाता है[1] एव यदि अनुचित रूप से रीतियॉ एव वृत्तियॉ भी काव्य मे निबद्ध की जाती है तो वह रसभग का कारण बनती है। यथा– यदि वा वृत्तीना भरतप्रसिद्धाना कैशिक्यादीना काव्यालकारान्तरप्रसिद्धानाम् उपनागरिकाद्याना वा यदनौचित्य तदपि रसभङ्गहेतु।[2] इसीलिये उन्होने औचित्य परक काव्यसृजन को कवि का मुख्य कर्म माना। यथा–

वाच्याना वाचकाना च यद् औचित्येन योजनम्। रसादि विषयेणैतत् मुख्य कर्म महाकवे ।।[3]

पण्डितराज जगन्नाथ ने भी अनौचित्य को ही रस भग का मूल कारण घोषित किया है। यथा–

अनौचित्य तु रसभगहेतुत्वात् परिहरणीयम्।[4] पाश्चात्य विद्वान् अरस्तू ने भी औचित्य के सन्दर्भ की प्रतिष्ठा स्थापन पर अपनी टिप्पणी देते हुए कहा- "The poet should remember to put the actual scenes of far as possible before his eyes He will divise what is appropriate and be least likely to overlook incongruates" [5]

वास्तव मे औचित्य भारतीय काव्यशास्त्र का एक व्यावहारिक काव्यतत्त्व है, जिसकी प्रासङ्गिकता न केवल साहित्य (गद्य, पद्य, नाट्य) मे बल्कि जीवन मे भी विद्यमान है। देखा जाय तो, औचित्य व्यावहारिक मीमासा का एक गूढ तत्त्व है, जो स्वय काव्यशास्त्र के किसी सिद्धान्त का सृजन न करके, अनेक काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तो मे अन्तर्भूत होकर उनका सयमन, एकीकरण एव दोष रहित बनाने का उपक्रम करता दिखता है, क्योकि इसकी व्याप्ति रीति, रस, गुण, अलकार आदि विविध काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तो मे देखी जा सकती है। क्षेमेन्द्र के मत मे रस सिद्ध औचित्य ही काव्य का प्राणतत्त्व है, एव आनन्द वर्धन के मत मे भी रस के अनुसार रीति का औचित्यपूर्ण नियोजन होने पर ही उसकी सफल अभिव्यक्ति सम्भव होती है। आचार्य कुन्तक ने भी वक्रोक्ति के विभिन्न रूपो के निरूपण मे औचित्य का समावेश कर उसे महत्त्व प्रदान किया है। आलकारिको ने भी औचित्य को महत्त्व देते हुए, औचित्य को अलकारो के अलकारत्त्व का कारण माना है, क्योकि उचित स्थान मे प्रयुक्त होने पर ही अलकार काव्य के शोभाधायक तत्त्व बनते है।

---

1 श्री कुप्पूस्वामी ने काव्यशास्त्र के सभी सिद्धान्तों को एक वृत्तचित्र द्वारा परिकाल्पित किया है, जिसमे उन्होंने दो वृत्तो एव उनके अन्दर अलग-अलग त्रिकोणों की सरचना की। बडे वृत्त की परिधि को उन्होंने औचित्य माना, एव उसके अन्दर शीर्ष त्रिकोण को रस एव नीचे के कोणों को ध्वनि एव अनुमिति माना। बडे वृत्त के अन्दर छोटे वृत्त की परिधि को वक्रोक्ति माना, जिसके अन्दर स्थित त्रिकोण मे शीर्ष कोण को रीति एव निचले दोनों कोणों को गुण एव अलकार माना। उनके मत मे भीतरी वृत्त काव्य के वाह्य उपकरण तथा स्वरूप के विवेचन को रेखाकित करता है। – Highways and Byways of Literary Criticism in Sanskrit – P 27 30

2 श्रीहर्षो राजदत्तार्थनिष्पन्नविपुलसामग्रीक काश्मीरानगमत्। सरस्वतीहस्ते पुस्तक न्यस्थत्। सरस्वत्या दूरे क्षिप्त तत्। श्रीहर्षेण कथितम्- कि जरतीति विकलासि, यन्मदुक्तमपि प्रबन्धमितरप्रबन्धामिव मन्यसे? भारत्याह- भो परमर्मभाषक। न स्मरसि, यदत्रोक्त त्वया एकादशे सर्गे चतुषष्टितमे काव्ये–

देवीपवित्रितचतुर्भुजवामभागा वागालपत्पुनरिमा गरिमाभिरामाम् ।
एतस्य निष्कृपकृपाणसनाथपाणे पाणिग्रहणादनुगृहाण गण गुणाणाम् ।।4।।

एव मा विष्णुपत्नीत्वेन प्रकाश्य लोके रूढ कन्यात्व लुप्तनानसि? ततो मया पुस्तक क्षिप्तम् ।

याचको वञ्चको व्याधि पञ्चत्व मर्मभाषक। योगिनामप्यमी पञ्च प्रायेणोद्वेगहेतव ।।5।।

इति वाग्देवी वाच श्रुत्त्वा श्रीहर्षो वदति- किमर्थमेएकस्मिननवतारे नारायण पति चक्रुषी। त्व पुराणेष्वपि विष्णुपत्नीति पठ्यसे। तत सत्ये किमिति कुप्यसि? कुपितै कि छुट्यते कलङ्कात्? इति श्रुत्त्वा स्वय गृहीत्वा पुस्तक हस्ते धारितम्। ग्रन्थश्च श्लाधित सभासमक्षम्। प्रसृत नैषध लोके। - प्रबन्धकोशे- श्रीहर्षकविप्रबन्ध , पृ० 57-58

3 रसाद्यनुगुणत्त्वेन व्यवहारोऽर्थशब्दयो। औचित्यवान् यस्ता एव वृत्तगोद्विविधा स्मृता।। ध्वन्या० 3/33

4 ध्वन्या०, उद्योत 03, पृ० 163

5 ध्वन्या० 3/32 -Sanskrit pactics - P 61-62

यद्यपि आधुनिक युग के दो विद्वानो श्री कुप्पुस्वामी शास्त्री एव डॉ० वेकटराघवन ने औचित्य को स्वतत्र काव्यशास्त्रीय सिद्धान्त मानने का पक्ष रखा है, परन्तु अधिकाश विद्वान् उनके मत से सहमत नहीं है, क्योकि यदि देखा जाय तो न तो इस सिद्धान्त की कोई पूर्ववर्ती परम्परा रही है, और न ही क्षेमेन्द्र के बाद किसी अन्य आचार्य ने इसका समर्थन ही किया है, एव क्षेमेन्द्र ने तो आनन्दवर्धन के विचारो का ही पल्लवन कर औचित्य सिद्धान्त की नींव रखी थी, इस प्रकार औचित्य सिद्धान्त का पर्यवसान ध्वनि सिद्धान्त मे ही हो जाता है किन्तु फिर भी सभी काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तो के मीमासक के[1] रूप मे औचित्य सिद्धान्त का, काव्यशास्त्र के पल्लवन तथा परिवर्धन मे अद्वितीय योगदान होने से काव्यशास्त्र मे इसका अप्रतिम महत्त्व भी है, क्योकि यह सिद्धान्त काव्यमनीषियो को दोषरहित काव्य प्रबन्ध की रचना की प्रेरणा तो अवश्य ही देता है। यही कारण है कि अन्य महाकाव्यकारो के साथ-साथ नैषधकार भी इस सिद्धान्त से प्रभावित हुए बिना नही रह सके, और नैषध महाकाव्य को काव्यशास्त्रीय दोषो से दूर रखा, इसका प्रमाण राजशेखर सूरि द्वारा रचित प्रबन्धकोश में उद्धृत श्रीहर्ष विषयक वर्णन है, जिसमें यह अभिहित किया गया है कि "कश्मीर मे सरस्वती देवी एव राजा माधवदेव ने इस ग्रथ की निर्दोषता का प्रमाण पत्र श्रीहर्ष को दिया था।[2] तदनन्तर नैषधमहाकाव्य की प्रतिष्ठा ससार मे स्थापित हुई। नैषध महाकाव्य एव श्रीहर्ष विषयक विभिन्न विद्वानो की प्रशसात्मक उक्तियो से भी नैषधकार एक विख्यात काव्य शास्त्रविद् एव उनका यह ग्रथ विविध काव्य सिद्धान्तो का समन्वित पुज रूप गम्भीर काव्य रत्न सिद्ध होता है।[3] स्मरणीय है कि नैषध जैसे निर्दोष काव्य की काव्यशास्त्रीय मीमासा के परिप्रेक्ष्य मे तो किसी भी समालोचक की दृष्टि नहीं गयी, किन्तु फिर भी कुछ विद्वानो ने कथावस्तु की सुसम्बद्धता एव प्रवाह, भाषा शैली कल्पनाओ एव उनसे जटित सूक्तियो तथा श्रीहर्ष के पाण्डित्य प्रदर्शन को लक्ष्य लेकर इस महाकाव्य को साधारण या निम्न महाकाव्य मानने की अभीप्सा व्यक्त की है। उनमे यदि डॉ० एस०एन० दास गुप्त और एस०के० डे ने नैषध की विषयवस्तु को प्रवाहहीन, असम्बद्ध एव कृत्रिम कल्पनाओ से युक्त मानते हुए श्रीहर्ष की नैषध मे पग-पग

---

1 रसाद्यनुगुणत्त्वेन व्यवहारोऽर्थशब्दयो। औचित्यवान् यस्ता एव वृत्तगोद्विविद्या स्मृता ।। ध्वन्या० 3/33

2 रसगगाधर, पृ० १९५

3 श्रीहर्षात्कविराजत कृतिरभूत् सा कापि लोकोत्तरा यस्या खेलनभूर्मनीषिहृदयप्रासादशृङ्गस्थली ।
नेपथ्यस्य विधिर्नवार्थघटना सख्यो रसव्यक्तय शील शब्दनय स्वयवरपतिश्चैष स्वय नैषध ।। श्रीविश्वेश्वरभट्ट (T C III, pt, I.C Pa 3902

- काव्ये नैषधनाम्नि धाम्नि सुबृहत्यर्थस्य मुक्ताऽवधे भावान् दूरनिगूहितान् कथमह सर्वान् प्रमातु क्षम।
एतस्मिन् द्युतिमन्ति सन्ति सुबहून्येतानि मध्ये भुव। साकलेन लभेत कोऽपि खनिता वज्राणि वज्राकरे।। गदाधर (O I Ms, No 1353, st 3)
- शब्दार्थोभयमूलशक्ति कलिता सद्वृतबन्धोज्ज्वला-
नानातर्कशिफाच्छलच्छदवृता भावप्रसूनाञ्चया (वृता)
श्रृगारैकफला रसौघबिलसत्पक्वा जगज्जीविका
श्रीहर्षोक्तिमयी महौषधिलता यस्येवि (?) कस्त जयेत्।। विद्याश्रीधरदेव, (T C II pt IC, P 3945)
- य साहित्यरसामृताब्धिलहरी जालेषु खेलाचलो-
यश्चात्यर्थगभीर तर्क जलधेर्माथे स मथाचल।
मीमासायुगसिन्धुतारणविधौ य कर्णधार पर
केषामेष मनो विनोदयति न श्रीहर्षनामा कवि।। रामचन्द्रशेष (Tanjore 19, P- 2550)
- अष्टौ व्याकरणानि तर्कनिवह साहित्यसारो नयो-
वेदार्थावगति. पुराणपठितिर्यस्यान्यशास्त्र्याण्यपि ।
नित्य स्यु स्फुरितार्थदीप विहताज्ञानान्धकाराण्यसौ
व्याख्यातु प्रभवत्यमु सुविषम सर्गं सुधी कोविद ।। विद्याधर (O I Ms No 9, Folio 278)
- टीका यद्यपि सोपपत्तिरचना विद्याधरो निर्ममे-
श्रीहर्षस्य तथापि न त्यजति सा गभीरता भारती ।
दिक्कूलकषता गतैर्जलधरैरुद्गृह्यमाण मुहु -
पारावारमपारमम्बु किमिह स्याज्जानुमात्र क्वचित्।। चाण्डू पण्डित (BORI, D13, P 480)

पर की गयी पाण्डित्य प्रदर्शन की आलोचना की[1] तो डॉ० एम० कृष्णमाचार्यर ने व्याकरणात्मक कमियो, भाषा की क्लिष्टता, कृत्रिम कल्पनाओ की अधिकता के कारण इसे सामान्य जन के समझ के परे बताया[2] एव आधुनिक विद्वान् प्रो० सुरेशचन्द्र पाण्डे ने विषय वस्तु की प्रवाहहीनता, असम्बद्धता एव सूक्तियो मे विरोधी विचारो की अन्विति दिखलाते हुए इसे साधारण काव्य का या लघुचित्र काव्य मानते हुए नैषध को विरोधी विचारो, गर्वोक्तियो तथा चित्र विचित्र उक्तियो का ऐसा घना जगल माना जिस जगल के वृक्ष फूल और फल से हीन है एव काव्य की तुलना दुर्भिक्ष के रेखाकन एव सूखे वृक्ष से की।[3]

यह तो सच है कि नैषधकार की ग्रथ एव स्वय की प्रति रचित किचित् सूक्तियो मे विरोधाभास का पुट सम्पृक्त है जैसे कि वह कहते है कि मैं समाधि मे ब्रह्म का साक्षात्कार करता हूँ और राज्यसभा मे उसे ही पान के दो बीडे मिलते है। परन्तु जो परब्रह्म से साक्षात्कार कर रहा है उसे स्वय के लिए पान के दो बीडो को प्राप्त करने का उल्लेख करना या तो असगत है और या तो नैषधकार की अहमन्यता का सूचक है कि केवल उसे ही पान के दो बीडे राज्यसभा मे आदर के रूप मे मिलते थे, अन्य किसी को नहीं। उसी तरह जब वह कहते हे कि उनके ही वाणी प्रवाह मे परमानन्ददायी अमृत की प्राप्ति होती है, एव उनकी काव्यवाणी विद्वानो के हृदय मे अमृत बनकर आनन्ददायिनी होती है :ादि ग उन्होने स्वय की पाण्डित्य गर्वोक्ति का ही प्रदर्शन किया है[4] किन्तु अन्यत्र उनकी सूक्तियो मे कहीं भो विरोधाभास नहीं दिखता। रही कृत्रिम कल्पनाओ की उडानो एव विषयवस्तु के सुसम्बद्धता की बात, तो इस सदर्भ मे यही कहना अभीप्सित प्रतीत होता है कि उपर्युक्त विद्वानो ने श्रीहर्ष के साथ न्याय नहीं किया है क्योकि कल्पनाएँ मानसजात एव लोक विहारिणी होती है, वश मन मे कल्पना का ससार रचने की असीम क्षमता एव कार्यानुरूप परिवेश होना चाहिए क्योकि बिना परिवेश के सृजन सम्भव नहीं होता, और वैदुष्य सम्पन्न कवि के मन का परिवेश तो अनन्त होता है, अनेकानेक आयाम एव अभिव्यक्तीकरण की सामर्थ्य उसके पास होती है, तथा नैयायिको के कल्पनावितान से कहीं अधिक सूक्ष्म और विस्तृत कवि का कल्पना लोक होता है जो व्यावहारिकता की अनुभूति भी कराता है, फिर श्रीहर्ष जैसे कविपण्डित के लिए जिन्हे राज्याश्रय मिलने के साथ-साथ त्रिपुरा देवी से असीम वैदुष्य का वरदान मिला हो, उसके लिए कल्पनाओ से रमणकरना, बुद्धि व्यायाम एव स्वय की वैदुष्यता का स्थापन ही होगा क्योकि जिस प्रकार राग से ही पुरुष स्त्री से समागम करता है, चाहे स्त्री समागम योग्या हो या अयोग्य, परन्तु राग की प्रवृत्ति तो दोनो मे एक सी ही होती है उसी प्रकार नैषधकार ने कल्पनाओं का जो सभागम नैषध मे किया है, हो सकता है कि वह सामान्य जन के समझ के परे हो, लेकिन यह तो "नैषधं विद्वदौषधम्" जैसी उक्ति से स्पष्ट है कि यह काव्य विद्वानो या गुरु चरणो मे बैठकर आनन्दपान करने वाले जिज्ञासुओ के लिए है। अवधेय तथ्य यह है कि जिस प्रकार गद्यकाव्य मे कहाकवि बाण की कल्पनाओ की आज तक कोई भी विद्वान् समानता नहीं कर सका, उसी तरह काव्य साहित्य मे नैषध मे वर्णित कल्पनाओ को भी कोई विद्वान् लॉघ नहीं सका है।

---

1 Sriharsa not only shares but emphasises to an extreme degree, the worst artificialities of his tribe and no sound hearted, sound minded reader will ever include him in the small class of great poets. Dr S N Das Gupta and S K. Day A History of Sanskrit Literature Val I, P- 327----331

2 His vocabulary is extensive but the language lacks lucidity and the reader can rarely approach the poem with confidence Sriharsa inaugurated a new model of poetic composition He was a logician and philosopher and the ideas of those sciences are oftet imported in to his discriptions He has no particular regard for the artificial precepts of poetics and in many instances rhetoricians discover faults of composition Hisnory of classical Sanskrit literature P 180-181

3 कवि और काव्य शास्त्र पृ० 65 91

4 नै० प्रशस्ति श्लोक 1 4

इस सदर्भ मे वर्जिल एव दाते के कथन श्रीहर्ष के ऊपर बिल्कुल सटीक बेठते है।[1] साथ ही यहॉ यह भी कहा जा सकता है कि जो विशुद्ध मनोमयी सृष्टि (काव्य) है, उसमे कल्पना और ज्ञान इन दोनो के आयाम जुडे ही रहते है एव श्रीहर्ष ने इन दोनो तत्त्वो का समन्वय नैषध मे किया है। साथ ही यह भी अवधेय तथ्य है कि क्रिया कर्ता के अधीन होती है, एव ज्ञान विषय के अधीन होता है जैसा कि "ज्ञान वस्तुतन्त्रम्" जैसे उक्ति से स्पष्ट है। इसलिए श्रीहर्ष ने जो अपनी प्रतिभा का चमत्कार इस महाकाव्य मे दिखाया है उसकी प्रशसा ही की जानी चाहिए। आचार्य आनन्दवर्धन भी कहते है कि प्रतिभा की अनन्तता होने पर कवि के लिए अपने निबन्धन हेतु काव्य अर्थ की कभी इति नही होने पाती।[2] बौद्ध विद्वान् दिङ्नाग एव धर्मकीर्ति भी भाषा, कल्पना और ज्ञान के समन्वय पर बल देते है और मानते है कि कवि की कल्पना, क्रिया एव ज्ञान मे एक प्रकार सन्तुलन होता हे एव जहॉ भी ज्ञान होता है, वहॉ कल्पना का एक ततव अवश्य रूप से विद्यमान रहता है, अत जो कल्पना का व्यापार है वह प्रत्येक ज्ञान के साथ जुडा रहता है क्योकि भर्तृहरि ने भी कहा है "न सोऽस्तिप्रत्ययो लोको य शब्दानुगमादृते" एव "विकल्पयोनय शब्दा विकल्पा शब्दयोनय।" नि सन्देह कवि की सभी कल्पनाऍ पूर्णरूप से या यह कहले निरकुश रूप मे स्वच्छन्द या स्वतत्र होती है, क्योकि वह अपने ससार का मालिक स्वय होता है (कविर्मनीषी परिभू स्वयम्भू)। पृथ्वी का हृदय अमृतमय तत्त्वो से भरा परा है ऐसी मान्यता अथर्ववेद मे निवर्तत है यथा "हृदये नावृतममृत पृथिव्या" तब तो नैषधकार जैसे मनीषी कवि के श्रेष्ठ कल्पनाओ के विवरण उनके वैदुष्य के परिमापक ही होगे न कि निदापरक। अतएव उपर्युक्त समीक्षको की आलोचना का कोई मतलब ही नहीं निकलता, हॉ यदि केवल आलोचना के लिए आलोचना करनी है, तब की बात और है, और ऐसी ही कुछ सम्मति उपर्युक्त समालोचको के लिए मानी जानी चाहिए।

अगर कल्पनाओ को लक्ष्य लेकर आलोचना ही करनी है, तब तो इस परिधि मे कालिदास भारवि, माघ, प्रभृति आदि महाकवियो को भी समेटा जा सकता है, क्योकि कालिदास ने भी मनगढन्त कल्पनाओ को अपने काव्य मे जगह दी है। मेघदूत मे वह कहते हैं अलकापुरी मे विलास और वैभव का कल्पना लोक है, फर्श मणिनिर्मित, हर्म्यस्थल सितासितमणियो से जटित हैं। यक्ष बालाऍ कनकसिकता फेक कर रत्नदीपो को बुझाती है पर वे बुझते नहीं, उनकी सुरतजनित अग ग्लानि को दूर करने के लिए चन्द्र कान्ति मणियो से जलबिन्दु टपकते है एव यक्ष की वापी मे स्वर्णकमल खिलता है और उद्यान मे इन्द्रनीलमणि निर्मित क्रीड़ाशैल है आदि आदि।[3] यही स्थिति कुमारसम्भव के दशम, चतुर्दश एव पचदश सर्ग मे तथा रघुवश के नवे, दशवे एव ग्यारहवे सर्ग मे देखी जा सकती है। भारवि के किरातार्जुनीयम् महाकाव्य के पचम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, दशम, द्वादश एव पचदश सर्ग तथा माघ के शिशुपालवधम् के चतुर्थ सर्ग (रैवतक वर्णन) षष्ठ सर्ग (ऋतु वर्णन), सप्तम सर्ग (वनविहार वर्णन), अष्टम सर्ग (जल विहार वर्णन) आदि अनेको सर्गों मे कल्पनाओ की भरमार, जो कृत्रितमा से भरी पडी है, का वर्णन उपलब्ध होता है तब नैषधकार की ही क्यो आलोचना की गयी? यह विचारणीय तथ्य हैं। इस प्रश्न के समाधान मे समीक्षको की पूर्वाग्रही दृष्टि को प्रधान कारण माना जा सकता है। यही स्थिति नैषध की विषयवस्तु के प्रवाह एव अन्य काव्यो के कथारस के प्रवाह मे देखी जा सकती है, क्योकि कवि की निगाह जिस वर्णन सदर्भ मे जाती है, उसी मे

---

1 They can do all because they think, they can - Virgil
Nobility generally express in all things the perfection of their abture - Dante

2 न काव्यार्थ विरमोऽस्त्ति यदि स्यात् प्रतिभागुण । ध्वनवा० 4/1,3

3 उत्तमेघ । .22 श्लोक

तब तक रमी रहती है, जब तक उसकी मेधाशक्ति को उस वर्णन सदर्भ के कुछ तथ्य मिलते रहते है। नैषधकार कोई उपन्यासकार नहीं थे कि पूर्व की विषयवस्तु से लगातार तारतम्य बनाये रहते, वह तो महाकाव्यकार थे, एव तारतम्यता की बात महाकाव्यकार मे घटित करना उनकी कवित्व शक्ति एव सहज रचनाधर्म को तिरस्कृत करना ही होगा। आचार्यों ने भी साहित्य को सभी विद्याओ का निचोड कहा है यथा "पचमी तु साहित्य विद्या, सा सर्वासा भाषाना निष्यन्द" इस रूप मे यदि नैषधकार ने साहित्य के अन्तर्गत वेदो, उपनिषदो एव अन्य शास्त्रो की विषयवस्तु को पिरोया है, तब तो उनके काव्य को एक श्रेष्ठ काव्य ही माना जाना चाहिए।

साथ ही यहॉ यह भी कहना अभीप्सित होगा कि श्रीहर्ष ने अपनी कविता कान्ता की अभिव्यक्ति के लिए समग्रगुण गुम्फित ललिता वैदर्भी का आश्रय लेकर काव्यसृजन किया है जिससे उनकी ललित पद शय्या और शब्द शक्ति अत्यधिक श्लाघ्य हो गयी है। काव्य शास्त्र के लगभग सभी सम्प्रदायो यथा रस रीति एव गुण, ध्वनि, अलकार, वक्रोक्ति तथा औचित्य के विवरण नैषध ने वर्णित मिलते है। नैषध मे काव्य सोन्दर्य पद-पद पर परिलक्षित होता है जिसकी परिगणना "नैषधे पद लालित्य" उक्ति से भी किया जा सकता है। कहीं प्रसाद, कहीं ओज, और कहीं माधुर्य गुण, एव तीनो की क्रमश अन्विति पद लालित्य मे सोने मे सुहागे का काम करती है जिससे काव्य की लयात्मकता और सगीतात्मकता श्रुति सुखद तथा मनोभावो के लिए आह्लादक बन जाती है साथ ही सहृदय की हृदतत्री को प्रभावित किये बिना नहीं रहती, जैसे हस का दमयन्ती के प्रति कथन कि "अहो! शिशुत्त्व तव खण्डित न स्मरस्य सख्या वयसाप्यनेन" एव "तस्यैव वा यास्यासि कि हस्त दृष्ट मन केन विधे प्रविश्य" तथा दमयन्ती का कथन "का नाम बाला द्विजराजपाणिग्रहा- भिलाष कथयेदलज्जा।" आदि।

परन्तु उपर्युक्त विवरण के साथ साथ एक यथार्थ सत्य जो नैषध महाकाव्य के आलोडन विलोडन से मनमस्तिष्क मे उट्टकित हुए बिना नहीं रहता, वह यह कि वैदुष्य का व्यामोह श्रीहर्ष को स्थान स्थान पर खींच ही लेता है। शायद यही कारण है कि उन्होने अपने नायक नल के वर्णन को गौण कर दिया एव अपने वैदुष्य के वितान को विस्तृत। इस प्रकार परोक्ष रूप से उन्होने स्वय को ही नायक पद पर अभिषिक्त जैसा कर दिया है, इस तथ्य की पुष्टि मे नैषध के सर्गान्त श्लोकों मे उनके स्वय के विवरण देने को भी प्रमाण रूप मे रखा जा सकता है, जब कि काव्यपरम्परा मे नायक के वर्णन को महत्ता देने की परम्परा रही है, परन्तु उन्होने इस परम्परा का अनुपालन नहीं किया है एव इस तथ्य को उन्होने माना भी है कि वह कवियो द्वारा अदृष्ट मार्ग के पथिक है।[1] इस रूप मे नैषधकार काव्यपरम्परा के उल्लघन के दोषी माने जा सकते है, परन्तु यदि नैषधकार मम्मट एव दण्डी से पूर्ववर्ती होते तो निश्चित ही वह उनके द्वारा निपुण कवि कर्म के नाते समादृत होते। जैसा कि आचार्य मम्मट मानते है कि "विगलितवेद्यान्तरमानन्द यत्काव्य लोकोत्तरावर्णना निपुणकविकर्म तत्।" तथा वैदुष्य की सम्पन्नता के कारण आचार्य दण्डी द्वारा भी श्रीहर्ष प्रशसित होते, क्योकि दण्डी भी काव्यादर्श मे लिखते हैं कि -

तदस्ततन्द्रैरनिश सरस्वती श्रमादुपास्या खलुकीर्तिमीप्सुभि ।
कृशे कवित्त्वेऽपि जना कृताश्रमा विदग्धगोष्ठीषु विहर्तुमीशते ।।

1 तस्यागादयमष्टम कविकुलादृष्टाध्वपान्थे महाकाव्ये। नै 8/109

यदि कालिदास की कृतियो को 'पद्मिनी', भारवि की कृति को 'सखिनी', एव माघ की कृति को 'चित्रिणी' को सज्ञा विद्वानो ने दी है, तो श्रीहर्ष की इस कृति को (विशालाकृति के कारण) "हस्तिनी" नायिका की सज्ञा दी जा सकती है।[1] कुछ विद्वानो ने यदि कालिदास के काव्य को "द्राक्षपाक", भारवि के काव्य को "नारिकेलपाक" की सज्ञा प्रदान की है, तो भामह के शब्दो मे "नैषधीयचरितम्" महाकाव्य को 'कपित्थपाक' की सज्ञा से अभिहित किया जा सकता है[2], परन्तु कुछ विद्वानो ने नैषध महाकाव्य को नैषध विद्वदौषधम् कहा है अत इसे औषधिपाक की सज्ञा भी दी जा सकती है, लेकिन वास्तव मे इस महाकाव्य को 'अमृतपाक' की सज्ञा देना ही, समीचीन, न्यायसगत एव उपयुक्त होगा।[3] प्रो सुशील कुमार डे ने भी नैषधमहाकाव्य मे वर्णित अतिशयोक्ति परक कल्पनाओ की उडानो की आलोचना करते[4] हुए भी महाकाव्यो मे अन्तिम महाकाव्य रत्न माना है।[5] नवीन कल्पनाओ का निरूपण तो असीम मेधाशक्ति की ही उपज होती है, एव कवि तो कल्पना जगत का सम्राट होता है, इस रूप मे नैषधकार एव नैषधमहाकाव्य दोनो ही महनीय सिद्ध होते है।

---

1 ब्रह्मर्षि मुतप्पा शास्त्री एव वेकट सुब्रह्मण्यम शास्त्री, एव श्री कुप्पू स्वामी शास्त्री का कथन - Foreward to the Naisadhakavayaratnam by K L Vajasary Sastri, P 6-10

2 अहृद्यमसुनिर्भेद्य रसवत्त्वेऽप्यपेशलम्। काव्य कपित्थमाम यत्केषाञ्चित्सदृश यथा।। काव्या ल0 5/62

3 It is diffuse, descriptive, figurative often playful and occasionally interpersed with excellent remarks and moral reflections – W Yates (Asiatic Researches, Val. 20, P 323)

4 Sriharsa no only Shares but emphasises to an extreme degree the worst artificiality's of his tribe, and no sound Hearted, sound-minded reader will ever include him the small class of greet poets Even a rhetorical writer Sriharsa does not rank high, for his rhetoric or magination, but because it is loved for its own sake. It indicates not only a tendancy towards the artificial, but an inability to achieve the Natural — H S L - S K Day, P 330

5 The only Mahakavya which need detain us is the Naisadhacarita of Sriharsa, not so much for its intrinsic poetic merit as for the interesting evidence it affords of the type of enormously laboured metrical composition which was widely and enthusiastically favoured The work is regarded as one of the five great Mahakavyas in Sanskrit, It is undoubtedly the lost master piece of industry and ingenuity that the mahakavya can Show but to class it with the masterpieces of Kalidas, Bharavi and even Magha is to betray an ignorance of the difference between poetry and its Counterfeit H S L - S K Dey P 325

पंचम अध्याय

नैषधीयचरितम् में कामशास्त्रीय सन्दर्भ

उपनिषदो, ब्राह्मण एव पुराणो मे ही उपलब्ध मिलते है।[1] किन्तु सामान्य जन के लिए नैषध मे उल्लिखित कामशास्त्रीय विषय सामग्री ही उसे काम कला मे पटु बना देगी ऐसा विश्वास है। धर्मशास्त्रो मे जीवनकाल को चार आश्रमो मे विभक्त किया गया है, ब्राह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एव सन्यास एव इन्हीं आश्रमो मे क्रमानुसार विद्यार्जन एव ब्रह्मचर्य सयमन, अर्थाजन, धर्माजन एवं कामसेवन एव वानप्रस्थ तथा सन्यासाश्रम मे धर्मार्जन एव मोक्ष प्राप्ति का विधान बताया गया है। मनुस्मृतिकार कहते है "परित्यजेदर्थकामौ यौ स्याता धर्मवर्जितौ" इसी तथ्य का समर्थन करते हुए महाकवि कालिदास ने भी कहा है –

न धर्ममर्थकामाभ्या बबाधे न च तेन तौ ।
नार्थं कामेन काम वा सोऽर्थेन सदृशस्त्रिषु ।।[2]

नैषधकार को भी धर्म, अर्थ एव काम मे समन्वय की बात अभीष्ट लगती है साथ ही साथ उन्होने जोर देकर अर्थ एव काम मे धर्म का वर्चस्व स्वीकार किया। ग्रथ के इक्वीसवे सर्ग मे नल द्वारा स्नान, ध्यान, पूजातर्पण एव देवार्चना तथा दमयन्ती द्वारा चौदहवे सर्ग मे की गयी देवार्चना विवरण से श्रीहर्ष ने इस तथ्य की पुष्टि की है। पचनली प्रसङ्ग मे नल की प्राप्ति हेतु दमयन्ती ने देवताओ को प्रसन्न करने हेतु उनकी वन्दना की[3] एव उन्हे कल्पवृक्ष की उपमा दी।[4] चारो पुरुषार्थों की प्राप्ति हेतु नल भगवान श्री विष्णु की वन्दना मे कहते है कि- प्रभो! चारो पुरुषार्थ आपसे सुलभ है, क्योकि धर्म का कारण पुण्यसलिला साक्षात् गङ्गा आपके चरणो मे है, अर्थ का मूल साक्षात् लक्ष्मी आपके हृदय मे ही रमण करती है, काम के

---

1 – तदैक्षत बहुस्या प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत्- छान्दो०उप० 6/2/3
– यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽस्तु - यजुर्वेद ।
– सर्वेषामानन्दानामुपस्थ एकायनम् - वृ०उ० 2/4/11
– आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात् आनन्दादेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, आनन्देन जातानि जीवन्ति । आनन्द प्रयन्त्यभि सविशन्तीति। तै०उ० 3/6
– आत्मैवेदमग्र आसीत् पुरूषविध सोऽनुवीक्ष्य नान्यदात्मनोऽपश्यत् इत्यग्रे व्यहरत् ततोऽह नामाभवत्। वृ०उ० 1/4/1
– धर्मविरूद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ - गीता 7/11
– पुत्रभार्यादिषु विकलेषु सकलेषु वा अहमेव विकल एकलोवेति बाह्यधर्मानात्मन्यध्यस्यति। ब्रह्मसूत्र शाङ्करभाष्य, प्रथम अध्याय, 1 पाद पृ० 17
– सोऽकामयत । बहुस्या प्रजायेयेति । स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा । इद सर्वमसृजत । यदिद किञ्च-तै०उ० 2/6, छान्दोग्य उ0 3/2/3, ऐतरेय 1/3
– आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्। नात्यकित्चन मिषत्। स ईक्षत, लोकान् सृजा इति। स इमॉल्लोकानसृजत, ऐत (1/1/1)
– स ईक्षाचके । स प्राणमसृजत – प्रश्न 6/3
– शिवशक्तिसमायोगात् जायते सृष्टि कल्पना - अथर्ववेद 9/2/19
– भूता वा वर्तमाना वा अनित्यावापि सर्वश । कामात् सर्वे प्रवर्त्तन्ते, लीयन्ते बुद्धिमागता ।। साख्य दर्शन
– शक्ति शक्तिमदुत्थ तु शाक्त शैवमिद जगत्। स्त्रीपुसप्रभव विश्व स्त्रीपुसात्मकमेव च। परमात्मा शिव प्रोक्त शिवा मायेति कथ्यते। पुरूष परमेशाना प्रकृति परमेश्वरी शकर पुरूषा सर्वे स्त्रिय सर्वा माहेश्वरी ।। - शिवपुराण
– यथा वै पुरूष विषुवान् । तस्य यथा दीक्षोऽर्ध एव पूर्वोऽर्द्ध विषुवत। यथोत्तरार्द्ध एवमुत्तरोऽद्धोविषुवत तस्मादुत्तर इत्याचक्षते प्रवाहुक्ज्ञत शिर एव विषुवान् । विदल सहित इव वै पुरूष । तद्धापि स्यूमेव मध्येशीर्ष्णो विज्ञायत इति
– ऐ० ब्रा० 8/7/2/3 ।
– अर्द्धमुहैतदात्मनो यन्मिथुनम्। यथा वै स मिथुनेन अथ सर्वोऽथ कृत्स्न - वाजिश्रुति
– श0ब्रा0 14/4/2/25, छा0ड 7/13
– अथर्ववेद - 14/2/31 ------14/2/66 ।

2 – रघुवश – 17/57
– अनेन धर्म सविशेषमद्य मे त्रिवर्गसार प्रतिभाति भामिनि ।
त्वया मनोनिर्विषयार्थकामया यदेक एव प्रतिगृह्य सेव्यते ।। कु० 5/38

3 अथाधिगन्तु निषधेश्वर सा प्रसाद नामाद्रियतामराणाम् ।
यत. सुराण सुरभिनृणा तु सा वेधसाऽसृज्यत कामधेनु ।। नै० 14/1 ।

4 प्रदक्षिणाप्रक्रमणालवालविलेपधूपावरणाम्बुसेकै ।
इष्टञ्च मृष्टञ्च फल सुवाना देवाहि कल्पद्रुमकानन न ।। नै० 14/2 ।

अधिष्ठातृ देव कामदेव (यदुवशी प्रद्युम्न) स्वय आपके पुत्ररूप है और मोक्षदाता परब्रह्म रूप आप स्वय है।[1] इस प्रकार धर्मार्थकाममोक्षरूप चारो पुरूषार्थ आप मे निर्विरोध निवास करते है। अतएव आपकी सेवा से चारो पुरूषार्थों की प्राप्ति सहज मे ही हो जाती है । श्रीहर्ष काम पुरूषार्थ की अपेक्षा धर्मपुरूषार्थ की प्रधानता स्वीकार करते है, तभी तो वह नल के द्वारा विलास प्रवृत्त दमयन्ती को कहलवाते है, यदि तुम्हारे चित्त मे कोई अवसाद न हो तो जिस तप से तुम्हे मैने प्राप्त किया, वह तप कर लूँ।[2] "नल का अपनी पत्नी को सन्तुष्ट कर फिर धर्मार्जन मे प्रवृत्त होना" ऐसे विवरण के उल्लख से स्पष्ट है कि श्री हर्ष के साथ-साथ नल भी धर्मशास्त्र एव कामशास्त्र ज्ञाता थे। वात्स्यायन को भी काम से श्रेष्ठ अर्थ एव अर्थ से श्रेष्ठ धर्म अभीष्ठ है।[3] चाणक्य का कथन है "धर्मस्य मूलमर्थ अर्थस्य मूल राज्यम्, राज्यमूल मिन्द्रियजय", शायद इसीलिए वात्स्यायन ने अर्थ शास्त्र एव कामशास्त्र के अध्ययन को पुरुषो के साथ स्त्रियो को भी करने की सलाह दी।[4] एव वयानुकूल धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के आचरण का विधान किया।[5] महाभारत मे भी कहा गया है –

ऊर्ध्वबाहूविरौम्येष नहि कश्चिद्रणोति माम् । धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेन्वते ।।

मनु ने भी कहा कि न मास भक्षण मे दोष है और न मैथुन करने मे दोष है क्योंकि प्राणियो की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है, हॉ निवृत्त हुआ जाये, तो महाफल (मोक्ष) मिलता है। परन्तु काम का वलान्नियत्रण एव अतिशय भोग ये दोनो प्रवृत्तियॉ उसी तरह हानिकर है जिस तरह कम खाने या न खाने व्यक्ति कमजोर हो जाता है एव अधिक भोजन कर लेने पर अजीर्ण इत्यादि रोग पैदा हो जाते है । इसलिए शास्त्रनिर्देशित विधि ही मनुष्यो को अपनानी चाहिए।[6] मानव मन मे उत्पन्न ईप्सा, समीहा, सकल्प, कामना, स्पृहा भी काम के वृहद रूप (अर्थ) है। काम (इच्छा सकल्प) द्वाराप्रेरित मनुष्य ही किसी कार्य को करने मे प्रवृत्त होता है, अकामी (आलसी) नहीं। मीमासाकार ने कहा भी है – "चोदनालक्षणो धम" मनुस्मृतिकार का कथन भी इसी की पुष्टि करता है ।

---

1 धर्मबीज सलिला सरिदङ्घ्रवर्थमूलमुरसि स्फुरति श्री ।
कामदैवतमपि प्रसवस्ते ब्रह्म भुक्तिदमसि स्वयमेव ।। नै० 21/110

2 इति व्याजाकृत्वालिषु चलितचित्ता सहचरीं । स्वय सोऽय सायतनविधिविधित्सुर्बहिरभूत् ।। नै० 21/162 उत्तरार्द्ध
सावादि सुतनुस्तेन कोपस्ते नायमौचिती । त्वा प्राप यत्प्रसादेन प्रिये। तन्नद्रिये तप ।। नै० 20/14

3 एषा समवाये पूर्व पूर्वो गरीयान् – कामसूत्र 1/2/14

4 धर्मस्यालौकिकत्वात्तदभिदायक शास्त्रयुक्तम् । उपायपूर्वकत्वादर्थसिद्धे। उपायप्रतिपत्ति शास्त्रात्।।–कामसूत्र 1/2/16
राप्रयोगपराधीनत्वात स्त्रीपुसयोरू पायमपेक्षते – कामसूत्र 1/2/18

5 बाल्ये विद्याग्रहणादीनर्थान्, काम च यौवने, स्थविरे धर्ममोक्ष च, अनित्यत्वादायुषो यथोपवाद वा सेवेत्, ब्रह्मचर्यमेवत्वा विद्याग्रहणात् । – कामसूत्र 1/2/2 6

6 – द्वे धारे स्वतत्ररूपत्चात् - मीमासा धर्मपादसूत्र - 55
– स्त्री धारा पुधारामयी कैवल्याधिकारिणी - मीमासा धर्मपादासूत्र - 56
– न कामाश्चरेत्। धर्मार्थयो प्रधानयोरेवमन्येषा न सता प्रत्यनीकत्वात्।
अनर्थजनससर्गमसद्व्यवसायमशौचमनायति चैते पुरूषस्य जनयन्ति । कामसूत्र 1/2/32
– तानि सर्वाणि सयम्य युक्तमासीत् मत्पर । वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।
ध्यायतो विषयापुस सङ्गस्तेषूपजायते । सङ्गात्सञ्जायते काम कामात्क्रोधोऽभिधीयते ।।
क्रोधाद्भवति सम्मोह सम्मोहात्स्मृतिविभ्रम । स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।। गीता 2/61 62, 63
– एवमर्थ च काम च धर्मं चोपाचरन्नर , इहामुत्र च निःशल्यमत्यन्त सुखमश्नुते । – कामसूत्र 1/2/39
कि स्यात्परत्रेत्य शङ्का कार्ये यस्मिन्नजायते । न चार्थघ्न सुखचेति शिष्टास्तत्र व्यवस्थिता ।।
त्रिवर्गसाधक यत् स्याद्वयोरेकस्य वा पुन। कार्यं तदपि कुर्वीत, न त्वेकार्थं द्विबाधकम् - कामसूत्र 1/2/40
– प्रकृति यान्ति भूतानि निग्रह कि करिष्यति? - गीता ।
– य शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारत । न स सिद्धिमवाप्नोति न सुख न परागतिम् ।। - गीता 16/23

अकामस्या कियाकाश्चिद् दृश्यते नहे कर्हिचित् ।
यद्यद्धि कुरुते किञ्चितकामस्य चेष्टितम् ।।

परन्तु यहाँ कामशास्त्र की चर्चा करना अभीष्ट होगा न कि समीहा इत्यादि का वर्णन क्योकि वह इस सन्दर्भ मे अप्रासङ्गिक है।

नैषधकार के कामशास्त्रीयसदर्भों से यह स्पष्ट होता है कि उन्होने भरत का नाट्यशास्त्र, नागार्जुन का रतिशास्त्र, धनञ्जय का दशरूपक, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, वेद, उपनिषद, सूत्रग्रन्थ, वात्स्यायन के कामसूत्र, कालिदास के रघुवश एव कुमारसम्भव तथा माघ के शिशुपालबध का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन कर उनकी विषयवस्तु के प्रतिपादन को अपना आधार बनाया है । कामशास्त्र के ग्रथ एव आचार्य प्रमुख रूप से निम्नवत् हैं- कामसूत्र पर शङ्कराचार्य एव यशोधर की जयमगल टीका, ज्योतिरीश्वर का पञ्चसायक, कोक्कोक का रतिरहस्य (12वीं शताब्दी), जयदेव का रतिमञ्जरी, कल्याणमल्ल का ~~अनरङ्ग~~ अनङ्गरङ्ग 16वीं शताब्दी), ग्रथों मे रतिकर, श्रृङ्गारमञ्जरीभाण, रसिकसर्वस्व, रतिनीतिमुकुल, रतिमन्मथ, रतिमित्र, रतिमुकुल, रतिविजय, रतिविलास, रतिसेन, वात्स्यायनसूत्रसार, वाग्भट्ट का श्रृङ्गारविलास, यामिनीपूर्णतिलका, यामिनीरजन, यामिनीविनोदकथा, युवतीसम्भोगकार, श्रीशैल एव कालीपाद तर्काचार्य का युगलागलीय, बसन्ताभरण, अनङ्गतिलक, मदनमजरी, रसविलास, पचवाणविजय, यौननविलास, यौवनोल्लास, कामरत्न, मन्मथसहिता, मनसिजसूत्र, कामप्रकाश, नागरवल्लभी, स्मरदीपिका आदि बहुमूल्य कामशास्त्रीय ग्रन्थ रत्न है।

कामशास्त्र पर अन्य शास्त्रों का प्रभाव :-

कामशास्त्र का सुचारू दाम्पत्य जीवन के निर्वाह मे अप्रतिम महत्त्व है। यह शास्त्र धर्म, अर्थ, एव काम पुरूषार्थों के सुचारू सम्पादन पर जोर देता है तथा यह भी स्पष्ट रूप से प्रतिपादित करता है कि अर्थ एव काम पर धर्म का नियत्रण अवश्य होना चाहिए, साथ ही यह परस्त्रीगमन एव विधवागमन का निषेध करता है, स्पष्ट है कि इसमे धर्मशास्त्र का प्रभाव परिलक्षित होता है।[1] कामशास्त्र का यह भी मत है कि पत्नी की शारीरिक सहनशीलता को ध्यान मे रखकर रत मे प्रवृत्त होना चाहिए, यह सामुद्रिकशास्त्र के अध्ययन से ही सम्भव है, क्योकि सामुद्रिक शास्त्र का जानकार व्यक्ति किसी भी व्यक्ति की शरीराकृति को देखकर उसके बारे मे अनुमान कर सकता है, अत सामुद्रिक शास्त्र का भी कामशास्त्र पर प्रभाव नकारा नहीं जा सकता। वात्स्यायन ने कामशास्त्र के अगभूत शास्त्रो के साथ-साथ धर्मशास्त्र अर्थशास्त्र एव इनके अगभूतशास्त्रो को पढने की सलाह पुरूषो के साथ-साथ स्त्रियो को भी दी।[2] वह कहते हैं कि यौवनावस्था से पूर्व ही स्त्री को घर मे धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, सङ्गीतशास्त्र का अध्ययन करना चाहिए, एव यदि विवाह हो गया हो, तो पति की अनुमति से ही उसे कामशास्त्र पढना चाहिए।[3] क्योकि धर्म, अर्थ, काम की प्राप्ति के बाद ही पुरूष लोक एव परलोक मे सुख प्राप्त करता है।[4] अत एव कामशास्त्र पर इन शास्त्रो के प्रभाव की सत्ता का प्रभाव अवश्यमेव पडता है। कामशास्त्र पुरूष एव स्त्री दोनो को लौकिक

---

1 सत्य वद, धर्मंचर, स्वाध्यायान्माप्रमद प्रजातन्तु माँ व्यच्छेत्सी - तै०उ० 1/11/1

2 धर्मार्थाङ्ग विद्याकालाननुपरोधयन् कामसूत्र तदङ्गविद्याश्च पुरूषोऽधीयति। - कामसूत्र 1/3/1

3 प्राग्यौवनात् स्त्री। प्रत्ताच पत्युरभिप्रायात् - कामसूत्र 1/3/2

4 शतायुर्वै पुरूषो विभज्य कालमन्योन्यान्यानुबद्ध परस्परस्यानुपधातक त्रिवर्ग सेवेत् । कामसूत्र 1/2/1
धर्ममर्थं च कामं च प्रत्यय लोकमेव च । पश्यत्येतस्य तत्वज्ञो न च रागात्प्रवर्तते ।। कामसूत्र 7/2/53
तदेत् ब्रह्मचर्येण परेण च समाधिना । विहित लोकयात्राऽर्थं न रागार्थोऽस्य संविधि ।। कामसूत्र 7/2/57
रक्षन्धर्मार्थकामाना स्थिति स्वा लोकवर्तिनीम् । अस्य शास्त्रस्य तत्वज्ञो भवत्येव जितेन्द्रिय. ।। कामसूत्र 7/2/58
तदेतत्कुशलो विद्वान्धर्मार्थाववलोकयन् । नातिरागात्मक कामी प्रयुञ्जान प्रसिद्धयति।। कामसूत्र 7/2/59

जीवनाचरण का ज्ञान देने के साथ-साथ, मनुष्यो मे किससे किस तरह का व्यवहार करना चाहिए, इसकी विधियो का ज्ञान भी कराता है, अत नीतिशास्त्र का भी इस शास्त्र पर प्रभाव दिखता है, क्योकि नीतिशास्त्र एव व्यवहारशास्त्र के ज्ञान से ही व्यवहारपटुता होनी सभव है। कामशास्त्र पर काव्यशास्त्र एव व्याकरणशास्त्र भी हासपरिहास क्षणो, पहेली एव स्त्रियो को अपनी ओर आकर्षित करने मे अपने प्रभावो की छाप मनुष्यो के हृदय मे छोडते है। कामशास्त्र के महत्व एव उसके साहित्य पर प्रभाव का विवेचन करते हुए कृष्णामाचारी कहते है –

"Kamasastra treats of Erotics in its most comprehensive signification For purposes of literature, erotics are on the same level as poetics and may not improperly be called a branch of sahitya The classification of heroes and heroines, the description of their qualities, the progress of their loves and the means of their union are all stated in works on poetics are erotics and these precepts are adopted and elaborated in the poetical and particularly the dramatic literature Bhavabhuti, in his Maltimadhava, expressly says that his play in an illustration of kamasutra Without a study of erotics, Sanskrit poetry can not be appreciated "[1]

नैषधीयचरितम् में कामशास्त्रीय संदर्भ एवं उनकी मीमांसा

दाम्पत्य जीवन के सफल निर्वाह मे कामशास्त्र कितना सहायक बन सकता है, उन सभी स्थलो को स्पर्श करने का श्रीहर्ष ने प्रयत्न किया है। नैषधीयचरित मे वेसे तो पूरे वाइस सर्गों मे सभी मे किसी न किसी रूप मे कामशास्त्र की चर्चा श्रीहर्ष ने की है, परन्तु उसके प्रथम, द्वितीय, तृतीय, नवे, अठारहवे उन्नीसवे, वीसवे, इक्कीसवे एव बाइसवे सर्ग तो कामशास्त्र के लघुरूप ही कहे जा सकते है। श्रीहर्ष ने अपने इस ग्रथ मे कामसूत्र के प्रथम तीन अधिकरणो, साधारणाधिकरण, साम्प्रयोगिकाधिकरण एव कन्यासम्प्रमुक्तकाधिकरण का पूर्वरूप से विवेचन, एव भार्याधिकारिकाधिकरण से एक चारिणीवृत्तप्रकरण, पारदारिकाधिकरण से स्त्रीपुरूषशीलावस्थापन प्रकरण, परिचय (दूती द्वारा नायिका से नायक का) कारण प्रकरण, भावपरीक्षाप्रकरण (नायक या नायिका को प्राप्त करने के उपाय) एव दूतीकर्म प्रकरण, वैशिक अधिकरण से अर्थादिविचारप्रकरण, का विवेचन यथावसर किया है। प्रो0 प्रभुदयाल अग्निहोत्री ने यहाँ तक कह दिया कि नैषधीयचरित के श्रङ्गारवर्णन सर्वथा परम्पराजुष्ट है, और उसके सम्भोग वर्णन तो जैसे कामसूत्र को सामने रखकर ही लिखे गये है फिर भी उनका उक्ति-चमत्कार, पूर्णतया मौलिक है।"[2] सम्पूर्ण रसो की अनुभूति सभोग' मे ही होती है, शायद तभी श्रीहर्ष ने अपने ग्रथ नैषधीयचरित को शृङ्गार रूपी अमृत की वर्षा करने वाला चन्द्रमा कहा है।[3]

श्रीहर्ष ने सामान्यजन जीवन को अपने ग्रथ के माध्यम से धर्म, अर्थ, काम एव मोक्ष प्राप्ति की विधाओ एव उनके उचित अनुचित फल से परिचय कराने का प्रयास किया है। यदि उनके इस ग्रन्थ का अद्योपान्त ध्यान से अध्ययन किया जाय, तो निश्चय ही मानव को सफल जीवन निर्वाह की पद्धतियो को जानने के लिए अन्य ग्रन्थो की आवश्यकता नहीं पडेगी, चाहे मनुस्मृति हो या महाभारत, वेद हो या पुराण, उपनिषद, हो या अर्थशास्त्र सभी की शिक्षाओ को सार रूप मे उन्होने अपने इस ग्रथ मे कामशास्त्रीय सदर्भों मे स्थान दिया है। कामशास्त्र का तो उन्होने इस रूप में प्रतिपादन किया है, मानो वह स्वय के

---

1 History of classical Sanskrit literature - M-Krishnamachariar Para- 1065, P- 885

2 वृहत्त्रयी- एक तुलनात्मक अध्ययन – पुरोवाक, पृ० 15-16

3 श्रङ्गारामृतशीतगौवयम् – नैषध-11/130
यत्काव्यं मधुवर्षि – कविप्रशस्ति-4

गृहस्थ जीवन के अनुभवो से परिचित होने के अनन्तर इस ग्रथ के सृजन मे प्रवृत्त हुए हो। कामशास्त्र के ग्रथ वात्स्यायन के कामसूत्र के प्रथम अधिकरण के अन्तर्गत शास्त्र सग्रह प्रकरण, त्रिवर्ग प्रतिपत्ति प्रकरण, विद्यासमुद्देश्य प्रकरण, नागरकवृत्त प्रकरण, नायक सहायहूतीकर्म विमर्श प्रकरण आदि आते है। शास्त्रसग्रह प्रकरण के अन्तर्गत तो मङ्गलाचरण "धर्मार्थकामेभ्योनम" इत्यादि के बाद कामशास्त्र के उद्भव एव विकास पर प्रकाश डाला गया है, इसका वर्णन तो नैषधीयचरित मे नहीं मिलता, परन्तु इसके बाद के प्रकरणो की विषयवस्तु नैषध मे प्रतिपादित है। जो निम्नलिखित है –

त्रिवर्गप्रतिपत्तिप्रकरण :-

श्रीहर्ष ने विभिन्न स्थलो मे धर्म, अर्थ एव काम की चर्चा की है, एव यह स्पष्ट रूप से कहा कि इनमे आपस मे समन्वय होना चाहिए, तथा अर्थ एव काम मे धर्म का वर्चस्व होना चाहिए। ग्रथ के इक्कीसवे सर्ग मे नल द्वारा स्नान, ध्यान, पूजा, तर्पण एव देवार्चना तथा दमयन्ती द्वारा चौदहवे सर्ग मे की गई देवार्चना विवरण से श्री हर्ष की इस विषय मे दक्षता का पता चलता है। पचनली प्रसग मे नल की प्राप्ति हेतु दमयन्ती ने देवताओ को प्रसन्न करने हेतु उनकी वदना की क्योकि देवता मानवो की अभिलाषा पूर्ण करने वाले कामधेनु सदृश है।[1] वात्स्यायन[2] का कथन है यद्यपि धर्म, अर्थ एव काम दोनो से श्रेष्ठ होता है परन्तु तीनों का समान रूप से सेवन करने वाला पुरुष शतजीवी होता है। नल द्वारा विलासप्रवृत्ता दमयन्ती को सन्तुष्ट कर तप (सन्ध्याप्रवृत्त होना) करना एव देवअर्चना के बाद भोजन ग्रहण करना धर्म को श्रेष्ठ मानना है।[3] श्रीहर्ष के विवरण से यह प्रतीत होता है कि नल एव दमयन्ती दोनो ने शास्त्रीय ग्रथो द्वारा निर्देशित मार्ग पर चलकर पुरूषार्थो मे समन्वय की स्थापना की, वात्स्यायन ने भी कहा है कि धर्म, अर्थ तथा काम की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील पुरूष इस लोक तथा परलोक दोनो जगह सुख प्राप्त करता है।[4]

विद्यासमुद्देश वर्णनः-

श्रीहर्ष ने वात्स्यायन के मतानुसार कि " धर्मशास्त्र अर्थशास्त्र तथा इनके अगभूत शास्त्रो के अध्ययन के साथ ही पुरूष (एव स्त्री) को कामशास्त्र के अगीभूत शास्त्रो का अध्ययन करना चाहिए,[5] साथ ही कामसूत्र जैसे ग्रन्थो तथा व्यवहारनिपुण नागरिको से कामशास्त्रीयशिक्षा प्राप्त की जानी चाहिए,[6] का अनुकरण किया है। नैषधीयचरित के बीसवे सर्ग मे वर्णन आया है कि दमयन्ती को उसकी प्रिय सखी कला ने कामविज्ञान की शिक्षा दी थी, कला दमयती से कहती है– "कामशास्त्र पढाते समय मैने तुम्हे जो

---

1 अथाधिगन्तु निषधेश्वर सा प्रसादनामाद्रियतामराणाम् । यत सुराणा सुरभिनृणा तु सा वेधसाऽसृज्यत कामधेनु ॥
प्रदक्षिणप्रकमणालवालविलेपधूपावरणाम्बुसेकै । इष्टञ्च मृष्टञ्च फल सुवाना देवाहि कल्पद्रुमकानन न॥ नै० 14/1,2 एव 3 – 8

2 एषा समवाये पूर्व पूर्वो गरीयान् – कामसूत्र 1/2/14
शतायुर्वै पुरुषो निभज्य कालमन्योन्यानुबद्ध परस्परस्यानुपघातक सेवेत्। – कामसूत्र 1/2/1

3 नै० 21/7 119 एव 162 तथा 20/6, 14, 158।

4 कामसूत्र - 1/2/39, 40

5 धर्मार्थाङ्गविद्याकालाननुपरोधयन कामसूत्र तदङ्गविद्याश्च पुरूषोऽधीयीत्। – कामसूत्र 1/3/9
प्राग्यौवनात् स्त्री । प्रत्ता च यत्युरभिप्रायात् - कामसूत्र 1/3/2
तस्माद्वैश्यासिकाञ्जनाद्रहसि प्रयोगाञ्छास्त्रभेकदेश वा स्त्री गृह्णीयात् । - कामसूत्र 1/3/12
अभ्यासप्रयोज्याश्च चातु षष्टिकान् योगान् कन्या रहस्यकाकिन्यभ्यसेत् ।
आचार्यास्तु कन्याना, प्रवृत्तपुरूषसप्रयोगा सहसप्रवृद्धा धात्रेयिका । - कामसूत्र 1/3/13
तथाभूता वा निरत्ययसम्भाषणा सखी। सवयाश्च मातृष्वसा। विस्रब्धा तत्स्थार्नीय वृद्धदासी।
पूर्वसस्सृष्टा वा भिक्षुकी। स्वसा च विश्वासपयोगात् - कामसूत्र 1/3/14

6 त कामसूत्रान्नागरिक जनसमुवायाच्च प्रतिपद्येत्- कामसूत्र - 1/2/13

विपरीत रति (दाम्पत्यव्यत्यय) बतायी थी, उसे करके भी तुम मुझसे छिपा रही हो।[1] स्पष्ट है कि दमयती ने कामशास्त्र की शिक्षा अपनी सखी से ली थी। वात्स्यायन कहते है कि कन्या को चौसठ कलाओ मे दक्ष होना चाहिए।[2] श्रीहर्ष ने यह प्रतिपादित किया है कि दमयती चौसठ कलाओ की ज्ञाता थी। नल दमयन्ती की प्रशसा मे सातवे सर्ग मे कहते है कि "जो सुन्दरी अपने यश, चरणो के अगूठे के दो नख तथा मुख के रूप मे चार चन्द्रो को धारण किये हुए है, उसमे चौसठ कलाएँ क्यो न वास करे?[3] क्योकि एक-एक पूर्णचन्द्र सोलह कलाओ वाला होता है, और भैमी (दमयन्ती) तो समस्त कलाओ मे प्रवीण है । चौसठ कलाओ का वर्णन कामसूत्र मे आया है।[4]

दमयती के साथ-साथ नल भी चौसठ कलाओ के मर्मज्ञ थे इसका नैषध मे यथावसरवर्णन मिलता है, यथा- उदकघात एव ऐन्द्रिजालिक का प्रयोग[5] तथा काव्यसमस्यापूरण प्रतिमाला प्रहेलिका विवरण[6] वाद्य एव सगीत वीणाडमरूकवाद्य का प्रयोग[7] नृत्य[8] विशेषकच्छेद्यम् का विवरण नैषधीयचरित के सम्पूर्ण सोलहवे सर्ग मे, चित्रकला छठवे, नौवे सर्ग मे चौसठ कलाओ का नैषध मे यथास्थान सङ्केत मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि श्रीहर्ष चौसठ कलाओ के ज्ञाता थे, साथ ही नल भी, क्योकि उन्होने अपने गुणो के माध्यम से एव दमयती ने भी नल को अपनी उत्कृष्ट गुण सम्पन्नता के कारण एक दूसरे को आकर्षित किया था। वात्स्यायन ने भी कहा है कि - "वार्तालाप करने मे निपुण, चाटुकार आदमी यदि कुशलकलाकार हो तो वह अप्रशसनीय होते हुए भी स्त्रियो के चित्त को शीघ्र आकृष्ट कर लेता है।[9] साथ ही कलाओ का ज्ञान प्राप्त करने मात्र से सौभाग्य जाग उठता है।"[10]

नागरकवृत्तवर्णनः-

श्रीहर्ष ने नल का विवरण इस रूप मे उपस्थापित किया है, मानो वह कामसूत्रानुसार ही ग्रथ सृजन किये हो। वात्स्यायन ने यह अभिहित किया है कि – "मनुष्य को ब्रह्मचर्य व्रत रखते हुए विद्योपार्जन करना चाहिए, इसके बाद दान, विजय, व्यापार, तथा श्रम से धनोपार्जन पैत्रिक सम्पत्ति से या दोनो से

---

1 स्मरशास्त्रमधीयाना शिक्षितासि मयैव यम् । अगोपि सोऽपि कृत्वा कि दाम्पत्यव्यत्ययस्त्वया ॥ नै० 20/64

2 कामसूत्र 1/3/13

3 यश पदागुष्ठनखौ मुख च विभर्ति पूर्णेन्दु चतुष्टय या। कला चतु षष्टिरूपैति वास तस्या कथ सुभ्रुवि नाम नास्याम्॥ नै० 7/107

4 गीतम्, वाद्यम्, नृत्यम, आलेख्यम्, विशेषकच्छेद्यम्, तण्डुलकसुनवलिविकारा, पुष्पास्तरणम्, दशनवसनाङ्गराग, मणिभूमिकाकर्म, शयनरचनम्, उदकवाद्यम्, उदकाघात, चित्राश्च योगा, माल्यग्रन्थनविकल्पा, शेखरकापीडयोजनम्, नैपथ्यप्रयोगा, कर्णपत्रभङ्गन, गन्धयुक्ति, भूषणयोजम्, ऐन्द्रजाला, कौचुमारश्चयोगा, हस्तलाघवम्, विचित्रशाकयूषभक्ष्यविकारकिया, पानकरसरागासवयोजनम्, सूचीवानकर्माणि, सूत्रकीडा, वीणाडमरूकवाद्यानि, प्रहेलिका, प्रतिमाला, दुर्वाचकयोगा, पुस्तकवाचनम्, नाटकाख्यायिकादर्शनम्, काव्यसमस्यापूरणम्, पट्टिकावाननेत्रविकल्पा, तक्षकर्माणि, तक्षणम्, वास्तुविद्या, रूप्यपरीक्षा, धातुवाद., मणिरागाकरज्ञानम्, वृक्षायुर्वेदयोगा, मेषकुक्कुटलावकयुद्धविधि, सुकसारिकाप्रलापनम्, उत्सादने, सवाहने केश मर्दने च कौशलम्, अक्षरमुष्टिकाकथनम्, म्लेच्छितविकल्पा, देशभाषाविज्ञानम्, पुष्पशकटिका, निमित्तज्ञानम्, यन्त्रमातृका, धारणमातृका, सम्पाठ्यम्, मानसीकाव्यकिया, अभिधानकोश, छन्दोविज्ञानम्, क्रियाकल्प, छलितकयोगा, वस्त्रगोपनानि, द्यूतविशेष, आकर्षक्रीडा, बालक्रीडनकानि, वैनयिकीज्ञानम्, वैजयिकीनाम् व्यायामिकीनाम्, च विद्यानाम् ज्ञानम् इति चतु षष्टिरङ्गविद्या । – कामसूत्र 1/3/15 ।

5 नै०- 20/124-130

6 नै० 4/101-190

7 6/59, 65, 71, 15/16, 17, 18, 44, 7/48, 49, 50, 17/12, 8/64, 20/60, 10/74, 130, 21/120, 127, 128, 129, 152, 160, 22/57, 58, 106, 109

8 11/6

9 नर कलासु कुशलो वाचालश्चाटुकारक । असस्तुतोऽपि नारीणा चित्तमाश्वेव विन्दति ॥ – कामसूत्र 1/3/21

10. कलाना गृहणादेव सौभाग्यमुपजायते । – कामसूत्र 1/3/32 उत्तरार्द्ध ।

करके विवाह कर गृहस्थाश्रम मे प्रवेश करना चाहिए और नागरको (रसिको) की भाति आचरण करना चाहिए।[1] नल एव दमयती दोनो सम्पूर्ण विद्याओ मे पारगत ही थे, राजा के लिए धनार्जन तो एक सामान्य सी बात है।

भवनविन्यास –

श्रीहर्ष ने राजा नल के महल का बखूबी चित्रण किया है कि नल का राजप्रासाद सुमेरू से भी श्रेष्ठ था तथा उसका अन्त कक्ष सुगन्धित द्रव्यो की भरमार से सुवासित था तथा वहॉ कामशर धूप से बनी बत्तियो वाले दीपक जल रहे थे। महल का फर्श (भूपृष्ठ) मणियो से जडा एव कर्पूर जल से धुला था, नल की पुष्पमयीशय्या भूमिभाग के तिलक के समान थी। बहि कक्ष मे प्रासाद के निकट गृहवाटिका[2] एव उनमे ऋतु के अनुकूल खिलने वाले पुष्पो का सौरभ, कहीं चित्रशाला, तो कहीं अभिनय गृह, शीतल जल के फौब्वारे, शयनकक्ष मे खूटियो पर बैठी हुई कामशास्त्रानुकूल उद्दीपक शब्द करने वाली अथवा कामशास्त्रपडिता सारिकाएँ, मदनमत्त गौरवा (गौरैया) जोडे, वीणावशीवादन की मधुर ध्वनि से आप्यायित प्रकोष्ठ अन्त कक्ष मे रति एव काम की प्राणप्रतिष्ठा की हुई दो प्रतिमाएँ रखी थी।[3] महल के द्वार पर किन्नरियो के गीत प्रासादभित्ति पर पुराणप्रसिद्ध कथाओ के चित्र एव अन्य अनेक विधाओ से चित्रित महल की भित्तियॉ विद्यमान थीं।[4] ध्यातव्य है कि वात्स्यायन ने वहि प्रकोष्ठ का जितना सजीव वर्णन किया है, उतना अन्त प्रकोष्ठ का नहीं, परन्तु नैषधकार श्रीहर्ष ने अन्त प्रकोष्ठ एव बहि, प्रकोष्ठ दोनो का ऐसा सराबोर चित्रण किया है कि वैसी परिकल्पना एव चित्रण अन्यत्र नहीं मिलता, हॉ कादम्बरी एव मृच्छकटिकम् मे अन्त प्रकोष्ठ का चित्रण अवश्य मिलता है। मृच्छकटिक नाटक मे जब शर्विलक नाम का चोर चारूदत्त के घर मे चोरी के लिए घुसा तो देखा कि पूरा घर नाट्य गृह बना हुआ था कहीं पर वीणा मृदग, दर्दुर, पणव आदि वाद्य टगे हुए है, तो कहीं विविध प्रकार पुस्तके सजी हुई है, कहीं चित्रफलक तो कहीं द्यूतफलक रखे है। वीणा को असमुद्रोत्पन्न रत्न कहते हुए मृच्छकटिक मे इसकी बहुत प्रशसा की गयी है यथा –

उत्कण्ठितस्य हृदयानुगुणा वयस्या सकेतके चिरयति प्रवरोविनोद ।
सस्थापना प्रियतमाविरहातुराणाम्, रक्तस्य रागपरिवृद्धकर प्रमोद ।।

अभिलषितार्थ चिन्तामणि[5] से घर की बनावट एव उनकी विशेषताओं तथा विष्णुधर्मेत्तर पुराण के चित्रसूत्रम्[6] से अन्त पुरचित्रण एव अन्त पुरवासी नारियो के गुणो का वर्णन, तथा वेदात ग्रथ पचदशी[7] से कपडे पर बनाये जाने वाले चित्रो यथा- धौत, मण्डित, लाछित और रजित चार प्रकारो का वर्णन मिलता है।

---

1 गृहीतविद्य प्रतिग्रहजयकयनिर्देशाधिगतैरर्थैरन्वयागतैरूभयैर्वा गार्हस्थ्यमधिगम्य नागरकवृत्त वर्तेत्। – कामसूत्र 1/4/1

2 तत्रभवनमासन्नोदक वृक्षवाटिकावद्विभक्तकर्मकक्ष द्विवासगृह कारयेत्। – कामसूत्र 1/4/3

3 बाह्ये वासगृहे सुश्लक्ष्णमुीपयोधीन मध्ये विसृत शुक्लोत्तरच्छद शयनीय स्यात्। प्रतिशयियका च । तस्यशिरोभागे कूर्चस्थानम् वेदिका च। तत्र रात्रिशेषमनुलेपन माल्य सिक्थकरण्डक सौगन्धिकपुटिका मातुलुङ्गत्वचस्ताम्बूलानि च स्यु। भूमौ पतद्ग्रह। नागदन्तावसक्ता वीणा। चित्रफलकम्। वर्तिकासमुद्गक। य कश्चित्पुस्तक कुरण्टकमालाश्च। नातिदूरे भूमौ वृत्तास्तरण समस्तकम्। आकर्षफलक द्यूतफलक च। तस्य बहि क्रीडाशकुनिपञ्जराणि। एकान्ते च तक्षतक्षणस्थानमन्यासां च क्रीडानाम्। स्वास्तीर्णा प्रेङ्खादोला वृक्षवाटिकाया सप्रच्छाया। स्थण्डिलपीठिका च सकुसुमेति भवनविन्यास। कामसूत्र 1/4/4

4 नै० 8/3----29

5. अभिलषितार्थ चिन्तामणि 3/134

6 विष्णुधर्मेतर पुराणा - चित्रसूत्रम् खण्ड 3/45 -------48

7 पचदशी 6/1 ----3

जब कि नैषधीयचरित मे उपर्युक्त सभी विशेषताओ का वर्णन सोलहवे, अठारहवे एव बीसवें सर्ग मे उपलब्ध होता है।

दैनन्दिनी विवरण –

श्रीहर्ष ने राजा नल की दैनन्दिनी की भी चर्चा उन्नीसवे बीसवे इक्कीसवे एव बाइसवे सर्ग मे विस्तार से की है उसकी चर्चा मे कासूत्र का प्रभाव भी परिलक्षित होता है क्योकि वात्स्यायन ने भी इसकी विस्तार से चर्चा की है । नल ने प्रात काल स्नानकर अग्निहोत्र किया,[1] तदनन्तर मध्यान्हस्नान विधिविधान से अर्थात् चन्दनलेप इत्यादि लगाकर किया। श्रीहर्ष लिखते है कि उन्नतस्तनी सुन्दरियो ने सर्वप्रथम कर्पूर, अगुरू, कस्तूरी चदन तथा कक्कोल के मिश्रितचूर्ण से बने यज्ञ-प्रर्दम नामक द्रव्य से नल का कोमल मर्दन किया, फिर कस्तूरिकासुवासिततैल का उनके शिर पर मर्दन किया और अत मे कपूरचंदन के सुगन्धित जल से नल को स्नान कराया।[2] इसके बाद नल ने धवल वस्त्र पहनकर पूजादि कर्मो को सम्पन्न कर[3], मध्यान्ह भोजन ग्रहण किया। वात्स्यायन का भी यही मत है।[4] वराहमिहिर ने बृहत्सहिता मे नागरक के दातून के बारे में[5] एव केशो को हमेशा काला रखने[6] के बारे मे तथा ताम्बूल के महत्व के बार मे वर्णन किया है कि इससे मुख मे काति, सुगन्धि एव माधुर्य आती है।[7] इसका विवरण दिया है। नैषधीयचरित मे बाल सवारने का विवरण श्रीहर्ष ने दिया है कि केशो को कघी से सवारकर बीच से मांग निकाली जाती थी, नैषधकार ने उसे डिफाल कहा।[8] बौधायन[9] गोभिल, और मनु[10] आदि धर्मशास्त्रकारो ने हजामत बनवाने की व्यवस्था का विवरण अपने--अपने ग्रेथो मे दिया है। गोभिल ने अपने गोभिलसूत्र मे दाढी,मूछ, बाल, नख और बाल बनवाने एव शिखा न बनवाने की बात कही- ''केशश्मश्रुलोमनखानि वापयति शिखावजर्नम्। श्रीहर्ष का विवरण भी वैदिक काल से साम्यत रखते हुए आज भी अपनी समीचीनता बनाते हुए है। आज भी स्नान के पहले शरीरमालिश एव मांग सवारने की प्रथा एव पूजा विधान प्रचलित है जैसा कि श्री हर्ष ने विवरण दिया है।

नैषधीयचरित मे यह विवरण मिलता है कि महाराज नल ने देवपूजनोपरान्त भोजन किया[11] एव दमयन्ती ने भी गोरी आदि देवताओ की पूजा के बाद पति के भोजनोपरात भोजन किया ओर जब नल

---

1 नै० 20/6

2 यक्षकर्दममृदून्मृदिताङ्ग प्राकुरङ्गमदमीलितमौलिम् ।
गन्धवार्भिरनुबन्धितभृङ्गैरङ्गना सिषिचुरूच्चकुचास्तम्।। नै० 21/7

3 नै० 21/8 -------- 119

4 स प्रातरुत्थाय कृतनियतकृत्य गृहीतदन्तधावन· मात्रयानुलेपन धूपं सृजमिति च गृहीत्वा, दत्वासिक्थकमलक्तकर्च, द्दष्ट्वादर्शे मुखम् गृहीत मुखवासताम्बूल कार्याण्यनुतिष्ठेत् - कामसूत्र 1/4/5
- नित्य स्नानम्। द्वितीयकमुत्सादनम्। तृतीयक फेनक , चतुर्थकमायुष्यम्। पञ्चमक दशमकं वा प्रत्यायुषमित्यहीनम्। सातत्याच्च सवृतकक्षास्वेदापनोद - कामसूत्र 1/4/6

5 वृहत्सहिता 77/32 -----34

6 वृहत्सहित 77/1 11

7 वृहत्सहित 77/34, 35

8 विभज्य मेरूर्न यदर्थिसत्कृतो न सिन्धुरूत्सर्गजलव्ययैर्मरू ।
अमानि तत्तेन निजायशोयुग द्विफालवद्धाश्चिकुरा शिर स्थितम् ।। नै० 1/16

9 पर्वसु केशश्मश्रुलोभनखवापनम् - बौधायनस्मृति - 2/5/7

10 चूडाकर्म द्विजातीना सर्वोषामेव धर्मेत। प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्त्तव्य श्रुतिचोदनात्।। मनुस्मृति 2/35 एव अन्य स्थल में मनु0 2/2/9, 5/40, 6/52

11 नै० 21/120

महल मे आये तो अलाकार भार से सविलास मन्दगति से उनके पास पहुँचकर आलिगनोत्सुक उनकी गोद मे बैठ गयी।[1] इसके बाद कोई सखी हाथ मे पिजडे मे बन्द तोता लिये, कोई कोकिल, कोई वीणा लिये आयी तथा सगीत वादन एव मधुर गुजन ने दम्पत्ति का मन मोह लिया। तोते ने अपनी वाणी से नल दम्पत्ति की प्रशसा की, फिर नल एव दमयन्ती की प्रेमालाप अन्त मे सायकाल नजदीक आने पर नल दमयन्ती को सखियो से क्रीडानद करने को कहकर साय सन्ध्या के लिए चले गये। वात्स्यायन ने भोजनान्तर सोने का विधान किया, परन्तु श्रीहर्ष ने उसे स्वीकार न कर, दिवारति को रोकना चाहा जो शास्त्रानुकूल एव स्वास्थ्यकारी भी है।[2] वात्स्यायन समर्थिति सायकालीन गोष्ठी[3] की चर्चा श्रीहर्ष ने की, एव रात्रि मे नलदमयती के प्रेमालाप का विवरण दिया है। श्रीहर्ष ने वात्स्यायन द्वारा वर्णित सामूहिक विनोदो यथा-घटानिबन्धन, गोष्ठीसमवाय, समापानक, उद्यानगमन एव समवयस्क मित्रो के साथ खेल खेलने मे केवल समापानक को छोडकर सभी का वर्णन किया है।[4] समापानक सभ्य समाज मे निन्दाचार के अन्तर्गत आता है, शायद श्रीहर्ष ने इसीकारण इसका विवरण नहीं दिया।

''दौत्यकर्म विमर्श विवरण''

सासारिक जीवन मे प्राय देखा जाता है कि प्रेमी प्रेमिका के मामले मे उनका सम्मिलन पत्र या दूत (पुरूष या स्त्री) के माध्यम से होता आया है । श्रीहर्ष ने इस परम्परा से हटकर मनुष्यो के साथ-साथ एक पक्षी (हस) को भी नल एव दमयती को आपस मे मिलाने का माध्यम बनाया। विधि की विडम्बना कहे, या श्रीहर्ष की वर्णन चारूता, जो नल दमयती को हस्तगत करने के लिए स्वय हस को अपना दूत बताता है, वही नल, देवताओ के आग्रह, अनुनय एव भय से स्वय अपनी प्रेयसी को देवताओ को वरण करने के लिए देवताओ का दूत बनकर दमयन्ती के सम्मुख स्वय को समुपस्थापित करता है। दमयती तो हस द्वारा वर्णित नल के गुणो से इतनी आकृष्ट थी कि वह मन ही मन नल को वरण करने का व्रत रख लेती है एव इन्द्रादि देवताओ द्वारा भेजी गयी दूतियो को एव स्वय नल को इन्द्रादि देवताओ को वरण करने की बात पर फटकारती है। फलत देवदूतियो एव नल का दौत्यकर्म असफल हो जाता है, परन्तु हस कृत दौत्यकर्म सफल हो जाता है, क्योकि हस तो उभयनिष्ठ दूत (नल एव दमयन्ती का) था, जिससे उसका दौत्यकर्म सफल हुआ, स्मरणीय है कि नैषधकार इसके माध्यम से दो निष्कर्ष सामान्य मनुष्यो के लिए निकाले है जब दोनो तरफ से प्रेम की अग्नि प्रज्जवलित हो रही हो, अर्थात् जब लडका-लडकी के प्रति, एव लडकी लडके के प्रति आसक्त हो तभी उनमे एक दूसरे के प्रति उद्दाम आशक्ति पैदा होती है, एव दोनो एक दूसरे से मिलने के लिए लालायित हो उठते है तथा अपने उद्देश्य को पाने के लिए पत्र, दूत या स्वय की पहल करते है। जैसा कि अभिज्ञानशाकुन्तल मे राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला को पाने के लिए स्वय पहल की एव मृच्छकटिक नाटक मे वसन्तसेना ने चारूदत्त से प्रणय हेतु स्वय पहल की। ध्यातव्य है कि श्रीहर्ष ने कामशास्त्रीय परम्परा ''आदौवाच्य स्त्रियाराग पश्चात् पुंसस्तदिङ्गितै '' का पालन करते हुए यह स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया है कि सर्वप्रथम दमयन्ती अपने पिता भीम की राजसभा मे भाटो एव पडितो द्वारा

---

1 भीमात्मजापि कृतदैवत भक्तिपूजा, पत्यौच भुक्तवति भुक्तवती ततोऽनु ।
तस्याक मकरिततत्परिरिप्समध्य मध्यास्त भूषणभरातिभरालसागी ॥ – नै० 21/121

2 भोजनानन्तर शुकसारिकाप्रलापनव्यापारा। लावककुक्कुटमेष युद्धानि तास्ताश्च कलाक्रीडा। पीठमर्दविटविद्रषकायत्ता व्यापारा। दिवा शय्या च। – कामसूत्र 1/4/8

3 गृहीत प्रसाधनस्यापराह्ने गोष्ठीविहार – कामसूत्र 1/4/9 प्रदोषे च सगीतकानि। तदन्ते च प्रसाधिते वासगृहे सचारितसुरभिधूपे ससहायस्य शय्यायामभिसारिकाणा प्रतीक्षणम् - कामसूत्र 1/4/10

4 यदगारघटाट्टकुट्टिमस्रवदिन्दूपलतुन्दिलापया - नै० 2/89 पूर्वार्द्ध

नल के गुण सुने एव उस पर अनुरक्त हो गयी[1] तत्पश्चात नल भी हस मुख से दमयती के गुण सुनकर उस पर आसक्त हुए[2] इससे यह भी निष्कर्ष श्रीहर्ष ने निकाला है कि यदि सर्वप्रथम स्त्री-पुरूष पर मोहित हो, एव बाद मे पुरूष, तदनन्तर दोनो वैवाहिक सूत्र मे बधे, तभी वह प्रेम स्थिर एव सफल होता है, अन्य परिस्थितियो मे या तो प्रेम विफल होता है या वैवाहिक जीवन कष्टकमय एव असफल हो जाता है। इस प्रसङ्ग मे दूत का कार्य अप्रतिम महत्त्व रखता है।

श्रीहर्ष ने दौत्य कर्म एव दूत की प्रशसा अपने ग्रथ के दूसरे पाचवे, छठवे, सातवे, आठवे एव नवे सर्ग मे वर्णन कर प्रणय प्रसङ्ग मे दूत की अनिवार्यता सिद्ध की। वात्स्यायन ने दूत वर्णन मे एक अध्याय ही लिखा था[3] एव आचार्य कौटिल्य ने दौत्यकर्म सम्बन्धी अर्थशास्त्र मे दूतप्रणिधि प्रकरण लिखा था । वत्स्यायन ने तीन प्रकार की नायिकाओ का चित्रण किया, कन्या, पुनर्भू एव वेश्या[4] इसमे दमयन्ती कन्यानायिका है जिसका नल मे पूर्वराग है। नैषध मे दमयन्ती विवाह पूर्व कन्या एव परकीया नायिका है एव विवाहोपरान्त वही मुग्धा एव स्वकीया नायिका रूप मे दृष्टिगोचर होती है। कामसूत्रकार के अनुसार कन्या नायिका ही सर्वश्रेष्ठ है, महाभारत मे कन्या के लक्षण बतलाते हुए कहा गया है-

यस्मात् कामयते सर्वान् कमेर्धातोश्च भाविनि। तस्मात कन्येह सुश्रोणि। स्वतत्रता वरवर्णिनि।

कामसूत्र के विवरण से स्पष्ट है कि वात्स्यायन के समय मे कुमारी कन्याओ को अनुकूल वर चुनने की पूर्ण स्वतत्रता थी। सभी तरूण सुन्दर एव सुरूचिगुण सम्पन्ना कन्या की प्राप्ति की कामना पहले भी रखते थे, आज भी वही स्थिति है। श्रीहर्ष का हस के माध्यम से नल एव दमयती को परिचित कराने का अभिप्राय कदाचित विवाह सम्बन्ध स्थापित होने से पूर्व कन्या एव वर को परस्पर प्रेम सम्बन्ध द्वारा एक दूसरे से परिचित कराना ही है । इसी तथ्य को यदि हम आज के जीवन प्रसङ्ग मे देखे तो यही निष्कर्ष सामने आता है कि आज से करीब पचास वर्ष पूर्व जब विवाह छोटी उम्र मे एव द्विरागमन पाच या सात वर्ष पश्चात् होता था, उस अवधि अन्तराल मे वर वधू एक दूसरे के गुण को सुनकर, एव एक दूसरे को देखने की लालसा वश सहज ही स्वाभाविक प्रेम मे बॅध जाते थे, परन्तु आज इक्वीसवीं सदी मे ''चटमगनी पट ब्याह'' एव तदुपरि सम्भोग, मे वरवधू एक दूसरे को समझ नहीं पाते, फलत उनमे सहज प्रीति उत्पन्न नहीं हो पाती एव धीरे-धीरे उनका जीवन आकर्षण (पहले किसी दूसरे मे अनुरक्ति) एव विकर्षण के द्वन्द्व मे पिसता रहता है। श्रीहर्ष ने अपने ग्रथ मे वर्णित तथ्य के माध्यम से यह सन्देश दिया है कि विवाहपूर्व वरवधू को एक दूसरे को समझने की अवधि अवश्य देनी चाहिए। पहले प्रीति उत्पन्न करना, विश्वास पैदा करना एव फिर विवाहबन्धन मे बधना वाभ्रव्य, चारायण, सुवर्णनाभ एव वात्स्यायन के साथ श्रीहर्ष को भी अभीष्ट है। ऋग्वेद भी इसी का समर्थन करता है, जहॉ एक ब्रह्मचारी कुमारी अपने पतिविषयक भावो को स्पष्टरूपेण व्यक्त करती हुई कहती है कि मुझमे यह कामना हुई कि मै अपने समान वर्ण, गुण वाले पति का वरण करूँ और उसके साथ शमन करूँ, उसे पति मानकर उसकी पत्नी बनकर रहूँ, अपना तन, मन

---

1 नृपेऽनुरूपे निजरूपसम्पदा दिदेश तस्मिन्बहुश श्रुति गते।
विशिष्य सा भीमनरेन्द्रनन्दना मनोभवाज्ञैकवशवद मन· ॥ नै० 1/33 नै० 1/34- - - 40

2 स्वकान्तिकीर्तिव्रजमौक्तिकस्रज श्रयन्तमन्तर्घटनागुणश्रियम्।
कदाचिदस्या युवधैर्यलोपिन नलोऽपि लोकादश्रृणोद्गुणोत्करम॥ नै० 1/42, एव नै० 1/43 - - - 52

3 नायकसहायदूतकर्मविमर्शप्रकरणम्- कामसूत्र 1/5/1 - - - 37/अन्त तक

4. तत्र नायिकास्त्रिस्र कन्या पुनर्भूवेश्या च इति। कामसूत्र 1/5/3।

उसे अर्पित कर दूँ। हम दोनो गार्हस्थ जीवन की गाडी के दो चक्र बनकर उसे चलाये।''[1] ऐसी स्थिति मे श्रीहर्ष का दमयन्ती (कन्या) को नायिका बनाना, विवाहपूर्व नायक से हस के माध्यम से जुडवाना परम्परागत उचित और न्यायसगत ही है।

''दूत किसे बनाना चाहिए?'' यह समस्या जब प्रेमीयुगल के मध्य आ खडी होती है, तो इसका समाधान करते हुए वात्स्यायन कहते हैं कि बचपन के मित्र, उपकृत व्यक्ति एव गुण, शील, स्वभाव मे जो अपने समान हो, सहपाठी जिससे कोई रहस्य न छिपाया गया हो, एव जो एक ही धाय की गोद मे पले,बढे हो, उन्हे स्नेहमित्र (दूत) बनाया जा सकता है।[2] साथ ऐसे व्यक्तियो को ही अपना दूत बनाना चाहिए जिनसे वशपरम्परागत स्नेह सम्बन्ध चला आ रहा हो, जिनसे विवाद झगडा न होता हो, जिनका स्वभाव एव चरित्र चचल न हो, परस्पर एक दूसरे के वशीभूत हो, लोभी न हो, बहकाने मे न आते हो, और रहस्यो को गुप्त रखते हो।[3] इसके अतिरिक्त वात्स्यायन ने धोबी, नाई, माली, गन्धी, सौरिक (सुरा विक्रेता) भिक्षुक, ग्वाला, तमोली, सुनार, पीठमर्द, विट एव विदूषक को दूत बनाने की बात कही है।[4] परन्तु यदि उपर्युक्त, वर्णन का गभीर विश्लेषण किया जाय, तो स्पष्ट हो जाता है कि ऐसा विवरण राजनीति एव समाजशास्त्रीय शास्त्रो, मे ही सभव है। कामशास्त्र मे तो जैसा वात्स्यायन का सुझाव है कि अन्त पुर से सम्बन्ध रखने वाली स्त्रियॉ ही दौत्यकर्म मे सफल होती है, अन्त पुर से बाह्य रहने वाले व्यक्ति नहीं। दौत्यकर्मी के गुणो को वर्णन करते हुए वात्स्यायन लिखते है कि जो व्यक्ति पुरूष और स्त्री दोनो के प्रति उदारभाव रखता हो, खासकर स्त्री का अधिकविश्वासपात्र हो वह दूतकर्म के लिए उपयुक्त होता है।[5] बातचीत मे चतुराई, ठिठाई, सकेतो को समझना, नायिका किस समय बहकाई (अपने पक्ष मे की जा सकती है) जा सकती है, इसका कालज्ञान, सकट या सशय उपस्थित होने पर शीघ्रनिश्चय करने वाली बुद्धि, लध्वी प्रतिपत्ति और कार्यसफलता के लिए तुरत उपाय सोच लेना-ये दूत के अभीष्ट गुण है।[6] श्रीहर्ष ने वात्स्यायन के द्वारा कहे गये दूत की विशेषताओ को हस मे घटित किया है। राजा नल ने हस के मुर्छित होने पर अपने आसुओ से उसकी मूर्छा दूर की एव उसे अपना मित्र माना तब हस भी प्रसन्न होकर नल की भुजा पर बैठ गया, मानो बहुत दिनो से लालन-पालन के कारण वह राजा के ऊपर अत्यधिक विश्वास करने लगा हो।[7] राजा नल के किये हुए उपकार (बन्धनमुक्त करने) पर वह नल का प्रत्युपकार करना अपना परम कर्त्तव्य समझता है। वह नल से कहता है कि ''मुझ जैसे किसी व्यक्ति को अपना सहायक (हाथ) बनाकर मगलकारी दैव ही यह उपहार (दूत रूप मे मुझे) आपको समर्पित कर रहा है।[8] अत आप मेरी बात आप अवश्य सुने, तदुपरान्त उसने भीमपुत्री, दमयती के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहा कि वह त्रिकाल तथा त्रिलोक मे अनन्यगुणवती, त्रिभुवन सुन्दरियो की सुन्दरता मद का दमन करने वाली, लक्ष्मीतुल्या सुन्दरकेशो एव दीर्घ नेत्रो वाली, निष्कलक मातृ एव पितृकुलवाली बिम्बाफल के समान ओष्ठो वाली एव चन्द्रमुखी, गौरवर्णा, सुन्दर भ्रू सम्पन्ना एव अगाध लावण्यमयी देहधारिणी[9] एव चरण कमलो

---

1 यमस्य मा यम्य काम आगन् त्समाने योनौ सहशेय्याय ।
जायेव पत्ये तन्व रिरिच्या वि चिद्‌वृहेव रथ्येव चक्रा ।। ऋग्वेद 10/10/7

2 सहपासुक्रीडितमुपकारसम्बद्ध समानशीलव्यसन सहाध्यायिन यश्चास्य मर्माणि रहस्यानि च विद्यात्, यस्य चाय विद्याद्वा धात्रपत्य सहसवृद्ध मित्रम्। – कामसूत्र 1/5/32

3 पितृपैतामहमविसवादकमदृष्टवैकृत वश्य ध्रुवमलोभशीलमपरिहार्यममन्त्रविस्रावीति नित्रसपत्।–कामसूत्र 1/5/33

4 कामसूत्र 1/5/34

5 यदुभयो साधरणभुभयत्रोदार विशेषतो नायिकाया सुविस्रब्ध वत्र दूतकर्म। कामसूत्र 1/5/35

6 पटुता धाष्ट्र्यमिङ्गिताकारज्ञता प्रतारणकालज्ञता विषह्यबुद्धित्व लध्वी प्रतिपत्ति सोपाया चेति दूतगुणा।–कामसूत्र 1/5/36
अखिल विदुषामनाविल सुहृदा च स्वहृदा च पश्यताम्।। नै० 2/55 पूर्वार्द्ध

7 पतगश्चिरकाललालनादितिविश्रम्भमवापितो नु स। अतुल विदधे कुतूहल भुजमेतस्य भजन्महीभुज ।। नै० 2/7

8 नै० - 212, 13

9 नै० 2/17 - - -38

वाली है'' ऐसा कहकर उसने नल के मन मे दमयनती को पाने की कामेच्छा उत्पन्न की एव कहा कि राजन् तुम्हारे परम सौन्दर्य को देखकर मुझे वह दमयती जो अत्यन्त रूप सम्पन्नता है, उसकी याद आ गयी, क्योकि उसे मैने विभिन्न सरोवरो मे अवगाहन (विचरण) काल मे देखा था, हस कहता है कि हे वीर। दमयती के शृङ्गार विलास तुम्हीं को पाकर अलकृत होगे। मणियो का हार (मणि शिरोमणि आप) युवती के ही स्तनो पर शोभावान होता है।[1] और यह प्रण करता है कि मै दमयन्ती के सामने आपके गुणो का ऐसा बखान करूँगा कि वह सुन्दरी आपको अपने ह्रदय मे इस प्रकार बसा लेगी कि उसे इन्द्रादि देवता भी उसके मन से आपको (नल को) नहीं हटा सकेगे।[2] तत्पश्चात् राजा नल ने अपनी मन्मथवेदना को हस से वर्णित किया[3] एव कहा कि हस। कामशर विद्ध मेरी मानसी वेदना के इस अगाध सागर मे डूबने वाले मेरे लिए तुम पोत की भॉति आधार बने हो, जाओ मित्र। तुम्हारा मार्ग मगलकारी बने, फिर शीघ्र यहीं (उपवन मे मिलो। जाओ मेरे अभीष्ट को साधो, पक्षिराज। कभी-कभी (यथावसर) हमे भी याद कर लेना।[4]

हस महाराज नल की सौख्यता प्राप्त कर उनका दूत बनकर जब कुण्डिनपुरी (महाराज भीम की राजधानी, एव दमयती का निवास स्थान) पहुँचता है, तो वह सर्वप्रथम दमयती को अपनी तरफ आकर्षित कर उसके साथ बालक्रीडा जैसे कृत्य करता हुआ उससे वार्तालाप करता है।[5] हस दमयती से कहता है कि ''मेरी गति (पृथ्वी के साथ-साथ) आकाश मे भी है लेकिन तुम केवल पृथ्वी पर ही चल (रमण कर) सकती हो, फिर तनिक सोचो कि तुम मुझे कैसे पकड सकती हो? हे दमयती। यह आश्चर्य ही है कि काम मित्र यौवन तो तुम मे आ गया, परन्तु अभी तक तुम्हारा बचपना नहीं गया।[6] इसी बातचीत मे वह नल की प्रशसा दमयती के सम्मुख करते हुए कहता है कि हम (हस) उसके (नल के) भाग्य से बधे है, क्योकि वह महापुरूषो मे अग्रगण्य, दानी, अप्रतिम सौन्दर्यशाली, सगीतज्ञ, उदारमना, वेदाध्यायी एव कर्मकाण्डी, सम्पूर्ण विद्याओ मे पारगत, अश्वमर्मज्ञ, वीर, कामशास्त्रज्ञ, योगशास्त्र के जानकर, पाकशास्त्र के विशेषज्ञ है।[7] ऐसे व्यक्ति के लिए अन्य स्त्रियॉ रम्भादि अप्सराएँ भी योग्य नहीं हैं, जैसी तुम हो। इसलिए तुम्हे नल से विवाह करना चाहिए और सभव भी है कि तुम्हारा नल से पाणिग्रहण हो भी जाय क्योकि अभी तक तुम्हारा पाणिग्रहण नहीं हुआ है। तुम नल जैसे सुन्दर एव गुणी व्यक्ति से इतर पुरूष के योग्य नहीं हो, एव योग्य का योग्य से सगम होना ही चाहिए।[8] एक बार मै (हस) विधि विमान वहन करते समय ब्रह्माजी से नल के लिए योग्य वधू जानने की जिज्ञासा की थी, तो तुम्हारे नाम की ही ध्वनि मेरे कानो मे पडी थी अब यदि तुम्हारा एव नल का विवाह नहीं होता, तो ब्रह्मा भी जनापवाद सागर को नहीं पारकर पायेगे। ऐसे वाक्यो से हस ने दमयती के ह्रदय कुज मे नल को स्थायी रूप से निवासी बनाने का उद्योग किया, साथ ही यह भी कहा कि मैंने आपको बहुत परिश्रान्त किया, कहिए, मैं आपका कौन सा अभीष्ट सिद्ध कर सकता हूँ[9] ऐसा

---

1 त्वयिवीर। विराजते पर दमयन्तीकिलकिञ्चित किल। तरूणीस्तन एव दीप्यते मणिहारावलिरामणीयकम्।। नै० 2/44

2. तदह विदधे तथा-तथा दमयन्त्या· सविधे तव स्तवम्। ह्रदये निहितस्तया भवानपि नेन्द्रेण यथापनीयते ।। नै० 2/47

3 नै० 2/56 - - - - 60

4 तदिहानवधौ निमज्जतो मम कन्दर्पशराधिनीरधौ । भवपोत इवावलम्बन विधिन.कस्मिक सृष्टसन्निधि ।। नै० 2/60
तव वर्त्मनि वर्तता शिव पुनरस्तु त्वरित समागम । अपि। साधय साधयेप्सित स्मरणीया समये वय वय ।। नै० 2/62

5 नै० 3/-5-14।

6 धार्य कथकारमह भवत्या वियद्विहारी वसुधैक गत्या। अहो। शिशत्व तव खण्डित न स्मरस्य सख्या वयसाप्यनेन।। नै० 3/15

7 नै० 3/20 - - - - 45

8 तन्नैषानूढतया दुराप शर्म त्वयास्मत्कृत चाटुजन्म । रसालवन्या मधुपानुविद्ध सौभाग्यमप्राप्तवसन्तयेव ।। नै० 3/46
तस्यैय वा यास्यसि कि न हस्त दृष्ट मन केन विधे प्रविश्य। अजातपाणिग्रहणासि तावद्रूपस्वरूपातिशया श्रयश्च ।। नै० 3/47
निशा शशाङ्क शिवया गिरीश परस्पर योग्य समागमाय।। नै०3/48
वेलातिगस्त्रैणगुणाब्धिवेणिर्न योगयोग्यासि नलेतरेण। सदर्भ्यते दर्भगुणेन मल्लीमाला न मृद्वी भृशकर्कशेन ।। नै०3/49

9 नै० 3/50, 51

कह कर उसने राजकुमारी के मन की थाह लेनी चाहिए। वात्स्यायन ने भी कहा कि दूसरे की मानसिक स्थिति की थाह लेकर ही दूत को अपने कार्य साधने का प्रयास करना चाहिए। दमयती हस के वचनो का श्रवणपान कर स्वय हस से (निरपराधी होते हुए भी) स्वापराध की क्षमायाचना कर, हस की प्रशसा करते हुए कहा कि मुझे तुम्हे देखकर (नल के दूत) बहुत सुख मिला, परन्तु भला (मुझ जैसी नल मे अनुरक्त) कौन ऐसी बालिका होगी जो स्वय अपने विवाह की बात खुद करती होगी।[1] दमयती के लज्जावश मौन धारण करने पर हस ने दमयती को सौन्दर्य की प्रशसा कर कहा कि "अवाप्यते वा किमियद्भवत्या चित्तैकपद्यामपि विद्यते य "। फिर आप तो अत्यन्त गुणशालिनी, पडिता एव सौन्दर्यशालिनी है।

तदनन्तर दमयती को विश्वास दिलाते हुए कहता है कि यदि आपका मन नल को पाना चाहता है, तो वह अवश्य प्राप्त करेगा, किन्तु यदि आप का निर्णय (नलवरण) का सदेहपूर्ण हो या[2] आप कहीं और अपना मन लगा चुकी हो तब तो महाराज नल से आपकी चर्चा करना मेरी मूर्खता होगी मुझे इस सदेह विषयक कार्य मे न लगाओ। ऐसा कह कर हस सम्पूर्ण रूप से दमयती की बाते जानना चाहता है। वात्स्यायन ने भी कहा हे कि दूत को अपनी पटुता से नायिका के शील, सङ्कोच, लज्जा को परखकर उसे अपने अनुसार कार्य करने (नायक, या नायिका मे अनुरक्त करने का कार्य) करना चाहिए[3], परन्तु दमयती के किसी मे स्वय की अनुरक्ति के नकारात्मक उत्तर से एव नल के अतिरिक्त किसी से विवाह न करने एव प्राण तक त्याग देने की[4] बात से हस दमयन्ती की नल मे असीम अनुरक्ति को जान लेता है साथ ही दमयन्ती के कथन कि "तुम्हीं (हस ही) मुझे नल की प्राप्ति करा सकते हो"[5] से दमयन्ती की नल में अनुरश्रित की पुष्टि भी हो जाती है। इस प्रकार दमयती ने पूर्ण रूप से हस पर विश्वास कर उसे अपना दूत बनने एव नल को स्वय को वरण करने की प्रार्थना की,[6] स्पष्ट है कि हस ने पहले दमयती के सामने नल की प्रशसा की तदनन्तर उसका विश्वास जीतकर सफल दौत्यकर्म निभाया, जो श्रीहर्ष की विदग्धता का परिचायक है। दमयती भी कामशास्त्र पडिता थी तभी तो वह हस से कहती है कि उचित अवसर देखकर ही, अर्थात् जब राजा अन्त पुर मे रमणियो के ससर्ग मे न हो, क्रोध मे न हो अन्यकार्यरत न हो, तभी तुम राजा (नल) से मेरे कार्य (मुझे वरण करने का) का विज्ञापन करना, क्योकि सभव उस समय प्रार्थित विषय को वह अनसुना कर दे, क्योकि कार्य की असफलता की अपेक्षा विलम्ब से प्राप्त सफलता श्रेयस्कर होती है।[7] दमयती के ऐसा कहने पर हस ने पूर्ण रूप से उसे नल मे आशक्त जानकर पुन , जैसी दमयती की (नल को पाने की तडप एव वियोग का दुख है) स्थिति उस समय थी, उसने दमयती के वियोग मे नल की स्थिति बखान की एव कहा कि अब जब कामदेव ने पूर्व ही ऐसी योजना (आप दोनो को मिलाने की) तैयार की, तो अब मेरा कुछ करना शेष नहीं रह जाता।[8] दमयती को पुन धीरज बधाते हुए हस ने कहा कि राजा नल भी तुममे इस प्रकार आशक्त है कि वह (तुम्हारे वियोग मे) उपवास कर रहे है एव उनकी ब्राह्य इन्द्रिया कुछ काम नहीं कर पा रही है।[9] तुम्हे पाकर उन्हे अमृतपान

---

1 मनस्तु य नोज्झति जातु यातु मनोरथ कष्ठपथ कथ स ।
का नाम बाला द्विजराजपाणिग्रहाभिलाष कथयेदलज्जा ॥ नै० 3/59

2 इतीरिता पत्ररथेन तेन ह्रीणा च हृष्टा च बभाण भैमी। चेतो नल कामयते मदीय नान्यत्र कुत्रापि च साभिलाष ॥ नै० 3/67

3 कामसूत्र - 1/5/36

4 नै० 3/74 - - - -81

5. श्रुत स दृष्टश्च हरित्सु मोहाध्दयात स नीरन्ध्रितबुद्धिधाराम् ।
ममाद्य तत्प्राप्तिरसुव्यपो वा हस्ते तवास्ते द्वयमेक शेष ॥ नै० 3/82

6 नै० 3/83 -- -- -- -96

7 विज्ञेन विज्ञाप्यमिद नरेन्द्रे तस्मात्त्वयास्मिन्समय समीक्ष्या ।
आत्यन्तिकासिद्धिविलम्बिसिद्धयो कार्यस्य कार्यस्य शुभा विभाति ॥ नै० 3/96

8 नै० 3/100 ।

9 त्वद्बद्धबुद्धेर्बहिरिन्द्रियाणा तस्योपवासव्रतिना तपोभि ।त्वामद्य लब्ध्वामृततृप्तिभाजा स्वदेवभूय चरितार्थमस्तु॥ नै० 3/101

का सुख मिलेगा। भित्ति पर चित्रित तुम्हारे चित्र को अपलक देखकर आसू बहाने के कारण उनकी आखे लाल हो जाती है, तुम नल की प्राण रूपा हो, तुम को लेकर (नल) वह नयी कल्पनाएँ बना-बनाकर लम्बी आहे भरता है, एकात मे वह तुम्हारा ही चिन्तन करता है, रात्रि मे वह तुम्हारा ही स्वप्न देखता है एव तुम्हे पाने के लिए चिन्तन करता रहता है, अतएव उन्होने ही मुझे तुम्हारे पास भेजा है और तुम्हारे मन मे नल के प्रेम को देखकर मै धन्य हो गया। नल से तुम्हारा अखण्ड मिलन अवश्यमेव होगा, ईश्वर करे तुम दोनो सुरतक्रीडा मे सलग्न होओ एव परस्पर सगम (सम्भोग) से श्रेष्ठ सतति उत्पन्न करो, क्योकि दोनो समान वर्णा हो।[1] तुम निष्कलक कुलजाया हो, तुम्हारा (नल रूप) सिन्दूर अमर रहे, तुम्हारा मगल हो ऐसी कामना करता हुआ, हस सफल दौत्य निभाकर नल की राजधानी कुण्डिनपुर आया एव राजा नल से दमयती की स्थिति बताकर नल को सतुष्ट किया।[2] स्मरणीय है कि देवो की दूतियो ने समय एव परिस्थिति का ध्यान किये बगैर दौत्यकर्म सम्पन्न करना चाहा एव नल को बलात दूत बनाया गया इसलिए देवदूतियॉ एव नल देवो के दौत्यकर्म मे असफल रहे, जबकि हस ने सम्पूर्ण परिस्थितियो को हृदयगमकर अपना कार्य किया, इसलिए वह अपने उद्‌देश्य मे सफल रहा। श्रीहर्ष द्वारा किये गये हस कृत कृत्य मे उनकी कामशास्त्र विदग्धता का आकलन परिपूर्ण रूप से सिद्ध होता है। श्री हर्ष द्वारा वर्णित विवरणो से स्पष्ट है कि नल मित्र बल के साथ-साथ आत्मबली है, जबकि इन्द्रादि देव नहीं इसीलिए वह दमयती को पाने मे सर्वथा असफल रहे, एव नल सफल रहे। नैषध मे वर्णित छठे, सातवे, आठवे एव नवे सर्ग मे वर्णित देवदूतियो एव नल का दौत्यकर्म असफल रहा अत असफल दौत्यकर्म विवेचन का विषय नहीं बनाया गया। वात्स्यायन का भी अभिमत है कि जो व्यक्ति आत्मबल एव मित्रबल सम्पन्न होता है, जो नागरिक वृत्त मे प्रवृत्त होता है एव स्त्रियो के मनोभावो का पारखी तथा स्थान एव समय की उपयोगिता को समझता है, वह अलभ्य स्त्री को भी बडी सरलता से प्राप्त कर लेता है।[3] स्मरणीय है कि हस ने वात्स्यायन समर्थित विधि अपनाकर नल एव दमयती को आपस में मिलाकर अपनी पटुता सिद्ध की। श्री हर्ष ने नैषधीयचरित मे जो नायक के गुण और वैशिष्ट्य बलताये है, वे केवल अलभ्य स्त्रियो की प्राप्ति मे ही सफलता नहीं दिलाते, बल्कि जीवन के हर क्षेत्र और कार्य व्यापार में श्रेय और विजय प्रदान करते हैं। अगर हम तथ्यो का विश्लेषण करे, तो पाते है कि आत्मवान वही है जो कायर नहीं है, मित्रवान वही है जो पवित्र हृदय हो, युक्त वही हो सकता है जो आभिजात्य गुण सम्पन्न हो, मनोभावो का पारखी वही हो सकता है, जिसमे समीक्षात्मक बुद्धि और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण हो । स्पष्ट है कि व्यवहार कुशल व्यक्ति ही देशकालविद् हो सकता है। श्रीहर्ष कृत नल विषयक वर्णन से यही निष्कर्ष निकलता है उसका नायक नल लफगा, छिछोरा मनचला नहीं बल्कि कुलीन, बुद्धिमान, लोकप्रिय, कलाकुशल, स्वाभिमान एव आत्मनिष्ठ है, तभी तो उसने दमयती को चाहते हुए भी राजा भीम से उसकी याचना नहीं किया।[4]

साम्प्रयोगिक विवरण

रतावस्थापन वर्णन

सुरत या सम्भोग को सम्प्रयोग कहते है। श्रीहर्ष ने नैषधीयचरित मे नल एव दमयन्ती के उद्‌दाम सम्भोग का वर्णन किया है। सम्भोग के अन्तर्गत रत व्यवस्थापन आलिङ्गन, चुम्बन, नखरदन, दशनच्छेदन, सवेशन, प्रहणन और सीत्कार वर्णन, पुरुषायित और पुरुषोपसृप्त, रतारम्भावसानिक विवरण एव प्रणय कलह वर्णन मुख्य रूप मे नैषधकार ने वर्णन किया है। सम्प्रयोग को सम्भोग, मैथुन क्रिया, रतावस्थापन

---

1 कामश्चतुर्षु वर्णेषु सवर्णत शास्त्रतश्चानन्यपूर्वाया प्रयुज्यमान पुत्रीयो यशस्यो लौकिकश्च भवति। – कामसूत्र 1/5/1

2. नै० 3/102 - - - 135

3 आत्मवान्मित्रवान्युक्तो भावसो देशकालवित् । अलभ्यामप्ययत्नेन स्त्रिय ससाधयेन्नर ।। कामसूत्र 1/5/37

4 स्मरोपतप्तोऽपि भ्रश न स प्रभुर्विदर्भराज तनयाम याचत् ।
त्यजन्त्यसूञ्शर्म च मानिनोवर त्यजन्ति न त्वेकमयाचितव्रतम्।। नै० 1/50

आदि नामो से भी अभिहित किया जा सकता है। कालिदास ने कहा हे कि दो विभिन्न लिड्गो की अन्विति जहॉ पर होती है वही सम्प्रयोग है।[1] वात्स्यायन ने कामसूत्र मे यह वर्णित किया कि सम्भोग से पूर्व यदि नायक, नायिका (स्त्री, पुरूष) की श्रेणियो का ज्ञान हो जाय तो सम्भोग के क्रियान्वयन मे ज्यादा आनन्दानुभूति मिलती है। नागरसर्वस्व मे गुप्तेन्द्रियो की नाप दी गयी है,[2] वात्स्यायन ने गुप्तन्द्रियो की नाप के अनुसार कहा कि नायक तीन प्रकार के होते है, शश, वृष एव अश्व, एव नायिका तीन तरह की होती है, मृगी, वड्वा एव हस्तिनी। रत सम, विषम, उच्चरत, उच्चतर, नीच, नीचतर छै प्रकार के होते है। शश' का मृगी से, वृष का बडवा से एव अश्व का हस्तिनी से सम्भोग समरत कहलाता है। वात्स्यायन ने समरत को ही श्रेष्ठ माना है। धर्मशास्त्री एव ज्योतिषी भी विवाह से पूर्व वरकन्या के गुणो का मिलान वर्ण, वश्य (स्वभाव), तारा, योनि, गृहमैत्री, गणमैत्री, वयवपु, भकूट (वरकन्या के आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियो का मिलान) के अनुसार करते है, एव इसके माध्यम से वह वर कन्या की श्रेणियो का आकलन कर लेते है। वात्स्यास्यायन रतो के बारे मे विशेष रूप से वर्णन किया है। कामसूत्रकार ने अन्त मे यह निष्कर्ष निकाला कि लिग और योनि के प्रमाण, सम्भोगकाल और मानसिक भाव से उत्पन्न होने वाले अनेक प्रकार के रत है। पुरूष एव स्त्री, मन्दकामी, मध्यमकामी, एव प्रचण्डकामी तीन कोटियो के होते हे, उनमे सम्भोगकाल मे मानसिक सवेग एव काल परिस्थिति के अनुसार यदि रतो (सम्भोग) की गणना की जाये तो शायद अनगिनतरत हो जायेगे।[3] इन विविध प्रकार के रतो मे तर्क बुद्धि द्वारा विचार करके सम्भोगरत होना चाहिए। प्रथमरत मे वीर्य स्खलित होने तक पुरूष का वेग बहुत अधिक रहता है, जिससे उसकी भोगेच्छा शीघ्र ही समाप्त हो जाती है, किन्तु दुबारा सम्भोगरत होने पर पुरूष देर तक ठहरता है। स्त्रियो की प्रवृत्ति इससे प्रतिकूल होती है। पहली बार स्त्रियो की कामाग्नि मद गति से प्रज्जवलित होती है और बहुत देर तक ठहरती है दूसरी बार उतनी देर तक नहीं ठहरती, पुरूष और स्त्री के कामेच्छा मे यह स्वाभाविक भेद होता है। स्त्रियो की कामाग्नि प्रज्जवलित करने वाली एव उनको प्रिय लगने वाली वस्तुओ के बारे मे महाकवि कालिदास एव भारवि एव माघ ने शिशिर एव बसन्त ऋतु को ही श्रेष्ठमाना है। यथा –

"प्ररूढशाली क्षुचयावृतक्षितिं, क्वचित्स्थितक्रौञ्चनिनादराजितम् ।
प्रकामकाम प्रमदाजनप्रिय वरोरू । काल शिशिराह्वय श्रृणु ॥" ऋतु सहार 5/1

"गृहीत ताम्बूलविलेपनस्रज पुष्पासवामोदितवक्त्र पङ्कजा ;
प्रकामकालागुरूधूपवासित विशर्न्ति शय्यागृहमुत्सका स्त्रिय ॥" वही 5/5

"कृतापराधान् बहुशोऽभि तर्जितान् सवेपथून् साध्वसलुप्तचेतस ।
निरीक्ष्य भर्तृन्सुरताभिलाषिण स्त्रियोऽपराधान्समदा विसस्मरू ॥" वही 5/6

"कतिपयसहकारपुष्परम्यस्तनुतुहिनोऽल्प विनिद्रसिन्दुवार ।
सुरभिमुखहिमागमान्तशसी समुपययौ शिशिर स्मरैकबन्धु ॥" किरातार्जुनीयम्10/30

---

1 उष्णत्वमग्न्यातपसम्प्रयोगाच्छैत्य हि यत् सा प्रकृतिर्जलस्य । रघुवश 5/54
रहसि स्त्रीसम्भोगे हि द्विविध सम्प्रयोगो मिथा लीला विलासश्च। उज्ज्वलनीलमणि की टीका, पृ० 605।

2 परिणाहारोहाभ्या षण्णवद्वादशाङ्गलैर्गुह्यै । शशवृषभाश्वा हरिणीबडवेभिकानार्य ॥ नागर सर्वस्व 4/1

3 प्रमाण कालभावजाना सप्रयोगाणामेकैकस्य नवविधत्वात्तेषां व्यतिकरे सुरतसख्या न शक्यते कर्तुम्। अतिबहुत्वात्। कामसूत्र 2/1/33
– तेषु तर्कादुपचारान्प्रयोजयेदिति वात्स्यायन। कामसूत्र 2/1/34
– प्रथमरते चण्डवेगता शीघ्रकालता च पुरूषस्य, तद्विपरीतमुत्तरेषु।
– योषित पुनरेतदेव विपरीतम्। आ धातुक्षयात् । कामसूत्र 2/1/35

"कुसुमयन् फलिनीरलिनीरवैर्मदविका सिभिराहित हुड्कृति ।
उपवन निरभर्त्सयत प्रियावियुवतीयुर्वती शिशिरानिल ।। शिशुपालवधम् 6/62
"शिशिरमासमपास्य गुणोऽस्य न क इव शीतहरस्य कुचोष्मण ।
इति धियास्तरूष परिरेभिरे घनमतो नमतोऽनुमतान् प्रिया ।। वही 6/65 ।

कामशास्त्र के सभी आचार्यों का यह मत है कि स्त्रियॉ पुरूषो की अपेक्षा शीघ्र रति प्राप्त करती है, क्योकि वह स्वभावत कोमल हुआ करती है।[1] श्री हर्ष को इसका अभीष्ट ज्ञान था तभी तो उन्होने यह वर्णन किया कि जब सम्भोगरत होने पर दमयती जो अभी शैशव पार की थी, कोमलता के कारण अधिक देर तक स्तम्भन नहीं कर सकती थी, अत नल ने जब देखा कि उसका स्खलन होने वाला है, तो अपने मणिजटित भूपृष्ठ पर पडने वाले प्रतिबिम्ब की ओर सकेत करते हुए कहा कि अरे वह कौन है? इस प्रकार दमयती का ध्यान हटाकर उसकी विन्दुच्युति को रोका।[2] एव भय (किसी की उपस्थिति का) से कामवेग अपने आप कम हो गया तथा मन अस्थिर हो गया। जिससे सुरतोत्सव कुछ देर और चलता रहा। कामशास्त्र मे भी कहा गया है "अन्यचित्ततया सभ्रमजनेन च भावबन्ध कुर्यात्" नल दमयन्ती सम्भोग के अनेक स्थलो मे कामशास्त्र का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है यथा-

तत्क्षणावहितभावभावितद्वादशात्मसितदीधितिस्थिति । स्वा प्रियामभिमतक्षणोदया भावलाभलघुता नुनोद स ।।
स्वेन भावजनने स तु प्रिया बाहुमूल कुचनाभिचुम्बनै । निर्ममे रतरह समापनाशर्मसारसमसविभागिनीम् ।।
विश्लथैरवयवैर्निमीलया लोमभिर्द्रुतमितैर्विनिद्रताम । सूचित श्वसितसीत्कृतैश्च तो भावमक्रममध्यगच्छताम ।।[3]

नल कामशास्त्र से थे ही अत उन्होने (सूर्य, चन्द्र, सम्बन्धी) इडा पिङ्गला नाडियो के विधान द्वारा (एव सभ्रम चित्त होकर) समय से पूर्व होने वाले अपने वीर्यपात (स्खलन) को रोक लिया। नल ने जब देखा कि काम भाव वेग चरम सीमा तक पहुँच गया और स्खलन का समय नजदीक आया, तो उन्होने तत्क्षण प्रिया के बाहुमूल, स्तन तथा नाभि आदि का चुम्बन करते हुए उसे भी भाववेग की पराकाष्ठा पर पहुँचाते हुए अपने सुरत सुख का सहभागिनी बनाया। सुखान्त मे दोनो के अङ्ग शिथिल हो गये, नेत्र मुँद गये, शीघ्रता से रोमाच हो आया, लम्बी श्वासे चलने वाली, एवं सी०सी० की ध्वनि होने लगी। इस रूप से दोनो ही एक साथ स्खलित हुए एव आनन्द की चरम अनुभूति मे डूब गये।[4] सभोगकाल मे सीत्कार, विलास और उपसर्ग ये तीन क्रियाएँ हुआ करती है। वात्स्यायन ने भी स्पष्ट रूपेण कहा कि जब एक-एक हो दोनो की विन्दुच्युति होती है, तभी सम्भोग का आनन्द दोनो को प्राप्त होता है, अगर किसी एक की विन्दुच्युति दूसरे से पहले हो जाती है, तो उनमे से एक सम्भोग मे सन्तुष्ट नहीं हो पाता, एव दूसरे व्यक्ति (जो पहले स्खलित हो जाता है) से या तो घृणा करने लगता है या उससे परान्मुख होने लगता है, अत प्रयास यही करना चाहिए कि दोनों एक साथ स्खलित हो इसके लिए अभ्यास एव अपने यज्ञसहभागी की मनोदशा की जानकारी होनी अत्यन्त आवश्यक है, और यह कामशास्त्र के ग्रथो के अध्ययन एवं उनकी विधियों को अपनाने से ही सभव है। वात्स्यायन ने भी सम्भोग की व्याख्या करते हुए कहा है कि पुरूषो के साथ सभोग करने से स्त्रियो की खुजली मिटती है, तथा चुम्बन, आलिगनादि मैथुन क्रियाओ से मिलकर वही सम्भोग सुख कहलाती है।[5] कामशास्त्रीय आचार्य बाभ्रव्य का भी कथन है कि सभोग के अन्त मे वीर्य

1 मृदुत्वादुपमृद्यत्वान्निसर्गाच्चैव योषित। प्राप्नुवन्त्याशु ता· प्रीतिमित्याचार्या व्यवस्थिता। कामसूत्र 2/1/37
2 वीक्ष्य भावमधिगन्तुमुत्सुका पूर्वमच्छमणिकुट्टिमे मृदुम् । कोऽयमित्युदितसभ्रमीकृता स्वानुविम्बमददर्शतैष ताम् ।। नै० 18/114
3. नै० 18/115 - - - 117
4 नै० 18/115, 116, 117
5. संयोगे योषित पुसा कण्डूतिरपनुद्यते। तच्चाभिमानससृष्ट सुखमित्यभिधीयते।। कामसूत्र 2/1/17

स्खलित होने पर ही पुरूष को सभोग सुख प्राप्त होता है किन्तु स्त्रियो को आरम्भ से ही सुखानुभूति होने लगती है और स्खलन हो जाने पर ठहरने की इच्छा होती है।[1] आचार्य पद्मश्री ने भी नागरसर्वस्व मे सम्भोग से पूर्व तैयारी के बारे मे विवरण दिया है। उन्होने भी यह कहा कि समागम मे पूर्ण सुखानुभूति प्राप्त करने के लिए समरत बहुत आवश्यक है, क्योकि सम्भोग का सर्वोपरि उद्देश्य पति-पत्नी मे आध्यात्मिक प्रीति और उदात्त भावनाओ को सजोना एव उनका विकास है, जिस प्रकार ससार की इच्छाएँ लोकैषण, दारैषणा और वित्तैषणा तीन भागो मे बटी है, उसी प्रकार सम्भोग सुख तीन प्रकार के भावो पर निर्भर रहता है। (१) सन्तानोत्पत्ति, जननेन्द्रिय तथा काम सम्बन्धी समस्याओ के प्रति आदर्शभाव (२) उत्तरदायित्व का निर्वाह (३) एक दूसरे के प्रति श्रद्धा, उच्चभाव और हितकामना। रति या आपस मे प्रीति होने से ही सफल होती है। कामशास्त्र पडितो का मत है कि प्रीति चार प्रकार से उत्पन्न होती है, अभ्यास, विचार, स्मरण और विषयो से। इन्द्रियो के विषयो से होने वाली प्रीति का अनुभव तो सामान्यत सभी लोगो को होता है, किन्तु इन्द्रिय विषयजन्य प्रीति (सम्भोग) प्रधान होने के कारण अन्य सभी प्रीतियाँ इसी के अन्तर्गत समाहित मानी जाती है।[2] अत सम्भोग से पूर्व रति व्यवस्थापन मे सहयोगी के मानसिक एव शारीरिक स्तर का पूर्ण ज्ञान होना अत्यत आवश्यक है। वात्स्यायन ने भी ऐसा ही मत दिया है।[3] स्पष्ट है कि रतावस्थापनप्रीति विशेष का उन्नायक आधार है एव श्रीहर्ष ने इसका विशिष्ट वर्णन नैषध के अठारहवे सर्ग मे किया है।

आलिङ्गन वर्णन :-

नैषधकार ने स्त्री पुरूष के आनन्दातिरेक मे होने वाले आलिङ्गन पर भी अपनी दृष्टि डाली है। कामशास्त्र विद्वज्जनो ने सम्भोग के चौसठ अग बताये, एव अन्य बहुत से आचार्यों ने सम्पूर्ण शास्त्रो के चौसठ अग बताये। सम्भव है कलाओ की सख्या इतनी ही होने के कारण कामशास्त्र को चौसठ अगो वाला माना जाता हो। वाभ्रवीय आदि आचार्यों का मत है कि आलिगन, चुम्बन नखक्षत, सवेशन सीत्कृत पुरूषायित (विपरति रति), औपरिष्टक (मुख मैथुन) इन आठ प्रकार के मैथुनो के पुन आठ-आठ भेद होने से चौसठ प्रकार के मैथुन हुए,[4] किन्तु वात्स्यायन ने इस तथ्य को नकारते हुए कहा कि इनमे से प्रत्येक के आठ-आठ भेद होते ही नहीं, किसी के कम होते है तो किसी के अधिक' उन्होने प्रमुख रूप से आठ आलिगन बताये, अविवाहित पुरूष एव स्त्री के लिए स्पृष्टक, विद्धक, उद्घृष्टक और पीडितक,[5] एव विवाहितो के लिए लतावेष्टितक, वृक्षाधिरूढक, तिलतण्डुलक एव क्षीरनीरक ।[6] आचार्य सुवर्णनाभ ने चार प्रकार के अन्य आलिगन बताये है- उरूपगूहन, जघनोपगूहन, स्तनालिगन, एव ललाटिका[7] नैषधकार मे औपरिष्टक को छोडकर शेष अन्य सम्भोग विधियो एव आलिगनो पर अपनी दृष्टि डाली है। औपरिष्टक आलिगन नल दमयन्ती कथा प्रसङ्ग मे सर्वथा अप्रासङ्गिक होने के कारण नैषधीय चरित मे उपेक्षित रहा

---

1 सुरतान्ते सुख पुसा स्त्रीणा तु सतत सुखम्। धातुक्षयनिमित्ता च विरामेच्छोपजायते।। कामसूत्र 2/1/22

2 प्रत्यक्षा लोकत सिद्धा या प्रीतिविषयात्मिका। प्रधानफलवत्वात्सा तदर्थश्चेतरा अपि ।। कामसूत्र 2/1/44

3 प्रीतीरेता पराभृश्य शास्त्रत शास्त्रलक्षणा। यो यथा वर्तते भावस्तत तथैव प्रयंजयेत।। कामसूत्र 2/1/45

4 आलिगन चुम्बन नखच्छेद्यदशनच्छेद्यसवेशनसीत्कृत पुरूषायितौपरिष्टकानामष्टानामष्टधा विकल्पभेदादष्टावष्टकाश्चतुष्षष्टिरिति बाभ्रवीया। कामसूत्र 2/2/4

5 तत्रसमागतयो प्रीतिलिङ्गद्योतनार्थमालिङ्गनचतुष्टयम्। स्पृष्टकम्, विद्धकम्, उद्घृष्टकम् पीडितकम् इति ।। कामसूत्र 2/2/6

6. लतावेष्टितक वृक्षाधिरूढक तिलतण्डुलक क्षीरनीकमिति चत्वारि सप्रयोगकाले। कामसूत्र 2/2/14

7. सुवर्णनाभस्य त्वधिकमेकाङ्गोपगूहनचतुष्टयम्। कामसूत्र 2/2/22

है। हालाकि आज पश्चिमी सभ्यता मे यह आलिगन महत्ता रखे हुए है कुछ आधुनिक भारतीयो ने भी इसे अपना रखा है, परन्तु इसका प्रचलन आशिक लोगो मे ही है, आज भी भारतीय सस्कृति मे इसे आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता।

कामशास्त्रीय नियम है, "आदौरत बाह्यमिह प्रयोज्य तत्रापि चालिङ्गनमेव पूर्वम्।" नैषधकार इसी नियम का परिपालन करते दिखते हैं। नैषधीयचरित मे आलिगनो के जो विवरण मिलते हैं[1] वह छठे सर्ग मे जब नल देवदूत बनकर दमचन्ती प्रसाद मे उपस्थित होते है, तथा वहा उनका रमणियो से सन्निकर्ष होता है बाद मे ग्यारहवे एव सोलहवे सर्ग मे बारात भोजन प्रसग मे एव अठाहरवे सर्ग मे नल दमयन्ती के रमण के प्रसङ्ग मे प्रमुखतया उल्लिखित है। वे निम्नलिखित है –

(१) **स्पृष्टक** - वात्स्यायन ने इसकी व्याख्या करते हुए कहा- "समुखागताया प्रयोज्यायामन्यापदेशेन गच्छतो गात्रेण मात्रस्य स्पर्शन स्पृष्टकम्।"[2] उदाहरण -

यस्मिन्नलस्पृष्टकमेत्य हृष्टा भूयोऽपि त देशमगान्मृगाक्षी ।
निपत्य तत्रास्य धरारजःस्थे पादे प्रसीदेति शनैरवादीत् ।। नै० 6/35
स तत्कुचस्पृष्टकचेष्टिदोर्लताचलद्दलाभव्यजनानिलाकुल ।
अवाप नाननलजालश्रृङ्खलानिबद्धनीडोद्भवविभ्रम युवा ।। नै० 16/63

आलिगन समुखागताया प्रयोज्यायामन्यापदेशेन गच्छतो गात्रेण गात्रस्य स्पर्शन स्पृष्टकम्। 2/2/8

(२) **विद्धक** – वात्स्यायन ने इसकी व्याख्या करते हुए कहा–"प्रयोज्य स्थितमुपविष्ट वा विजने किंचिद् गृह्णाती पयोधरेण विद्धयेत्। नायकोऽपि तामवपीड्य गृह्णायादिति विद्धकम्।"[3] उदाहरण-

हत. कयाचित्पथि कन्दुकेन सघट्टय भिन्न करजैकयापि ।
कयाचनानक्त कुचकुकुमेन सभुक्तकल्प स बभूव ताभि ।। नै० 6/29

(३) **उद्घृष्टक** – वात्स्यायन ने इस आलिगन की दशा को बताते हुए कहा–"तमसि जनसबाधे विजने वाथ शनकैर्गच्छतोर्नातिह्रस्वकालमुर्द्धषण परस्परस्य गात्राणामुदघृष्टकम्।"[4] उदाहरण –

चतुष्पथे त विनिमीलिताक्ष चतुर्दिगेता सुखमग्रहीष्यन् ।
सघट्टय तस्मिन्भृशभीनिवृत्तास्ता एव तद्वर्त्म न चेददास्यन् ।। नै० 6/27
सघट्ट्यन्त्यास्तरसात्मभूषाहीराकुरप्रोतदुकूलहारी ।
दिशानितम्ब परिधाप्य तन्व्यास्तत्पापसन्तापभवापभूप ।। नै० 6/28

(४) **पीडितक** – वात्स्यायन ने इसके बार में कहा – "तदेव कुड्यसदशेन स्तम्भसदशेन वा स्फुटकमवपीडयेदिति पीडितकम्"[5] **उदाहरण-**

बाहुबल्लिपरिरम्भमण्डली या परस्परमपीडयत्तयो ।
आस्त हेमनलिनीमृणालज पाश एव हृदयेशयस्य सः ।। नै० 18/96

1 सन्निधावपि निजे निवेशितामालिभि कुसुमशस्त्रशास्त्रवित्। आनयद्व्यवधिमानिव प्रियामङ्कपालिवलयेन सन्निधिम् ।। नै० 18/40 प्रागचुम्बदलिके ह्रियानता ता क्रमाद्दरनता कपोलयो । तेन विश्वसितमानसा झटित्यानने स परिचुम्ब्य सिष्मिये ।। नै० 18/41

2 कामसूत्र 2/2/8

3 कामसूत्र 2/2/9

4. कामसूत्र- 2/2/11

5. कामसूत्र 2/2/12

श्री हर्ष ने उपर्युक्त आलिगनो का विस्तार रूप से वर्णन छठे एव सोलहवे सर्ग मे किया है।[1] कामसूत्रकार ने विवाहोपरान्त लतावेष्टितक वृक्षाधिरूढक, तिलतण्डुलक और क्षीरनीरक जेसे आलिगन अपनाने की बात की है। नैषधकार को भी यह आलिगन सामान्य जन को अपनाने के लिए अभीष्ट दिखत हे तभी उन्होने इन आलिगनो का भी वर्णन नौषधीयचरित मे किया है।

(१) **लतावेष्टितक** – वात्स्यायन ने इस आलिगन की व्याख्या करते हुए कहा– "लतेव शाल्माविष्टयन्ती चुम्बनार्थं मुखमवनमेत्। उद्धृत्य मन्दसीकृता तमाश्रिता वा किचिद्रामणीयक पश्येत्तल्लतावष्टितकम्।[2] उदाहरण-

पत्युरागिरिशमातरू क्रमात्स्वस्यचागिरिजमालत वपु ।
तस्य चाहमखिल पतिव्रता क्रीडति स्म तपसा विधाय सा ।। नै० 18/83

(२) **वृक्षाधिरूढक**– वात्स्यायन इस आलिगन का विवरण देते हुए कहते है–"चरणेन चरणमाक्रम्य द्वितायेनोरूदेशमाक्रमन्ती वेष्टयन्ती वा तत्पृष्ठसक्तैकबाहुद्वितीयेनासमवनमयन्ती ईषन्मन्दसीत्कृतकूजिता चुम्व नार्थ मेवाधिरोढुमिच्छेदिति वृक्षादिरूढकम्।"[3] वात्स्यायन ने इसे समागमपूर्व आलिगन कहा।[4] उदाहरण-

क्रमोद्गता पीवरताधिजघ वृक्षाधिरूढ विदुषी किमस्या ।
अपि भ्रमीभङ्गिभिरावृताङ्ग वासो लतावेष्टितकप्रवीणम् ।। नै० 7/97
परस्य न स्प्रष्टुमिमामधिक्रिया प्रिया शिश प्राशुरसाविति्ब्रुवन् ।
रथे स भैमीं स्वयमध्यरूरुहन्न तत्किलाश्लिक्षदिमा जनेक्षित ।। नै० 16/114।

(३) **तिलतण्डुलक**–कामसूत्रकार ने इस आलिगन की दशा का वर्णन करते हुए कहा- "शयनगतावेवोरूव्यत्यास भुजव्यत्यास च ससर्गमिव घन सस्वजैते तत्तिलतण्डुलकम्।"[5] उदाहरण-

मिश्रितोरू मिलिताधर मिथ स्वप्नवीक्षित परस्पर क्रियम् ।
तौ ततोऽनु परिरम्भसम्पुटे पीडना विदधतौ निदद्रतु ।। नै० 18/152

तद्यातायातरहश्छलकलितरत श्रान्तिनिश्वास धारा जस्रव्यामिश्रभावस्फुटककथितमिथ प्राण भेदव्युदासम् ।
बालावक्षोजपत्राकुरकरिमकरीमुद्रितोर्वीन्द्रवक्ष चिन्हाख्यातैकभावोभयहृदयमयाद्वन्द्वमनन्दनिद्रान् ।।" नै० 18/153

(४) **क्षीरनीरक (क्षीरजलक)** – वात्स्यायन ने इसके बारे मे कहा– "रागान्धावनपेक्षितात्ययौ परस्परमनुविशत इवोत्सङ्गगतायामभिमुखोपविष्टाया शयने वेति क्षीरजलकम्"।[6] उदाहरण-

मेघातिथेस्त्वमुरसि स्फुर सृष्ट सौख्या साक्षाद्यथैव कमला यमलार्जुनारे ।। नै० 11/73 उत्तरार्द्ध
प्लक्षे महीयसि महीवलयातपत्रे तत्रेक्षिते खलु तवापि मतिर्भवित्री ।
खेला विधातुमधिशाखविलम्बिदोला लोलाखिलाङ्जनताजनितानुरागे ।। नै० 11/74
एतद्यशोभिरखिलेऽबुनि सन्तुहसा दुग्धीकृते तदुभयव्यतिभेदग्धा ।
क्षीर पयरयपि पदे द्वयवाचिभूय नानार्थकोषविषयोऽद्य मृषोग्धमस्तु ।। नै० 11/78।

---

1 नै० 6/30-53, नै० 16/51- - - 112
2 कामसूत्र 2/2/15
3 कामसूत्र 2/2/16
4 तदुमय स्थितकर्म-कामसूत्र 2/2/17
5 कामसूत्र 2/2/18
6 कामसूत्र 2/2/19

वल्लभेन परिम्भपीडितौ प्रेयसी ह्रवदि कुचाववापतु ।
केलतीमदनयोरूपाश्रये तत्र वृत्तमिलितोपधानम् ।। नै० 18/97
शर्मं कि ह्रदि हरे प्रियार्पण कि शिवार्धघटन शिवस्यवा ।
कामये तव महेषुतन्वि। त नन्वय सरिदुदन्वदन्वयम् ।। नै० 18/145

वात्स्यायन ने उपर्युक्त दोनो आलिगनो को रागकालीन बताया।[1] आचार्य सुवर्णनाम ने वात्स्यायन के आठ आलिगनो के अतिरिक्त चार अन्य प्रकार के आलिगन बताये है, उरूपगूहन, जघनोपगूहन स्तनालिगन एव ललाटिका आलिगन। हालाकि ये चारों आलिगन तिलण्डुलक एव क्षीरजलक के अन्तर्गत समाहित हो सकते है लेकिन फिर भी श्रीहर्ष ने ललाटिका आलिगन को छोडकर अन्य तीन आलिगनो का विवरण दिया है। स्मरणीय है कि ललाटिका आलिगन को नैषधकार ने चुम्बन विधि की एक विधि मानी। यहा यह भी कहना परमावश्यक है कि श्रीहर्ष ने वात्स्यायन के साथ-साथ सुवर्णनाभ के मत का भी अनुसरण किया है।

(१) **उरूपगूहन** – कामसूत्र मे इस आलिगन के बारे मे उल्लेख मिलता है कि– "तत्रोरूसन्दशेनैकमूरूमूरूद्वय वा सर्वप्राण पीडयेदित्यूरूपगहनम्।"[2] उदाहरण-

सा शशाक परिरम्भदायिनी गाहितु वृहदुर प्रियस्य न ।
चक्षमे च स न भगुरभ्रुवस्तुङ्गपीनकुचदूरता गतम् ।। नै० 18/95

(२) **जघनोपगूहन** – सुवर्णनाभ ने इसके बारे मे कहा– "जघनेन जघनमवपीड्य प्रकीर्यमाणकेशहस्ता न खदशनप्रहणनचुम्बनप्रयोजनाय तदुपरि लङ् घयेत्तज्जघनोपगूहनम्।"[3]

(३) **स्तनालिंगन** – इसके बारे मे सुवर्णनाम ने बताया –"स्तनाभ्यामुर प्रविश्य तत्रैव भारमारोपयेदिति स्तनालिगनम्।"[4]

(४) **ललाटिका** – सुवर्णनाभ इसआलिगन की व्याख्या करते हुए कहते है कि – "मुखे मुखमासज्याक्षिणी अक्ष्णोर्ललाटेन ललाटमाहन्यात्सा ललाटिका।"[5] उपर्युक्त तीनो आलिगन नैषध के श्लोक 18/95 तथा नैषध मे वर्णित विपरी रति वर्णन[6] मे घटित होते हैं। वैसे तो आलिगन बहुविध हो सकते हैं, परन्तु मुख्य आलिगन प्रमुख रूप से इन बारह आलिगनो के अन्तर्गत आ जाते हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि कामशास्त्र का (के विषय) ज्ञान (की आवश्यकता) उसी समय तक रहता है जब तक मनुष्य कामान्ध नहीं होता, एव कामान्ध हो जाने पर तो कामशास्त्र और उसकी बताई हुई विधियो का अनुपालन तो शायद सामान्यजन द्वारा नहीं ही किया जाता हो,[7] परन्तु श्रीहर्ष के नायक नल एव नायिका दमयन्ती यत्र तत्र सर्वत्र कामशास्त्रीय मार्यादाओ का पालन करते दिखते है।

---

1 तदुमय रागकाले- कामसूत्र 2/2/20
2 कामसूत्र 2/2/23
3 कामसूत्र 2/2/24
4 कामसूत्र 2/2/25
5 कामसूत्र 2/2/26
6 नै० 20/64
7 शास्त्राणा विषयस्ताक्द्यावन्मन्टरसा नरा। रतिचक्रे प्रवृत्ते तु नैव शास्त्र न च क्रम ।। कामसूत्र 2/2/31

चुम्बन विवरण-

चुम्बन के प्रसग मे भी श्रीहर्ष ने कामशास्त्र की अभिज्ञता का परिचय दिया है। कामशास्त्रविदो ने सुरतोत्सव पूर्व प्राक्कीडा के साथ-साथ चुम्बन को अनिवार्य एव मङ्गलाचरण जैसा माना है। शारीरिक विज्ञान का मत है चुम्बन, नखच्छत एव दन्तक्षत जैसी प्राक्कीडाओ से स्त्री की जननेन्द्रिय सुखानुभूति के कारण ग्रन्थिगतक्षरण से आर्द्र हो जाया करती है, इसी कारण सुरतोत्सव मे वास्तविक आनन्द की अनुभूति होती है। कामशास्त्रीय पडित रतिरहस्यकार[1] का कथन है कि सुरतोत्सव पूर्व नायक नायिका को द्रवित करने का विधान अवश्य जान लेना चाहिए, क्योकि जिस प्रकार चन्द्रमा की सोलह कलाएँ घटा बढा करती है, उसी प्रकार कृष्णपक्ष एव शुक्लपक्ष मे स्त्री के सोलह अगो मे 'काम' बढता और घटता रहता है। शुक्लपक्ष की प्रतिपदा तिथि से लेकर पूर्णिमा तक काम स्त्री के क्रमश अगूठे, पॉव, जघा, नाभि, छाती, स्तन, बाहुमूल, कण्ठ, ओठ, ऑख, भौह, और ललाट पर क्रमश चढता है और कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से बाये भाग होकर क्रमश मस्तक से नीचे उतरता है। इसलिए तिथि क्रमानुसार चुम्बन विधान अपनाना चाहिए। सुश्रुत ने काम को ईख मे रस, एव दूध मे घी जैसे विद्यमाना माना एव कहा कि सघर्षण (प्राक्कीडाओ) से काम द्रवित होता है।[2] वात्स्यायन ने चुम्बन स्थान एव उनके अपनाने की सम्मति देते हुए कहा-

(A) ललाटालककपोलनयनवक्ष स्तनोष्ठान्तर्मुखेषु चुम्बनम् – कामसूत्र 2/3/4

(B) चुम्बन नखदशनच्छेद्याना न पौर्वापर्यमस्ति । रागयोगात् प्राक्नयोगा देशा प्राधान्येन प्रयोग । प्रहणनर्सीत्कृतयोश्च सप्रयोगे। – कामसूत्र 2/3/1

(C) सर्व सर्वत्र। रागस्यानपेक्षितत्वात्। इति वात्स्यायन , 2/3/2

(D) तानि प्रथमरते नातिव्यक्तानि विश्रब्धिकाया विकल्पेन च प्रयुञ्जीत् । तथाभूतत्वाद्रागस्य। तत परमतित्वरया विशेषवत्समुच्चयेन रागसधुक्षणार्थम् ।।– कामसूत्र 2/3/3

(E) ऊरूसधिबाहुनाभिमूलयोर्लाटानाम् – कामसूत्र 2/3/5

(F) रागवशाद्देशप्रवृत्तेश्च सन्ति तानि-तानि स्थानानि, न तु सर्वजनप्रयोज्यानीति वात्स्यायन । – कामसूत्र 2/3/6

आचार्य पद्मश्री भी यही स्वीकार करते हैं कि देशभेद तथा स्वभावभेद से स्त्रियो को चुम्बन प्रिय हुआ करते है, इसलिए अपनी प्रकृति के अनुसार ही वे विलास करती है।[3] इन्होने अपने ग्रथ नागरसर्वस्व मे चुम्बनो एव आलिगनो के भावो यथा हेला, विच्छिति, बिब्बोक, किलकिचित, विभ्रम, लीला, विलास, हाव, विक्षेप, विकृत, मद, मोट्टायित, कुट्टमिति, मुग्धता, तपन और ललित इन सोलह भावो को सुरतोत्सव की भूमिका मानते है। नैषधीयचरित मे उपलब्ध कामशास्त्रीय सदर्भों से स्पष्ट होता है कि नल एव दमयन्ती ने स्वदेशप्रचलित (मालवाप्रदेश एव महाराष्ट्र प्रदेश) कामरीतियो को अपनाया है जैसा कि कामसूत्र ग्रन्थादि मे उपलब्ध मालवा एव महाराष्ट्रीय स्त्रियों के कामविधानो के वर्णनो के साम्यता करने पर सिद्ध होता है। वात्स्यायन ने तरूणी द्वारा अपनाये जाने वाले चुम्बन को तीन प्रकार का माना है- निमित्तक, स्फुरितक एव घट्टितक ।[4]

---

1 रतिरहस्य- चन्द्रकलाधिकार- द्वितीय परिच्छे।

2 सु०नि० 10/19/21

3 योषिता विषयसाम्यत प्रिय चुम्बन प्रकृतिकृत्यमिष्यते
तत्र चैकविषये प्रयुज्यतेऽभीप्सितप्रकृतिसाम्यतस्तदा ।। नागरसर्वस्व 20/12

4 तद्यथा-निमित्तक स्फुरितक घट्टितकमिति त्रीणिकन्या चुम्बनानि। कामसूत्र 2/3/7

(१) **निमित्तक** – वात्स्यायन ने इसके बारे मे कहा – "बलात्कारेण नियुक्ता मुखे गुखमाधत्ते न तु विचेष्टत इति निमित्तकम्।"[1] उदाहरण-

प्रातरात्मशयनाद्विनिर्यती सन्निरूध्य यदसाध्यमन्यदा ।
तन्मुखार्पणमुख सुख भुवो जम्भजित्क्षितिशचीमचीकरत ।। नै० 18/66

(२) **स्फुरितक** – वात्स्यायन ने इसकी व्युत्पत्ति करते हुए कहा– "वदने प्रवेशित चोष्ठ मनागणपत्रपावग्रहीतुमिच्छन्ती स्पन्दयति स्वमोष्ठ नोत्तरमुत्सहत इति स्फुरितकम्।"[2] उदाहरण-

स्वप्तुमाप्तशयनीययोस्तयो स्वैरमाख्यतवच प्रियाप्रिय ।
उत्सवैरधरदानपानजै सान्तरायपदमन्तरान्तरा ।। नै० 18/142।

(३) **घट्टितक** – वात्स्यायन ने इस चुम्बन विधि को स्पष्ट करते हुए कहा– "ईषत्परिगृह्य विनिमीलितनयना करेण च तस्य नयनेअवच्छादयन्ती जिह्वाग्रेण घट्टयति इति घट्टितकम्"। नैषधीयचरित मे उपलब्ध 18वे सर्ग के १४२वे श्लोक मे घट्टितक चुम्बन की भी प्रतीति होती है। वात्स्यायन चार प्रकार के अन्य चुम्बन यथा सम, तिर्यक, उद्भ्रान्त अवपीडितक का विधान करते है, जिनका श्रीहर्ष ने भी वर्णन किया है, भले ही वह व्यजना रूप मे ही क्यो न किये हो।[3] आचार्य पद्मश्री ने विपीडित भ्रमित, उल्लसितक, स्फुरितक सहतोष्ठ, वैकृतक, नतअड चुम्बन प्रकारो को अपनाने की सलाह दी, तथा वात्स्यायन ने अन्य उत्तर,सम्पुटिक, सम, पीडित, अचित एव मृदु आदि चुम्बन प्रकारो को भी अपनाने का वर्णन किया, परन्तु श्रीहर्ष ने स्फुरितक, उल्लसितक मृदु एव सम को छोडकर किसी का वर्णन नहीं किया, क्योकि नैषधकार की दृष्टि मे वह उचित एव मर्यादित नहीं थे, जैसा कि कामसूत्र मे आये उनकी व्याख्या के अध्ययनान्तर स्पष्ट ही हो जाता है। वात्स्यायन ने चुम्बन अपनाने के बारे मे कहा –

कृत प्रतिकृत कुर्यात्ताडिते प्रतिताडितम्। करणेन च तेनैव चुम्बिते प्रतिचुम्बितम्।।[4]

महाकवि कालीदास ने भी चुम्बन का मनोहारी वर्णन किया है । यथा –

सस्वजे प्रियमुरोनिपीडन प्रार्थितमुखमनेन नाहरत् ।
मेखलाप्रणयलोलता गत हस्तमस्य शिथिल रूरोध सा ।।[5]

नैषधीयचरित मे चुम्बन के अन्य प्रमुख उदाहरण –

क्षन्तु मन्तु दिनस्यास्य वयस्येय व्यवस्यतात् ।
निशीव निशिधात्वर्थं यदाचरति नात्र न । नै० 20/54

यच्चुम्बति नितम्बोरू यदालिङ्गति च स्तनौ ।
भुङ्क्ते गुणमय तत्ते वास शुभदशोचितम् ।। नै० 20/148

चुम्बनायकलितप्रियाकुच वीरसेनसुतवक्त्रमण्डलम् ।
प्राप भर्तुममृतै सुधाशुना सक्तहाटकघटेन मित्रताम् ।। नै० 18/105

वीक्ष्यपयुरधर कृशोदरी बन्धुजीवमिव भृङ्गसङ्गतम् ।
मञ्जुल नयनकज्जलैर्निजै सवरीतुमशकत्स्मित न सा ।। नै० 18/125

---

1 कामसूत्र – 2/3/8
2 कामसूत्र – 2/3/9
3 नै० 16/58 - - - 108, भोजन प्रसङ्ग में ।
4 कामसूत्र 2/3/32
5 कुमारसम्भव 8/14

अन्यदस्मि भवतीं न याचिता वारमेकमधर धयामि ते ।
इत्यसिस्वददुपाशुकाकुवाक्सोपमर्दहठवृत्तिरेवतम् ।: नै० 18/59
पीततावकमुखासवोऽधुना भृत्य एष निजकृत्यमर्हति ।
तत्करोमि भवदूरूमित्यसौ तत्र सन्यधित पाणिपल्लवम् ।। नै० 18/60

कामशास्त्र मे उल्लिखित पञ्चसायको (पञ्चबाणो)[1] की चर्चा अथर्ववेद मे मिलती है, वे है अकार इकार, उकार, एकार व औकार। इन पञ्चसायको का लक्ष्य स्त्रियो के हृदय, स्तन, ऑखे, मस्तक एव गुप्तेन्द्रिय होते है। इन अङ्गो के चुम्बन से भी कामिनियॉ कामविह्दल हो उठती है। श्रीहर्ष ने भी पञ्चसायको का उल्लेख करते हुए अभिहित किया कि– "दौत्यकर्म मे प्रवृत्त व्यक्ति को हस द्वारा बताये गये लक्षणो से दमयन्ती ने नल ही समझा, जिससे मदनवाण उस सुन्दरी के शरीर मे प्रविष्ट हो गये, साथ ही दमयन्ती को देखकर नल भी पञ्चसायको से घायल हो गये। अर्थात् नल एव दमयन्ती दोनो को पञ्चसायको ने अपना निशाना बनाया।[2]

श्रीहर्ष के साथ-साथ उनके पूर्ववर्ती महाकवि कालिदास को भी सुरतोत्सव मे चुम्बन अभीष्ट रहा है, तभी तो उन्होने इसका अत्यन्त मनोहारी वर्णन अपने ग्रथ कुमारसम्भव मे किया है। यथा –

यन्मुखग्रहणमक्षताधर दानमव्रणपद नखस्ययत् ।
यद्रत च सदय प्रियस्य तत्पार्वती विषहते स्म नेतरत् ।।[3]

दष्टमुक्तमधरोष्ठमम्बिका वेदनाविधुरहस्तपल्लव ।
शीतलेन निरवापयत् क्षण मौलिचन्द्रशकलेन शूलिन ।।[4]

अङ्गुलीभिरिव केशसञ्चय सन्निगृह्य तिमिर मरीचिभि ।
कुड्मलीकृतसरोजलोचन चुम्बतीव रजनीमुख शशी ।।[5]

घूर्णमाननयन स्खलत्कथ स्वेदबिन्दु मदकारणस्मितम् ।
आननेन न तु तावदीश्वरश्चक्षुषा चिरमुमामुख पपौ ।।[6]

स प्रियामुखरस दिवानिश हर्षवृद्धिजनन सिषेविषु ।
दर्शनप्रणयिनामदृश्यतामाजगाम विजयानिवेदनात् ।।[7]

---

1 अरविन्दमशोक च चूत च नवमल्लिका ।
नीलोत्पल च पचैते पचबाणसायका ।। सस्कृत हिन्दीकोश-वामनशिवराम आप्टे, पेज- 562
सम्मोहनोन्मादनौ च शोषणस्तापनस्तथा ।
स्तम्भनश्चेति कामस्य पञ्चबाणा प्रकीर्तिता ।। सस्कृत शब्दार्थ कौस्तुक पृ० 624
– उत्तुदस्त्वोत्तुदतु मा भृथा शयने स्वे । इषु कामस्य या भीमा तया विध्यामित्वा हृदि ।।
– आधीपर्णा कामशल्यामिषु सकल्प कुल्मलाम्। ता सुसनता कृत्वा कामो विध्यतु त्वा हृदि ।।
–या प्लीहान शोषयति कामस्येषु सुसनता । प्राचीनपक्षा व्योषा तया विध्यामि त्वा हृदि ।।
– शुचा विद्धा व्योषया शुष्कस्याभि सर्प मा । मृदुर्निमन्यु केवली प्रियवादिन्यनुव्रता ।।
– आजामि त्वाजन्या परिमातुरथो पितु । यथा मम क्रतावसो मम चित्त मुपायसि ।।
– व्यस्यै मित्रावरूणौ हृदाश्चिन्तान्यस्यतम् । अथै नामक्रतु कृत्वा ममैव वृणुन वशे ।। अथर्ववेद काण्ड 3, सूक्त 25

2 अपाङ्गमप्याप दृशोर्न रश्मिर्नलस्यभैमीमभिलस्य यावत् । स्मराशुग सुभ्रुवि तावदस्या प्रत्यङ्गमापुङ्खशिख ममज्ज ।। नै० 8/3
यदक्रम विक्रमशक्तिसाम्यादुपाचरद्द्वावपि पञ्चबाण । कथ न वैमत्यमुष्य चक्रे शरैरनर्धार्धविभागभाग्भि ।। नै० 8/4

3 कुमारसम्भव 8/9

4 वही 8/19

5 वही 8/63

6 वही 8/80

7 वही 8/90

उपर्युक्त वर्णनो से स्पष्ट हो जाता है कि चुम्बनो का कामयज्ञ मे अप्रतिम योगदान है एव नैषधकार के वर्णन वेद, कामसूत्र एव अपने पूर्ववर्ती महाकवियो से साम्य रखते है, परन्तु कही-कहीं पर उन्होने इसका उद्दाम वर्णन भी किया है।[1]

''नखक्षत एवं दन्तक्षत विवरण''

नखक्षत विवरण-

कामशास्त्र मे आलिगन चुम्बन के साथ नखक्षत एव दन्तक्षतो का विधान वर्णित मिलता है, स्पष्ट है कि सुरतोत्सव मे इनकी भी महनीय भूमिका होती है। वात्स्यायन का कहना है- "नान्यत्पटुतर किचिदरित रागविवर्धनम्। नखदन्तसमुत्थाना कर्मणा गतयो यथा।।[2] रागवृद्धौ सघर्षात्मक नखविलेखनम्।।[3] तस्य प्रथमसमागमे प्रवासप्रत्यागमने प्रवासगमने कुद्धप्रसन्नाया मत्ताया मत्ताया च प्रयोग। न नित्यमचण्डवेगयो।"[4] आचार्य सुवर्णनाभ का मत है- "प्रवृत्तरतिचक्राणा न निवासमरस्थान वा विद्यत इति सुवर्णनाभ।"[5] परन्तु वात्स्यायन नखक्षत के स्थान बताते हुए कहते है- "कक्षौ स्तनौ गल पृष्ठ जघनमूरू च स्थानानि"[6] वात्स्यायन ने चिन्हो के अनुसार नखक्षत आठ प्रकार के माने हे- "तदाच्छुरितकमर्धचन्द्रो मण्डल रेखा व्याघ्रनख मयूरपदक शशप्लुतक मुत्पलपुत्रकमिति रूपतोऽष्टविकल्पनम्।"[7]

नैषधीयचरित में उपलब्ध नखक्षत वर्णन –

(१) **आच्छुरितक** – वात्स्यायन इसके बारे मे कहते है – "तै सुनियमितैर्हनुदेशे स्तनयोरधरे वा लघुकरणमनुद्गतलेख स्पर्शमालजननाद्रोमाञ्चकरमन्ते सन्निपातवर्धमान शब्दमाच्छुरितकम्।"[8] उदाहरण –

कुचौ दोषोज्झितावस्या पीडितौ व्रणितौ त्वया ।
कथ दर्शयतामास्य बृहन्तावावृतौ ह्रिया ।।[9]

(२) **अर्धचन्द्र**- कामसूत्रकार का कथन है- "ग्रीवाया स्तनपृष्ठे च वक्रो नखपदनिवेशोऽर्धचन्द्रक"।[10] उदाहरण–

यौ कुरङ्मदकुङ्माञ्चितौ नीललोहितरूचौ वधूकुचौ ।
स प्रियोरसि तयो स्वय भुवोराचचार नखकिशुकार्चनम् ।।[11]
वीक्ष्य वीक्ष्य करजस्य विभ्रम प्रेयसार्जितमुरोजयोरियम् ।
कान्तमैक्षत हसस्पृश कियत्कोपकुञ्चित विलोचनाञ्चला ।।[12]
स्वापराधमलुपत्पयोधरे मत्कर सुरधनुष्करूत्तव ।
सेवया व्यजनचालनाभुवा भूय एव चरणौ करोतु वा ।।[13]

---

1 प्रस्मृत न त्वया तावद्यन्मोहनविमोहित । अतृप्तोऽधरपानेषु रसनामपिब तव ।। नै० 20/78
2 कामसूत्र- 2/4/31
3 कामसूत्र- 2/4/1
4 कामसूत्र - 2/4/2
5 कामसूत्र- 2/4/6
6 कामसूत्र- 2/4/5
7 कामसूत्र - 2/4/4
8 कामसूत्र – 2/4/12
9 नैषध – 20/49
10 कामसूत्र – 2/4/14
11. नै 18/101
12 नै० 18/130
13. नै० 18/134

त्वत्कुचार्द्रनखाङ्कस्य मुद्रामालिङ्गनोत्थिताम् ।
स्मरे स्वहृदि यत्समेरसखी शिल्प तवाद्भुताम् ।'[1]

तत्कुचे नखमारोप्य चमत्कूर्दस्तयोक्षित ।
सोऽवादीत्ता हृदिस्थ ते कि मामभिनदेषन ।।[2]

वात्स्यायन ने उपर्युक्त वर्णित आठ नखक्षतो यथा- मण्डल रेखा (प्रयोग), व्याघ्रनख, मयूरपदक, शशप्लुतक, उत्पलपत्रक आदि का वर्णन भी विशेष रूप से किया।[3] प्रयोग नखक्षत का वर्णन करते हुए श्री हर्ष लिखते है कि दमयन्ती के दोनो जघाओ पर नल के नखो के कोमलचिन्ह[4] इस प्रकार सुन्दर लगते थे मानो दो स्वर्ण स्तम्भो पर रति और मदन की विजयप्रशस्ति लिखी गयी हो।[5] नखक्षत दोनो (पति-पत्नी) के द्वारा किया जाना चाहिए, ऐसा विवरण जो नैषधकार ने दिया है,[6] वह सर्वथा कामशास्त्र सम्मत ही दिखता है।[7] श्रृगार के प्रसग मे दन्तक्षत एव नखक्षत की प्राचीन परम्परा रही है, तभी तो महाकवि कालिदास ने भी नखक्षतो का वर्णन कर इनकी उपादेयता पर अपनी मुहर लगा दी। यथा-

उपहित शिशिरापगमश्रिया मुकुलजालमशोभत किशुके ।
प्रणयिनीव नखक्षतमण्डन प्रमदया मदयापितलज्जया ।।[8]

क्लिष्टकेशमवलुप्तचन्दन व्यत्ययार्पितनख समत्सरम् ।
तस्य तच्छिदुरमेखलागुण पार्वतीरतमभून्न तृप्तये ।।[9]

ऊरुमूलनखमार्गराजिभिस्तत्क्षण हृतविलोचनो हर ।
वासस प्रशिथिलस्य सयम कुर्वतीप्रियतमानवारयत् ।।[10]

यन्मुखग्रहणमक्षताधर दानमव्रणपद नखस्य यत् ।
यद्रत च सदय प्रियस्य तत्पार्वती विषहते स्म नेतरत् ।।[11]

श्रीहर्ष ने वात्स्यायन द्वारा बताये गये मार्ग का अनुसरण करते हुए ही काव्य सृजन किया है, क्योकि वह प्रकाण्ड शास्त्रज्ञ जो थे। उपर्युक्त वर्णनो से स्पष्ट है कि आलिगन चुम्बन के साथ-साथ नखक्षत एव दन्तक्षत कामसवेग बढाने वाली मनुष्यो द्वारा अपनायी जाने वाली क्रियाएँ है, एव इन क्रियाओ के अपनाने से ही सुरत क्रियाओ मे असीम आनन्द की अनुभूति होती है। महर्षि वात्स्यायन ने जिन स्थानो पर नखक्षत एव दन्तक्षत करने का विधान किया है, उन स्थानो को यौन विज्ञान मे कामोत्तेजना का केन्द्र माना गया है, अगर यौन विज्ञान और मनोविज्ञान की दृष्टि से भी देखा जाय, तो नखक्षत, दन्तक्षत आदि प्रेम क्रियाएँ (क्रीडाएँ) जीव विज्ञान से सम्बन्धित प्रक्रियाए है, मनुष्यो के साथ-साथ पशु पक्षी भी इन क्रियाओ को अपनाते है, क्योकि इस प्रक्रिया का आधार यौन उत्तेजना है। यौन मिलन के लिए यौन उत्तेजना

---

1 नै० 20/79
2 नै० 20/146
3 कामसूत्र - 2/4/15 - - - 21
4 मध्यमान्युभयभाञ्जि महाराष्ट्रकाणामिति- कामसूत्र 2/4/11
5 भीमजोरूयुगल नलार्पितै पाणिजस्य मृदुभि पदैर्बभौ । तत्प्रशस्ति रतिकामयोर्जययस्तम्भयुग्ममिव शातकुम्भजम् ।। नै० 18/98
6 याचनान्न ददतीं नखक्षत ता विधाय कथयाऽन्यचेतसम् । वक्षसि न्यसितुमात्ततत्कर स्व विदित्वा मुमुदे स तन्नरवै ।। नै० 18/72
7 कामसूत्र - 2/4/31
8 रघुवश- 9/31
9 कुमारसभव- 8/83
10 कुमारसभव- 8/87
11 कुमारसभव- 8/9

बढते-बढते जब पराकाष्ठा को पहुँच जाती है, तभी नखक्षत, दन्तक्षत की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है, चिकित्सा विज्ञान का अभिमत है कि स्त्रियो की त्वचा के ऊपरी भाग मे कुछ ऐसे क्षेत्र होते है जिनका सम्बन्ध डिम्बाशय से होता है, उन्हे कुछ दशाओ मे हल्की और द्रुत उत्तेजना देने से केवल कामोद्रेक ही नहीं होता बल्कि सम्भोग की पूर्णावस्था उत्पन्न हो जाती है। इन अवयवो का सकुचन एव प्रसारण अवरूद्ध हो जाने से स्त्रियो को मिरगी रोग पकड लिया करता है। इसलिए शारीरिक एव मानसिक स्वास्थ्य को सशक्त बनाये रखने के लिए स्त्रियो के कामोत्तेजना के केन्द्रो पर नखक्षत एव दन्तक्षत करना आवश्यक एव अपरिहार्य है, परन्तु ध्यान रहे ये नखक्षत एव दत्तक्षत इतने तीव्रवेग मे न किये जाय कि स्त्री या पुरूष घायल हो जाय, केवल मृदु दन्तक्षत एव नखक्षत करने का विधान वात्स्यायन के साथ-साथ श्री हर्ष को भी अभीष्ट है, जो कि नैषधीयचरित के अध्ययन से स्पष्ट रूप मे ध्वनित होता है।

दन्तक्षत वर्णन-

श्री हर्ष जो कि आर्यावर्त प्रदेशीय थे, उन्होने अपने नायक नल (निषधदेशीय) एव नायिका दमयन्ती (विदर्भ देशीय) का चरित्र वर्णन किया है, जो वात्स्यायन द्वारा वर्णित महाराष्ट्रीय देश की रीतियो के अन्तर्गत समाहित है। बाण एव कालिदास ने भी मालवविलासिनियो का वर्णन किया है। महाराष्ट्र देश की स्त्रियॉ चौंसठ कलाओ के प्रयोग मे अनुराग रखती हैं, अश्लील गदे और कडवे वचन बोलती हैं तथा सम्भोग का प्रारम्भ बडे जोश खरोश के साथ करती है।[1] नैषधकार ने नल दमयन्ती के कामोत्सव मे किय जाने वाले जिन दन्तक्षतो का वर्णन किया है, वे कामशास्त्रीय मर्यादा के सर्वथा अनुकूल है। वात्स्यायन दन्तक्षतो के स्थानो एव उनके भेदो का वर्णन करते हुए कहते है- "उत्तरौष्ठमन्तर्मुखनयनमिति मुक्त्वा चुम्बनवद्दशनरदनस्थानानि।"[2] गूढकमुच्छूनक बिन्दुबिन्दुमाला प्रवालमणिर्मणिमाला खण्डाभ्रक बराहचर्वितकमिति दशनच्छेदनविकल्पा"।[3] अर्थात् गूढक, उच्छूनक, बिन्दु, बिन्दुमाला, प्रवालमणि, मणिमाला, खण्डाभ्रक, एव वराहचर्वित दन्तक्षत के ये आठ भेद होते है। इनके स्थानो का वर्णन करते हुए वात्स्यायन कहते है–"तदुभयं बिन्दुरधरमध्यइति।[4] ललाटे चोर्वोबिन्दुमाला। मण्डलमिव विषमकूटकयुक्त खण्डाभ्रक स्तनपृष्ठ एव"। सहता प्रदीर्घा बह्वयो दशनपदराजयस्ताम्रान्तराला वराहचर्वितकम्। एतनपृष्ठ एव। विशेषकै कर्णपूरे पुष्पापीडे ताम्बूलपलाशे तमालपत्रे चेति प्रयोज्यागामिषु नखदशनच्छेद्यादीन्याभियोगिकानि।[5]

नैषधीयचरित मे वर्णित नखक्षतो का विवरण –

(1) गूढक उच्छूनक-

आशीविषेण रदनच्छददशदानमेतेन ते पुनरनर्थतया न गण्यम् ।
बाधा विधातुमधरे हि नतावकीने पीयूषसारघटिते घटितेऽस्यशक्ति ।।[6]
नखेन कृत्वाधरसन्निभा निभाद्युवा मृदुव्यजनमासफालिकाम् ।
ददश दन्तै प्रशशस तद्रस विहस्य पश्यन्परिवेषिकाधरम् ।।[7]

---

1 सकलचतु षष्टिप्रयोगरागिण्योऽशलीलपरूषवाक्यप्रिया शयने च सुरभसोपक्रमामहाराष्ट्रिका। – कामसूत्र 2/5/29
परिष्वङ्चुम्बननखदन्तचूषणप्रधाना क्षतवर्जिता प्रहणनसाध्या मालव्यआभीर्यश्च। – कामसूत्र 2/5/24
2 कामसूत्र - 2/5/1
3 कामसूत्र 2/5/4
4 कामसूत्र 2/5/7
5 कामसूत्र 2/5/15 - - -18
6 नै० 11/20
7 नै० 16/82 एव 95

(2) प्रबालमणि, मणिमाला-

चुम्बित न मुखमाचकर्ष यत्पत्युरन्तरमृत व वर्ष तत् ।
सा नुनोद न भुज तदर्पित तेन तस्य किमभून्नतर्पितम् ।। नै० 18/70

ईक्षितोपदिशतीव नर्तितु तत्क्षणोदितमुद मनोभुवम् ।
कान्तदन्तपरिपीडिताधरा पाणिधूननमिय वितन्वती ।। नै० 18/84

आननस्य मम चेदिनौचिती निर्दय दशनदशदायिन ।
शोध्यते सुदति! वैरमस्य तत्कि त्वया वद विदश्यनाधरम् ।। नै० 18/135

(3) बिन्दु, बिन्दुमाला-

निशि दष्टाधरायापि सैषा मह्य न रूष्यतु । क्वफल दशते बिम्बीलता कीराय कुप्यति ।। नै० 20/57

(4) खण्डाभ्रक, वराहचर्वितक-

त्वत्कुचार्द्रनखाड्कस्य मुद्रामालिड्गनोत्थिताम् ।
स्मरे स्वहृदि यत्समेरसखी शिल्प तवाब्रवम् ।। नै० 20/79

राजा नल दमयन्ती की सखियो के सामने रात हुए समागम की बाते बता-बता कर हास परिहास का आनन्द लेते हुए कहते है कि रात मे इन्होने सारी लाज ताक पर रख दी थी, अब पता नहीं किससे शरमा रही है?[1] क्रमश रात्रिकालीन कामोत्सव विवरण देते हुए[2] सभी को आनन्द मग्न कर दिया है। वात्स्यायन ने भी उपर्युक्त कार्य को करने का विधान किया।[3] समागमावसर मे किये गये कार्यों की गणना अपराध मे नहीं की जाती वल्कि इससे स्त्रियॉ हर्षोत्फुल्ल हो कामयज्ञ मे रागर्पण भाव से तल्लीन होती है, जेसा कि श्रीहर्ष को भी अभिप्रेत है।[4]

महाकवि कालिदास ने भी नखक्षतो का विवरण दिया है। यथा-

दष्टमुक्तमधरोष्ठमम्बिका वेदनाविधुरहस्तपल्लवा ।
शीतलेन निरवापयत् क्षण मौलिचन्द्रशकलेन शूलिन ।।[5]

उपर्युक्त दन्तक्षतो के सन्दर्भ के अतिरिक्त नैषधीयचरित मे राजाओ के वर्णन प्रसड्ग मे भोजनावसर एव बीसवे सर्ग मे नलदमयती हास परिहास प्रसड्ग मे मिलते है, परन्तु कामसूत्रकार ने स्पष्ट रूप से कहा है कि "देशसात्म्याच्च योषित उपचरेत्।[6] अर्थात् अपने देश या प्रदेश की रीति के अनुसार ही आलिगन, चुम्बन नखक्षत और दन्तक्षत करने चाहिए परन्तु आचार्य सुवर्णनाम ने कहा कि देश रीति से अपनी प्रकृति और रूचि श्रेष्ठ होती है, इसलिए अपनी रूचि के अनुसार चुम्बन, आलिगन, नखक्षत,

---

1 लज्जितानि जितान्येव मयि क्रीडितयाऽनया। प्रत्यावृतानि तत्तानि पृच्छ सम्प्रति ?? ?ति।। नै० 20/56

2 नै० 20/58 - - 156

3 दिवापि जनसवाधे नायकेन प्रदर्शितम्। उद्दिश्य स्वकृत चिन्ह हसेदन्यैरलक्षिता ।।
विकूणयन्तीव मुख कुत्सयन्तीव नायकम्। स्वगात्रस्थानि चिह्नानि सासूयेव प्रदर्शयेत् ।। कामसूत्र 2/5/41 42

4 आग शत विदधतोऽपि समिद्धकामा नाधीयतेपरूषमक्षरमस्य वामा ।
चान्द्री न तत्र हरमौलिशया लुरेकाऽनध्यायहेतुतिथिकेतुरपैतिलेखा ।। नै० 11/92
रात्रिवृत्तमनुयोक्तुमुद्यत सा प्रभातसमये सखीजनम् नाकरोदपकुतूहल ह्रिया शसितु तु हृदयेन त त्वरे।
दर्पणे च परिभोगदर्शिनी पृष्ठत प्रणयिनो निषेदुष ।
प्रेक्ष्य बिम्बमुपबिम्बमात्मन कानि-कानि न चकार लज्जया ।। कुमार 18/10 11

5 कुमारसभव- 8/18

6 कामसूत्र - 2/5/20

दन्तक्षत करने चाहिए। देशाचार के बन्धन मे बधे रहना बुद्धिमानी नहीं है।[1] परन्तु समय बीतने के साथ-साथ वात्स्यायन द्वारा बतायी गयी आलिगनादि विधियॉ भी एक देश की दूसरे देश द्वारा अपनायी जाने लगी है, आज यह स्पष्ट कर पाना कि ये समागम विधियॉ इस देश की है या दूसरे देश की शायद मुश्किल ही होगा, क्योकि जब एक देश की स्त्री विवाहोपरान्त दूसरे देश (स्थान) मे जाती है, तो वह जहॉ जाती है, वहॉ की कामक्रीडा विधि के साथ-साथ वह अपने देश मे प्रचलित विधि को भी सम्भोगावसर मे अपनाती है, फिर कालिदास ने भी कहा है कि - "भिन्नरूचिर्हि लोक' अत सम्भोग की विधियॉ, भी यदि अगणित हो तो उसमे आश्चर्य की कोई बात शायद नहीं होगी, केवल इसमे जो मुख्य तत्व है, वे है आपस मे विश्वास प्रेम एव समर्पण। ये तीनो तत्व पति-पत्नी को दाम्पत्य बन्धन मे हमेशा से बाधते आये है, बाधे रखे है, एव आगे भी बाधे रखेगे। अतएव, स्त्री एव पुरूष को चाहिए, इन तीन तत्वो को हमेशा हृदयगम किये रहे। वात्स्यायन ने भी कहा है कि- "परस्पर प्रेम रखते हुए और एक दूसरे के प्रति लज्जा का भाव रखते हुए स्त्री-पुरूष की प्रीति सौ वर्ष से कम नहीं होती।"[2]

श्रीहर्ष इसी तथ्य का समर्थन करते हुए कहते है, पति-पत्नी को एक दूसरे के प्रति निष्ठा, विश्वास एव मैत्री रखनी चाहिए। वह कीर मुखेन कहलवाते है कि "जैसे पार्वती भगवान शकर की गोद मे विराजमान होकर सुशोभित होती है, उसी तरह आप (दमयती) भी नल की गोद मे सुशोभित हो, क्योकि आप तो इस जन्म के साथ-साथ जन्मान्तरो मे भी सती थीं[3] और नल ने भी दमयन्ती को वचन दिया कि वह जीवन मे उसे कभी नहीं छोडेगे।"[4]

साम्प्रयोगिक विधि (आसन) वर्णन –

वात्स्यायन ने सवेशन विधि प्रकरण मे नायक एव नायिकाओ के द्वारा प्रयुक्त विधियो (आसनो) का विशिष्ट रूप मे वर्णन किया है वे निम्न है, वाभ्रव्य द्वारा निर्देशित उत्फुल्लक, विजृम्भितक, इन्द्राणिक, सपुटक, पीडितक, वेष्टितक, वाडवक, एव सुवर्णनाभ द्वारा निर्देशित, भुग्नक, जृम्भितक, पीडितक, अर्धपीडितक, वेणुदारितक, शूलाचितक, कार्कटक, पीडितक, पदमासन, परावृत्तक, जलसयोग। परन्तु जल सयोग का खण्डन वात्स्यायन ने करते हुए कहा है कि शिष्ट आचार्यों द्वारा जल मे सभोग निषिद्ध माना गया है। वात्स्यायन ने सुरतोत्सव आसनो मे स्थिररत, अवलम्बितक, धेनुक, सघाटक, गोयूथिक को प्रमुख माना है एव सबसे अधम मैथुन मे अधोरत मैथुन को माना है। श्रीहर्ष ने नैषधीयचरित मे प्रत्यक्षत तो किसी भी विधि का वर्णन नहीं किया, परन्तु वर्णनो के आधार पर नल दमयन्ती के सम्भोग विधि को मुख्यत सम्पुटक[5] विधि मे रखा जाता सकता है।

---

1 देशसात्म्या प्रकृतिसात्म्य बलीयइति सुवर्णनाभ। न तत्र देश्याउपचारा। कामसूत्र- 2/5/34

2 परम्परानुकूल्येन तदेव लज्जमानयो। सवत्सरशतेनापि प्रीतिर्न परिहीयते।। कामसूत्र- 2/5/43

3 भूभृम्दवाड्क भुविराजशिखामणे सा त्व चास्य भोगसुभगस्य सम क्रमोऽयम्।
यन्नाकपालकलनार्कलितस्य भर्तुरत्रापि जन्मनि सती भवती स भेद ।। नै० 21/131

4 त्व मदीय विरहान्मया निजा भीतिमीरितवती रह श्रुता।
नोज्झितास्मि भवतीं तदित्यय व्याहरद्वरमसत्यकातर ।। नै० 18/149

5 ऋजुप्रसारितावुभावप्युभयोश्चरणाविति सपुट।
स द्विविध पार्श्वसपुट उत्तानसपुटश्च तथा कर्मयोगात्। कामसूत्र – 2/6/16, 17

वात्स्यायन ने स्पष्ट रूप से कहा है कि सोते समय पुरूष को चाहिए कि वह अपनी स्त्री को अपनी बायीं ओर सुलाये,[1] यही रिवाज परम्परा से चला आ रहा है। श्री हर्ष ने भी व्यजना से स्त्रियो का वामासन मे रहना स्वीकार किया है।[2] वेद मे भी कहा गया है कि "वामदेव्योपासनेसर्वा स्त्रिय उपसीदन्ति।" साथ ही नल दमयन्ती के सभोगकृत विधि को पीडितक[3] आसन मे भी माना जा सकता है क्योकि यह विधि सम्पुटक का उद्दाम रूप है। उत्तान सम्पुटक एव पीडितक का वर्णन परोक्ष रूप से श्रीहर्ष ने करते हुए कहा है कि -

सम्भोरम्भ मे नल ने दमयन्ती को अपने बाहुपाशा मे लेना चाहिए लेकिन दमयती ने अपनी पीठ शय्या से इतनी शटा दी थी कि प्रिय के हाथ पीठ के नीचे नहीं जाने पाये। दमयती के स्तनो पर (नल के) हार की मणियो का बना हुआ चिन्ह देखकर सखियो ने जान लिया कि सुन्दरी ने प्रिय के गाढ आलिगन को सह लिया है।[4] नल के गाढालिगन के कारण दमयती के स्तन दबते हैं तब वे ऐसे लग रहे थे मानो वे वहॉ सोने वाले रति और मदन के सिरहान की दो गोली-गोली तकिया हो।[5] दोनो के परिरम्भण मुद्रा मे सोना पार्श्व राम्पुट विधि का उदाहरण है।[6] नैषधकार ने नल एव दमयती के सम्भोग वर्णन की वैविध्यता प्रतिपादित करते हुए कहा कि न कोई ऐसा सुन्दर स्थान बचा, न कोई सागर छूटा, न कोई वन पर्वत एव रम्य प्रदेश, और न ही ऐसी कोई विधि बची जहा दमयन्ती ने नल के साथ रमण न किया हो।[7] सभी प्रकार से वह रमण क्रिया मे प्रवृत्त हुए, पतिपरायणा दमयन्ती ने अपने पातिव्रत्य तप के प्रभाव से अपने प्रिय नल को जिस रूप मे चाहा उसी रूप मे उसकी पत्नी बनकर रमण किया। प्रिय को शिव बनाया, तो स्वय पार्वती बनी एव प्रिय को वृक्ष बनाया तो स्वय लता बनी।[8] स्पष्ट है कि श्री हर्ष ने मानव जगत के सामने विभिन्न विधियो के साथ विभिन्न स्थानो मे भी सम्भोग करने को निर्देशित किया जिससे प्रतिदिन उन्हें नयापन महसूस हो, एव वे सम्भोग से तटस्थ न होकर उसकी नवीनता की चारूता का आनन्द ले सके। वात्स्यायन ने भी कहा कि गाय बैल के सम्भोग की भाति हिरन, बकरे आदि पशुओ की मैथुन क्रिया का अनुकरण करना चाहिए। मैथुन के समय जो पशु जिस प्रकार की चेष्टाएँ करते है, उसी प्रकार की चेष्टाएँ स्त्री-पुरूष को भी करनी चाहिए। यथा – "एतेनैव योगेन शौनमैणेय छागल गर्दभाक्रान्त मार्जारललितक व्याघ्रावस्कन्दन गजोपमर्दित वराहघृष्टक तुरगाधिरूढकमिति यत्र-यत्र विशेषो योगोऽपूर्वस्तत्तदुपलाक्षयेत्।।[9] पशुना मृगजातीना पतङ्गना च विभ्रमै। तैस्तैरुपायैश्चित्तज्ञो रतियोगान्विवर्धयेत्।।[10]

---

1 पार्श्वेण तु शयानो दक्षिणेन नारीमधिशयीतेति सार्वत्रिकमेतत्। कामसूत्र 2/6/18

2 कम्र तत्रोपनम्राया विश्वस्या वीक्ष्यतुष्टवान्। स मम्लौ त विभाव्याथ वामदेव्याभ्युणसकम्।। नै० 17/194

3 सपुटक प्रयुक्तयन्त्रैनैव दृढमूरू पीडयेदिति पीडितकम्।। कामसूत्र 2/6/19

4 वल्लमस्य भुजयो स्मरोत्सवे दित्सतो प्रसभमङ्कपालिकाम् ।
एक कश्चिरमरोधि बालया तल्पयन्त्रण निरन्तरालया ।। नै० 18/43
वीक्ष्य भीमतनयास्तनद्वय मग्नहारमणिमुद्रयाङ्कितम् ।
सोढकान्तपरिरम्भगाढता सान्वमायि सुमुखी सखीजनै ।। नै० 18/50

5. वल्लभेन परिम्भपीड़ितौ प्रेयसी हृदि कुचाववापतु। केलतीमदनयोरूपाश्रये तत्र वृत्तमिलितोपधानताम्।। 18/97

6. मिश्रितोरू मिलिताधर मिथ. स्वप्नवीक्षितपरस्परक्रियम्। तौ ततोऽनु परिरम्भसम्पुटे पीडना विदधतौ निदद्रतु· ।। नै० 18/152

7. न स्थली न जलधिर्न कानन नाद्रिभूर्न विषयो न विष्टपम् ।
क्रीडिता न सहयत्र तेन सा सा विधैव न यया मया न वा ।। नै० 18/84

8 पत्युरागिरिशमातरू क्रमात्स्वस्य चागिरिजमालत वपु·।
तस्य चाहमखिल पतिव्रता क्रीडति स्म तपसा विधाय सा।। नै० 18/83

9 कामसूत्र 2/6/41।

10 कामसूत्र 2/6/51।

साथ ही जो वात्स्यायन ने यह भी कहा जो पुरूष, स्त्री की इच्छाओ के अनुकूल, देशाचार के अनुकूल तथा समयोचित भावनाओ के अनुकूल मैथुन क्रिया मे प्रयुक्त होता है, स्त्रियाँ उस पर अतिशय राग और स्नेह रखती है तथा वह पुरूष-स्त्रियो द्वारा अत्यन्त सम्मानित भी होता है।[1] अतएव समागमारम्भ मे इन दशाओ का ज्ञान रखना एव उन्हे अपनाना अत्यन्त आवश्यक भी है, अनिवार्य एव अपरिहार्य भी, तभी सम्भोग का पूर्ण आनन्द सम्भव है। श्रीहर्ष ने नैषधीयचरित मे अठारहवे या बीसवे सर्ग मे काम कला की उद्दाम क्रियाओ का वर्णन किया है। उससे उनकी कामशास्त्रज्ञता का अनुमान पहली ही दृष्टि मे किया जा सकता है। नल एव दमयन्ती ने भी उन सभी विधियो को अपनाया है, जो कामशास्त्रानुसारिणी है, क्यो न अपनाये वे दोनो तो कामशास्त्रविशारद जो थे।[2] दमयती की सखी कला नल से कहती है कि कामशास्त्रविद् आपने हमारी नवोढा सखी को सम्पूर्ण रूप से भोगा ही होगा पर यह हम लोगो से (अपनी बात) कहे भी तो कैसे क्योकि कामशास्त्र का मत भी है – "बाला बलान्न भुञ्जीत विरोगोपत्ति शङ्कया । भुञ्जीत चेत्पत्रयाभीतित्याजनक्रम सगताम्।।

वात्स्यायन के साथ-साथ श्रीहर्ष ने भी सम्भोग की निरन्तरता को अस्वीकार किया है। श्री हर्ष ने स्पष्ट रूप से कहा है कि सम्भोगावसर मे कुछ अन्तराल अवश्य होना चाहिए, यह स्वास्थ्य एव सुरतोत्सव मे नवीनता लाने मे भी सहायक है। इसके उदाहरण मे उन्होने चक्रवाकपक्षी के जोडे को लिया। नैषधीयचरित मे एक जगह श्रीहर्ष कहते हैं कि ससार मे चक्रवाक के जोडे ही कामशास्त्र के रहस्य को जानते है, जो नित्य नियुक्त होकर सम्भोग का नवीन सुख प्राप्त करते है। क्योकि किसी वस्तु का अनवरत उपभोग तो उद्वेग पैदा कर देता है निरन्तर अमृतपान करने से जो अरूचि हुई, उसी कारण भगवान शकर ने स्वाद बदलने के विष का पान कर गये।[3] स्पष्ट है कि श्रीहर्ष ने इसके माध्यम से जगत के स्त्री पुरूषो को सम्भोग क्रिया मे कुछ अन्तराल रखने की सलाह दी। श्रीमद्भागवत् मे भी कहा गया है, मैथुन, मद्यपान और मासभक्षण मे किसी प्रेरणा की आवश्यकता नहीं पडती, क्योकि इनकी ओर व्यक्तियो का झुकाव स्वाभाविक रूप से हो ही जाता है। परन्तु इनमे विशेष अवसर पर प्रवृत्त होना, या इनसे निवृत्त होना ही दृष्ट है।[4] मनुस्मृतिकार ने भी कहा है कि मासभक्षण, मद्यपान और मैथुन के सेवन से कोई पाप दोष नहीं लगता क्योंकि ये तो देहदाहिरयो की प्रवृत्ति के अन्तर्गत ही आते हैं, ड़ॉ इन विषयो के सेवन से निवृत्त या दूर रहा जाय तो मनुष्य कल्याण प्राप्त कर सकता है।[5] श्रीहर्ष ने कहा है कि नल की भक्ति के शताशमात्र से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरूषार्थ सुलभ थे।[6] परन्तु नल जो स्वय परमज्ञानी थे, उन्होने दमयन्ती के साथ-साथ राजलक्ष्मी का इस प्रकार भोग किया कि उन्हे पाप छू तक नहीं गया।[7] भोग की महत्ता का प्रतिपादन करती हुई इन्द्राणी कहती है जो स्त्री को प्रसन्न नहीं रख सकता वह कथमपि ऐश्वर्यवान नहीं

---

1 तत्सात्म्याद्देशसात्म्याच्च तैस्तैर्भावै प्रयोजितै । स्त्रीणा स्नेहश्च रागश्च बहुमानश्च जायते।। कामसूत्र 2/6/52

2 स्मरशास्त्रविदा सेऽय नवोढा नस्त्वया सखी। कथ सभुज्यते बाला कथमस्मासु भाषताम्।। नै० 20/39
स्मरशास्त्रमधीयाना शिक्षितासि मयैव यम् ।। नै० 20/64 (पूर्वार्द्ध)

3 जगति मिथुने चक्रावेव स्मरागमपारगौ नवमिव मिथ सभुञ्जाते वियुज्य वियुज्ययौ ।
सततममृतादेवाहाराघदापदरोचक तदमृतभुजा भर्ता सम्भुर्विष बुभुजे विभु ।। नै० 19/34

4 लोके व्यवायामिषमद्यसेवा नित्यास्ति जन्तोर्न हि तत्र चोदना ।
व्यवस्थितेस्तुषु विवाहयज्ञसुराग्रहैरासु निवृत्तिरिष्टा ।। श्रीमदभागवत 11/5/11

5 न मासभक्षणेदोष न मद्ये न च मैथुने। प्रवृत्तिरेषा भूताना निवृत्तिस्तु महाफला।। मनुस्मृति 5/56

6 फलसीमा चतुवर्ग मच्छताशोऽपि गच्छति। नै०17/142

7 आत्मवित्सह तथा दिवानिश भोगभागपि न पापमाप स। आहृता हि विषयैकतानता ज्ञानधौतमनसा न लिम्पति।। नै० 18/2

हो सकता।[1] महाकवि कालिदास ने भी दाम्पत्य प्रेम का वर्णन करते हुए पत्नी के पातिव्रत धर्म को अपनाने का वर्णन किया है। यथा –

> तवोरूकीर्ति श्वसुर सखामे सता भवोच्छेदकर पिता ते ।
> धुरि स्थिता त्य पतिदेवताना कि तत्र येनासि ममानुकम्पया ।।[2]
>
> जाने सख्यास्तव मयिमन सम्भृतस्नेहमस्मादित्यम्भूता प्रथमे विरहे तामह तकयामि ।
> वाचात्म मा न खलु सुभगम्मन्यभाव करोति प्रत्यक्ष ते निखिलमचिराद्भ्रातरूक्त मयायत्।।[3]

प्रहरण सीत्कार विवरणः-

कामशास्त्र के आचार्यों का मत है कि सुरतोत्सव मे पुरूष एव स्त्री को प्रहणन एव सीत्कार जैसी क्रियाओ को अपनाना चाहिए क्योकि ये दोनो परस्पर कामोद्रेकता के साथ-साथ रागोत्पत्ति मे भी सहायक है। प्रहणन एव उनके स्थानो का वर्णन करते हुए वात्स्यायन लिखते है- "कलह सुरतमाचक्षते। विवादात्मकत्वाद्वामशीलत्वाच्च कामस्य। तरगात्प्रहणनस्थानमङ्गम्, स्कन्धौ शिर स्तनान्तर, पृष्ठ, जघन पार्श्व इति स्थानानि।[4] प्रमुख रूप से प्रहणन् 4 प्रकार के होते है, अपहस्तक, प्रसृतक, मुष्टि एव समतल। कामसंवेगता में पुरूष द्वारा इनके आघात से स्त्री के मुख से जो आवाज निकलती है, उसे सीत्कृत कहते हैं।[5] सीत्कार अनेक प्रकार के होते है, परन्तु ध्वनियों के आधार पर वात्स्यायन ने इन्हे आठ प्रकार का माना। यथा, हिकार, स्तनित, कूजित, रूदित, सूत्कृत, दूत्कृत, फूत्कृत, अम्बार्थ आदि।[6] श्रीहर्ष ने नैषधीयचरित मे प्रहणन एव सीत्कार का विवरण प्रभूत मात्रा में दिया है। सुरतोत्सव पूर्व भूमिका तैयार करती दिखती दमयन्ती नल से कहती है-

> चुम्ब्यसेऽयमयमयङ्कयसे नखै श्लिष्यसेऽयमयमर्प्यसे हृदि ।
> नो पुनर्न करवाणि ते गिर हु त्यजत्यज इवास्मि किकरा ।।
>
> इत्यलीकरतकातरा प्रिय विप्रलभ्य सुरते हिय च सा ।
> चुम्बनादि विततार मायिनीं कि विदग्धमनसामगोचर ।।[7]

प्रहणन वर्णनः-

> यद्भ्रुवौ कुटिलिते तयारते मन्मथेन तदनामि कार्मुकम् ।
> यत्तु हुहुमिति सा तदा व्यधात्तत्स्मरस्य शरमुक्तिहुकृतम् ।।
>
> ईक्षितोपदिशतीव नर्तितु तत्क्षणोदितमुद मनोभुवम् ।
> कान्तदन्तपरिपीडिताधरा पाणिधूननमिय वितन्वती ।।[8]

---

1 न सेशे यस्य रम्वतेन्वरा सक्थ्याकपृत् । सेदीशे यस्य रोमश निषेदुषो विजृम्भते ।।
न सेशे यस्य रोमश निषेदुषो विजृम्भते । सेदीशे यस्य रम्वतेऽन्तका सक्थ्या कपृद् ।। ऋग्वेद 10/86,16,17
मैथुन परम तत्व सृष्टिस्थित्यन्तकारणम्। मैथुनात् जायते सिद्धिर्ब्रह्मज्ञान सुदुर्लभम् ।। महार्णवतन्त्र

2 रघुवंश 14/74

3 उत्तरमेघ, श्लोक 36

4 कामसूत्र- 2/7/11, 12।

5 तदुद्भव च सीत्कृतम्। तस्यार्तिरूपत्वात्। तदनेकविधम् ।। कामसूत्र 2/7/4।

6 हिकारस्तनितकूजितरूदितसूत्कृतदूत्कृतफूत्कृतानि ।
अम्बार्था शब्दा वारणार्था मोक्षणार्थेश्चिालमर्थास्ते ते चार्थयोगात्।। कामसूत्र 2/7/6, 7।

7 नै० 18/90,91।

8 नै० 18/93,94।

अन्यदस्मि भवतीं न याचिता वारमेकमधर धयामिते ।
इत्यसिस्वददुपाशुकाकुवाक्सोपमर्दहठवृत्तिरेव तम् ।।

पीततावकमुखासवोऽधुना भृत्य एष निजकृत्यमर्हति ।
तत्करोमि भवदूरूमित्यसो तत्र सन्यधित पाणिपल्लवम् ।।

चुम्बनादिषु बभूव नाम किं तद्वृथाभियमिहापि मा कृथा ।
इत्युदीर्य रसनावलिव्यय मिर्ममे मृगदृशोऽयमादिदम् ।।[1]

सीत्कार वर्णनः-

आहनाथवदनस्य चुम्बत सा स्म शीतकरतामनक्षरम ।
सीत्कृतानि सुदती वितन्वती सत्वदत्तपृथुवेपथुस्तदा ।। नै० 18/104

अस्तिवाम्यभरमस्तिकौतुक सास्तिधर्मजलमस्ति वेपथु ।
अस्तिभीति रतमस्ति वाञ्छित प्रापदस्तिसुखमस्तिपीडनम् ।। नै० 18/62

विश्लथैरवयवैर्निमीलया लोमभिर्दुतमितैर्विनिद्रताम् ।
सूचित श्वसितसीत्कृतैश्च तो भावमकमध्यगच्छताम् ।। नै० 18/117

श्रीहर्ष के उपर्युक्त वर्णनो से स्पष्ट होता है कि सीतकारोपरान्त नल एव दमयन्ती दोनो आनन्द की चरमस्थित यहा तक कि योग की असम्प्रज्ञात समाधि मे लीन हो गये। उसी तरह जैसे विपरीत दिशाओ से आने वाली दो जल धाराओ का सगम होने पर यह पता नहीं चल पाता कि कौन जल किस जलधारा का है, अर्थात्, दोनो दो होकर भी, दो न रहे, या यह कहा जा सकता है कि उन दोनो को अपने-अपने अस्तित्व की प्रतीति की अनुभूति न रह गयी। महाकवि कालिदास ने भी सुरतोत्सव वर्णन कामशास्त्र सम्मत विधि से किया है यथा-

तत्र हसधवलोत्तरच्छद जान्हवी पुलिनचारूदर्शनम् ।
अध्यशेत शमन प्रियासख शारदाभ्रमिव रोहिणीपति ।।

क्लिष्टकेशमवलुप्त चन्दन व्यत्ययार्णितनख समत्सरम् ।
तस्य तच्छिदुरमेखलागुण पार्वतीरतमभून्न तृप्तये ।।

केवल प्रियतमादयालुना ज्योतिषामवनतासु पङ्तिषु ।
तेन सत्प्रतिग्रहीतवक्षसा नेत्रमीलनकुतूहल कृतम् ।।[2]

समदिवसनिशीथ सङ्गिस्तत्र शम्भो शतमगमद्दतूना साग्रमेका निशेव ।
न तु सुरतसुखेभ्यश्छिन्नतृष्णो बभूव ज्वलन इव समुद्रान्तर्गतस्तज्जलौघै ।।[3]

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि श्री हर्ष ने नैषधीयचरित मे प्रहणन एव सीत्कार का जो विवरण दिया है, वह सर्वथा कामशास्त्रानुरूप है, क्योकि वात्स्यायन ने भी कहा है कि स्त्री की कोमलता, काम की प्रचण्डता और उसकी सहनशक्ति को समझते हुए तथा अपनी शक्ति का अनुमान करके ही पुरूष को सम्भोग मे प्रवृत्त होना चाहिए।[4] हालाकि वात्स्यायन ने 8 प्रकार के प्रहणन (प्रहारो) यथा- अपहस्तक, प्रस्ततक, मुष्टि एव समतल तथा दक्षिण देश के निवासियो मे प्रचलित छाती मे कीला, शिर मे कर्तरी,

---

1 नै० 18/59,60,61।

2 कुमारसम्भव 8/82, 83, 84

3 कुमारसम्भव 8/91

4 आत्यन्तिक तु तत्रापि परिहरेत्। कामसूत्र 2/7/27

गालो मे विद्धा, स्तन तथा बगलो मे सदशिका का विवरण तो दिया है, परन्तु इनकी निन्दा भी की है, क्योंकि इनके प्रहार विधियो से कभी-कभी स्त्री की मृत्यु तक हो जाती है, शायद इसीलिए श्रीहर्ष ने नैषधीयचरित मे इनका वर्णन नहीं किया है। क्योंकि चोल राज्य के राजा ने चित्रसेन नाम की वेश्या की छाती पर कामान्ध होकर ऐसा प्रहार किया कि वह मर गयी, ऐसा ही कुन्तल देशाधिपति शरतकीर्ण के द्वारा महादेवी मलयवती की मृत्यु हो गयी, एव पाण्ड्यदेश के सेनाध्यक्ष नरदेव के प्रहार से नर्तकी कानी हो गयी थी, तभी वात्स्यायन ने स्पष्ट कहा है कि जिन प्रहारो से अग भग होने या मृत्यु होने की आशका हो, उनके प्रयोग नहीं होने चाहिए जहा उनका प्रचलन है। साथ ही एक देश की रीति उसी के अनुकूल होती है अत्यत्र नहीं, इसलिए एक जगह की प्रथा का प्रयोग दूसरी जगह कदापि नहीं करनी चाहिए।[1] परन्तु जब मनुष्य कामान्ध होकर सम्भोग मे प्रवृत्त होता है, तो वह न तो शास्त्र के वचनो पर विश्वास करता है और न बाद के परिणामो की ही चिन्ता करता है इस प्रकार के दुष्परिणामो का एक मात्र कारण केवल राग ही है।[2] उसके दुष्परिणाम का यथेष्ट उदाहरण बेगान्ध होकर दौडता हुआ घोडा है जो खाई, खन्दक की परवाह किसे बिना सरपट भागता चलता है वही स्थिति स्त्री पुरूषो की भी कामवेगता मे होती है।[3] परन्तु नैषधनरेश नल एव दमयन्ती के विवरण से यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने वात्स्यायन द्वारा निदित प्रहणन को नहीं अपनाया, क्योकि यह प्रहणन (प्रहार) शिष्ट, समाज का अग नहीं है। हा चुटकी लगाकर चुम्बन या हाथ का कोमल स्पर्श करते हुए स्त्री को कामोत्तेजित करना जैसे विधान को उन्होने अवश्य अपनाया। कठोरता, धृष्टता, साहस पुरूष के स्वाभाविक गुण हैं, तथा असमर्थता पीडित होना निवारण करना और निर्बलता, कोमलता स्त्रियो के स्वाभाविक गुण हैं। शायद इसीलिए पुरूष-स्त्री पर प्रहणन का प्रारम्भ करता है, और स्त्री सीत्कार करती रहती है।[4] परन्तु झिझक दूर होने पर वह प्रहणन तो अपनाती है क्योकि स्त्री मे पुरूषो की अपेक्षा आठ गुना कामेच्छा होती है, परन्तु आशिक रूप से ही, क्योकि वह रतिमर्दित होने पर ही असीम आनन्दानुभूति प्राप्त करती है न कि खुद के प्रहणन द्वारा, ऐसा लोकजीवन मे व्यवहरित स्त्री पुरूषों के अनुभवो से स्पष्ट होता आया है। सम्भोग काल की सभी प्रकार की क्रियाएँ हर समय हर स्त्री मे नहीं जा सकती और यह उचित भी नहीं, इसलिए स्त्रियो के अनुकूल जिसे वे पसद करती हो[5] साथ ही देशाचार के अनुकूल हो, उसी तरह की सम्भोग क्रियाएँ करनी चाहिए,[6] ऐसा कामसूत्रकार का कथन है। स्मरणीय है कि नैषधकार ने नल एव दमयन्ती के सुरतोत्सव वर्णन मे कामशास्त्रीय उन सभी विधाओ को अपनाया है, जो कि लोकजीवन मे मानवो द्वारा व्यवहरित होते हैं।

विपरीत रति या पुरूषायित वर्णः-

कामशास्त्र के आचार्यो का मत है कि (सुरतोत्सव मे) जब स्त्री पुरूष के समान आचरण करती है, तो उसे पुरूषायित या विपरीत रति कहते है। नैषधटीकाकार नारायण ने विपरीत रति के बारे मे कहा कि

---

1. तथान्यदपि देशसात्म्यात्प्रयुक्तमन्यन्न न प्रयुज्जीत ।। कामसूत्र 2/7/26
2. नास्तयत्र गणना काचिन्न च शास्त्रपरिग्रह । प्रवृत्ते इतिसयोगे राग स्वात्र कारणम् ।। कामसूत्र 2/7/31
   स्वप्नेष्वपि न दृश्यन्ते ते भावास्ते विभ्रमा । सुरतव्यवहारेषु ये स्युस्तत्क्षणकल्यिता ।। कामसूत्र 2/7/32
3. यथा ही पञ्चमीं धारामास्थाय तुरग. पथि । स्थाणु श्वभ्र दरीं वापि वेगान्धो न समीक्ष्यते ।।
   एव सुरतसमर्दे रागान्धौ कामिनावपि । चण्डवेगौ प्रवर्तेते समीक्षेते न चात्ययम् ।। कामसूत्र 2/7/33
4. पारूष्य रभसत्व च पौरुष तेज उच्यते । अशक्तिरार्तिर्व्यावृत्तिरबलत्व च योषित ।। कामसूत्र 2/7/22
5. रागात्प्रयोगसात्म्याच्च व्यत्ययोऽपि क्वचिद्भवेत् । न चिर तस्य चैवान्ते प्रकृतेरेव योजनम् ।। कामसूत्र 2/7/23
6. न सर्वदा न सर्वासु प्रयोगा साम्प्रयोगिका. । सीने देशे च काले च योग एषा विधीयते ।। कामसूत्र 2/7/35

"कामशास्त्राभ्यास कौशलाद्यद्विपरीतसुरतमकार्षी , तत्स्मरेत्यर्थ। केले पुरुत्व पूर्वं दर्शितम्।"[1] कामसूत्रकार ने विपरीत रति के बारे मे अभिहित किया'' नायकस्य सततताभ्यासात्परिश्रममुपलभ्य रागस्य चानुपशमम् अनुगता तेन तमधोऽवषात्य पुरुषायितेन साहाय्य दद्यात्। स्वाभिप्रायाद्वा विकल्पयोजनार्थिनी। नायक कुतूहलाद्वा।[2] स्पष्ट है कि रूचि नवीनता एव मनोरजन तथा कुतूहल स्थापना हेतु ही कामयज्ञ की यह विधि वात्स्यायन के मत मे सार्वजनीन सिद्ध होती है न कि कामयज्ञ प्रतिपादन मे, क्योकि विपरीत आसनो या अस्वाभाविक आसनो से यदि कामोत्सव स्त्री या पुरुष सम्पन्न करते है, तो सन्तान के विकलाग होने की सम्भावनाओं के साथ-साथ, पुरूष या स्त्री के कोमलागो को भी क्षति पहुंच सकती है। यद्यपि वात्स्यायन ने साम्प्रयोगिक कार्य मे दस प्रकार के (पुरूष द्वारा स्त्री मे किये जाने वाले) उपसृप्तको (धक्को) का विवरण दिया है यथा- उपसृप्तक, मन्थन, हुल, अवमर्दन, पीडितक, वराहघात, वृषाघात, चटकविलसित एव सम्पुट।[3] परन्तु उन्होने केवल उपसृप्तक को ही श्रेष्ठ माना, अन्य को हेय।[4] क्योकि इस मे शिष्टता, कोमलता एव वैज्ञानिकता है। लेकिन स्त्री की अनुकूलता और प्रसन्नता का ख्याल रखकर इनमे से किसी एक का प्रयोग किया जा सकता है।[5] विपरीत रति तीन प्रकार की होती है- सन्दश, भ्रमरक और प्रेङ्खोलित।[6] नैषधकार ने अपने ग्रथमे विपरीत रति का विवरण तो अवश्य दिया है, परन्तु शायद श्रीहर्ष को यह विधि दाम्पत्य जीवन के लिए उपयोगी न लगी हो, अतएव उन्होने इस रति को केवल प्रणय लीला तक ही सीमित रखा। परन्तु उनके विवरणो से यह प्रतीत होता है कि नल एव दमयन्ती विपरीत रति के जानकार थे। दमयन्ती की सखी कला दमयन्ती को उपालम्भ देती हुई कहती है – स्मरशास्त्रमधीयाना शिक्षितासि मयैव यम्। अगोपि सोऽपि कृत्वा कि दाम्पत्यव्यत्ययस्त्वया।।[7] साथ ही नल दमयन्ती के साथ[8] प्रणय वर्णन करते हुए कहते है कि उस रति क्रीडा को याद करो, जब तुम पुरूष बनकर मेरे ऊपर थी, और मैने तुम्हे सम्बोधन मे भवन्! कहा था और तुम लजाकर मुस्करा पडी थी, साथ ही विपरीत रति के समय तुम्हारे ललाट तथा कपोल पर लगी कस्तूरी पसीने के साथ तुम्हारी ठुढ्ढी पर बूदो के रूप मे लटक रही थी। श्मश्रु के समान वह तुम्हे उस क्षण के योग्य ही बना दिये थे, क्योकि तुम पुरूष के समान मेरे ऊपर थी, तुम्हे यह भी स्मरण होगा कि तुमने अपना वह प्रतिबिम्ब मेरे वक्षःस्थल पर मोतियो के हार के बीच की मणि मे भी देखा था।[9] इसके साथ-साथ नैषधीयचरित के नल दमयन्ती विवाह वर्णन मे भी व्यजना से विपरीतरति का वर्णन करते हुए श्री हर्ष कहते है – विदर्भजाया करवारिजेन यन्नलस्य पाणेरूपरिस्थित किल। विशङ्कय सूत्र पुरूषायितस्य तद्भविष्यतोऽस्मायि तदा तदालिभि।[10] विपरीत रति की प्रासगिता की समीचीनता का वर्णन करते हुए वात्स्यायन कहते है स्त्री का जैसा शील स्वभाव होता है एव जैसी उसकी काम वासना होती है, वह विपरीत रति से स्पष्ट हो जाती है।[11] क्योकि जो कामिनी स्त्रियॉ लज्जा और

1 नै 0 20/93
2 कामसूत्र 2/8/1,2,3
3 कामसूत्र 2/8/20- - - 23
4 न्याय्यमृजुसमिश्रण मुपसृप्तकम्-कामसूत्र 2/8/21
5 तेषा स्त्रीसात्म्याद्विकल्पेन प्रयोगा- कामसूत्र 2/8/31।
6 पुरूषायिते तु सदशो भ्रमरक प्रेङ्खेलितमित्यधिकानि। कामसूत्र 2/8/32- - -36
7 नै० 20/64
8 स्थापितामुपतिर स्वस्यता हृदा स मुदा वहन् । तदुद्वहनकर्तृत्वमाचष्ट स्पष्टमात्मन ।। नै० 20/144
9 कमापि स्मरकेलि त स्मर यत्र भवन्निति । मया विहित सम्बुद्धिर्व्रीडिता स्मितवत्यसि ।।
नीलदाचिबुक यत्र मदाक्तेन श्रमाम्बुना । स्मरहारमणौ दृष्ट स्वमास्यं तत्क्षणोचितम् ।। नै० 20/93, 94
10 नै० 16/15
11 यथाशीला भवेन्नारी यथा च रतिलालसा । तस्या एव विचेष्टाभिस्तत्सर्वमुपलक्षयेत् ।। कामसूत्र 2/8/40

शील के कारण अपने भावो को छिपाये रखती है, वे भी विपरीत रति मे कामातुर होकर अपना वास्तविक रूप प्रकट कर दिया करती है।[1] परन्तु रजस्वला, प्रसूता गर्भवती, मृगी और अत्यन्त मोटी स्त्री को विपरीत रति मे प्रवृत्त न होने का निर्देश महर्षि वात्स्यायन ने दिया है।[2] अथर्ववेद मे भी विपरीत रति निषेध का वर्णन मिलता है।[3] स्पष्ट है कि सम्भोग तो एक प्रकार का योग है, दो आत्माओ का परस्पर मिलन है, दो हृदयो की एकता का भाव है द्वैत से अद्वैत होने की अभीप्सा है, यह मनोरंजन, मजाक या वासनापूर्ति का साधन मात्र नहीं है। विपरीत रति भी परस्पर प्रेम और रागवृद्धिकारक एक प्रकार का रतियुद्ध है। सम्भवत नैषधकार से प्रभावित होकर गीतगोविन्दकार जयदेव ने राधा और कृष्ण के रति युद्ध का विवरण देते हुए लिखा है कि–

माराड्के रतिकेलिसङ्कुलरणारम्भे तया साहसप्राय कान्तजयाय किंचिदुपरि प्रारम्भि यत्सम्भ्रमात् ।
निष्पन्दा जघनस्थली शिथिलता दोर्वल्लिरुत्कम्पितम् वक्षो मीलितमक्षि पौरुषरस स्त्रीणा कुत सिद्धयति ।।[4]

वास्तव मे पुरुषायित और उपसृप्तक ये दोनो प्रयोग पति-पत्नी, प्रेमी प्रेमिका के बीच राग और अनुराग बढाने मे सहज रूप मे सहायक प्रतीत होते है, तभी तो श्रीहर्ष ने पुरुषायित (विपरीत रति) का भी वर्णन नैषध मे किया है। महाभारत के विवरणो से भी स्पष्ट है कि नल एव दमयन्ती की प्रीतिसौख्यता का सौरभ तो दिगदिगन्त मे प्रसृत था, शायद वे पूर्वजन्म मे भी पति-पत्नी रहे होगे, जैसा कि कीर ने वर्णन किया था कि आप (दमयन्ती) तो युगो से सती है। फिर उनके बीच प्रेमोद्रेक होना तो स्वत सिद्ध ही मानना अभीष्ट होगा।

रतिक्रिया और प्रणय कलह (रतारम्भावसानिक) वर्णन·-

रतिक्रिया एव प्रणय कलह का प्रसङ्ग रतावरम्भ (सम्भोगारम्भ) एव रतावसान के बाद दोनो स्थितियों मे अपनाया जाता है। ये रागवृद्धिकारक तत्व है । यह अनुभव सिद्ध बात है कि सुरतोत्सवारम्भ मे प्राक्कीडा अर्थात् रतिस्थापन (प्रेम प्रदर्शन) एव प्रणय कलह की अत्यधिक आवश्यकता होती है, क्योकि इसमे आदि से अन्त तक भावस्पर्श की प्रधानता रहती है इसमे स्त्रियो की 'न' मे उनकी हॉ ही समझना चाहिए क्योंकि स्त्रियॉ तो स्वभाव से शर्मीली एव लज्जालु होती है, एव उनकी नकारात्क ध्वनि उनकी कामनासना की पूर्ति मे सहायक ही होता है न कि निरुद्धक। सम्भोगानन्तर स्त्री और पुरूष दोनो उत्साहहीन एव शिथिल हो जाया करते हैं, उसी उत्साह ओर तीव्रता को जागृत करने के लिए स्फूर्ति और खोई हुई शक्ति प्राप्त करने के लिए रतिक्रिया एव प्रणय कलह अनिवार्य एव आवश्यक होती है। परन्तु यह विषयो के सन्निकर्ष स ही हो सकती है। इसीलिए प्रणय कलह को श्रेष्ठ दाम्पत्य जीवन का लक्षण माना गया है । कदाचित् इसी लिए काव्यो, नाटको, (कथानको) (आख्यानो) मे जो रस-राग आदि वर्णन होता आया है, उसमे प्रणय, कलह अवश्य समाविष्ट रहता है। प्रणय कलह की प्रासगिकता इसी से सिद्ध होती है कि उसे दाम्पत्य जीवन की पवित्र प्रक्रिया और भावना मानकर वैष्णव साहित्य सन्त साहित्य एव सूफी साहित्य मे भी रामसीता, लक्ष्मी नारायण, राधा कृष्ण, प्रकृति एवं परमात्मा, माया और ब्रह्म के प्रणय कलह के रोचक प्रसग भक्तिभाव पूर्ण शब्दों मे प्रस्तुत किये गये हैं। यथा-

1 प्रच्छादितस्वभावापि गूढाकारापि कामिनी । विवृणोत्येव भाव स्व रागादुपरिवर्तिनी ।। कामसूत्र 2/8/39
2 न त्वेवर्तौ न प्रसूतां न मृगी न च गर्भिणीम् । न चातिव्यायता नारी योजयेत्पुरुषायिते ।। कामसूत्र 2/8/41
3 अथर्ववेद- 14/2/36
4 गीतगोविन्द 12/63

शय्यागृहे माम्निशि वञ्चयित्वा, स्थितो भवान् कुलचिदाप्रभातम् ।
त्यक्त्वा सदा त्वत्पदासक्तचित्ता, युक्त तवैतद् वद देव देव ।।

एक तरफ महाकवि जयदेव ने गीतगोविन्द के आठवे एव दसवे सर्ग मे राधाकृष्ण के प्रणय कलह का बडा सजीव और रोचक वर्णन किया है तो दूसरी ओर रूपगोस्वामी ने भी उज्जवल नीलमणि मे प्रणय कलह के बडे सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये है। इसी श्रृङ्खला की आदि कडी मे भास, कालिदास, के साथ श्रीहर्ष ने भी प्रणय कलह के रोचक विवरण दिये है। नैषधीयचरित के अठारहवे, उन्नीसवे एव बीसवे, इक्कीसवे एव बाइसवे सर्ग मे रतिक्रिया एव प्रणय कलह का रोचक प्रसग इतने भावगम्भीर शैली मे प्रतिपादित है कि वह आज भी जनमनहारी होने के साथ-साथ अपनी प्रासगिकता की अर्थवत्ता की गरिमा मे धूल नहीं पडने दिये। श्री हर्ष सम्भोगावसर मे नल एव दमयन्ती के प्रणय रोष का वर्णन करते हुए कहते हैं कि नल के रूठने पर दमयन्ती ने प्रिय को मना लिया क्योकि उसे यह डर लगा कि कहीं यह पराई स्त्री का दामन न थाम ले।[1] प्रणय कलह तो सम्भोगारम्भ का एक युक्तियुक्त साधन है, इसी को प्रतिपादित करती हुई दमयन्ती नल से प्रेम प्रदर्शित करती दिखती है।[2] तो नल भी शयनकक्ष मे बीच-बीच मे अपने कौतुको से दमयन्ती को आश्चर्य मे डाल देते । यथा –

स्वेप्सितोद्गमितमात्रलुप्तया दीपिकाचपलया तमोघने ।
नर्विशङ्करतजन्मतन्मुखाकूतदशनिसुखान्यभुङ्न्त स ।।[3]

साथ ही दमयन्ती जब नखचिन्हो को देख रही थी, तब नल ने अपनी मुसकान से दमयन्ती को क्रोधित कर दिया, परन्तु नल ने कहा कि प्रिये पता नहीं तुम्हे किसने रूष्ट कर दिया।[4] एव दमयन्ती को मनाते हुए महाराज नल कहते है कि प्रिये कोप को छोड दो, एव दमयन्ती की अनुनय विनय करते-करते जब नल दमयन्ती के चरण स्पर्श हेतु अपना हाथ बढाया है तो दमयन्ती का मान (क्रोध) लुप्त हो गया।[5] एव उसने अपनी मुस्कान से नल के हृदय को कृतार्थ कर दिया और दोनो रतिसुख लेने के लिए लालायित हो उठे। नल दमयन्ती की सखियो से दमयन्ती की सम्भोगकृति का वर्णन जब करते हैं, तो दमयन्ती रूठ जाती है, विविध विधियो से पुन नल दमयन्ती को मनाते है।[6] एवं दमयन्ती को पुन लक्ष्य कर कहते हैं – अहो! नापत्रपाक ते जातरूपमिद मुखम्। नातितापार्जनेऽपि स्यादितो दुर्वर्णनिर्गम ।।[7] अर्थात प्रिये तुम्हारा सलज्ज मुख कैसा सुवर्ण है कि अत्यन्त क्रोध रूपी ताप आने पर भी इसके रूप में विकार नहीं आता साथ ही दमयन्ती की प्रशसा करके नल खुद मन्त्रमुग्ध होते है। एव दमयन्ती भी उनकी वर्णन चारूता की कायल प्रतीत होती है।[8] स्पष्ट है कि दोनो नल एव दमयन्ती प्रणय कलह एव रतिक्रिया स्थापन क्रियाओ एव

---

1 स्वाङ्मर्पयितुमेत्य वामता रोषित प्रियमथानुनीय सा। आतदीयहठसम्बुभुक्षुता नान्वमन्यत, पुनस्तमर्थिनम्।। नै० 18/81

2 चुम्ब्यसेऽयमयमङ्कयसे नखै श्लिष्यसेऽयमयमर्प्यसे हृदि। नो पुनर्न करवाणि ते गिर हु त्यज त्यज इवास्मि किकरा ।।
इत्यलीकरतकातरा प्रिय विप्रलभ्य सुरते ह्रिय च सा । चुम्बनादि विततार मायिनी कि विदग्धमनसामगोचर ।। नै० 18/90, 91

3 नै० 18/92

4 शेषरूषितमुस्त्रीभिव प्रिया वीक्ष्य भीतिदरकम्पिताक्षराम्। ता जगाद स न वेद्मि तन्वि! त कश्चकार तव कोपरोपणम्।। नै० 18/131

5 आख्यतैष कुरू कोपलोपन ष्य नश्यति कृशि मधोर्निशा। एतमेव तु निशान्तरे वर रोषशेषमनुरोत्स्यसि क्षणम् ।। नै० 18/139
साथ नाथमनयत्कृतार्थता पाणिगोपितनिजाङ्घ्रिपङ्कजा । तत्प्रणामधुतभवनमानन स्मरमेव सुदती वितन्वती ।। नै० 18/140
नौ मिथौ रतिरसायनत्पुन समबुभुक्षुमनसौ बभूतवतु। चक्षमे न तु तयोर्मनोरथ दुर्जनीरजग्रिन्पजीवना ।। नै० 18/142

6. नै० 20/27 - - -134

7 नै० 20/141

8 नै० 21/150 - - -160

उनकी विधियो से बखूबी परिचित थे। श्रीहर्ष के विवरणे से यह पूर्णरूपेण स्पष्ट हो जाता है कि उनके रतिक्रिया एव प्रणय कलह विवरण भी सर्वथा कामशास्त्र सम्मत है क्योकि वात्स्यायन ने भी कहा है कि परस्पर राग और अनुराग की बाते करते हुए साथ ही आलिगन और चुम्बन करने से प्रसन्नता और राग बढते है।[1] यह राग सात प्रकार का होता है- रागवत, आहार्यराग, कृत्रिमराग, व्यवहितराग, पोटारत खलरत, अयन्त्रितरत। इसमे आहार्यराग ही श्रीहर्ष को अभीष्ट हे क्योकि इसमे धीरे-धीरे स्त्री मे प्रेम एव विश्वास बढाकर सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। प्रणय कलह एव रतिस्थापन क्रियाएँ तो चौंसठ कलाओ के अग भी है, श्रीहर्ष ने तो पदे-पदे चौसठ कलाओ की महिमा गायी है, एव महर्षि वात्स्यायन ने तो इन्हे प्रत्येक गृहस्थ को अपनाने की बात की है।[2]

कन्या का चुनाव एवं विवाह (कन्या सम्प्रयुक्तक) वर्णनः-

कन्या के विवाह के लिए वरण करने का विधान बताते हुए वात्स्यायन कहते है- "सवर्णायामनन्यपूर्णाया शास्त्रोऽधिगताया धर्मोऽर्थ पुत्रा सम्बन्ध पक्षवृद्धिरनुपस्कृता रतिश्च"। तस्मात्कन्यामभिजनोपेता मातापितृमर्ती त्रिवर्षात्प्रभृति न्यूनवयस श्लाध्याचारेधनवति पक्षवति कुले सम्बन्धिप्रिये सम्बन्धिभिराकुले प्रसूता प्रभूतमातृपितृपक्षा रूपशीललक्षणसम्पन्नामन्यूनाधिकाविनष्टदन्तनखकर्णकेशाक्षिस्तनीम रोगिप्रकृतिशरीरा़ा तथाविध एव श्रुतवाञ्शीलयेत्।[3] परन्तु आचार्य घोटकमुख का कहना है कि जिस कन्या से विवाह करके पुरूष अपने को धन्य समझे, तथा जिससे विवाह करने पर सदाचारी मित्रगण प्रशसा करे, निन्दा नहीं, उससे विवाद करना उपयुक्त है।[4] गुणी कन्या का वरण करने के लिए माता-पिता और सम्बन्धी लोग प्रयत्न करे, मित्रगण भी, जो दोनो ओर से सम्बन्धित हो, उन्हे भी प्रयत्न करना चाहिए।[5] साथ ही कुछ आचार्यों का मत है कि जिस कन्या से मन और ऑखे मिल जॉय उससे विवाह करने मे सुख और वृद्धि होती है "नेत्रप्रीति प्रथमम्" यदि मन नहीं मिलता, आखे नहीं मिलती तो विवाह नहीं करना चाहिए।[6] श्री हर्ष ने नैषधीयचरित मे वर्णन किया है कि कर्णपरम्परया लोगो से दमयन्ती के गुणो को सुनने के साथ-साथ जब हस द्वारा भी दमयन्ती के गुण सौन्दर्य, एव शील का वर्णन सुनने के बाद राजा नल दमयन्ती पर अत्यधिक आशक्तिवश उसे प्राप्त करने हेतु हस को अपना मित्र बनाकर भेजते हैं, तो उधर दमयन्ती जो राज दरबार में भी नल के गुणों की चर्चा पहले सुन चुकी थी, हस द्वारा नल गुणो के वर्णन से वह पूर्ण रूप से नल के प्रति समर्पण हेतु उद्धत हो गयी।[7] यहॉ तक कि उसने नल के बिना अपनी

---

1 आद्ये सदर्शने जाते पूर्वं ये स्युर्मनोरथा । पुनर्वियोगे दु ख च तस्य सर्वस्य कीर्तनै ॥
कीर्तनान्ते च रागेण परिष्वङ्गै सचुम्बनै। तैस्तैश्च भावै सयुक्तो यूनो रागो विवर्धते ॥

2 ब्रवन्नप्यन्यशास्त्राणि चतु षष्टि विवर्जित । विद्वत्ससदि नात्यर्थं कथासु परिपूज्यते ॥
वर्जितोऽप्यन्य विज्ञानैरेतया यस्त्वलकृत । स गोष्ठ्या नरनारीणा कथास्वग्र विगाहते ॥
विद्वद्भि पूजितामेना खलैरपि सुपूजिताम् । पूजिता गणिकासङ्घैर्नन्दिनीं को न पूजयेत् ॥
नन्दिनी सुभगा सिद्धा सुभगकरणीति च । नारी प्रियेति चाचार्यै शास्त्रेप्वेषा निरुच्यते॥
कन्याभि परयोषिद्भिर्गणिकाभिश्च भावत। वीक्ष्यते बहुमानेन चतु षष्टिविचक्षण ॥ कामसूत्र- 2/10/35 39

3 कामसूत्र 3/1/1, 2

4 या गृहीत्वा कृतिनमात्मान मन्येत् न च समानैर्निन्द्यते, तस्या प्रवृत्तिरिति घोटकमुख । कामसूत्र 3/1/3

5 तस्या वरणे मातापितरौ सम्बन्धिनश्च प्रयतेरन्। मित्राणि च गृहीतवाक्यान्युभय सम्बद्धानि । कामसूत्र 3/1/4

6 यस्या मनश्चक्षुणोर्निबन्धस्तस्यामृद्धि। नेतरामाद्रियेत् । इत्येके। कामसूत्र 3/1/13

7. नृपेऽनुरूपे निजरूप सम्पदा दिदेशा तस्मिन्नहुश श्रुति गते ।
विशिष्या सा भीमनरेन्द्रनन्दना मनोभवाज्ञैकवशवद मन ॥ नै० 1/33
स्वकान्तिकीर्तिव्रजमौक्तिकस्रज श्रयन्तमन्तर्घटनागुणश्रियम् ।
कदाचिदस्या युवधैर्यलोपिन नलोऽपि लोकादश्रृणोद्गुणोत्करम् ॥ नै० 1/42

के लिए सवर्ण वरकन्या की ही प्रधानता है और काम्य विवाह मे नित्य काम्यता होने से सवर्ण का विधान गोण माना जाता है। वात्स्यायन ने काम्य विवाह का समर्थन नहीं किय। श्रीहर्ष ने अभिहित किया कि ब्राह्म विवाह को ही राजा भीम ने अपनाकर दमयन्ती का विवाह सम्पन्न किया।[1]

विवाहोपरान्त कामसूत्रकार ने पति-पत्नी की दिनचर्या का वर्णन करते हुए कहते है– सगतयोस्त्रिरात्रमध शय्या ब्रह्मचर्यं क्षारलवणवर्जमाहारस्तथा सप्ताह सतूर्यमङ्गलस्नान प्रसाधन सहभोजन च प्रेक्षासबन्धिना च पूजनम् । इति सार्ववर्णिकम्।[2] इसी का अनुकरण करते हुए नल एव दमयन्ती ने तीन दिन तक ब्रह्मचर्य धारण करते हुए व्यतीत किये।[3] तदनन्तर उन्होने कामयज्ञ को सम्पन्न किया। कामसूत्रकार ने कामोत्सवपूर्व सम्पन्न विधियो को अपनाने पर बल देते हुए कहते है- "तस्मिन्नेता निशि विजानेमृदुभिरूपचारैरूपक्रमेत्। त्रिरात्रमवचन हि स्तम्भमिव नायक पश्यन्ती कन्या निर्विद्यते परिभवेच्च तृतीयामिव प्रकृतिम् इति बाभ्रवीया। उपकमेत, विस्रम्भयेच्च, न तु ब्रह्मचर्यमतिवर्तेत, इति वात्स्यायन। उपक्रममाणश्च न प्रसह्य कि चिदाचरेत्। कुसुमधर्माणो हि योषित सकुमारोपक्रमा, तारत्वनधिगतविश्वासै प्रसभमुपक्रम्यमाणा सप्रयोगद्वेषिण्यो भवन्ति, तस्मात्साम्नैवोपचरेत्। युक्त्यापि तु यत प्रसरमुपलभेन्तेनैवानु प्रविशेत्। तत्प्रियेणालिङ्गनेनाचरितेन नातिकालत्वात्। पूर्वकायेण चोपक्रयेत्, विषह्यत्वात्। दीपालोके विगाढयौवनाया पूर्वसस्तुताया बालाया अपूर्वायाश्चान्धकारे।"[4] श्रीहर्ष ने वात्स्यायन द्वारा प्रतिपादित विधियो का नल से पालन करवाया अर्थात् पूर्व वर्णित चुम्बन, आलिगनादि विधियॉ अपनाकर दमयन्ती को अपने विश्वास मे लेकर ही कामोत्सव हेतु नल ने अपनी मन स्थिति बनायी।[5] वात्स्यायन ने तो यहा तक कहा कि- "अनुशिष्याच्च, आत्मानुराग दर्शयेत् मनोरथाश्च पूर्वकालिकाननुवर्णयेत्, आयत्या च तदानुकूल्येन प्रवृत्ति प्रतिजानीयात्, सपत्नीभ्यश्च साध्वसमवच्छिन्द्यात् कालेन च क्रमेण विमुक्तकन्याभावामनुद्वेजयन्नुपक्रमेत।[6] इस प्रकार नववधू की चित्त की वृत्तिया जानकर तरकीब से जो उसे अपने प्रेम बन्धन मे बाध लेता है तो आरम्भ से ही वह स्त्री अनुगामिनी बनकर उसकी (पति की) सेवा करती है।[7] वात्स्यायन द्वारा समर्थित विधियो को नल एव दमयन्ती ने अपनाया शायद तभी उन दोनो के पवित्र प्रेम की गाथा की सुगन्धि आज तक साहित्य जगत के प्रेमी लेते आये है, एव भविष्य मे लेते रहेगे। किन्तु वात्स्यायन ने पुरूषो का सलाह देते हुए कहा कि –

नात्यन्तमानुलोम्येन न चातिप्रातिलोम्यत । सिद्धि गच्छति कन्यासु तस्मान्मध्येन साधयेत ।।
आत्मन प्रीतिजनन योषिता मानवर्धनम् । कन्याविस्रम्भ्रण वेत्तिय. स तासा प्रियो भवेत् ।।
अतिलज्जान्वितेत्येव यस्तु कन्यामुपेक्षते । सोऽनभिप्रायवेदीति पशुवत्परिभूयते ।।
सहसा वाप्युपक्रान्ता कन्याचित्तमविन्दता । भय वत्रासमुद्वेगं सद्यो द्वेष च गच्छति ।।
सा प्रीतियोगमप्राप्ता तेनोद्वेगेन दूषिता । पुरूषद्वेषिणी वा स्याद्विद्विष्टा वा ततोऽन्यगा ।।[8]

---

1 यथावदस्मै पुरूषोत्तमाय ता स साधुलक्ष्मी बहुवाहिनीश्वर ।
शिवामथ स्वस्य शिवाय नन्दना ददे पति सर्वविदे महीभृताम् ।। नै० 16/12।

2 कामसूत्र- 3/2/1।

3 तथाशनाया निरशेषि नो ह्रिया न सम्यगालोकि परस्परक्रिया ।
विमुक्तसम्भोगमशायि सस्पृह वरेण वध्वा च यथाविधि व्यहम् ।। नै० 16/47

4 कामसूत्र 3/2/2-10।

5 नै० 18/35- - - 62।

6 कामसूत्र 3/2/29

7 एव चित्तानुरागो बालामुपायेन प्रसाधयेत्।तथास्य सानुरक्ता च सुविस्रब्धा प्रजायते।। कामसूत्र- 3/2/30

8 कामशास्त्र- 3/2/31,32,33,34,35

वात्स्यायन के साथ-साथ धर्मशास्त्र का भी कथन है कि जब तक चतुर्थी कर्म (विवाह से चौथे दिन होने वाली क्रिया) न हो जाय वरवधू को प्रेमपूर्वक वार्तालाप करते हुए भी पूण ब्रह्मचय से रहना चाहिए।[1] हरिहर एव जयमगला टीकाकार यशोधार भोजन मे क्षार पदार्थों को निषेध करते हुए जमीन मे सोने का विधान किये है। नल एव दमयन्ती कामशास्त्रीय विधि अपनाते हुए ही अपना जीवन दर्शन प्रारम्भ किये दिखते है। बहाना बनाते हुए नल ने दमयन्ती के प्रति अपने प्रेम का इजहार करते हुए अपनी विश्वासधर्मिणी बनाते है।[2] स्पट है कि श्रीहर्ष ने नल दमयन्ती का समागम वात्स्यायन के द्वारा बताते हुए नियमो के आधार पर ही किया है।

महर्षि वात्स्यायन ने यह अभिहित किया कि जिनका विवाह ब्राह्म, प्राजापत्य, आर्य एव दैव विवादविधियो से विवाह न किया हो, वह गान्धर्वविधि से विवाह करे, "या तु व्रियमाणा ने लभ्यते तत्र गान्धर्वादयश्चत्वारो विवाहा", स्मरणीय है कि नल एव दमयन्ती का विवाह तो प्रथम तथा गान्धर्व (स्वयवर) पद्धति से हुआ, पश्चात् ब्राह्म विधि से। इससे सिद्ध होता है कि श्रीहर्ष के मत मे ये दोनो पद्धतियॉ ही सर्वश्रेष्ठ है। वात्स्यायन ने धनहीन, कुलहीन को विवाह न करने की सलाह दी[3], साथ ही स्वकुल एव मातृकुल को छोडकर अन्य कुल की लडकी से अनुरक्ति मे गान्धर्व विवाह की अनुमति दी। आचार्य घोटकमुख का कथन है कि बचपन से ही किसी लडकी पर यदि सात्विक आशक्ति हो तो उसे वश मे कर लेना निन्दनीय नहीं है।[4] ब्राह्म आदि दिव्य विवाह विधि से मनचाही कन्या न प्राप्त होने पर कन्या की इच्छा से उसके साथ गन्धर्व विवाह कर लेना कामसूत्रवार उचित समझते है। शायद नल एव दमयन्ती के प्रीत्याकर्षण की परिणति विवाह में इसी लिए सफल हुई। वात्स्यायन ने प्रेमी-प्रेमिका या पति-पत्नी मे अनुरागोत्पत्ति को बढाने के विविध साधनो का उल्लेख करते हुए कहते है कि-

विस्मयेषु प्रसह्यमानामिन्द्रजालै प्रयोगैर्विस्मापयेत्। कलासु कौतुकिनी तत्कौशलेन गीतप्रिया श्रुतिहरैर्गीतै। आश्वयुज्यामष्टमीचन्द्रके कौमुद्यामुत्सवेषु यात्राया गृहणे गृहाचारे वा विचित्रैरापीडै कर्णपत्रभङ्गै सिक्थकप्रधानैर्वस्त्राङ्गुलीयकभूषणदानैच्च। नो चेद्दोषकराणिमन्येत्।[5] नैषधीयचरित मे जब दमयन्ती की सखियॉ दमयंती की काम केलि का वर्णन कर उसकी हसी उडा रही थीं, तब नल ने दमयन्ती का पक्ष लेते हुए उसकी सखियों के ऊपर कौतुक रूप में आये अञ्जुलि के जल को फेक दिया, जिससे उनके भीगने पर उनके अङ्ग झलकने लगे एव उनकी जमकर हसी नल एव दमयन्ती ने की[6] श्री हर्ष की ऐसी वर्णन चारूता भी उनमें प्रीति सौख्यता को बढ़ावा देने का वात्स्यायन के मत में एक साधन है।[7] नैषधीयचरित मे इक्वीसवें एव बाइसवे सर्ग मे प्रतिपादित विवरण से स्पष्ट है कि दमयती अपने शृगार विलास से जहॉ नल को अपने प्रति सतत आकृष्ट रखने का उद्योग करती है, वहीं नल दमयन्ती की प्रशसा एव अपने प्यार

---

1 त्रिरात्रमक्षारालवणाशिनौ स्यातामध शयीतां सवत्सरं न मिथुनमुपेयाता द्वादशरात्र षडरात्र त्रिरात्रमन्तत। पा०गृ०सू० कारि०-8

2 हारचारिमविलोकने मृषा कौतुक किमपि नाट्यन्नयम्। कण्ठमूलमदसीयमस्पृशत् पाणिनोपकुचधाविनाघव ॥ यत्वयाऽस्मि सदसि स्रजाञ्चितस्तन्मयापि भवदर्हणार्हति। इत्युदीर्य निजहारमर्पयन्नस्पृशतस तदुरोचकोरकौ ॥-नै०18/44, 45

3. धनहीनस्तु गुणयुक्तोऽपि, मध्यस्थगुणो हीनापदेशो का सधनो वा प्रातिवेश्य· मातृपितृभ्रातृषु च परतन्त्र, बालवृत्तिरूचित्तप्रवेशो वा कन्यामलभ्यत्वान्न वरयेत्। कामसूत्र - 3/3/1

4 बालायामेव सति धर्माधिगमे सवनन श्लाघ्यमिति घोटकमुख। कामसूत्र 3/3/5

5 कामसूत्र 3/3/20

6 तच्चित्रदत्तचित्ताभ्यामुच्चै सिचयसेचनम्। ताभ्यामलम्भि दूरेऽपि नलेच्छापूरिभिर्जलै ॥ वरेण वरूणस्याय सुलभैरम्भसाम्भरै। एतयो स्तिमितीचक्रे हृदय विस्मयैरपि ॥ नै० 28/127

7 तद्गृहणोध्देशेन च प्रयोज्याया रतिकौशलमात्मन. प्रकाशयेत्॥ कामसूत्र 3/3/22

प्रदर्शन से उसे अपनी चिरजीवी प्रेमिका बनाये रखने का उद्योग करते दिखायी पड रहे है। वात्स्यायन पति-पत्नी को अपने प्रति आकृष्ट रखने हेतु उद्योग करने मे सहमति देते दिखयी पडते है।[1] श्री हर्ष ने यह तथ्य भी स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया है कि नल एव दमयन्ती ने एक दूसरे के गुणो को सुनकर ही एक दूसरे के प्रति समर्पित होने को उत्सुक हुए। क्योकि पुरूष के साथ स्त्री भी पति चुनने मे स्वाधीन है।[2] इसीलिए दमयन्ती ने नल को चुना, क्योकि वही उसको अभीष्ठ था। श्रीहर्ष ने स्वयवर के बाद ब्राह्म विवाह को राजा भीम द्वारा अपनाया जाना वर्णन किया है क्योकि धर्मशास्त्रो मे प्रथम विवाह विधि की अपेक्षा सभी विवाह उत्तरोत्तर निष्कृष्ट माने गये है।[3] विवाह का उद्देश्य अखण्ड अनुराग प्राप्त करना है, शायद इसीलिए श्रीहर्ष ने गान्धर्व विवाह (स्वयवर) को मध्यम होते हुए भी उचित एव श्रेष्ठ माना। वात्स्यायन ने भी कहा है कि –

व्यूढाना हि विवाहानामनुराग फल यत·। मध्यमोऽपि हि सद्योगो गान्धर्वस्तेन पूति ॥
सुखत्वादबहुक्लेशादपि चावरणादिह । अनुरागात्मकत्वाच्च गान्धर्व प्रवरोमत ॥[4]

वात्स्यायन ने पतिब्रता स्त्रियो की कामसूत्र मे अत्यन्त प्रशसा की है।[5] श्रीहर्ष ने भी दमयन्ती को पतिव्रता भार्या की सज्ञा दी। क्योकि दमयन्ती ने चारो देवताओ इन्द्र, अग्नि, यम, वरूण एव अन्यान्य वीर राजाओ को छोडकर नल का ही वरण किया एव वह नल को विवाहपूर्व ही मन से पति स्वीकार कर चुकी थी,[6] एव अपने पातिव्रत्य धर्म के निर्वाह के लिए ही उसने स्वय वरस्थल मे नल की प्राप्ति हेतु एव अन्य देवो क्रोध से निजात पाने हेतु देवो की अभ्यर्चना सम्पन्न की थी।[7] क्योकि सती नारियो के लिए तो उनका पति ही परमेश्वर होता है।

इस प्रकार नैषधीयचरितम् मे प्राप्त उपर्युक्त कामशास्त्रीय तत्त्वो की मीमासा के उपरान्त यह कहा जा सकता है कि इस महाकाव्य मे काम शास्त्रीय तत्त्वो की विशद विवेचना नैषधकार ने की है, किन्तु कुछ विद्वानो ने नैषध मे प्राप्त इन्हीं कामशास्त्रीय विवरणो को लक्ष्य लेकर इस काव्य रत्न को निम्न श्रेणी का काव्य मानने की अभीप्सा व्यक्त की है, क्योकि जहॉ पाश्चात्य विद्वान ए बी कीथ ने इस महाकाव्य को "A

---

1 तेनापि नाप सर्पन्त्यौ दमयन्तीमय तत । हर्षेणादर्शयत्पश्य नन्विमे तन्वि! में पुर ॥
क्लिमीकृत्याभ्यसा वस्त्र जैनप्रब्रजितीकृते । सख्यौ सक्षौमभावेऽपि निर्विघ्नस्तनदर्शने ॥
दृष्ट्वैतान्भावसयुक्तानानाकारानिङ्गितानि च । कनयाया सप्रयोगार्थं तास्तान्योगान्विचिन्तयेत् ॥
बालक्रीडनकैर्बाला कलाभिर्योवने स्थिता । वत्सला चापि सग्राह्य विश्वास्यजनसग्रहात् ॥

2 कन्याभियुज्यमाना तु य मन्येताश्रय सुखम्। अनुकूल च वश्य च तस्य कुर्यात्परिग्रहम् ॥ कामसूत्र 3/4/48
तत्र युक्तगुण वश्य शक्त बलवदर्थिनम् । उपायैरभियुञ्जान कन्या न प्रतिलोभयेत् ॥ कामसूत्र 3/4/50
गुणसाम्येऽभियोक्तृणामेको वरयिता वर । तत्राभियोक्तरि श्रेष्ठ्यमनुरागात्मको हि स ॥ कामसूत्र 3/4/55

3 पूर्व पूर्व प्रधान स्याद्विवाहो धर्मत स्थिते। पूर्वाभावे तत कार्यो यो य उत्तर उत्तर ॥

4 कामसूत्र- 3/5/29, 30

5 भार्यैकचारिणी गूढविश्रम्भा देववत्यातिमानुकूल्येन वर्तेत। कामसूत्र 4/1/1

6 इतीरिता पत्ररथेन तान ह्रणा च हृष्टा च बभाण भैकी ।
चेतो नलङ्कामयते मदीय नान्यत्र कुत्रापि च साभिलाषम् ॥ नै० 3/67
मदन्यदान प्रति कल्पना या वेदस्त्वदीये हृदि तावदेषा ।
निशोऽपि सोमेतरकान्तशकामोकारमग्रेसरमस्य कुर्या ॥ नै० 3/75 एव 76
साधुत्वया तर्क्तिमेतदेव स्वेनानल यत्किल सश्रयिष्ये ।
विनामुना स्वात्मनि तु प्रहर्तुं मृषागिर त्वा नृपतौ न कर्तुम् ॥ नै० 3/77 एव 78 98
वृणे दिगीशानिति का कथा तथा त्वयीति नेक्षे नलभामपीहया ।
सतीब्रतेऽग्नौ तृणयामि जीवित स्मरस्तु कि वस्तु तदस्तु भदम य ॥ नै० 9/70 एव 71 155

7 अथाधिगन्तु निषधेश्वर सा प्रसादनामाद्रियतामराणाम् ।
यत सुराणा सुरभिर्नृणा तु सा वेधसासृज्यत कामधेनु ॥ नै० 14/1 एव 2. .10

perfect masterpiece of bad taste and bad style"[1] की सज्ञा देते हुए निम्न काव्य माना, वहीं भारतीय समीक्षक एस एन दास गुप्त एव एस के डे ने प्रेमाशक्ति का मुक्त प्रदर्शन रूप मे[2] तथा कृष्णमाचार्यर महोदय ने भी प्रेमाशक्ति की इयत्ता रूप मे[3] रखकर निन्दात्मक अभिव्यक्ति की है। ध्यातव्य है कि उपर्युक्त विद्वानो ने नैषध महाकाव्य की भाषा, विषयवस्तु प्रवाह, कल्पनाशीलता एव वैदुष्य को लक्ष्य लेकर भी इस काव्य के बारे मे अपनी अरुचि का प्रतिपादन किया है, जिसका पूर्व मे विवेचन किया जा चुका है, परन्तु उपर्युक्त सदर्भ मे इन विद्वानो के प्रश्नो पर यह तो कहा जा सकता है कि चूँकि नैषधकार ने इस ग्रथ के कलेवर को "श्रृगारामृतशीतगु" रूप देने की अपनी अभिव्यक्ति का प्रतिपादन इस महाकाव्य मे स्वय किया है तब इस ग्रथ मे श्रृगार रस का उद्रेक तो रहेगा ही। फिर श्रीहर्ष तो रीतिकालीन युग के थे, एव रीतिकालीन कवियो के लिए नायक नायिका का नख शिख वर्णन श्रृगार वर्णन, आश्रयदाता नरेश की प्रशस्ति रचना करना, एव स्वय की पाण्डित्य शक्ति का प्रदर्शन करना आदि अनिवार्य एव सहज कर्म ही थे। तब उपर्युक्त विद्वानो की ऐसी अभिव्यक्ति कहॉ तक सगत मानी जा सकती है? स्मरणीय है कि नैषधकार के पूर्ववर्ती महाकिवियो कालिदास भारवि, एव माघ ने भी कामशास्त्रीय तथ्यो के विवरण अपने अपने प्रमुख ग्रथो मे दिया है। यथा महाकवि माघ कृत "शिशुपालवधम्" मे दसवे एव ग्यारहवे सर्ग मे यादवो एव यादवागनाओ के रतिकालीन विवरण, चुम्बन सुरत एव सीत्कृतादि के विवरण जहॉ कामातुरता को प्रज्जवलित करते दिखते है,[4] वहीं भारवि रचित 'किरातार्जुनीयम्' के आठवे सर्ग मे देवागनाओ के शरीर वर्णन, उनके नखक्षतो के विवरण, तथा नवे सर्ग मे गन्धर्व नर नारियो द्वारा अपनाये गये अधरदान, (चुम्बन), नखक्षत, प्रियतमा के मुख से दिये गये मद्य (मद्यगण्डूष - पान का हिस्सा) ग्रहण करने के विवरण, साथ ही खुले रूप मे रतिक्रीडा करने के दृश्य के विवरण[5] तो काम शास्त्रीय मर्यादा की इतिश्री ही कर देते है। रही महाकवि कालिदास की बात, तो उन्होने ने भी अपने प्रमुख काव्यो रघुवश, कुमारसम्भव, तथा मेघदूत मे कामशास्त्र के विवरणो को अत्यधिक रुचि के साथ जगह दी है। रघुवश महाकाव्य के उन्नीसवे सर्ग मे कामलोलुप अग्निवर्ण के कामिनियो से ससर्ग करने के विवरण यथा आलिगन, नखक्षत दन्तक्षत एव रतावस्थापन के वीभत्स रूप के दर्शन कराते हैं एव काम को ही चरम पुरुषार्थ मानने की कहानी कहते है,[6] ऐसे सन्दर्भों के अध्ययन से जनमानस किस राह चला जायेगा, शायद कालिदास ने इसे परखा ही नहीं होगा? उपर्युक्त विवरणो के बारे मे प्रसिद्ध विद्वान जे.जे मेयर का कथन है कि "कालिदास ने सामान्य रूप मे प्रचलित निर्मलता तथा भारतीयो की सहज सुलभ उत्कण्ठा के साथ एक अत्यन्त लापरवाह और सासारिक सुखो मे लिप्त एक ऐसे व्यक्ति का चित्रण किया है जिसे भारत का डान जुआन

---

1 A History of Sanskrit Literature - A B Keith - P 140

2 Their language is never pliant nor their verse supple while their fancy loves to play with the fantastic and the extravagant - A History of Sanskrit Literature - Vol I, Das Gupt & Day P 331

3 In fancy and imagery his descriptions see no limit - History of Classical Sanskrit Literature, M Krishnamachariar - P 180-181

4 सीत्कृतानि मणित करुणोक्ति स्निग्धमुक्तमलमर्थवचासि ।
हारभूषणरवाश्च रमण्या कामसूत्रपदतामुपजग्मु ।। शिशु 10/75
– शिशुवधम् में द्रष्टव्य-मद्यपान एव श्रृगारिक वर्णन-10/1. .41, आलिगन वर्णन 10/42 .51, चुम्बनक्रीडा वर्णन 10/52 . .54, सुरतकेलि वर्णन 10/55 .. 90 एव कामराग वर्णन 11/2 . .39

5. पाणिपल्लवविधूननमन्त सीत्कृतानि नयनार्धनिमेषा। योषिता रहसि गद्गदवाचामस्त्रतामुपययुर्मदनस्य।। कि० 9/50
– भर्तृषूपसखि निक्षिपतीनामात्मनो मधुदोद्यमितानाम्। व्रीडया विफलया वनिताना न स्थित न विगत हृदयेषु ।। कि० 9/66 किरातार्जुनीयम् में द्रष्टव्य 8/15 57 शरीर वर्णन, आलिंगन, नखक्षत, एव जल क्रीडावर्णन, रतेस्थापन 9/34 46, सम्भोग एव बाह्यरत - 9/47 78

6 रघु0 19/5 49

(Don Juan) कहा जा सकता है।[1] कालिदास कृत कुमारसम्भव महाकाव्य के आठवे सर्ग मे भी वर्णित शिव पार्वती के सभोग के विवरण, जिसमे आलिगन, चुम्बन नखक्षत, दन्तक्षत, रतिकालीन स्थिति का बखान शिव द्वारा पार्वती को बैल पर आगे बैठाकर सुमेरु पर्वत पहुँचने के विवरण एव अनेक स्थानो पर किये गये सुरतस्थिति के विवरण अत्यन्त कामरसोत्पादक, रुचिकर एव कामोन्मादक है।[2] इन विवरणो के बारे मे स्पष्ट रूप मे कहा जा सकता है कि यहॉ पर महाकवि ने भारतीय सस्कृति की इयत्ता की सीमा को पारकर पाश्चात्य सस्कृति मे प्रचलित रतिकालीन अवस्थाओ का निरूपण ही करना चाहा है। आचार्यों की महती परम्परा ने भारतीय सस्कृति की मर्यादा तोडने के लिए कालिदास की तीव्र आलोचना की है।[3] पण्डितराज जगन्नाथ ने भी कालिदास के इस साहस को उचित नहीं माना। परन्तु कुछ विद्वान् कुमारसम्भव के इस अष्टम सर्ग को किसी शकरदेव की रचना मानते है।[4] जो कि अयथार्थ ही प्रतीत होता है। इसी तरह मेघदूत मे यक्ष यक्षिणिओ के कामदशाओ के वर्णन मे कालिदास ने काम पुरुषार्थ का प्रदर्शन किया है।[5] डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने इस ग्रथ मे विवर्णित कामविवरणो के बारे मे लिखा है कि "यह भी सत्य है कि कालिदास के समान उस ग्रथ का गम्भीर किन्तु प्रमोदपूर्ण परायण आज तक कोई नहीं कर सका। ध्यातव्य है कि प्रिय के सयोग को कालिदास ब्रह्मानद तुल्य मानते है[6] लेकिन महाकाल के दर्शनोपरान्त जब यक्ष मेघ से कहता है कि "ज्ञातास्वादो विवृतजघना को विहातु समर्थ[7] तो इससे ज्यादा खुलकर कालिदास और क्या लिख सकते थे? क्या यहॉ कालिदास शास्त्रीय सीमा को लाघकर अश्लीलता की सीमा को स्पर्श नहीं कर रहे है? तब क्या समालोचको को अपने पूर्वजो, कालिदास, भारवि, एव माघ सम्बन्धी अभिव्यक्ति पर पुन विचार नहीं करना चाहिए? आखिर नैषधकार को ही आलोचना के घेरे मे क्यो लिया गया? इस पर सुधीजनो एव समीक्षकवृन्दो को अवश्यमेव दृष्टि डालनी चाहिए।

हॉ, मेघदूत के उपर्युक्त सदर्भ मे, कालिदास की रसप्रसविनी शैली एव लोकग्राही विषयवस्तु के अनुपम अनवद्य हृद्य सुधारस से आप्यायित सहृदय या विद्वज्जन वेत्रवती नदी के वर्णन का सन्दर्भ अवश्य रख सकते है, कि यहॉ वेत्रवती का मुखपान मेघ की कामुकता के (साधक) प्रमाण रूप मे नहीं है, बल्कि उसकी पूर्वसिद्ध कामुकता की सार्थकता एव सफलता के परिमाणात्मक अश रूप मे विवर्णित है, एव इस प्रकार का आधारहीन आरोप कालिदासीय काव्यचारुता के साथ असगत या मनमाना ही कहा जायेगा, लेकिन यहॉ ऐसे विद्वानो को यह स्पष्ट बताना आवश्यक प्रतीत होता है कि कामार्त यक्ष की प्रकृति यदि कृपण दृष्टि आधारो की खोज करे, एव अपनी कामुक प्रवृत्ति का आरोपण मेघ मे आरोपित कर दे, तो ऐसा आरोप भले ही आधारहीन हो, किन्तु फिर भी वह सहज एव स्वाभाविक बन ही जाता है । यह तो सत्य है कि मेघ पर आरोपित कामुकत्त्व यक्ष दृष्टि की सौगात है, फिर भी यह विचार है तो कालिदास के ही। कालिदास नि सन्देह श्रृगाररस के पारखी कवि है, परन्तु फिर भी अगविलास का वर्णन उनकी कल्पना का रसबिन्दु है। अग्रेजी भाषा के महान कवि कार्लाइल ने कवि कीट्स को (ऐसे ही वर्णन के लिए) "A

---

1 दशकुमारचरित के अनुवाद की भूमिका, पृ० 117

2 कुमारसम्भव - 8/4 91

3 In may stand to proclaim the inauguration of romantic era in sanskrit poetry - India in Kalidas - Sri Bhagavat Sharan upadhyaya P- 285

4. कालिदास और उनका युग - सम्पादक गोविन्द चन्द्र पाण्डे, राकाप्रकाशन, इलाहाबाद प्रथम सस्करण 1998

5 पूर्व मेघ, 27 45, उत्तरमेघ 9 42

6 मा भूदेव क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोग - उत्तरमेघ 58

7 पर्वू मेघ - 45

Chosen vessel of hel" (चुना हुआ नारकीय पात्र) कहा है, कालिदास को वह न जाने क्या कहते . ।[1] कालिदास के काव्यो क (शायद कुमारसम्भव के) किसी ऐसे ही श्लोक को पढकर आचार्य रजनीश यहॉ तक कहने को उतारू हो गये कि "कालिदास के ग्रथो मे जितनी कामुकता है, उतनी तो आधुनिक चलचित्रो मे भी नहीं ।[2]

इस रूप मे श्रीहर्ष की आलोचना सर्वथा उनकी अमोघ मेधा का तिरस्कार करना ही होगा, एव नैषधकार की उपर्युक्त ए०बी० कीथ, एस०एन० दास गुप्त और एस०के० डे, कृष्णमाचार्य प्रभृति विद्वानो द्वारा की गयी आलोचना के बारे मे यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि या तो पूर्ववर्ती कालिदास आदि काव्यकारो के प्रति पूर्वाग्रही दृष्टि ने उन्हे श्रीहर्ष की आलोचना के लिए विवश किया होगा, या यह कह ले कि कालिदास के जादू ने सबको मत्रमुग्ध कर रखा है, शायद इसीलिए समीक्षक वृन्द कालिदास को सर्वोच्च पद पर बैठाने के लिए उनकी आलोचना से बचते फिरते है, और या तो उनकी नैषध मे गति नहीं थी, क्योकि यह काव्य तो विद्वानो के मस्तिक के तोष का जनक है, जैसा कि "नैषध विद्वदौषधम्" से स्पष्ट है। तब इसमे श्रीहर्ष या "नैषधीयचरितम्" महाकाव्य की क्या गलती है? यहॉ तो उपर्युक्त विद्वानो के बारे मे यास्क मे शब्दो मे यही कहा जा सकता है "नैष स्थाणोरपराधो यदेनमन्धो न पश्यति"। तीसरा कारण यह भी हो सकता है कि कालिदास के ग्रथो का सरल भाषा मे निबद्ध होना एव पठन पाठन मे उनके विशिष्ट प्रचलन की परिपाटी का चली आना, जब कि नैषधकार के ग्रथ नैषधीयचरित एव खण्डनखण्डखाद्य क्लिष्ट ग्रथ हैं, एव सामान्य जन के समझ के परे भी तथा अध्ययन अध्यापन मे कम प्रचलित है। अगर इन ग्रथो को भी कालिदास के ग्रथो सदृश लोक जीवन के प्रकाश मे लाया गया होता, तो सभव है उपर्युक्त विद्वान् श्रीहर्ष से प्रभावित होते एव अपनी दृष्टि पर पुनर्विचार अवश्य करते।

---

1 पूर्वमेघ - 45, टिप्पणीकार, उमाशंकर जोशी ।

2 दो प्रवचन, रजनीश प्रकाशन, जीवन जागृति केन्द्र राजकोट ।

षष्ठम अध्याय

नैषध महाकाव्य में धर्मशास्त्रीय संदर्भ

धर्मशास्त्र

नैषधीयचरितम् मे धर्मशास्त्र की सम्बन्धित तथ्यो की मीमासा के दर्शन नल हस सवाद, नल की पूजा अर्चना, नल दमयन्ती विवाह प्रसग एव नल तथा देवो के वार्तालाप विवरणो मे प्रभूत मात्रा मे देखने को मिलते है। विभिन्न युगो मे समाज के सस्कार, शिक्षा, नीति, आराधना, व्यवसाय राज्य एव न्याय व्यवस्था, खान पान आदि का निर्देश धर्म के ऐसे अनुशासन द्वारा होता आया है जो समन्वित रूप मे शास्त्र कहे जाते है। तन्त्रवार्तिक के अनुसार धर्मशास्त्रो का कार्य है वर्णो एव आश्रनो की शिक्षा देना।[1] धर्मशास्त्रकारो के मतानुसार धर्म किसी सम्प्रदाय या मत का द्योतक नहीं है, प्रत्युत यह जीवन का एक ढग या आचरण सहिता है जो समाज के किसी अग एव व्यक्ति के रूप मे मनुष्यो के आचरणो एव कृत्यो को व्यवस्थापित करता है, तथा उसमे क्रमश विकास लाता हुआ उसे माननीय अस्तित्व के लक्ष्य तक पहुँचने के योग्य बनाता है।[2] धर्म वह है जिससे सासारिक जीवन मे अभ्युदय एव जीवन के परम लक्ष्य नि श्रेयस दोनो की सिद्धि होती है।[3] जहॉ वेद कर्म को ही धर्म का लक्षण मानते है[4] वही मनुस्मृति मे धर्म के अहिसा, सत्य अस्तेय आदि दश लक्षण[5] गिनाये गये है, जो कि मनुष्य के सम्पूर्ण कर्मों के औचित्य अनौचित्य का निर्णय करने मे अपनी महनीय भूमिका निभाते है[6]। वस्तुत धर्म नामक तत्व सभी प्राणियो मे सन्निहित रहता है[7]। उससे व्यक्ति का अलगाव असम्भव है। इस रूप मे यह कहा जा सकता है कि मनुष्य के जीवन मे अपूर्णता या रिक्तता, चारित्रिक वैषम्य और आध्यात्मिक अशान्ति तथा अवसाद की जो भावना देखी जाती है, ज्ञान के बल पर उससे ऊपर उठकर जो पूर्ण सत्य, आप्तकार्यता, अमृतत्व और परमशान्ति की अनुभूति होती है, वही परम धर्म है[8] और यही वह तथ्य है जो मानव को आस्था एव भय दोनो रूपो मे अनुशासित करता आया है। महाकाव्यो मे धर्म शास्त्रीय तत्वो के विवेचन को भी विद्वानो ने अपने विवेचन का नियम बनाया है[9] एव नैषधकार ने भी उस श्रृखला मे एक कडी तरह धर्मशास्त्र के तथ्यो का विवरण अपने इस महनीय काव्य मे दिया है।

---

1 सर्वधर्मसूत्राणा वर्णश्रमधर्मोपदेशित्वात् कुमारिल (तन्त्रवार्तिक 1/4)

2 धर्मो विश्वस्य जगत प्रतिष्ठा, लोके धर्मिष्ठि प्रजा उपसर्पन्ति ।
धर्मेण पाथमपनुदति धर्मे सर्व प्रतिष्ठित तस्माद्धर्मं परम वदन्ति ।। तै० आरण्यक 10/63
धर्मे अर्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित् ।। महा 1/62/53 एव स्वर्गारोहण पर्व 5/50
धारणाद्धर्म इत्याहुधर्मो धारयते प्रजा । महा 5/89/67, एव 5/137/9
धर्म एव हतो धर्मो हन्ति रक्षति रक्षित । तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ।।मनु 8/15

3 यतोऽभ्युदय नि श्रेयससिद्धि स धर्म वैशेषिकसूत्र 1/1/2

4 चोदना लक्षणोऽर्थो धर्म -मीमासासूत्र 1/1/2
तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्-वैशेषिक सूत्र 1/1/3

5 धृति क्षमादमोऽस्तेय शौचमिन्द्रिय निग्रह । धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशक धर्मलक्षणम ।। मनुस्मृति - 3/92

6 साक्षात्कृत धर्माण ऋषयो बभूवु तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मस्य उपदेशैन मन्त्रान् सम्प्रादु । निरुक्त 1/20

7 धम्मोवत्थु-सहावो (कुन्दकुन्दाचार्य), वस्तु, आत्मा आदि का स्वभाव ही धर्म है।

8 वृहदा० उप० 1/3/28, केनोपनिषद् 2/5, अमृतमथन 53/208

9 अनेन धर्म सविशेषमद्य मे त्रिवर्गसार प्रतिभाति भाविनि। कुमार0 5/38 एव 7/33
- षष्ठाशवृत्तेरपि धर्म एष- अभि० शाकु 5/4
- उत्पस्यतेऽस्ति भय कोऽपि समानधर्मा - माल० वि० 1/6, एव 6/18
- दिव्यास्त्रगुणसम्पन्न पर धर्मं गतो युद्धि-रामायण 3/31/15
- अनुकल्प परो धर्मो धर्मवादैस्तु केवलम् महा० 2/165/15

विशेष विवरण हेतु द्रष्टव्य-सस्कृत अग्रेजी कोश बी0ए0 आप्टे सम्पादक पी०के० गोड, सी०जी० कर्वे पृ० 855-856

राजा नल को धार्मिक प्राणी घोषित करते[1] हुए नैषधकार ने उनकी भक्ति के शताशमात्र से धर्म अर्थ, काम, मोक्ष चारो पुरुषार्थों को सुलभ बताया[2] तथा इन्द्र ने उन्हे अत्यन्त सज्जन, लोकपालो के समान श्रीमान्, निषधदेश का अमृतवर्षी चन्द्रमा, समस्त श्रौत एव स्मार्त धर्मों का आश्रयी और धर्म का धनी बताते हुए कलि को भी नल एव दमयन्ती से वैर न रखने की सलाह दी[3], साथ ही यह घोषणा भी की कि जो व्यक्ति अज्ञान वश नल से द्रोह करेगा वह शीघ्र ही अपनी पापवृत्ति का फल भोगेगा[4] क्योकि नल तो ऐसे पवित्रात्मा है जिनके नाम श्रवण से यात्रा मगलमयी होती है। यथा-

वैन्य पृथु हैहयमर्जुन च शाकुन्तलेय भरत नल च ।
एतान्नपान् य स्मरति प्रयाणे तस्यार्थसिद्धि पुनरागमश्च ॥

नल की धार्मिकता की पुष्टि इक्कीसवे सर्ग मे वर्णित उनकी देवार्चना प्रसग से भी होती है जिसका आगे विवेचन किया जायेगा।

धर्म के तीन स्कन्ध माने गये है, यज्ञ, अध्ययन और दान।[5] इन तीनो के विवरण नैषधमहाकाव्य मे प्राप्त होते है। यज्ञ मनुष्य के आत्मिक उत्कर्ष के साथ-साथ मानसिक शान्ति एव विभिन्न पातको के शमन हेतु उपादान माने जाते है। नैषधकार ने विभिन्न यज्ञो यथा सर्वमेध, सर्वस्वार सौत्रामिणी (इन्द्रयापा) राजसूय, बह्मसाम, अग्निष्टोम, पौर्णमास, सोम, महाव्रत एव अश्वमेध यज्ञ का विवरण समुपस्थापित किया है, चूँकि ये वेदो से सम्बन्धित है, अत इनका विवरण आगे वेद वेदाग नामक अध्याय मे किया जायेगा। अध्ययन का विवरण देते हुए श्रीहर्ष लिखते है कि राजा नल ने अध्ययन, बोध, आचरण तथा प्रचार इन चार प्रकार की अवस्थाओ का विभाजन करके वेद वेदागदि चतुर्दश विद्याओं[6] का गुरुमुख से अध्ययन किया था[7] साथ ही उपर्युक्त चतुर्दश विद्याओ के साथ साथ सूपशास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद एव अर्थशास्त्र[8] आदि मिलाकर अठारह विद्याएँ नल के जिह्वाग्र पर सर्वदा निवास करती थीं यथा -

अमुष्यविद्या रसनाग्रनर्तकी त्रयीव नीतागगुणेन विस्तरम् ।
अगाहताष्टादशता जिगीषया नवद्वयद्वीपपृथग्जयश्रियाम् ॥[9]

---

1 पदैश्चतुर्भि सुकृते स्थिरीकृते कृतेऽमुना केन तप 'प्रपेदिरे।
भुव यदेकाङ्घिकनिष्ठया स्पृशन् दघावधर्मोऽपि कृशस्तपस्विताम्॥ नै० 1/7

2 फलसीमा चतुर्वर्गं यच्छताशोऽपि यच्छति । नलस्यास्मदुपघ्ना सा भक्तिर्भूतावके शिनी ॥ नै० 17/142

3 भव्यो न व्यवसायस्ते नले साधुमतौ कलें। लोकपालविशालोय निषधाना सुधाकर ॥ नै० 17/143
न पश्याम कलेस्तस्मिन्नवकाश क्षमाभृति। निचिताखिलधर्मे च द्वापरस्योदय वयम् ॥ नै० 17/144
त नासत्ययुग ता वा त्रेता स्पर्धितुर्मति । एकप्रकाशधर्माण न कलिद्वापरौ युवाम् ॥ नै० 17/145
सा विनीततमा भैमी व्यर्थनर्थग्रहैरहो । कथ भवद्विधैर्बाध्या प्रमितिर्विभ्रमैरिव ॥ नै० 17/145

4 द्रोह मोहेन यस्तस्मिन्नाचरेदचिरेण स । तत्पापसम्भव तापमाप्नुयादनयान्तत ॥ नै० 17/148
युगशेषतव द्वेषस्तस्मिन्नेष न साम्प्रतम् । भविता न हितायैतद्वैर ते वैरसेनिना ॥ नै० 17/149

5 छान्दो०उप० 2/23/1

6 पुराणन्यायमीमासाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिता । वेदा स्थानानि विद्याना धर्मस्य च चतुर्दशा ॥ याज्ञ० स० 1/3
शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्त छन्दसा चिति.। ज्योतियामयनञ्चैव वेदागानि वदन्ति षट् ॥
अगानि वेदाश्चत्वारो मीमासा न्यायविस्तर । धर्मशास्त्र पुराण च विद्यास्त्वेताश्चतुर्दश ॥ विष्णु पुराण

7 अधीतिबोधाचरणप्रचारणैर्दशाश्चतस्र प्रणयन्नुपाधिभि ।
चतुर्दशत्व कृतवान्कुत स्वय न वेद्मि विधासु चतुर्दशस्वयम् ॥ नै० 1/4

8 आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चेति ते त्रय। अर्थशास्त्र चतुर्थन्तु विद्या ह्यष्टादश स्मृता ॥ विष्णुपुराण

9. नै० 1/5

नल की अध्ययनशीलता का ही प्रमाण है कि वह कवियो या विद्वानो के बीच हर्षपूर्वक समय व्यतीत करते थे[1]। दान का वर्णन नैषधकार ने अनेक प्रसगो मे किया है यथा- नल के वर्णन, अन्य राजाओ के विवरण नल दमयन्ती विवाह में भीम द्वारा, नल के जागरण मे प्रयुक्त पदाञ्जलि प्रणेता वन्दीजनो के वर्णन, एव नल की देर्गाचना प्रसग मे दान के प्रसग दृष्टव्य है। राजा नल को कल्पवृक्ष से[2] अधिक दानी रूप मे वर्णित करते हुए श्रीहर्ष ने उन्हे दानवीर की पद्वी से समलकृत किया[3]। जिसकी पुष्टि नल द्वारा वन्दीजनो एव[4] अर्चनान्तर ब्राह्मणो को दिये गये दान से होती है[5]। साथ ही नैषधकार ने यहॉ इस तथ्य का भी उद्घाटन किया है कि अर्चना के साथ-साथ पितृ श्राद्ध आदि कर्मों मे भी सतपात्र को दान देना चाहिए। वृहन्नारदीय पुराण मे उपर्युक्त तथ्यो से सम्बन्धित विवरण गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यासी के धर्म निरूपण के साथ-साथ श्राद्ध वर्णन मे भी दृष्टव्य है।[6] मनुस्मृति मे भी यथेर्ष्ठ पात्र को दान देने का विधान मिलता है। यथा -

दातृन्प्रतिगृहीतृश्च कुरुते फलभागिन। विदुषे दक्षिणा दत्त्वा विधिवत्प्रेत्य चेह च ।।[7]

दानधर्मं निषेवेत नित्यमैष्टिकपौर्तिकम्। परितुष्टेन भावेन पात्रमासाद्य शक्तित ।।[8]

महाराज भीम ने बरातियो को रत्न देकर[9] सम्मानित किया एव नल को कन्यादान के उपरान्त अनेक वस्तुओ के दान दिये।[10] नैषधकार ने नल को दिये गये सामानो को ''विवाहदक्षिणीकृतेषु'' रूप मे ''दक्षिणा'' नाम दिया है लेकिन आचार्य मल्लिनाथ, नारायण एव शिवदत्त शर्मा ने इसे यौतक या दहेज नाम दिया है।[11] जब कि यौतक विवाह के समय मिलने वाली वह सम्पत्ति है जिस पर एक ही व्यक्ति कन्या का एकमात्र अधिकार होता है । याज्ञवल्क्य कहते है कि ''विभागभावना ज्ञेया गृहक्षेत्रैश्च यौतकै ''। एव सामान्य अर्थ मे दक्षिणा यज्ञ दान कर्म आदि के अन्त मे ब्राह्मण और पुरोहितो को दिये जाने वाले द्रव्य को कहा जाता है। माध्यन्दिन सहिता के साथ-साथ मनुस्मृतिकार ने भी वैदिक यज्ञ के अनन्तर दक्षिणा देने का विधान किया है एव विवाह भी एक वैदिक यज्ञ ही है। चूँकि विवाह बाद दिये गये दक्षिणा को

---

1 अजस्रमभ्यासमुपेयुषा सम मुदेव देव कविना बुधेन च ।
दधौ पटीयान्समय नयन्नय दिनेश्वरश्रीरुदय दिने दिने।। नै० 1/17

2 अय दरिद्रोभवितेति वैधसीं लिपि लालटेऽर्थिजनस्य जाग्रतीम्।
मृषा न चक्रऽल्पितकल्पपादप प्रणीय दारिद्र्य दरिद्रता नल।। नै०1/15

3 विभज्य मेरुर्न यदर्थिसात्कृतो न सिन्धुरुत्सर्गजलव्ययैर्मर ।
अमानि तत्तेन निजायशोयुग द्विफालबद्धाश्चिकुरा शिर स्थितम् ।। नै० 1/16

4 अथोपकार्यां निषधावनीपतिर्निजामयासीद्वरणसृजाञ्चित ।
वसूनि वर्षन्सुबहूनि बन्दिना विशिष्य भैमीगुणकीर्तनाकृतम् ।। नै० 15/1
तथा पथित्यागमय वितीर्णवान्यथातिभाराधिगमेन मागधै ।
तृणीकृत रत्ननिकायमुच्चकैश्चिकाय लोकश्चिरमुञ्छमुत्सुक ।। नै० 15/2 एव 19/65

5 विप्रपाणिषु भृश वसुवर्षी पात्रसात्कृतपितृक्रतुकव्य ।
श्रेयसा हरिहर परिपूज्य प्रह्वएष शरण प्रविवेश ।। नै० 21/119

6 वृहन्नारदीय पुराण पूर्व भग अध्याय 24 से 28 तक दृष्टव्य।

7 मनुस्मृति 3/133

8 मनुस्मृति 4/227

9. नै० 16/111

10 नै० 16/16 33 एव
न तेन वाहेषु विवाहदक्षिणीकृतेषु सख्यानुीवेऽभवत्क्षम ।
न शातकुम्भेषु न भत्तकुम्भिषु प्रयत्नवान्कोऽपि न रत्नराशिषु ।। नै० 16/34

11 विवाहकालप्रदत्ताश्वादिषु सख्यासम्बन्धेऽप्य । सम्बन्धोक्तेरति शयोक्ति भेद। नै० 16/34 मल्लिनाथ
विवाह दक्षिणीकृतेष्विति च। बहुतर यौतक दत्तमिति भाव। नै० 16/34 नारायण
विवाहादिषु सख्यासम्बन्धेऽप्यसम्बन्धोक्तेरतिशयोक्तिभेद। नै० 16/34 शिवदत्त शर्मा

सामान्य जन दहेज नाम से अभिहित करते है, यही कारण है कि उन्होने यहॉ पर यौतक शब्द की मीमासा करना उचित समझा हो। वर्तमान मे भी सामान्यजन द्वारा विवाह बाद दिये गये उपहार या दक्षिणा को दहेज शब्द से अभिहित करने की परम्परा लोक जीवन मे देखी जा सकती है। लेकिन दान सकल्प करके दिया जाता है एव पिता अपनी पुत्री या जामाता को जो उपहार देता है उसको वह मानसिक सकल्पोपरान्त ही देता है। ध्यातव्य है कि नैषधकार ने स्वयवर पद्धति से नल एव दमयन्ती के परिणय की मीमासा के साथ-साथ अनुलोम विवाहादि रीति से भी दोनो के परिणय की मीमासा की है इस रूप मे कन्यादान के बाद दिये गये उपहार को दक्षिणा नाम देना ज्यादा उचित होगा। यहॉ नैषधकार के दक्षिणा शब्द का प्रयोग किये जाने से इस तथ्य का भी स्पष्टीकरण हो जाता है कि प्राचीनकाल मे यौतक शब्द भले ही उपयुक्त रहा हो, लेकिन बारहवीं शताब्दी तक यौतक शब्द ने अपने शब्दार्थ को खा दिया था वर्तमान मे विशेषकर ग्रामीण जीवन मे यौतक शब्द की कोई प्रासगिकता नहीं रह गयी है, क्योकि सयुक्त परिवार मे विवाह मे प्राप्त दक्षिणा (दहेज मे प्राप्त) सामग्री का विभाजन होना सर्वविदित है जब कि यौतक वह सम्पत्ति है, जिस पर कन्या का एकमात्र अधिकार होता है। धर्मशास्त्रो मे वर्णन मिलता है कि यदि दान पात्र के पास जाकर दिया जाय तो उसका अनन्त फल होता है, एव अपने पास बुलाकर देने मे हजार गुना फल तथा जो याचना करने पर दिया जाता है उस दान का पहले से आधा फल ही प्राप्त होता है[1]। नैषधकार नल की इस विधा से परिचित होने की स्थिति उपस्थापित करते हुए नल मुखेन देवताओ एव नल के सलाप प्रसग मे कहते हैं कि-

मीयता कथमभीप्सितमेषा दीयता कथमयाचितमेवा।त धिगस्तु कलयन्नपि वाञ्छामर्थिवागवसर सहते य ।।[2]

याज्ञवल्क्य का मत है कि अयाचित वस्तु, चाहे वह जितनी दूषित हो यदि भेट की जाती है तो उसे अवश्यमेव स्वीकार कर लेना चाहिए[3] इसी तथ्य को हस भी नल के सम्मुख रखते हुए कहता है कि मुझे उपहाररूप मे दैव आपका सहायक बनाना चाहता है, अतएव इस अयाचित लाभ को त्यागना आपके लिए उचित नहीं होगा। यथा-

उपनम्रमयाचित हित परिहर्तुं न तवापि साम्प्रतम ।
करकल्पजनान्तरद्विधे सुचित प्रापि स हि प्रतिग्रह ।।[4]

श्रीहर्ष ने दान के साथ साथ स्नान वर्णन की भी मीमासा नैषध मे की है। यह तथ्य तो सार्वजनीन है कि सम्पूर्ण धार्मिक क्रियाएँ व्यक्ति के स्नानादि क्रियाओ से निवृत्त होने के बाद सम्पन्न की जाती है। ऋषि पराशर ने धर्मशास्त्रो मे प्रतिपादित पॉच प्रकार के स्नान बताये है, आग्नेय, वारुण, ब्राह्म, वायव्य तथा दिव्य।[5] इसमे ब्राह्म स्नान का विवरण राजा नल के स्नान वर्णन मे द्रष्टव्य है[6], एव वायव्य स्नान, जो

---

1 गत्वा यद्दीयते दान तदनन्तफल स्मृतम्। सहस्रगुणमाहूय याचिते तु तदर्धकम् ।। मिताक्षरा, आचाराध्याय, 203

2 नै० 5/83

3 अयाचिताहृत ग्राह्यमपि दुष्कृतकर्मण । याज्ञ स्मृति 2/15 (आचाराध्याय)

4 आग्नेय वारुणब्राह्म वायव्य दिव्यमेव च। आग्नेय भस्मना स्नान वारूण्यमवगाहनम्।।
आपोहिष्ठेति च ब्राह्म वायव्य गोरज स्मृतम्। यत्तुसातपवर्षेण तत्स्नान दिव्यमुच्यते ।। वृहद दैवज्ञरजन, पृ० 100 में उद्धृत

5 नै० 2/12

6 स्वेदबिन्दुकितगोधिरधीर स श्वसन्नभवदाप्लवनेच्छु ।।नै० 21/6 उत्तरार्द्ध
यक्षकर्दममृदून्मृदिताग प्राकुरगमदमीलितमौलिम् । गन्धवार्भिरनुबन्धितभृगैरगना सिषिचुरुचकुचास्तम् ।। नै० 21/7
भूभृत पृथुतपोधनमाप्तस्त शुचि स्नपयति स्म पुरोधा। सदधज्जलधरस्खलदोघस्तीर्थवारिलहरीपरिष्टात् ।। नै० 21/8
प्राणमायतवतो जलमध्ये मज्जिमानमभजन्मुखमस्य । आपगापपरिवृढोदरपूरे पूर्वकालमुषितस्य सिताशो ।। नै० 21/13
स्नानवारिघटराजदुरोजा गौरमृत्तिलकबिन्दमुखेन्दु । केशशेषजलमौक्तिककान्ता त बभाज सुभगाप्लवनश्री ।। नै० 21/16

कि गोरज (गोशाला की धूलि) के स्नान को कहा जाता है "वायव्य गोरज स्मृतम" का प्रसग सत्रहवे सर्ग मे कलिवर्णन मे द्रष्टव्य है जहॉ कलि को रजोलिप्त व्यक्ति के श्रवण से अपने आश्रय प्राप्ति का सतोष होने लगा, पर जब जाकर देखा तो वह वायव्य स्नान से पवित्र व्यक्ति मिला।[1] नैषधकार ने तीर्थ स्नान को भी दमयन्ती सौन्दर्य वर्णन मे स्थान दिया है एव यह माना है कि तीर्थ स्नान सचितपुण्यकर्मों के कारण ही हो पाता है।[2]

नित्यनैमित्तिक कर्मों का भी धर्मशास्त्रो मे प्रतिपादन मिलता है। नैषधकार ने इन कर्मों का विवरण नल के दिनचर्या या नित्यकर्म वर्णन प्रसग मे दिया है, जहॉ नल प्रात काल उठकर व्यायाम से निवृत्त होकर, राजकुमारो को शस्त्रचालन की शिक्षा प्रदान करने के अनन्तर स्नानादि क्रियाओ से निवृत्त होकर नैमित्तिक कर्मों यथा प्रात , मध्याह्न एव साय सन्ध्या की क्रियाओ को क्रमश सम्पादित किया करते थे। नल के इस कथन से भी परिपुष्ट होता है कि नित्य कर्मों मे उनकी विशेष अभिरुचि थी, जैसा कि वे दमयन्ती से कहते हैं कि-

प्रेयसाऽवादि सा तन्वि। त्वदालिगनविघ्नकृत्। समाप्यता विधि शेष क्लेशश्चेतसि चेन्न ते।।[3]

श्रीहर्ष ने यह भी वर्णित किया कि नल नित्य अग्निहोत्र मे आहवनीय गार्हपत्य तथा दक्षिणाग्नि इन तीनो अग्नियो की पूजा करते थे[4] एव दमयन्ती की प्राप्ति को वह अपनी तपस्या का ही प्रभाव मानते थे[5]। चारण वनिता द्वारा नल को मध्याह्न पूजा का स्मरण दिलाने पर राजा नल शिव के ध्यान एव पूजा की वेला समीप जाकर मध्याह्न पूजा मे प्रवृत्त हुए[6]। सर्वप्रथम गगाजल स सकल्पोच्चारण[7] फिर रक्तवर्णामिट्टी से अपने शरीर मे लेप[8] फिर कुश से नल ने पवित्रीकरण कर्म किया। नैषधकार ने यहॉ इस तथ्य का भी प्रतिपादन किया कि कुश के मूल मे ब्रह्मा, मध्य मे विष्णु एवं कुशाग्र मे शिव का निवास रहता है[9] जैसा कि धर्मसहिताओ मे भी वर्णन मिलता है। यथा -

कुशमूले स्थितो ब्रह्मा कुश मध्ये जनार्दन। कुशाग्रे शकर विद्यान्त्रयो देवा कुशस्थिता।।

पवित्रीकरण के पश्चात नल ने प्राणायाम किया[10] अनन्तर नल ने उत्तरीय वस्त्र धारण कर[11] गौरमृत्तिका का तिलक लगाकर[12] मध्याह्न सन्ध्या हेतु अघमर्षण मन्त्र का उच्चारण करते हुए जल को नासिका से स्पर्श कराया[13], पुन सूर्य देव का आवाहन किया एव जल को शिर के चारो ओर

---

1 श्रुत्वा जन रजोजुष्ट तुष्टि प्राप्नोज्झटित्यसौ। त पश्यन् पावनस्नानावस्थ दु स्थस्ततोऽभवत् ।। नै० 17/199

2 विशेषतीर्थैरिव जह्नुनन्दिनी गुणैरिवाजानिकरागभूमिता। जगाम भाग्यैरिव नीतिरुज्ज्वलैर्विभूषणैस्तत्सुषमा महार्घताम्।। नै० 15/54

3 नै० 20/6

4 ममासावपि मा सभूत्कलिद्वापरवत्पर। इतीव नित्यसत्रे ता स त्रेता पर्यतूतुषत् । नै० 20/10

5 त्वा प्राप मप्रसादेन प्रिये। तन्नाद्रियते तप ।। नै० 20/14 उत्तरार्द्ध
निशि दास्य गतोऽपित्वा स्नात्वा यन्नाभ्यवीविदम्। त प्रवृत्तासि मन्तु चेन्मन्तु तद्वद वन्धसे ।। नै० 20/15

6 नै० 20/158 161

7 नै० 21/10

8 वही 21/11

9 मूलमध्यशिखरस्थितवेध शौरिशभुकरकाग्रिशिर स्थै। तस्य मूर्ध्नि चकरे शुचि दर्भैवारि वान्तमिव गाङ्गतरङ्गै।। नै० 21/12

10. प्राणमायतवतो । नै० 21/13
गायत्रीं शिरसा सार्धं जपेद्व्याहृतिपूर्विकाम्। प्रतिप्रणवसयुक्तां त्रिरय प्राणसयम ।। याज्ञ स0, आचाराध्याय 2/23

11 नै० 21/14, 15

12 नै० 21/16

13 नै० 21/17

घुमाया[1] फिर स्फटिकमणि की माला से मन्त्र जाप किया।[2] अनन्तर (जौ) यव से देवतर्पण एव तिल से पितृतर्पण किया[3] धर्मग्रथो मे भी वर्णन मिलता है कि "देवतर्पण हि यवै क्रियते पितृतर्पण हि तिलै क्रियते"। दोनो तर्पणो के बीच नल ने ऋषितर्पण कर ब्रह्मम यज्ञ भी किया ऐसा नारायण का अभिगत है। पुन हस्तपाद प्रक्षालन कर नल ने पूजागृह मे प्रवेश किया जहॉ उनके लिए सम्पूर्ण पूजा सामग्री उपस्थित थी, चौकी मे आसन ग्रहण कर नल सूर्य अर्चना एव उनका जाप किया। भगवान शकर की धूप दीप नैवेद्य[4] से पूजा कर उनकी वन्दना की तथा शतरुद्री जप "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" इस द्वादशाक्षमत्र का जप एव वन्दना, शालिग्राम, गरुण एव विष्णु की अर्चना, तथा क्षमाप्रार्थना साथ ही विष्णु के सभी रूपो मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बलदेव, बुद्ध, अर्धनारीश्वर, विश्वकर्मा आदि विविध रूपो की विविध प्रकार से अर्चना करते हुए भगवान विष्णु के ध्यान मे लीन हो गये एव अर्चनान्तर ब्राह्मणो का दक्षिणा देकर पूजालय मे प्रवेश किये[5]। उपर्युक्त पूजा अर्चना मे नैषधकार ने इस तथ्य का भी प्रतिपादन किया कि ईश्वरभक्ति से चारो पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सभव है[6]। नल की पूजा वर्णन के साथ-साथ श्रीहर्ष ने दमयन्ती द्वारा गौरी आदि की पूजा का विवरण देने के साथ-साथ भारतीय सस्कृति के इस तथ्य का भी प्रतिपादन किया हे कि स्त्रियो को पति को भोजनानन्तर ही भोजन करना चाहिए[7]। जैसा कि दमयन्ती ने नल के भोजनोपरान्त ही भोजन ग्रहण किया। प्रात मध्याह्न के बाद नल की साय सन्ध्या का विवरण भी नैषधकार ने शुक द्वारा नल को प्रेरित कर सन्ध्योपासना मे प्रवृत्त होने का विवरण दिया है[8]। बृहन्नारदीय पुराण मे विस्तार रूप से मन्त्रजाप विधिकथन, शौचाचार, स्नान, सन्ध्या, तर्पण आदि का निरूपण देवपूजनविधि, गणेश मत्र विधिनिरूपण, मन्त्रविधान निरूपण, सिहोपासना सहित विष्णु के अष्टाक्षर मन्त्रो की अनुष्ठान विधि का विवरण देखने को मिलता है[9]।

धर्मग्रथो मे वर्णित आपोशान क्रिया, जो भोजन के पूर्व कनिष्ठा अगुलि को फैलाकर शेष अगुलियो को सकुचित कर चुल्लू मे पानी लेकर अन्न को अमृतमय बनाने के लिए "अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा" मन्त्रोच्चारण करते हुए भोजन के चारो तरफ जल घुमाने के बाद दोनो हाथो से बनी मुद्रा द्वारा सम्पादित होती है, उसका वर्णन भी श्रीहर्ष ने चारणजनो के मुख से करवाया है, जहॉ वह कहते हैं कि प्रभात वेला मे कमलिनी की पहिली पखुडी को विकसित तथा अन्य पखुडियों का सम्पुटित देखकर लोगो के मन मे यही ध्यान आता है मानो सूर्य की किरणो का प्रथम बार भोग करने के लिए कमलिनी आपोशान, क्रिया कर रही है।[10] आचार्य नरहरि एव नारायण कहते है- "भोजने प्रवृत्तेनापोशानक्रियापूर्वमादावन्ते च

---

1 नै० 21/18

2 नै० 21/19

3 पाणिपर्वणि यव पुनराख्यद्देवतर्पणयवार्पणमस्य। न्युष्यमानजलयोगितिलौघै स द्विरुक्तकरकालतिलोऽभूत।। नै० 21/20 ब्रह्मयज्ञोऽपि तेनाकारोति भाव। आद्यन्तयोर्देवपितृतर्पणोक्तेर्मध्ये वर्तमानमृषितर्पण कृतमिति ज्ञेयम् ।। नै० 21/20नारायण स्वधाकृत यत्तनयै पितृभ्य श्रद्धापवित्र तिलचित्रमम्भ। चन्द्र पितृस्थानतयोपतस्थे तदकरोचि रुचिता सुधैव ।। नै० 22/119

4 उपनतमुडुपुष्पजातमास्ते भवतु जन परिचारकस्तवायम् ।
तिलतिलकितपर्पटाभमिन्दु वितरनिवेद्यमुपास्स्व पञ्चबाणम् ।। नै० 22/147

5 नै० 21/21 119

6 धर्मबीजसलिला सरिदद्यावर्थमूलमुरसि स्फुरति श्री। कामदैवतमपि प्रसवस्ते ब्रह्म मुक्तिदमसि स्वमेव ।।नै० 21/110

7 भीमामजापि कृतदैवतभक्तिपूजा पत्यौ च भुक्तवति भुक्तवती ततोऽनु।
तस्याकमकुरितत्परिरिप्समध्य मध्यास्तभूषणभरातिभरालसागी।। नै० 21/121

8 नै० 21/141, 162, 22/1

9 वृहन्नारदीय पुराण, पूर्वभाग अध्याय 65 से 71 तक द्रष्टव्य एव विष्णुमाहात्म्य वर्णन अध्याय 37 - 41 तक द्रष्टव्य।

10 मिहिरकिरणाभोग भोक्तु प्रवृत्ततया पुर कलितचुलुकापोशानस्य ग्रहार्थमिय किमु ।
इति विकसितैनैकेन प्रग्दलेन सरोजिनी जनयति मति साक्षात्कर्तुर्जनस्य दिनोदये ।। नै० 19/28

भोक्तव्यम्'' इति श्रुते। आपोशान ग्रहीता करकमले एका कनिष्ठामडगुलि प्रसारयति, अन्याश्च सकोचयतीति सप्रदाय.[1]॥ आचार्य मल्लिनाथ, चाण्डूपण्डित एव विद्याधर इस क्रिया को आचमन की एक विधा मानते है[2]। यथा- चाण्डूपण्डित का मत है कि ''आपोशानस्य अन्नाऽनग्नाऽमृर्तीकरणार्थस्य आचमनस्य गृहार्थं । यो भोक्तु प्रवृत्त स प्रथममापोशान गृहणाति। तदुक्तम्आपोशानेनोपरिष्टादध स्तादश्नता तथा। अनग्नममृत चैव कार्यमन्न द्विजन्पना। तथा विद्याधर लिखते है कलित गृहीत चुलुकेन प्रसृतेन यदापोशान भोजनादो पानीयप्राशन तस्य ग्रहार्थमाचमनार्थम। य किल प्रथम भोक्तु प्रवर्तते स आदावपोशान गृह्णाति। इस क्रिया का विवरण ब्रह्मपुराण के वीरमृत्योदय (आह्निक प्रकाश) मे भी मिलता है यथा - आपोशान तु गृहणीयात् सर्वतीर्थमय हि तत्। अमृतोपस्तरणमसि विष्णोरन्नमयस्य च। मिताक्षर का कथन है ''आपोशनक्रियाम् अमृतोपस्तरणमसीत्यादिका पूर्वं कृत्त्वा भुञ्जीत्'' एव अपरार्क का मत है ''उपनयनकाल आयोशा(श)नप्रैषोक्ता क्रिया आपोशा(श)न क्रिया। ब्रह्मपुराण[3] तथा याज्ञवल्क्य सहिता[4] के अतिरिक्त अनर्घराघव[5] एव लीलावय[6] मे भी आपोशान क्रिया का वर्णन मिलता है। हाण्डिकी महोदय का आपोशन क्रिया के विषय मे अभिमत है कि "The Custom of drinking before a meal some water from the hollow of the palm by stretching out the little finger keeping the others fingers closed The word is spelt also अपोशन, अपोशान, and आपोशान, It is believed that the Aposana Ceremony tours the food into nectar, and should be accompained by the appropriate formula [7] उपर्युक्त आपोशन क्रिया के विवरण देने से नैषधकार ने यह सकेत देना चाहा हे कि तत्कालीन बारहवीं शताब्दी मे भोजनपूर्व इस प्रक्रिया को अपनाया जाता था जिसको वर्तमान मे आशिक पुरुषो द्वारा ही अपनाया जाता है। हॉ इसके पूर्व की प्रक्रिया अर्थात् ''त्वदीयमस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पितम्'' इत्यादि मन्त्रोचारण करते हुए भोजनपूर्व भोजन के चारो तरफ जल फेरने या घुमाने का प्रचलन मानव समाज मे वर्तमान मे भी प्रचलित है।

मनुस्मृति मे चारो आश्रमो मे गृहस्थाश्रम को अन्य का आधार एव उनसे श्रेष्ठ माना गया है।[8] इस विवरण की सगति दमयन्ती के उस कथन से होती है जहॉ वह इन्द्रदूती को उत्तरदेती हुई कहती है कि मैं गृहस्थाश्रम मे प्रवेश कर (पृथ्वी लोक मे ही) पति की सेवा करूँगी।[9] साथ ही साथ सत्रहवे सर्ग मे भी मनुस्मृति के उपर्युक्त तथ्य की मीमासा मोह विवरण प्रसग मे श्रीहर्ष ने की है। यथा-

ब्रह्मचारिवनस्थायियतयो गृहिण यथा। त्रयो यमुपजीवन्ति क्रोधलोभमनोभवा ॥[10]

---

1 नै० 19/28 में नरहरि एव नारायण,

2 आपोशान नाम भोजनादौ कर्त्तव्यम् ''अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा''।
इति समन्त्रक जलपानेन अन्नस्य अमृतास्तरणरूप कार्यं समन्त्रका चमनमित्यर्थ। नै० 19/28 में मल्लिनाथ

3 यथान्याय पूजयित्वा शाकल्यो भोजन ददौ। आपोशन करे कृत्वा परशुर्वाक्यमब्रवीत् ॥ ब्रह्मपुराण, 163/18

4 कृताग्निकार्यो भुञ्जीत वाग्यतो गुर्वनुज्ञया। अपोशनक्रियापूर्वं सत्कृत्यान्नमकुत्सयन ॥ याज्ञ स 1/31

5 ध्रुवमिह चतुरम्भो निधिरचितापोशानकर्मणिमुनीन्द्रे। भक्ष्यमन्यानि किमपि चकम्पिरे सप्त भुवनानि॥ अनर्घराघव, 7/96
इसमें टीकाकार रुचिपति का कथन है ''भोजनारम्भचुलकरूपमापोशानम्''।

6 ओसावणि व्व पीयासत्त वि चुलुयट्ठिया, उयही। कौहल-लीलावय, श्लोक 8 पूर्वार्द्ध

7. नैषधीयचरित के के. हाण्डिकी पृ० 558-559

8 यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तव तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमा ॥
यस्मात्त्रयोप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम् गृहस्थेनैवधार्यन्ते तस्माज्जेष्ठाश्रमोगृही ॥
स सन्धार्य प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता। सुख चेहेच्छता नित्य यो धार्यो दुर्बलेन्द्रियै ॥ मनु० 3/77-79

9 वर्षेषु यद्भारतमार्यधुर्या स्तुवन्ति गार्हस्थ्यमिवाश्रमेषु। तवास्मि पत्युर्वरिवस्ययेह शर्मोर्मीकिमीरितधर्मलिप्सु ॥ नै० 6/97

10 नै० 17/32

भारतीय सस्कृति मे अपना नाम, गुरु का नाम, कजूस का नाम, पत्नी एव ज्येष्ठ सन्तान के नाम नहीं लेना सदाचार माना जाता है, यथा-

आत्मनाम गुरोर्नाम नामातिकृपणस्य च। श्रेयस्कामो न गृह्णीयाज्ज्येष्ठापत्यकलत्रयो ।

पति को वेदो एव स्मृतियो मे गुरु तथा पत्नी को शिष्या माना जाता है, एव वात्स्यायन भी ऐसा मानते है, अतएव पति के नाम न लेने का विधान भी भारतीय सस्कृति एव सभ्यता का एक अगभूत तथ्य है। उपर्युक्त दोनो तथ्यो का प्रतिपादन भी नैषधकार ने किया है। प्रथम तथ्य का उत्तर दमयन्ती द्वारा नल के कुल गोत्र, नाम जानने के प्रश्न मे नल के उत्तर मे मिलता है। यथा-

महाजनाचार परम्परेदृशी स्वनाम नामाददते न साधव ।
ततोऽभिधातु न तदुत्सहे पुनर्जन किलाचारमुच विगायति ।।[1]

द्वितीय तथ्य अर्थात् पत्नी द्वारा पति का नामोच्चारण न करना भी भारतीय सस्कृति का एक अग रहा है हालाकि वर्तमान मे पाश्चात्य सस्कृति का अनुकरण कर कुछ आधुनिक शहरी जन पत्नी का नामोच्चारण करते दिखते है, परन्तु नैषधकार तो बारहवीं शताब्दी की बात यहाँ कर रहे है, और तब ऐसी परम्परा अवश्य रही होगी एव वर्तमान मे भी ग्रामीण परिवेश मे भी वही प्राचीन परम्परा विद्यमान है। सरस्वती वर्णन के साथ साथ[2] हस द्वारा दमयन्ती से पूँछने पर कि वह नल को चाहती है या नहीं? दमयन्ती ने द्वितीय तथ्य का आश्रय लेते हुए उत्तर दिया[3] चूँकि नल के गुण सुनने के पश्चात मन से नल को दमयन्ती ने अपना पति स्वीकार कर लिया था अतएव सरस्वती के पूँछने पर भी उसने पति नाम का उच्चारण नहीं किया। आचार्य मनु ने व्यावहारिक जीवन के बारे मे कहा कि मिलने पर ब्राह्मण से उसकी कुशल क्षत्रिय से उसके स्वास्थ्य (नैरोग्य), वैश्य से क्षेम एव शूद्र से आरोग्यता सम्बन्धित जानकारी पूँछनी चाहिए[4]। इसी तथ्य का विवरण नैषधकार ने दूतरूपधारी नल के कथन मे करवाया है। जहाँ वह दमयन्ती से कहते हैं कि इन्द्र ने आपके (क्षत्रिय कुमारी) स्वास्थ्य (अनामय या नैरोग्य) के बारे मे पूँछते हुए आपको अपना गाढालिगन सम्प्रेषित किया हैं। यथा-

सलीलमालिगनयोपपीडमनामय पृच्छति वासवस्त्वाम् ।
शेषस्त्वदाश्लेषकथापनिद्रैस्तद्रोमभि सदिदिशे भवत्यै ।।[5]

अतिथि सत्कार भारतीय सस्कृति का अभिन्न अग है। घर मे आये हुए अतिथि के सम्बन्ध मे मनु का कथन है कि-

तृणानि भूमिरुदक वाक्चतुर्थी च सूनृता । एतान्यपि सता गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ।।[6]

अर्थात् उसका हृदय से आदरसत्कार करना चाहिए। यदि अन्नफलादि देने से पास मे न हो तो कम को कम तृण (चटाई) बैठने का स्थान, जल तथा मधुर वाणी से उसका सत्कार अवश्यमेव करना चाहिए। इस तथ्य की सगति दमयन्ती के नल को सहसा देखने के पश्चात दमयन्ती के कथन से होती है। यथा -

---

1 नै० 9/13

2 त्वत्त श्रुत नेति नले मयात पर वदस्वेत्युदिताथ देव्या। ह्रीमन्मथद्वैरथरगभूमी भैमी दृशा भाषितनैषधाभूत।। नै० 14/36

3 मनस्तु य नोज्झति जातु यातु मनोरथ कण्ठपथ कथ स। का नाम बाला द्विजराजपाणिग्रहाभिलाष कथयेदलज्जा ।। नै० 3/59
इतीरिता पत्ररथेन तेन ह्रीणाच हृष्टा च बभाण भैमी। चेतो नलङ्कामयते मदीय नान्यत्र कुत्रापि च साभिलाषम् ।। नै० 3/67

4 ब्राह्मण कुशल पृच्छेतक्षत्रबन्धुमनामयम्। वैश्य क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव च ।। मनु0 2/.27

5 नै० 6/78

6 मनु० 3/95 एव 96 से 106 भी द्रष्टव्य

नत्वा शिरोरत्नरुचापि पाद्य सम्पाद्यमाचारविदातिथिभ्य ।
प्रियाक्षरालीरसधारयापि वैधी विधेया मधुपर्क तृप्ति ।।
स्वात्मापि शीलेन तृण विधेय देया विहायासनभूर्निजापि ।
आनन्दबाष्पैरपि कल्प्यमम्भ पृच्छा विधेया मधुभिर्वचोभि ।।[1]

श्रोत्रिय अतिथि के सत्कार के विषय मे याज्ञवल्कय ऋषि का कथन है कि उनको महोक्ष (विशाल बेल) अथवा महाज (बडा बकरा) भेट करना चाहिए।[2] इस धर्मशास्त्रीय तथ्य के विवरण का प्रतिपादन नैषधकार द्वारा वर्णित कलिविवरण प्रसग मे उपस्थित मिलता है जहॉ कलि गोवध होता देखकर प्रसन्न हुआ, परन्तु नजदीक जाकर देखा तो वह अतिथियो के लिए व्यापादित हुआ था।[3] अतएव वापस लौट आया। ध्यातव्य है कि अतिथियो के लिए बैल, वत्सतरी या बकरे का मास देना वैदिककाल एव प्राचीनकाल मे धर्मशास्त्र सम्मत माना जाता था, जैसा कि उत्तररामचरित नाटक मे वशिष्ठ मुनि के लिए वत्सतरी को मारने का वर्णन मिलता है किन्तु कलियुग मे देवर से पुत्रोत्पति, मास से श्राद्ध कर करने का तथा अतिथि को मास भोजन कराने का स्मृतिकारो ने निषेध किया है, अत यह प्रसग सत्ययुग का होने से तो धर्मोपेत माना जा सकता है किन्तु कलियुग मे (बारहवीं शताब्दी) मे तो कथमपि तर्कसगत नहीं ठहरता। मिताक्षर का कथन भी इसमे प्रमाण माना जा सकता है। यथा- महान्तमुक्षाण धौरय महाज वा श्रोत्रियायोक्तलक्षणायोप कल्पयेद भवदर्थमयमस्माभि परिकल्पतु इति तत्प्रीत्यर्थ, न तु दानाय व्यापादनाय वा यथा सर्वमेतद् भवदीयमिति। प्रतिश्रोत्रियमुक्षासम्भवात्। अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्ट धर्म्यमप्याचरेन्न तु इति निषेधाच्च। तस्मात् सत्क्रिया ह्येव कर्त्तव्या। इससे हम यह कहते है कि याज्ञवल्क्य स्मृति की दूसरी पक्ति अर्थात् सत्कार, आसन, सुस्वादु भोजन एव मधुवाणी से ही श्रोत्रिय अतिथि का सत्कार धर्मशास्त्र सम्मत है, प्रथम पक्ति को उसी प्रकार सामान्य अर्थ मे ग्रहण करना चाहिए जैसे किसी अतिथि या श्रेष्ठ व्यक्ति के गोद मे छोटा बच्चा डालते हुए यह कह दिया जाता है कि यह आपका ही है, या अपने पशुओ की प्रशसा भरे किसी अभ्यागत व्यक्ति या अन्य मनुष्य के सम्मान मे यह कह किया जाता है कि यह सब आपका ही तो है। साथ ही यहॉ अश्रोत्रिय या साधारण व्यक्ति के सम्मान के बारे मे कहना भी अभीप्सित होगा ऋषि गौतम कहते है कि ''अश्रोत्रियस्योदकासने।'' अर्थात् साधारण व्यक्ति का सम्मान आसन एव जल देकर करना चाहिए।

धर्मशास्त्रो मे प्रतिपाद्य स्त्रियो के सम्बन्धित अनेक तथ्यो का निदर्शन भी नैषधमहाकाव्य मे वर्णित मिलता है। आचार्य मनु ने जहॉ नग्न स्त्री को देखना निषिद्ध किया है[4]। वही याज्ञवल्क्य ऋषि ने नग्न स्त्री एव कामरत स्त्री को भी देखना निषिद्ध किया है[5]। आश्वलायन सहिता मे भी वर्णन मिलता है कि ''न नग्ना स्त्रियमीक्षेत्।'' नैषधकार ने उपर्युक्त शास्त्रीय मत की सगति नल के उपवन विहार मे[6] एव नल के भीम के अन्त पुर वर्णन प्रसग मे उपस्थित किया है जहॉ किसी ललना की रमणार्थ खुली जॉघो को देखकर नल ने अपनी ऑखे बन्द कर ली,[7] क्योकि वह धर्मशास्त्रज्ञ थे। धर्मसहिताओ यथा मनुस्मृति मे परदाराभिदर्शन या

---

1 नै० 8/20, 21

2 महोक्ष वा महाज वा श्रोत्रियायोपकल्पयेत् । सत्क्रियान्वासन स्वादु भोजन सुनृत वच ।। याज्ञ०स्मृ० 5/109

3 अधावत् क्वापि गा वीक्ष्य हन्यमानामय मुदा। अतिथिभ्यस्तस्था ता बुद्ध्वामन्द मन्दो न्यवर्त्तत् ।।नै० 17/200

4 नाग्नि मुखेनोपधमेन्नग्ना नेक्षेत च स्त्रियम्। मनु० 4/53

5 नेक्षेतार्क न नग्ना स्त्री न च ससृष्टमैथुनाम् । याज्ञ० स० आचारा०, 135

6 पुरा हठाक्षिप्ततुषारपाण्डुरच्छदावृतेर्वीरुधि बद्धविभ्रमा। मिलन्निमील ससृजुर्विलोकिता नमस्वतस्त कुसुमेषुकेलय।। नै० 1/97

7 अन्त पुरान्त स विलोक्य बाला काचित्समालब्धुमसवृतोरुम् ।
निमीलिताक्ष परया भ्रमन्त्या सघट्टमासाद्य चमच्चकार ।। नै० 6/13

परदाराभिगमन को अत्यन्त निन्द्य माना गया है[1] तथा आचार्य मनु ने इस कृत्य के लिए दण्डित करने का विधान भी किया है।[2] नैषधकार ने कलिप्रतिनिधिमुखेन उपर्युक्त तथ्य को उपहास रूप मे स्ही नैषध मे जगह दी है[3]। श्रुतियो ने गुरुपत्नी गमन को पञ्चमहापातको मे एक माना गया है[4]। इस तथ्य की मीमासा भी परोक्ष रूप से या यह कह ले श्रुतियो के तथ्यो के उपहास के रूप मे कलिप्रतिनिधि ने की है एव चन्द्रमा को इसका उल्लघनकर्ता माना है। यथा-

गुरुतल्पगतौ पाप कल्पना त्यजत द्विजा। येषा व पत्युरत्युच्चै गुरुदारगृहे गृह ।।[5]

पत्नी को छोडकर युवती नारी के पास पुरुष को अकेले नहीं रहना या जाना चाहिए क्योकि इन्द्रियॉ चचल एव बलवती होती है, एव आचार्य मनु ने तो वयस्क(युवा) पुरुष को युवा माता, युवा बहिन तथा युवा पुत्री के पास भी बैठने या रहने का निषेध किया है[6]। अन्य श्रुतिकथन भी उपर्युक्त तथ्य का समर्थन करता है यथा-

कामिनी कामयेदेव निर्जने पितर सुतम्। सद्वितीयोऽभ्युपेयात्तामत परिणतामपि ।।

इस तथ्य की सगति वरुण देव के वर्णन प्रसग मे मिलती है, जहॉ वरुण ने इस धर्मशास्त्रीय तथ्य का अर्थ न समझ कर यही समझ लिया जो सभार्य होगा उसे दूसरी भायी कैसे मिल सकती है? ध्यातव्य है कि यहॉ सह द्वितीय मे द्वितीय शब्द पत्नीवाचक न होकर (कोई भी) स्त्री या पुरुष से सम्बन्धित है एव वरुण देव ने ''द्वितीयेन सहेति सहद्वितीय'' को द्वितीयया (भार्यया) सहेति सह द्वितीय अर्थ समझ लिया। अमरकोश मे भी जो वर्णन मिलता है ''द्वितीया सहधर्मिणी भार्या जाया (इत्यमर) का भी उसने असगत अर्थ समझा।''

धर्मशास्त्रो मे स्त्रियो को जहॉ सन्तति सरक्षण एव उसकी वाहिका तथा सती, पतिव्रता के रूप मे वर्णित किया गया है, वहीं उनके दूसरे पक्ष अर्थात् कमियो की तरफ भी स्मृतियो एव सहिताओ मे वर्णन भरे पडे है मैत्रायणी सहिता एव ऋग्वेद मे जहॉ स्त्री को क्रूर माना गया है[7]। वहीं मनु ने तो स्त्री का अत्यधिक वीभत्स रूप मे विवरण देते हुए उन्हे प्रकृत्या काम, क्रोध, अनार्जव, द्रोह इत्यादि दुर्वृत्तियो का आधार माना है[8]। क्योकि वह अपने हावभाव से पुरुषो को मोहित कर उनमे दूषण उत्पन्न कर देती है[9]। इस प्रकार पतित के साथ वर्षान्त तक व्यवहार रखने पर मनुष्य स्वय भी पतित हो जाता है[10]। इस तथ्य को भी नैषधकार ने कलिप्रतिनिधिमुखेन अभिहित किया है कि-

---

1 न हि दृशमनायुष्य लोकेकिचन विद्यते। यादृश पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ।। मनु० 4/134
तत्प्राज्ञेन विनीतेन ज्ञानविज्ञानवेदिना। आयुष्कामेन वप्तव्य न जातु परयोषिति ।।

2 परदाराभिमर्शेषु प्रवृत्तान्नृन्महीपति । उद्वेजनकरैर्दण्डैश्चिह्नयित्वा प्रवासयेत् ।। मनु० 8/352

3 परदारनिवृत्तिर्या सोऽय स्वयमनादृत। अहल्याकेलिलोलेन दम्भो दम्भोलिपाणिना ।। नै० 17/43

4 ब्रह्महा च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पग । एते सर्वे पृथग् ज्ञेया महापातकिनो नरा।। मनु० 9/235
ब्रह्महामद्यपस्तेन स्तथैवगुरुतल्पग । एतेमहापातकिनो यश्च तै सह सवसेत् ।। याज्ञ०स्मृ० प्रायश्चिताध्याय, 227

5 नै० 17/44

6 मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्। बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वासमपि कर्षति ।। मनु० 2/215

7 मैत्रायणी सहिता- 1/10-11
न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणा हृदयान्येता। ऋ० 10/95/15

8 शय्यासनमलकार काम क्रोधमनार्यताम्। दोग्धृभाव कुचर्या च स्त्रीभ्यो मनुरकल्पयत्।। मनु० 9/17

9 स्वभाव एष नारीणा नराणामिह दूषणम्। अतोऽर्थान्न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चित ।। वही० 2/213

10 सवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन्। याजनाध्यापनाद्यौनान्न तु यानासनाशनात् ।। वही 11/179

कामिनीवर्गससर्गैर्न क सक्रान्तपातक। नाश्नाति स्नाति हा मोहात्कामक्षामव्रत जगत्।।[1]

स्त्रियो के प्रथम पक्ष अर्थात् उनके सतीत्व का विवरण भी नैषध महाकाव्य मे मिलता है, प्रथम दमयन्ती द्वारा चन्द्रोपालम्भ[2] वर्णन मे एव द्वितीय भाटजनो की विरचित पदानली मे[3]। हारीत का मत है कि 'मृते म्रियेत या पत्यौ सा स्त्री ज्ञेया पतिव्रता[4]।'' नारायण का कथन है कि सती होना क्षत्रिय जाति की सस्कृति का अग है क्षत्रियाणा देशान्तरे मृताना स्त्रियौ धनुरालिगयानुम्रियन्ते इत्याचार।'' याज्ञवल्क्य का अभिमत है कि यदि पति मे किसी महापातक का दोष हो तो सती होने के लिऐ वह पति की शुद्धिकाल तक प्रतीक्षा करो तब तक वह पुरुष से स्वतत्र रहती है[5]। उपर्युक्त तथ्य की सगति चन्द्रोपालम्भ विवरण मे दमयन्ती के कथन से होती है। वह कामदेव को फटकारती हुई कहती है कि हे काम! अतिप्रख्यात पतिव्रता होकर भी रति तेरे पीछे क्यो न सती हुई? लगता है अनेक विरहिणी के वध के पातकी तुम्हे तुम्हारी प्रिया रति ने भी त्याग दिया है[6]।

शौच अशौच तथ्यो का प्रतिपादन भी धर्मशास्त्र के अन्तर्गत ही मान्य है। महर्षि मरीचि के मतानुसार मरणाशौच मे व्यक्ति के मृत्यु के दिन परिवार के सभी व्यक्ति उपवास करते है लेकिन कुछ दिनो के बाद अर्थात् मरणाशौच समाप्ति के बाद सभी एक साथ भोजन भी करते है[7]। जबकि ब्राह्ममत है कि ''अशौचमध्ये यत्नेन भोजयेच्च स्वगोत्रजान्[8]।'' नैषधकार ने मरीच मुनि के कथन की सगति वैतालिक जनो द्वारा विरचित नल के जागरण हेतु प्रयुक्त प्रात कालीन वर्णन प्रसग मे की है, जहाँ विवरण मिलता है कि गत दिन के बीतने पर जब सन्ध्या आई तो मानो दयावश कमल सकुचित होने लगे परन्तु उस समय कुछ भ्रमर कमल के क्रोड मे ही रह गये, जो पद्मक्रोड से बाहर निकल आये थे वे भीतर स्थित भ्रमरो के जीवन से निराश से हो गये और रात्रि भर शोक मे उपवास करते रहे परन्तु अब प्रात काल कमलो के विकसित होने पर भीतर पडे भ्रमर अपने सहचरो के साथ मकरन्दपारण कर रहे है[9]।

मनु ने सूर्यास्त तथा सूर्योदय के समय शयन कर्म या निद्रा को पाप कर्म बताया है[10]। तथा अमर कोशकार ने भी सूर्यास्त तथा सूर्योदय के समय सोने वाले व्यक्तियो को क्रमश अभिनिर्मुक्त एव अभ्युदित नाम दिया है। यथा- ''सुप्ते यस्मिन्नस्तमेति सुप्ते यस्मिन्नुदेति च। अशुमानभिनिर्मुक्ताभ्युदितौ च यथाक्रमम्।' नैषधकार ने उपर्युक्त तथ्य को भी कलिवर्णन प्रसग मे अपनी लेखनी से समेटा है जहॉ वह कहते है कि अत्यधिक प्रयत्न के बावजूद भी कलि को नल राजधानी मे कोई भी अभिनिर्मुक्त न मिला, जोवन्मुक्त

---

1 नै० 17/41

2 दहनजा न पृथुर्दवथुव्यथा विरहजैव पृथुर्यदि दृशम्।
दहनमाशु विशन्ति कथ स्त्रिय प्रियमपासुमुपासितुमुद्धुरा ।। नै० 4/46

3 दहनमविशद्दीप्तिर्यारत गते गतवासरप्रशमसमयप्राप्ते पत्यौ विवस्वति रागिणी।
अधरभुवनात्सोद्धृत्यैषा हठात्तरणे कृतामरपतिपुरप्राप्तिर्धत्ते सतीव्रतमूर्तिताम् ।।

4 मिताक्षरा, आचाराध्याय, पृ० 86 में उद्धृत

5 आशुद्धे सम्प्रतीक्ष्यो हि महापातकदूषित। याज्ञ0 स्मृति, आचारध्याय, 77

6 अनुममार न मार कथ नु सा रतिरतिप्रथितापि पतिव्रता।
इयदनाथवधूवधपातकी दयितयापि तथासि किमुज्झित ।। नै० 4/79 एव 9/31 54

7 तिलान् ददतु पानीय दीप ददतु जाग्रतु। ज्ञातिभि सह भोक्तव्यमेतत्प्रेतेषु दुर्लभम् ।।
प्रथमेऽह्नि तृतीये च सप्तमे दशमे तथा। ज्ञातिभि सह भोक्तव्यमेतत्प्रेतेषु दुर्लभम ।।
निर्णय सिन्धु तृतीय परिच्छेद का तृतीय भाग, पृ० 410 निर्णय सागरप्रेस प्रकाशन 1906

8 वही पृ० 410

9 गतचरदिनस्यायुर्भ्रंशे दयोदयसकुचत्कमलमुकुलक्रोडान्नीडप्रवेशमुदेयुषाम्।
इह मधुलिहा भिन्नेष्वम्भोरुहेषु समायता सह सहचरैरालोक्यन्तेऽधुना मधुपारण ।। नै० 19/30

10 सूर्येण ह्यभि निर्मुक्त शयानोऽभ्युदितश्च य। प्रायश्चितमकुर्वाणो युक्त स्यान्महतैनसा ।। मनु० 2/221

ब्रह्मज्ञानी तो मिले लेकिन सूर्यास्त के समय निद्रा लेने वाले आचरण भ्रष्टो के उसे दर्शन नहीं हुए।[1] धर्मशास्त्र सम्बन्धित विहित कर्मों के करने से अभ्युन्नति एव निषिद्ध कर्मों के करने से मनुष्य का पतन होता है।[2] इसी तथ्य को समझाते हुए वरुणदेव द्वारा कलि को वेदविहित या धर्मशास्त्र सम्बन्धित तथ्यो को मानने की सलाह देने का भी नैषधकार ने वर्णन किया है।[3] आचार्य शिष्य के अज्ञान नाशक होने के साथ-साथ उनके आचरण शिक्षक भी होते हे, एव विभिन्न धर्मशास्त्रीय ग्रथो मे आचार्य का स्थान सर्वोत्कृष्ट माना गया है। वेदाध्ययन के प्रारम्भ एव अन्त मे आचार्य को प्रणाम करने की आचरण पद्धति का भी धर्मशास्त्रीय सहिताओ मे वर्णन मिलता है जिसमे आचार्य मनु ने यह विधान किया है कि गुरु के दक्षिण वाम चरणो का स्पर्श शिष्य को क्रमश ऊपर नीचे कर दक्षिण वाम हस्तो से करना चाहिए, इस मुद्रा को उन्होन ब्रह्माञ्जलि नाम दिया है।[4] श्रीहर्ष ने इस ब्रह्माञ्जलि मुद्रा का विवरण कलिवर्णन प्रसग मे किया है, जिससे कलि को अत्यधिक कष्ट हुआ, क्योकि आचरण सहिता के तथ्य उसे कथमपि सह्य नहीं थे अत जितनी ब्रह्माञ्जलियॉ उसने नल राजधानी मे देखीं, उतने ही उसने आसू गिराये ।[5]

झूठी शपथ लेने वाले मनुष्यो को नैषधकार ने सावधान किया है। मनुस्मृति मे भी वर्णन मिलता हे कि झूठी शपथ लेने से मानव का लोक एव पर लोक दोनो का विनाश हो जाता है।[6] इस शास्त्रीय तथ्य की सगति नल दमयन्ती एव उनकी सखी कला के सवाद मे मिलती है जहॉ कला ने दमयन्ती को परेशान करने के लिए कहा कि मैने (तुम्हारी एव नल की काम सम्बन्धित सभी बाते) सब सुन लिया है और यदि मै असत्य बोल रही हूँ तो मैरे सब देवता ब्यर्थ हो जाये ।[7] लेकिन अनन्तर जब उसे धर्मशास्त्रीय तथ्य कि 'झूठ बोलना बिनाशक होता है'' की अनुभूति हुई एव नल के कहने पर कि तुम (कला) झूठी हो कला ने उत्तर दिया कि राजन् आपने दमयमन्ती के परिजनो को झूठा कैसे समझ लिया? मैने तो यह था कि मैने सब सुन लिया है, किन्तु यह तो नहीं कहा कि मैं तो आप लोगो की बाते सुन ली है।[8] एव मैने **"व्यर्था. स्युर्मम देवता"** वाक्य का उच्चारण किया उसमे देव शब्द आपके लिए था न कि देवताओ के लिए। मै अपनी कही गयी बातो की व्यर्थता का समर्थन करती हूँ क्योकि देव सम्बन्धी झूठी शपथ का परिणाम भयंकर होता है।[9]

न्यास या धरोहर के विषय सन्दर्भ को भी श्रीहर्ष ने नैषध मे जगह दी है। मनु का कथन है कि जिस रूप मे वह रखा जाता है, उसी रूप मे वापस होना चाहिए।[10] इस तथ्य का विवरण नल-दमयन्ती के विलास के अवसर पर नल के कथन मे द्रष्टव्य होता है।[11] मनु ने यह भी कहा कि जो न्यास या धरोहर का अपहरण करता है उसे कठोरदण्ड मिलना चाहिए।[12] इस तथ्य की सड्गति नल के केश प्रसाधन

---

1 तेनादृश्यन्त वीरघ्ना न तु वीरहणो जना । नापश्यत् सोभिनिर्मुक्ताञ्जीवनमुक्तानवैक्षत् ।। नै० 17/197

2 विहितस्याननुष्ठानान्निषिद्धस्य च सेवनात् । अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणा नर पतनमृच्छति ।। याज्ञ० स० प्रायश्चिताध्याय-219

3 क्वापि सवर्वैरवैपावैमत्यात्पातित्या दन्यदन्यथाक्वचित्। स्थातव्य श्रौत एव स्याद्धर्मे शेषेपि तत्कृते ।। नै० 17/101

4 ब्रह्मारम्भेऽवसाने च पादौ ग्राह्यौ गुरो सदा । सहत्य हस्तावध्येय स हि ब्रह्माञ्जलि स्मृत ।। मनु० 2/71

5 अपश्यद्यावतो वेदविदा ब्रह्माञ्जलीनसौ । उदडीयन्त तावन्तस्तस्यास्राञ्जलयोहृद ।। नै० 17/183

6 न वृथा शपथ कुर्यात् स्वल्पेऽप्यर्थे नरो बुध । वृथा हि शपथ कुर्वन् प्रेत्य नेह च नश्यति ।। मनु० 8/111

7 कार कार तथाकारमूचे साऽशृणवतमाम्। मिथ्या वेत्थ गिरश्चैतद्व्यर्था स्युर्मम देवता ।। नै० 20/108

8 नै० 20/115-117

9 आमन्त्र्य तेन देव! त्वा तद्वैयर्थ्य समर्थये। शपथ कर्कशोदर्क सत्य सत्योऽपि दैवत ।। नै० 20/118

10 यो यथा शो निक्षिपेद्धस्ते यमर्थं यस्य मानव । स तथैव गृहीतव्यो यथादायस्तथाग्रह ।। मनु० 8/180

11 जागर्ति तत्र सस्कार स्वमुखाद्भवदानने। निक्षिप्यायाचित यत्ता न्यायात्ताम्बूलफालिका ।। नै० 2 /82

12 यो निक्षेप नार्पयति यश्चानिक्षिप्य याचते। तावुभौ चौरवच्छास्यो दाप्यो वा तत्सम दमम्।। मनु० 8/191

विवरण मे देखी जा सकती है, जहॉ नल के केशो की तुलना मयूरपखो से करते हुए राजदण्ड के रूप मे ग्रन्थकार ने इनके बॉधने का विवरण समुपस्थापित किया है।[1]

ऋण एव कर सम्बन्धी विवरण भी नैषध महाकाव्य मे प्राप्त होते है। ऋणदाता (उत्तमर्ण या महाजन) को ऋणग्रहीता (अधमर्ण) से स्मृतिकारो यथा मनु एव याज्ञवल्क्य ने समय एव परिस्थिति के अनुसार अलग-अलग मात्रा मे ऋण लेने का विधान किया है[2]। ऋणगृहीता या अधमर्ण का उत्तमर्ण से भयभीत होना स्वाभाविक है। इस परिस्थिति का चित्रण भी श्रीहर्ष ने नलमुखेन दमयन्ती के नेत्र वर्णन प्रसग मे किया है, जहॉ नल कल्पना करते है कि क्या हरिणियो ने दमयन्ती से दोनो नेत्रो की कान्ति ऋण रूप मे उधार ली थी जो इससे डरती हुई उन मृगियो से वह सम्पूर्ण कान्ति कई गुना करके बलात् वसूल किया[3]। लौकिक जीवन मे अभी तक यही होता आया है। ऋण दो प्रकार से, यह कह ले दो रूपो मे दिया जाता है प्रथम ऋण लेने वाला कुछ निक्षेप रूप मे ऋणदाता के पास रखकर ऋण लेता है। द्वितीय किसी मध्यस्थ (प्रतिभू या जामिन) की जमानत पर ऋणदाता किसी को ऋण देता है, इस परिस्थिति मे यदि ऋण लेने वाला (अधमर्ण) व्यक्ति ऋण वापस नहीं करता तो मध्यस्थ या जमानतदार को उस व्यक्ति का ऋण देना पडता है, या उत्तमर्ण व्यक्ति प्रतिभू या जमानतदार को पकडकर अपना धन लेता है[4]। इस तथ्य की परोक्ष रूप से सड्गति काशी नरेश के वर्णन प्रसग मे द्रष्टव्य होती है जहॉ श्रीहर्ष ने सरस्वतीमुखेन वर्णन किया है कि जब अन्य राजाओ तथा इस राजा (काशी नरेश) के बीच कर देने मे कृपाण ही मध्यस्थ हे तो उस मध्यस्थ की बात अन्य राजागण क्यो न माने। यथा-

अस्मै कर प्रवितरन्तु नृपा न कस्मादस्यैव तत्र यद्भूत्प्रतिभू कृपाण ।
दैवाद्यदा प्रवितरन्ति न ते तदैव नेद कृपा निजकृपाणकरग्रहाय ।।[5]

श्रीहर्ष ने मनुस्मृति मे प्रतिपादित शिलोञ्छ वृत्ति को ही ब्राह्मण के लिए सर्वश्रेष्ठ वृत्ति माना है क्योकि इसी वृत्ति को ही ऋत्वृत्ति माना जाता है। मनु का वृत्ति के विषय मे अभिमत है कि व्यक्ति को ऋत् (उञ्छ-शिल) या अमृत (अयाचित उपलब्ध) या मृत (भिक्षा) या प्रमृत (कृषि) से नहीं, तो सत्यानृत (वाणिज्य) से ही जीविका निर्वहन करना चाहिए, किन्तु श्ववृत्ति (सेवा या नौकरी आदि पराधीन बनाने वाली वृत्ति) को कभी स्वीकार नहीं करना चाहिए[6] शिलोञ्छ वृत्ति का सन्दर्भ दमयन्ती द्वारा दूतरूपधारी नल के रूप सौन्दर्य वर्णन मे उपलब्ध होता है जहॉ दमयन्ती कहती है कि आपके द्वारा ससार की शोभा के उत्तम

---

1 नृपस्य तत्राधिकृता पुन पुनर्विचार्य तान्बन्धमवापिपन्कचान्।
कलापलीलोपनिधिर्गरुत्यज स यैरपालापि कलापिसम्पद ।। नै० 15/58

2 वशिष्ठविहिता वृद्धि सृजेद्वित्तविवर्द्धिनीम् । अशीतिभाग गृह्णीयान्मासाद्वार्धुषिक शते ।। मनु० 8/140
द्विक शत वा गृह्णीयात्सता धर्ममनुस्मरन्। द्विक शत हि गृह्णानो न भवेत्यर्थकिल्विषी ।। वही 8/141
द्विक त्रिक चतुष्क वा पञ्चक च शत समम्। मासस्य वृद्धि गृह्णीयाद्वर्णानामनुपूर्वश ।। वही 8/142
अशीतिभागो वृद्धि स्यान्मासिमासि सबन्धके। वर्णक्रमाच्छत द्वित्रिचतु पचकमन्यथा ।। याज्ञ०स्मृ० व्यवहाराध्याय, 37

3 ऋणीकृता कि हरिणीभिरासीदस्या सकाशान्नयनद्वयश्री ।
भूयोगुणेय सकला बलाद्यत्ताभ्योऽनयाऽलभ्यत बिभ्यतीभ्य ।। नै० 7/33

4 दर्शने प्रत्यये दाने प्रतिभाव्य विधीयते। आद्यौ तु वितथे दाप्यावितरस्य सुता अपि ।। याज्ञ० स्मृ० व्यवहाराध्याय 53

5 नै० 11/126

6 जीवेद्वापि शिलोञ्छेन याज्ञ०स्मृ० आचाराध्याय, 128
– वर्तयश्च शिलोञ्छाभ्यामग्निहोत्र परायण। इष्टी पार्वायणान्तीया केवला निर्वपेत्सदा ।। मनु० 4/10
– ऋतामृताभ्या जीवेत्तु मृतेन प्रमृतेन वा । सत्यानृताभ्यामपि वा न श्ववृत्त्या कदाचन ।। वही 4/4
– ऋतमुञ्छशिल ज्ञेयममृत स्यादयाचितम्। मृत तु याचित भैक्ष, प्रमृत कर्षण स्मृतम् ।।वही 4/5
– सत्यानृत तु वाणिज्य तेन चैवापि जीव्यते। सेवा श्ववृत्तिराख्याता तस्मात्ता परिवर्जयेत् ।।वही 4/6

भाग के ले लिए जाने पर चन्द्रमा ने जो शिलोञ्छ (उञ्छो धान्यकणादान कणिकाशार्जन शिल इति यादव वृत्ति अपनाई, उसके फलस्वरूप भगवान शकर ने बालरूपी होते हुए भी चन्द्रमा को अपने मस्तक पर धारण कर लिया तथा यज्ञकर्त्ताओ मे श्रेष्ठ द्विजराज पद पर उसे आरोपित कर दिया।[1] अर्थात् शिलोञ्छ वृत्ति के परिपालन के कारण ही चन्द्रमा को यह गौरव मिला।

आचार्य मनु से सहमत होते हुए नैषधकार ने भी मृगया (शिकार) को राजाओ के लिए निन्दित नहीं माना। नल द्वारा हस को मुक्त करने पर हस नल से कहता है कि 'धर्मशास्त्र के मर्म के पारगामी (मनु आदि) राजा लोग भी आखेट शिकार की निन्दा नहीं करते, अतएव हे कामदेव तुल्य सुन्दर! (नल! आपने) मुझे जो छोड दिया, वह (छोडना) दया के आविर्भाव से निर्मल आपका धर्म था[2]। अर्थात् आप केवल आकृति से ही सुन्दर नहीं है किन्तु आपका धर्म (स्वभाव) भी सुन्दर (दयावान) है। जबकि अपने निर्बल वश को रखने वाली मछलियो को अपने घोसलो के पेडो को (विष्ठा मूत्र आदि से) पीडित करने वाले पक्षियो[3] को तथा निरपराध तृणो को नष्ट करने वाले मृगो को मारते हुए राजाओ का आखेट दोष के लिए नहीं होता।[4] क्योकि निरपराधियो को पीडित करने वालो को दण्डित करना राजधर्म है। मृगया की प्रशसा मे वर्णन मिलता है कि-

आरण्या सर्वदैवत्या प्रोक्षिता सर्वशो मृगा। अगस्त्येन पुरा राजन! मृगया येन पूज्यते।।[5]

हरिवश पुराण मे भी वर्णन मिलता है कि-

इक्ष्वाकुस्तु विकुक्षि वै अष्टकायामथादिशत्। मासमानय श्राद्धाय मृग हत्त्वा महावल ।।

नैषधीयचरितम् मे विवाह नामक सस्कार का बहुविध वर्णन मिलता है। वास्तव मे विवाह नित्य होने वाले सासारिक कार्यों की भूमिका या नियम बद्ध समाज का एक अग है जो लौकिक मानव को एक ऐसा मार्ग बतला देता हे जिससे स्त्री एव पुरुष के सम्बन्धो को वैधता की मुहर प्राप्त हो जाती है। सहिताओ एव ब्राह्मण ग्रथो मे विवाह[6] शब्द का उल्लेख मिलता है लेकिन इसके लिए 'उद्वाह' (कन्या को उसके पितृ गृह से उच्चता के साथ ले जाना) परिणय या परिणयन (अग्नि की प्रदक्षिणा करना) उपयम (सन्निकट ले जाना और अपना बना लेना) एव पाणिग्रहण (कन्या का हाथ पकडना[7]) शब्द भी पर्याय रूप मे धर्मशास्त्रो मे मिलते है जब कि ये शब्द विवाह सस्कार के केवल एक-एक अगभूत तत्त्व है। ऋग्वेद मे जहॉ विवाह का उद्देश्य गृहस्थ होकर यज्ञ करना एव सन्तानोत्पत्ति करना वर्णित है।[8] वही विभिन्न स्मृतियो मे विवाह के तीन उद्देश्य धर्मिक कार्य सम्पादन सन्तति रक्षण एव रति या प्रणयानन्द माने गये हैं।[9] तैत्तरीय सहिता, ऐतरेय ब्राह्मण, महाभारत एव शतपथ ब्राह्मण मे तो बिना विवाह किये एव सन्तानोत्पत्ति किये हुए मनुष्य

---

1 त्वया जगत्युच्चिकान्तिसारे यदिन्दुनाऽशीलि शिलोञ्छवृत्ति। आरोपि तन्माणवकोऽपि मौलौ स यज्वराज्येऽपि महेश्वरेण ।।नै० 8/42

2 मृगया न विगीयते नृपैरपि धर्मागममर्मपारगै। स्मरसुन्दर! मा यदत्य जस्तव धर्म स दयोदयोज्वल ।। नै० 1/9

3 तमसा बहुरूपेण वेष्टिता कर्महेतुना। अन्त सज्ञा भवन्त्येते सुखदु खसमन्विता ।। मनु0 1/49

4 अवलस्वकुलाशिनो झषान्निजनीडद्रुमपीडिन खगात्। अनवद्यतृणार्दिनो मृगान्मृगयाघाय न भूभुजा घ्नताम् ।।नै० 2/10

5 नै० 2/9 जयन्ती टीका से उद्धृत

6 विवाह (विशिष्ट ढग से कन्या को ले जाना या अपनी स्त्री बनाने को ले जाना) शब्द का वर्णन निम्नलिखित धर्मग्रथो मे प्राप्त है। तैत्तरीय स0 (7/2/87) ऐतऐय ब्राह्मण (27/5) एव ताण्ड्य महाब्राह्मण (7/10/1) यथा-इमौ वै लोकौ, सहास्ता तौ वियन्तावभूता विवाह विवहावहैसह नावस्त्विति।

7 धर्मशास्त्र का इतिहास- डॉ पी वी काणें प्रथम भाग पृ० 268

8 ऋ० 3/53/4, 5/3/2, 5/28/3, 10/83/36

9 मनु0 9/28, याज्ञ0 स्मृ 1/78, जैमिनि धर्मसूत्र- 6/1/17, आप0 धर्म0 सू0 11/6/13,15, 17

को अपूर्ण माना गया है क्योकि पत्नी पति की अर्धांगिनी होती है[1]। स्मृतियो, गृहसूत्रो एव धर्मसूत्रा मे आठ प्रकार के विवाह गिनाये गये है ब्राह्म,दैव, आर्ष, प्राजापत्य, गान्धर्व, आसुर, राक्षस एव पैशाच[2] इन अष्टविध विवाहो मे नैषधकार ने केवल गान्धर्व एव प्राजापत्य विवाह विधियो का विवरण नैषध मे दिया है। दमयन्ती के कुल गोत्र एव सौन्दर्य आदि को हसमुखेन सुनकर राजा नल दमयन्ती से प्रणय करने लगते[3] है, तो दमयन्ती भी चारणो,सखियो के साथ-साथ हसमुखेन नल के गुण, सौन्दर्य एव कुल आदि को सुनकर मन ही मन उन्हे अपना पति मान लेती है[4]। जिसकी परिणति राजा भीम द्वारा आहूत स्वयवर मे दमयन्ती द्वारा अन्य विविध देशो, तथा द्वीपो के राजाओ एव चारो देवो को छोडकर नल को वरमाला पहनाने मे होती है[5] स्वयवर हो जाने के पश्चात् श्रीहर्ष ने नल एव दमयन्ती के विवाह का विधान सहित विवरण समुपस्थापित किया है[6], जिसे प्राजापत्य विधि के अन्तर्गत परिगणित किया जा सकता है। यहाँ यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है जब दोनो (नल एव दमयन्ती) क्षत्रियकुल के थे, एव उनके लिये गान्धर्व विवाह एव राक्षस विवाह की अनुमति धर्मशास्त्रो मे मिलती है,[7] तो नैषधकार ने यहाँ प्राजापत्य विधि का विवरण क्यो दिया? इसके उत्तर मे दो बाते कही जा सकती है- प्रथम यह कि इस ग्रथ का उपजीव्य महाभारत है एव महाभारत मे गान्धर्व विवाह के उपरान्त भी विधि पूर्वक विवाह करने का वर्णन मिलता है[8]। तो नैषधकार उससे प्रभावित हुए विना कैसे रह सकते थे? ध्यातव्य है कि महाकवि कालिदास ने भी अज एव इन्दुमती के स्वयवर पश्चात पधुपर्क, होम, अग्निप्रदक्षिणा, पाणिग्रहण आदि धार्मिक कृत्यो के किये जाने का विवरण दिया है[9], जिससे यह भी सभव है कि वह महाकवियो की परम्परा का पालन करने के लिए ऐसा किये हो, परन्तु श्रीहर्ष जैसा पाण्डित्य सम्पन्न व्यक्ति भला क्यो किसी का अनुगमन करने लगे? द्वितीय तथ्य यह कि चूँकि गन्धर्व विवाह[10] प्राय वर कन्या के परस्पर प्रणय के उद्रेक के साथ-साथ कामलिप्तता वश ही

---

1 अर्धो वा एष आत्मना यत्पत्नी। तै स 6/1/8/5
– तस्मात् पुरुषो जाया वित्त्वा कृत्स्नतरमिवात्मान मन्यते-ऐतऐव ब्राह्मण 1/2 5
– न गृह गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते। महा शान्तिपर्व 144/66
अर्धं भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतम सखा । भार्या मूल त्रिवर्गस्य भार्या मूल तरिष्यति ।। वही, आदिपर्व 74,40
आम्नाये स्मृतितन्त्रे च लोकाचारे च सूरिभि ।
शरीरार्धं स्मृता भार्या पुण्यापुण्याफले समा ।। वृहस्पति, अपरार्क द्वारा उद्धृत पृ० 740
अर्धो ह वा एष आत्मनो यज्जाया तस्माद्यावज्जाया न विन्दते नैव तावत्प्रजायते असर्वो हि तावद भवति। अथ यदैव जाया विन्दतेऽथ तर्हि हि सर्वो भवति। शत0 ब्राह्मण 5/2/1/10 एव 8/7/2/3

2 मनु० 3/21 याज्ञवल्क्य स्मृ 1/58 आश्वलायनगृह्यसूत्र 1/6 गौतम धर्मसूत्र 4/6 13
बोधायन धर्मसूत्र 1/11 विष्णुधर्मसूत्र 24/18-19 नारदस्त्री पु0 स0 38 39 कौटि0 अर्थ0 3/1, 59 वॉ प्रकरण महाभारत आदिपर्व 73/8-9, 102/12-15, जबकि वशिष्ठधर्मसूत्र 1/28-29 में 6, ब्राह्म दैव आर्ष, गान्धर्व, क्षात्र (राक्षस), एव मानुष (आसुर) एव आप0 धर्म0 सू0 (2/5/11/17 20,2/5/12/1 2) में प्राजापत्य, पैशाच को छोड 6 विवाह प्रकारों का एव मानव गृ०सू० सूत्र में केवल ब्राह्म एव शौल्क (आसुर) का विवरण ही मिलता है।

3 नै० 1/46 52, 2/16 62

4 नृपेऽनुरूपे निजरूपसम्पदा दिदेश तस्मिन्बहुश श्रुतिगते ।
विशिष्य सा भीमनरेन्द्रनन्दना मनोभवाज्ञैकवशवद मन ।। नै० 1/33 एव 1/34 44 3/20 129

5 नै० 14/25 47 एव
मन्दाक्षनिस्पन्दतनोर्मनोभूदुष्प्रेरमप्यानयतिस्मतस्या ।
मधूकमालामधुर कर सा कण्ठोपकण्ठ वसुधासुधाशो ।। नै० 14/47
अथाभिलिख्येव समर्प्यमाणा राजि निजस्वीकरणाक्षराणाम् ।
दूर्वाङ्कुराढ्या नलकण्ठनाले वधूर्मधूकस्रजमुत्ससर्ज ।। नै० 14/48 एव नै० 14/49 59।

6 नै० 16/1 47

7 मनु० 3/26, बौधायनधर्मसूत्र 1/11/13

8 महा आदिपर्व 195/7

9 रघुवशमहाकाव्यम् 7वॉ सर्ग

10 स्त्रीकामा वै गन्धर्वा तैत्त० स० 6/1/6/5 एव ऐत ब्रा 5/1 जबकिवात्स्यापन ने गन्धर्व विवाह को श्री सर्वश्रेष्ठ माना है। कामसूत्र 3/5/29, 30

किया जाता है। इसमे पिता द्वारा कन्यादान की कोई बात ही नहीं होती, प्रत्युत कन्या पिता को उसके अधिकार (कन्यादान) से भी वचित कर देती है जब कि प्राजापत्य विधि[1] मे पिता वर एव कन्या दोनो को यह कहते हुए कि "तुम दोनो साथ-साथ धार्मिक कृत्य करने एव फलने-फूलने का आशीर्वाद देते हुए, वर को मधुपर्क से सम्मानित कर कन्यादान करता है।[2] इस पद्धति मे पत्नी के जीवित रहने तक पति को ग्रहस्थ हरने, सन्यासी न बनने तथा दूसरा विवाह न करने का वचन देना पडता है। आश्वलायन गृह्यसूत्र के अतिरिक्त मनु, याज्ञवल्क्य, गौतम, विश्वरूप, एव मेघातिथि ने इस तथ्य का प्रतिपादन किया है कि ब्रह्म, देव, आर्ष, प्राजापत्य विवाह विधिया के फलस्वरूप उत्पन्न सन्तान माता एव पिता के कुलो का क्रमश , 12, 10, 8 एव 7 पीडियो तक के पूर्वजो एव वशजो मे पवित्रता ला देते है,[3] परन्तु ब्राह्म, दैव एव आर्ष विवाह पद्धति धर्मशास्त्रो मे केवल ब्राह्मण या पुरोहितो के लिए ही वर्णित हे अतएव प्राजापत्य विधि ही श्रेष्ट विधि बचती है जो क्षत्रियो के विवाह के लिए प्रशसित विधि है, शायद श्रीहर्ष इस तथ्य से पूर्णतया परिचित रहे होगे तभी तो उन्होने अपने चरित नायक एव नायिका का क्षत्रियो के लिए धर्मशास्त्रो मे प्रतिपादित श्रेष्ठ विवाह विधि गान्धर्व एव प्राजापत्य का ही उल्लेख नैषधमहाकाव्य मे किया है।

धर्मशास्त्रानुसार विवाह सस्कार सम्पादन मे आदि से लेकर अन्त तक जिन जिन पहलुओ का कार्यान्वयन किया जाता है वे निम्नलिखित हे- वरवधू, गुण परीक्षा, वर प्रेषण[4] (कन्या को देखने या बातचीत करने हेतु लोगो का जाना), वाग्दान या वाङ्निश्चय[5] (विवाह तय करना) मण्डपकरण[6], नान्दी श्राद्ध एव पुण्याहवाचन[7], वर का वधूगृहगमन,[8] सीमान्तपूजन[9] (वधू के ग्राम पर वर एव उसके बल या बारात के पहुॅचने पर उनका सम्मान) वधूगृह मे वर का मधुपर्क से स्वागत,[10] कन्या का स्नापन, परिधापन एव सन्नहन[11] (वधु को स्नान कराना, नया वस्त्र देना, उसकी कटि म धागा व कुश की रस्सी बॉधना), समञ्जन[12] (वर एव वधू को उबटन या सुगन्ध लागना), प्रतिसरबन्ध[13] (वधू के हाथ मे कगन बॉधना), वधू वर निष्क्रमण[14] (गृह के अन्त कक्ष से वर एव वधू का मण्डप मे आना), (वर वधू का), परस्पर समीक्षण[15], कन्यादान[16] एव पाणिग्रहण, उत्तरीय प्रान्तबन्धन[17] (वर एव वधू के वस्त्र के कोने मे हल्दी एव पान बॉधकर

---

1 याज्ञवल्क्यमुनि प्राजापत्य को काम की सज्ञा देते हैं क्योंकि ब्राह्मण ग्रथों में क का तात्पर्य है प्राजापत्य। धर्मशास्त्र का इतिहास, डॉ पी वी काणे, प्रथम भाग पृ० 297

2 आपस्तम्बधर्मसूत्र 2/6/12/16 18

3 आश्वलायनगृह्यसूत्र 1/6 मनु0 3/37-38, याज्ञ० स्मृति 1/58 60 गौतम धर्म सूत्र 4/24 27

4 ऋ० 10/85/8,9, शाखा० ध०सू० 1/6/1 4, बौ०ध०सू० 1/1/14,15, आप०ध०सू० 2/16, 4/1, 2, 7

5 शाखायन गृह्यसूत्र 1/6/5,6

6 पारस्कर गृह्यसूत्र 1/4 एव सस्कार प्रकाश, पृ० 817, 818, (विवाह चौल, उपनयन केशान्त एव सीमान्त सस्कार घर के बाहर मण्डप मे करने चाहिए जब कि अन्य ग्रथ इनसे सहमत नहीं है।)

7 बोधा० गृ० सू० 1/1/24

8 शाखा गृ०सू०-1/12/1

9 सस्कार कौस्तुभ पृ० 768, धर्मसिन्धु 3 पृ० 261

10 आप० गृ०सू० 3/8, बौ गृ०सू० 1/2/1, मानव गृ०सू० 1/9, काठक गृ०सू० 24/1/3

11 आपस्त 4/8 काष्ठक 25/4, पारस 1/4 गोभिल 2/1/7, 10, 17, 18 मानव 1/11/4 6,

12 शाखा० 1/12/15, गोभिल 2/2/15, पार0 1/4, ऋ० 10/85/47

13 शाखा0 1/12/6 8, कौशिक गृ०सू०, 76/8,

14 पारस्कर 1/4

15 पारस्कर 1/4, आपस्त0 4/4, बौधा० 1/1/24, 25 (के अनुसार वर ऋग्वेद (10/85/37 40,44) के मत्र पढता है। आश्वलायन गृह्यपरिशिष्ट 1/29

16 पारस्कर 1/4, मानव गृ०सू० 1/8/6 9, वाराह 13, सस्कार कौस्तुभ पृ० 7 '9

17 सस्कारकौस्तुभ पृ० 799, सस्कारप्रकाश पृ० 829

दोनो को एक मे बॉधना) अग्निस्थापन एव होम[1] लाजाहोम[2] अग्निपरिणयन[3] (वर वधू द्वारा अग्नि एव कलश की प्रदक्षिणा), अश्मारोहण सप्तपदी (वर वधू का) मूर्धाभिषेक[4] सूर्योपाक्षण[5] ध्रुवारून्धती दर्शन[6] हृदयस्पर्श[7] प्रेक्षकानुमन्त्रण[8] (नवविवाहित दम्पति की ओर सकेत करके दर्शको को सम्बोधित करना) आचार्य को दक्षिणादान[9] वर के घर मे बधू प्रवेश, गृहप्रवेशनीय होम[10], आग्नेय स्थालीपाक[11] (अग्नि को पक्वान्न की आहुति देना), एरणीदान[12] एक बडे दौरे (पात्र) मे दीपक के साथ विविध प्रकार की भेटे सजाकर वर की माता को देना, जिससे वह तथा अन्य सम्बन्धी वधू को स्नेह से रखे, यह इस तथ्य का भी सूचक है कुल बहुत दिनो तक चले), त्रिरात्रव्रत[13], चतुर्थीकर्म,[14] हरगौरीपूजा,[15] इन्द्राणी पूजा,[16] तैल हरिद्रारोपण,[17] (वधू के शरीर पर तेल एव हल्दी के लेप के उपरान्त बचे हुए भाग से वर के शरीर का लेपन), (वरवधू द्वारा परस्पर) आर्द्राक्षतारोहण, मगलसूत्र बन्धन,[18] देवकोत्थापन एव मण्डपोद्वासन[19] आदि ध्यातव्य है कि सपिण्ड, सप्रवर एव सगोत्र मे विभिन्न धर्मशास्त्रज्ञो ने विवाह करने का निषेध किया है। अतएव विवाह समय इन पर भी विचार करने का धर्मग्रथो ने विधान किया है[20]।

नैषधमहाकाव्य मे प्राप्त विवाह सम्बन्धी धर्मशास्त्रीय विवरणो की मीमासा से पता चलता है कि नैषधकार ने इनका यथेष्ट विवरण दिया है। हॉ यह बात जरूर है कि उनके वर्णनो मे विवाह विधि का क्रमिक रूप से वर्णन नहीं मिलता है । परन्तु इसमे श्रीहर्ष की अनभिज्ञता नहीं समझनी चाहिए क्योकि देशरीति, या कुलरीति के अलग-अलग होने से विवाह पद्धतियो मे भिन्नता सभव है[21]। श्रीहर्ष ने (वरवधू)

---

1 आश्व 1/7/3, 1/4/3 7, आपस्त 5/1 (16 आहुतियॉ एव 16 मत्र) गोभिल, 2/1/24 26, मानव 1/8, भरद्वाज 1/13

2 आश्व 1/7/7 13 पारस्क 1/6, आपस्तम्ब 5/3 5, शाखायन 1/13/15 17, गोभि0 2/2/15 मानव 1/11, बौधा0 1/4/25

3 शाखायन 1/13/4, हिरण्यकेशि 1/20/81 आदि मे अमोऽमस्मि आदि का उच्चारण करते हुए वर परिक्रमा करता है

4 आश्व 1/7/20, पारस्क 1/8 गोभिल 2/2/5, 16

5 पारस्कर 1/8 (तच्चक्षु आदि मत्र का उच्चारण) ऋ० 7/66/16, वाज स 36/24

6 आश्व 1/7/7/22, मानव 1/14/9, भारद्वाज 1/19, आपस्ताम्व 6/12, पारस्कर 1/8 शाखायन 1/17/2 हिरण्यकेशि 1/12/10, गोभिल 2/3/8 12

7 पार0 गृ0 सू0 1/8, भारद्वाज 1/17, बौधायन 1/4/1

8 मानव 1/12/1, पारस्कर 1/8, दोनो ने ऋ० के मत्र 10/83/33 के उच्चारण करने का विधान किया है।

9 पारस्कर 1/8, शाखायन 1/14/13 17, गोभिल 2/3/33, बोधायन 1/4/38

10 शाखायन 1/16/1 12, गोभिल 2/3/8 12 आपस्तम्ब 6/6 10

11 आपस्तम्ब 7/1 5, गोभिल 2/3/19 21, भारद्वाज 1/10

12 सस्कारकौस्तुभ पृ० 811, धर्मसिन्धु पृ० 267

13 आपस्तम्ब 8/8 10 बौधायन 1/5/16 17 के अनुसार नव विवाहित दम्पत्ति तीन रात्रि तक पृथ्वी मे एक ही शय्या पर सोयेंगे किन्तु उनके बीच मे उदुम्बरकी लकडी होगी, जिसपर गन्धलेप, वस्त्र एव सूत्र लपेटा रहेगा। चौथी रात्रि को वह ऋग्वेद के 10/85/21 22) मत्र को पढकर जल से फेंक दी जाती है।

14 शाखायन गृ० सूत्र 1/18 19 बृह०उप० 6/4/21, अथर्व 5/25वॉ काण्ड (गर्भाधान), आश्व 1/31/1, पारस्कर 1/11, गोभिल 2/5, आप० गृ०सू० 8/10-11 हिरण्यकेशि गृ० सू० 1/7/25/3, वैखानस (3/9) ने इस कृत्य को ऋतु सगमन कहा है।

15 सस्कारकौस्तुभ पृ० 766 सस्काररत्नमाला पृ० 534 एव 544, धर्मसिन्धु पृ० 261, लघु आश्वलायन 15/35

16 सस्कार कौस्तुभ पृ० 756, सस्काररत्नमाला पृ० 545, रघुवश 7/3

17 सस्कारकौस्तुभ पृ० 757, धर्मसिन्धु - III, पृ० 257

18 शौनक स्मृति एव लघु आश्वलायन स्मृति 15/33

19 सस्कार कौस्तुभ, पृ० 532-533, सस्कार लभाला, पृ० 555-556

20 उपर्युक्त तथ्य, धर्मशास्त्र का इतिहास, डॉ0 पी वी काणे, प्रथम भाग, पृ० 303, 306 के अन्तर्गत दृष्टव्य

21 अत्र क्वचित् क्वचित् विधिक्रमभगो देशाचाराच्छाखाभेदात् कुलाचारविशेषाद्वा बोद्धव्य । न पुन श्रीहर्षकवेरज्ञानलेशोपि। नै० 16/35 मे नारायण

नल एव दमयन्ती के गुणो का वर्णन भी दिया है, लेकिन उन्होने उनके गुण परीक्षा का वर्णन इस महाकाव्य म नहीं किया है। जैसा कि विवाह पूर्व वर एव कन्या के गुणो (36 गुणो म से 18 होने आवश्यक है) का मिलान प्राचीन काल क साथ-साथ वर्तमान मे भी किये जाने की प्रथा प्रचलित है। नल को जहाँ उन्होने विद्वान्, धार्मिक, योद्धा महादानी, सौन्दर्य प्रतिमूर्ति, दयालु, चक्रवर्ती राजा एव सम्पूर्ण गुणो की खान रूप मे चित्रित किया[1], वही दमयन्ती को भी त्रैलोक्यसुन्दरी, सुशिक्षित, उत्तम कुल उत्पन्ना एव सम्पूर्ण गुणो की खानराशि रूपा बताया[2]। वृहत्पराशर ने श्रेष्ठवर के 8 लक्षण बताये है जाति, विद्या युवावस्था, बल, स्वास्थ्य अन्य लोगो का आलम्बन, अभिकाक्षा (अर्थित्व) एव धन, जब कि यम ने सात गुण यथा कुल, शील, वपु (शरीर), यश, विद्या, धन एव सनाथता (सम्बन्धी एव मित्र लोगो का आलम्बन)[3]। जबकि मनुस्मृति एव आश्वलायन गृह्यसूत्र मे कुल को ही सर्वोपरि स्थान दिया गया है[4] और आपस्तम्ब गृह्यसूत्र मे अच्छाकुल, सत्चरित्र शुभगुण, ज्ञान एव सुन्दर स्वास्थ्य श्रेष्ठ वर के लक्षण माने गये है। श्रीहर्ष ने दमयन्ती के जिन गुणो का वर्णन किया है वह सर्वथा एक श्रेष्ठकन्या के लक्षण है, क्योकि भारद्वाज मानते हे कि विवाहावसर मे कन्या का धन, सौन्दर्य, बुद्धि एव कुल देखना चाहिए तथा बुद्धि एव कुल को प्रधानता देनी चाहिए।[5] जब कि वशिष्ठधर्मसूत्र, विष्णुधर्मसूत्र, कामसूत्र, शतपथ, ब्राह्मण, आश्वलायन, गृह्यसूत्र, शाखायनगृह्यसूत्र, मनुस्मृति एव याज्ञवलक्य स्मृति तथा महाभारत मे वर्णन मिलता है कि सौन्दर्य सम्पन्ना, उत्तम कुल स्वस्थ, बुद्धिमान सच्चरित्र बडे एव चौडे नितम्ब वाली, पतली कटिवाली, कमल नयना, शारीरिक एव आभ्यन्तरिक शुभ लक्षणो वाली सम्भ्रान्त कन्या से विवाह करना चाहिए[6]।

ऋषियो एव स्मृति ग्रथो द्वारा प्रतिपादित उपर्युक्त श्रेष्ठ कन्या के सभी लक्षण दमयन्ती मे घटित होते हे। इसके अतिरिक्त कात्यायन आदि अन्य ऋषियो ने जो वर एव कन्या मे दोष गिनाये है यथा पागलपन, अपराध प्रवृत्ति, कुष्ठता, नपुसकता, स्वगोत्रता एव कन्या का नाम नदी, नक्षत्र के नाम पर होना, अधापन बहिरापन, अपस्मार या शरीर के किसी अग का कटा होना[7] वह दोनो नल एव दमयन्ती मे नहीं मिलते है।

---

1 नै 1/4 44 एव 3/20 129

2 नै० 1/34 44 एव 21/16 62

3 बुद्धिमते कन्या प्रयच्छेत् आश्व गृ० सू० 1/5/2
– दद्यात् गुणवते कन्या नग्निका ब्रह्मचारिणे। बौ धर्म सू 4/1/20
बन्धुशीललक्षणसम्पन्न श्रुतवानरोग इति वरसपत् । आप0 गृ० सू० 1/3/20
कुल च शीलच वपर्युशश्च विद्या च वित्त च सनायता च ।
एतान्गुणान् सप्तपरीक्ष्य देया कन्या बुधै शेषमचिन्तनीयम् ।। यम, स्मृतिचन्द्रिका, पृ० 78
गुणवते कन्यका प्रतिपादनीयेत्यय तावत्प्रथम सकल्प । कालिदास, अभिज्ञान शा0 चतुर्थ अक

4 श्रद्दधान शुभा विद्यामाददीतावरादपि । अन्त्यादपि पर धर्म स्त्रीरत्न दुष्कुलादपि ।। मनु० 2/238 एव 3/70-72
उत्तमैरुत्तमैर्नित्य सम्बन्धानाचरेत्सह । निनीषु कुलमुत्कर्षमधमानधमास्त्यजेत् ।। मनु० 4/244 एव 4/6, 7

5 भारद्वाज गृ सूत्र 1/11

6 वशिष्ठ ध0 सू 1/38 विष्णु ध० सू० 24/1 कामसूत्र 3/1/1 शत ब्रा 1/2/5/16, आश्व गृ० सू० 1/5/3, शाखा गृ० सू० 1/5/6, मनु० 3/4 याज्ञ0 स्मृति 1/52 महाभारत आदिपर्व 131/10, उद्योगपर्व 33/117

7 – उन्मत्त पतित कुष्ठी तथा षण्ण स्वगोत्रज। चक्षु श्रोत्रविहीनश्च तथापस्मारदूषिता ।।
वरदोषा स्मृता ह्येते कन्यादोषाश्च कीर्तिता ।। स्मृतिचन्द्रिका, 1, पृ०, 59
– उन्मत्त पतित क्लीबो दुर्भगस्त्यक्तबान्धव। कन्यादोषो चे यौ पूर्वविष दोषगणो वरे।। नारद स्मृ (स्त्रीपुस याग -37)
मनु० 3/8 .20, विष्णुधर्मसूत्र 24/12-16, विष्णुपुराण 3/10/18-22, आपस्त, गृ०सू० 3/11-14, कामसूत्र 3/1/13, नारद, पु0 36, मार्कण्डेय पु 24/76, 77, मानव गृ०सू० 1/7/8 याज्ञ स्मृ 1/53, ऋ० 1/124/7 अथर्व0 1/17/1 निरुक्त 3/4/5, विस्तृत विवरण-धर्मशास्त्र का इतिहास, पी वी काण, प्रथम भाग। पृ० 269-273

रही धर्मशास्त्रो मे वर्णित विवाह हेतु वर प्रेषण की बात जैसा कि ऋग्वेद, शाखायन गृह्यसूत्र, बोधायन धर्मसूत्र, आपस्तम्ब धर्मसूत्र मे वर्णन मिलता है[1] तो नैषधकार ने इस कार्य हेतु किसी मनुष्य को न चुनकर एक दिव्यपक्षी हस को चुना है जिसने दमयन्ती को नल के लिये चुना,[2] उसे देखा, परखा,[3] बाते की,[4] एव दोनो को सर्वथा विवाय योग्य माना। यथा–

तस्यैव वा यास्यसि कि न हस्तदृष्ट मन केन विधे प्रविश्य ।
अजातपाणिग्रहणासि तावद्रूपस्वरूपातिशयाश्रयश्च ।।
निशा शशाङ्क शिवया गिरीश श्रिया हरिं योजयत प्रतीत ।
विधेरपि स्वारसिक प्रयास परस्पर योग्यसमागमाय ।।
वेलातिगस्त्रैणगुणाब्धिवेणिर्न योगयोग्यासि नलेतरेण ।
सदर्भ्यते दर्भगुणेन मल्लीमाला न मृद्वी भृशकर्कशेन ।।[5]

श्रीहर्ष ने नल एव दमयन्ती के स्वयवर के विवरण के साथ-साथ उनके सविध विवाह का भी उल्लेख किया है। श्रृगार रचना मे कुशल सेवको ने नल का विवाहोचित श्रृगार अर्थात् तिलक लगाने के साथ-साथ विविध आभूषणो से समलकृत किया।[6] तदनन्तर नल, दधि, अक्षत, पूर्ण कलश आदि मागलिक वस्तुओ का अभिनन्दन एव अपने पुरोहित गौतम की विधिवत पूजा करके अन्य बारातियो के साथ विदर्भेश्वर के महल की ओर चले।[7] भीमपुत्र दम ने नल का स्वागत किया, एव भीम ने नल को अपने गले लगा कर स्वागम किया, अनन्तर अपनी कन्या का पाणिग्रहण यथा विधि प्रारम्भ किया।[8]

सर्वप्रथम वर को आसन मे बैठाने के बाद उसके चरण प्रक्षालित किये जाते है, तदनन्तर मधुपर्क (मधु घृत एव दही का मिश्रण[9]) को कन्यादानकर्ता मत्रोच्चारण के साथ मधुपर्क को वर के बाये हाथ मे देता है। वर दाहिने हाथ के अनामिका एव गुष्ठक से उसका आलोडन कर उसे तीन बार भूमि पर गिराता है, एव तीन बार ऋग्वेद की तीन ऋचाओ[10] (या यन्मधुनो मधव्य परम रूपमनिनाद्य तेनान्ह मधुनो मधव्येन परमेण रूपेणन्नाद्येनपरमोमधव्योन्नादोऽसानि) का उच्चारण कर तीन बार खाता है एव शेष बचा हुआ मधुपर्क ब्राह्मण को उत्तर दिशा मे दे देता है, या जल मे छोड देता है, तदुपरान्त आचमन करता है।[11]

---

1 इसी शोध प्रबन्ध मे इसी अध्याय में पूर्व में द्रष्टव्य

2 अनुरूपमिम निरूपयन्नथ सर्वेष्वपि पूर्वपक्षताम्। युवसु व्यपनेतुमक्षमस्त्वयि सिद्धान्तधिय न्यवेशगम्।। नै० 2/42, एव 43 47

3 पितुर्नियोगेन निजेच्छया वा युवान्मय यदि व वृणीषे ।
त्वदर्थमर्थित्वकृति प्रतीति कीदृङ्मयि स्यान्निषधेश्वरस्य ।। नै० 3/72 एव 3/53, 70, 71, 73, 99, 100

4 अये! कियद्यावदुपैषि दूर व्यर्थ परिश्राम्यसि वा किमित्थम् ।
उदेति ते भीरपि कि नु बाले! विलोकयन्त्या न घना वनाली ।। नै० 3/13 एव 3/14 129

5 नै० 3/47 49 एव 3/46, 50, 51

6 तथैव तत्कालमथानुजीविभि प्रसाधनासञ्जनशिल्पपारगै ।
निजस्य पाणिग्रहणक्षणोचिता कृता नलस्यापि विभोर्विभूषण ।। नै० 15/57 एव 58 92

7 वृत प्रतस्थे स रथैरथो रथी गृहान्विदर्भाधिपतेर्धराधिप ।
पुरोधस गौतममात्मवित्तम द्विधा पुरस्कृत्य गृहीतमङ्गल. ।। नै० 16/1 एव 2....9

8 यथावदस्मै पुरुषोत्तमाय ता स साधुलक्ष्मीं बहुवाहिनीश्वर ।
शिवामथस्वस्य शिवायनन्दना ददे पति सर्वविदे महीभृताम् ।। नै० 16/12 एव 10-11

9 आपस्तम्ब (13/10) एव आश्वलायन के अनुसार मधुपर्क दो चीजों का मिश्रण है जब कि पारस्कर मधु, दही एव घृत तीन चीजों के मिश्रण को मधुपर्क माना हैं एव इसे मधुरत्रय भी कहा जाता है।

10 मधुवाता ऋतायते मधु क्षरति सिधव, मधु नक्तमुतोषसो, मधुमान्नो वनस्पति ऋ० 1/90/6 8 द्रष्टव्य वाज0 सं0 13/27 29, पारस्कर गृ०सू० 1/3, मानव गृ०सू० 1/9/14

11 आश्वला गृ०सू० 1/24/5 26 में मधुवर्क विधि का सविस्तार वर्णन।

नैषधकार का कथन है कि नल ने जब मधुपर्क का आस्वादन लिया तो उसका फल सोचने वालो ने सोचा कि यह नल भविष्य मे दमयन्ती के अधरमधु का पान करेगे इसी से उस समय मे (छल स पुण्याह कर्म मधुपर्क ग्रहण किया है।[1] ध्यातव्य है कि यहाँ नैषधकार के साथ-साथ मल्लिनाथ ने मधुपर्क को विवाह विधि का पुण्य कर्म माना है, जो कि वर्तमान मे भी प्रचलित है।[2] हॉ, देश, कुल, रीति के अनुसार इसका स्थान भले परिवर्तित हो जाता है, जैसे उत्तर प्रदेश मे कन्यादान के समय मधुपर्क देने का प्रचलन है, जब कि आश्वलायन गृह्यसूत्र[3] के अनुसार यज्ञ कराने वाले ऋत्विक, घर म आये हुए स्नातक, राजा, आचार्य श्वसुर, चाचा एव मामा के आगमन पर उन्हे मधुपर्क दिया जाता है। मानव गृह्यसूत्र (1/9/1) खादिर गृह्यसूत्र (4/4/21) एव याज्ञवल्क्य स्मृति (1/110) के अनुसार छै प्रकार के व्यक्तियो को यथा ऋत्विक, आचार्य, वर, राजा, स्नातक एव जो अत्यधिक प्रिय हो, को मधुपर्क दिया जाता है। बौधायन (1/2/65) ने इन छै के साथ अतिथि को जोड कर सात लोगो को मधुपर्क से सम्मानित करने की बात कही है जो कि वर्तमान मे (वर को छोडकर) अप्रचलित है।[4]

विभिन्न धर्मग्रथो मे यह विवरण मिलता है कि कन्यादान के पूर्व कन्या को विधिपूर्वक स्नान करा कर कन्या को विविध अलकरणो से आभूषित कर मण्डप मे लाया जाता है।[5] मानव गृह्यसूत्र एव गोभिल गृह्यसूत्र मे जहॉ विवाह पूर्व कन्या के सन्नहन एव परिधापन का उल्लेख मिलता है, वहीं आपस्तम्ब, काठक एव पारस्कर गृह्यसूत्रो मे आभूषण (केवल दो) पहनाने का भी वर्णन मिलता है। वर वधू को उबटन या सुगन्ध लगाने का वर्णन शाखायन, गोभिल एव पारस्कर गृह्यसूत्रो मे किया गया है एव वधू के हाथ मे कगन बाधने (प्रतिसरबन्ध) का विवरण, शाखायन तथा कौशिक गृह्यसूत्र मे मिलता है। श्रीहर्ष ने भी यह विवरण देते हुए लिखा है कि सौभाग्यवती स्त्रियो ने सर्वतोभद्र आदि की रचना से सुसज्जित वेदी पर कुलपरम्परानुसार स्वर्णकलशो से दमयन्ती को स्नान करवाया, कोमल वस्त्र से उसका शरीर पोछा एव विभिन्न आभूषण पहनाने के साथ-साथ सुगन्धित धूप के धूम से उसके कुचित एव श्याम केशो को सुवासित कर उनमे पुष्पमजरी के समान मनोहर पुष्पगूथे। उसके ऑखो मे अजन, भाल मे भालपट्टिका आभूषण (वेदी के समान, या तागपाट) एव तिलक, कानो मे इन्दीवर पुष्प के समान कुण्डल, होंठो एव पैरो मे आलक्तक तथा यावकराग (लाल रग) एव कण्ठ मे मोती की सात लडियो की माला और बाहु मे कगन (कङ्कन) पहनाया (रूपदर्शन एव दोनो कारणों से) उसे दर्पण दिखाया गया।[6] अनन्दतर स्कन्द ऋषि ने भी माङ्गलिक आभरणो के बारे मे अभिहित किया है कि-

हरिद्रा कुङ्कुम चैव सिन्दूर कज्जल तथा । कूर्पासक च ताम्बूल माङ्गल्याभरण शुभम् ।।
केशसस्कारकबरीकर कर्णविभूषणम् । भर्तुरायुष्यमिच्छन्ती दूरयेन्न पतिव्रता ।।

---

1 असिस्वदद्यन्मधुपर्कमर्पित स तद्व्याधात्तर्कमुदिर्कदर्शिने ।
यदेष पास्यन्मधुभीमजाधर, मिषेण पुण्याह विधि तदाकृता ।। नै० 16/13

2 विवाहदिनरूपपुण्याहे मधुपर्कपानच्छलेन भाविन्या अधरमधुपानक्रियाया शुभारम्भ चकारेत्यर्थ। माङ्गल्यकृत्येषु आदौ पुण्याहक्रिया प्रसिद्ध एव। नै० 16/13 में मल्लिनाथ

3 आश्व० गृ०सू० 1/24/1 4

4 मधुपर्क के विस्तृत विवरण हेतु द्रष्टव्य-धर्मशास्त्र का इतिहास डॉ पी वी काणे, प्रथम भाग अध्याय-10

5 आपस्तम्ब ध0 सू 4/8, काठ स 25/4, पारस्कर गृ० सू० 1/4, कौशिक सूत्र 76/8 गोभिल गृ०सू० 2/1/5/17-18 मानवगृ० सू० 1/11 46, शाखायन 1/12/5 8

6 उदरस्य कुम्भीरथ शातकुम्भजाश्चतुष्कचारुत्विषि वेदिकोदरे ।
यथाकुलाचारमथावनीन्द्रजा पुराधिवर्गा स्नपया बभूव ताम् ।। नै० 15/19 एव 20 86

श्री हर्ष नेउपर्युक्त तथ्य से सहमत होते हुए लिखा है कि-

विनापि भूषामवधि श्रियामिय व्यभूषि विज्ञाभिरदर्शि चाधिका ।
न भूषयैषाधिचकास्ति किंतु सानयेति कस्यास्तु विचारचातुरी ।।[1]

अर्थात् प्रकृत्या दमयन्ती स्वय सुषमा की पाराकण्ठा थी, किन्तु सौन्दर्य मण्डन के बाद वह सीमातीत सुन्दरी लगने लगी, कौन निर्णय कर सकता था कि भूषणो से दमयन्ती की शोभा हो रही थी या दमयन्ती से आभूषणो की सौन्दर्य मण्डित दमयन्ती ने गुरुजनो, ब्राह्मणो एव पतिव्रता स्त्रियो को प्रणाम कर उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया।[2] (अनन्तर सखियो द्वारा विवाह मण्डप (यज्ञभूमि) मे सखियो द्वारा लाई गयी। दमयन्ती का पाणिग्रहण सम्पन्न होने की शृङ्खला मे सर्वप्रथम नैषधकार ने उसके एव नल के हाथो को कुश से बाधने का विवरण दिया, उस समय दमयन्ती का हाथ नल के हाथ के ऊपर रखा गया।[3] आचार्य मल्लिनाथ एव नारायण ने वर कन्या के हाथ को कुश से बाधने को विदर्भ राज्य का देशाचार बताया[4] ह वर्तमान मे यह परम्परा समाप्त प्राय है। हॉ, वर के हाथ मे कुश अवश्य रखा जाता है, क्योकि उसमे सम्पूर्ण देवो का आवास होता है, जिससे वह पवित्र माना जाता है। वर द्वारा कन्या का सागुष्ठ दक्षिण हाथ पकडने का विधान वर्तमान मे भी उसी प्रकार चला आ रहा है। इस समय कन्या का पिता वर से पूँछता हे कि क्या धर्म, अर्थ एव कामादि मे मेरी कन्या का साथ दोगे? वर उत्तर देता है हॉ, मै साथ दूँगा, या अपना धर्म निभाऊँगा (वर नातिचरामि तीन बार बोलता है या "ॐ गृहणामि ते सौभगत्वाय हस्त मया पत्या जरदष्टिर्यस भगोऽर्यमा। अमोहमस्मि। तावैव विवहाव आदि मत्रो का उच्चारण करता है। सस्कार कौस्तुभ मे कन्यादान करते समय इन वाक्यो को छै प्रकार से कहने की विधि का प्रतिपादन मिलता है।[5] पाणिग्रहणोपरान्त वर कन्या के वाम भाग मे आती है, जिसकी पुष्टि वर्तमान मे विवाहावसर मे कन्या द्वारा वर से मागे गये सात वचनो मे प्रतयेक बार यह अभिहित किया जाता है यदि तुम मेरे इस कथन को मानो, तो मै तुम्हारे नाम भाग मे आ सकती हूँ "वामाङ्गमायामि तदात्वदीय जगाद वचन प्रथम कुमारी आदि। इसी तथ्य का साम्य नैषधीय चरितम् मे श्रीहर्ष के कथन "करग्रहे वाम्यमधत्त यस्तयो"[6] से रखा जा सकता है। तदनन्तर वर कन्या का ग्रन्थिबन्धन किया जाता है, जिसके पश्चात् अन्य वैवाहिक रीतियॉ सम्पन्न की जाती है। कहीं कहीं देश एव कुलरीति के अनुसार अग्नि की अतिम आहुति स्विष्टकृत होम अर्थात् सातवे (फेरे) प्रदक्षिणा में ग्रन्थिबन्धन करने का विधान भी अपनाया जाता है। नैषधकार इस कृत्य का विवरण देते हुए लिखते है कि जब पुरोहित गौतम ने नल एव दमयन्ती का ग्रन्थिबन्धन किया, उस समय लोगो को ऐसी अनुभूति हो रही थी, मानो वह दमयन्ती से कह रही कि नल का विश्वास न करो, हो सकता है यह तुम्हे छोडकर चल जाय अतएव मै तुम दोनो का ग्रन्थिबन्धन कर रहा हूँ।[7] सस्कार कौस्तुभ एव सस्कार प्रकाश

---

1 नै० 15/27

2 अमोघभावेन सनाभिता गता प्रसन्नगीर्वाणवराक्षरस्रजाम् ।
तत प्रणाम्राधिजगाम सा ह्रिया गुरुर्गरुब्रह्मपतिव्रताशिष ।। नै० 15/56

3 वरस्य पाणि परघातकौतुकी वधूकर पङ्कजकान्तितस्कर ।
सुराज्ञि तौ तत्र विदर्भमण्डले ततो निबद्धौ किमु कर्कशै कुशै ।। नै० 16/14
विदर्भजाया करवारिजेन यन्नलस्य पाणेरुपरि स्थित किल ।
विशङ्क्य सूत्र पुरुषायितस्य तद्भविष्यतोऽस्मायि तदा तदालिभि ।। नै० 16/15

4 कुशै पाणिबन्धन देशाचार। नै० 16/14, नारायण
देशाचारप्राप्तस्य वधूवरयो कुशसूत्रेण करबन्धनस्य अपराधहेतुकत्वमुत्प्रेक्ष्यते।। नै० 16/14, मल्लिनाथ

5 सस्कार कौस्तुभ पृ० 779

6 नै० 16/35

7 प्रियाशुकग्रन्थिनिबद्धवाससं तदा पुरोधा विदधे विदर्भजाम्। जगाद विच्छिद्य पट प्रयास्यतो नलादविश्वासमिवैष विश्वजित्।।

मे वर्णन मिलता है कि ग्रन्थिबन्धन (उत्तरीयप्रान्त बन्धन मे वर एव वधू के वस्त्र के कोने मे हल्दी पान अक्षत, पैसा रख कर उनमे गाठ लगाकर पुन दोनो के उत्तरीय वस्त्र को एक मे बॉध दिया जाता है[1] इसके अनन्तर होम एव लाजा होम की क्रिया सम्पन्न की जाती है। यहाँ पर धर्मशास्त्रों मे प्रतिपादित यह तथ्य भी अवधेय है कि कामादिचर्या मे वधू या स्त्री को पुरुष के वाम भाग तरफ रहना चाहिए केवल धार्मिक क्रियाओ के सम्पादन मे दाहिने भाग की तरफ बैठना चाहिए, क्योकि पत्नी लक्ष्मी स्वरुप भी होती है।

लाजा होम के समय वर के दोनो हाथ कन्या के दोनो कन्धे के ऊपर रहते है, एव वर के अञ्जुलि के नीचे कन्या की अञ्जुलि रहती है। आश्वलायन एव अन्य गृह्यसूत्रो या धर्मसूत्रो मे वर्णन मिलता है कि कन्या तीन आहुतियॉ वर द्वारा मत्र (ॐ अर्यमण, ॐ इय नारी, ॐ इमाल्लाजना इत्यादि) पढते समय अग्नि मे डालती है, तथा चौथी आहुति (शेष बचे लाजो को ॐ भगाय स्वाहा इद भगाय, न मम) मौन रूप से ही छोडती है।[2] कुछ धर्मग्रथो मे केवल तीन आहुतियो के किये जाने का विधान भी मिलता है। लाजा होम के समय वर की अञ्जुलि के छेद से कन्या की अञ्जुलि मे लाजे गिरते है एव कन्या द्वारा अञ्जुलि मे छेद किये जाने से वह अग्नि मे गिरते है, इस स्थिति का श्रीहर्ष ने आलकारिक चित्रण करते हुए लिखा है कि "दमयन्ती के करपल्लवो मे लाजे श्वेतपुष्प (लाजा पुम्भूम्नि परिवापके इति वैजयन्ती) के समान लग रहे थे तथा उसके हाथ से छुटकर (अग्नि मे) निराधार गिरते हुए तारो की भाति चमक रहे थे, साथ ही देवो के मुख अग्नि (अग्निमुखावैदेवा) मे पडकर (अग्निदेव के) श्वेत दन्तपक्ति की शोभा से शोभायमान हो रहे थे।[3] यहॉ पर हस्तपल्लव मे पुष्प का, आकाश मार्ग मे नक्षत्रो का, एव मुख मे दन्तपक्ति होने का नैषधकार का उपुर्यक्त विवरण उचित माना जा सकता है, साथ ही उपर्युक्त वर्णन से यह भी निष्कर्ष निकलता है कि दमयन्ती ने विध्यनुक्रम से प्राप्त लाजाहुति की। क्योंकि सकल्प लेने के उपरान्त नल एव दमयन्ती द्वारा होम एव लाजाहोम की आहुतियॉ देने का बहुविध चित्रण श्रीहर्ष ने किया है। यथा –

तया प्रतिष्ठाहुतिधूमपद्धतिर्गता कपोले मृगनाभिशोभिताम् ।
ययौ दृशोरञ्जनता श्रुतौ श्रिता तमाललीलामलिकेऽलकायिता ।।
अपह्नुत स्वेदभर करे तयोस्त्रपाजुषोर्दानजलैर्मिलन्मुहु ।
दृशोरपि प्रस्नुतमस्र सात्विक घनै समाधीयत धूमलङ्घनै ।।[4]

धर्म शास्त्रो मे लाजा होम के अनन्तर अग्निपरिणयन की विधि का उल्लेख मिलता है। श्रीहर्ष ने इस तथ्य का विवरण देते हुए लिखा कि "जो अग्नि देव नल दमयन्ती के परिणय के विरुद्ध थे, उन्हे भी दमयन्ती ने अर्चना आदि से प्रसन्नकर अपना दाहिना बना लिया, या अपने अनुकूल बना लिया एव नल ने (दमयन्ती सहित) विवाह के समय उनकी पूजाकर प्रदक्षिणा भी की।[5] शाखायन गृह्यसूत्र एव हिरण्यकेशि गृह्यसूत्र मे वर्णन मिलता है कि वर वधू को लेकर अग्नि एव कलश की प्रदक्षिणा करता है, एव प्रदक्षिणा

---

1 द्रष्टव्य, सस्कार कौस्तुभ पृ० 799 एव सस्कार प्रकाश, पृ० 829

2 आश्व गृ0 सू0 1/7/7 13 पारस्कर गृ0 सू0 1/6, आप0 5/3/5, शाखा0 1/13/15-17, गोभिल गृ0 सूत्र 2/2/5, मानव 1/11/11 एव बौधा० गृ० सू० 1/4/25

3 प्रसूनता तत्करपल्लवे स्थितैरुच्छिविर्व्योमविहारिभि पथि। मुखेऽमराणामनलेरदावलेरभाजिता गैरनयोज्झितैर्दुति ।। नै० 16/40

4 नै० 16/41,42

5 करग्रहे वाम्यधत्त यस्तयो प्रसाद भैम्यानु च दक्षिणीकृत ।
कुत पुरस्कृत्य ततो नलेन स प्रदक्षिणास्तत्क्षणमाशुशुक्षिण ।। नै० 16/35

करते समय वह अमोऽहमस्मि ' आदि मत्र का उच्चारण की करता जाता है.[1] लाजा होम एव अग्निप्रदक्षिणा के अनन्तर अश्मारोहण (उत्तरप्रदेशीय विवाह विधि क्रमानुसार, शेष बचे लावे के वर एव कन्या के आपस मे मागे या दिये गये वरदानो के क्रमश सात एव पॉच भाग किये जाते है तथा क्रमश कन्या एव वर के दाहिने पैर के अगूठे को एक शिल से स्पर्श कराते हुए उन भाग किये गये लाजो के ऊपर क्रमश वर एव कन्या द्वारा शिल खींच लिया जाता है)। विधि मे पूर्वाभिमुख होकर वर अग्नि के उत्तर शिशग मे रखे हुए पाषाण खण्ड (शिल) मे वधू का दाहिना पैर रखवाते हुए मत्रोच्चारण करते हुए उसे पत्थर के समान दृढचरित्र वाली एव गार्हस्थ्य धर्म मे स्थिर होने को कहता है। अनन्तर पुरोहित द्वारा उसे आर्शीवाद दिया जाता है। यथा - शिलावत् अचला भव। या "ओम् आरोहेयमश्मानमश्मेव त्व स्थिरा भव। अभितिष्ठ पृतन्यतो दवबाधस्व पृतनायता"। नैषधकार ने इस तथ्य का रोमाचक शैली मे विवरण देते हुए लिखा कि "ज्यो ही दमयन्ती के लिए मत्रोच्चारण मे कहा गया कि तुम इसी पत्थर की भाति दृढ चरित्र वाली होओ, वह मत्र ही आकाश मे विलीन हो गया। शायद इसलिए कि जब इन्द्रादि देव एव उनके वैभव दमयन्ती के पातिव्रत्य की मर्यादा को तिल मात्र न हिला सके तो उस मन्त्र वाक्य को स्वय ही लज्जा आ गयी एव वह आकाश (शून्य) मे विलीन हो गया[2]। उपर्युक्त प्रसग नैषधकार की नवीन कल्पना का ही द्योतक है, नहीं यह तो सर्वविदित है शब्द आकाश के गुण होते है, एव उच्चारण होते ही वह पुन अपने गुणीभूत आश्रय यानी आकाश मे विलीन हो जाते है।

विवाह सस्कार मे सप्तपदी का भी अप्रतिम महत्त्व है। इसमे प्रथम तीन प्रदक्षिणा मे कन्या आगे रहती है एव चतुर्थ से वर आगे हो जाता है, एव दोनो पुरोहितो के मन्त्रोच्चारण[3] के साथ-साथ अग्नि सहित (मण्डप) कलश की प्रदक्षिणा करते है। विवाह विधि की समाप्ति सातवॅा प्रदक्षिणा होते ही सम्पन्न हो जाती है[4], अर्थात् कन्या पूर्ण रूप से भार्या वन जाती है जैसा कि स्मृतियो मे भी वर्णन मिलता "पति त्व सप्तमे पदे"। मनुस्मृति ने भी वर्णन मिलता है कि

पाणिग्रहणिका मन्त्रानियत दारलक्षणम्। तेषा निष्ठा तु विज्ञेया विद्वद्भि सप्तमेपदे ।।[5]

इस तथ्य की सगति नैषधकार ने विवाहोचित श्रृगार के समय नल के तिलक के वर्णन मे रखी है, जहॉ वह कहते है कि नल के मस्तक मे वह तिलक बिन्दु इस प्रकार लगता था मानो इन्द्र ने ललाटस्थ दैवी लिपि को पढने के लिए चन्द्रमा को भेजा है क्योकि उन्हे अब भी यह दुराशा बनी है कि जब तक सप्तपदी पूरी नहीं होती, दमयन्ती पूर्णरूप से नल की पत्नी नहीं हो सकती और यदि कहीं नल के भाग्यपट्टिका पर दमयन्ती पत्नी के रूप मे नहीं लिखी है तो अब भी दमयन्ती को प्राप्ति का प्रयत्न किया जा सकता है[6]।

---

1 शाखा गृ०सू० 1/13/4, हिरण्यकेशि गृ०सू० 1/20/81

2 स्थिरात्वमश्मेव भवेति मन्त्रवागनेशदाशास्य किमाशु ता ह्रिया ।
शिला चलेत्प्रेरणया नृणामपि स्थितेस्तु नाचालि बिडौजसापि सा ।। नै० 16/36

3 सातप्रदक्षिणो के मत्र क्रमश निम्नलिखित हैं- एकमिषे विष्णुत्वा नयतु, द्वे ऊर्जे विष्णुस्त्वा नयतु, त्रीणि रायस्पोषाय विष्णुस्त्वा नयतु चत्वारि मायोभवाय विष्णुस्त्वा नयतुपच पशुभ्यो विष्णुस्त्वा नयतु, षड् ऋतुभ्यो विष्णुस्त्वा नयतु सखे सप्तपदा भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वा नयतु।।

4 निष्ठा विवाहमन्त्राणा तासा स्यात् सप्तमे पदे। याज्ञ0 स्मृति, मिताक्षर 1/55

5 मनु० 8/227

6 न यावदग्निभ्रममेत्युदूढता नलस्य भैमीति हरेर्दुराशया ।
स बिन्दुरिन्दु प्रहित किमस्य सा न वेति भाले पठितु लिपीमिव ।। नै० 15/64

विवाह समय मे एक अन्य धार्मिक कृत्य ध्रुवारुन्धती दर्शन का विवरण भी नैषधमहाकाव्य मे द्रष्टव्य है। श्रीहर्ष का कथन है कि भौहे उठाकर देखते हुए नल ने ध्रुव की ओर सकेत करके मन्त्रोच्चारण ' ॐ ध्रुवमसि ध्रुवन्त्वा पश्यामि। ॐ ध्रुवैधिपोष्यामयि मह्यन्त्वादाद वृहस्पतिर्मयापत्या प्रजावती सञ्जीव शरद शतम् ' के बीच दमयन्ती को देखने को कहा। सभव है वह दमयन्ती का एव स्वय नल को भी न दिखा हो किन्तु फिर भी नल ने वैदिक विधि को प्रमाण मानते हुए दमयन्ती को (उत्तरदिशा मे स्थित) ध्रुव को देखने को कहा[1], एव इसके बाद नल ने दमयन्ती को सती अरुन्धती का भी उसी रूप मे दर्शन कराया[2]। आपस्तम्बगृह्यसूत्र एव गोमिलगृह्यसूत्र मे जहॉ ध्रुवारुन्धती दर्शन की चर्चा मिलती है, वहीं पारस्कर गृह्यसूत्र मे केवल ध्रुव एव आश्वलायनगृह्यसूत्र मे ध्रुव के साथ सप्तर्षि मण्डल मानवगृह्यसूत्र मे ध्रुव अरुन्धती सप्तर्षि मण्डल तथा जीवन्ती और भारद्वाजगृह्यसूत्र मे ध्रुव, अरुन्धती एव अन्य नक्षत्रो के दर्शन करने का विधान मिलता है[3]। इस प्रकार यहॉ नैषधकार आपस्तम्बगृह्यसूत्र एव गोमिलगृह्यसूत्र से प्रभावित दिखते है।

इसके अनन्तर श्रीहर्ष ने इस तथ्य का भी प्रतिपादन किया है कि पाणिग्रहण के समय की मुख्य क्रियाऍ नल ने सम्पादित कीं परन्तु अन्य गौण क्रियाओ को उनके पुरोहित ने सम्पन्न की, ठीक उसी तरह, जैसे शची से विवाह करते समय इन्द्र की वैवाहिक गौण विधियो को आङ्गिरस वृहस्पति ने किया था।[4] तदनन्तर नल एव दमयन्ती को कौतुकागार (कोहबर कौतुकगृह) मे ले जाया गया।[5] जो कि वर वधू के विश्रामपूर्वक सम्भाषण, उनकी चेष्टाओ के साथ-साथ देशाचार पद्धतियो के सम्पादन की एक कडी माना जाता है वर्तमान मे भी कौतुकागार मे वर वधू के प्रवेश करने का प्रचलन विद्यमान हैं।

कन्यादान के अनन्तर नल को दक्षिणा (दान) रूप मे भीम द्वारा अनेक वस्तुओं यथा-चिन्तामणियो की माला, अपार रत्न, आभूषण, वस्त्र, असुरघाती तलवार, कृपाण खोखरी (खुखरी), अप्रतिम रथ, उच्चैःश्रवा, घोडा, माणिक्य निर्मित पीकदान, पन्ना, मणिजटित भोजन पात्र (थाल), मदमत्तगज, आदि।[6] अनेक वस्तुऍ दान रूप मे दी गयीं, नैषधकार का कथन है कि भीम ने नल को पाणिग्रहणोपरान्त, इतने वाहन, स्वर्णाभूषण, मत्तगज तथा रत्नराशि दी कि उसे गिना नहीं जा सकता था।[7] हालाकि नैषधकार ने इस तथ्य का वर्णन पाणिग्रहण के बाद किया है, परन्तु लोकाचार मे कन्यादान के साथ-साथ कन्या के विदाई के समय भी वस्तुओ के दिये जाने की प्रथा प्रचलित है, अतएव दान विवरण का विवेचन विवाहोपरान्त किया जा रहा है ।

---

1 ध्रुवावलोकाय तदुन्मुखभ्रुवा निर्दिश्यपत्याभिदधे विदर्भजा ।
किमस्य न स्यादणिमाक्षिसाक्षिकस्तथापि तथ्यो महिमागमोदित ।। नै० 16/38

2 धवेन सादर्शि वधूररुन्धतीं सतीमिमा पश्य गतामिवाणुताम् ।
कृतस्य पूर्वं हृदि भूयते कृते तृणीकृतस्वर्गपतेर्जनादिति ।। नै० 16/39

3 आप० गृ० सू० 6/12, गोमिल गृ० सू० 2/3/8 12, पारस्क गृ सू0 1/8
आश्व गृ० सू० 1/7, 7/33 मानव गृ० सू० 1/14/9, भारद्वाज गृ० सू० 1/19

4 – बभूव न स्तम्भविजित्वरी तयो श्रुतिक्रियारम्भपरम्परात्वरा ।
न कम्पसम्पत्तिमलुम्पदग्रत स्थितोऽपि वह्नि समिधा समेधित ।। नै० 16/44
दमस्वसु पाणिममुष्य गृह्णत पुरोधसा सविदधेतरा विधे ।
महर्षिणेवाङ्गिरसेन साङ्गता पुलोमजामुद्वहत शतक्रतो ।। नै० 16/45।

5 सकौतुकागारमगात्पुरन्ध्रिभि सहस्ररन्ध्रीकृतमीक्षितु तत ।
अधात्सहस्राक्षतनुत्रमित्रतामधिष्ठित यत्खलु जिष्णुनामुना ।। नै०16/46

6 नै० 16/16 33

7 न तेन वाहेषु विवाहदक्षिणीकृतेषु सख्यानुभवेदभवत्क्षम ।
न शातकुम्भेषु च मत्तकुम्भिषु प्रयत्नवात्कोऽपि न रत्नराशिषु ।। नै० 16/34

एक तथ्य और अवधेय है कि धर्मग्रथो मे वरगृह मे ही वर वधू द्वारा त्रिरात्रव्रत का उल्लेख मिलता है। जिनके अनुसार नव विवाहित दम्पति पृथ्वी पर एक ही शय्या पर सोयेगे किन्तु अपने बीच मे उदुम्बर की लकडी रखेगे जिस पर गन्ध का लेप रहता है एव उसमे वस्त्र या सूत्र बधा रहता है।[1] चौथी रात्रि मे वह लकडी ऋग्वेदीय (10/85/21-22) मत्र के साथ जल मे फेक दी जाती है किन्तु श्रीहर्ष ने इस तथ्य को वधू के घर मे ही किये जाने का विवरण समुपस्थापित किया है इससे यह प्रतीत होता है कि कुण्डिनपुर (विदर्भ देश) मे ऐसी ही प्रथा रही होगी, तभी श्रीहर्ष ने त्रिरात्रव्रत का उल्लेख वधूगृह मे किया, जबकि चतुर्थी कर्म का उल्लेख वर गृह मे, जिसका विवरण काम शास्त्र के अन्तर्गत किया जा चुका है। त्रिरात्रव्रत का वर्णन करते हुए नैषधकार लिखते है तीन दिन तक नल दमयन्ती धर्मशास्त्रो मे प्रतिपादित विधियो के अनुसार एक साथ रहे, सानुराग एक साथ शयन करते हुए भी सुरत (सम्भोग) आदि क्रियाओ से दूर रहे, लज्जावश न एक दूसरे को पूर्णरूप से देख पाते थे और न ही आतृप्ति भोजन करते थे।[2] इस प्रकार नल, दमयन्ती के साथ महाराज विदर्भराज के घर पाच छे रात बिताकर स्वदेश (निषधदेश) प्रस्थान किये।[3] ऐसे वर्णन से यह तथ्य भी सामने आता है कि उन दिनो उस देश मे बारात को पॉच, छे दिन रोकने का भी प्रचलन रहा होगा, जो कि अब सिमटकर एक दिन ही रह गया। रही त्रिरात्रव्रत के कृतयो की बात तो आज इसकी प्रासङ्गिकता बिल्कुल समाप्त हो गयी है। चतुर्थी कर्म का सकेत वर्तमान मे बारात विदाई के समय चौथी देने मात्र मे भले मान लिया जाय, परन्तु इस कर्म (सम्भोग) के लिए धर्मशास्त्रो मे निर्धारित चौथे दिन मे किये जाने की समय सीमा को भी वर्तमान मे लोक जीवन मे व्यवहरित मनुष्यो द्वारा त्याग कर दिया गया दिखता है, कारण बहुत से हो सकते है, परन्तु उनमे प्रधान कारण है सयम एव जितेन्द्रिय होने का अभाव, भौतिकतावादी अभिरुचि एव धार्मिक सस्कारो से पलयानवादिता।

धर्मशास्त्रीय ग्रथो यथा-मनुस्मृति मे वर्णन मिलता है कि अपने घर से विदा होने वाले अतिथि, प्रियजन, आचार्य एव अन्य श्रेष्ठ जन को कुऑ, तालाब, या उद्यानभूमि या गॉव की सीमा तक छोडने जाना चाहिए।[4] इस तथ्य का विवरण भी नैषधकार ने नल दमयन्ती के कुण्डिनपुर से प्रस्थान करने के समय की गतिविधि का चित्रण करते हुए लिखा है कि जैसे सरोवर मे लहरे हवा के साथ किनारे तक जाकर फिर लौट आती है, उसी प्रकार विदर्भनरेश भीम भी अपने राज्य की सीमा तक प्रिय बाते हुए करते हुए नल के साथ जाकर, नल का अभिवादन स्वीकारते हुए अपने महल मे वापस आये।[5] कन्या की विदाई के समय कन्या के साथ-साथ कन्या के माता पिता एव सम्बन्धियो का, दुखी होना स्वाभाविक है। महाकवि कालिदास ने भी इस तथ्य का प्रतिपादन शकुन्तला के पतिगृह गमन काल मे किया है[6] किन्तु जहाँ कालिदास ने पुत्री वियोग मे दुखी होने का विवरण दिया है वही नैषधकार ने पुत्री वियोग को मुख्य न मानकर विनयसमृद्ध गुण वाले दामाद (नल) के वियोग से राजा भीम एव महारानी के दुखी होने एव

1 आपस्तम्ब गृ०सू० 8/8 10 बौधा0 गृ०सू० 1/5/16 17

2 तथाशनाया निरशेषि ना ह्रिया न सम्यगालोकि परस्परक्रिया।
विमुक्तसम्भोगमशायि सस्पृह वरेण वध्वा च यथाविधित्र्यहम् ॥ नै० 16/47

3 उवास वैदर्भगृहेषु पञ्चषा निशा कृशाङ्गीं परिणीय ता नल।
अथ प्रतस्थे निषधान्सहानया रथेन वार्ष्णेयगृहीतरश्मिना ॥ नै० 16/113

4 क्षेत्रकूपतडागानामारामस्य गृहस्य च। सामन्तप्रत्ययो ज्ञेय सीमासेतुविनिर्णय ॥ मनु 8/262

5 निजादनुव्रज्य स मण्डलावधेर्नल निवृत्तो चटुलापता गत।
तडागकल्लोल इवानिल तटादधृतातिथ्यविवृते वराटराट् ॥ नै० 16/117

6 यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदय सस्पृष्टमुत्कण्ठया कण्ठ स्तम्भितवाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजड दर्शनम्।
वैक्लव्य मम तावदीदृशमिद स्नेहादरण्यौकस पीड्यन्ते गृहिण कथ नु तनयाविश्लेषदुखैर्नवै ॥ अभि० शाकु० 4/6

दमयन्ती के साथ नल के भी दु खी होने का विवरण समुपस्थापित किया है।[1] इसे श्रीहर्ष की वर्णन चातुरी कहा जाय, या दूरदर्शिता, क्योकि दामाद, (जामाता) (पुत्री) कन्या का सर्वस्व, सुहाग माना जाता है, साथ ही पुत्र रूप भी होता है, शायद यही कारण है कि नैषधकार ने ऐसा विवरण दिया है। महाकवि कालिदास ने जिस प्रकार शकुन्तला को पतिगृह जाने मे उपदेश देने का विवरण रखा है।[2] उसी परम्परा का निर्वहन करते हुए श्रीहर्ष ने भी पतिगृह के लिए विदा होती दमयन्ती को भी म द्वार: उपदेश दिये जाने का सदर्भ रखा है, जहॉ भीम दमयन्ती से कहते है कि पुत्री अब तुम्हारा अपना पुण्य ही तुम्हारा पिता है। तुम्हारी क्षमाशीलता ही तुम्हारी सारी विपत्तियो को नष्ट करने वाली होगी, सन्तोष ही तुम्हारा धन होगा, महाराज नल ही तुम्हारे सर्वस्व होगे, पुत्री अब से मै तुम्हारा कोई न रहा।[3] इस रूप मे नैषधकार के विवरण कालिदास से कहीं अधिक स्वाभाविक एव मर्मस्पर्शी है ।

ध्यातव्य है कि कालिदास ने "अर्थो हि कन्या परकीय एव'' इत्यादि कथन से पराया धन एव धरोहर रूप मे कन्या की मीमासा जनसम्मुख के सामने स्थापित की है। ऋषि काश्यप का यह कथन धरोहर (न्यास) की रक्षा इत्यादि के सदर्भ मे मनुस्मृतिकार के कथन ''पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति योवने'' के परिप्रेक्ष्य मे सही हो सकती है, लेकिन पिता के सन्दर्भ मे जो कि कन्या का हर तरह से लालन पालन एव उसका सवर्धन करता है, मे खरा नहीं उतरता। साथ ही पुत्र पुत्री मे जो असमानता का भाव, या पुत्र की तुलना मे पुत्री के उपेक्षित किये जाने के जो दृष्टान्त मिलते है उसे जनमानस मे व्याप्त कन्या को पराया धन मानने की कुण्ठा का ही प्रतिफल कहा जा सकता है, एव कालिदास इसके लिए कहॉ तक उत्तरदायी है? इस पर विद्वज्जनो को विचार करना चाहिए। यह सम्भव है कि कालिदास के समय या उनके पूर्व कन्याओ को इस रूप मे माना जाता हो, तब क्या कालिदास का देश एव समाज के प्रति कोई उत्तरदायित्व नहीं था? लेकिन यह भी सच है कि कालिदास के विवरण जनमानस की आन्तरिक भावनाओ को स्पर्श करने मे सर्वथा सफल हैं। निश्चित ही कालिदास नैषधकार के पूववर्ती है इसलिए उनकी विचारधाराओ का प्रभाव लोक जीवन मे अधिक है, लेकिन श्रीहर्ष ने "प्रिय प्रियैकाचरणाच्चिरेण ता पितु" के माध्यम से कन्या का सर्वथा सदा प्रिय करने वाले पिता के रूप मे वर्णन कर देश एव समाज को एक नया आयाम देने का प्रयास किया है। इस रूप मे श्रीहर्ष को कालिदास से अधिक आदरपात्र समझा जाना चाहिए, एव वर्तमान म जो पुत्र-पुत्री को माता पिता द्वारा समान स्थान दिये जाने की जो अवधारणा समाज मे धीरे-धीरे विकसित हो रही है, इस तथ्य के प्रस्फुटन मे नैषधकार के योगदान को नकारा नहीं जासकता। ध्यातव्य है कि प्राचीन काल के पूर्व वैदिककाल मे भी स्त्री पुरुषो मे समानता होने के विवरण मिलते है, जिनमे मत्र दृष्टा पुरुषो के साथ-साथ नारियो के भी मन्त्रदृष्टा होने की मीमासा मिलती है, जिनमे अदिति, दाक्षायणी, आत्रेयी, विश्वारा घोषा आदि प्रमुख थी। उपर्युक्त सभी विवरणो से ध्वनित होता है कि नैषधकार ने धर्मशास्त्रो मे प्रतिपादित लगभग सभी सन्दर्भों को स्पर्श करने का प्रयत्न किया है एव उनके विवाह सस्कार के विवरण तो इतनी प्रभूत मात्रा मे हैं कि यदि सामान्यजन इनके विवरणो को हृदयगम कर ले, तो शायद उन्हे विवाह पद्धति की सम्पूर्ण विधियो के ज्ञानार्जन हेतु यत्र तत्र भ्रमण नहीं करना पडेगा।

---

1 तथा किमाजन्मनिजाङ्कवधिता प्रहित्य पुत्रीं पितरौ विषेदतु ।
विसृज्य तौ त दुहितु पति यथा विनीततालक्षगुणीभवद्गुणम् ॥ नै० 16/116
– प्रिय. प्रियैकाचरणाच्चिरेण ता पितु स्मरन्तीमचिकित्सदाधिषु ।
तथास्त तन्मातृवियोगवाडव· स तु प्रियप्रेममहाम्बुधावपि ॥ नै० 16/119

2 शुश्रुष्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्ति सपन्नीजने भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीय गम ।
भूयिष्ठ भव दक्षिणा परिजयने भागेष्वनुत्सेकिनी यान्त्येव गृहिणीपद युवतयो वामा कुलस्याधय ॥ अभि०शकु० 4/18

3. पितात्मन· पुण्यमनापद. क्षमा धन मनस्तुष्टिर थाखिल नल ।
अत पर पुत्रि। न कोऽपि तेऽहमित्युदसुरेष व्यसृजन्निजौरसीम् ॥ नै० 16/118

सप्तम अध्याय

नैषध में संगीतशास्त्रीय सन्दर्भ

संगीतशास्त्र

वैदिक काल से लेकर अर्वाचीन काल तक के सास्कृतिक तत्त्वो के अनुशीलन से यह स्पष्ट सा परिलक्षित हो रहा है कि भारतीय जनमानस मे "उत्सवप्रिया खलु मनुष्या"[1] की सगति की छाप आज भी जमी बैठी है। उत्सवो मे नृत्य, गीत, सगीत का होना उसकी महत्ता मे चार चॉद लगाता है। ऋग्वेदकाल के रात्रिकालीन उत्सव 'समन' मे कुमारियॉ इच्छानुसार वर वरण करती थीं इससे कुमारियो की सड्गति विषयक परीक्षा भी होती थी। सोमरस पानानन्तर समूह नृत्य मे नर-नारियो की सहभागिता भी होती थी। नर्तकियॉ भी पैरो मे घुघरू बॉधकर गायन वादन के साथ नृत्यकला का प्रदर्शन करती थीं। वैदिक काल का 'समन' बाद मे 'समज्जा' नाम से लोकविश्रुत हुआ, चुकि उस समय सगीतकाल का पोषण धर्म की कोख से हो रहा था एव कला की साधना तथा कला का सवर्धन ही तत्कालीन कलाकारो का मुख्य उद्देश्य था, इसलिए उस युग मे गायक, वादक, एव नर्तक तीनो का नैतिक स्तर उच्च माना जाता था। उस समय के नृत्यो मे रज्जुनृत्य, सलिलनृत्य, प्रकृतिनृत्य, पुष्पनृत्य एव बसन्त नृत्य प्रमुख थे। वेद और वेदिक साहित्य मे स्वर विधान सम्बन्धी पुष्कल सामग्री भी सुरक्षित है। पूर्वार्चिक उत्तारार्चिक, ग्रामगेयगान आरण्य गेयगान, स्तोव, स्तोम आदि परिभाषिक शब्दावली से तत्कालीन सगीत की समृद्धि का पता चलता है। वैदिक युग के बाद पुराणकालीन युग रामायण महाभारत काल तक उत्तरोत्तर सगीतशास्त्र का विकास होता रहा। नारदीय शिक्षा, कामसूत्र, पाणिनि की अष्टाध्यायी, चत्वारिंशद् राग निरूपण, सगीतमकरन्द, पाणिनीय शिक्षा, का पार्श्वदेव के सगीत समयसार, कामसूत्र पाणिनि की अष्टाध्यायी उपलब्ध विवरणो कोटिल्य का अर्थशास्त्र, भारा के नाटको एव भरत के नाट्यशास्त्र मे उपलब्ध विवरणो से तत्कालीन सगीत की लोकप्रियता का आभास मिलता है। सगीत, चार उपवेदो मे गन्धर्ववेद के नाम से भी प्रथित था।

सगीत के स्रोत वेदो मे उपलब्ध मिलते है क्योकि नृत्य का प्राचीन उल्लेख ऋग्वेद मे एव गीतवादन सहित नृत्य का उल्लेख अथर्ववेद मे मिलता है।[2] सामवेद तो सगीतकला का प्रचीनतम निदर्शन है ही परम्परया सगीतशास्त्र के देव आदि देव स्वीकृत है भगवान शड्कर एव सृष्टिनिर्माता ब्रह्मा। नाट्यशास्त्र के रचयिता भरत ने यह विवरण समुपस्थपित किया है कि वैवस्वत मन्वन्तर मे त्रेता युग प्रारम्भ होने पर इन्द्रादि देवाताओ ने ब्रह्माजी से प्रार्थना की कि हम लोग दृश्य एव श्रव्य क्रीडनीयक (नाटक) देखना चाहते है। तब ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गीत एव यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस लेकर नाट्य वेद की रचना की।[3] ब्रह्मा ने स्वाति एव उनके शिष्यो को वाद्य तथा नारद एव गन्धर्वो को गानकार्य मे नियुक्त किया। तदन्तर अमृतमन्थन एव त्रिपुरदाह नाटको का मचन हुआ, इन्हे देखकर हर्षित शकर बोले मैने ही प्रतिदिन सन्ध्याकाल नृत्य करते हुए नृत्य का आविर्भाव किया, जो विभिन्न कारणो एव अडगहा से विभूषित है।[4] स्पष्ट है कि नृत्य के आविर्भावक शकर थे। अमृतमथन नाटक के प्रयोग की शय्या थी गीत, इसलिए गीत पर सर्वप्रथम प्रयोग सिका गया क्योकि गीत एव वाद्य के

---

1 अभिज्ञान शाकुन्तल- षष्ठ अक पृ० 518

2 अधियेशासि वपते नृतूरिव अयोर्णुते वक्ष उस्रेव वर्जहम् । ऋ० 1/92/4
सस्मयमाना युवति पुरस्ताद् आविर्वक्षासि कृणुते विभाति । ऋ० 1/123/10
सुसकाशा मातृमृष्येव योषाविस्तन्व् कृणुषे दृशेकम् । ऋ० 1/123/11

3 यज्जामयो यदयुवतयो गृहे ते समनर्तिषु अर्थवेद 14/2/61

4 जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च यजुर्वेदादभिनयान् रसानार्थर्वणादपि।। नाट्यशास्त्र 1/17

यलीभाति प्रयुक्त होने पर ही नाडयप्रयोग मे कोई निर्यान्त नहीं आती.[1] शकर ने ताण्ड के नृत्य की शिक्षा दी,[2] इसी अवसर पर पार्वती ने लास्य नामक नृत्य प्रस्तुत किया, यह नृत्य पार्वती रचित अगहार के प्रयोग एव स्त्रीपुरुषाश्रित श्रृगारसम्बद्ध गान से सयुक्त था।[3] महाभारत मे कहा गया है कि महामुनि नारद गन्धर्व विद्या के प्रथम पारगत विद्वान हुए, जिनको इस उपयोगी विद्या का ज्ञान ब्रह्मा से मिला[4] महाभारत काल के बाद मौर्ययुग, गुप्तयुग, राजपूतयुग एव मध्यकालीन युग तक सगीत विद्या की उत्तरोत्तर उन्नति होती रही इसी मध्यकालीन सस्कृति मे ही श्रीहर्ष ने अपने कवित्व शक्ति के कोशल से सगीत शास्त्र के अनेक पदो को सन्दर्भित किया है। नेषधकार अवश्यमेव इस शास्त्रीय कथन से प्रभावित हुए होगे कि

श्रुतिस्मृत्यादि-साहित्य नानाशास्त्रा विदोऽपि च ।
सङगीत ये न जानन्ति द्विपदास्ते मृगा स्मृता ।।

सगीतशास्त्र वह शास्त्र है, जिसमे सगीत कला का निरूपण वर्णित हो। सगीत शब्द सम्+गै+क्त के सयोजन से बनता है। मिलकर गाया हुआ सहगान, सम्मिलित कण्ठो से गाया हुआ गान ही सगीत कहलाता है।[5] भर्तृहरि ने सगीत की व्याख्या करते हुए कहा "जगु र् कण्ठयो गन्धर्व्य सगीत सह भर्तृका " वह गायन जो नृत्य तथा वाद्ययत्रो के साथ गाया जाय, अर्थात त्रिताल युक्त गान ही सगीत है त्रिताल का सगीत के साथ सामजस्य स्थापित करते हुए उन्होने लिखा

गीत वाद्य तथा नृत्य त्रय सगीतमुच्यते ।[6]

अर्थात् नृत्य, वाद्य के साथ गाने की कला ही सगीत है। कामसूत्र मे उल्लिखित चौसठ कलाओ मे सगीत के अन्तर्गत गीत, वाद्य एव नृत्य की अन्विति की गयी है।[7] साथ ही उद्यकवाद्यम् एव वीणाडमरूकवाद्यानि भी सगीत सम्बद्ध कलाऍ ही हैं। चौसठ कलाओ को हम सौकर्य की दृष्टि से दो भागो मे बॉट सकते है। उपयोगी एव ललित। ललित कलाए प्रमुखतया पाच प्रकार की मानी जाती है- साहित्यकला, सगीतकला, चित्रकला, मूर्तिकला एव वास्तुकला। स्पष्ट है कि सगीत ललित कला विज्ञान भी है। उसके कला एव शास्त्र होने मे दोनो मे कोई परस्पर विरोध नहीं होता क्योकि शास्त्र का कार्य है विषय को वैज्ञानिक व्यवस्था प्रदान करना जिससे विषय का अध्ययन विधिपूर्वक सम्पन्न किया जा सके । कला की गति सतत प्रवहमान रहती है। यह देश काल के अनुसार नूतन तत्वो को ग्रहण करती रहती है, कला की इसी गति को सयत करना शास्त्र का कार्य है, जिससे कला अपने मौलिक सिद्धातो के प्रतिकूल न जा सके साथ ही लोकरूचि के अनुकूल भी रहे। कालिदास ने नृत्यकला को ललित विज्ञान[8] कहा है, जो उसके ललित कला तथा शास्त्र दोनो होने का प्रमाण प्रस्तुत करता है। आधुनिक सगीतज्ञ आचार्य सगीत को प्रमुखतथा चार भागो मे रखते है राष्ट्रीय सगीत, लोकसगीत, शास्त्रीय सगीत एव सुगम सगीत ।

---

1 मयापीद स्मृत नृत्य सन्ध्याकालेषु नृत्यता। नानाकरणसयुक्तैरग हारैर्विभूषितम्।। नाट्यशा 4/13

2 गीते प्रयत्न प्रथमस्तु कार्य शय्या हि नाट्यस्य वदन्ति गीतमृ ।
गीतेऽपि वाद्येऽपि च सप्रयुक्ते नाट्यप्रयोगो न विपत्तिमेति ।। नाट्य 32/436

3 नाट्यशास्त्र 4/266, 267 268

4 यत्तु श्रृङ्रगारसम्बद्ध गान स्त्रीपुरूषाश्रय। देवीकृतैरङगहारैललितैस्तत्प्रयोजयेत्।। नाट्यशा 4/318

5 वामन आष्टे सस्कृत शब्दकोश , पृ० 1058

6 सगीतरत्नाकर 1/21

7 गीत वाद्य नृत्य कामसूत्र -1/3/15

8 मालविकाग्नि मित्र - 2/13

प्राचीनभारतीय सगीतशास्त्र एव नाट्य शास्त्र की उस परम्परा से नेषधकार सुपरिचित थे, जिसका परिनिष्ठित रूप हमे भरत के नाट्यशास्त्र मे उपलब्ध होता है। उन्होने नैषध मे सगीत शास्त्र के त्रिविध अगो एव उपागो के सन्दर्भ देकर यह सकेत भी देना चाहा हे कि तत्कालीन (बारहवीं शताब्दी मे) समाज के लोगो मे सगीत की अत्यधिक रुचि थी। नैषध मे प्रथम सर्ग मे नल जब दमयन्ती की याद मे विरह व्यथा से पीडित थे, राजसभा मे अपनी स्थिति छिपा रहे थे, परन्तु राजसभा के सदस्य सगीत की पचम रागो मे इतना मत्रमुग्ध थे कि किसी ने नल के विरह प्रलाप को सुना ही नहीं।[1] सगीत की जादू ही ऐसा होता हे शरीरधारियो की बात ही क्या जीव जन्तु जानवर यथा- सॉप, हिरण तक मत्रमुग्ध हो अपने प्राणतक निछावर कर देते है। नल के राजप्रासाद मे स्त्री पुरूषो के सामूहिक नृत्य का वर्णन करते हुए श्रीहर्ष अभिहित करते है कि वीणा तथा वशी की मधुर ध्वनि से, वाटिका के कोकिल तथा भ्रमरो की गुञ्जारो स एव नर्तकियो के ककण आदि आभूषणो के परस्पर शिञ्जन से नल दमयन्ती की रति-क्रीडा के समय होने वाली अव्यक्त मधुरकण्ठ ध्वनि बाहर सुनायी ही नहीं पडती थी।[2] तौर्यत्रिक नृत्य अर्थात वाद्य, गीत, एव नृत्य का विवरण देते हुए नेषधकार ने प्रकृति को नर्तकी रूप मे चित्रित किया है। वे कहते है कि क्रीडावापी के तट पर तरगो की ध्वनि से, कोयलो और भैरो के गान से तथा मयूरो की नृत्यनिपुणता से (इनके माध्यम से) तोर्यत्रिक अर्थात, वाद्य, गीत व नृत्य इन तीनो के समूह ने वन मे भी उस नल की आराधना की।[3] त्रिविध सगीत का महाकवि कालिदास ने भी अत्यन्त मनोहारी वर्णन किया है। एक तरफ समुद्र गर्भ मे स्थित मुनि शातकर्णी का प्रासाद गीत, वाद्य, एव नृत्य के झकारो से झकृत था[4] तो दूसरी तरफ राजा अग्निवर्ण का प्रासाद भी गीत, वाद्य एव नृत्य से सराबोर रहता था[5] एव अलकापुरी के प्रासादो मे कालिदास का त्रिविध सगीत विवरण तो मानवचित्त को चुराने वाला ही था। यथा -

विद्युवन्त ललितवनिता सेन्द्रचाप सचित्रा सगीतय प्रहतमुरजा स्निग्ध गम्भीरघोषम् ।
अन्तस्तोय मणिमयभुवस्तुगमभ्र लिहाग्रा प्रासादास्त्वा तुलयितुमल यत्र तैस्तैर्विशेषै ।।[6]
शब्दायन्ते मधुरमनिलै कीचका पूर्यमाणा ससक्ताभिस्त्रिपुरविजयो गीयते किन्नरीभि ।
निह्रादस्ते मुरज इव चेत्कन्दरेषु ध्वनि स्यात्सगीतसर्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्र ।।[7]

उपर्युक्त तथ्यो से सगीत शास्त्र के विषय मे यह कहा जा सकता हे कि गीत, वाद्य एव नृत्य इस शास्त्र के प्राण तत्व है । कैशिकीय ब्राह्मण (29/5) मे भी त्रिविधै शिल्प, नृत्य गीत वाद्यमिति'' कहा गया है।

गीत

गीत स्त्री पुरूषो की भावनाओ की अभिव्यक्ति का एक प्रमुख माध्यम है शतपथ ब्राह्मण (13/1/5/6) मे गीत का वर्णन मिलता है यथा अयजतेत्यददादिति ब्राह्मणो गायति।" सगीतरत्नाकर (1/25)

---

1 शशाक निह्नोतुभयेन तत्प्रिशमय वभाषे यदलीक वीक्षिताम्।
समाज एवालपितासु वैणिकैर्मुमूर्च्छ यत्पञ्चमच्मूर्च्छनासु च ।। नै० 1/52

2 यत्र वैणरववैणवस्वरैर्हुंकृतैरुपवनीपिकालिनाम् । ककणालिकलहैश्च नृत्यता कुब्जित सुरतकूजित तयो ।। नै० 18/17

3 विलासवापीतटवीचिवादनात् पिकालिगीते शिखिलास्यलाद्यवात् ।
वनेऽपि तौर्यत्रिकमारराधतम् क्व भोगमाप्नोति न भाग्यभाजन ।। नै० 1/102

4 तस्यायमन्तर्हित सौधभाज , प्रसक्तसगतिमृदगघोष ।
वियद्गत पुष्पकचन्द्रशाला , क्षण प्रतिश्रुन्मुखरा करोति ।। रघुवश 13/40

5 कामिनी सहचरस्य कामिनस्तस्य वेश्मसु मृदगनादिषु ।
ऋद्धिमन्तमधिकर्द्धिरुत्तर पूर्वमुत्सवमपोहदुत्सव ।। रघुवश 14/5

6 मेघदूत 2/1

7 मेघदूत 1/60

मे यह वर्णन मिलता है कि 'सामवेदादिद गीत सञ्जग्राह पितामह'। साथ ही सङ्गीतशास्त्र के त्रिविध तत्वो मे गीत की प्रधानता सर्वसम्मतया मान्य है। गीत की प्रधानता को स्पष्ट करते हुए आचार्य वृहस्पति कहते है कि 'गीत सगीत का प्रधान अश है वाद्य, और नृत्य उसके सहायक है, बिना वाद्य नृत्य के भी सम्पूर्ण गीत नहीं है।[1] आचार्य भरत गीत को नाट्य की शय्या मानते हुए कहते है- कि यदि गीत और वाद्य ठीक ढग से प्रयुक्त हो तो नाट्य प्रयोग मे किसी प्रकार की विपत्ति नहीं आती तथा सगीत रत्नाकर के अनुसार यह धर्मार्थकाम मोक्ष का साधन भी है।[2] आचार्य अभिनव गुप्त ने गीत को नाट्य का प्राणभूत तत्व[3] एवं आचार्य शार्ङ्गदेव गीत को प्रधान मानते हुए नृत्य एव वाद्य को गीत का उपरन्जक एव उत्कर्ष विधायक मानते है।[4] साथ ही वे कहते है कि गीत स्वरो का वह समुदाय होता है, जो मन का रजन करता है। यह गान्धर्व और गान के भेद से दो प्रकार का होता है।[5] गान्धर्व गीत गान्धर्वों द्वारा एव गान गीत सङगीतकारो या गायको द्वारा गाया जाता है। सङगीतरत्नाकर के टीकाकार कल्लिनाथ गान्धर्व एव गान को मार्गसङ्गीत एव देशी सङ्गीत मानने के पक्षधर है। मार्ग सङ्गीत अत्यन्त कठोर सास्कृतिक एव धार्मिक नियमो से आबद्वथा, फलत कालानान्तर मे इसका प्रचलन समाप्त हो गया। देशी सङ्गीत[6] देश के विभिन्न भागो मे लोकानुरजन का माध्यम बना हुआ है। मानव निर्मित गीतके प्रमुख चार अग होते है , राग भाषा ताल और मार्ग। ये एक दूसरे के पूरक होते है कल्लिनाथ इन्हे ध्यान मे रखकर गीत की परिभाषा देते हुए कहते है कि ग्रहाशादि दशाश लक्षण से लक्षित स्वरसन्निवेश (राग या जाति) पद ताल एव मार्ग इन अगो से युक्त होकर ही गीत कहलाता है।[7] ग्रह, अश, तार, मन्द्र, न्यास, उपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व, षाडव और औडुवित ये राग (जाति) के दस लक्षण माने गये है।[8] गीत इन्हीं दस लक्षणो से यूक्त माना जाता है। आचार्य भरत मे गीतो को ध्रुवागीत, आसारित ध्रुवामान आदि प्रधान भेदकर पुन अनेक उनके उपभेद भी प्रस्तुत किये। इसके अतिरिक्त सप्तरूप नाम से प्रसिद्ध गीतो का विवरण भी उन्होने नाट्यशास्त्र मे दिया है, ये है - मद्रक, अपरान्तक, प्रकरी, ओवेणक, उल्लोप्यक रोविन्दक और उत्तर । इन गीतो को आचार्य भरत ने ब्रह्मा के द्वारा कथित माना अत वे इन्हे पुण्यकारक मानते है।[9] परन्तु कुछ अन्य आचार्यों ने राग भाषा, ताल और मार्ग के भेद से गीत के प्रमुख चार अग ही मानते है । स्पष्ट है कि गीत मे स्वर (कण्ठ की सरसता या राग) वाणी की मृदुलता एव उसको स्थायी आरोही, अवरोही सचारी वर्णो से अलकृत होने (यथा-स रे ग रे स स, म प ध प म म , प ध नी ध प प) के साथ-साथ भाषा, ताल, लय, यति का भी अप्रतिम स्थान है।

---

1 सगीत चिन्तामणि पृ 80

2 – गीते प्रगत्न प्रथम तु कार्य शययाहि नाट्यस्य वदन्ति गीतम् ।
गीते च वाद्ये च सुप्रयुक्त नाटयप्रयोगो न विपत्तिमेति ।। नाटयशास्त्र 32/436
– तस्य गीतस्य माहात्म्य क प्रशसितुमीशते। धर्मर्थकाममोक्षाणा इदमेवैकसाधनम् ।। स०र० 1/1/30

3 प्राणभूत तावद् ध्रुवागान प्रयोगस्य। अभिनवभरती, तृतीय खण्ड पृ० 386

4 नृत्त वाद्यानुग प्रोक्त वाद्य गीतानुवर्ति च ।। सगीतरत्नाकर- स्वराध्याय पृ० 15 (अड्यार सस्करण)
अतो गीतप्रधानत्वाद ...त्रादावभिधीयते ।। स० र० 1/1/24

5 रञ्जक स्वरसन्दर्भो गीतमित्यभिधीयते । गान्धर्वगानमित्यस्य भेदद्वयमुदीरितम्।। सङगीतरत्नाकर प्रबन्धाध्याय पृ० 203

6 – ततदेशस्थया रीत्या यत्स्यात लोकानुरञ्जनम । देशे देशे तु सङीत तद्देशीत्यभिधीयते ।। -सङगीत विशारद् पृ० 148
– देशे देशे जनाना यद्दुच्या हृदयरञ्जकम् । गान च वादन नृत्य तद्देशीत्यभिधीयते ।।

7 ग्रहाशादिदश लक्षण लक्षित स्वरमात्रसन्निवेश विशेषो राग
तै स्वरै पदैरतालैर्मार्गैरेव चतुर्भिरङ्गरुपेत ध्रुवादि सज्ञक गीतम्।।
सङगीतरत्नाकर (कल्लिनाथ) रागाध्याय पृ० 33 भरत का सङगीतसिद्धान्त, पृ० -250 से उद्धृत

8 ग्रहा शौ तारमन्द्रौ च न्यासोपन्यासा एव च अल्पत्वञ्च बहुत्त्वञ्च षाडवौऽविते तथा ।। ना०शा० 28/74

9 गीतानि ससभुद्रोकोल्लोप्यके च परान्तकम्। प्रकर्यो वैणक चैव रोविन्दकमथोत्तरम ।। ना शा 31/184

श्रीहर्ष नैषधीय चरित मे गीत का विवरण देते हुए कहते है कि जब दमपन्ती ने नल के गले मे दूर्वाकुर से सुशोभित मधुकमाला (वरमाला) को डाल दिया, उस समय पुराङ्गनाएँ (वैदर्भ निवासिनियॉ) ने आनन्द के साथ उच्चस्वर मे मङ्गलगीत गाने लगीं, उस समय उनमे इस प्रकार का हर्षोद्रेक हुआ कि उनके कण्ठ गदगद हो गये, एव जो शब्द (आवाज) उनके मुखकमलो से नि स्तृत हो रहे थे वे अस्फुट जैसे प्रतीत हो रहे थे[1] वे स्मरणीय है कि श्रीहर्ष का यह विवरण सङ्गीत के सप्तरूपो मे उल्लोप्यक गीत का निदर्शन है। को गीति के स्पष्ट करते हुए सगीत रत्नाकर कार का कहना है कि स्थायी, आरोही, अवरोही, सचारी वर्णों से अलकृत तथा पद और लय से समन्वित गान क्रिया ही गीति कहा जाता।[2] गीति के चार भेद माने गये है, मागधी, अर्धमागधी सम्भाविता एव पृथुला। आचार्य भरत के अनुसार भिन्नवृत्ति मे गायी जाने वाली गीति मागधी कही जाती है उसकी अपेक्षा अर्धकाल अर्थात द्रुतगति मे गायी जाने वाली गीति अर्धमागधी, गुरू अक्षरो से युक्त गीति सम्भाविता एव लघुक्षरो से समन्वित गीति को पृथुला कहा जाता है।[3] आचार्य दत्तिल ने भी गीति के उपर्युक्त चार भेद स्वीकार किये है।[4] उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि श्रीहर्ष सगीत की सम्भाविता एव पृथुला विधियो से परिचित थे। सगीत के प्रमुख आचार्य निम्नवत थे। यथा –

सदाशिव शिवा ब्रह्मा भरत कश्यपो मुनि ।
मतगो याष्टिको दुर्गाशक्ति शार्दूलकोहलौ ।।

कण्ठ की सरसता एव वाणी की कोमलता का सगीत मे महत्वपूर्ण योगदान होता है। इसका विवरण देते हुए नैषधकार कहते है कि दमयन्ती के शिरीषपुष्प से भी कोमल सारे अङ्गो की रचना करके ब्रह्मा ने सुकुमार वस्तुओ के निर्माण की पराकाष्ठा पर पहुँच जाने के कारण मृदुलता की मर्यादा को इसकी वाणी मे समाप्त की, अर्थात् दमयन्ती की मृदुल वाणी सुकुमारता की अतिम सीमा सी लगती है, क्योकि इनकी वाणी तो रसाल का आस्वादन लेने वाली कोकिलपक्षी (कोयल) की वाणी से भी मधुर है।[5] साथ ही इनके कण्ठ मे निवास करती हुई सरस्वती जो, अपनी मधुरवीणा बजाती है, वही इस मृगनयनी के मुख मे वाणी रूप होकर श्रोता के कान मे अमृतरस बन जाता है।[6] दयमन्ती की वाणी की कोमलता एव मिठास को श्रीहर्ष ने गन्ने के रस से मीठी, अमृत समान एव श्रृङ्गाररस की अपूर्व नदी माना।[7] जहॉ नैषधकार ने नल को श्रेष्ठ गायक के रूप मे चित्रित किया,[8] जिसका सगीत स्वर्गलोक के गायकों से अत्यधिक मधुरता था, वहीं नलमुखेन पुन दमयती की वाणी की प्रशसा करवाते हुए यह सिद्ध करना चाहते है कि गायन मे

---

1 – कापि प्रमोदास्फुटनिर्जिहान वर्णेव या मङ्गलगीतिरासाम् । सैद्माननेभ्य· पुरसुन्दरीणामुच्चैरुलूजुध्वनिरुच्चचार ।। नै० 14/51
– दक्षिणे तु यथा वृत्तौ चतुष्कलमपीष्यते, उल्लोप्यक तु द्विगुरू द्विलध्वन्ते गुरूर्यथा ।। ना०शा० 31/241

2 वर्णाधलङ्कृता गानक्रिया पदलयान्विता । गीतिरुच्यते या च बुधैरुक्ता चतुर्विधा ।। स० र० स्वराध्याय पृ० 280

3 भिन्नवृत्तिप्रगीता या सा गीतिर्मागधी मता। अर्धकाल निवृत्ता च विज्ञेया त्वर्धमागधी ।।
सम्भविता च विज्ञेया गुर्वक्षरसमन्विता। लध्वक्षरकृता नित्या पृथुला सम्प्रकीर्तिमा ।। ना०शा० 28/49, 49

4 तत्र स्यान्मागधी चित्रै पदै समान्वृत्तकै । अर्धकालनिवृत्तैस्तु वर्णाधा चार्धमागधी ।।
वृत्तौ लध्वक्षरप्राया गीति सम्भाविता स्मृता । गुर्वक्षरैस्तु पृथुला वर्णाढ्या दक्षिणे सदा ।।
मार्गेणु ता यथायोग चतस्रो गीतय स्मृया । -दत्तिलम् 238 .. 240

5 शिरीषकोषादपि कोमलाया वेधा बिधायाङ्गमशेषमस्या. । प्राप्तप्रकर्ष· सुकुमारसर्गे समापयद्वाचि मृदुत्वमुद्राम ।।
प्रसूनबाणाद्वयवादिनी सा काचिद्विजेनोपनिषत्पिकेन । अस्या किमास्यद्विजराजतो वा नाधीयते भैक्षभुजातरूभ्य ।। नै० 7/47-48

6 कण्ठे बसन्ती चतुरा यदस्या सरस्वती वादयते विपञ्चीम् ।
तदेववाक्भूय मुखे मृगाक्ष्या श्रोतु श्रुतो याति सुधारसत्वम् ।। नै० 7/50

7 नै० 21/152, . 159

8 स्वर्गलोकमस्माभिरित प्रयातै केलीषु तद्गानगुणान्निपीय ।
हा हेति गायन्यदशोचि तेन नाम्नैव हाहा हरिगायिनोऽभूत ।। नै० 3/27

स्त्रियो का ही एकाधिकार था। नल दमयती से कहते है कि प्रिये, तुम्हारी वाणी की प्रशसा तो हम कर नहीं सकते, अत अमृत ही की बडाई कर ले, जिसके लिए गरूण और इन्द्र का सग्राम हम ठीक समझते है। तुम्हारी वाणी ने भी तो अगूर रस का मानभगकर, क्षीर का अपमानकर उसी अमृत के ही ऊपर अनुग्रह कर उसे अपना चरण धोने का अनुग्रह प्रदान किया है अर्थात् अगूर, की कौन कहे, तुम्हारी वाणी क्षीर तो अमृत (से भी) से भी मधुरतम है।[1] पुन दमयन्ती की वाणी को, जो श्रृङ्गाररस के कलश रूप मुख से निकली है एव जो ईख से भी ज्यादा रसीली, अमृततुल्य है ऐसी वाणी को नल बार-बार सुनने की इच्छा करते है।[2]

गायक को विभिन्न कलाओ, शास्त्रो, वाद्य, नृत्य मे चतुर होने के साथ-साथ हृद्य शरीर से समन्वित होना चाहिए। लय, ताल एव स्वर भेदो यथा स्थायी आरोही, अवरोही, सचारी से परिचित होने के साथ-साथ गायक मे देशी रागो का ज्ञान, वाक् चातुर्य सम्पन्न, रागद्वेष का अभाव, सरसता तथा विवेक होना चाहिए।[3] गीत, वाद्य, तथा नृत्य ताल मे ही प्रतिष्ठित होते है। सगातरत्नाकर मे ताल को (इस प्रकार) इस प्रकार परिभाषित किया गया है-

तालस्तल प्रतिष्ठायामिति धातोर्घञिस्मृत
गीत वाद्य तथा नृत्त यतस्ताले प्रतिष्ठितम् ॥
कालो लध्वादिमितया क्रियया सम्मितो मितिम् ।[4]

ताल (तान) क्रिया के पश्चात अग्रिम ताल क्रिया से पूर्व तक किया जाने वाला विश्राम लय कहलाता है एव लय प्रयोग का नियम 'यति' सज्ञा के अभिहित होता है। श्रीहर्ष सगीतशास्त्र के इन शब्दो से परिचित दिखते है। ताल या तान का प्रतिपादन करते हुए वे कहते है कि दमयन्ती से कलाए सीखने वाली सखियॉ जो मधुर वीणा वादन मे अत्यन्त कुशल थीं वे गन्धर्व कुमारियॉ महल मे बैठे महाराज नल को वीणा सुनाने के लिए वहा गयीं तो उन मृगनयनियो ने गीत प्रारम्भ करने के पूर्व ताल स्थापन हेतु तार मिलाते समय कुछ अव्यक्त अतिमधुर शब्द (काकली) किया उस समय ऐसी प्रतीति हो रही थी कि मानो उनकी वीणा अत्यन्त मृदुकण्ठी दमयन्ती के सम्मुख कुछ स्वर करने मे लजा रही हो।[5] स्वरो द्वारा प्रस्तुत आलापो की सहायता से ही गति का आकर्षण विकर्षण बढता है।[6] नाट्यशास्त्र मे स्वरो के आरोह, अवरोह, स्थायी एव सचारी चार भेद भरत ने किये है इनकी साधना के अनन्तर ही गायक अपने गीत मे मधुरिमा ला सकता है।[7]

---

1 त्वद्वाच स्तुतये वय न पटव पीयूषमेव स्तुमस्तस्यार्थेगरुडामरेन्द्रसमर स्थाने स जानेऽजनि।
द्राक्षापानकमानमर्दनसृजा क्षीरे दृढावज्ञया, यस्मिन्नाम धृतोऽनया निजपदप्रक्षालनानुग्रह ॥ नै० 21/160

2 श्रृङ्गारभृङ्गारसुधाकरेण वर्णस्रजानुपय कर्णकूपौ ।
त्वच्चारुवाणीरसवेणितीरतृणानुकार खलु कोषकार ॥
अत्रैव वाणीमधुना तवापि श्रोतु समीहे मधुन सनाभिम् ।
इति प्रियप्रेरितया तयाथ प्रस्तोतुभारम्भि शशिप्रशस्ति ॥ नै० 22/57-58

3 नायको गायकश्चैव कलावाश्च तृतीयक। गन्धर्व पण्डितश्चैव शास्त्रकारश्च शिक्षक ॥

4 सङ्गीत रत्नाकर - तालाध्याय, पृ० 3-4

5 – काकलीतु कले सूक्ष्मे-अमरकोष
– तासामभासत कुरङ्गदृशा विपञ्ची, किञ्चितपुर· कलितनिष्कलकाकलीक।
भैमीतथामधुरकण्ठलतोपकण्ठे, शब्दायितु प्रथममप्रतिभावतीव ॥ नै० 2 /125

6 पद लक्षणसयुक्तं यदा वर्णौ तु कर्षति। तदावर्णस्य निष्पत्तिर्विज्ञेया स्वरसम्भवा ॥ नाट्यशास्त्र 29/23

7 आरोही चावरोही च स्थायिसञ्चारिणौ तथा । वर्णाश्चत्वार एवैतेह्यलङ्कारास्तदाश्रया ॥
आरुहन्ति स्वरायत्र आरोही स तु सज्ञित सण्तु । यत्र चैवावरोहीच सोऽवरोहीति गण्यते ॥
स्थिरा स्वरा सभा यत्र स्थायीवर्ण· स उच्यते । सञ्चरन्ति स्वरा यत्र स सञ्चारीति कीर्तित ॥ नाट्यशास्त्र 29/1 19

स्वर

सङ्गीतदर्पण मे कहा गया है –

स्वय यो रञ्जते नाद सस्वर परिकीर्तित।

मतङ्ग ने राग के बारे मे कहा –

स्वरवर्णविशिष्टेन ध्वनिभेदेन वा जन। रज्यते येन कथित स राग सम्मत सताम्।

राग के बारे मे दामोदर की भी मतङ्ग से सम्मति दिखती है यथा –

यस्य श्रवणमात्रेण रज्यन्ते सकला प्रजा। सर्वानुरञ्जनाद्धेतो तेन राग इतिस्मृत ।।

स्पष्ट है कि स्वर उस ध्वनि या आवाज को कहते है, जिसे सुनकर कानो को अच्छा लगे और चित्त प्रसन्न हो। सङ्गीतशास्त्र मे स्वर को निम्नरूप मे परिभाषित किया गया है –

श्रुत्यन्तरभावी य शब्दोऽनुरणनात्मक । स्वतो रञ्जयते श्रोतुश्चित्त स स्वर ईर्यते ।।[1]

इसके अनुसार यह स्पष्ट होता है कि श्रुतियो को लगातार उत्पन्न कराने से स्वर की उत्पत्ति होती है। शब्द का अनुरणनरूप ही स्वर कहलाता है। आचार्य भरत के अनुसार सात स्वर होते है, षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम धैवत और निषादवान् (निषाद)[2] स्वर के इन्हीं सात भेदो को बाद के सङ्गीतशास्त्रियो ने भी स्वीकार किया इन्हे ही सक्षेप मे 'स, रे, ग, म, प, ध, नी' कहते है। सात स्वरो के पारस्परिक अन्तराल को देखते हुए सङ्गीतशास्त्रियो ने स्वरो को वादी, सवादी, अनुवादी और विवादी के भेद से चार प्रकार का माना है। वास्तव मे स्वर ही गीत का मूल तत्व होता है। स्वर का प्रतिपादन करते हुए नैषधकार ने कहा कि वैदर्भी महल की सभा मे मधुर आलपन्ती किसी सुन्दरी की नल मन ही मन प्रशसा करने लगे कि सुन्दरी का यह त्रिरेख शोभित कण्ठ क्या यही विज्ञापित करता है कि इसके स्वर से पिक, वेणु तथा वीणा तीनो पराजित है, अर्थात् उसकी राग, इन तीनो से श्रेष्ठतर है।[3] दमयन्ती की रागध्वनि इतनी श्रेष्ठ थी उसकी गूज दूर-दूर तक पहुँचती थी, यहाँ तक चन्द्रमा भी उससे प्रभावित था, क्योकि चन्द्रमा मे रहने वाला मृग भी शायद दमयन्ती की स्वर सुधा का पान किया था। यथा-

तवानने जातचरीं निपीय गीति तदाकर्णनलोलुपोऽयम् ।
हातु न जातु स्पृहयत्यवैमि विधु मृगस्त्वद्वदनभ्रमेण ।।
इन्दोर्भ्रमेणोपगमाय योग्ये जिह्ना तवास्ये विधुवास्तुमन्तम् ।
गीत्यामृग कर्षतु भन्त्स्यता कि पाशीबभूवेश्रवद्वरेन ।।
आप्यायनाद्वा रुचिभि सुधाशो शैत्यात्तम काननजन्मन ॥ ।
यावन्निशायामथ घर्मदु स्थरस्तावद्व्रजत्यह्नि न शब्दपान्थ् ।।
दूरेऽपि तत्तावकगानपानाल्लब्धावधि स्वादुरसोपभोगे ।
अवज्ञयैव क्षिपति क्षपाया पति खलु स्वान्यमृतानि भास ।।[4]

---

1 सङ्गीतशास्त्र, पृ० 14 पर उद्धृत एव स०र० 1/3/26

2 – षड्जश्च ऋषभश्चैव गान्धारो मध्यमस्तथा। पञ्चमो धैवतश्चैव सप्तमश्च निषादवान् ।। नाट्यशास्त्र 28/22
– निषाद रौति कुञ्जर - नारदमत, अमरकोष की 1/7/1 की टीका में श्री मानुजीदीक्षित द्वारा उद्धृत

3 कण्ठ किमस्या पिकवेणुवीणास्तिस्रोजिता सूचयति त्रिरेख। इत्यन्तरस्तूयत यत्रकापि नलेन बाला कलमापन्ती ।। नै० 6/59

4 नै० 22/106--109

दमयन्ती का स्वर सरस्वती की वीणा के स्वर से भी श्रेष्ठ[1] एव कोकिल तथा [illegible] मधुर कोमल तथा हृद्य था।[2] वीणावादिनी सरस्वती का चित्रण करते हुए श्रीहर्ष कहते है कि [illegible] वेद [illegible] कण्ठनली थी, वेदत्रय उसकी त्रिवलियाँ थे, तथा साहित्यशास्त्र उसके कटाक्ष विक्षेप थे ऐसी सरस्वती दमयन्ती की सखी बनकर युवती के रूप मे सभा मे आयीं।[3] स्पष्ट है कि जब दमयन्ती की सखी गान्धर्वविद्या मे दक्ष थी, तो दमयन्ती (राजकुमारी) का कहना ही क्या? दमयन्ती की स्वराकृति एव स्वर का चित्रण करते हुए श्रीहर्ष कहते है कि ऐसा मालूम होता है कि बसन्त ही दमयन्ती का योग्य शिल्पी है, उसने इसकी श्वासो को मलयपवन का बनाया, एव इसके अड्गो को कुसुमो से निर्मित किया तथा वाणी को कोकिल के पञ्चम स्वर (राग) से सृजन किया।[4]

राग

राग की व्याख्या करते हुए भरतमुनि ने कहा है कि राग उसे कहते है जिसके द्वारा त्रिलोकस्थित प्राणियो का मनोरजन होता है।[5] भारतमुनि ने प्रमुख सात ग्राम राग माने है वे निम्न है- मध्यमग्राम (मध्यमग्रामीय), षड्जग्राम (षड्जग्रामीय)।[6] साधारितत (षड्जग्रामीय), पञ्चम (मध्यमग्रामीय), कैशिक (मध्यमग्रामीण), षाडव (मध्यमग्रामीय) कैशिक मध्यम (षड्जग्रामीय) नैषधकार पञ्चम राग (मध्यमग्रामीय) से परिचित जान पडते है, क्योकि दमयन्ती के स्वर को उन्होने पञ्चमराग निर्मित बताया। मुनि कश्यप के मतानुसार मध्यमा और पचमी जातियो से शुद्ध पञ्चम राग उत्पन्न होता है। इसका अश तथा न्यास स्वर पञ्चम है। गान्धार तथा निषाद स्वरो का इसमे अल्पप्रयोग होता है।[7] शार्ङ्गदेव के मतानुसार यह राग मध्यमा एव पञ्चमी जातियो से उद्भूत है। इसका अश, ग्रह एव न्यास, स्वर, मध्य सप्तक का पञ्चम है। इसमे काकली निषाद तथा अन्तर गान्धार का प्रयोग विहित है। ह्रस्यका इसकी मूर्च्छना है। कामदेव इसका देवता है। सञ्चारी वर्ण इसका शोभाधायक है। अवमर्श सन्धि मे इसका प्रयोग किया जाना चाहिए। यह ग्रीष्म ऋतु मे दिन के प्रथम प्रहर मे गाया जाना चाहिए। इस राग से श्रृड्गार एव हास्य रस अभिव्यञ्जित होते है।[8] इस सम्बन्ध मे एक अन्य विधि भी बतायी गयी है कि मुख सन्धि मे मध्यमग्रामराग, प्रतिमुखसन्धि मे षड्जग्रामराग, गर्भ सन्धि मे साधारित राग, अवमर्श सन्धि मे पञ्चम राग, निर्वहण सन्धि मे कैशिक राग, पूर्वरड्ग मे षाडव राग तथा अन्त मे कैशिकमध्यम राग का समुचित सन्निवेश करना चाहिए। यदि शास्त्रनिर्दिष्ट नियमो को लक्ष्य मे रखकर राग सन्निवेश किया जायेगा, तभी उसकी सफलतम अभिव्यक्ति होगी। कुछ सड्गीतविद्याविशारदो ने लोक रूचि वैभिन्यता एव काव्य, नाटक, गीत के आधार पर ग्राम रागो के पॉच प्रकार बताये है, शुद्ध, भिन्न, गौड बेसर एव साधारण। शुद्धागीति मे स्वर मृदुल एव वक्रतारहित,

---

1 तत्कर्णौ भारती दूनौ विरहाद्भीमजागिराम् । अध्वनि ध्वनिभिर्वैणेरनुकल्पैर्व्यनोदयत् ।। नै० 17/12

2 नै० 20/60

3 मध्येसभ सावततार बाला गन्धर्व विद्याधरकण्ठनाला ।
त्रयीमयीभूतवलीविभड्गा साहित्यनिर्वर्तितद्वक्तरड्गा ।। नै० 10/74

4 अस्या स चारुर्मधुरेव कारु श्वास वितेने मलयानिलेन ।
अमूनि सूनैविर्दधेऽड्गकानि चकार वाच पिकपञ्चमेन ।। नै० 10/130

5 इत्येव रागशब्दस्य व्युत्पत्तिरभिधीयते । रञ्जनाज्जायते रागो व्युत्पत्ति समुदाहृता ।। भरतकोश पृ० 923

6 मुखे तु मध्यमग्राम षड्ज प्रतिमुखे भवेत् । गर्भे साधारितश्चैव अवमर्शे तु पञ्चम ।।
सहारे कैशिक प्रोक्त पूर्वरड्गे तु षाडव । चित्रस्याष्टादशाड्स्य त्वन्ते कैशिकमध्यम ।।
शुद्धाना विनियोगोऽय ब्रह्मणा समुदाहृत ।। – भरतकोश, पृ० 542

7 मध्यमापञ्चमीजात्यो सम्भूत शुद्धपञ्चम । अशोऽसय पञ्चमो न्यासस्स्वल्पद्विश्रुतिकस्वर ।। –भरतकोश-कश्यपमत-पृ०- 666

8 मध्यमापञ्चमीजात काकल्यन्तरसयुत । पञ्चमाशग्रहन्यासो मध्यसप्तकपञ्चम ।।
ह्रस्यकामूर्च्छनापेतो गेय कामादिदैवत । चारुसञ्चारिवर्णश्च ग्रीष्मेदह्न प्रहरेऽग्रिमे ।
श्रृड्गारहास्ययो सधाववमर्शे प्रयुज्यते ।। -सड्गीतरत्नाकर-रागाध्याय पृ०- 95 अड्यार सस्करण

भिन्नागीति मे स्वर वक्र, सूक्ष्म, गमकयुक्त, माधुर्ययुक्त तथा गौडी गीति मे स्वरो की निविडता के साथ तीनों स्थानो मे गमकयुक्त सञ्चार होता है। बेसर गीति मे स्वरो का प्रयोग सवेग तथा रक्तपूर्ण होता है एव साधारण गीति इन चारो गीतियो का मिश्रित रूप होता है।

श्रीहर्ष सङ्गीतशास्त्र के पारिभाषिक शब्दमूर्च्छना एव तान तथा निषादराग (स्वर) से भी परिचित थे। निषाद स्वर का विवरण देते हुए कहते है कि राजाओ के कुल मे हाथी के समान नल के समीपवर्तिनी हथिनी के समान वीणा से निषाद स्वर से मधुर तथा उच्च नादनिकला[1] जिसमे बाइस श्रुतियो से युक्त (षड्ज) आदि के नाद प्रान्त से स्वर कम्पित हो जाता था तथा हाथ विचित्र चचलता धारण कर रहा था[2], दूसरे शब्दो मे राज शिरोमणि नल के पास वीणा, उच्च मधुर निषाद स्वर मे बज रही थी एव वादिका की अगुलिया द्रुत गति से तारो पर दौड रही थीं, तथा वीणा के ऊपर की खूटियॉ रह रहकर घुमायी जा रहीं थी, जैसे सकामा करिणी (हथिनी) गजेन्द्र के पास अपने शिर एव सूड हिलाती हुई चचलतापूर्ण क्रियाएँ करती हुई निषाद ध्वनि मे शब्द करती है "निषाद च गजाब्रूते"। स्वर सात माने गये है- षड्ज, ऋषभ, गाधार मध्यम पचम, धैवत और निषाद।[3] षड्ज मे मोर के स्वर का अनुकरण किया गया है, ऋषभ मे बैल के, गाधार मे अज के, मध्यम मे क्रौञ्च के, पचम मे कोकिल के, धैवत मे घोडे के स्वर और निषाद मे हाथी के स्वर का अनुकरण होता है जैसा कि भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र के अट्ठाइसवे अध्याय मे विवरण दिया है।[4] श्रुति स्वर का एक बहुत ही सूक्ष्म अश है। श्रुति की ही दो तीन या चार मात्राओ के योग से एक-एक स्वर की उत्पत्ति कल्पित की गयी है। वह सुनी जा सकती है, इससे उसका नाम श्रुति हुआ। श्रुति के बाइस भेद है- षड्ज 4 श्रुतियॉ, ऋषभ 3, गान्धार 2, मध्यम 4, पचम 4, धैवत-3, निषाद-2-श्रुतियॉ। श्रुतियो के बारे मे सङ्गीतदर्पण मे कहा गया कि –

श्रुतय स्यु स्वराभिन्ना श्रावणत्वेन हेतुना । कर्णस्पर्शात् श्रुतिर्ज्ञेया स्थित्या सैव स्वरोच्यते ।।
स्वरूपमात्र श्रवणान्नादोऽनुरणन बिना । श्रुतिरित्युच्यते, भेदास्तस्या द्वाविशतिर्मता ।।

मूर्च्छना एव तान का विवरण देते हुए श्री हर्ष कहते हैं कि शायद दमयन्ती का मधुर कण्ठ वीणादण्ड के समस्त उत्तम अशो को लेकर बनाया गया है, इसीलिए तो वीणा अपने अन्त को खोखला पाकर अपनी मूर्च्छनाओ मे लज्जित होकर कोण पकड लेती है।[5] भरत मुनि का कथन है कि क्रमयुक्त सात स्वरो को मूर्च्छना कहा जाता है, जिनमे क्रमश. छै एव पाच स्वर होते है उन्हे षाडविता और औडुविता

---

1 पुष्कलच्छिद्रस्य वीणादण्डस्य स्वरोतिगम्भीर प्रशस्ततरो भवति। नै० 21/128 की टीका

2. – नाद निषादमधुर ततमुज्जगार, साऽभ्यासभागवनिभृत्कुलकुञ्जरस्य मी ।
स्तम्बेर कृतसश्रुतिमूर्धकम्पा, वीणा विचित्रकरचापलमाभजन्ती ।। नै० २१/१२७
– नाद के बारे मे कहा गया है-
नकार प्राणनामान दकारमनल विदु । जात प्राणाग्निसयोगात्तेन नादोऽभिधीयते।। स०र० 1/3/6

3 – मुखे तु मध्यमग्राम षड्ज प्रतिमुखे भवेत् । गर्भे साधारितश्चैव अवमर्शे तु पञ्चम ।।
संहारे कैशिक प्रोक्त पूर्वरङ्गे तु षाडव । चित्रस्याष्टादशाङ्गस्य त्वन्ते कैशिकमध्यम ।।
शुद्धाना विनियोगोऽय ब्रह्मणा समुदाहृत ।। भरतकोश- पेज- 532
– उदात्ते निषादगान्धारावनुदात्तऋषभधैवतौ । स्वरित प्रभवाह्येते षड्जमध्यमपञ्चमा ।।
– षड्ज मयूरोवदति गावोराभन्ति चर्षभ । अजाविकेषु गान्धार क्रौञ्चोवदति मध्यमम् ।।
पुस्पसाधारणे काले कोकिला वक्ति पञ्चमम्। अश्वस्तु धैवत वक्ति निषाद वक्ति गुञ्जर ।। नारदीयशिक्षा

4 आसा षड्जनिषादधैवतपञ्चमध्यमगान्धारर्षभाद्या स्वरा इति नाट्य शा० पेज- 434

5 – द्वौ त्रयोवाऽपि चत्वार स्युताना रञ्जकस्वरा ।
सङ्गीतपारिजात ताना स्युमूर्च्छना शुद्धा षाडवौडुवितीकृता ।। स०र० 1/4/27
– आकृष्यसारमखिल किमुबल्लकीना तस्या मृदुस्वरमसर्जि न कण्ठनालम् ।
तेनान्तर तरलभावमवाप्य वीणा ह्रीणा ही न कोणममुचत्किमु वालयेषु ।। नै० 21/128

कहते है। साधारणकृता, काकलीयुक्त तथा अन्तरसयुक्त मूर्च्छनाएँ भी दोनो ग्रामो मे होती है।[1] आचार्य शार्ङ्गदेव ने स्पष्ट रूप से कहा कि स्वर समूह 'ग्राम' कहा जाता है जो मूर्च्छना आदि का आश्रय होता है।[2] मूर्च्छना उभारना एव आरोह के साथ-साथ अवरोह भी है क्योकि एक स्वर से आरम्भ करके उसी कम से सातवे स्वर तक आरोह करने के पश्चात् उसी मार्ग से अवरोह करने को मूर्च्छना कहते है।[3] आचार्य भरत ने केवल षड्ज और मध्यम ग्रामो को आधार मानकर चौदह प्रकार की मूर्च्छनाओ का उल्लेख किया है। वे है षड्जग्राम की सात मूर्च्छनाएँ उत्तरमन्द्रा, रजनी, उत्तरायता, शुद्धषड्जा, मत्सरीकृता, अश्वक्रान्ता अभिरूद्गता एव मध्यमग्राम की सात मूर्च्छनाएँ-सौवीरी, हारिणाश्वा, कलोपनता, शुद्धमध्या, मार्गी, पौरवी तथा हृष्यका।[4]

परन्तु कुछ परवर्ती ग्रन्थो एव जैन ग्रन्थो मे गान्धार ग्राम की भी सात मूर्च्छनाओ का विवरण मिलता है यथा- नन्दा, विशाला, सुमुखी, विचित्रा, रोहिणी, सुखा एव अलापा। ध्यातव्य है कि जहॉ भरत मूर्च्छना को चौदह प्रकार का मानते है, वही दत्तिल एव मतङ्ग चौसठ प्रकार का, जबकि आचार्य शार्ङ्गदेव, पण्डितमण्डली, कुम्भ आदि ने मूर्च्छना को चार प्रकार का (शुद्धा, अन्तरसहिता, काकलीसहिता और अन्तरकाकलीसहिता मानते हैं। मूर्च्छना एव तान मे अन्तर समझने के लिए यह कहा जा सकता है कि सात स्वरो का प्रयोग होने पर मूर्च्छना एव उससे कम अर्थात् पॉच या छै स्वर जब प्रयुक्त हो रहे हो, तो वह मूर्च्छना न होकर तान कहलाती है।[5] मूर्च्छना की षाडवित एव औडुवित अवस्था ही तान है। मूर्च्छनाजन्य ताने चौरासी है उनमे उनचास षाडव तथा पैतीस औडुव है।[6] उपर्युक्त विवरण से ध्वनित होता है कि श्रीहर्ष गीत एव सङ्गीतशास्त्र मे प्रयुक्त विभिन्न पारिभाषिक शब्दो के भी जानकार थे। गीतो (ध्रुवागीतो) मे सर्वप्रथम आलाप गान, तदनन्तर वाद्य और उसके बाद छन्दगान यही क्रम माना जाता है।[7] गीतो के साथ वाद्यो का वादन किस स्थान से आरम्भ किया जाये, इस सम्बन्ध मे भरतमुनि ने विस्तारपूर्वक निर्देश किया है।[8] मूर्च्छना का वर्णन महाकवि कालिदास ने मेघदूत मे[9] एव महाकवि माघ ने शिशुपाल वध[10] मे किया है, जो अत्यन्त मनोहारी शैली मे है।

---

1 क्रमयुक्ता स्वरास्सप्त मूर्च्छनास्त्वभिसञ्ज्ञिता । षट्पञ्चकस्वरास्तासा षाडऔडुविता स्मृता ॥
साधारणकृताश्चैव काकलीसमलकृता । अन्तरस्वरसयुक्ता मूर्च्छना ग्रामयोर्द्वयो ॥ नाट्यशास्त्र 28/34,35

2 – ग्राम स्वरसमूह स्यान्मूर्च्छनादे समाश्रय । -सङ्गीतरत्नाकर 1/4/1
– क्रमात्स्वराणा सप्तानामारोह श्चावरोहणम्।
सामूर्च्छेत्युच्यते ग्रामस्था एता सप्त सप्त चे।। शिशुपालबध, 1/10 की टीका में मल्लिनाथ की टिप्पणी

3 क्रमात् स्वराणा सप्तानामारोहश्चावरोहणम् । मूर्च्छनेत्युच्यते ग्रामत्रये ता सप्त सप्तचा।। सङ्गीतरतनाकर, पृ० 1/4/9

4 आदावुत्तरमन्द्रा स्याद्रजनी चौत्तरायता । चतुर्थी शुद्धषड्जा च पञ्चमी मत्सरीकृता ॥
अश्वक्रान्ता तथा षष्ठी सत्पमी चाभिरूद्गता । षड्जग्रामाश्रिता ह्येता विज्ञेया सप्तमूर्च्छना ॥
सौवीरी हारिणाश्वाथ स्यात्कलोपनता तथा शुद्धामध्या तथा चैव मार्गी स्यात् पौरवी तथा
"हृष्यका चेति विज्ञेया सप्तमी द्विजसप्तमा" मध्यमग्रामजा ह्येता विज्ञेया सप्तमूर्च्छना ॥ नाट्यशास्त्र 28/30- - - 33

5 एकद्विस्वरलोपेन षाडवौडुविकीकृता। ताना स्युर्मूर्च्छना शुद्धा ग्रामद्वयमुपाश्रिता ॥ भरतकोश (पण्डितमण्डलीमत) पृ०501

6 तत्र मूर्च्छनासश्रितास्तानाश्चतुरशीति । तत्र एकोनपञ्चाशत् षट्स्वरा पञ्चत्रिंशत् पञ्चस्वरा। नाट्यशास्त्र अध्याय 28, पृ०- 436

7 पूर्वगान ततो वाद्य ततो वृत्त प्रयोजयेत् । गीतवाद्याङ्गसम्बन्ध प्रयोग इति शसित ॥ नाट्यशास्त्र 32/403

8. नाट्यशास्त्र 32/436-442

9 उत्सङ्गे वा मलिनवसनेसौम्य! निक्षिप्य वीणां मदोत्राङ्क विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा ।
तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलै सारयित्वा कथञ्चिद्भूयो भूय स्वयमपि कृता मूर्च्छना विस्मरन्ती।। उत्तरमेघ-26

10 रणद्भिराघट्टनया नभस्वत पृथग्विभिन्नश्रुतिमण्डलै स्वरै ।
स्फुटीभवद्ग्रामविशेषमूर्च्छनामवेक्षमाण महतीं मुहुर्मुहु ॥ शिशुपाल बध 1/10

वाद्य

सगीतशास्त्र मे वाद्यो का महनीय स्थान है। वाद्य वे उपकरण है जिनके माध्यम से गायक एव नर्तक अपनी भाव भङ्गिमाओ, स्वर एव कण्ठध्वनि को गतिप्रदान करने मे सफल होते है। चाहे सुगम सगीत हो या लोकसगीत, चाहे राष्ट्रीय सगीत हो या शास्त्रीय सगीत सभी के सुचारू गायन मे वाद्यो का सहयोग अपेक्षित होता है। वाद्य शास्त्रीय सगीत के तो प्राण तत्व ही है। भरतमुनि ने नाटक को सजीव एव शुभफलदायक बनाने के लिए वाद्य एव सगीत का विधान किया, अन्य अनेक स्थानो पर वाद्यो के प्रयोग शुभ एव सफलता सूचक माना है। यथा-

> उत्सवे चैत्र यानेच नृपाणा मङ्गलेषु च । शुभकल्याणयोगे च विवाह करणे तथा ।।
> उत्पाते सभ्रमे चैव सग्रामे पुत्रजन्मनि । ईदृशेषु च कार्येपु सर्वतोद्यानि वादयेत् ।।
> स्वभावगृहवार्तायामल्पभाण्ड प्रयोजयेत् । उत्थान काव्यबन्धेषु सर्वतोद्यानि वादयेत् ।
> अङ्गाना तु समत्वार्थ छिद्रप्रच्छादने तथा । विश्रामहेतो शोभार्थ भाण्डवाद्य विनिर्मितम् ।।[1]

श्री हर्ष ने भी वाद्यो को शुभ एव मगलसूचक मानते हुए नैषधीयचरित मे विविध वाद्यो का उल्लेख किया है। महाराज भीम ने अपनी पुत्री के विवाह महोत्सव मे सहर्ष मागलिक वाद्य बजवाए। नल दमयन्ती ने ईर्ष्यालु राजाओ के दुर्वचन को न सुनने हेतु मगलध्वनिकारी वाद्य बजवाए एव अपने शिविरो को जाते हुए राजाओ ने भी सहर्ष मगलवाद्य बजवाए।[2] पुत्र पुत्री के विवाहावसर मे गीत गायन एव मगलवाद्य बजवाने की परम्परा प्राचीनकाल से लेकर मध्यकाल एव आधुनिक काल तक चली आ रही है। उस परम्परा निर्वाह को श्रीहर्ष ने बखूबी चित्रित किया है। सगीत रत्नाकरकार भी यहीं मन्तव्य है।[3] वर के वधू के घर आने पर वधू घर मे उसके स्वागत एव सम्मान मे सगीतवादन की परम्परा आज भी निर्वाहित हो रही है। राजा भी के महल मे भी वर (नल) के आने के समय घडी घण्टे उच्च ध्वनि मे बजने लगे, वीणा आदि का स्वर दिग-दिगन्त मे व्याप्त होने लगा, शहनाई का उच्चमधुर स्वर निकलने लगा, तथा ढोल एव मृदङ्गो का अपार नादस्वर गूजने लगा। यथा-

> तदा निसस्वानतमा घन घन ननाद तस्मिन्नितरा तत ततम् ।
> अवापुरूच्चै सुषिराणि राणितामममानमानद्धमियत्तयाध्वनीत् ।।[4]

अमरकोश मे उल्लेख आया है कि –

"तत वीणादिक वाद्यम् आनद्धमुरजादिकम् वशादिक तु सुषिर कास्यतालादिकघनम्।।

उपर्युक्त नैषध के श्लोक के विवरण से यह सिद्ध हो जाता है कि श्रीहर्ष ने भरतमुनि द्वारा कथित चार प्रकार के वाद्य यत्रो को प्रमुख रूप से अपनाया है। वे हैं, तत (तत्रीवाद्य), अवनद्ध (आनद्धवाद्य), घनवाद्य एव सुषिर वाद्य।[5] इन चारो वाद्यो का लक्षण देते हुए भरत मुनि ने कहा कि तत तत्रीवाद्य से, अवनद्ध पुष्करवाद्य से घन तालवाद्य से एव सुषिर वशीवाद्य से सम्बन्धित वाद्य है।[6] इनमे तत और सुषिरवाद्य मुख्यत स्वर वाद्य है एव अवनद्ध एव घन लय वाद्य। स्वर के मूल मे लय और लय के मूल में स्वर होते है।

---

1 नाट्यशास्त्र 34/18 21

2 सानन्द तनुजाविवाहनमहे भीम स भूमीपतिर्वैदर्भीनिषधेश्वरौ नृपजनानिष्टोक्तिनिर्मृष्टये ।
स्वानि स्वानि धराधिपाश्च शिबिराण्युद्दिश्य यान्त क्रमा देको द्वौ बहवश्चकासृजत स्मातेनिरे मङ्गलम्।। नै० 14/100

3 नृत्य वाद्यानुग प्रोक्त वाद्य गीतानुवृत्ति च। सङ्गीतरत्नाकर 1/24

4 नै० 15/16

5 तत चैवावनद्ध च घन सुषिरमेव च । चतुर्विध तु विज्ञेयमातोद्य लक्षणान्वितम् ।। नाट्यशास्त्र 28/1

6 तत तत्रीकृत ज्ञेयमवनद्ध तु पौष्करम् । घन तालस्तु विज्ञेय सुषिरो वश एव च ।। नाट्यशास्त्र 28/2

इसलिए व्यावहारिक दृष्टि से भिन्न होने पर भी इन्हे मौलिक दृष्टि से एक ही कहा जा सकता है। कोहल ने पॉच के वाद्य माने, उन्होने कहा कि वाद्यो के द्वारा उत्पन्न सगीतात्मक ध्वनियॉ पाच रूपो मे प्रस्फुटित होती है- नखज, वायुज, चर्मज, लोहज तथा शरीरज।[1] वीणा आदि नखज वाद्य है, वशी आदि वायुज, मृदङ्ग आदि चर्मज, ताल, मजीरा, आदि लोहज तथा कण्ठ ध्वनि शरीरज वाद्य है। इन पञ्चविध ध्वनियो को उत्पन्न करने वाले वाद्य "पञ्चमहावाद्य" शब्द से अभिहित होते है। नारदीय शिक्षा मे यह उल्लेख मिलता है कि इसमे अन्तिम मानवकण्ठ ईश्वरनिर्मित तथा नैसर्गिक है, एव शेष चार मानव निर्मित।[2] नारद ने जहा वाद्यो के तीन प्रकार माने[3] वहा दत्तिल ने वाद्यो के चार प्रकार माने[4] परन्तु वाद्यो के प्रकारो के विषय मे आचार्य भरत का वर्गीकरण ही सर्वाधिक उचित एव मान्य सिद्ध होता आया है। श्री हर्ष ने भी भरत के मतानुसार ही वाद्यो का विवरण नैषधीयचरित मे दिया है जिससे जाहिर है कि नैषधकार सङ्गीतशास्त्र मे प्रयुक्त विविध वाद्यो के भी जानकार थे।

तत वाद्य

तत वाद्य को तत्रीवाद्य भी कहा जाता है। इस वर्ग के वाद्ययत्र मे तन्त्री से साङ्गीतिक स्वर उत्पन्न होता है। इस वाद्य के अन्तर्गत सभी प्रकार की वीणाऍ, सारगी, सितार, स्वरमण्डल, सरोद, इसराज, दिलरुबा, शन्तूर तथा कानून आदि वाद्य आते है। ततवाद्यो मे प्रमुख स्थान वीणा को ही दिया गया है। शतपथ ब्राह्मण मे वीणा का उल्लेख मिलता है।[5] वीणा के उन्नीस भेद नारद रचित सङ्गीतमकरद मे मिलते है यथा- कच्छपी, कुब्जिका, चित्रा, बहन्ती, परिवादिनी, जया, घोषवती, ज्येष्ठा, नकुली, महती, वैष्णवी, ब्राह्मी, रौद्री, कूर्मी, रावणी, सारस्वती, किन्नरी, सैरन्ध्री, घोषका। श्रीहर्ष के पारवर्ती ग्रथ सङ्गीतरत्नाकर (13वीं शताब्दी) मे वीणा के अन्य अनेक नाम मिलते है जैसे- एकतत्री, द्वितत्री, त्रितन्त्री, सप्तत्री, औदुम्बरी, अनालम्बी, आलापिनी, अलाबु, काण्ड, कात्यायनी, कलावती, दण्डी, विपञ्ची पिनाकी, निःशङ्क, प्रभावती, मत्तकोकिला वृहती एव तुम्बरू आदि ग्रथ के तीसरे प्रकरण कुपित विन्यास मे 18 वीणाओ के नाम तथा वाद्याध्याय मे 11 वीणाओ की नामावली दी गयी है।[6] नाटयशास्त्र मे उपलब्ध विवरण से पता चलता है कि भरत को केवल दो प्रकार की वीणाऍ ही अभीप्सित थीं वे है- चिन्ता (चित्रा), एव विपञ्ची।[7] वैसे सगीतशास्त्र के विविध ग्रथो के अनुशीलन से पता चलता है कि वीणाऍ मुख्यत दो प्रकार की होती है, शरीरी एव दार्वी। मानव शरीर (कण्ठ) को भी वीणा माना गया है एव दारू (लकडी) से बनने वाली वीणा। श्रीहर्ष ने नैषधीयचरित मे प्रमुख रूप से दो प्रकार की वीणाओ का उल्लेख किया है वे है परिवादिनी वीणा एव विपञ्ची वीणा। परन्तु सरस्वती वर्णन प्रसङ्ग में सङ्केत रूप में उन्होने सरस्वती की वीणा का भी वर्णन किया।[8] जिसे सुधाकलश तथा विद्या विलासी पडित ने कच्छपी वीणा भी कहा है।[9]

---

1 अनाहत आहतश्चेति द्विविधो नादस्तत्र । सोप्याहत पञ्चविधो नादस्तु परिकीर्तित।
नखवायुजचर्माणि लौहशारीरजास्त था ॥ सगीत चूणामणि, पेज- 69 (बडौदा सस्करण)

2 नारदीय शिक्षा-एकम् ईश्वरनिर्मित नैसर्गिकम् अन्यच्चतुर्विध्य मनुष्य निर्मित चेति
पञ्चप्रकारा महावाद्यानाम्, सङ्गीत चूडामणि पेज- 69

3 भरतकोष- नारदमते चार्मण तान्त्रिक घनं चेति त्रिधावाद्यलक्षणम्- सङ्गीतचूडामणि- पेज- 69

4 दत्तिलेन तु आनद्ध तत, घन सुषिरचेति चतुर्विधवाद्य कीर्तितम्, सङ्गीत चूडामणि- पेज- 69

5 तस्यै प्रयाजेषु तापमानेषु ब्राह्मणे वीर्णा गार्था दक्षिणत उत्तरमन्द्रामुदाघ्न स्त्रिस स्वय सभ्रता गाथा गायति- श०ब्रा० 13/4/2/8

– वाण शततन्तु भवति- तै० स० 7/5/9/2, वीणा का उल्लेख तै०ब्रा० (3/13) एव वा०स० (30/19) एव ऋग्वेद (10/50/1) में भी मिलता है।

6 सङ्गीतरत्नाकर, अध्याय- 6,9, 10 आननदाश्रम सस्करण

7 सप्ततत्रीभवे चिन्ता (चित्रा) विपञ्चीभिभवे तथा। कोणवाद्या विपञ्ची स्याद्द्वित्रा चाङ्गुलिवादनात्।।नाट्यशास्त्र 29/124

8 तत्कर्णौ भारती दूनौ विरहाद्भीमजागिराम् । अध्वनि ध्वनिभिर्वैणैरनुकल्पैर्व्यनोदयत्।। नै० 17/12

9 सरस्वत्यास्तु कच्छपी''- भारतीय सङ्गीत वाद्य, पेज- 36 में उद्धृत्।

परिवादिनी बीणा -

नारद ने अपने सङ्गीतमकरन्द मे इस वीणा का वर्णन किया है। इसमे सात तार होते है।[1] यतिमानपाद खण्ड, तथा अभिधान चिन्तामणि प्रभृति कोषो मे इसका विवरण मिलता है। श्रीहर्ष इस वीणा का वर्णन करते हुए लिखते है कि वीणा से भी मधुर स्वरयुक्त दमयन्ती का कण्ठ सात लडकियो के मुक्ताहार से सुशोभित हो रहा था, पहले तो दमयन्ती के कण्ठ को स्वर माधुर्य की समता के कारण वीणा कहा जा सकता है। (क्योकि मानव शरीर मे कण्ठ को वीणा सङ्गीतशास्त्रियो ने माना है) किन्तु किस प्रकार की वीणा कहा जाय, इसका कोई निश्चय नहीं था परन्तु अब मोतियो की सात लडियो रूपी सात तारो से युक्त होने के कारण यह स्पष्ट ही हो गया कि यह सात तारो वाली वीणा परिवादिनी है।[2] स्पष्ट है कि श्रीहर्ष को शरीरज एव दार्वी दोनो प्रकार की वीणाओ का ज्ञान था। परिवादिनी वीणा के नाम को स्पष्ट करते हुए नैषधकार कहते है कि वीणा का नाम परिवादिनी इसलिए हो गया क्योकि दमयन्ती तो समस्त कलाओ एव गुणो की निधि थी, तथा वीणा उसकी समता करने के लिए अपने स्वर उससे मिला रही थी। वीणा की इसी धृष्टता का वडा परिवाद (निन्दा) हुआ, सम्भवत इसीलिए वीणा का नाम परिवादिनी पड गया।[3] माघ ने अपने ग्रथ शिशुपाल वध[4] मे एव कालिदास ने रघुवश[5] मे इस वीणा का विवरण दिया है।

विपञ्ची वीणा -

इस वीणा का विवरण देते हुए श्रीहर्ष कहते है कि भीम के महल मे नल की बारात के स्वागत एव मगल स्थापना हेतु बजने वाले वाद्यो मे (विपञ्ची) वीणा का स्वर वशी के स्वर से दब नहीं गया था, अर्थात् वशी के स्वर से उच्च स्वर मे विपञ्ची का स्वर गुञ्जायमान हो रहा था।[6] प्रथम नाट्याभिनय मे ब्रह्मा से वाद्यवादन की शिक्षा प्राप्त करने वाले 'स्वाति', विपञ्चीवादक के रूप मे जाने जाते है। विपञ्ची वीणा मे नौ तन्त्रियॉ होती है। जिन पर क्रमश षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत, निषाद, काकलि निषाद तथा अन्तर, गान्धार की स्थापना की जाती थी। यथा-

विपञ्च्या नवतन्त्रीषु स्वरा सप्ततथापरौ। काकल्यन्तरसञ्ज्ञौ च द्वौ स्वरा विस्मयानि च।।[7]

वाल्मीकि ने भी इस वीणा का विवरण रामायण मे दिया है।[8] आचार्य भरत का कथन है कि विपञ्ची का वादन ॲगुली अथवा कोण से किया जाता है।[9] इस द्विविध वादन प्रक्रिया के कारण आगे चलकर यह दो भिन्न रूपो मे विकसित हुई। ॲगुलियो से बजाये जाने पर उसकी प्रकृति स्वरमण्डल से मिलती थी तथा कोण से बजाये जाने पर उसकी ध्वनि कानून अथवा आधुनिक सन्तूर से मिलती है। इस कारण एक तरफ तो यह इक्कीस तन्त्री (तारो) वाली मत्तकोकिला वीणा (स्वरमण्डल) तथा त्रितन्त्री वीणा

---

1 सप्तभि तन्त्रिभि (वीणा) दृश्यते परिवादिनी। वाद्य प्रकाश- 30 ततवाद्यानि (पाण्डुलिपि) भारतीय सगीत वाद्य, 46 मे उद्धृत्।

2 स्वरेण वीणेत्यविशेषण पुरा स्फुस्तदीया खलु कण्ठकन्दली।
अवाप्य तन्त्रीरथ सप्त मुक्तिकासरानराजत्परिवादिनी स्फुटम् ।। नै० 15/44

3 सा यद्भुताखिलकलागुणभूमभूमीभैमीतुलाधिगतये स्वरसगतासीत्।
त प्रागसावविनय परिवादमेत्य लोकेऽधुनापि विदिता परिवादिनीति ।। नै० 21/126

4 मधुकरैरपवादकरैरिव, स्मृतिभुव पथिका हरिणा इव।
कलतया वचस परिवादिनी स्वरजिता रजिता. वशमाययु ।। शिशुपालवध 6/9

5. भ्रमरैः कुसुमानुसारिभि. परिकीर्णा परिवादिनी मुने । ददृशे पवनावलेपज सृजती वाष्पमिवाञ्जनाविलम् ।। रघुवश 8/35

6. विपञ्चिराच्छादि न वेणुभिर्न ते प्रणीतगीतैर्नच तेऽपि झर्झरै. ।
न ते हुडुक्केन न सोऽपि ढक्कया न मर्दलै सापि न तेऽपि ढक्कया ।। नै० 15/17

7 भरत भाष्य (पाण्डुलिपि) भारतीय सगीतवाद्य, पृष्ठ 53 में उद्धृत्

8 विपञ्चीं परिगृह्यान्या नियता नृत्तशालिनी। निद्रावशमनुप्राप्ता सहकान्तेव भामिनी ।। रामायण (सुन्दरकाण्ड)-10/41 गीता प्रेस

9 नाट्यशास्त्र 29/124

के विकसित रूप अनिबद्ध तम्बूरा मे तथा दूसरी तरफ कानून एव सन्तूर मे समाहित हो गयी। इसलिए मूल रूप मे यह स्वय ही तिरोहित हो गयी।

भारतीय सङ्गीतशास्त्र मे वीणा के अस्तित्व का विवेचन -

तत वाद्यो की परम्परा की प्राचीनता के बारे मे इतना ही कहा जा सकता है कि भारत मे यह परम्परा उतनी ही प्राचीन है जितनी वैदिक परम्परा। अर्थात् वीणा वेदकालीन वाद्य है। इस परम्परा मे प्रयुक्त वीणा के लिए वैदिक वाङ्गमय मे 'वाण' शब्द का प्रयोग हुआ है।[1] सामवेद भारतीय सगीत का उत्स है। ऋग्वेद के हिरण्यकेशी सूक्त मे प्राप्त कुछ तत वाद्यो को 'आघाटी' पद से भी पुकारा गया है।[2] जहा ऋग्वेद एव काठक सहिता मे काण्डवीणा का उल्लेख प्राप्य है[3] वहॉ ऋग्वेद सायणभाष्य) मे मरूद्वीणा का[4] एव तैत्तरीय ब्राह्मण मे वीणा वादन' का विवरण भी मिलता है[5] शतपथ ब्राह्मण मे वीणा के तन्तुओ के उत्तरमन्द्रा (षड्जग्राम की प्रथम मूर्च्छना) मे मिलाये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है। बृहदारण्यकोपनिषद् मे वीणा, वीणावादक एव वीणावादन की चर्चा मिलती है।[6] सूत्रकाल मे वीणा के नये-नये रूप विकसित हुए। शाङ्खायन श्रौतसूत्र[7] मे 'शततन्त्रीवीणा' का उल्लेख प्राप्य होता है। लाट्यायन श्रौतसूत्र मे 'अलाबुवीणा' तथा शीलवीणा पर सामगान के विधियो का वर्णन मिलता है। आजकल जिसे हम हार्य या स्वर मण्डल भी कहते है। कात्यायन श्रौतसूत्र मे उसी को कात्यायन वीणा या शततत्री वीणा कहा जाता है। पाणिनीय शिक्षा[8] मे भी अलाबुवीणा' का विवरण मिलता है तथा ऐतरेय आरण्यक मे देवी वीणा का उल्लेख मिलता है[9] उसकी बनावट का भी स्वतत्र ढग वर्णित है जिसे आज हम मिजराव कहते है, ऐतरेय आरण्यक मे उसे 'रवी' कहा गया है।[10] वाजसनेयि सहिता मे नरमेध यज्ञ के अवसर पर वीणागाहगान के उल्लेख के साथ-साथ दूसरे वाद्यो का भी वर्णन मिलता है।[11] तैत्तरीय ब्राह्मण मे वीणा का एक नाम वाण भी दिया गया था जो शततन्तु युक्त होती थी।[12] रामायण मे लवकुश को वीणा के साथ गायन करते दिखाया गया है।[13] किन्तु उस प्रसग मे किसी वीणा का नाम नहीं दिया गया, सभवत वहॉ तत्री को ही वीणा कहा गया है, परन्तु सुन्दरकाण्ड[14] मे विपची वीणा और किष्किन्धा काण्ड मे किन्नरी वीणा का नाम मिलता है। हरिवश पुराण मे नारद की वीणा का नाम 'वल्लकी' दिया हुआ है जिसमे से सात स्वर मूर्च्छना से निकलते थे।[15] ब्रह्मपुराण मे दक्ष ने महादेव की स्तुति मे 'तुम्बी वीणा' का उपयोग किया था[16] मार्कण्डेय पुराण मे आया है कि कवल और अश्वतर, दोनों नागपुत्रो ने वीणावादन से शकरजी की आराधना की थी,

---

1 वाण शततन्तुर्भवति- तै० ब्रा०- 7/5/9-2
2 ऋग्वेद- 10/146/2
3 काठक सहिता- 34-5, ऋग्वेद-2/43/3
4 ऋग्वेद सहिता (सायणभाष्य) 8/20/8
5 वीणापाद गणक गीतायै-तै० ब्रा० 3/4/1/15
6 वीणायास्तु ग्रहणेन वीणावादस्य वा शब्दो गृहीत। वृ०उ० 4/5/10, 2/4/7-9
7 शाङ्खायन श्रौतसूत्र 17/1/3
8 लाट्यायन श्रौतमूत्र 4/2/1-10
9 पाणिनीय शिक्षा श्लोक-23
10 ऐतरेय आरण्यक- 3/2/5
11 वाजसनेयि सहिता 30/19/20
12 तै०ब्रा० 7/5/9/2
13 रामायण- बालकाण्ड-4/8
14 रामायण- सुन्दरकाण्ड-10/41
15 हरिवश पुराण- 1/48/35
16 ब्रह्मपुराण- पेज-341

यहॉ वीणा को वीणा नाम ही दिया गया है।[1] भागवत पुराण मे विवरण मिलता है कि नारद स्वरवर्ण से अलकृत वीणा बजाकर हरिगान किया करते थे।[2] देवीपुराण के 45वे अध्याय मे वीणावादन द्वारा नीलकण्ठ की स्तुति मिलती है। वृहद्धर्मपुराण मे नारद द्वारा वीणा के तार छेडकर गान करने का वर्णन मिलता है।[3] इसी सदर्भ मे राग रागिनियो के विविध परिवारो का भी वर्णन मिलता है। नारद पाचरात्र मे नारद वीणावादन द्वारा श्रीकृष्ण का गुणगान करते हुए दिखाये गये है।[4] भरत के नाट्यशास्त्र मे चित्रा एव विपञ्ची वीणा का वर्णन मिलता है।[5] श्रीहर्षकृत नैषधीयचरित मे सारस्वती, कच्छपी, परिवादिनी एव विपञ्ची वीणा का वर्णन किलता है।[6] श्री हर्ष के समकालीन नारदीय शिक्षा, चत्वारिशद् रागनिरूपण, सगीतमकरद (11वीं शताब्दी के बाद के ग्रथ) मे सगीत वाद्यो का वर्णन मिलता है। नारदीय शिक्षा मे दारवी एव गात्रवीणा पर विस्तार से वर्णन मिलता है।[7] सङ्गीतमकरद मे सगीत की विधियो के साथ-साथ 19 वीणाओ के नाम दिये गये है। पार्श्वदेव के सङ्गीतसमयसार (11वीं, 12वीं शताब्दी) मे वीणा के चार नये नामो अलावणी, किन्नरी, लघुकिन्नरी एव वृहत्किन्नरी के वर्णन के साथ वृहत्किन्नरी मे तीन तुम्बाओ एव लघुकिन्नरी मे दो तुम्वाओ के प्रयोग होने[8] तथा वीणाओ के बनाने की विधि का वर्णन मिलता है।[9] शाङ्र्गदेव के सगीतरत्नाकर (13वीं शताब्दी) से प्रभावित सगीत के ग्रथ वीणाप्रपाठक मे 15 वीणाओ का वर्णन मिलता है।[10] सत्रहवीं शताब्दी मे रामरात्य ने स्वरमेलकलानिधि, नामक ग्रथ लिखा। बाद मे सोमनाथ का रागविबोध, (1625 ई0) दामोदरपडित (1625 ई0) सगीत दर्पण, अहोवल पडित (17वीं शताब्दी) के सगीतपारिजात मे (स्वर साधना वर्णन), राणा कुम्भा (18वीं शताब्दी) वाद्यरत्नकोश, राधाकान्त देव (19वीं शताब्दी) शब्दकल्पद्रुम (मे 30 वीणाओ का वर्णन), श्रीकृष्ण पडित की रसकौमुदी एव राधाकान्त के समकालीन श्रीकृष्णानद व्यास (19 वीं शताब्दी) के राग कल्पद्रुम मे 22 वीणाओ का वर्णन मिलता है। स्पष्ट है कि सगीत विद्या का उत्तरोत्तर विकास होता गया। वीणावादन मे नारद और तुम्बरू प्राचीन काल से ही ख्याति प्राप्त पद्वी मे आरूढ रहे है। इस प्रकार स्पष्ट है कि तत वाद्य मे वीणा वादन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन सिद्ध होती है। याज्ञवल्क्यस्मृति मे वीणा वादन के महत्व को प्रतिपादित हुए याज्ञवल्क्यमुनि ने यहॉ तक कह डाला कि सङ्गीत के द्वारा अनायास मोक्ष की प्राप्ति होती है। यथा-

वीणावादनतत्वज्ञ श्रुतिजातिविशारद। तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्षमार्ग च गच्छति ।।[11]

आनद्ध (अवनद्ध वाद्य) -

सङ्गीतशास्त्रीय चतुर्विध वाद्यो मे द्वितीय प्रकार के वाद्य अवनद्धवाद्य का भी अप्रतिम महत्व है। ऐसे वाद्य जो भीतर से खोखले (पोले) तथा चमडे से मढे हुए होते हैं तथा हाथ या अन्य किसी वस्तु द्वारा ताडन करने से शब्द (आवाज) उत्पन्न करते हैं वे अवनद्ध या आनद्ध वाद्य कहलाते हैं। भरत के

---

1 मार्कण्डेयपुराण- पेज- 103
2 भागवत माहात्म्य 6/33
3 वृहद्धर्मपुराण- अध्याय- 24, पेज- 309
4 नारद पाञ्चरात्र 1/66, पेज- 72
5 नाट्यशास्त्र 29/124
6 नैषधीयचरित- 17/12, 15/44, 21/126, 15/17
7. नारदीय शिक्षा - श्लोक-12-19।
8 सङ्गीतसमयसार, अध्याय-5, पृ० 41 (त्रिवेन्द्रम सस्करण)
9 सङ्गीतसमयसार, अध्याय-5, श्लोक 13-63
10 सङ्गीतरत्नाकर, अध्याय-6,9 10, (आनन्दाश्रम सस्करण)
11 याज्ञवल्क्यस्मृति - 2/4/115

.ट्यशरत्र मे अवनद्धवाद्यो के अन्तर्गत पुष्करवाद्यो का भी वर्णन मिलता है। भरतमुनि ने अवनद्ध जाति के वाद्यो की सख्या 100 बतायी है लेकिन वर्णन उन्होने केवल पुष्कर वाद्यो का ही किया है परन्तु पुष्करवाद्यो के वर्णन से ही आनद्ध वाद्यो का वर्णन भी प्रकृत्या हो जाता है। मानसोल्लास, सड्गीतरत्नाकर, सडगीतपारिजात इत्यादि ग्रथो मे निम्न प्रमुख अवनद्धवाद्यो का उल्लेख मिलता है जैसे- मृदड्ग, मर्दल, मुरज, पुष्कर, हुडुक (आवाज), पटह, हुडुक्का, ढक्का, सेल्लुका, कुडुवा, डमरु, करटा, ढक्कली, घटम, भेरी, दुन्दुभि, निसाण, तम्बकी, घडस, त्रिवली, रूज मण्डिडक्का, झल्लरी, पण, चक्रवाद्य, तबला, दर्दर (दर्दुर), पणव आदि।

श्रीहर्ष ने भी नैषधीयचरित मे अवनद्ध वाद्यो का विवरण दिया है।[1] नैषधकार लिखते है कि कुण्डिनपुरी मे वर रूप मे नल के आने पर घडी, घण्टे, वीणा, शहनाई, ढोल एव मृदड्ग बज उठे। वीणा का स्वर वशी के स्वर से उच्च था एव कण्ठगीत से वशी की ध्वनि उच्च थी। झझरी से कण्ठगीत, हुडुक से झझरी, डफले से हुडुक, तथा मृदड्ग से डफला और डफले से मृदड्ग की ध्वनि सड्क्रमित नहीं थी,[2] अर्थात् प्रत्येक वाद्य स्वर सगति के साथ बजते हुए भी वादक के कौशल से अपनी ध्वनि स्पष्ट दे रहे थे। अनेक प्रकार के वाद्यो का स्वर दिग् दिगन्त मे प्रसृत हो गया था।[3] अवनद्धवाद्य मे ही (बडे ढोल) काहलवाद्य का ही वर्णन करते हुए श्रीहर्ष कहते है कि नल ने सभी देवताओ की पूजा अर्चना के समय मे भगवान शकर की धतूर पुष्प से पूजा की। उनकी पूजा पद्धति से ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो नल ने अपने तथा अपने स्वामी भगवान शिव (महाकालेश्वर) के प्रतिद्वन्द्वी मदन को जीत कर उसके कुसुमास्त्र तथा काहलवाद्यकी (बडे ढोल) को छीनकर स्वामी को समर्पित किया हो।[4] मृदड्ग का वर्णन करते हुए नैषधकार कहते हैं कि जब दमयन्ती स्वयम्बर सभा मे नल को वर रूप मे प्राप्त करने के लिए आयी उस समय भीममहल की धवल गृह पक्तियॉ मगल मृदड्गो की उच्च ध्वनि का सम्पूर्ण रूप से प्रतिशब्द करके अपनी गम्भीरता का परिचय देती हुई अपनी चचल पताका द्वारा मानो लोगो से अपनी नृत्यकला के पाण्डित्य का अभिनय कर रही थीं।[5] इस प्रकार श्रीहर्ष ने अवनद्ध वद्यो मे भी प्रमुख वाद्यो यथा- मृदड्ग, हुडुक, डफला, ढक्कली, मर्दल, ढोल, इत्यादि का वर्णन किया है।

नैषधीयचरित में उपलब्ध प्रमुख अवनद्ध वाद्यों का वर्णन -

(1) मृदड्ग:-

इस वाद्य का प्रयोग विशेष रूप से शास्त्रीय सड्गीत मे होता है। यह लकडी से बना तथा चमडे से मढा होता है। रामायण काल मे अवनद्ध वाद्यों मे सर्वाधिक प्रचार मृदड्ग का था परन्तु रामायण मे मृदड्ग के साथ मुरज के भी होने का उल्लेख मिलता है।[6] भरत ने मृदड्ग एव मुरज को पर्याय माना है।

---

1 तदा निसस्वानतमा घन घन ननाद तस्मिन्नितरा तत ततम् ।
अवायुरूच्चै सषिराणि राणितामभानमानेद्धमियत्तयाध्वनीत् ।। नै० 15/16

2 विपञ्चिराच्छादि न वेणुभिर्न ते प्रणीतगीतैर्न च तेऽपि झर्झरै. ।
न ते हुडुक्केन न सोऽपि ढक्कया न मर्दलै सापि न तेऽपि ढक्कया ।। नै० 15/17

3 विचित्रवादित्रनिनादमूर्च्छित सुदूरचारी जनतामुखारव ।
मयौ न कर्णेषु दिगन्तदन्तिना पयोधिपूरप्रतिनादमेदुर. ।। नै० 15/18

4 हेमनामकतरुप्रसवेन त्रयम्बकस्तदुपकल्पितपूज. ।
आत्तया युधि विजित्य रतीश राजित कुसुमाकाहलयेव ।। नै० 21/34

5 उत्तुङ्गमङ्गलमृदङ्गनिनादभङ्गीसर्वानुवाद विधिबोधितसाधुमेधा ।
सौधस्रज प्लुतपताकतयाभिनिन्युर्मन्ये जनेषु निजताण्डवपण्डिततत्वम् ।। नै० 11/6

6. रामायण- सुन्दरकाण्ड 11/596

मृदङ्ग के लिए वे मुरज का प्रयोग करते दिखते है[1] जबकि शाङ्र्गदेव ने मुरज तथा मर्दल को मृदग का पर्याय माना है।[2] सगीतरत्नाकर की टीका मे लिखा मिलता है कि - "एवविध लक्षणयुक्त मृदङ्गमाहु तस्यैव पर्यायो मर्दलमुरजाविति। प्रोक्तमिति मुनिना भरतेन पुष्करत्रययुक्तम्।[3] प्राचीन ग्रथो मे मृदग, पणव तथा दुर्दुर को पुष्कर वाद्य सज्ञा से अभिहित किया गया था। इस प्रकार मृदङ्ग के पर्याय, मर्दल एव मुरज हुए परन्तु भरत ने मर्दल का उल्लेख नहीं किया। जिस वाद्य को आज हम उत्तर भारत मे अथवा परवावज नाम से जानते है दक्षिण भारत मे वही मृतङ्ग शब्द से सम्बोधित होता है परन्तु मृदग एव मृदगम् के आकार प्रकार एव ध्वनियो मे विभिन्नता पायी जाती है। मृदङ्ग वाद्य की प्राचीनता इसी से प्रमाणित हो जाती कि उसका रामायण मे भी वर्णन मिलता है-यथा

नृत्तेन चापरा क्लान्ता पानविप्राहतास्तथा । मुरजेषु मृदङ्गेषु पीठिकासु च सस्थिता ।[4]

महाकवि कालिदास ने भी मृदङ्ग वादन का वर्णन अनेक अवसरो पर किया है- यथा- रघुवश मे राजा अग्निवर्ण के वर्णन मे[5] राम के अयोध्या लौटने[6] एव अयोध्या की विलासिनियो के जलक्रीडा के वर्णन मे[7] एव महाराज कुश के वर्णन सन्दर्भ मे[8] तथा उत्तरमेघ मे।[9] श्री हर्ष को भी मृदग की मगलध्वनि रूचिकर लगती थी, तभी तो उन्होने इस वाद्य का अनेक अवसरो पर वर्णन किया है यथा बारात वर्णन मे, दमयन्ती एव उसकी सखियो के मनोरजन मे। स्वयवर वर्णन प्रसग मे नैषधकार द्वारा मृदङ्ग का वर्णन तो यह तथ्य स्पष्ट करता है कि भीम महल मङ्गल मृदङ्गो की ध्वनि से गुञ्जायमान हो रहा था। यथा-

उत्तुङ्गमङ्गलमृदङ्ग निनादभङ्गीसर्वानुवाद विधि बोधितसागुमेधा ।
सौधस्रज प्लुतपताकतयाभिनिन्युर्मन्ये जनेषु निजताण्डवपण्डितत्वम् ।।[10]

(2) ढोलक (काहलवाद्य):-

सङ्गीतसार मे उपलब्ध विवरण से यह पता चलता है कि मध्यकालीन ढोलक को ही प्राचीन काल मे पटह नाम से सम्बोधित किया जाता था। अहोबलरचित सगीतपारिजात के अनुसार भी पटह का अर्थ ढोलक है। पटहढोलक इति भाषायाम्"। कुछ विद्वानो ने इसे भेरी जाति का वाद्य माना है। यह लकडी से बना तथा चमडे से मढा होता है। ढोल या ढोलक की लोकप्रियता का कारण यह है कि यह लोकसगीत तथा शास्त्रीय सङ्गीत दोनो के लिए उपयोगी है। इसका उल्लेख पुराण महाभारत, तथा रामायण मे मिलता है। यथा रामायण के सुन्दरकाण्ड मे पटह (ढोलक) का उल्लेख दृष्टव्य है।[11]

---

1 यद्यत् कुर्यान् मुरजे प्रहारजात यतिप्रचारेषु । अनुगतोऽक्षरवृत्त तदैव वाद्य तु पणवेऽपि ।। नाट्यशास्त्र, 34/90

2 निगदन्ति मृदङ्ग त मर्दल मुरज तथा। प्रोक्त मृदङ्गशब्देन मुनिना पुष्करत्रयम्।। सगीतरत्नाकर, वाद्याध्याय पेज-1027

3 सगीतरत्नाकर टीका, पेज- 459, एव भारतीय सगीतवाद्य पेज- 88 में उद्धृत।

4 रामायण, सुन्दरकाण्ड 11/596

5 कामिनी सहचरस्य कामिनस्तस्य वेश्मसु मृदङ्गनादिषु ।
ऋद्धिमन्तमधिकर्द्धिरुत्तर पूर्वमुत्सवमपोहदुत्सव ।। रघुवश 19/5

6 तस्यायमन्तर्हितसौधभाज प्रसक्तसङ्गीतमृदङ्गघोष ।
वियदगत पुष्पकचन्द्रशाला क्षण प्रतिश्रुन्मुखरा करोति ।। रघुवश 13/40

7 तीरस्थलीबर्हिभिरुत्कलापै प्रस्निग्धकेकैरभिनन्द्यमानम् ।
श्रोतेषु समूर्च्छति रक्तमासा गीतानुग वारिमृदङ्गवाद्यम् ।। रघुवश 16/64

8 रघुवश 16/13, 14

9 उत्तरमेघ-5,

10 नै० 11/6

11 पटह चारूसर्वाङ्गीन्यस्य शेते शुभस्तनी- रामायण- सुन्दरकाण्ड 10/39

सुषिरवाद्यः

जो वाद्य मुख की वायु द्वारा बजाये जाते है, वे सुषिरवाद्य कहलाते है। इन वाद्यो मे उपलब्ध विवरो या छिद्रो मे वादक अपनी सगीततान की सफलता हेतु अपनी अगुलिया रखकर या हटाकर, अर्थात् वायु वेग को कम या अधिक कर स्वर को ऊँचा नीचा कर लेते है। अहोवल प्रणीत 'सड्गीतपारिजात' मे प्रमुखत सुनादी (शहनाई) मुरली, पावा, श्रृड्ग, नागसर, कहली, मुखवीणा, वक्रो, तुन्दकनी, चग, शख, पत्रिका स्वर सागर एव सड्गीतरत्नाकर मे वशी, पावा, पाविका, मुरली, काहल, तुण्डकिनी, चुक्का, श्रृड्ग, शख, तथा सड्गीतदामोदर मे वशी, पारी, मधुरी, तित्तरी, शड्ख, काहल, मुरली, चुक्का, श्रृग, सिगा कापालिकवशी एव तूर्यवशी जैसे सुषिर वाद्यो का वर्णन मिलता है।

नैषधीयचरित के अध्ययन से यह विदित होता है कि श्रीहर्ष वाद्यो के तृतीय भेद सुषिरवाद्य से भी परिचित थे।[1] भीम महल मे वररूप मे नल के आने पर घडी, घटे, वीणा, ढोल एव मृदड्ग के साथ-साथ शहनाई (सुषिरवाद्य) की ध्वनि गूजने लगी। वाद्यो की ध्वनियो का विश्लेषण करते हुए श्रीहर्ष कहते है कि वीणा की ध्वनि को वशी की ध्वनि ने आच्छादित नहीं किया, न वशी की ध्वनि को गायको ने, न गायको को खञ्जरी ने, न खञ्जरी के शब्द को मृदड्ग ने न मृदड्ग की ध्वनि को नगाडे ने और न नगाडे की ध्वनि को ढोल ने, और न ढोल की ध्वनि को नगाडे ने आच्छादित किया या दबाया।[2] स्पष्ट है कि सभी वाद्यो की ध्वनि उस समय कुण्डिनपुर मे सुनायी पड रही थी। सुषिर वाद्य के अन्तर्गत तूर्य (तूरही) का वर्णन करते हुए श्रीहर्ष लिखते है कि भीममहल के द्वार पर मड्गल वाद्य बज रहे थे। अनुराग के कारण मन मे नल की स्थिति से उल्लास को प्राप्त हुए स्वागत के प्रश्न को पूछती हुई तुरही के शब्द से युक्त वह द्वार भूमि केले के दो द्वार खम्भो के वायु से हिलते पत्तो से लम्बे नीचे घाघरे से विभूषित दमयन्ती की सखी के समान मालूम होती थी।[3] शख का बहुविध चित्रण करते हुए श्रीहर्ष कहते है कि राजा नल ने भगवान विष्णु की पूजा करने के बाद उन्हे नैवेद्य अर्पित किया एव शख्रो मे जल लेकर उनकी अर्चना की।[4] विष्णु के शख- पाञ्चजन्य का वर्णन करते हुए श्रीहर्ष अभिहित करते है कि एक हाथ मे जलोत्पन्न पाञ्चजन्य शख को लेकर हे प्रभो विष्णु! आप असुरो से यह कहते है कि असुरो, देखो यह अचेतन शख मुझसे निर्विरोध रहता है, फिर तुम लोग तो चेतन प्राणी हो, क्यो नहीं अपने होश दुरुस्त रखते।[5] शख को नैषधकार ने कामदेव का विजयशड्ख[6] एव उसकी आकृति विशाखा नक्षत्र[7] के समान प्रतिपादित की। इस प्रकार नैषधकार ने सुषिर वाद्यो के अन्तर्गत प्रमुख रूप से सुनादी (शहनाई) वशी, तूर्य (तुरही), एव शख का भी वर्णन किया। इनके वर्णन से सुस्पष्ट है कि श्रीहर्ष सुषिरवाद्यो से भी परिचित थे।

---

1 अवापुरुच्चै सुषिराणि राणितामममानद्धमियत्तयाध्वनीत्। नै० 15/16 उत्तरार्द्ध।

2 विपञ्चिराच्छादि न वेणुभिर्न ने प्रणीतगीतैर्न च तेऽपि झर्झरै ।
न ते हुडुक्केन न सोऽपि ढक्कया न मर्दलै सापि न तेऽपि ढक्कया ।। नै० 15/17

3 श्लथैर्दलै स्तम्भयुगस्य रम्भयोश्चकास्ति चण्डातकमण्डिता स्म सा ।
प्रियासखीवास्य मन स्थितिस्फुरत्सुखागत प्रश्नततूर्य नि स्वना ।। नै० 16/8

4 नाल्पभक्तबलिरन्ननिवेद्यै स्तस्य हारिणमदेन सकृष्ण ।
शड्खचक्र जलजातवदर्च शड्खचक्रजलपूजनयाभूत् ।।नै० 21/45

5 पाञ्चजन्यमधिगत्य करेणापाञ्चजन्यमसुरानिति वक्षि ।
चेतना स्थ किल पश्यति कि नाचेतनोऽपि मयि मुक्तविरोध ।। नै० 21/93

6 स्मरस्य कम्बु किमय चकास्ति दिवि त्रिलोकीजयवादनीय ।
कस्यापरस्योडुमयै प्रसूनैर्वादित्रशक्तिर्घटते भटस्य ।। नै० 22/21

7 कि योगिनीय रजनी रतीश यादजीजिवत्पदमम्गूमुहश्च ।
योगर्द्धिमस्या महतीमलग्नमिद वदत्यम्बरचुम्बि कम्बु ।। नै० 22/22

''नैषधीयचरित में उपलब्ध सुषिर वाद्यों की शास्त्रीय मीमांसा''

(1) शहनाई (सुनादी) .

प्राचीन काल मे इस वाद्य को सुनादी नाम से जाना जाता था, जैसा कि सङ्गीतपारिजात मे उपलब्ध वर्णन से ज्ञात होता है। इसका प्रयोग शास्त्रीय सङ्गीत मे प्रमुख रूप से होता है। दक्षिण भारत मे देवालयो मे बजने वाले वाद्य तूर्य अथवा कर्नाटकीय नागस्वरम् एव शहनाई तथा नफीरी (ईरानी वाद्य) एक दूसरे से मिलते जुलते सुषिर वाद्य है जिसका महाकवि कालिदास ने भी वर्णन किया है।[1] शहनाई का स्वर अत्यन्त मधुर होता है। यह उत्तर भारत का माङ्गलिक वाद्य है, जिसका प्रयोग पुत्रजन्मोत्सव एव विवाहादि अवसरो पर दृष्टिगोचर होता है। जब दुन्दुभि के साथ शहनाई अथवा नफीरी का वादन होता है, तो उसे "नौबत" कहते है। मध्यकाल मे राजप्रासादो तथा जागीरदारो के यहॉ नौबतरवाना होता था, जहा समय-समय पर नौबत का वादन सम्पन्न किया जाता था।[2]

(2) वशी-

यह प्राचीन सुषिर वाद्य है। इसका विवरण ऋग्वेद[3] एव काठकसहिता[4] मे 'नादी' से मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसमे से सात स्वर निकलते थे, अर्थात्, इसमे सात छिद्र होते थे क्योकि सामगान तथा सप्त स्वरो के प्रादुर्भाव के साथ ही ऐसी वशी निर्मित की गयी जिसमे सप्तक के सभी स्वरो का वादन सम्भव था। वैदिक साहित्य के उल्लेख के अनुसार वीणा की तन्त्रियो को स्वर मे मिलाने के लिए वशी के स्वरो का ही आधार लिया जाता था।[5] वशी प्रमुख रूप से बास की बनायी जाती थी। किन्तु चन्दन की लकडी, खैर की लकडी, हाथी दात, लोहा, कासा, चॉदी, सोना, किसी से भी यह निर्मित की जा सकती है। एकवीर वशी मे नव रध्र होते थे। सङ्गीतरत्नाकर एव सगीतसार मे वशी के 14 भेदो का वर्णन मिलता है- यथा-उमापति, त्रिपुरूष, चतुर्मुख, पञ्चवक्त्र, षण्मुख, मुनिराज, वसु, नाथेन्द्र, महानन्द, रुद्र, आदित्य, मनु, कलाविधि एव अन्वर्थ। महाभारत एव श्रीमद्भागवत् से स्पष्ट होता है कि श्रीकृष्ण बशी बजाने मे माहिर थे। महाकवि कालिदास ने भी कुमारसम्भव मे वशी की उत्पत्ति का अत्यन्त मनोहारी वर्णन किया है । यथा-

> य पूरयन्कीचकरन्ध्रभागान्दरीमुखोत्थेन समीरणेन ।
> उद्गास्यतामिच्छति किन्नराणा तानप्रदायित्वमिवोपगन्तुम् ।।[6]
> ज्वलति मवनवृद्ध पर्वतानां दरीषु, स्फुटति पटुनिनाद शुष्कवशस्थलीषु ।
> प्रसरति तृणमध्ये लब्धवृद्धि क्षणेन, ग्लपयति मृगवर्ग प्रान्तलग्नो दवाग्नि ।।[7]

---

1 - ययात्मन सद्मनि सन्निकृष्टो मन्द्रध्वनित्याजितयामतूर्य ।
प्रासादवातायनदृश्यवीचि प्रबोधयत्पयर्णव एव सुप्तम् ।। रघुवश 6/56
- सुखश्रवा मङ्गलतूर्यनि स्वना प्रमोदनृत्यै सह वारयोषिताम् ।
न केवल सद्मनि मागधीपते पथि व्यजृम्भन्त दिवौकसामपि ।। रघुवश 3/19
- ततोगणै शूलभृत पुरोगैरुदीरितो मङ्गलतूर्यघोष - कुमारसम्भव 7/40
- कुमारसम्भव में कालिदास ने तूर्य अथवा तुरही के अङ्कम, आलिङ्गम तथा ऊर्ध्वक नामक भेदों का भी वर्णन किया-यथा-
ध्वनत्सु तूर्येषु सुमन्द्रमङ्कमालिङ्गयोर्ध्वकेष्वप्सरसो रसेन ।
सुसन्धिवन्ध ननृतु सुवृत्तगीतानुग भावरसानुविद्धम् ।। कुमारसम्भव 11/13

2 भारतीय सङ्गीतवाद्य- पेज- 77

3 ऋग्वेद 10/135/7

4 काठकसहिता 23/4/34/5

5 य सामगाना प्रथम स्वर स वेणोर्मध्यम। नारदीय शिक्षा, 5/1

6 कुमारसम्भव 1/8

7 ऋतुसहार - 1/25

शब्दायन्ते मधुरमनिलै कीचका पूर्यमाणा , ससक्ताभिस्त्रिपुर विजयोगीयते किन्नरीभि ।
निह्रादस्ते मुरजइव चेत्कन्दरेषु ध्वनि स्यात् सङ्गीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्रभावी समग्र ।।[1]

वशी का एक प्रकार मुरली भी है, जो बास को बनी होती है एव उसमे 4 छिद्र हाते है। इसकी रसीली आवाज होती है जैसा कि सङ्गीत लाकर मे उल्लेख मिलता है।[2]

(3) तूर्य (तुरही) -

प्राचीन काल मे प्रचलित यह वाद्य मागलिक एव युद्धादि अवसरो पर बजाया जाता था। कालिदास ने तूर्य (तुरही) का वर्णन करते हुए मगल तूर्य[3] युद्ध तूर्य तथा याम तूर्य[4] (प्रहर सूचनार्थ) का उल्लेख किया है। कालिदास ने माङ्गलिक कार्यों मे तूर्य वादन के साथ नृत्य के होने का विवरण दिया है। यथा-रघु के जन्म पर वाररमणियो ने प्रमोद "नृत्य" किया, जिसमे अत्यधिक उच्च स्वर मे तूर्य वादन भी हो रहा था।[5] कुमारसम्भव मे भी अप्सराओ के नृत्य के साथ विविध प्रकार के तूर्यो के वादन मिलते है।[6] इसका आकार लम्बे धतूरे के सदृश होता है, एव मुख का व्यास क्रमश बडा होता चला जाता है जो अन्त मे खिले हुए पुष्प के आकार का हो जाता है। इसमे सात स्वरो के रन्ध्र बनाये जाते है। दक्षिण भारत विशेषकर कर्नाटक मे विवाह, उत्सव तथा यात्रादि शुभावसरो पर इसी की आकृति का वाद्य "नागस्वर" (कर्नाटक स्वर) होता है। इन दोनो वाद्यो मे फूक एव अधर सञ्चालन से अनेक प्रकार के ध्वनि स्वरो के वर्णालकार प्रस्तुत किये जाते है।

(4) शङ्ख-

इस सुषिर वाद्य की परम्परा वैदिक काल से लेकर वर्तमान काल तक देखी जा सकती है. प्राचीन काल मे इसका प्रचलन मागलिक कार्यों यथा पूजा, अनुष्ठान, यज्ञ, विवाह के साथ-साथ युद्धादि कार्यों मे भी होता था। रामायण एव महाभारत मे शङ्ख वादन का उल्लेख प्राय भेरी, मृदङ्ग तथा पणव वादन के साथ मिलता है।[7] युद्ध मे प्रत्येक सेनापतियों के शङ्ख अलग-अलग होते थे इनके नाम भी भिन्न-भिन्न थे जैसा कि गीता के प्रथम अध्याय मे श्रीकृष्ण के पाञ्चजन्य, अर्जुन के देवदत्त, भीम के पौण्ड, युधिष्ठिर के अनन्त विजय, नकुल के सुघोष तथा सहदेव के मणिपुष्पक नामक शख का उल्लेख मिलता है।[8] इससे स्पष्ट होता है कि उस काल मे शख का विशेष महत्व था। युद्ध का प्रारम्भ एव अन्त शङ्ख (की आवाज) वादन से ही होता थ। परन्तु मध्यकाल एव आधुनिक काल मे विज्ञान की उन्नति के कारण युद्धादि के अवसर पर शख वादन लुप्त हो गया। अब शख केवल माङ्गलिक अवसरो पर ही बजाया जाने लगा है।

---

1 पूर्वमेघ -60

2 हस्तद्वयाधिका माने मुखरन्ध्रसमन्विता । चतु स्वरच्छिद्रयुता मुरली चारुनादिनी ।। सङ्गीतरत्नार- 6/786

3 सुखश्रवा मङ्गलतूर्यनि स्वना , प्रमोदनृत्यै सह वारयोषिताम् ।
न केवल सद्मनि मागधीपते , पथि व्यजृम्भन्त दिवौकसामपि ।। रघुवश 3/19

4 ययात्मन सद्मनि सन्निकृष्टो, मन्द्रध्वनित्याजितयामतूर्य ।
प्रासादवातायनदृश्यवीचि , प्रबोधयत्यर्णव एव सुप्तम् ।। रघुवश 6/56

5. रघुवश 3/19

6 ध्वनत्सु तूर्येषु सुमन्द्रमङ्क्यालिङ्ग्योर्ध्वकेष्वप्सरसो रसेन ।
सुसन्धिबन्ध ननृतु सुवृत्तगीतानुग भावरसानुविद्धम् ।। कुमारसम्भव 11/36

7 ततो भेरीमृदङ्गाना पणवाना च नि स्वन ।
शङ्खनेमिस्वनोन्मिश्र सम्बभूव घनोपम ।। रामायण 'यूद्धाकाण्ड' 44।12
भेरीपणवशशङ्खाना मृदङ्गाना च नि श्वन । महाभारत, अरण्यपर्व 132/1
भेरीमृदङ्गपणवै शङ्खवेणू च नि श्वनै. । महाभारत उद्योगपर्व, 78/16

8 पाञ्चजन्य हृषीकेशो देवदत्त धनञ्जय। पौण्ड्र दध्मौ महाशङ्ख भीमकर्मावृकोदर ।।
अनन्तविजय राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिर। नकुलोसहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ।। श्रीमद्भगवद्गीता-1/15-16

पण्डित अहोवल का कथन है कि प्राय शख, बारह अगुल का होता है, जिसमे बदरीफल के बीज के बराबर मुख का छिद्र होता है। शङ्ख की प्राप्ति समुद्र से होती है। यह सामुद्रिक जीव का एक ढाचा है। शङ्ख की दो जातियॉ दक्षिणावर्त एव वामावर्त होती है, जिसमे दक्षिणावर्त जाति के शङ्ख बहुत कम मिलते है, इसके विषय मे यह मान्यता प्रचलित है कि भगवान विष्णु ने शङ्खासुर को मारकर उसे अपने हाथ मे स्थापित कर लिया, इस प्रकार शङ्ख (दक्षिणावर्त) को उन्होने अपना कर आयुध बना लिया जिससे इसकी प्राप्ति दुरूह हो गयी। धार्मिक कार्यों मे शङ्ख की समीचीनता आज भी दृष्टिगत होती है अर्थात् भारतीय धार्मिक क्षेत्र मे शङ्ख की समीचीनता के उदाहरण आज भी देखे जा सकते है। सगीतरत्नाकर, सङ्गीतपारिजात एव सङ्गीतसार इत्यादि ग्रथो मे भी शख का विवरण मिलता है। कालिदास ने भी कुमार कार्तिकेय के जन्मोत्सव एव राजकुमारी इन्दुमती के स्वयवर प्रसङ्ग मे एव ऋतुसहार मे शङ्ख वादन का वर्णन किया है।[1]

घनवाद्य –

किसी वस्तु से ठोकर लगाकर या (वाद्य सेवाद्य को) आहत करके (आघात से) बजाये जाने वाले वाद्यो को घनवाद्य कहते है। कास्यताल आदि घनवाद्य है। सङ्गीतपारिजात मे ताल, कास्यताल, घण्टा, क्षुद्रघण्टिका, जयघण्टा कास्यशुक्ति, जलतरङ्ग, काष्ठताल, एव घट्ट इत्यादि प्रमुख घनवाद्यो का विवरण मिलता है।[2] सगीतशास्त्र के अन्य ग्रथ सङ्गीतदामोदर मे करताल, कास्यताल, जयघण्टा, धुतिक, कम्बिका, पटवाद्य, पट्ताल, छच, घर्घर, भण्डूका, ताल, मजीरा इत्यादि घनवाद्यो का विवरण मिलता है। भरत ने नाट्यशास्त्र मे घनवाद्यो का विवरण नहीं दिया। नैषधीयचरित मे चारो वाद्यो मे घन वाद्य का भी उल्लेख मिलता है।[3] श्रीहर्ष ने घनवाद्यो के विविध प्रकारो मे केवल झझरी[4] एव घुघरू का वर्णन किया, जिसे प्राचीनकाल मे कास्यताल के नाम से जाना जाता था। ये घनवाद्य प्राय कासा, पीतल, एव लकडी के बने होते थे। प्राचीन काल से लेकर बारहवीं शताब्दी (श्रीहर्ष तक) इन वाद्यो का अधिक महत्व था, किन्तु आगे चलकर इनकी महत्ता क्षीण होने लगी केवल लोकसगीत जैसे भजन, फाग (होलीगीत) इत्यादि में ही विशेष रूप से इनका प्रयोग होने लगा। मध्यकाल के बाद शास्त्रीय सगीत मे इनके प्रयोग की उपादेयता प्रभावशाली नहीं रह गई।

नैषधीयचरित में उपलब्ध प्रमुख घनवाद्यः-

(1) कांस्यताल (झर्झर) -

श्रीहर्ष ने मध्यकाल मे प्रचलित प्रमुख घनवाद्य झर्झर का उल्लेख किया है। जिसे प्राचीन काल मे 'कास्यताल' या ताल नाम से भी अभिहित किया जाता था। सङ्गीतशास्त्र के प्रमुख ग्रथो यथा- मानसोल्लोस, सङ्गीतोपनिषत्सारोद्धार, सगीतरत्नाकर, सङ्गीतसमयसार, सङ्गीतसुधा, सङ्गीतसार प्रभृति

---

1 – गम्भीरशखध्वनिमिश्रमुच्चैगृहोद्भवा दुन्दुभय प्रणेदु ।
दिवौकसा व्योम्नि विमानसघा विमुच्य पुष्पप्रचयान्प्रसघु ॥ कुमार 11/38
– पुरोपकण्ठोपवनाश्रयाणा कलापिनामुद्धतनृत्य हेतौ ।
प्रध्मातशङ्खे परितो दिगन्तास्तूर्यस्वने मूर्च्छति मगलार्थे ॥ रघुवश 6/9
– व्योम क्वचिद् रजतशङ्खमृणालगौरैस्त्यक्ताम्बुभिर्लघुतया शतश प्रयातै !
सलक्ष्यते पवनवेगचलै पयोदै राजेव चामरवरैरुपवीज्यमान ॥ ऋतुसहार 3/4

2 सङ्गीतपारिजात 6/13-14

3 तदा निसस्वानतमा घन घन ननाद तस्मिन्नितरा तत ततम्॥ नै० 15/16 पूर्वार्द्ध।

4. विपिञ्चिराच्छादि न वेणुभिर्न ते प्रणीतगीतैर्न च तेऽपि झर्झरै ।
न ते हुडुक्केन न सोऽपि ढक्कया, न मर्दलै सापि न तेऽपि ढक्कया ॥ नै० 15/17

ग्रथो मे कास्यताल का उल्लेख प्राप्त होता है जिससे इस वाद्य की विशिष्टता प्रमाणित होती है। कुछ सस्कृत ग्रथो मे इसे झल्लरी, झर्झरी एव झर्झर नाम से अभिहित किया गया है, एव सङ्गीतदामोदर मे कास्यताल को झॉझताल नाम दिया गया है। झर्झर के विभिन्न रूप जैसे झाझ झालर, मजीरा का विवरण मध्यकालीन साहित्य मे प्राप्त होता है। सङ्गीतसार के अनुसार मध्यकाल मे जयघण्टा को झालर भी कहते थे। मध्यकाल का जयघण्टा एव झालर आज के घडियाल के समान थे, जिनका वादन मन्दिरो मे शोभायात्रा के समय तथा अन्य उत्सवो मे प्राय किया जाता है। वर्तमान मे कास्यताल, झालर, झॉझ, मजीरा, आदि विभिन्न रूपो भारत के विविध प्रदेशो मे दृष्टिगोचर होते है।[1] सङ्गीतरत्नाकर के अनुसार कास्यताल (झर्झर, झझरी, खजरी की आकृति कमलिनी पत्र के समान होती थी, एव यह कास्यधातु से निर्मित होती थी।[2] तेरह अगुल का इसका व्यास होता था। इसके मध्य मे दो अगुल प्रमाण की गोलाई तथा एक अगुल प्रमाण की गहराई वाली नाभि होती थी। इसके मध्य मे एक छिद्र होता था, जिसमे पृथक-पृथक डोरी डालकर अन्दर की ओर से गॉठ लगा दी जाती थी, एव ऊपर से उसी डोरी मे वस्त्र लपेटकर इसी डोरी से इस प्रकार बाध देते थे कि उसे दोनो हाथो की मुट्ठियो मे आसानी से पकडा जा सके। ध्यातव्य है कि इस वाद्यपत्र उसी के समरूप दो भाग होते थे दो भागो मे दोनो हाथो मे समरूपाकृति मे करके दोनो को एक दूसरे मे आहत कर बजाया जाता था, उसी तरह जैसे कि दोनों हाथो से ताली बजायी जाती है। महाकवि कालिदास द्वारा मेघदूत मे यक्षिणी द्वारा कङ्कण की मधुर झनकारो से युक्त करताल (तालियॉ) बजाकर मयूर के नचाये जाने का उल्लेख कितना चित्ताकर्षक है। यथा-

तालै शिञ्जावलयशुभगैर्नर्तित कान्तया मे, यामध्यास्ते दिवसविगम नीलकण्ठ सुहृद्व ।।[3]

(2) क्षुद्रघण्टा अथवा घुंघरू-

इसे सगीतशास्त्रीय ग्रथो मे ककण, घर्घरिका, मर्मरा, क्षुद्रघण्टिका एव नूपुर नाम से भी अभिहित किया गया है। लोहा, कासा, पीतल इत्यादि धातुओ के प्रयोग से इस वाद्य का निर्माण किया जाता है। इच्छित आकार के गोले बनाकर बीच से चीरकर उनमे एक-एक गोली, जिसका आकार अगूर से लेकर बेर तक होता है, उन्हे गोले के बीच मे डाल दिया जाता है। नृत्य के समय मालाकार रूप मे यह पैरो मे पहना जाता है। घोडे एव बैलो के गले मे भी नृत्य किये जाने वाले घुघरू से बडे आकार के घुघरू बाधे जाते है। श्रीहर्ष ने क्षुद्रघण्टा को नर्तकियो द्वारा अपनाये जाने का वर्णन किया। यथा-

यत्रवैणरववैणवस्वरैर्हुंकृतैरुपवनीपिकालिनाम् । कङ्कणालिकलहैश्च नृत्यता कुब्जित सुरतकूजित तयो. ।।[4]

सगीतरत्नाकर मे क्षुद्रघण्टा का वर्णन निम्न रूप मे प्राप्त होता है-

तेक्षगालकगर्भा स्यु कास्योद्भवपुटद्वया ।।
सुघना. सूक्ष्मजातीय बदरीबीजसमिता. । शिर सुषिरविन्यस्तरज्जव क्षुद्रघण्टिका ।
ताश्च घर्घरिका लोके भाष्यन्ते मर्मरास्तथा । ताभिर्घर्घरभेदाना कृति पेरणिनर्तने ।।[5]

कालिदास ने भी नूपुर नाद का वर्णन करते हुए ऋतुसहार मे अभिहित किया-

---

1 भारतीय सङ्गीतवाद्य- पृष्ठ - 112

2 कास्यजे घनवाद्ये स्यात्कास्यमग्नौ सुशोभितम् । कास्यजमिति धनवाद्यस्य सामान्यलक्षणम् ।। सगीत रत्नाकर वाद्याध्याय पृ०- 489। भारतीय सगीत वाद्य, पृ०-113 से उद्धृत्।

3 उत्तरमेघ-श्लोक-99 उत्तरार्द्ध।

4 नै0 18/17

5 सगीतरत्नाकर- वाद्याध्याय, पृ0- 1187-1189

काशाशुका विकचपद्मनोज्ञवक्त्रा, सोन्मादहसरवनूपुरनादरम्या ।
आपक्वशालिरुचिरानतगात्रयष्टि प्राप्ता शरन्नववधूरिव रूपरम्या ।।[1]

जिस प्रकार नर्तकी के घुघरूओ की सुमधुर ध्वनि मन एव हृदय को आह्लादित कर देती है, ठीक उसी तरह हस-रव का अनुकरण करने वाली नायिका के नूपुरो की सुमधुर ध्वनि किस श्रोता के चित्त को सकाम नहीं बना देती। यथा-

नितान्तलाक्षारसरागरञ्जितै र्नितम्बिनीना चरणै सनूपुरै ।
पदे-पदे हसरुतानुकारिभि-र्जनस्य चित्त क्रियते समन्मथम् ।।[2]

नूपुरो की ध्वनि एव काञ्ची के क्वणन मे घुघरूओ की झनकार का आनन्द भी कालिदास के विवरण मे दर्शनीय है। यथा-

असितनयनलक्ष्मीं लक्षयित्वोत्पलेषु क्वणितकनककाञ्चीं मत्तहसस्वनेषु ।
अधररुचिरशोभा बन्धुजीवे प्रियाणा पथिकजन इदानीं रोदिति भ्रान्तचित ।।[3]

नृत्य

नैषधकार ने संगीतशास्त्र की इस तीसरी विधा का भी नैषध मे वर्णन किया है। नृत्य शब्द की निष्पत्ति नृत्+क्त या क्यप् के सयोग से होती है। ताल, लय और रस के अनुसार विलासपूर्वक अगो के विक्षेप करने के व्यापार को नृत्य या नृत्त कहा जाता है। ताल, लय तथा रस के अनुसार किये जाने वाले नृत्य (नाच) के दो प्रधान भेद होते हैं। ताडव एव लास्य, ये शिव एव पार्वती द्वारा किये गये नृत्य है। परन्तु अग्नि पुराण मे नृत्य के बारह भेदो का विवरण मिलता है[4] जब कि अन्यत्र नृत्य के 3 भेद माने गये है।[5] श्रीहर्ष ताण्डव नृत्य का वर्णन बाइसवे सर्ग मे नल दमयन्ती द्वारा सन्ध्या वर्णन प्रसग मे किया है। यथा –

महानट किं नु सभानुरागे सध्याय सध्या कुनटीमपीशाम् ।
तनोति तन्वा वियतापि तारश्रेणिस्रजा साप्रतमङ्गहारम् ।।
भूषास्थिदाम्नस्त्रुटितस्य नाट्यात्पश्योडुकोटीकपट वहद्भि ।
दिग्मण्डल मण्डयतीहखण्डै सायनटस्तारकराट्किरीट ।।[6]

साथ ही नल ने दमयन्ती से कहा कि प्रिये, देखो, सन्ध्या समाप्त कर भगवान भूतनाथ जब ताण्डव[7] नृत्य मे लीन होते है, उस समय उनके पादप्रहार से कैलाश पर्वत की स्फटिक शिलाएँ चूर्ण-चूर्ण हो जाती है और ये उन्हीं शिलाओ के टुकडे आकाश मे तारो के रूप मे सुशोभित हो रहे है।[8] नैषधकार के

---

1 ऋतुसहार 3/1
2 वही 1/5, एव 3/27, 4/4
3 ऋतुसहार, 3/26
4 चेष्टाविशेषमप्यङ्गप्रत्यङ्गे कर्म चानयो । शरीरारम्भमिच्छन्ति प्राय पूर्वोवलाश्रय ।।
लीला विलासो विच्छित्तिर्विभ्रम किलकिञ्चितम् । मोट्टायित कुट्टमित विव्वोको ललितन्तथा ।।
विकृत क्रीडित केलिरिति द्वादशधैव स । लीलेष्ट जनचेष्टानुकरण सवृतक्षये ।। अग्निपुराण 341/1 3
5 नाटय नृत्य तथा नृत्त त्रिविध नर्तनम् स्मृतम्।
6 नै0 22/7, 8
7 करणैरङ्गहारैश्च प्राधान्येन प्रवर्त्तितम् । तण्डूक्तमुद्धतप्रायप्रयोग ताण्डव मतम्।। सगीतरत्नाकर 7/31
8 सध्यावशेषे धृतताण्डवस्य चण्डीपते. पत्पतनाभिघातात्।
कैलासशैलस्फटिकाश्मखण्डैरमण्डि पश्योत्पतयालुभिर्द्यौ ।। नै०22/15

विवरणनुसार ताण्डवनृत्य सान्ध्यकालीन नृत्य प्रतीत होता है। श्रीहर्ष ने स्पष्ट रूप से "लास्य नृत्य[1] का वर्णन तो नहीं किया, किन्तु प्रतीक रूप मे उन्होने इस नृत्य की भी सराहना की है।[2] सभवत यह मध्याह्न नृत्य था। उन्होने नर्तकियो द्वारा किये जाने वाले नृत्य का वर्णन करते हुए अभिहित किया कि प्रासाद मे नलदमयन्ती की रतिक्रीडा मे हुई अव्यक्त मधुर शब्द ध्वनि, वीणा तथा पक्षी की मधुर ध्वनि, वाटिका के कोकिल तथा भ्रमरो की गुञ्जारो एव नर्तकियो के ककण आदि आभूषणो के परस्पर शिञ्जन के कारण बाहर सुनायी नहीं पडती थी।[3] मृदङ्ग इत्यादि वाद्यो के साथ नृत्य होने की अभीप्सा श्रीहर्ष को मान्य थी। यथा-

उत्तुङ्गमङ्गलमृदङ्गनिनादभङ्गीसर्वानुवाद विधिबोधितसाधुमेधा ।
सौधस्रज प्लुतपताकतयाभिनिन्युर्मन्ये जनेषु निजताण्डव पण्डितत्वम् ।।[4]

उपर्युक्त नृत्यो के साथ-साथ श्रीहर्ष ने सामूहिक नृत्य का भी उल्लेख किया है।[5] सभव है उनके समय मे इस नृत्य की समीचीनता विद्यमान रही हो। श्रीहर्ष के पूर्ववर्ती कवि कालिदास ने भी नृत्य का मनोहारी वर्णन किया है। यथा- राजा दिलीप के पुत्र रघु के जन्मोत्सव मे।[6] पूर्वमेघ मे कालिदास द्वारा किये गये नृत्य के विवरण की साख की महत्ता की इयत्ता को आज तक कोई विद्वान अतिक्रमण नहीं कर पाया। यथा-

जालोद्गीर्णैरूपचितवपु केशसस्कार धूपैर्बन्धुप्रीत्या भवनशिखिभिर्दत्तनृत्योपहार ।
हर्म्येष्वस्या कुसुमसुरभिष्वध्वखेद नयेथा लक्ष्मी पश्यल्ललित वनितापादरागाङ्कितेषु ।।[7]

~~पादन्यासैः~~

पादन्यासैःक्वणितरसनास्तत्र लीलावधूतै रत्नछायाखचितवलिभिश्चामरै क्लान्तहस्ता ।
वेश्यास्त्वत्तो नखपदसुखान्प्राप्य वर्षाग्रबिन्दूनामोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान्कटाक्षान् ।।[8]
पश्चादुच्चैर्भुजतरुवन मण्डलेनाभिलीन सान्ध्य तेज प्रतिनवजपापुष्परक्त दधान ।
नृत्यारम्भे हर पशुपतेरार्द्र नागाजिनेच्छा शान्तोद्वेगस्तिमितनयन दृष्टभक्तिर्भवान्या ।।[9]

मालविकाग्नि मित्र मे भी कालिदास ने मालविका के गीत एव नृत्य को परिब्राजिका द्वारा निर्दोष एव पवित्र होने का विवरण दिया, जहाँ परिव्राजिका कहती है कि मैंने तो जो कुछ देखा उसे निर्दोष एव पवित्र पाया क्योंकि गीत की सभी बातो का ठीक-ठीक अर्थ अगो के अभिनय से पूर्ण रूप से दिखा दिया गया। इनके पैर भी लय के साथ चल रहे थे, फिर गीत के रस मे भी वे तन्मय हो गयी थीं। हस्त

---

1 लास्य तु सुकुमाराङ्ग मकरध्वजवर्धनम्।। सगीतरत्नाकर, 7/32

2 नै० 21/127, शिखिलास्यलाघवात् नै० 1/102

3. यत्र वैणरववैणवस्वरैहुकृतैरुपवनीपिकालिनाम्। ककणालिकलहैश्च नृत्यता कुब्जित सुरतकूजित तयो ।। नै० 18/17

4 नै० 11/6 -अन्याअपि नर्तक्यो मङ्लमृदगनिनादभङ्गीनामनुवादेन स्वीय नृत्तकौशल हस्ताद्यभिनयेन लोकेषु प्रदर्शयन्ति। नै० 11/6 में नारायण की टीका

5. विलासवापीतटवीचिवादनात्पिकालिगीते शिखिलास्यलाघवात् ।
वनेऽपि तौर्यत्रिकमारराध तं क्व भोगमाप्नोति न भाग्यभाग्जन ।। नै० 1/102

6 सुखश्रवा मङलतूर्यनिस्वना प्रमोदनृत्यै सहवारयोषिताम् ।
न केवल सद्मनि मागधीपते पथि व्यजृम्भन्त दिवौकसामपि ।। रघुवश 3/19

7 पूर्वमेघ -36

8 पूर्वमेघ -39

9 पूर्वमेघ -40

सञ्चालन द्वारा किया गया अभिनय सुकुमार था। उसके अनेक प्रकार एक दूसरे की सहायता करते रह सर्वत्र समान राग का दृश्य बना रहा।[1]

नैषधकार ने नृत्य के साथ-साथ अभिनय द्वारा मनोविनोद करने के विवरण भी नैषध मे दिय हे। छठे सर्ग मे नल जब देवदूत बनकर कुण्ठिनपुर के अन्त पुर मे प्रवेश करते है तो देखते है कि दमयन्ती सहित उनकी सखियो के सरस विलास चल रहे थे। वहॉ कोई सुन्दरी (सखी) दमयन्ती का रूप धारण किये थी, एव कोई नल का रूप धारण किये हुए, किसी अन्य सखी के कण्ठ मे धात्री द्वारा लायी हुई मधूक माला, लज्जा का अभिनय करती हुई डाल रही थी।[2] वहीं किसी सुन्दरी के हाथ पर सारिका (मैना) बैठी थी सखियो ने उसे जो पाठ पढाया था, सारिका उसी को सुना रही थी "दमयन्ती, यह देखो नल हे। सखि दु ख न करो"। वही पर खडे हुए नल चौक पडे कि कहीं मै देख तो नहीं लिया गया।[3] साथ ही अन्य विविध प्रकार के अभिनयो एव कृत्यो से उस समय दमयन्ती का अन्त पुर हास-परिहास सहित विलासो मे प्रवृत्त था।[4] सङ्गीतशास्त्र से सम्बन्धित उपर्युक्त सभी विवरणो से यह अनुभूति होती हे कि श्रीहर्ष की इस शास्त्र मे अप्रतिमगति थी।

---

1 वाम सन्धिस्तिमितवलय न्यस्यहस्त नितम्बे कृत्वा श्यामाविट्पसदृश स्रस्तमुक्त द्वितीयम् ।
पादाङ् गुष्ठालुलितकुसुमे कुट्टिमे पातिताक्ष नृत्तादस्या स्थितमतितरा कान्तमृज्वायतार्धम्।। मालविकाग्नि मित्र 2/6
अङ्गैरन्तर्निहित वचनै. सूचित. सम्यगर्थ पादन्यासो लयमनुगतस्तन्मयत्व रसेषु ।
शाखायो निर्मृदुरभिनयस्तद्विकल्पानुवृत्तौ भावो भाव नुदति विषयाद्रागबन्ध. स एव ।। मालविकाग्निमित्र 2/8

2 यत्रैकयालीकनलीकृतालीकण्ठे मृषाभीमभवीभवन्त्या । तदृक्पथे दौहदिकोपनीता शालीनमाधायि मधूकमाला ।। नै० 6/61

3 एत नल त दमयन्ति। पश्य त्यजार्तिमित्यालिकुलप्रबोधान् ।
श्रुत्वा स नारी करवर्तिसारीमुखात्स्वमाशङ्कत यत्र दृष्टम् ।। नै० 6/60

4 नै० 6/62 72

अष्टम अध्याय

नैषधीयचरितम् में शिल्पशास्त्र एवं वास्तुशास्त्रीय संदर्भ

शिल्प शास्त्र

कला (ललितकला, यान्त्रिक कला) आदिकर्म (वात्स्यायन के मत से नृत्य, गीत, वाद्य, पाक, वास्तु, सगीत कामक्रिया आदि चौसठ कलाएँ) शिल्प कहे जाते है। कला विषय पर चाहे वह ललित हो या यात्रिक पर किया गया विवेचन शिल्पशास्त्र कहलाता है। अर्थात् शिल्पशास्त्र उस शास्त्र विशेष को कहा जाता हे, जिसमे सम्पूर्ण (चौसठ) कलाओ के ज्ञान की प्रभूत रूप मे विषय सामग्री वर्णित हो। नैषधीयचरित मे चौसठ कलाओ मे कुछ को छोडकर सभी का यथेष्ठ वर्णन मिलता है, जिसमे कामक्रिया, पाकक्रिया, सगीत, वास्तु आदि का पूर्व मे विवेचन किया जा चुका है। यहाँ शिल्पशास्त्र के अन्तर्गत केवल चित्रकला, तथा कुछ अन्य महत्वपूर्ण कलाओ का विवेचन किया जायेगा। महाभारत मे उपलब्ध विवरण से नल की शिल्पशास्त्रज्ञता का परिचय मिलता है जहाँ कर्कोटक नाग के कथनानुसार बाहुक रूपधारी नल राजा ऋतुपर्ण से कहते हैं कि हे राजन्! इस जगत मे जितनी शिल्पविद्याएं है मै उन सब मे निष्णात हूँ। अत आप मुझे सेवक रख लीजिए[1] एव राजशेखर सूरि के वृतान्त से श्रीहर्ष की शिल्पशास्त्र मे दक्ष होने की पुष्टि मिलती है, जहाँ राजा जयन्तचन्द्र की पत्नी सूह व देवी के कहे जाने पर श्रीहर्ष ने उपानह निमार्ण कर स्वय की इस शास्त्र मे भी गति रखने की जानकारी दी।[2] नैषध मे भी श्री हर्ष के कथन से उनकी शिल्पशास्त्र मे जानकारी होने की पुष्टि मिलती है, जहाँ वह दमयन्ती को कामदेव द्वारा निर्मित मानते है न कि ब्रह्म द्वारा।[3] भीम महल एव नल प्रासाद मे जो मणियाँ जडित की गयी थी वह शिल्प कर्म (कारीगरी शिल्प) था, जिसका अनेकश चित्रण नैषधकार ने द्वितीय सर्ग एवं अठारहवे सर्ग मे किया है।[4] वास्तु शास्त्र के अन्तर्गत इस तथ्य का विवरण विस्तार से किया गया है। बारहवीं शताब्दी के प्रतिष्ठित विद्वान् श्रीहर्ष ने शिल्पकारी के अन्तर्गत मूर्ति निर्माण की बात तो नहीं की किन्तु उन्होने नैषध के इक्वीसवें सर्ग मे राजानल के देर्वाचना प्रसग मे देवमूर्तियो से सजे देवालय की चर्चा है, जिसमे सूर्य[5] शकर[6] (की स्फटिक मणि निर्मित प्रतिमा), विष्णु[7] गरूणध्वज[8] गौरी[9] इत्यादि देवमूर्तियो के होने का विवरण मिलता है।

शिल्पशास्त्र के वर्णन विषय मे यदि ऐतिहासिक तथ्यो के सन्दर्भो को लिया जाय तो यही निष्कर्ष निकल कर सामने आता है कि वैदिक सस्कृति मे तो यज्ञों की प्रधानता थी क्योकि उस समय "इन्द्रोमायाभि पुरुरूप ईयते" अथवा रूप प्रतिरूपो बभूव की अवधारणा का ही बोल बाला था। अत उस समय शिल्पशास्त्र की इस विधा (मूर्ति निर्माण) का प्रचलन नहीं के बराबर था। हाँ उस समय काव्य शिल्प

---

1 यानि शिलपानि लोकेऽस्मिन् यच्चैवान्यत् सुदुष्करम् ।
सर्वं यतिष्ये तत् कर्तुमृतुपर्ण भरस्व माम् ।। महाभारत नलपर्व 67/4

2 एकदा ससत्कारमाकारित श्रीहर्ष। भणितश्च-त्व क ? श्रीहर्ष कलासर्वज्ञोऽह्म्। राज्याऽयाभाणि तर्हि मामुपानहौ परिधापय। को भाव यद्यय न वेद्मि इति भणति द्विजत्वात्तर्हि अज्ञ। श्रीहर्षेणागीकृतम्। गतोनिलयम्। तरूवल्कलैस्तथा तथा परिकर्मितै साय लोलाक्ष सन् दूरस्थ स्वामिनीमाजूहवत्। चर्मकार विधिनोपानहौ पर्यदीधपत्, अभ्युक्षण निर्क्षिपध्व चर्मकारोऽमिति वदन्। राजशेखरसूरि-प्रबन्धकोशे-श्रीहर्ष कविप्रबन्ध, पृ० 59

3 अस्या स चारूर्मधुरेव कारु श्वास वितेने मलयानिलेन ।
अमूनि सूनैविर्दधेऽङ्गकानि चकार वाच पिकपञ्चमेन ।। नै० 10/130

4 नै० 2/74 -- 109 18/3-- 34

5 नै० 21/32

6 नीलनीररुहमाल्यमयीं स न्सस्य तस्य गलनालविभूषाम् ।
स्फाटिकीमपि तनु निरमासीन्नीलकण्ठपदसान्वयतायै ।। नै० 21/36

7 नै० 21/42

8 नै० 21/46

9 नै० 21/121

(काव्यग्रथ) के होने का वर्णन अवश्यमेव मिलता है। बौद्ध भी प्रतिमाओ के पूजन के विरूद्ध थे, एव जेनो की भी बौद्धो जैसी अवधारणा थी, परन्तु कालान्तर मे इन दोनो सम्प्रदाओ मे मूर्ति शिल्प विधा का प्रचलन हो गया। अजन्ता की चित्रकला एव मथुरा शैली मे निर्मित महावीर एव गौतमबुद्ध की उपलब्ध प्रतिमाएँ इसका प्रमाण है। ऐतिहासिक क्रम मे नन्द एव मौर्य युग से पत्थर पर बनी एव उकेरी (चित्रित) मूर्तियो से शिल्प का प्रारम्भ होता है। दूसरे शब्दो मे मौर्य, युग एव गुप्त युग, जिसे इतिहास मे श्रेण्य युग की सज्ञा दी गयी है, काव्य शिल्प एव नाट्य सभी का उत्कर्ष काल था। राजपूत काल मे भी इसकी समृद्धता के प्रमाण मिलते है, परन्तु मुगल आक्रमण काल मे इस कला का कुछ अवसान हुआ पुन सल्तनतयुग मे यह कला अपने चरम शिखर पर पहुँच गयी, ताजमहल, एव अकबर निर्मित विभिन्न किले आज भी उस समय प्रचलित इस कला की समृद्धता की कहानी कहते है। वर्तमान बीसवीं शताब्दी मे भी विभिन्न पुलो भवनो एव पार्को के निर्माण मे इस कला की चरम स्थिति देखी जा सकती है। श्रेण्य युग के शिल्पशास्त्रो के प्राचीनतम ग्रथ तो लुप्तप्राय है, परन्तु नाट्यशास्त्र, दत्तिलम्, अग्नि पुराण, विष्णुधर्मोत्तर पुराण, प्रतिमा लक्षण एव चित्रसूत्र आदि कुछ प्राचीन ग्रथ उस युग के शास्त्रीय प्रभाण के रूप मे शेष बचे है, इनमे नाट्यशास्त्र ओर विष्णु धर्मोत्तर पुराण ही इस युग के शिल्पशास्त्रीय प्रतिनिधि ग्रथ कहे जा सकते है। देवी भागवत, दुर्गासप्तशती, रूपमडन, सुप्रभेदागम मे भारतीय मूर्तिशिल्प का, विशेषकर दुर्गा का वर्णन मिलता है साथ ही हरिवश पुराण, मनुस्मृति एव महाभारत मे भी शिल्पशास्त्र सम्बन्धित कुछ सदर्भ भी प्राप्त मिलते है।

शिल्प एक कला भी है, जिसकी पुष्टि ब्राम्हण वात्स्यायन द्वारा दिये गये चौसठ कलाओ मे से एक होने से होती है।[1] कला शब्द का प्रयोग चारो वेदो,[2] शाङ्ख्यायन ब्राह्मण, षड्विश ब्राह्मण शतपथब्राह्मण तैत्तरीय आरण्यक, उपनिषद[3] भागवत पुराण[4] एव मनुस्मृति[5] मे भी उपलब्ध है। भरतमुनि ने ललित कला के अर्थ मे जिस "कला" शब्द का प्रयोग किया है' उस अर्थ के लिये प्राचीन ग्रथो मे 'शिल्प' शब्द प्रयुक्त मिलता है[6] पाणिनिकृत अष्टायध्यायी मे प्रयुक्त 'शिल्पी' कारुशिल्पी एव चारुशिल्पी पद उपयोगी तथा ललित उभयविध कलाओ से सम्पन्न महानुभावो के सूचक हैं। कौष्तिकि ब्राह्मण[7] मे गीत एव नृत्य शिल्प रूप मे उल्लिखित है। कालिदास ने भी इस अर्थ मे शिल्पशब्द का प्रयोग किया है।[8] शिल्प की इस विधा (सगीत सम्बन्धी) का सगीतशास्त्र के अन्तर्गत अध्ययन किया गया है। नैषधकार ने शिल्प की एक विद्या चित्रकला का यथेष्ठ रूप से चित्रण किया है। हस दमयन्ती को अपने विश्वास मे लेने के लिए कहता है कि जिस तरह तुम नल विरह से व्यथित हो, उसी तरह नल भी तुम्हारे बिना, भित्ति पर अलकृत तुम्हारे

---

1 वात्स्यामन-कामसूत्र 1/3/15

2 यथा कला यथा शफ यथा ऋण सनयामसि- ऋ0 8/47/16

3 प्राचीदिक् कला। दक्षिणादिक् कला। उदीचीदिक् कला। एष सौम्य! चतुष्कल पादो ब्राह्मण प्रकाशवान्नाम सयएतमेव विद्वाश्चतुष्कल पाद ब्राह्मण प्रकाशवानित्युपास्ते प्रकाशवानस्मिन् लोके भवति। प्रकाशवतो ह लोकाञ्जयति। य एतमेव विद्वाश्चतुष्कल पाद ब्राह्मण प्रकाशवानित्युपास्तु।-कामसूत्र पृ० 94 पर उद्धृत्

4. विसर्गरत्यभिजल्पशिल्पाः - भागवत 5/11/10

5. शिल्पोपचारयुक्ताश्च निपुणा पण्ययोषित - मनु० 9/259

6 न तज्ज्ञान न तच्छिल्प न सा विद्या न सा कला । नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते ॥
सर्वशास्त्राणि शिल्पानि कर्माणि विविधानि च । अस्मिन्नाट्ये समेतानि तस्मादेतन्मया कृतम् ॥ नाट्यशास्त्र 1/116,117

7 कौशीतकि ब्राह्मण-29/5

8 पात्रविशेषे न्यस्त गुणान्तर ब्रजति शिल्पमाधातु ।
जलमिव समुद्रशुक्तौ मुक्ताफलता पयोदस्य ॥ मालविकाग्निमित्र 2/6

चित्र को सादर अपलक नेत्रो से देखने (तुम्हारे विरह से व्यथित होने) के कारण अश्रुप्रवाह से उसके नेत्र रक्तवर्ण हो जाते है।[1] एव दमयन्ती के द्वारा निर्देशित चित्रकार ने भी नल का चित्र बनाया। –

प्रिय प्रियाच त्रिजगज्जयिश्रियौ लिखाधिलीलागृहभित्ति कावपि ।
इति स्म सा कारुवरेण लेखित नलस्य च स्वस्य च सख्यमीक्षते।।[2]

चित्रकला के क्षेत्र मे षडगो को प्रसिद्धि प्राप्त है, वे है,

रूपभेद प्रमाणानि भावलावण्य योजनम् ।
सादृश्य वर्णिकाभग इति चित्र षडगकम् ।।

इन षडगो की आधुनिक विद्वान् अवनीन्द्रनाथ ने विस्तृत व्याख्या की है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण मे भी चित्रकला से सम्बन्धित निर्देश मिलता है। यथा–

रेखा प्रशसन्त्याचार्या वर्तना तु विचक्षणा '
स्त्रियो भूषणमिच्छन्ति वर्णाढ्यमितरे जना ।।

स्पष्ट है कि रेखा वर्तना,वर्ण अनुपात ह्रास और वृद्धि आदि चित्र लेखन के प्रसिद्ध साधन माने जाते हैं। नैषधकार की उक्ति भी उपर्युक्त तथ्य से साम्य रखती है। यथा-

क्रमाधिकामुत्तरमुत्तर श्रिय पुपोष या भूषणचुम्बनैरियम् ।
पुर पुरस्तस्थुषि रामणीयके तया बबाधेऽवधि बुद्धिधोरिण ।।[3]

महाकवि कालिदास ने भी अपने महनीय ग्रथो मे चित्रकला का वर्णन किया है।[4] चित्रकला विषयक भवभूति के वर्णन की चारूता का कहना ही क्या?[5] इन कवियो की वर्णित चित्रकला विषयक सन्दर्भ लावण्य एव सौन्दर्य के प्रतिमान माने जा सकते है। लावण्य के बारे मे कहा जाता है -

मुक्ताफलेषुच्छायायास्तरलत्वमिवान्तरा ।
प्रतिभाति यदगेषु तल्लावाण्यमिवोच्यते ।।

नैषधकार के चित्रकला विषयक सन्दर्भों को यदि ध्यान से परखा जाय तो यही निष्कर्ष निकलता है प्राकृतिक दृश्यो के शब्द चित्रण[6] के अनुपात में उन्होने व्यक्ति चित्रण को ही प्रधानता दी है। ध्यातव्य है कि चित्रकला की प्रमुख विधाएँ आलेखन, प्राकृति चित्रण दृश्य चित्रण, पदार्थ चित्रण, सन्दर्भ चित्रण, तथा व्यक्ति चित्रण है। इनमे व्यक्ति चित्रण का शीर्षस्थ स्थान भी है साथ ही चित्रण की कुशलता का अन्तिम सोपान भी है। उपयुर्क्त वर्णनो से स्पष्ट है कि सस्कृत साहित्य में जहॉ चित्रकला विधाओ का विशदवर्णन

---

1 नै० 3/103,104

2 नै० 1/38

3 – नै० १५/४९
– किमिव हि मधुराणा मण्डन नाकृतीनामफ-शाकु 1/20

4 यद्यत्साधु न चित्रे स्यात्क्रियते तत्तदन्यथा ।
तथापि तस्या लावण्य रेखया किञ्चिदन्वितम् ।।
स्विन्नागुलिविनिवेशो रेखाप्रान्तेषु दृश्यते मलिन. ।
अश्रु च कपोलपतित दृश्यमिद वर्तिकोच्छ्वासात् ।। शाक् 6/14,15 एव 17,18 भी द्रष्टव्य है।

5 – एतानि तानि गिरिनिर्झरिणीतटेषु, वैखानसाश्रिततरूणि तपोवनानि। उ०रा० 1/25
– सोऽय शैल. ककुमसुरभिर्माल्यवान्नाम यस्मिन्नील. स्निगध श्रयति शिखरं नूतनस्तोयवाह ।
विरम विरमात परं न क्षमोऽस्मि प्रत्यावृत पुरनिव स मे जानकी विप्रयोग ।। उ0रा0 1/33

6 नै० 22/9----- 148 ।

उपलब्ध हे वहीं व्यक्ति चित्रण की कला पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। संस्कृत वाङ्मय म इसे अनेक नामो से सम्बोधित किया गया है। यथा– धनपालरचित 'तिलकमजरी' मे व्यक्ति चित्रण के लिए 'प्रतिबिम्ब चित्र' का पयोग हुआ है तो हर्षदेव ने नागानन्द नाटक मे इसे 'सदृशचित्र' की सज्ञा दी, सोमेश्वर ने 'मानसोल्लास' मे 'विद्धचित्र', विष्णुधर्मोत्तर पुराण के 'चित्रसूत्रम्' नामक प्रकरण मे 'सत्यचित्र', कादम्बरी मे 'सच्चरित चित्र' फारसी मे शवीह्, एव आग्ल भाषा मे इसे पोर्ट्रेट नाम दिया गया है। संस्कृत साहित्य मे व्यक्ति चित्रण की मूलभूत विशेषता सादृश्य पर विशेष प्रकाश डाला गया है। चित्रसूत्रम् म सत्यचित्र जिसका प्रयोग व्यक्तिचित्र के लिए किया गया है, उसमे सादृश्य को प्रधान लक्षण माना गया है, चित्रै सादृश्यकरण परिकीर्तितम्, चित्रसूत्रम् का आशय यहाँ सादृश्य से व्यक्ति का साक्षात् प्रतिबिम्ब उतारना न होकर चित्रकार द्वारा चित्रित व्यक्ति के मनोगत भावो का समावेश करना है। हस ने भी दमयनती के सामने नल की एव नल के सामने दमयन्ती की उनकी मनोदशा के अनुरूप अपनी वाणी से उनका चित्र खींचा एव अपने पजो से उनका चित्रनिर्माण भी किया, जिससे दोनो एक दूसरे की मनोदशा को समझकर एक दूसरे से मिलन हेतु आकर्षित हुए। स्पष्ट है कि व्यक्तिचित्र केवल यन्त्राकृति सादृश्य नहीं है वह मनसाकृत होता है, तब तो आधुनिक काल मे प्रचलित लैण्डस्केप, पोर्ट्रेट, स्टिल लाइफ, की विधाओ का चित्रकला से बहिष्कार ही कर देना चाहिए, चूँकि इन सभी स्थलो मे कैमरे की यथार्थ निरूपण की शक्ति मानवीय हाथो से अधिक दृष्टिगोचर होती है। यहाँ यह कहा जा सकता है कि प्राकृतिक दृश्य मानवीय आकृति या किसी एक क्षण की रूप स्थिति इन सबके चित्रण मे परिप्रेक्ष्यगत विशेषता अपेक्षित होती है, किन्तु किस दृष्टि से कहाँ केन्द्र मानकर वस्तु या व्यक्ति के किन लक्षणो को उभारना है, किन की उपेक्षा करनी है इत्यादि निर्णय चित्रकार ही कर सकता है न कि कैमरा। चित्रकार व्यक्ति के रूप को अपने ध्यान मे लाता है, उसके मनोगत भावो को हृदय गत करता है और फिर अपने चित्राकन मे तूलिका के माध्यम से अभिव्यक्त करता है, तभी व्यक्ति चित्र से सफलता की कोटि मे ला सकता है। रूप का सादृश्य जब भाव के दर्पण मे प्रतिबिम्बित होता है, तभी वह प्राणवान बनपाता है। वास्तव मे चित्रकारिता जितना बाह्य प्रयत्न है उतना ही अभ्यन्तर दृश्य रूप के अन्तर्भूत कर दोनो का सामजस्य चित्रफलक पर चित्रित करना ही चित्रकारिता का सर्वोच्च ध्येय है। डॉ० कुमारस्वामी भी व्यक्ति चित्रण मे जीवित प्रतिमान का वास्तविक सादृश्य अपेक्षित मानते हैं, जिससे उसका उपयोग सामाजिक रूप मे उपयोगी हो सके। शुक्रनीति के आचार्य चित्ररचना से पूर्व समाधिस्थ होकर प्रतिमान (मूर्ति या व्यक्ति) को सम्मुख रखकर सादृश्यपूर्ण चित्रण की आज्ञा देते हैं जैसा कि कालिदास ने मालविकाग्निमित्र मे वर्णन किया है। छान्दोग्य उपनिषद् ने दर्पण मे पडे प्रतिबिम्ब और वास्तविक आत्मभाव के अन्तर को सूक्ष्मता से वर्णन कर व्यक्ति चित्रकारो का मार्गदर्शन किया है।[1] मैत्रेय ने भी उत्ततत्र मे सफल व्यक्ति चित्र को रहस्यमय देह का सादृश्य माना है।[2] नैषधकार द्वारा निर्मित शब्द चित्र भले ही कल्पना पर आधारित लगते हो। परन्तु फिर भी वह पाठक को यह सोचने पर विवश कर ही देते हैं कि हस ने एव श्री हर्ष ने स्वय नल एव दमयनती की सुन्दरता का वर्णन किया है क्या सचमुच दोनो इतने सोन्दर्यशाली थे? हस ने अपने पजो से नल का जो चित्र बनाया था, वह तो दमयन्ती के मनमस्तिष्क मे उतर ही गया था, तभी तो दमयन्ती ने दूत बन नल को यही वास्तविक नल है, ऐसा तुरन्त जान लिया।

---

1 छान्दोग्य उपनिषद् 8/8।5

2 उत्ततत्र 88/99

काल एव परिस्थिति बदलने के साथ साथ तत्युगानुरूप कलाओं के रूप विधान [illegible] या निखार होना स्वाभाविक है। सर्वप्रथम आदि शिल्पी[1] तो ईश्वर (ब्रह्मा) ही थे क्योकि ईश्वर [illegible] और सृष्टि को उनका काव्य कहा गया है, "पश्य देवश्य काव्य न ममार न जीर्यति एव कविर्मनीषी परिभू स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थानव्यदधात शाश्वतीभ्य समाभ्य। इन वाक्यो से स्पष्ट है कि यहाँ शिल्प [illegible] नहीं है वह आत्मकृति है आत्मकृतिर्वैशिल्पम्" एव मात्रा सख्यान, प्रमाण विनिश्चय, लक्षण निर्धारण [illegible] विन्यास इत्यादि शैल्पिक तत्व है। शिल्प की प्राचीनपरम्परा का उद्देश्य कभी भी दृश्याभास या अनुकरण नहीं था बल्कि देवादि विषयो का लक्षण एव प्रमाण के अनुसार ऐसा निरूपण था जिसमे रूप सदा सदा ही साकेतिकता को ग्रहण किये रहता था, परन्तु आजकल की प्रचलित जनसाधारण धारणा है कि शिल्प [illegible] मुख्यतया रुप विधापन या मूर्ति विधान है जिसमे दृश्य विषयो का अनुकरण प्रस्तुत होता है, सम्भवत [illegible] उनके द्वारा परवर्ती शिल्प परम्परा को ठीक न समझने के कारण है। कलाएँ चाहे जसी हो, जिस विद्या का ही भारतीय सस्कृति की सवाहिकाएँ है। कलाएँ ही मानव मन को सुन्दर प्रञ्जल एव व्यवस्थित बनाती है, साथ ही यह तथ्य भी अवधार्य है कि कला का उद्देश्य भी भारतीय कला परम्परा मे वही है, जो मानव जीवन का चरम उद्देश्य होता है अर्थात् धर्म, अर्थ, काम एव मोक्ष की प्राप्ति, जैसा कि विष्णुधर्मोत्तर पुराण मे कहा भी गया है कलाना प्रवर चित्र धर्मकामार्थमोक्षदम्।

पत्ररचना का भी नैषधकार ने बडी सुरूचिपूर्ण पदावली मे वर्णन किया है।[2] नल जब देवदूत बनकर कुण्डिनपुर पहुँचते है तो देखते है कि दमयन्ती अपनी नखलेखनी से स्वर्णिम केतकी-कुसुम-दलो पर क्षण मे श्याम वर्ण होते हुए अक्षरो मे नल को प्रेमपत्र लिख रही थी। चित्रकला मे ख्यातिलब्ध दमयन्ती की सखी वैदर्भी का चित्र बना रही थी परन्तु आलेख्य पट पर दमयन्ती का लीला कमल चित्रित्र कर सकी किन्तु करकमल चित्रित न हुआ, उसी प्रकार कान का इन्दीवर तो बना लिया पर नयनेन्दीवर न बना पाई।[3] पत्र रचना के नैषध मे अन्य प्रसग भी मनोहारी है। यथा–

> आलिख्य सख्या कुचपत्रभगीमध्ये सुमध्या मकरीकरेण।
> यत्रालपत्तामिदमालि! यान मन्ये त्वदेकावलिनाकनद्या ।।[4]
> कपोलपत्रान्मकरात्सकेतुर्भ्रूभ्या जिगीषुर्धनुषा जगन्ति '
> इहावलम्ब्यास्ति रति मनोभू रज्यद्वयस्यो मधुनाधरेण ।।[5]

---

1 मनुस्मृति के सृष्टि विद्या विषयक वर्णन की चार कोटियों के प्रतिपादक श्लोक इस प्रकार हैं–
- प्रथम कोटि गुणातीत गुणात्पर पर ब्रह्म आसीदिद तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्। अप्रतर्क्यमविज्ञेय प्रसुप्तमिव सर्वत।। मनु० 1/5
- द्वितीय कोटि स्वयभू प्रजापति पुरूष
  तत स्वयभूर्भगवान् अव्यक्तो व्यञ्जयान्निदम्। महाभूतादि वृत्तौजा प्रादुरासीत्तमानुद ।
  योऽसावतिन्द्रियग्राह्य सूक्ष्मोऽव्यक्त सनातन। सर्वभूतमयोऽचिन्त्य स एव स्वयमुद्बभौ ।। मनु० 1/6,7
- तृतीय कोटि आप नारा महत्, परमेष्ठी
  सोऽभिद्धयाय शरीरात्स्वात् सिसृक्षुर्विविधा प्रजा। अप एवससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्।। मनु० 1/8
  आपो नारा इति प्रोक्ता आपो नै नरसूनव। मनु० 1/10
- चतुर्थ कोटि है- अण्ड, सर्वलोकपितामह ब्रह्मा, त्रिगुणात्मक विश्व
  तदणुभवद्वैम सहस्राशुसमप्रभम्। तस्मिञ्जज्ञे स्वय ब्रह्मा सर्वलोकपितामह ।। मनु० 1/19
  ता यदस्यायन पूर्वं तेन नारायण समृत।-मनु० 1/10
  यन्तत्कारणमव्यक्त नित्य सदसदात्मकम्। तद्विसृष्ट स पुरूषो लोके ब्रह्मेतिकीर्त्यते। मनु० 1/11

2 नैषध 3/118, 123 128

3 दलोदले काञ्चनकेतकस्य क्षणान्मसीभावुकवर्णलेखम्।
तस्यैव यत्र स्वमनङ्गलेख लिलेख भैमी नखलेखनीभि ।।
विलेखितु भीमभुवो लिपीषु सख्याऽति विख्याऽतिभृतापि यत्र।
अशाकि लीलाकमल न पाणिरपारि कर्णोत्पलमक्षि नैव। ।। नै० 6/63, 64

4 नै० 6/69

5 नै० 7/60

उत्कण्टका विलसदुज्ज्वलपत्रराजिरामोदभागनपरागतराऽतिगौरी ।
रुद्रक्रुधस्तदरिकामधिया नले सा वासार्थितामधृत काञ्चनकेतकीव ।।[1]
दत्ते जय जनितपत्रनिवेशनेय साक्षीकृतेन्दुवदना मदनाय तन्वी ।
मध्यस्थदुर्बलतमत्वफल किमेतद्भुक्तिर्यदत्र तव भर्त्सितमत्स्यकेतो ।।[2]
पत्युर्गिरीणामयश सुमेरूप्रदक्षिणाद्भास्यदनादृतस्य ।
दिशस्तमश्चैत्ररथान्यनामपत्रच्छटाया मृगनाभिशोभि ।।[3]

तत्कालीन समय के लोग चित्रकला मे प्रवीण थे, इसका प्रमाण देते हुए श्री हर्ष कहते है कि कुण्डिनपुर वासियो ने नगर के भवनो की भित्तियो पर दमयन्ती का चित्र बना रखा था, दमयन्ती के चरित्रो को चित्रो मे देखते हुए स्वयवर मे आये राजागणो ने अपने दिन व्यतीत किये,[4] उधर दमयन्ती भी चित्रकार द्वारा बनवाई गयी तस्वीर को देखकर अपने सपने बुनती थी।[5] इस प्रकार सजीव चित्रो का निमार्ण करन का वर्णन कर श्रीहर्ष ने यह ससूचना देनी चाही है कि उस समय भी कुशल चित्रकार विद्यमान थे। इस दिशा मे दमयन्ती का कथन भी अवधेय है जब वह नल से कहती है- कि हस ने मेरे प्रिय का जो चित्र अपने नखो से निर्मित किया था, वह आपके ही रूप के समान था। यथा–

तदद्य विश्रम्य दयालुरेधि मे दिन निनीषामि भवद्विलोकिनी ।
नखै किलाख्यायि विलिख्य पक्षिणा तवैव रूपेण [illegible] स मत्प्रिय ।।[6]

यह तो स्वत सिद्ध तथ्य है कि जिस भित्ति पर या जिस जगह चित्र बनाना होता है उसे जल या किसी अन्य लेप पदार्थ से साफ करने के बाद ही वहॉ पर चित्र बनाया जाता है।[7] इस तथ्य का नैषधकार ने भी प्रतिपादन करते हुए कहा है कि शत्रु (का चरित्र) की कीर्ति चाहे कितनी ही धवल (स्वच्छ) क्यो न हो, किन्तु उसके चरित्र मे झूठे स्याही के दाग (अपयश) लगाने मे भला कौन कसर छोडता है।[8] शिल्पशास्त्र मे ही दाग छुटाने का वर्णन भी नैषध मे मिलता है, जहॉ नल दमयती से सन्ध्याकालीन दृश्य का चित्रण करते हुए कहते है कि प्रिये! देखो तो, रात्रि रूपी धोबिन ने चन्द्रिका रूपी दूध की धारा से आकाश रूपी वस्त्र मे लगे हुए अन्धकार रूपी कज्जल के दाग को क्षण भर मे साफ कर दिया।[9] दाग छुटाने के लिये कलाकोष नामक ग्रथ मे विवरण मिलता है कि वस्त्र पर पडे तेल के दाग (मल) को घी से, घी के मल को उष्ण जल से, कज्जलके दाग को दूध से तथा अन्य प्रकार के दागो को खारे उष्ण से धोना चाहिए।[10]

---

1 नै० 12/110
2 नै० 21/134
3 नै० 22/29
4 नै० 10/35
5 नै० 9/66, 143 155
6 नै० 9/66
7 अन्येपि शिल्पिनो जलधारा - क्षालिते रमणीये कड्डयादौष्मयादिवर्ण कैश्चित्र लिखन्ति। नै० 20/136 नारायण की टिप्पणी।
8 धौतेऽपिकीर्तिधाराभिश्चरिते चारूणि द्विष ।
मृषामषीलवैर्लक्ष्म लेखितु के न शिल्पिन ।। नै० 20/136
9 अभिमृगेन्द्रोदरि! कौमुदीभि क्षीरस्य धराभिरिव क्षणेन ।
अक्षलि नीली रुचिरम्बरस्था तमोमयीय रजनीरजक्या ।। नै० 22/11
10 तैल घृतेन, तच्चोष्णजलैर्दुग्धेन कज्जलम् ।
नाशयेदम्बरस्थ तु मल क्षारेण साष्मण ।। कलाकोष, नै० 22/111 टीका में नारायण की टिप्पणी

माला पिरोने का वर्णन भी नैषधकार ने सुरूचिपूर्ण शैली मे करते हुए कहा कि दमयन्ती के भवन मे कोई सुन्दरी सुई की नोक चुभाकर माला गूथ रही थी, ऐसा लग रहा था कि जिन पुष्पो ने मदन बाण बनकर दमयन्ती के हृदय को क्षुब्ध किया था, मानो वह उन्ही से (अपनी सखी दमयन्ती का) प्रतिशोध ले रही थी एव दमयन्ती उसे ऐसा करने से मना कर रही है कि अरे! इस प्रकार तो तू ही इन कुसुम बाणो को गुण (डोरा या प्रत्यचा) युक्त कर मदन को दे रही है। यथा-

स्मराशुगीभूय विदर्भसुभ्रूवक्षो यदक्षोभि खलुप्रसूनै ।
सृज सृजन्त्या तदशोधि तेषु यत्रैकया सूचिशिखा निखाय ॥
यत्रावदत्तामतिभीय भैमी त्यज त्यजेद सखि! साहसिक्यम् ।
त्वमेव कृत्वा मदनाय दत्से बाणान्प्रसूनानि गुणेन सज्जान् ॥[1]

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र के ग्यारहवे अध्याय मे मालागूथते समय हाथ की होने वाली सूची मुखमुद्रा का उल्लेख किया है।[2]

शिल्प की एक विधा द्यूत क्रिया का वर्णन भी नैषधकार ने किया है। दमयन्ती एव उसकी सखियो की सभा मे पाशे का दॉव चल रहा था। दमयन्ती की सखी दमयन्ती को पाशे का ज्ञान कराती हुई कहती है कि–

शारीं चरन्तीं सखि! मारयैतामित्यक्षदाये कथिते कयापि ।
यत्र स्वघातभ्रमभीरूशारीकाकूत्थसाकूतहस स जज्ञे ॥[3]

महाभारत से भी यह प्रमाणित होता है कि उन दिनो अक्षविद्या का प्रचलन था। नल को उसके भाई पुष्कर ने द्यूतक्रीडा मे (कलि के सहयोग से) पराजित कर उसे राज्य से च्युत कर दिया था।[4] हालाकि नैषध मे इसका उल्लेख नहीं मिलता। बाद मे नल ने अक्षविद्या के जानकार राजा ऋतुवर्ण से सीखकर उसमे दक्ष होकर पुष्कर को पराजित कर अपना राज्य प्राप्त किया था।[5]

नैषधकार शिल्पशास्त्र की एक अन्य विद्या अभिनय का भी नैषध मे उल्लेख किया है। नल देवदूत बनकर जब दमयन्ती के भवन मे प्रवेश करते है, तो देखते है कि वहॉ दमयन्ती के सखियो के सरस विलास चल रहे थे कोई सखी दमयन्ती का रूप धारण किये हुए थी, तो कोई नल का रूप धारण किये हुए थी, एव धात्री द्वारा लायी गयी मधूकमाला को दमयन्ती रूप धारिणी सखी, नल रूप धारिणी सखी के गले मे लज्जा का अभिन्य करती हुई डाल रही थी, एव सारिका (को सखियों ने जो पाठ पढा रखा था वह उसी को दुहराती हुई) कह रही थी, कि सखि दु:ख न करो, यह देखो नल है! नल जो वहीं अमूर्त रूप मे स्थित थे, चौक पडे कि कहीं मैं इन लोगो के द्वारा देख तो नहीं लिया गया।[6] नैषधकार का उपर्युक्त विवरण सर्वथा शास्त्र सम्मत ही है क्योकि भरत के नाट्य शास्त्र के सातवें अध्याय में भी भाव विन्यासो के अभिनय का वर्णन मिलता है। यथा–

---

1 नै० 6/67 68
2 नाट्य शास्त्र 11/20 21
3 नै० 6/71
4 महाभारत नलपर्व 59/1 --- 60
5 महाभारत नलपर्व 71/1--- 34, एव 78/1---- 29
6 सखीशताना सरसैर्विलासै स्मरावरोधभ्रमावहन्ताम् ।
विलोकयामास सभ स भैम्यास्तस्य यप्रतोलीमणिवेदिकायाम् ॥ नै० 6/58

विभावैराहृतो योऽर्थो ह्यनुभावैस्तु गम्यते । वागङ्गसत्वाभिनयै स भाव इति सज्ञित ॥
वागगमुखरागेण सत्वेनाभिनयेन च । कवेरन्तर्गत भाव भावयन्भाव उच्यते ॥
नानाभिनयसबद्धान्भावयन्ति रसानिमान् । यस्मात्तस्मादमी भावा विज्ञेया [illegible] ॥
बहवोऽर्था विभाव्यन्ते वागङ्गाभिनयाश्रया । अनेन यस्मात्तेनाय विभाव इति सज्ञित ॥
वागगाभिनयेनेह यतस्त्वर्थोऽनुभाव्यते । शाखाङ्गोपाङ्गसयुक्तस्त्वनुभावस्तत स्मृत ॥
लोकस्वभावसंसिद्धा लोकयात्रानुगामिन । अनुभावा विभावाश्च ज्ञेयास्त्वभिनये बुधे ॥[1]

इसके अतिरिक्त नाट्यशास्त्र मे आठवे एव नवे अध्याय मे उपाङ्गाभिनय एव अगाभिनय का भी विस्तार से विवेचन मिलता है।

श्री हर्ष ने हास परिहास एव पहेली का भी वर्णन किया है जो कि वात्स्यायन द्वारा दी गयी चोसठ कलाओ की शृखला की एक कडी है।[2] बीसवे सर्ग मे नल दमयन्ती की रात्रिकालीन मदन क्रिया का वर्णन कर सखियो के सामने उसका परिहास कर रहे थे, तब दमयन्ती ने अपनी सखी के कान अपने हाथो से मूद लिये, फिर दमयन्ती के पक्ष को ग्रहण करते हुए नल ने उसकी सखी कला के ऊपर जल फेक दिया, जिससे उसके अग झलकने लगे एव उसका भी परिहास हुआ, तथा दमयन्ती को विभिन्न मुद्राओ से राजा नल ने किञ्चित् कुपित किया, तो उन्हे मनाया भी[3] (इसका विस्तार से वर्णन कामशास्त्रके अन्तर्गत किया जा चुका है।) स्पष्ट है कि श्रीहर्ष शिल्पशास्त्र से इस विधा के भी विज्ञ थे। भरत के नाट्यशास्त्र से भी इस विधा के शास्त्र सम्मत होने की पुष्टि मिलती है।[4]

शिल्पशास्त्र मे स्त्रियो एव पुरुषो के सौन्दर्य मण्डन हेतु अगराग लेपन की चर्चा भी मिलती है। नैषधकार ने इसका वृहद् रूप मे वर्णन किया है। दमयन्ती के स्वयवर मे सभी राजागण अपनी रूप सज्जा कर सभा मण्डप मेआये ऐसा वर्णन नैषध मे दशवे सर्ग मे वर्णन मिलता है। सभी राजा अपने रूप सौन्दर्य को एक दूसरे से पूछ-पूछ कर, पुन दर्पण मे अपने प्रतिबिम्ब को देख-देखकर पुन अपना रूपमण्डन करते।[5] परन्तु फिर भी नल की सुन्दरता की समता के लिए वे पुन उद्योग करते । नल तो प्रकृत्या सोन्दर्य की मूर्ति थे। किन्तु नल भी उत्तम अलकारो के साथ-साथ कुकुम चन्दन आदि अगरागो को धारण कर ही स्वयवर सभा मे ससम्मान पधारे।[6] स्त्रियो के सौन्दर्य को सवारनेका वर्णन करते हुए श्रीहर्ष लिखते है कि विभिन्न आभूषणो एव स्निग्ध लेपन इत्यादि से दमयन्ती परमसुन्दरी दिख रही थी, क्योकि उसका श्रृगार रूप सज्जा मे चतुर उसकी सखियो द्वारा किया गया था। गोरोचन, चन्दन, कुकुम तथा कस्तूरी के लेप

---

1 नाट्यशास्त्र-7/1--- 6

2 कामसूत्र 1/3/15

3 नै० 20/12 ----- 153

4 रतिर्नाम प्रमोदातिमका ऋतुमाल्यानुलेपनाभरणभोजनवरभवना नुभषनाप्राति कूल्यादिर्तिर्विभावै समुत्पद्यते। स्मितवदनमधुरकथनभ्रूक्षेपकटाक्षादिभिरनुभावै । "इष्टार्थ विषय प्रादया रति समुपजायते । सौम्यत्वादभिनेया सा वागमाधुर्यागचेष्टितै ॥ 7/9
ह्यसो नाम - परचेष्टानुकरण कूहकासवद्धप्रलापपौरोभग्यमौख्योदिभिर्विभावै समुत्पद्यते। तमभिन्येत् पूर्वोक्तैर्हसितादिभिरनुभावै। भान्तिचात्र श्लोक परचेष्टानुकरणाद्धास समुपजायते । स्मतहासातिछसितैरभिनेय स पण्डितै ॥ 7/10 नाट्यशास्त्र पृ० 107-108

5 पूर्णन्दुमास्य विदधु पुनस्ते पुनर्मुखीचक्रुरनिद्रमब्जम् । स्ववक्त्रमादर्शतलेऽथ दर्शदर्श बभुञ्जर्नतथातिमञ्जु ॥ नै० 10/20

6 भूषाभिरुच्चैरपि सस्कृते य वीक्ष्याकृत प्राकृतबुद्धिमेव । प्रसूनबाणे विबुधाधि नाथस्तेनाथ साऽशोभि सभा नलेन ॥ धृतागरागे कलितद्यु शोभा तस्मिन्सभा चुम्बति राजचन्द्रे । गतावताक्ष्णोर्विषय विहाय क्व क्षत्रनक्षत्र कुलस्य कान्ति. ॥ नै० 10/38,39

मणियो के आभा पडने से व्यर्थ ही सिद्ध हो रहे थे।[1] उस समय भी ललना सौन्दर्यमण्डन कीप्रथा थी, ऐसा राजा भीम के कथन से भी पुष्टि होती है। यथा-

> सृजन्तु पाणिग्रहमगलोचिता मृगीदृश। स्त्रीसमयस्पृश। क्रिया।
> श्रुतिस्मृतीना तु वय विदध्महे विधानिति स्माह च निर्ययौ च स ।।[2]

घर, दरवाजे सजाने जैसा कृत्य भी शिल्पशास्त्र के अन्तर्गत आता है। दमयन्ती के परिणय के समय भी भीममहल अत्यधिक मनोरम ढंग से सजाया गया था।[3] साथ ही कुण्डिनपुर की रमणियो द्वारा विवाह मण्डप मे मगलार्थक हल्दी चावल से चौक रचना की गयी।[4] स्पष्ट है कि उस समय की स्त्रिया भी शिल्पक्रिया विधान मे दक्ष थीं। विवाह मण्डप मे वर वधू को सजाने की परम्परा प्राचीन काल से अनवरत आधुनिक काल तक चली आ रही है। श्रीहर्ष भी दमयन्ती एव नल के वरवधू रूप मे सजारने सवारने का वर्णन करते हुए कहते है कि समस्त कलाओ मे चिरकाल से अभ्यास करने के कारण अत्यन्त कुशल सखियो ने दमयनती को वेदी पर ले जाकर क्षण मे उसके प्रत्येक अग का श्रृगार किया।[5] वैसे तोअलकरणो के विना भी दमयनती स्वय सुषमा की पराकाष्ठा थी, दमयन्ती का मुखमण्डल विभिन्न तिलको एव पुष्पो की छटा से दीप्तिमान था। किसी सखी ने सुंगन्धित धूप के धूम से सुवासित करके दमयन्ती के कोमल केशपास कोमनोहर पुष्प मजरी के समान गूथा तो किसी सखी ने श्याम चवर के समान उसके कुचित केशपाश को बॉधा। दमयन्ती केमस्तक पर स्वर्णमयी पट्टिका सुशोभित की गयी। विस्तृत नेत्रो मे अपागो तक फैलने वाले अञ्जन (रेखा रूप मे) लगाया गया, कानो मे आभरण रूप मे दो इन्दीवर पुष्प एव विभिन्न रत्न आभूषणो के साथ मणिखचित चन्द्राकार कुण्डल पहनाये गये, होठो पर अरुण यावक राग (आलक्तक सदृश) जो चिकने पदार्थ के सम्मिश्रण से युक्त था लगाया गया जिससे वह सदा लगा रहे एव चटकीला बना रहे, गले मे सात लडियो का मुक्ताहार पहनाया गया। बाहु मे शख, (मगलार्थक) निर्मित मगल ककण (कगन) एव चरणो मे आलक्तक, राग लगाया गया[6] सम्पूर्ण श्रृगार विधियो से मण्डित करने के बाद दमयन्ती शोभा की पराकाष्ठा जैसी लगती थी। यथा-

> क्रमाधिकामुत्तरमुत्तरं श्रिय पुपोष या भूषणगुम्बनैरियम् ।
> पुर पुरस्तस्थुषि रामणीयके तया बबाधेऽवधिर्बुद्धिबोरिण ।।[7]

वर रूप मे नल को सजाने का वर्णन करते हूए नैषधकार अभिहित करते है कि श्रृगार रचना मे कुशल सेवको ने महाराज नल का भी विवाहोचित श्रृगार किया।[8] केश प्रसाधन मे दक्ष पुरुषो ने बडे विचार

---

1 स्निग्धत्वमायाजललेप लोपसयत्नरत्नाशुमृजांशुकाभाम् ।
नेपथ्य हीराद्युतिवारिवर्तिस्वच्छाय सच्छाय निजालिजालाम् ।। नै० 10/94 एव 95 — 97
पीतावदातारुणनीलभासा देहोपदेहात्किरणैर्मणीनाम् ।
गोरोचना चन्दनकुकुममैणनाभीविलेपान्पुनरुक्तयन्तीम् ।। नै० 10/98 एव 99 --- 110

2 नै० 15/7, एव 15/26

3 मुखानि मुक्तामणितोरणोद्गतैर्मराचिभि पान्थविलासमाश्रितै ।
पुरस्य तस्याखिलवेश्मनामपि प्रमोदहासच्छुरितानि रेजिरे ।। नै० 15/13 एव 10/31

4 क्वचित्तदालेपनदान पण्डिता कमप्यहकारमगात्पुरस्कृता ।
अलम्भि तुगासनसनिवेशनादपूपनिर्माणविदग्धयादर ।। नै० 15/12

5 अवापिताया शुचिवेदिकानूतर कलासु तस्या सकलासु पण्डिता ।
क्षणेन सख्याश्चिरशिक्षणै स्फुट प्रतिप्रतीक प्रतिकर्म निर्ममु ।। नै० 15/26

6 नै० 15/27 ---- 48

7 नै० 15/49 एव 50 --- 56

8 तथैव तत्कालमथानुजीविभि प्रसाधनासञ्जनशिल्पपारगै ।
निजस्य पाणिग्रहणक्षणोचिता कृता नलस्यापि विभोर्विभूषण ।। नै० 15/57

एव सावधानी के साथ उनके केशो का शृगार कर उन्हे बॉधा, साथ ही मालती आदि के पुष्प केशो मे लगाने के साथ अमूल्य रत्नो वाला मुकुट उन्हे पहनाया गया, ललाट पर वीरपट्टिका, जो रत्नखचित थी के पहनाने के साथ, तिलकबिन्दु भी भाल पर निर्मित किया गया, कानो मे कुण्डल एव गले मे मोतियो की माला तथा बाहुओ मे मुद्रिकाएँ एव भुजबन्द आदि पहनाये गये। उस समय नल पृथ्वी पर साक्षात् कामदेव लग रहे थे।[1] नैषधकार ने भी अपनी अभीप्सा निम्न रूप मे व्यक्त की -

वैदर्भीबहुजन्म निर्मिततप शिल्पेन देहश्रिया ।
नेत्राभ्या स्वदते युवायमवनीवास प्रसूनायुध ॥
[illegible]रुकृतप्राग्भारदुष्प्रापया ।
योग भीमजयानुभूय भजतामद्वैतमद्यत्विषाम् ॥[2]

उपर्युक्त तथ्यो एव पूर्व मेव्याख्यायित पाक, वास्तु, अश्व, काम, इत्यादि शास्त्रो के प्रसग से भी यह स्पष्ट होता है कि श्रीहर्ष शिल्पशास्त्रज्ञ थे। साथ ही यह भी विवरण मिलता है कि नल एव दमयन्ती भी शिल्पशास्त्र की अनेकानेक विधाओ के ज्ञाता थे।

वास्तु शास्त्र

अमरकोश मे 'वास्तु' शब्द के लिए 'वेश्मभूर्वास्तुरस्त्रियाम्'[3] अभिहित किया गया है। वास्तु शब्द की निष्पत्ति वस् + तुण् + के सयोजन से होती है। किञ्चित् कविपण्डितो ने वास्तु शब्द की व्याख्या करते हुए कहा 'वसन्ति प्राणिनो यत्र' अर्थात् वह स्थान या भूमि जहॉ प्राणी (मानव) निवास करते हो (निवास भूमि) या घर बनाने की जगह या भवन भूखण्ड को वास्तु कहा जाता है।[4] मनुस्मृति मे विवरण मिलता है कि "रवेरविषये वास्तु किं दीप प्रकाशयेत्"।[5] शास्त्र जनसाधारण के लिए विधान बतलाने वाले धार्मिक ग्रन्थो को कहते है। अत यह कहा जा सकता है कि वह स्थान जिस पर कोई इमारत खडी हो, साथ ही उससे सम्बद्ध जमीन, जमीन की जॉच, इमारत किस विधि से निर्मित की जाये, पूजालय, पचनालय (भोजनालय) स्नानघर, शय्यागृह किस दिशा मे हो, इससे सम्बद्ध विषय का समस्त ज्ञान जो उचित क्रम मे मानव ज्ञान का विषय बने, उसे वास्तुशास्त्र कहते है। नैषध मे कविवर श्रीहर्ष ने महाराज भीम के (कुण्डिनपुर स्थित) महल विवरण प्रसङ्ग मे[6] एव निषदाधिराज नल के प्रसाद वर्णन प्रसङ्ग मे[7] अपनी वास्तुशास्त्रविदग्धता का परिचय दिया है। वास्तुशास्त्र की प्राचीनता का पता इसी से प्रकट होता है कि इसका वर्णन ऋग्वेद मे भी आया है।[8]

---

1 नै० 15/58 ------ 86
2 नै० 15/87
3 अमर कोश 2/3/19
4 सस्कृत हिन्दीकोश – वामन आप्टे–पृ० 923
5 मनुस्मृति 3/89
6 नै० 2/74 - - 109
7 नै० 18/3 - - 34
8 ता वा वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयास ।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्ण परम पदमव भाति भूरि ॥ ऋ 1/154/6
वास्तूनि सुखनिवासयोग्यानि स्थानानि - सायण)

भवन विन्यास मानव सभ्यता एव सस्कृति के अध्ययन मे प्रमुख आधार रहा है। रथापत्य कला का उत्कर्ष मानव समाज की सास्कृतिक अभिरूचि एव वैभव को प्रदर्शित करता है। भारत वर्ष मे भवन निर्माण की कला प्राचीन काल से ही लोगो को ज्ञात थी, क्योकि इस कला मे मनुष्यो के दक्ष होने के प्रमाण - हडप्पा एव मोहनजादडो की सभ्यता के अध्ययन मे प्रचुर रूप मे उपलब्ध मिलते है, साथ ही सभो वैदिक सहिताओ मे भी वास्तुकला के वर्णन के सदर्भ प्राप्त होते है। अथर्ववेद सहिता के 'शालासूक्त' मे विशष रूप से रथापत्य (वारतु) कला का वर्णन मिलता है एव वारतु विद्या के बीज भी अथर्ववेद मे मिलते ह क्योकि अथर्ववेद से उद्भूत रथापत्य वास्तुशास्त्र का उपजीव्य है, ऐसा भागवत महापुराण से प्रमाणित होता है। यथाहि -

ऋग्यजु सामाथर्वाख्यान् वेदान् पूर्वादिभिर्मुखे ।
शस्त्रमिज्या स्तुतिस्तोम प्रायश्चित व्यधात्क्रमात् ।।
आयुर्वेद धनुर्वेद गान्धर्व वेदमात्मन ।
स्थापत्य चासृद् वेद क्रमात्पूर्वादिभिर्मुखे ।।
इतिहास पुराणानि पञ्चम वेदमीश्वर ।
सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्य ससृजे सर्वदर्शन ।।[1]

स्थापत्य विद्या का पोषण ऋषियो द्वारा किया गया है क्योकि मत्स्यपुराण मे शिल्पशास्त्र के उपदेशक अठारह आचार्यो का वर्णन मिलता है। इन आचार्यो मे मय एव विश्वकर्मा अत्यधिक प्रसिद्ध थे। विश्वकर्मा औदीच्यपरम्परा के तथा मय दाक्षिणात्यपरम्परा के दीपस्तम्भ माने जाते हैं। समराङ्गणसूत्रधार के अनुसार प्रभावसु के पुत्र विश्वकर्मा देवगुरु वृहस्पति के भागिनेय एव अपराजितपृच्छा के अनुसार भृगु (शुक्राचार्य) के भागिनेय थे। ये दोनो ऋषि शिल्पशास्त्र के महनीय उपदेशक थे। नल एव नील के साथ अष्टावसुओ की ख्याति भी शिल्पज्ञ रुप मे प्रथित है। आधुनिक वास्तुशास्त्रविद् ग्रोडर महोदय ने कुछ प्रमुख वास्तुविदो के होने की ससूचना दी।

वास्तुशास्त्र गणित एव ज्योतिष का प्रयोगात्मक (क्रियात्मक) विज्ञान है क्योकि स्थापत्य की आधारभूता पृथ्वी सौरमण्डल के साथ सम्बद्ध है। सूर्य, चन्द्रमा तथा नक्षत्रो का प्रभाव इसके ऊपर परिलक्षित होता है। इसीलिए प्राचीनकाल से ही इस ससार मे वास्तुप्रकल्पना मे आयादिविचार,नक्षत्र-परीक्षा,लग्न,तिथि एव दिनो का निर्धारण होता आया है। इस प्रकार अष्टाड्गस्थापत्य मे ज्योतिषशास्त्र का भी प्रमुख योगदान है। मापन वास्तुप्रकल्पना का आधार है। मापन के बिना सुष्ठुप्रकल्पना सम्भव नहीं हे, एव इस कार्य मे गणितशास्त्र का प्रयोग होता है। वास्तु कर्म में ज्यामितिशास्त्र के अनुसार आकृति का निर्धारण होता है इसलिए वास्तुशास्त्र का एक अन्य सहयोगी शास्त्र गणित शास्त्र भी है। साथ ही देशचयन, भूमिपरीक्षण एव शल्यशोधन मे वास्तुशास्त्र के सहायक भूगोल, भूगर्भ इत्यादि शास्त्र भी है। इससे स्पष्ट है कि वास्तुशास्त्र का ज्योतिषशास्त्र, गणितशास्त्र, ज्यामिति शास्त्र एवं भूगर्भशास्त्र से महत्वपूर्ण सम्बन्ध है।

श्रीहर्ष ने नैषध के दशवे सर्ग में स्वयंवर प्रसड्ग मे राजमण्डल के बीच मे सम्पूर्ण अलडकरणों से अलडकृत दमयन्ती के आगमन पर उसके सौन्दर्य का वर्णन करते हुए दमयन्ती के रुप निर्माण का शिल्पी बसन्त को बताया, क्योकि उसने दमयन्ती की, श्वासो को मलय पवन का बनाया, एव उसके अंगों को

---

1 श्रीमद् भागवत् 3/12/37, 38, 39

प्रसून निर्मित तथा वाणी को कोकिल के पचम स्वर से निर्मित बताया।[1] साथ ही दमयन्ती की शरीराकृति को मदन (कामदेव) निर्मित बताया ब्रह्मा की नहीं, क्योकि दमयन्ती का शिल्पी अन्य शिल्पकारो से पराभूत नहीं हो सकता, जबकि ब्रह्मा तो रुप निर्माण के विषय मे एक मदन किकर योवन से पराजित हो जाते है।[2] ऐसा वर्णन समुपरथापित कर श्रीहर्ष ने यह स्पष्ट रूप से सकेत दिया है कि वह शिल्पशास्त्र मे भी, जो कि वास्तुशास्त्र का एक अगभूत रूप है, उसमे भी वह पारगत है। नैषधकार ने राजा भीम के राजप्रासाद एव नल के राजप्रसाद वर्णन प्रसग मे यह तो नहीं बताया कि उनका राजप्रासाद वास्तुशास्त्र म प्रतिपादित तथ्यो के आधार पर ही बना था, किन्तु यदि वास्तुशास्त्र की दृष्टि से शुभाशुभ विचार भीम नल के प्रासाद के बारे मे किया जाय, तो यही तथ्य उभर कर सामने आता है कि निश्चय ही ये वास्तुशास्त्र सम्मत विधि से ही बने होगे क्योकि विश्वकर्मा ने भी कहा था कि

प्रासादे सदनेऽलिन्दे द्वारे कुण्डे विशेषत ।
दिङ्मूढे कुलनाश स्यात्तद्वशात्साधयेदिश ॥

जब कि भीम एव नल दोनो नरेशो के उत्कर्ष का वर्णन महाभारत के साथ-साथ नैषध मे भी मिलता है। नैषध मे उपलब्ध वस्तुशास्त्रीय सदर्भो के जो चित्र मन मे अकित होते है, उससे यह प्रतीत होता है कि कवि को वास्तु शास्त्रीय ग्रथो यथा-अग्निपुराण के ४१वे, ४ ७वे एव १०४ वे अध्याय, मानसार, वृहत्सहिता के तिरपनवे अध्याय एव समराङ्गणसूत्रधार मे प्रतिपादित विषयसामग्री का यथेष्ठ ज्ञान था। जब हस राजा नल का दूत बनकर कुण्डिनपुरी पहुँचा तो उसने देखा कि कुण्डिनपुरी के भवन निष्कलक भित्तियो वाले एव स्फटिक मणि से निर्मित थे।[3] तथा राजप्रासाद नीलममणि एव सूर्यकान्तमणियो से निर्मित थे।[4] प्रासाद या गृह निर्माण हेतु उत्तम भूमि के बारे मे मत्स्यपुराण मे कहा गया है कि –

पूर्वादि गृह्णीया द्वर्णानामनुपूर्वश । वास्तुसामूहिको नाम दीप्यते यस्तु सर्वश ॥
शुभद सर्ववर्णाना प्रासादेषु गृहेषु च । हलकृष्टेऽथवा देशे सर्वबीजानि वापयेत् ॥
त्रिपञ्चसप्तरात्रेण यत्र रोहन्ति तान्यपि । ज्येष्ठोत्तमा कनिष्ठा भूर्दर्जनीयेतरामता ॥[5]

वराह ने भी भवन विन्यास हेतु उत्तम भूमि के बारे मे अभिहित किया कि –

श्वभ्रोषित न कुसुम यस्मिन् प्रम्लायते तु वर्णसमम् ।
तत्तस्य भवति शुभद यस्य च यस्मिन्न मनो रमते ॥
कुशयुक्ता शरबहुला दूर्वाकाशान्विता क्रमेण मही ।
अनुवर्ण वृद्धिकरी मधुरकषायाम्लकटुका च ॥

---

1 अस्या स चारुर्मधुरेव कारु श्वास वितेने मलयानिलेन ।
अमूनि सूनैर्विदधेऽङ्कानि चकार वाच पिकपञ्चमेन ॥ नै० 10/130

2 कृति स्मरस्यैव न धातुरेषा नास्या हि शिल्पीतरकारुजेय ।
रूपस्य शिल्पे वयसाऽपि वेधा निजीयते स स्मरकिङ्करेण ॥
गुरोरपीमा भणदोष्ठकण्ठ निरुक्तिगर्वच्छिदया विनेतुम् ।
श्रम स्मस्यैव भव विहाय मुक्ति गतानामनुतापनाय ॥ नै० 10/131,132

3 दयित प्रति यत्र सततारतिहासा इव रेजिरे भुव ।
स्फटिकोपलविग्रहा गृहा शशभृद्भिनिरङ्कभित्तय ॥ नै० 2/74

4 नृपनीलमणीगृहत्विषामुपधयेर्यत्र भयेन भास्वत ।
शरणार्थमुवास वासरेप्यसदावृत्युदयत्म तम ॥ नै० 2/75
अनलै परिवेषमेत्य या ज्वलदर्कोपलवप्रजन्मभि ।
उदय लयमन्तरा खेखहद्वाणपुरीपराध्यर्तरम् ॥ नै० 2/87

5 मत्स्यपुराण 253/15, 16, 17, 18

उपर्युक्त प्रासाद हेतु उत्तम भूमि से सभी वर्णन भीम एव नल के राजप्रासाद से सम्बन्धित वर्णन प्रसग मे घटित होते है।[1] वराह ने भित्ति के बारे मे वर्णन करते हुए लिखा है कि –

व्यासात् षोडशभागसर्वेषा सद्मना भवेद्भित्ति
पक्वेष्टकाकृताना दारुमयाना तु न विकल्प ।[2]

अग्निपुराण में भी भित्तियो के परिमाप के बारे मे सूचना मिलती है। यथा -

प्रतिमाया प्रमाणेन् कर्त्तव्यापिण्डिकाशुभा ।
गर्भस्तु पिण्डिकार्द्धेनगर्भमानास्तुभित्तय ।।
भित्तेरायाममानेन उत्सेधन्तु प्रकल्पयेत ।
भित्युच्छ्रायात् द्विगुण तुकल्पयेत् बुध ।।

मणियो से निर्मित होने के कारण भीमप्रासाद की समीपस्थ भूमि एव आकाश प्रासाद म प्रतिबिम्बित हो रहे थे। कुण्डिनपुरी नगरी एव प्रासाद के चारो तरफ सुरक्षा के लिए चारो ओर दीवार एव जल से भरी परिखाएँ विद्यमान थी।[3] जिससे वह नग जलाशय मे प्रतिबिम्बित देवनगरी के समान सुशोभित हो रही थी साथ ही शत्रुओ से सुरक्षित भी थी। अग्निपुराण मे भी प्रासाद एव नगरी की सुरक्षा हेतु चारो ओर दीवार बनाने का वर्णन मिलता है। यथा -

नेमि पादोनविस्तीर्णा प्रासादस्य समन्तत ।
परिधिस्त्रयशको मध्ये रथकास्तत्रकारयेत् ।।[4]

कुण्डिनपुर के महल गगनचुम्बी थे, अर्थात उनके शिखर अत्यन्त ऊँचे आकार मे निर्मित थे। महल या प्रासाद के शिखर की ऊँचाई के बारे मे अग्निपुराण मे कहा गया है कि –

'शिखरेण सम कार्यमग्रे जगति विस्तरम् ।
द्विगुणेनापि कर्त्तव्य यथाशोभानुरूपत ' ।।[5]

भीम महल मे स्थित पताकाऐं कशाताडन की भाति सूर्य के अश्वो को लगतीं थीं अर्थात शिखरो मे स्थित पताकाएँ दूर ऊँचाई तक लहरा रही थीं। भवनो के अधो, मध्य, तथा उर्ध्व भाग क्रमश पाताल, भूलोक तथा आकाश के सभी चिन्हो सहित श्रेष्ठ अशो द्वारा निर्मित किये गये थे। साथ ही राजमदिर इतने विशाल एव ऊँचे बने थे कि उनके कण्ठप्रदेश मेघखण्डो के स्पर्श केकारण श्यामवर्ण के दिखायी पडते थे।[6]

---

1 नै० 1/38 ------ 107, एव 2/106 ------ 109

2 वृहत्सहिता 53/23

3 क्षण नीरवया यया निशि श्रितवप्रावलियोग पट्टया ।
मणिवेश्ममय स्म निर्मल किमपि ज्योतिरिबाह्यमिज्यते ।। नै० 2/78
विललास जलाशयोदरे क्वचन द्यौरनुविम्बितेव या ।
परिखाकपटस्फुटत्प्रतिविम्वानवलम्बिताम्बुनि ।। नै० 2/78
परिवावलयच्छलेन या न परेषा ग्रहणस्य गोचर ।
फणिभाषितभाष्यफक्किकाविषमा कुण्डलनामवापिता ।। नै० 2/95

4 अग्निपुराण - 104/7

5 अग्निपुराण - 42/5

6 लिलिहे स्वरुचा पताकया निशि जिह्वानिभया सुधाकरम् ।
श्रितमर्ककरै पिपासु यन्नृपसद्मामलपद्मरागजम् ।।
अमृतद्युति लक्ष्मपीतया मिलित यद्वलमीपताकया ।
वलयायितशेषशायिन सखितादितमादित् पीतवासस ।। नै० 2/100,101 एव 2/102,103

प्रासादो की भित्तियो एव सतम्भो पर अत्यधिक रूपवती पुत्तलिकाएँ (शालभञ्जिकाएँ) निर्मित थी।[1] श्री हर्ष ने प्रासाद की आकृति रचना देखकर उसे स्वर्ग एव पाताल से भी सुन्दर माना। यथा-

'बलिसद्मदिव स तथ्यवागुपरि स्माह दिवोऽपि नारद ।
अधराथ कृता ययेव सा विपरीताजनि भूविभूषया ।।[2]

कुण्डिन पुरी मे स्थित बाजार का वर्णन करते हुए नैषधकार ने अभिहित किया कि वह सभी वस्तुओ से समन्वित थी।[3] नगरी के कनक प्राकार को सुमेरुगिरि सदृश तथा ' घनरत्न जटित कपाटो का उस गिरि के उभय पक्ष मानते हुए श्री हर्ष ने उसकी सुन्दरता का वर्णन करते हुए कहा कि कुण्डिनपुरी ऐसी लग रही थी मानो अमरावती (स्वर्णपुरी) मान करके सुमेरु के अक (गोद) को त्यागकर भूलोक चली आयी थी, अत वह सुमेरु (यहाँ आकार प्राकार रूप मे) उसका परिम्भण किये हुए निवास कर रहा था।[4] कुण्डिनपुर की भवन की अट्टालिकाओ की छते चन्द्रकान्त मणियो से जडित थीं।[5] इस नगरी के राजमार्ग भी इस विधि से निर्मित थे कि यात्रियो को शिशिर की ठण्डी रातो मे ठण्डी से एव गर्मी के दिनो से पीडित नहीं होना पडता था।[6] अग्निपुराण मेउल्लिखित वास्तु शास्त्रीय विवरण प्रासाद की स्थिति निर्धारण मे अप्रतिम महत्व रखते हैं। यथा-

शिखरार्थ ही सूत्राणि चत्वारि विनिपातयेत् ।
शुकनाशोर्ध्वत सूत्र त्रिर्यगभूत निपातयेत् ।।
शिखरस्यार्द्धभागरथ सिहतत्र तु कारयेत् ।
शुकनासास्थिरीकृत्यमध्यसन्धौ निधापयेत् ।।
अपरे च तथा पार्श्वे तद्वत सूत्र निधापयेत् ।
तदूर्ध्वन्तु भवेद् वेदी सकण्ठा मनसारकम् ।।
स्कन्धभग्न न कर्त्तव्य विकराल तथैव च ।
ऊर्ध्वश्च वेदिकामानात् कलश परिकल्पयेत् ।।
विस्ताराद् द्विगुण द्वार कर्त्तव्यन्तु सुशोभनम् ।
उदुम्बरौतदूर्ध्वञ्चन्यसेच्छाखाङ्गसुमडलै ।।
द्वारस्य तु चतुर्थां शोकार्यौचण्डप्रचण्डकौ ।
विश्वक्सेनवद्दण्डौशिखोर्ध्वोडुम्बरे श्रियम् ।।
दिग्गजै स्नाप्यमानान्ता घटै साब्जा सुरूपिकाम् ।
प्रासादस्य चतुर्थांशै प्राकारस्योच्छ्रयोभवेत् ।।[7]

---

1 वहुरूपकशालभञ्जिकामुखचन्द्रेषु कलङ्कव ।
यदनेककसौधकधरा हरिभि कुक्षिगतीकृता इव ।। नै० 2/83
स्तम्भों के बारे में वृहत्सहिता में कहा गया है कि –
"समचतुरस्त्रो रुचका वज्रोऽष्टास्त्रिर्द्विवज्रको द्विगुण ।
द्वात्रिशता तु मध्ये प्रलीनको वृत्त इति वृत्त ।।"
स्तम्भ विभज्य नवधावहन भागो घटोऽस्य भागोऽन्य ।
पद्म तथोत्तरोष्ठ कुर्याद् भागेन-भागेन ।।
स्तम्भसम बाहुल्य भारतुलानामुपर्युपर्यासाम् ।
भवति तुलोपतुलानामूनं पादप (? न) पादेन ।। – वृहत्सहिता 53/28 — 30

2 नै० 2/84

3 नै० 2/85,88,90,91,92

4 नै० 2/86,87,

5 नै० 2/89

6 नै० 2/93,94

7 अग्निपुराण - 42/15 ----- 21

अनुजसामन्तसचिवाध्यक्षाधिकृतानाञ्च पञ्चगृहाणा चातुर्वर्ण्यस्य गृहाणा च प्रमाणपूर्वक वर्णन मिलता[1] राजप्रासाद मे पतद्ग्रह (पीकदान)[2] के होने का निर्देश भी श्रीहर्ष ने किया है, जो स्वच्छता बनाये रखने का साधन था, साथ ही इससे यह भी ध्वनित होता है कि उस समय पान खाने का प्रचलन भी था।

श्रीहर्ष भीमप्रासाद के वर्णन के साथ-साथ नल के प्रासाद का वर्णन करते हूए कहते है कि उनका राज प्रासाद सुमेरूगिरि से भी बढकर था क्योकि नल के गले मे जो दिव्यमणियो की माला पडी थी, उसके प्रभाव से इच्छा मात्र करने पर वहॉ समस्त अभिलषित पदार्थ सुलभ हो जाते थे।[3] यहॉ इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि नल को सम्पूर्ण पदार्थ सुलभ थे, क्योकि वह धर्मात्मा, दानवीर पराक्रमी एव न्यायप्रिय राजा थे। नैषधकार ने प्रासाद वर्णन प्रसङ्ग मे प्रासाद मे दिग्क्रमानुसार स्थाना एव वस्तुओं के स्थापना का विवरण तो नही दिया जैसा कि वशिष्ठ ने प्रासाद (गृह) मे दिशिक्रमानुसार स्थानो के होने का निर्देश किया है। यथा-

ऐन्द्रया दिशि स्थान (स्नान) गृहमाग्नेय्या पव (?च) नालयम् ।
याम्याया शयनवेश्म नैऋर्त्या शस्त्रमदिरम् ॥
वारुण्या भोजनगृह वायव्या धनमन्दिरम् । उदीच्या हाटक सद्म ईशान्या देवमन्दिरम् ॥
ध्वजधूमहशिवाख्या वृषगर्दभकुञ्जरा । ध्वाक्षश्चैते क्रमादाया स्वस्थानस्था गृहे शुभा ॥
इन्द्राग्न्योर्मथन मध्ये याम्याग्न्योघृतमन्दिरम् । यमराक्षसयोर्मध्ये पुरीषत्यागमन्दिरम् ॥
राक्षसाम्बुपयोर्मध्यो विद्याभ्यासमन्दिरम् । तोयेशानिलयोर्मध्ये रोदनमन्दिरम् ॥
तत कामोपभोगसदन वायुकौबेरमध्यत । कौबेरशानयोर्मध्ये चिकित्सामन्दिरम शुभम् ॥
पुरन्दरेशयोर्मध्ये सर्ववस्तुषु सडग्रहम् । सदन कारयेदेव क्रमादुक्तानि षोडशानि ॥[4]

अग्निपुराण मे भी वास्तुप्रकल्पना हेतु स्थाननिर्धारण का उल्लेख मिलता है। यथा –

पूर्वे वराह दक्षे च नृसिह श्रीधर जले ।
उत्तरे तु हयग्रीवमाग्नेया जामदग्न्यकम् ॥
नैऋत्या रामक वायौ वामन वासुदेवकम् ।
ईशे प्रासादरचना देया वस्वर्ककादिभि ॥
द्वारस्य चाष्टमाद्यश वेधी न दोषभाक् ।[5]

अग्निपुराण म प्रासाद मे निम्नलिखित वस्तुओ के विद्यमान रहने की सूसूचना मिलती है यथा –

वृत्तायात् समुद्भूता नवैते मणिकाह्वयात् ।
वज्र चक्र तथा चान्यत् स्वस्तिक वज्रस्वस्तिकम् ॥
चित्र स्वस्तिकखड्गञ्च गदा श्रीकण्ठ एव च ।
विजयो नामतश्चैते त्रिविष्टपसमुद्भ ॥[6]

---

1 श्री टोडरानन्दान्तर्गत-वास्तुसौख्यम् - पृ० 9

2 दिवस्पतेरादरदर्शिनादरादढौकि यस्त प्रति विश्वकर्मणा ।
तमेकमाणिक्यमय महोन्नत पतद्ग्रह ग्राहितवान्नलेनस ॥
नलेन ताम्बूलविलासिनोज्झितैमुर्खस्य य पूगकणैर्भृतो न वा ।
इति व्ययेचि स्वमयूखमण्डलादुदञ्चदुच्चारणचारुणश्चिरात् ॥ नै० 16/27,28

3 नैकवर्णमणिकोटिकुट्टिमे हेमभूमिभृति सौधभूधरे ॥ नै० 18/3 का उत्तरार्द्ध
वीरसेनसुतकण्ठभूष्णीभूतदिव्यमणिपक्तिशक्तिभि ।
कामनोपनमदर्थतागुणाद्यस्तृणीकृतसुपर्वपर्वत ॥ नै० 18/4

4 वास्तुसौख्यम् - श्लोक 279 ----- 285।

5 अग्निपुराण 42/24,25

6 अग्निपुराण-104/20,21

परन्तु उपर्युक्त वर्णनो एव नैषध मे अठारहवे सर्ग मे उपलब्ध नल प्रासाद वर्णन के तथ्यो की यदि तुलना की जाये, तो यह प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष को उपर्युक्त तथ्यो की जानकारी थी, तभी तो उन्होंने वास्तुशास्त्र सम्मत विधि का पालन करते हुए नल के प्रासाद वर्णन का इतना वृहद् एव तथ्यसमन्वित चित्रण किया है। जहॉ वे कहते है कि नल के प्रासाद के अन्त कक्ष मे अनेक सुवासित अगुरू (धूप) एव तेलो के दीपक जल रहे थे,[1] एव प्रासादमणिखचितभूपृष्ठ कर्पूर, कुकुम तथा कस्तूरी से लेपित था।[2] नल की शय्या पुष्पमयी थी।[3] अग्निपुराण मे शय्यागृह की दिशा का निर्धारण करते हुए कहा गया है कि "शय्याया-मण्डपे प्राच्या मण्डले हरिमर्चयेत्। जुहुयाज्जनयित्वाऽग्नि समिधो द्वादशीस्तत।"[4] प्रासाद के निकट गृहवाटिका मे[5] कलियो के खिलने की सौरभ दमयन्ती की नासिका को सतृप्त करती थी, साथ ही यह सभी ऋतुओ मे खिलने वाले सुगन्धित पुष्पो, आम्रवृक्षो एव विभिन्न प्रकार के फल वाले वृक्षो से युक्त थी। प्रासाद तो स्वर्ण निर्मित एव रत्नो से खचित होने के साथ-साथ चित्रशाला से युक्त होने के कारण जादूगरी से पूर्ण लगता था। यथा-

कुत्रचित्कनकनिर्मिताखिल क्वापि यो विमलरत्नज किल ।
कुत्रचिद्रचित्रशालिक क्वापि चास्थिरविधैन्द्रजालिक ।।[6]

प्रासाद के चित्रो की प्रतिमाओ का अभिनय इतना सजीव तथा उनका रगविधान इतना स्वाभाविक एव कुशल था कि उन्हे देखकर महाशिल्पी विश्वरचयिता का भी शिर आश्चर्य मे हिलने लगा था।[7] साथ ही प्रासाद मे पुत्तलियो केआश्चर्यकारी नृत्याभिनय बडे सटीक थे। यथा-

भित्तिगर्भगृहगोपितैर्जनैर्य कृताद्भुतकथादिकौतुक ।
सूत्रयन्त्रजविशिष्टचेष्टयाश्चर्यसञ्चिवहुशालभञ्जिक. ।।[8]

प्रासाद मे शीतल जल के फौब्वारो के कारण ग्रीष्म ऋतु मे भी गर्मी की बेचैनी प्रासादनिवासियो को नहीं होती थी।[9] शयनकक्ष मे खूँटियो पर बैठी कामशास्त्र सारिकाओ का उद्बोधन तो मनोमुग्धकारी था ही साथ ही मदनमत्त गौरैया जोडे की बार-बार की जाने वाली काम क्रीडा देखते ही बनती थी।[10] स्पष्ट है

---

1 नै० 18/5,6,

2 कुङ्कुमैणमदपङ्कलेपिता क्षलिताश्च हिमवालुकाम्बुभि ।
रेजुरध्यततशैलजस्रजो यस्य मुघमणिकुट्टिमा भुव ।। नै० 18/7

3 नैषधङ्गपरिमर्दमेदुरामोदमार्दवमनोज्ञवर्णया ।
यद्भुव क्वचन सूनश्य्ययाभाजि मालतिलप्रगल्मता ।। नै० 18/8

4 अग्निपुराण 41/9

5 क्वापि यन्निकट निष्कुटस्फुटत्कोरकप्रकरसौरभोर्मिभि ।
सान्द्रमाद्रियत भीमनन्दनानासिकापुटकुटीकुटुम्बिता ।।
ऋद्धसर्वऋतुवृक्षवाटिककीरकृत्तसहकारशीकरै. ।
यज्जुष· स्म कुलमुख्यमाशुग· प्राणवातमुपदाभिरञ्चति ।। नै० 18/9,10

6 नै० 18/11 एव अग्निपुराण 104/16

7 चित्रतत्तदनुकार्यविभ्रमाधाय्यनेकविधरूपरूपकम् ।
वीक्ष्य यं बहुधुवञ्शिरो जरावानकी विधिरकल्पि शिल्पिराट् ।। नै० 18/12

8 नै० 18/13

9 नै० 18/14

10 यत्रपुष्पशरशास्त्रकारिकासारिकाध्युषितनागदन्तिका ।
भीमजा निषधसार्वभौमयो प्रत्यवैक्षतरते कृताकृते ।।
यत्रमत्तकलविङ्गशीलिताश्लीलकेलिपुनरुक्तवत्तयो ।
क्वापि दृष्टिभिरवापि वापिकोत्त सह सतिथुनस्मरोत्सव· ।। नै० 18/15,16

कि नैषधकार का ऐसा वर्णन वास्तुशास्त्र सम्मत ही है क्योंकि अग्निपुराण में द्वार ... शुक सारिकाओं के स्थापन की बात की गयी है, यथा-

शुकान् प्रागद्वारविन्यासे पादान्त स्थान ...।[1]

वीरसेनसुत राजा नल के प्रासाद वर्णन प्रसंग को चारुता प्रदान करते हुए ... प्रासाद की वाटिका मे विहार करने वाले हंस मिथुनो का रतोत्सव ... एव वंशी की मधुर ध्वनि, वाटिका के कोकिल तथा नर्तकियो के कंकण, घुंघुरू, ... की ध्वनि से गुंजित रहता था। गवाक्षो से युक्त प्रसाद के अन्त कक्ष मे रति एवं ... की ... प्रतिमाएँ रखी थीं।[2] राजप्रासाद का द्वार किन्नरियो के गीतो के झंकार से झंकृत एवं वंदीजनों के ... से रारावोर रहता था।[3] राजप्रासाद की भित्तियॉ पुराणप्रसिद्ध कथाओ जैसे- ब्रह्मा का अपनी पुत्री के साथ रमण करने का दुःसाहस, गौतम की पत्नी अहिल्या का इन्द्र द्वारा छल से गमन इत्यादि कथाऍ विस्तार से चित्रित थीं।[4] नल का स्वेत प्रासाद इन्द्र के वैजयन्त प्रासाद से भी सुन्दर था।[5] उसमे ... नाटिकाओं के मचन के साथ-साथ स्वर्णनिर्मित कपोतपालिका मे शकर का देवदारुवन मे पार्वती के साथ कामविलास तथा कृष्ण की ब्रजबालाओ के साथ रसकीडा आदि वृतान्त स्वय शुकाचार्य द्वारा रचित काव्यो मे उल्लिखित विषय सामग्री प्रासाद भित्तियो पर चित्रित थी। राजभवन मे ही पोषित शुक का उच्चारण मनोमुग्धकारी था, यथा--

> अह्नि भानुभुवि दाशदारिका यच्चर परिचरन्तमुज्जगा ।
> कालदेशविषयासहात्स्मरादुत्सुक शुकपितामह शुक ।।[6]
> तददम्पति श्रुतिमधून्यथ चाटुगाथा वीणास्तथा जगुरतिस्फुटवर्णबन्धम् ।
> इद यथा वसुमतीरतिगृह्यकस्ता कीर किरन्मुदमुदीरतिस्म विश्वा ।।
> अस्माकमुक्तिभिरवैष्यथ एव बुद्धेर्गाध युवामतिमती स्तुमहे तथापि ।
> ज्ञान हि वागवसरावचनाद्भवद्भयामेतावदप्यनवधारित मेव न स्यात् ।।[7]

शुक नल एव दमयन्ती को शिव पार्वती सदृश जोडा बताते हुए उनकी बहुविधप्रशसा[8] करने के साथ ही उन दोनो को कामक्रीडा के वशीभूत जानकर वहॉ उपस्थित सखियो को वहॉ से हट जाने को कहता है, जिससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह शुक परान्मनपारखी था। यथा –

---

1 अग्निपुराण 42/8 पूर्वार्द्ध

2 यत्रवैणरववैणवस्वरैर्हुंकृतैरूपवनीपिकालिनाम् ।
ककणालिकलहैश्च नृत्यताकुञ्जित सुरतकूजित तयो ।।
सीत्कृतान्य श्रृणुता विशकयोर्यत्प्रतिष्ठितरतिस्मरार्चयो ।
जालकरैपवरान्तरेऽपि तौ त्याजितै कपटकुड्यता निशि ।। नै० 18/17 18

3 – कृष्णसारमृगश्रृगभगुरा स्वादरुज्ज्वलरसैकसारिणी ।
नानिश त्रुटति यन्मुखे पुरा किन्नरी विकटगीतिझकृति ।। नै० 18/19
– श्रुतिमधुपदस्रग्वैदग्धी विभावितभाविककस्फुटसभृशाभ्यक्ता वैतालिकैर्जगिरेगिर । नै० 19/1 उत्तरार्द्ध एव 19/2 65

4 नै० 18/20,21

5 उच्चवलत्कलखालिकैतवाद्वैजयन्तविजयार्जिता ।
यस्य कीर्तिरवदार्यनि रम सा कार्तिकीतिथिनिशीथिनीस्वसा ।। नै० 18/22

6 18/25

7 नै० 21/129, 130

8 नै० 21/131 --- 39

अन्योन्यरागवशयोर्युवयोर्विलास स्वच्छन्दताच्छिदपयातु तदालिवर्ग ।
अत्याजयन्सिचयमाजिमकारयन्वा दन्तैर्नखैश्च मदनो मदन कथस्यात् ।।
इति पठति शुके मृषा ,ययुत्सा बहुनृपकृत्यमवेत्य साधिवेलम् ।
कुपित निजसखीद्वशार्धदृष्टा कमलतयेव तदा निकोचयत्या ।।[1]

प्रासाद मे कोयल पक्षी के होने का विवरण नैषधकार ने दिया है,[2] साथ ही तप मे निर्वद्ध ऋषिय' के चित्रण के साथ-साथ मयूरो के नृत्य द्वारा राजप्रासाद की छटा मे चार चाद लग जाने का विवरण नैषध मे मिलता है। नल प्रारााद मे एक सरोवर भी था, जिसमे तैर कर वहगर्मी एव थकान से निजात पाते थे।[3] राजप्रासाद मे ही मणिजटित पूजागृह (देवालय) होने का विवरण श्रीहर्ष ने किया है जो नैष्ठिक ब्रह्मचारियो तथा विविध पूजा सामग्रियो एव प्रमुख देवप्रतिमाओ यथा शिव, विष्णु एव सूर्य देवताओ की प्रतिमाओ स सुसज्जित था।[4] अग्निपुराण मे भी पूजागृह के बारे मे उल्लेख प्राप्त होता है। यथा-

देवागार करोमीति मनसा यस्तु चिन्तयेत् ।
तस्य कायगत पाप तदह्ना हि प्रणश्यति ।।
कृतेतु कि पुनस्तस्य प्रासादे विधिनैव तु ।
अष्टेष्टकसमायुक्त य कुर्य्याद देवतालयम् ।।[5]
पूजयित्वा प्रदद्याद् य पूजाद्रव्य च सर्वभाक् ।
देवालय च प्रतिमा कारयन् सर्वमाप्नुयात् ।।[6]

उपर्युक्त विवरणो से यह सहजतया अनुमान लगाया जा सकता है कि बारहवीं शताब्दी के प्रतिष्ठित विद्वान् श्रीहर्ष को वास्तुशास्त्र का अभीष्ठ ज्ञान था। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होने अग्निपुराण मे वास्तुशास्त्र सम्मत प्रमुख अध्यायों यथा शिलाविन्यास, प्रासादलक्षण, देवतास्थापन, ध्वजारोपणकथन, नगरादिवास्तुकथन की उन्हे जानकारी थी। यह तो स्वत सिद्ध ही है कि भवन विन्यास हेतु भूमिचयन परमावश्यक है, अतएव भूमिक्रय करने से पहले ज्योतिषी एव वास्तुशास्त्र विदो से उसके बारे मे जानकारी लेने का विधान परम्परा से चला आ रहा है, एव आज भी गृह निर्माण मे गावों में पण्डितजनो एवं शहर मे पण्डित जनो के साथ साथ इन्जीनियरों या वास्तुविदो से गृह का मानचित्र तैयार करवाया जाता है। वास्तुमर्मज्ञ विश्वकर्मा के अनुसार भूमि मुख्यत पॉच प्रकार की होती है।

समतल भूमि सभी वर्णो के लिए शुभ होती है "सर्वेषा चैवर्णाना समभूमि शुभवहा।"

---

1 नै० 21/140,41

2 अकृतपरभृत स्तुहि स्तुहीति श्रुतवचनस्रगनूक्तिचञ्चु चञ्चु ।
पठितनलनुति प्रतीव कीर तमिवनृय प्रति जातनेत्रराग ।। नै० 21/142

3 प्राणमायतवतो जलमध्ये मज्जिमानमभजन्मुखमस्य ।
आपगापरिवृढोदरपूरे पूर्वकालमुषितस्य सिताशो ।। नै० 21/13 एव 1/107 117

4 पूतपाणिचरण शुचिनोच्चैरध्वनानितरपादहस्तेन ।
ब्रह्मचारिपरिचारि सुरार्चाविश्म राजऋषिरेष विवेश ।।
क्वापि यन्नभसि धूपजधूमैर्मेचकागुरूभवैर्भ्रमराणाम् ।
भूपते स्म सुमन सुमन स्रग्दामधामपटले पटलेन ।। नै0 21/21,22, एव 23– 31

5 अग्निपुराण 41/33,34

6 अग्निपुराण 211/65

गजपृष्ठभूमि सुख समृद्धिकारक होती है। ज्योतिर्निवेध के अनुसार--

दक्षिणे पश्चिमे चैव नैऋत्ये वायुकोणके एभिरुच्योमवेद् भूमोर्गजपृष्ठोऽभिर्धीयते ।
गजपृष्ठेभवेद्वास सलक्ष्मीधनपूरित आयुर्वृद्धिकारी नित्य जायते नात्र सशय ।।

कर्मपृष्ठ भूमि उत्साह एव सम्पन्नताकारक होती है। ज्योतिर्निवेध मे इस भूमि से धन धान्य की प्राप्ति होना बताया गया है।[1]

दैत्यपृष्ठ भूमि अशुभकारी होती है।–जैसा कि ज्योतिर्निवेध मे उल्लिखित मिलता है।

पूर्वाग्नि शम्भु कोणेषु उन्नतिश्च यदा भवेत् पश्चिमे च यदा नीच दैत्यपृष्ठोभिधीयते ।
दैत्यपृष्ठकृते वासे लक्ष्मी नीयाति मन्दिरम् धनपुत्र पशुनाच हानिरेव न सशय ।।

ऐसी भूमि अल्पमूल्य मे भी प्राप्त हो तो क्रय नहीं करना चाहिए।

नागपृष्ठ भूमि अत्यन्त हानिकारक होती है। ऐसी भूमि पर निर्मित भवन से सुखशाति एव सम्पन्नता के स्थान पर कष्ट, मृत्यु, स्त्रीसुख की हानि, सन्तानकष्ट तथा शत्रुवृद्धि होने का सकेत है, जैसा कि ज्योतिर्निवेध मे कहा गया है।

पूर्वयश्चिमोदीर्घा दक्षिणोत्तर उच्यता नागपृष्ठ विज्ञानीयात्कर्त्तुरुच्चाटन भवेत् ।
नागपृष्ठे सदा वासो मृत्युरेव न सशय- पत्नी हानि पुत्र हानि, शत्रुवृद्धि पदेपदे ।।[2]

वस्तुत व्यक्ति भवन का निमार्ण सुख शाति तथा आत्मसतुष्टि के लिए करता है। सभव है महाराज भीम के महल एव राजा नल के प्रासाद निर्माण के समय निर्माताओ ने भूमि परीक्षण किया हो, तभी तो उनके महल मे सुख शाति वैभव का साम्राज्य था। वृहत्सहिता मे भी उत्तम भूमि के बारे मे विवरण मिलता है।[3] साथ ही वास्तुरत्नाकर मे भी भवन विन्यास हेतु उत्तम भूमि के बारे मे कहा गया है कि –

यत्र वृक्षा प्ररोहन्तिशस्य हर्षात्प्रवर्धते ।
सा भूमिर्जीविता ज्ञेया मृता वाच्याऽन्यथाबुधै ।।

अत भूखण्ड की आकृति के बारे मे सुखद परिणाम के लिए वास्तुशास्त्र के नियमो का ज्ञान होना अत्यावश्यक है। विभिन्न परिमाप के भूखण्डो का फल पृथक - पृथक होता है। वास्तु शास्त्र के एक अन्य ग्रन्थ राजमर्तिण्ड मे इस विषय मे उल्लेख मिलता है–

आयते सिद्धय सर्वाश्चतुरस्त्रे धनागम, भद्रासने कृतार्थश्च वृत्ते पुष्टि विवर्धनम ।
चक्रे दारिद्रय मौवोक्त शोको विषमबाहुके, नृपाभीतिस्त्रिकोणे स्याच्छकटे च धनक्षय ।।
नश्यन्ति पशवो दण्डे पणवे लोचनक्षति, मुरजे म्रियते भार्या बन्धुनाशो वृहन्मुखे ।
व्यजने वित्तनाश स्याद् बधे बन्धनपीडनम्, सूर्यधन अयं विद्याच्यापे चोर भय भवेत् ।।

---

1 मध्य तूच्य भवेद्यत्र नीच चैवचतुर्दिशम् ।
कूर्मपृष्ठ विजानीयान्तत्र वास समाचरेत् ।। ज्योतिर्निवेध- श्लोक 45
कूर्मपृष्ठ भवेद्वासो नित्योत्साह सुखप्रद- ।
धन-धन्य भवेत्तस्य निश्चित विपुल धनम् ।। ज्योतिर्निवेध श्लोक, 55

2 ज्योतिषप्रकाश, इलाहाबाद 2 मार्च 1998, पेज-3

3 वृहत्साहिता 52/86/60

स्पष्ट है कि भवन विन्यास हेतु वर्गाकार या आयताकार भूखण्ड उत्तम होते है ... (प्रवेश द्वार) यदि पूर्व या ईशन कोण मे है तो अत्यन्त लाभकारी होता है।

वास्तव मे भिन्न-भिन्न वस्तुओ को एक व्यवस्थित ढग स सजाना और उन वस्तुओ ... निश्चित दिशा एव स्थान पर रखना, या निर्माण करना ही सही मापदण्डो म ... कहलाता है। वास्तु शास्त्र मे निर्माण मे दिशाओ के अनुरूप स्थान निर्धारण एव उनके अधिपति निम्नवत है यथा- उत्तर दिशा मे कुबेर, लक्ष्मी, उत्तरपूर्व दिशा (ईशानकोण) जल, शकर जी, एव पूजा स्थान, पूर्व दिशा -जल, इन्द्र, सूर्यदेव, विष्णु, दक्षिणपूर्व (आग्नेय दिशा) अग्नि, अग्निदेव, मगल, रसोईघर, दक्षिण दिशा पृथ्वी, यमराज, शुक्र, मास्टर वेडरूम (शय्या गृह), मध्यस्थान बाह्य स्थान आकाश, ब्रह्मदेव, पश्चिमदिशा- वायु, वरूण, शनिदेव उत्तरपश्चिमदिशा (वायव्कोण), वायु, पवन, बुद्धदेव आदि।[1] श्रीहर्ष ने वास्तुशास्त्र नियमो का यथोचित रूप मे परिपालन किया है तभी तो उन्होने प्रासाद वर्णन प्रसग मे सभी पुरूषो के अलग-अलग प्रासाद, उनके क्रीडागृह, वाटिका, पूजागृह, चित्रशाला गृह आदि का अलग-अलग रूप। मे विधिवत् वर्णन किया है वास्तुशास्त्र के अनुसार भूमिपरीक्षण के बाद शल्यशोधन तदुपरान्त् भूमिशोधन, वास्तुदेवतास्थापन तब भवन विन्यास होता है। वास्तुशास्त्र के प्रमुख पाच सिद्धान्त है ' ... मूलत पञ्चसिद्धान्त सन्ति, वास्तुपदविन्यास, दिक्सामुख्य प्राचीनसाधन वा मानम्, आयादिषडवर्गा, पताकादिषट्छन्दासि च ग्रन्थे सर्वं महद् विजृम्भितमस्ति।[2] नैषधकार द्वारा किये गये प्रासाद वर्णन एव कुण्डिनपुरी वर्णन प्रसग से यह ध्वनित होता है कि उन्हे वास्तुशास्त्र के पॉचो सिद्धान्तो का अभीष्ठ ज्ञान रहा होगा। भविष्य पुराण मे भी प्रासाद या गृह निर्माण के प्रयोजन के बारे मे कहा गया है-

गृहस्थस्य क्रिया सर्वा न सिद्धयन्ति गृह विना ,
यतस्तस्माद् गृहारम्भप्रवेशसमयौ ब्रुवे ॥
परगेहे कृता सर्वा श्रौतस्मार्तक्रिया शुभा ।
विफला स्युर्यतस्तासा भूमीश फलमश्नुते ॥

स्पष्ट है कि नल के साथ-साथ नैषधकार को भी उपयुर्क्त तथ्यो का ज्ञान रहा होगा, तभी श्री हर्ष ने नल द्वारा पूजा, अचना उनके प्रासाद मे ही स्थित पूजागृह मे करवाने का वर्णन किया।[3] महर्षि नारद ने भाण्डारगृह को उत्तर दिशा मे बनवाने की बात् कही (भाण्डागार तून्तरस्या शुभमन्दिरम्) जबकि विश्वकर्मा ने उत्तर दिशा मे जल का स्थान एव पूर्व दिशा मे धन सम्पत्ति रखने के स्थान निर्माण का निर्देश दिया। (उत्तररस्या जलस्थान पूर्वस्या श्रीगृह तथा)। वशिष्ठ ने घर की स्थिति का मानचित्र बताते हुए कहा

पश्चिमे दक्षिणे चैव गवाक्षो मन्दिरस्य च स्वगृहात् पश्चिमे याम्ये पितृस्वाग्रजमन्दिरम् ॥
गृहीपरिगृहदीनामायमात्रे प्रकल्पयेत् । स षडवर्ग शगकुमपि स्थापयेद दाघवेश्मन ॥[4]

---

1 भवने वेश्म निवेश दिगनुकूल प्रकलपनीयो भवति। ऐन्द्रकोणे स्थानगृह (स्नानगृहवा) आग्नेयकोणे पचनालय, याम्ये शयनगृह, नैऋर्त्ये शस्त्रमन्दिर, वारूणे भोजनगृह, वायव्यकोणे धनमदिरमुदीच्ये हाटकसदम, ईशाने देवमन्दिर पूर्वाग्नेययोर्मध्ये मथनगृह, आग्नेययाम्ययोर्मध्ये धृतमन्दिर, यमनैर्ऋत्ययोर्मध्ये 'पुरीषत्यागमन्दिर, नैऋत्यवारुणयोर्मध्ये विद्याभ्यासमन्दिर, वारूणवायव्ययोर्मध्ये रोदनमन्दिर, वायव्योत्तरयोर्मध्ये कामोपभोग सदन, उत्तरेशानयोर्मध्ये चिकित्सामन्दिर, पूर्वेशानयोर्मध्ये सर्ववस्तु सग्रहगृञ्च कल्पयेत्। अथवोत्तरस्या भाण्डागार भवेत्। अपरमतानुसार उत्तरेजलस्थान, पूर्वस्या श्रीगृह कारयेत्। गवाक्षप्रकल्पन पश्चिमे दक्षिणे च भवेत्। एव वास्तुसौख्ये विविधकक्ष्याणा स्थिति वर्णिता। श्री टोडरानन्दातर्गतम् वास्तुसौखयम्, पृ० -1

2 द्वि0 नाथ शुक्ल-समरागणीय भवननिवेश, पृ० 30

3 नैषध 21/21,22

4 वास्तुसौख्यम् - श्लोक 288--- 290

विश्वकर्मा ने गृह द्वार की दिशा के गुण दोष बताते हुए कहा कि

प्राच्यादिस्थे सलिले सुतहानि शिखिभय रिपुभय च ।
स्त्रीकलह स्त्रीदौष्ट्य नैख्य वित्तात्मजविवृद्धि ।।
पूर्वादिदिग्विनिर्देशो गृहद्वारविवक्षया ।
भास्करोदयदिक्पूर्णं न विज्ञेया यथाक्षत ।।
तत्रैव गृहात्प्रवास पयस पूर्वोत्तरगति शुभ ।
कथितो मुनिभि पूर्वेरशुभस्त्वन्यदिग्गति ।।[1]

वृहत्सहिता के अनुसार दक्षिणपूर्व कोण अर्थात आग्नेय कोण मे पूजा करके प्रथम शिला रखनी चाहिए एव गृह निर्माण करना चाहिए। यथा –

दक्षिणपूर्वे कोणे पूजा शिला न्यसेत् प्रथमम् ।
शेषा प्रदक्षिणेन स्तम्भाश्चैव समुत्थापया ।।[2]

वास्तुशास्त्रीय ग्रथो मे यह भी विवरण मिलता है कि गृह निर्माण के बाद गृहशाति एव ब्राह्मणो को भोजन एव दक्षिणा आदि देने के बाद उनसे आशीर्वाद लेकर ही गृह मे प्रवेश करना चाहिए तभी वह मनुष्य आरोग्य, पुत्र, धन, धान्य को प्राप्त करता है।[3] ध्यातव्य है कि चाहे हम विदर्भनरेश भीम के जीवन विवरण को परखे, या निषदाधिराज नल के जीवन वृत्त को, जितना कि श्रीहर्ष को अभीष्ट है (महाभारत मे नलकथा मे प्राप्त नल दमयन्ती वियोग जो कलि के द्वारा करवाया गया था उसे छोडकर) उन दोनो राजाओ की खुशहाली का चित्रण ही हमे प्राप्त होता है। भीमप्रासाद चाहे राजा भीम ने बनवाया हो या उनके पूर्वजो ने, एव नल प्रासाद भी चाहे राजा नल के निर्देशन मे बना हो या उनके पूर्ववशज राजाओ ने निर्मित करवाया हो, चूँकि इन दोनो राजाओ के यश, वैभव एव दानवीर होने का विवरण प्राप्त होता है, अत जिस प्रासाद मे वह रह रहे होगे वह वास्तुशास्त्रानुसार ही निर्मित हुए होगे, फिर नैषधकार ने तो यहॉ तक कह डाला कि जिस राजा नल की जीवन कथारस को विद्वज्जन अमृत से भी ज्यादा महत्व देते थे एव कलियुग मे जिनके नाम स्मरण मात्र से लोग पवित्र हो जाते है, जो चौदह विद्याओ मे पारगत थे, जिनका अठारहो द्वीपो मे यश फैला था, एव जो धर्म परायण तथा द्विग्विजयी थे। उनके जैसे व्यक्तित्व का दूसरा सानी नहीं।[4] और तो और देवता गण भी नल को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चारो पुरूषार्थ सिद्धि वाला जन घोषित किया।[5] उपयुर्क्त सभी वर्णनों से यह ध्वनित होता हैकि श्री हर्ष द्वारा वर्णित कुण्डिनपुर के प्रासाद एव राजा नल के प्रासाद वास्तुशास्त्र द्वारा निर्धारित मापदण्डो के अनुसार ही बने थे ।

---

1 वृहत्सहिता 53/119--- 121

2 वृहत्सहिता - 53/112

3 गृहीत्वा सुकृत तभ्यो दक्षिणा च प्रदापयेत् ।
ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चात् स्वय मुञ्जीत बन्धुभि ।।
एव य कुरुते सम्यक् गृहशान्ति नृपोत्तम ।
आरोग्य पुत्रलाभ च धन धान्य लभेन्नर ।।
अकृत्वा वास्तुपूजा य प्रविशेन्नवमन्दिरम् ।
रोगान्नानाविधात् क्लेशान् प्राप्नुयात् सर्वसङ्कटात् ।। वास्तुसौख्यम् - श्लोक 282--- 284

4 नैषध 1/1----- 8

5 **फलसीमा चतुर्वर्गं यच्छताशोऽपि यच्छति ।**
नलस्यामदुपघ्ना सा भक्तिर्भूतावकेशिनी ।। नै0 17/142

नवम अध्याय

नैषध महाकाव्य में ज्योतिषशास्त्र, रत्नशास्त्र, शकुनशास्त्र एवं आधुनिक शास्त्रीय संदर्भ

ज्योतिषशास्त्र

आधुनिककाल नि सदेह विज्ञान का उत्कर्षकाल है। प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक युग म हमेशा मनुष्य ज्योतिष के प्रति उन्मुख होता आया है। प्राचीन काल मे यज्ञ कब किये जाए? यज्ञवेदी का स्वरूप कैसा हो? उपनयन, वेदारम्भ, विवाह, इत्यादि किन मुहूर्त एव नक्षत्रो से समन्वित हो? तभी सम्पादित हो, किसान भी यह सोचता आया है कि किस शुभ नक्षत्र, पल एव घडी मे कृषि कार्य सम्पन्न करे, कि सफलता मिले, आज किसान से लेकर उद्योगपति, विद्यार्थी से लेकर वैज्ञानिक तक सभी किसी न किसी रूप मे ज्योतिष की शरण मे जाकर अपनी कार्य विधियो के सुचारू सम्पादन की शुरूआत करते है। यह तथ्य प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर एव अनुभवगम्य है। स्पष्ट है कि ज्योतिष शास्त्र प्राचीनकाल से अर्वाचीन काल तक अपनी महत्ता लोक जीवन मे प्रतिष्ठापित किये हुए है। ज्योतिष शब्द की व्युत्पत्ति ज्योति अरिन अरय, (ज्योतिस्+अच्) के योग से होती है। ज्योतिर्नक्षत्राद्यधिकृत्य कृतो ग्रन्थ अधिकृत्य कृते ग्रन्थे' इत्यण्, राज्ञापूर्वत्वान वृद्धि जायते। जबकि (Ks rasvamin?) कहते है, ज्योतीर्षी ग्रहादीन् अधिकृत्य कृतो ज्योतिष।[1] ग्रहनक्षत्रो की स्थिति, गति आदि का विचार करने वाला शास्त्र एव ज्योतिषा सूर्यादि ग्रहाणा बोधक शास्त्रम्'' के अनुसार सूर्यादि ग्रह और काल को बोध कराने वाले शास्त्र को ज्योतिषशास्त्र अभिहित किया जाता है। छै वेदाड्गो शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छद, ज्योतिष[2] मे, ज्योतिष विद्या को वेदपुरूष के नेत्र के समान बताया गया है।[3] इसकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध मे 'प्रत्यक्ष ज्योतिष शास्त्रम्'' कहा जाता है। प्रमाण का सबसे प्रबल आधार होता है प्रत्यक्ष। अत ज्योतिष प्रत्यक्ष ज्ञान है क्योकि ऑखे प्रत्यक्ष मे ही सक्रिय होती है। छान्दोग्योपनिषद मे विभिन्न विद्याओ के प्रसग मे नक्षत्र विद्या का उल्लेख हुआ है।[4] स्वय नैषधकार श्रीहर्ष द्वारा उल्लिखित चतुर्दश विद्याओ मे ज्योतिष शास्त्र वेदाड्ग होने के नाते विद्या के रूप मे परिगणित है।[5]

प्राचीन वैदिक सस्कृति यज्ञो पर आधारित थी । इन यज्ञों का अनुष्ठान आर्यों का महत्वपूर्ण धार्मिक कृत्य था। प्रात· साय अग्निहोत्र करना उनकी दैनन्दिनी मे शामिल था। प्रकृतियागो के रूप मे दर्शपौर्णमास यागो का महत्वपूर्ण स्थान था। इन यज्ञानुष्ठानों में तिथियो की गणना आवश्यक थी, क्योंकि दर्श अमावस्या को एव पौर्णमास याग पूर्णमासी को होते थे। अमावस्या एव पूर्णमासी का ज्ञान बिना गणित ज्योतिष के सम्भव नहीं है, क्योंकि सूर्य से चन्द्रमा की दूरी के आधार पर ही तिथियों की गणना की जाती है। महाकवियो के काव्यो मे भी इस महत्वपूर्ण शास्त्र का यत्र-तत्र उल्लेख मिलना इसकी प्रासड्गिकता का प्रमाण है। यदि अश्वघोष ने बुद्धचरित मे बुद्धजन्म प्रसड्ग मे नक्षत्रों की चर्चा की[6] तो कालिदास ने रघुवश

---

1 Is ज्योतिष the correct form-Dr R S Bhattacharya, ऋतम् -Oct 21-26,1981, Jurnal of Akhila Bharatiya Sanskrit Parishad

2 तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेद सामवेदोऽथर्ववेद शिक्षा कल्पो व्याकरण निरुक्त छन्दो ज्योतिषमिति।- मुण्डकोपनिषद।1/1/5

3 छन्द पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते ज्योतिषामयन चक्षुर्निरुक्त श्रोतमुच्यते।।
शिक्षा घाण तु वेदस्य मुख व्याकरण स्मृतम्। तस्मात् साड्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते ।। पाणिनीय शिक्षा, श्लोक- 41 42

4 स होवाचर्ग्वेद भगवोऽध्येमि यजुर्वेद - सामवेदमाथर्वण चतुर्थमितिहासपुराण पञ्चम वेदाना वेद पित्र्य दैवनिधि वाक्योवाक्यमेकायन देवविद्या ब्रह्मविद्यां भूतविद्या क्षत्रविद्या नक्षत्र विद्या सर्पदेवजन विद्यामेतद्भगवोऽध्येमि- छान्दोग्योपनिषद् 7/1/2

5 अधीतिबोधाचरणप्रचारणैर्दशाश्चतस्र प्रणयन्नुपाधिभि ।
चतुर्दशत्व कृतवान्कुत स्वय न वेद्मिविद्यासु चतुर्दशस्वयम्।। नैषध 1/4

6 तत प्रसन्नश्च बभूव पुष्यस्तस्याश्च देव्या व्रतसस्कृताया ।
पार्श्वात्सुतो लोकहिताय जज्ञे निर्वेदन चैव निरामय च ।। बुद्धचरित 1/9

मे रघु के जन्म काल मे स्थित उच्च ग्रहो की चर्चा के साथ-साथ अभिज्ञान शाकुन्तल मे असुर युद्ध प्रस मे नक्षत्रो का भी वर्णन करना नहीं भूले।[1] श्रीहर्ष ने भी नैषधीयचरितम् मे अनेक प्रसङ्गो मे ज्योतिष विवरण को अपनाया है- यथा- हस दमयन्ती सवाद, बारात विवरण, एव नल दमयन्ती के पाणिग्रहण प्रसङ्ग मे ज्योतिषशास्त्रीय सम्बन्धी विवरण दृष्टव्य है। ज्योतिष की महत्ता को प्रतिष्ठापित करते हुए इसके महत्व का प्रतिपादन करते हुए इसे काल विधान शास्त्र की सज्ञा से भी अभिसिचित किया गया है।यथा-

वेदा हि यज्ञार्थभिप्रवृत्ता कालानि पूर्वा विहिताश्च यज्ञा ।
तस्मादिद कालविधानशास्त्र, यो ज्योतिष वेद स वेद यज्ञम् ॥[2]

तथा अग्निपुराण मे ज्योतिष को शुभाशुभ विवेचन करने वाला शास्त्र कहा गया है। यथा-

ज्योति शास्त्र प्रवक्ष्यामि शुभाशुभविवेकदम्
चातुर्लक्षस्य सार यत् तज्ज्ञात्वासर्वविद्भवेत् ।[3]

ज्योतिषशास्त्रीय ग्रथो मे वैसे तो अनेको ज्योतिर्विदो का उल्लेख मिलता है परन्तु उनमे ज्योतिषशास्त्र के अठारह प्रमुख प्रवर्तक विद्वान् थे। यथा-

सूर्य पितामहो व्यास वशिष्ठोऽत्रिपराशर। कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मनुरङ्गिरा ॥
लोमश पौलिशश्चैव च्यवन यवनो भृगु। शौनकोऽष्टादशा ह्येते ज्योति·शास्त्र प्रवर्तका ॥

ज्योतिषशास्त्र के इतिहास एव इसके विकास का सक्षेप मे विवरण देने पर हम इसे तीन भागो मे विभक्त कर सकते है।

A- वैदिककाल मे ज्योतिष का विकास ।

B. वेदाङ्ग काल मे ज्योतिष का विकास ।

C. सिद्धान्त काल (युग) मे ज्योतिष का विकास ।

वैदिककाल मे ज्योतिष के क्षेत्र मे सूर्य चन्द्रमा तथा नक्षत्रो की गति का निरीक्षण परीक्षण एव विवेचन हुआ करता था, साथ ही चान्द्र एव सौरमासो की गणना की जाती थी। याज्ञ कर्मों की विधियो के निर्धारण मे चान्द्रमास ही प्रमाण माना जाता था। वर्तमान में अखबारो एवं पत्रिकाओ मे जो राशिफल नामराशि के आधार पर दिया जाता है वह चन्द्रमा पर ही आधारित है जबकि जन्मतिथि के आधार पर दिया जाने वाला राशिफल (जिसे ज्योतिष मे प्रवेष्टा कहते हैं) सूर्य के आधार पर होता है । वैदिक युग मे मुख्यत विश्वोत्पत्ति, विश्वसस्था, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्यौ, सूर्य, कल्प, युग, पञ्च, सवत्सरात्मक युग, वर्ष, सावन, चान्द्र, सौरमान, अयन-ऋतु. मास, मध्वादि, चैत्रादि नाम, सौरमास, पूर्णिमान्त और अमान्त मास, दिवस, तिथि अष्टकाएकाष्टा, चन्द्रकला, चन्द्रप्रकाश, चन्द्रसूर्यगति, वार, दिनमान, विषुव, पन्द्रह मुहूर्त, सत्ताइस नक्षत्र, बारह राशियों,[4] नव ग्रहों, उल्का, धूमकेतु, शुभकाल, वर्षारम्भ आदि का विवेचन मिलता है।

---

1 ग्रहैस्ततः पञ्चभिरुच्चसश्रयैरसूर्यगै सूचितभाग्यसम्पदम् ।
असूतपुत्र समये शचीसमा त्रिसाधना शक्तिरिवार्थमक्षयम्॥ रघुवंश 3/13
– त्रिस्रोतस वहति यो गगनप्रतिष्ठा ज्योतींषि वर्तयति च प्रविभक्तरश्मि ।
तस्य द्वितीयहरिविक्रमनिस्तमस्क, वायोरिम परिवहस्य वदन्ति मार्गम्॥ अभिज्ञानाशाकुन्तलम् 7/6

2 वेदाङ्ग ज्योतिष- श्लोक 3 आचार्य ज्योतिष - श्लोक 36

3 अग्निपुराण- 121/1

4 मेषोवृषोऽथ मिथुनं कर्क सिहश्च कन्यका ।
तौलिश्च वृश्चिकश्चैव धनु मकर एव च ॥ कुम्भमीनौ क्रमादेते राशय. परिकीर्तित ॥

वैदिककाल के बाद वेदाड्गकाल मे ज्योतिष का क्षेत्र और अधिक विस्तृत हुआ [illegible] दीक्षित ने वेदाड्ग ज्योतिष का समय १४०० ई०पू० माना है। अध्ययन के सम्बन्ध [illegible] आधार तीन प्रकार के ज्योतिष ग्रथो की मीमासा रख सकते है। यथा ऋग्वेदी ज्योतिष, यजुर्वेदी [illegible] अथर्ववेदी ज्योतिष, हालाकि इनमे वेदाग ज्योतिष सबसे प्राचीन है। सम्प्रति प्रत्येक वेद [illegible] केवल सूत्र (कल्प) उपलब्ध है और तत्तत् शाखाओ के वैदिक ब्राह्मण उन्हे पढते है। शेष ग्रन्थ [illegible] एक ही है और उनके पठन-पाठन का प्रचार केवल ऋग्वेदियो मे है, अन्य (वेद की शाखाओं के [illegible] वाले) उन्हे नहीं पढते।[1] वेदाड्गकाल मे ही कल्पसूत्रो के साथ-साथ निरुक्त, पाणिनीय व्याकरण, स्मृति एव महाभारत मे वर्णित ज्योतिषीय पद्धतियो का वर्णन मिलता है। साथ ही वार, नक्षत्र, मेषादि नाम [illegible] मास, ग्रहण, तेरह दिन का पक्ष, ग्रहयुति, पाण्डव काल एव सहिता स्कन्धो की भी चर्चा की गयी है। इस काल के अत मे उपसहार रूप मे शतपथ ब्राह्मण के विवरण[2] कृत्तिकादि गणना, वेदकाल नक्षत्रपद्धति चैत्रादि नाम, वर्षारम्भ, मृगशीर्षादिगणना सायन वर्ष, युगपद्धति की भी चर्चा समन्वित है। वेदाड्गज्योतिष का एक व्यावहारिक उद्देश्य है जो आकाशीय पिडो के विषय मे वैसे ज्ञान को प्राप्त कराता है जो वैदिक यज्ञ के लिए दिनो और मुहूर्तो के निश्चयार्थ आवश्यक है।

सिद्धान्तकाल मे पूर्वकालो की चर्चा के साथ-साथ इस तथ्य पर विचार किया गया कि प्राचीन लोगो ने वैध कैसे किये एव प्रत्येक वेध का सूक्ष्म निरीक्षण करते हुए उन्होने गतिमान किस भाति निश्चित किये? सम्भव है यह सब गणितीय ज्योतिष से सम्भव हुआ हो। वराहमिहिर की पचसिद्धान्तिका मे पॉच सिद्धान्तो का विवरण मिलता है " पौलिशरोमकवाशिष्ठसौरपैतामहास्तु पचसिद्धान्ता " पितामह सिद्धान्त, वशिष्ठ सिद्धान्त, रोमक सिद्धान्त, पुलिश सिद्धान्त, सूर्य सिद्धान्तो के साथ वर्तमान के सिद्धान्त पञ्चको सूर्य सिद्धान्त (आधुनिक), सोमसिद्धान्त, वशिष्ठ सिद्धान्त, रोमश सिद्धान्त, शाकल्योक्त ब्रह्म सिद्धान्त का वर्णन मिलता है, इसके साथ ही साथ आर्यभट्ट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त लल्ल, पद्मनाभ, ज्ञानराज, ढुढिराज आदि अनेक विद्वानो के ज्योतिषीय विवरणो का वर्णन इसी काल मे समाहित है। अयनचलन, वेधप्रकरण, ग्रहो की स्पष्ट गति स्थिति एव पचाड्ग विवरण का यथेष्ट वर्णन प्राप्त मिलता है साथ ही सहिता स्कन्धो के अन्तर्गत सहिता विषय, मुहूर्तग्रन्थ एव शकुन विवरण तथा जातक स्कन्ध के अर्न्तगत ग्रहो का मनुष्य से सम्बन्ध मनुष्य का मनुष्य से सम्बन्ध निर्धारण, प्रश्न- कुण्डली स्वप्नादि एव रमलताजिक विवरणो का वर्णन भी इसी काव्य की देन है। अगर हम ज्योजिषशास्त्र के इतिहास का आदि के अन्त तक अध्ययन करे, तो यही तथ्य सामने आता है कि वेदो मे ज्योतिष का प्रारम्भ होता है। रास्ते मे जल से भरा घट मिला, तो समझ लिये कार्यपूर्ति हो गयी, यही से व्यक्ति का जिज्ञासा बढती है, फिर शरीर की आकृति, स्थिति के आधार पर भी हम फल निकालने को समुत्सुक होते है, अत ज्योतिष शास्त्र के अग रूप मे हम उपर्युक्त दोनो विषयो को सकुनशास्त्र एव लक्षण शास्त्र (सामुद्रिक शास्त्र) के रूप मे रख सकते है। वेदो मे ज्योतिषमनीषियो ने इसके तीन भाग बनाये-

(A) होरा या जातक या फलित ज्योतिष

(B) सिद्धान्त ज्योतिष या गणित ज्योतिष

(C) सहिता ज्योतिष

---

1 भारतीय ज्योतिष्- शकर बालकृष्ण दीक्षित (मराठी पुस्तक) का अनुवादक श्री शिवनाथ झारखडी- पृ० 92

2 एक द्वे त्रीणि चत्वारिति वा अन्यानि नक्षत्राण्यथैता एव भूयिष्ठा यत्कृत्तिकास्तद्भूमानमेवैतदुपैति तस्मात् कृत्तिकास्वादधीत्॥2॥ एता ह वै प्राच्यैदिशो न च्यवन्ते सर्वाणि ह वा अन्यानि नक्षत्राणि प्राच्यै दिशश्चयवन्ते तत्प्राच्यामेवास्ये तद्दिश्याहितौ भवतस्तस्मात् कृत्तिकास्वादधीत्॥3॥ शतपथ ब्राह्मण 2/1/2

सिद्धान्त मे भूगोल एव खगोल की जानकारी की जाती है जिसमे ग्रहो की गति आदि का ज्ञान होता है। सहिता मे यह खोज की जाती है कि ग्रहो की गति आदि के कारण पृथ्वी पर भूकम्प ग्रहण, वर्षा अवर्षण (सूखा), उत्पात आदि कब और किस समय होते है? एव होरा शास्त्र मे मनुष्य के उत्पन्न से भूत भविष्य और वर्तमान का नक्षत्रो एव ग्रहो से जानने का प्रयास किया जाता है। श्री हर्ष के ज्योतिष सम्बन्धी विवरणो को देखकर यह पता चलता कि उनकी सम्पूर्ण ज्योतिष मे आस्था थी, कामातुर नल को हंस पकडने का कौतुक कैसे हुआ? इसका प्रतिपादन करते हुए नैषधकार कहते है कि " जो होनहार (अवश्य होने वाला) है उसके पीछे विधाता की इच्छा जिस दिशा मे जाती है उसी दिशा मे लोगो के अत्यन्त पराधीन चित्त इस तरह खिच चले जाते है जैसे आधी की दिशा मे ही तिनका उडकर चला जाता है। यथा-

अवश्यभव्येष्वनवग्रहग्रहा यया दिशा धावति वेधस स्पृहा !
तृणेन वात्येव तयानुगम्यते जनस्य चित्तेन भृशावशात्मना ।। [1]

स्पष्ट है कि श्रीहर्ष भाग्यवादी थे एव उन्होने ग्रह नक्षत्रो के प्रभाव को स्वीकार किया है। प्रसगतः यहॉ ग्रहो की चर्चा ग्रन्थकार ने की है। ग्रह नौ होते है- सूर्य, चन्द्रमा, मगल,बुध वृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु ओर केतु ।[2] सूर्य, शुक्र, मगल, राहु, शानि, चन्द्रमा बुध और वृहस्पति ये क्रम से पूर्व आदि दिशाओ के स्वामी है ।[3] ज्योतिष मे ग्रह सौम्य ग्रह एव पापग्रह दो प्रकार के माने जाते है। क्षीण चन्द्रमा, सूर्य, मगल राहु, शानि तथा केतु पापग्रह है। बुध भी जब इनमे से किसी पापग्रह से युक्त हो तो पापग्रह बन जाता है। शेष गृह अर्थात्, बुध, वृहस्पति, शुक, तथा, पूर्ण चन्द्रमा शुभ या सौम्य ग्रह है। मगल, शनि, सूर्य, राहु स्वभाव से ही मनुष्यो को दु ख देने वाले है एव बुध, वृहस्पति, चन्द्रमा शुक्र सदा सुख देने वाले है।[4] श्रीहर्ष ने नैषध के सत्रहवे सर्ग कलि प्रसङ्ग मे पापग्रह की चर्चा करते हुए लिखा कि जैसे निर्मल चन्द्रमण्डल मे, उसे मलिन करने के लिए ग्रहण योगवश पापग्रह राहु पहॅुच जाता है। उसी प्रकार निष्पाप निषध राज्य का विनाश करने के लिए कलि वहॉ पहॅुचा।[5]

ज्योतिष शास्त्र मे तिथियो का भी अप्रतिम महत्व है। तिथियॉ प्रतिपदा से लेकर शुक्लपक्ष मे पूर्णिमा एव कृष्णपक्ष मे अमावस्या पर्यन्त पन्द्रह मानी जाती है। यथा-

प्रतिपच्च द्वितीया च तृतीया तदनन्तरम् ।
चतुर्थी पञ्चमी षष्ठी सप्तमी चाष्टमी तथा ।।
नवमी दशमी चैवैकादशी द्वादशी तथा ।
त्रयोदशी ततोज्ञेया तत प्रोक्ता चतुर्दशी ।।
पूर्णिमा शुक्ल पक्षेऽन्त्या कृष्णपक्षेत्वमा स्मृता।।[6]

---

1 नै० 1/120

2 रविविधुक्षितिजा बुधवाक्पती भृगुशनी च तम शिखिनी ग्रहा। सुगम ज्योतिष, पृ० 110

3 रवि शुक्रो महीसूनु स्वार्भानुर्भानुजो विधु ।
बुधो वृहस्पतिश्चैव दिशाभीशास्तथा ग्रहा ।। - सुगम ज्योतिष पृ० 110
सूर्य सोमो महीपुत्र सोमपुत्रो वृहस्पति ।
शुक्र शनैश्चरो राहु केतुश्चैते ग्रहा स्मृता ।। याज्ञवल्क्यस्मृति, 295 श्लोक आचाराध्याय

4 क्षीणश्चन्द्रो रविर्भौम पापो राहु शनि शिखी ।
बुधोऽपि तैर्युत पाप शेषाश्चैव शुभग्रहा ।।
क्षीणेन्द्वर्कार्किभौमा स्यु पापा सौम्योपि तद्युत ।
राहुकेतू पापतरौ पाप पापयुतस्तथा ।।
भौममन्दार्कभोगीन्द्रा प्रकृत्या दु खदा नृणाम् ।
ज्ञगुरुश्वेतकिरण शुक्रा सुखकरा सदा ।। सुगम ज्यो० पृ० 110-111

5 मण्डल निषधेन्द्रस्य चन्द्रस्येवामल कलि ।
प्राप म्लापयितु पाप स्वर्भानुरिव सग्रहात् ।। नै० 17/161

6 सुगम ज्योतिष - पृ० 61

श्रीहर्ष ने प्रतिपदा तिथि को अनध्याय तिथि की सज्ञा से अभिहित करते हुए अवन्ती नगर के प्रसड्ग मे इसका वणन करते हुए कहा कि "उज्जयिनी मे (पति के) इस राजा के सैकडो अपराध (सपत्नीगमन, गोत्रस्खनल) करते हुए भी कामातुर स्त्रियॉ परुष अक्षर नहीं पढ़ती अर्थात् कठोर वचन नहीं कहती है, क्योकि वहॉ शड्करजी के मस्तक मे स्थित अनध्यायतिथि (प्रतिपदा) का चिह्न चन्द्रकला (प्रतिपदा की चन्द्रकला) नहीं दूर होती है। यथा-

आग शत विदधतोऽपि समृद्धिकामा नाधीयते परुषमक्षरमस्य वामा ।
चान्द्री न तत्र हरमौलिशयालुरेकाऽनध्यायहेतुतिथिकेतुरपैति लेखा ।।[1]

द्वितीया तिथि का वर्णन करते हुए श्रीहर्ष लिखते है जिस प्रकार उदय होने वाली चन्द्रकला (द्वितीया तिथि) को उत्कण्डित कुमुदनी के पुण्याड्कुर से हटा लेते है। उसी प्रकार शिबिकावाहक दमयन्ती को मेघातिथि राजा से दूर ले गये। यथा-

ते ता ततोऽपि चकृषुर्जगदेकदीपाद सरस्थलस्थितसमानविमानदण्डा ।
चण्डद्युतेरुदयिनीमिवचन्द्रलेखा सोत्कण्ठकैरववनीसुकृतप्ररोहा ।।[2]

चतुर्दशी तिथि को अदृश्य सिद्धि प्राप्त की जाती है। इसका वर्णन करते हुए नैषधकार दमयन्ती को अरुन्धती आदि तेरह महादेवियो[3] से श्रेष्ठ चतुर्दशी स्वरूप बताया । यथा-

अरुन्धतीकामपुरन्ध्रिलक्ष्मी जम्भद्विषद्दारनवाम्बिकानाम् ।
चतुर्दशीय तदिहोचितैव गुल्फद्वयाप्ता यददृश्यसिद्धि ।।[4]

पूर्णिमा तिथि का श्रीहर्ष ने अनेकश वर्णन किया है। कुण्डिनपुर के धवलदीप्तिमान मणिकल्पित प्रासादो पर (समीपस्थ) भूमि तथा आकाश प्रतिबिम्बत हो रहे थे, क्योकि पूर्णमासी मे चन्द्रमा अत्यधिक प्रकाशवान होता है ओर प्रासाद मे खचित उन मणियों के कारण वहा सभी रात्रो मे अकेली पूर्णिमा तिथि ही अतिथि बनी रहती थी।[5] शुक्लपक्ष में चन्द्रमा की शुक्लता बढती है। बढते-बढते एक सप्ताह बाद चन्द्रमा का आधाभाग दीप्तिमान हो जाता है और फिर एक सप्ताह व्यतीत होने पर चन्द्रमा जब सूर्य से १८० अश दूर होता है, उस समय उसका बिम्ब पूरा हो जाता है। उस दिन सूर्य, चन्द्रमा, और पृथ्वी तीनो एक ही सिधाई मे रहते है, एव पृथ्वी सूर्य और चन्द्रमा के बीच में आ जाती है। उस योग को पूर्णिमा अथवा पौर्णमासी कहते है, उस समय चन्द्रमा की कला पूर्ण होती है, एव उस दिन सूर्यास्त के साथ ही चन्द्रमा का उदय पूर्व क्षितिज मे होता है। चन्द्रमा की कलाओ का वर्णन श्रीहर्ष ने मलयाधिपति के वर्णन मे[6] करने के साथ-साथ नल दमयन्ती के सन्ध्याकालीन वर्णन प्रसग मे भी किया है। यथा-

---

1 नै० 11/92

2 नै० 11/80

3 ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा । वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डा स्प्तमातर ।।
ब्राह्मणी चैव माहेशी कौमारी वैष्णवी तथा । वाराही नारसिही च माहेन्द्री चण्डिका तथा ।।
महालक्ष्मीरिति प्रोक्ता क्रमेणैता नवाम्बिका ।। - नै० 7/97 मल्लिकनाथी टीका में उद्घृत।

4 नै० 7/97

5 सितदीपप्रमणिप्रकल्पिते यदगारे हसदड्करोदसि। निखिलान्निशि पूर्णिमा तिथीनुपतस्थेऽतिथिरेकिकातिथि ।। नै० 2/76।

6 अध्याहार· स्मरहरशिरश्चन्द्रशेषस्य शेषस्याहेर्भय· फणसमचित काययष्टीनिकाय।

अश षोडशमामनन्ति रजनीभर्त्तु कला
वृत्तयन्त्येन पञ्चदशैव ता प्रतिपदाद्याराकदद्विष्य ।
या शेषा पुनरुद्धृता तिथिमृते सा किं हरालकृतिस्तस्या
स्थानबिल कलङ्कमिह किं पश्यामि सश्यामि किं? ॥[1]

नैषध मे पूर्णिमा तिथि से सम्बन्धित अन्य श्लोक भी दृष्टव्य है जो नैषधकार के ज्योतिषशास्त्र के गम्भीर ज्ञान का सकेत देते है। यथा-

विरहवर्गवधव्यसनाकुल कलह पापमशेषकल विधुम् ।
सुरनिपीतसुधाकमपापक ग्रहविदो विपरीतकथा कथम् ॥[2]
पूर्णेन्दुबिम्बाननुमासभिन्नानरथापयत् क्वापि निधाय वेधा ।
तैरेव शिल्पी निरमादमीषा मुखानि लावण्यमयानि मन्ये ॥[3]
अस्या मुखस्यास्तु न पूर्णिमास्य पूर्णिस्य जित्वा महिमा हिमाशुम् ।
भ्रूलक्ष्मखण्ड दधदर्भमिन्दुर्भालस्तृतीय खलु यस्य भाग ॥[4]

अमावस्या तिथि का भी ज्योतिष शास्त्र मे अप्रतिम महत्व होता है। जिस दिन चन्द्रमा सूर्य के साथ रहता है (अमात्र साथ, वस त्र रहना) उसी दिन अमावस्या तिथि होती है। नैषधकार ने अमावस्या को 'कुहू' शब्द से अभिहित किया। हस दमयन्ती वार्तालाप प्रसङ्ग मे दमयती अपने विरह ताप का तार्किक कारण खोजते हुए कहती है कि हे हस! प्रत्येक मास की अमावस्या को जो यह चन्द्रमा सूर्य के पास जाता है तो क्या वहीं से मुझे जलाने के लिए गर्मी ले आता है, क्योकि चन्द्रमा के पास तो शैत्य है उष्णता नहीं। दूसरे शब्दो मे वह प्रसिद्धतम चन्द्रमा जो प्रतिमास (अमावस्या) सूर्य के साथ सङ्गत करता है, क्या वही अत्यन्त तीक्ष्ण एव धैर्यनाशक किरणो से मुझे जलाने मे समर्थ होता है?[5] एक महीने मे दो पक्ष होते हैं, उनको शुक्ल एव कृष्ण पक्ष कहते है, शुक्लपक्ष देवताओं का, एव कृष्ण पक्ष पितरों का है।[6] प्रतिपदा से पौर्णमासी तक शुक्लपक्ष एव प्रतिपदा से अमावस्या तक कृष्ण पक्ष होता है।[7] चन्द्रमा अमावस्या को पृथ्वी और सूर्य के बीच आ जाता है, अतएव उस समय चन्द्रमा का सूर्य की ओर वाला भाग दिखायी नहीं पडता, उस दिन सूर्य के साथ ही चन्द्रमा उदित होता है एव उसी के साथ अस्त भी होता है। श्रीहर्ष ने भी इस तथ्य की ओर निर्देश किया है। दमयती नल के मुख को पूर्ण चन्द्र बताती हुई कहती है कि-

राजा द्विजानामनुमासभिन्न पूर्णा तनूकृत्य तनु तपोभि ।
कुहूषु दृश्येतरता किमेत्य सायुज्यमाप्नोति भवन्मुखस्य ॥[8]

ज्योतिष सिद्धान्त के अनुसार सूर्यरश्मियो के प्रतिबिम्ब से ही चन्द्रमा प्रकाशित होता है। इस तथ्य के विवरण की मीमासा नल के कुण्डिनपुर पहुँचने पर श्रीहर्ष के कथन से होती है जब वह कहते हैं कि

---

1 नै० 22/140
2 नै० 4/62
3 नै० 4/62
4 नै० 7/53
5 प्रतिमासमसौ निशाकर खग! सङ्गच्छति यद्दिनाधिपम्। किमुतीव्रतरैस्तत करैर्मम दाहाय स धैर्यतस्करै ॥ नै० 2/58
6 पूर्वापर मासदल हि पक्षौ पूर्वापरौ तौ सितनीलसज्ञौ। पूर्वश्च दैवश्च परश्च पित्र्य। सुगम ज्योतिष - पृ० 59
7 प्रतिपदादिपौर्णमान्त शुक्ल प्रतिपदादिदर्शान्त. कृष्णपक्ष। दिवस षष्ठिघटिकात्मक। - सुगम ज्योतिष- पृ० 51
8 नै० 8/37

जिस प्रकार सूर्यमण्डल के प्रकाश से चन्द्रमण्डल मे प्रकाश होता है, उसी प्रकार सारथीयुक्त रथ से उतर कर नल ने पुरी मे प्रवेश किया।

रथादसौ सारथिना सनाथाद्राजावतीर्याशुपुर विवेश ।
निर्गत्य बिम्बादिव भानवीयात्सौधाकर मण्डलमशुराघ ।।[1]

चन्द्रमा की गति के बारे मे ज्योतिर्विदो की मान्यता है कि प्रत्यक महीने के १५ दिन म यह सूर्य की तरफ (कृष्णपक्ष मे) जाता है एव शेष १५ दिन मे सूर्य से दूर (शुक्लपक्ष) होता है, यथा-

पद्मिनीश्वरपुरात् पुर याति चेत्कुमुदिनीश्वरस्त्वरम् ।
भानुभानुमितभागभूमय सम्भवन्ति तिथय खवह्नय ।।[2]

सूर्य की अधिष्ठित राशि से अग्रिम राशि मे जब चन्द्रमा शीघ्रगति से जाता है, तब भचक्र मे जितने समय मे १२ अश चलता है, उतने मे एक तिथि होती है। भचक्र ३६० अशो का होता है। अमावस्या के अन्त मे सूर्य तथा चन्द्रमा एक साथ होते है, तब चन्द्रमा अपनीशीघ्रगति के कारण प्रतिदिन बारह अश बढता है तथा सूर्य चन्द्रमा का अन्तर जब बारह अश होता है, तब एक तिथि बनती है। ३० तिथियो मे ३६० अश होते है, इसलिए एक तिथि मे १२ अश हुए। राशियॉ १२ होती हैं।[3] ३६०–१२= ३० अतएव प्रत्येक राशि ३०ह की होती है। २७ नक्षत्र होते है, प्रत्येक नक्षत्र का मान ३६०–२७=$13\frac{1}{3}$ अश होता है, एव चन्द्रमा जब $13\frac{1}{3}$ अश आगे बढता है, तब एक नक्षत्र होता है। शनि $2\frac{1}{2}$ वर्ष मे एक राशि का अतिक्रमण करता है जबकि चन्द्रमा $2\frac{1}{4}$ दिन मे।[4] अर्थात् चन्द्रमा एक राशि मे $2\frac{1}{4}$ दिन रहता है। स्पष्ट है कि पूर्णिमा तथा अमावस्या तिथियो को कारक चन्द्रमा एव सूर्य है। नैषधकार के अमावस्या सम्बन्धी अन्य विवरण भी दृष्टव्य है। यथा-

वियोग भाजोऽपि नृपस्य पश्यता तदेव साक्षादमृताशुमानम् ।
पिकेन रोषारुणचक्षुषा मुहु कुहुरुतैऽहूयत चन्द्रवैरिणी ।।[5]
विरहिभिर्वहुमानभवापि य स, बहुल खलुपक्षइहाजनि ।
तदमिति सकलैरपि यत्र तैर्व्यरचि सा च तिथि किममाकृता ।।[6]
विधुविरोधितिथेरिभिधायिनीमयि! न कि पुनरिच्छसि कोकिलाम् ।
सखि! किमर्थगवेषणया? गिर किरति सेयमनर्थमयीं मयि ।।[7]
सूर न सौर इव नेन्दुमवेक्ष्य तस्मिन्नश्नाति यस्तदितरत्रिदशानभिज्ञ ।
तस्यैन्दवस्य भवदास्यनिरीक्षयैव दर्शेऽश्नतोऽपि न भवत्यवकीर्णिभाव ।।[8]

---

1 नै० 6/7
2 सुगम ज्योतिष - पृ० 53
3 मेषो वृषोऽथ मिथुन कर्क सिहश्च कन्यका। तौलिश्च वृश्चिकश्चैव धनु मकर एव च।। कुम्भमीनौ क्रमादेते राशय परिकीर्तिता ।।
4 सारस्वत सन्दर्शनम्- पृ० 155।
5 नै० 1/100
6 नै० 4/63
7 नै० 4/107
8 नै० 11/76

विधोर्विधिर्बिम्बशतानि लोप लोप कुहूरात्रिषु मासि मासि ।
अभङ्गुरश्रीकममु किमस्या मुखेन्दुमरथापयदेकशेषम् ॥[1]
राजा दुजानामनुमासभिन्न पूर्णा तनूकृत्य तनु तपोभि ।
कुहूषु दृश्येतरता किमेत्य सायुज्यमाप्नोति भवन्मुखस्य ॥[2]
तमोमयीकृत्य दिश परागै स्मरेषव शक्रदृशा दिशन्ति ।
कुहूगिर चञ्चुपुट द्विजस्य राकारजन्यामपि सत्यवाचम् ॥[3]

नक्षत्रो का सम्पूर्ण ज्योतिष मे यथेष्ट स्थान है। नक्षत्र २७ होते है। अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तर फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, अभिजित, श्रवण, धनिष्ठा शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा उत्तारभाद्रपदा, रेवती।[4] कहीं-कहीं अभिजित का भी ग्रहण होता है, इस प्रकार अभिजित को मिलाकर २८ नक्षत्र हो जाते है, परन्तु २७ नक्षत्र ही मुख्य माने जाते है, क्योकि आचार्यों का मत है कि उत्तराषाढा का अन्त्य चरण तथा श्रवण की पहिली चार घडियॉ सब मिलाकर १९ घडियॉ अभिजित नक्षत्र का मान है, तथा हलचक्र, कूर्मचक्र, सर्पाकार, त्रिनाडी चक्र, खार्जूर चक्र आदि मे अभिजित की गिनती भी नहीं होती है। श्रीहर्ष के अनुसार भी २७ नक्षत्र ही मुख्य है, उन्होने नक्षत्रो का वर्णन करते हुए लिखा कि चन्द्रमा के पिता अत्रिमुनि के एक ही तारा (चन्द्ररूप नक्षत्र, पक्षान्तर मे कनीनिका= ऑख की पुतली) थी, किन्तु उसके पुत्र चन्द्रमा की सम्पत्ति तो पिता (नेत्र से चन्द्रमा को उत्पन्न करने से चन्द्रमा के पितृस्थानीय अत्रिमुनि) से भी अधिक हुई, क्योकि इस (चन्द्रमा) की वे (ताराये नक्षत्र-पक्षा० कनीनिकाएँ) सत्ताइस हुईं। अर्थात् चन्द्रमा अपने पिता अत्रिमुनि से भी अधिक भाग्यवान हैं।[5] पुराणो मे कथा मिलती है कि दक्ष प्रजापति ने अश्विनी आदि तारारूपिणी अपनी सत्ताइस पुत्रियो को चन्द्रमा के लिए दिया था।

नक्षत्रो का वर्णन[6] करते हुए श्रीहर्ष ने दमयती को नक्षत्र समूहो के बीच मे चन्द्रलेखा के तुल्य शोभती हुई देखा। यथा-

अथ कनकपतत्रस्तत्र ता राजपुत्रीं, सदसि सदृशभासा विस्फुरन्तीं सखीनाम् ।
उडुपरिषदि मध्यस्थायिशीता शुलेखाऽनुकरणपटुलक्ष्मीमक्षिलक्षीचकार ॥[7]

---

1 नै० 7/59

2 नै० 8/37

3 नै० 8/65

4 अश्विनी भरणी चैव कृत्तिकारोहिणी मृग । आर्दा पुनर्वसु पुष्यस्ततोऽश्लेषा मघा तत ॥
पूर्वाफाल्गुनिका तस्मादुत्तराफाल्गुनिका तत । हस्तश्चित्रा तत स्वाती विशाखा तदनन्तरम् ॥
अनुराधा ततो ज्यष्ठा ततो मूल निगद्यते । पूर्वाषाढोत्तराषाढा अभिजिच्छ्रवणस्तत ॥
धनिष्ठा शततारारव्य पूर्वाभाद्रपदा तत । उत्तराभाद्रपदा चैव रेवत्येता ने भानि च ॥
वैश्वधिष्ठयाशपादस्य श्रुतेराद्याब्धिनाडिका । अभिजिद्भमितिर्ग्राह्या ह्यष्टाविशतिभेषु सा ॥
(उत्तराषाढाया अन्त्यपाद श्रवस्य प्रथमाश्चतस्रो घट्य =19 घट्य अभिजिन्मानम्) ॥ लाङ्गले कमठे चक्रे फणिचक्रे त्रिनाडिके। अभिजिदगणना नास्ति चक्रे खार्जूरिके तथा॥ सुगगम ज्योतिष पृ० 74

5 एकैवतारा मुनिलोचनस्य जाता किलैतज्जनकस्य तस्य ।
ताताधिका सम्पदभूदिय तु सप्तान्विता विंशतिरस्य यत्ता ॥ नै० 22/127

6 अग्निपुराण- 126 अध्याय नक्षत्र निर्णय वर्णनम्, 136 अध्याय, नक्षत्र चक्रम्।

7 नै० 2/107

कामसतप्ता (हस से नल के विषय मे जानकर) दमयन्ती के वर्णन मे हस्तनक्षत्र का वर्णन करते हुए श्रीहर्ष लिखते है कि-

असमये मतिरुन्मिषति ध्रुव करगतैव गता यदिय कुहू ।
पुनरुपैति निरुध्य निवास्यते सखि! मुख न विधो पुनरीक्ष्यते ।।[1]

विशाखा नक्षत्र को कामदेव के विजय शख के रूप में बताते हुए नैषधकार का कथन है कि-

स्मरस्य कम्बु किमय चकास्ति दिवि त्रिलोकीजयवादनीय ।
कस्यापरस्योडुमयै प्रसूनैर्वादित्रशक्तिर्घटते भटस्य ।।
कि योगिनीय रजनी रतीश याजीजिवत्पद्ममभूमुहच्च ।
योगार्द्धिमस्या महतीमलग्नमिद वदत्यम्बरचुम्बि कम्बु ।।[2]

मृगशिरा नक्षत्र का चित्रण करते हुए नल दमयन्ती से कहते है कि प्रिये! तुम्हारे इस मुख चन्द्र का कलङ्क मृग कहॉ चला गया, क्या वह मदन से बिद्ध होकर आकाश मे मृगशिरा (वाणाकार पुष्पतुल्य) नक्षत्र मे चला गया है। यथा-

एण स्मरेणाङ्कमय सपत्राकृतो भवद्भ्रूयुगधन्वना य ।
मुखे तवेन्दौ लसता स तारा पुष्पालिबाणानुगतो गतोऽयम् ।।[3]
रुद्रेषुविद्रावितमार्त्तमारात्तारामृग व्योमनि वीक्ष्य बिभ्यत् ।
मन्येऽयमन्य शरण विवेश मत्वेशचूडामणिमिन्दुमेण ।।[4]

रोहिणी नक्षत्र के बारे मे श्रीहर्ष का कथन है कि-

मम त्वदच्छाङ्घ्रिनखामृतद्युते, किरीटमाणिक्यमयूखमञ्जरी ।
उपासनामस्य करोतु रोहिणी त्यजत्यजाकारणरोषणे! रुषम् ।।[5]

ज्योतिष शास्त्र मे भी नक्षत्रो की आकृति रोहिणी का शकट (गाडी के) समान, मृगशिरा का हरिण के मुख के समान, हस्त का हाथ के समान, विशाखा का तोरण (फाटक) के समान मानी गयी है। यथा-

अश्व्यादिरूप तुरगास्ययोनी क्षुराऽन एणास्यमणिर्गृहञ्च ।
पृषत्चक्रे भवन च मञ्च शय्या करो मौक्तिकविद्रुमञ्च ।।
तोरण बलिनिभञ्च कुण्डल सिहपुच्छगजदन्तमञ्चका· ।
त्र्यस्रि च त्रिचरणाभमर्दलौ वृत्तमञ्चयमलाभमर्दला· ।।[6]

ब्रह्माण्ड में स्थित तारों के बारे में श्रीहर्ष का कहना है कि यह ब्रह्माण्ड सृष्टि के आदि से ही निर्मित एक मण्डप रूप है, एव अतिप्राचीन होने के कारण इसके काष्ठो मे घुन लग गये हैं । ये तारे उन्हीं घुनों के द्वारा किये गये छेद हैं तथा इन तारों की किरणें उन छिद्रो से निकलने वाली जीर्ण काष्ठ की

---

1 नै० 4/57
2 नै० 22/21, 22
3 नै० 22/24
4 नै० 22/78
5 नै० 9/107

श्वेत धूल है।[1] तारागणो की सख्या अत्यधिक[2] बताते हुए अगस्त्य तारा,[3] ध्रुवतारा,[4] एव अरुन्धती[5] आदि का वर्णन नैषधकार ने किया है। सरस्वती के वर्णन प्रसड्ग मे नैषधकार का कथन है कि नक्षत्र तारा आदि के वर्णन से युक्त, शिक्षा, कल्प आदि षडड्गो मे सख्यात ज्योतिषशास्त्र जिस (सरस्वती) की सदा के लिए हारलता रूप हो गया था। यथा-

> स्थितैव कण्ठे परिणम्य हारलता बभूवोदिततारवृत्ता।
> ज्योतिर्मयी यद्भजनाय विद्या मध्येऽड्गमड्केन भृता विशड्के ।।[6]

ज्योतिषशास्त्र मे राशियो का अप्रतिम स्थान है। राशियो के माध्यम से ही जातक के भूत, भविष्य एव वर्तमान पर विचार किया जाता है। राशियॉ बारह मानी गयी है, ये है मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ एव मीन।[7] सिह आदि छै राशियो का स्वामी सूर्य है, शेष छै राशियो का स्वामी चन्द्रमा है। इन दोनो ने क्रम से ग्रहो को अधिकार दिया है। मेष एव वृश्चिक का स्वामी मड्गल, वृष तथा तुला का शुक्र, कन्या एव मिथुन का बुध, कर्क का चन्द्रमा, सिह का सूर्य, धनु तथा मीन का वृहस्पति, मकर एव कुम्भ राशियो का स्वामी शनैश्चर है।[8] श्रीहर्ष ने राशियो मे कर्क एव मकर राशियो का वर्णन (नल द्वारा दमयन्ती से सन्ध्याकालीन वर्णन प्रसड्ग मे) करते हुए अभिहित किया कि मन्दाकिनी मे देवो के विहार करने के कारण भय से उसके कछुए, मछली, केकडे आदि जल जन्तु नीचे बैठ गये है, और हम भूवासियो को यहॉ से नीचे बैठे हुए ये कर्कराशि, मकरराशि आदि के रूप मे साफ दिखायी पड रहे है। यथा-

---

1 लोकाश्रयो मण्डपमादिसऊष्टि ब्रह्माण्डमाभात्यनुकाष्ठमस्य ।
स्वकान्तिरेणूत्करवान्तिमान्ति घुणब्रणद्वारनिभानि भानि ।। नै० 22/25

2 अयमयोगिवधूवधपातकैर्भ्रमिमवाप्य दिव खलु पात्यते ।
शितिनिशादृषदिस्फुटदुत्पतत्कणाधिकतारकिताम्बर ।। नै० 4/49
अस्ताचलऽस्मिन्निकषोपलाभे सन्ध्याकषोल्लेखपरीक्षितो य ।
विक्रीय त हेलिहिरण्यपिण्ड तारावराटानियमादित द्यौ ।। नै० 22/ 13
पचेलिम दाडिममर्कबिम्बमुत्तार्य सन्ध्या त्वगिवोज्झितास्य ।
तारामय बीजभुजादसीय कालेन निष्ठ्यूतमिवास्थियूथम् ।। नै० 22/ 14
तारातितिर्बीजमिवादमादमिय निरष्ठेवि यदस्थियूथम् ।
तन्निष्कुलाकृत्य रदि त्वगेषा सन्ध्योज्झिता पाकिमदाडिम वा ।। नै० 22/15
सन्ध्यावशेषे धृतताण्डवस्य चण्डीपते पत्पतनाभिघातात् ।
कैलासशैलस्फटिकाश्मखण्डरमण्डि पश्योत्पतयालुभिर्द्यौ ।। नै० 22/15

3 अयि। ममैष चकोरशिशुर्मुनेर्व्रजति सिन्धुपिबस्य न शिष्यताम् ।
अशितुमब्धिमधीतवतोऽस्य वा शशिकरा पिबत कति शीकरा ।। नै० 4/58
अजातविच्छेदलवै स्मरोत्सवैरगस्त्यभासा दिशि निर्मलत्विशि ।
धुतावधि कालममृत्युशड्किता निमेषवत्तेन नयस्व केलिभि ।। नै० 9/57

4 ध्रुवावलोकाय तदुन्मुखभ्रुवा निर्दिश्य पत्याभिदधे विदर्भजा ।
किमस्य न स्यादणिमाऽक्षिसाक्षिकस्तथाऽपि तथ्यो महिमाऽऽगमोदित ।। नै० 16/38

5 धवेन साऽदर्शि वधूररुन्धतीं सतीमिमा पश्य गतामिवाणुताम् ।
कृतस्य पूर्व हृदि भूपते कृते तृणीकृतस्वर्गपतेर्जनादिति ।। नै० 16/38
अमहतितरास्तादृक् तारा न लोचनगोचरास्तरणि किरणाद्यामञ्चन्ति क्रमादपरस्परा ।
कथयति परिश्रान्ति रात्रीतम सह युध्वनाम् अयमपि दरिद्राण प्राणस्तमीदयितस्त्विषाम् ।। नै० 19/4

6 नै० 10/39

7 मेषो वृषोऽथ मिथुन कर्कट सिह कन्यके। तुलाथ वृश्चिको धन्वी मकर कुम्भमीनकौ।। सुगम ज्योति पृ० 100

8 सिहादिषट्कस्य पतिर्दिनेश कर्कान्तषट्कस्य पतिर्निशेश। ताभ्या प्रदत्त क्रमशोऽधिकारो ज्ञशुक्रभौमेज्यशनैश्चरेभ्य ।।
मेषवृश्चिकयोर्भौम शुक्रो वृषतुलाधिप। कन्यामिथुनयो सौम्य कर्कस्वामी च चन्द्रमा ।।
सिहस्याधिपति सूर्यो गुरुस्तु धनमीनयो। शनिर्नक्रस्य कुम्भस्य कथितो गणकोत्तमै ।। सुगम ज्यो0- पृ० 100

अमूनि मन्येऽमरनिर्झरिण्या यादासि गोधा मकर कुलीर ।
तत्पूरखेलत्सुरभीतिदूरमग्रान्यध स्पष्टमित प्रतीम ॥[1]

जन्मफल के परिगणन मे ग्रहयुतियो या ग्रहसयोगो का विचार किया जाता है। श्रीहर्ष ने भी राजा नल के वर्णन प्रसङ्ग मे श्लेष के माध्यम से ग्रहसयोगो की चर्चा करते हुए कहा कि सूर्य के समान कान्तिमान बुद्धिमान, तेजस्वी, राजा नल, कवि (शुक्र), तथा विद्वानो (बुध) के साथ काव्य एव शास्त्र का अभ्यास करते हुए, हर्ष पूर्वक समय को व्यतीत करते हुए प्रतिदिन समृद्धि को उसी प्रकार प्राप्त कर रह थे, जिस प्रकार निरन्तर समीप मे स्थित शुक्र तथा बुध ग्रहद्वय के साथ समय को व्यतीत करते हुए तेजस्वी सूर्य प्रतिदिन उदय को प्राप्त करते है।[2] ज्योतिर्विदो की मान्यता है कि बुध तथा शुक्र, सूर्य से ९० अश (डिग्री) मे ही रहते है। जिस जातक के जन्मकाल मे बुध, शुक्र एक राशि बैठे हो वह मनुष्य कुल मे प्रतापी, श्रेष्ठवाणी बोलने वाला, सदा हर्ष सहित रहने वाला श्रेष्ठ वेष वाला, बहुत मनुष्यो का स्वामी, गुणवान तथा विवेकी होता है।[3] इसे कुलदीपक योग कहते हैं और यदि हम नल के जीवन चरित पर दृष्टि डाले, तो उनकी जन्मकुण्डली मे बुध, शुक्र योग का होना अवश्यभावी लगता है, क्योकि ज्योतिष ग्रथो मे वर्णन मिलता है कि-

लग्ने यस्य बुध शुक्र केन्द्रे यस्य वृहस्पति। दशमेऽङ्गारको यस्य स जात कुलदीपक॥
लग्ने नास्ति बुध शुक्र केन्द्रे नास्ति वृहस्पति। दशमेऽङ्गरको नास्ति स जात कि करिष्यिति॥

और नल तो राजा होने के साथ-साथ अपने कुल के दीपक ही थे। यदि हम उपर्युक्त विवरण मे बुध, शुक्र एव सूर्य तीन ग्रहो के योग को माने, तब तो उसका फल नल के जीवन से विपरीत दिखायी पड़ता है। क्योकि बुध, शुक्र एव सूर्य जिस मनुष्य के जन्मकाल मे एक भाव में बैठे हो, तो वह मनुष्य साधुओ का वैरी, निन्दित, स्त्री के कारण से बहुत सतप्त, बहुत बोलने वाला तथा देशो का भ्रमण करने वाला होता है[4] साथ ही इस योग के होने पर धान्य महर्घता, अल्पवृष्टि का भय, एव ज्यादा ताप वृष्टि होती है।[5] परन्तु उपर्युक्त त्रिग्रह योग (बुध, शुक्र, सूर्य) तो नल के प्रसङ्ग मे सर्वथा असमीचीन एव अप्रासङ्गिक लगते है, परन्तु द्विग्रह योग (बुध, शुक्र) समीचीन सिद्ध होते है। यह भी सभव प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष ने ऐसा विवरण अपनी काव्यचारुता (श्लेषोपमा) के लिए किया हो, परन्तु इस सन्दर्भ में त्रिग्रह योग तो नहीं ही माना जा सकता।

ज्योतिषशास्त्र मे चन्द्रमा के दोनो ओर वृहस्पति तथा शुक्र के योग को "**दुरुधरा योग**" कहते है। यदि चन्द्रमा से द्वादश स्थान मे सूर्य को छोड़कर शेष कोई ग्रह स्थित हो तो "**अनफा योग**" होता है। यदि चन्द्रमा से द्वितीया स्थान मे सूर्य को छोड़कर शेष कोई ग्रह हों, तो "**सुनफा योग**" होता है। यदि चन्द्रमा से द्वितीय तथा द्वादश दोनो स्थानो मे ग्रह स्थित हो, तो "**दुरुधरा योग**" होता है। यदि दोनो

---

1 नै० 22/20

2 अजस्रमभ्यासमुपेयुषा समं मुदैव देव कविना बुधेन च ।
दधौ पटीयान्समयं नयन्नयं दिनेश्वरश्रीरुदय दिने-दिने ॥ नै० 1/17

3 कुलाधिशाली शुभवाग्विलास सदा सहर्ष पुरुष सुवेष ।
भर्ता वहूना गुणवान्विवेकी सभार्गवे जन्मनि सोमसूनौ ॥ सुगम ज्यो0 पृ० 406

4 साधुद्वेषी निन्दितोऽत्यन्ततप्त कान्ताहेतोर्मानव संयुताश्चेत् ।
दैत्यामात्यादित्यसौमाख्यखेटा वाचाल· स्यादन्यदेशाटनश्च ॥ सु0 ज्यो0 पृ० 408

5 एकराशिस्थिताह्येते सौम्यशुक्रदिनाधिपा ।
सर्वधान्य महार्घत्व मेघा. स्वल्पजलप्रदा· ॥ वृहद्दैवज्ञरजन, पृ० 16 में उद्धृत मयूरचित्रक

स्थानो मे कोई ग्रह न हो तो "केमद्रुम" योग होता है।[1] **"दुरुधरा"** योग का फल ज्योतिर्विदो के मत मे यह है कि, जिसका जन्म "दुरुधरा योग" मे हो, वह धनवान, हाथी घोड़े से युक्त, सुखी, शत्रुनाशी तथा स्त्री के वश मे होता है।[2] साथ ही यह भी कहा जाता है कि जिस मनुष्य के जन्मकाल मे चन्द्रमा वृहस्पति, शुक्र एक राशि मे बैठे हो, तो वह मनुष्य सदा भाग्यवान, सुन्दर, कीर्तिवाला, बुद्धिमान तथा आजीविका सहित होता है।[3] नैषधकार ने इस योग का उल्लेख पन्द्रहवे सर्ग मे किया है जहाँ दमयन्ती की सखी दमयन्ती के कानो मे कुण्डल पहनती हुई कहती है कि सुन्दरि, जैसे गुरु (वृहस्पति), शुक्र के साथ चन्द्रमा के "दुरुधर नामक योग" मे उत्पन्न होने वाला (जातक) बालक वृद्धिशाली होता है, उसी प्रकार इन कुण्डलो के साथ तुम्हारे मुख चन्द्र का सम्पर्क प्रिय नल मे निश्चय ही अतिशय रति अभिलाषा का जनक होगा। यथा-

अवादि भैमी परिधाप्य कुण्डले वयस्ययाभ्यामभित समन्वय ।
त्वदाननेन्दो प्रियकामजन्मनि श्रयत्यय दौरुधरीं धुर ध्रुवम् ।।[4]

ज्योतिष शास्त्र मे यह वर्णन मिलता है कि पूर्णचन्द्र शुभ होता है एव क्षीण चन्द्र अशुभ या पापग्रह होता है। कृष्णपक्ष की अष्टमी के उपरान्त शुक्लपक्ष की अष्टमी पर्यन्त का चन्द्रमा क्षीण चन्द्रमा कहलाता है, उसके उपरान्त पूर्ण चन्द्रमा कहलाता है।[5] नल के विरह से दुखी दमयन्ती पूर्णचन्द्र के प्रति क्रोधित होकर अपनी सखी से कहती है कि विरहियो के वध मे सन्नद्ध इस पूर्ण चन्द्र को तुम पापग्रह ही समझो (जबकि ज्योतिर्विदो के मत मे यह शुभग्रह है) देवताओ ने जिसके अमृत को पी लिया है ऐसी उस अमावस्या का चन्द्र तो निष्पाप है, परन्तु इन ज्योतिषविदो की कैसी विपरीत बाते होती है,[6] जब वह कहते है कि क्षीण चन्द्रमा अशुभ होता है एव पूर्ण चन्द्रमा शुभ। यहॉ मल्लिनाथ का कथन है-

"कि ग्रहविदोदैवज्ञास्तु कथ विपरीतकथा " क्षीणेन्द्वर्कार्किभूपुत्रा पापास्तत्सयुतो बुध।
पूर्णचन्द्रबुधाचार्यशुक्रास्ते स्यु शुभग्रहा।[7]

सिद्धान्त ज्योतिष मे मनुष्य, देवता, तथा ब्रह्मा के काल सम्बन्ध की चर्चा का विवरण मिलता है, जिसमे मनुष्यमान से एक चतुर्युगी, ४३ लाख २० हजार वर्षों की होती है। एक हजार चतुर्युगी व्यतीत होने

---

1 रविवर्ज्यं द्वादशगैरनफा चन्द्राद्द्वितीयगै सुनफा ।
उभयस्थितैदुरुधरा केमद्रुमसज्ञिको योऽन्य ।। सुगम ज्यो0 पृ० 451
गुरुभार्गवयोर्योगश्चन्द्रेणैव यदा भवेत् ।
तदा दुरुधराख्य स्यात् इति ज्योति शास्त्रादवगन्तव्यम् ।। नै० 15/42 मल्लिनाथी, एव नारायणी टीका में उद्धृत।
हित्वार्थं सुनफानफा दुरुधरा स्वान्त्योभयस्थैग्रहै शीताशो। वराहमिहिर वृहज्जातक- 13/3

2 सद्वित्तसद्वारणवाहधात्रीसौख्याभियुक्त सतत हतारि ।
कान्तासुनेत्राञ्चललालस स्याद्योगे सदा दौरुधरे मनुष्य ।। सुगम ज्योतिष - पृ० 451

3 भाग्यभाग्भवति मानव सदा चारुकीर्तिमतिवृत्तिसयुत ।
भार्गवेन्दुसुरराजपूजिता सयुता यदि भवन्ति सम्भवे ।। सुगम ज्योतिष- पृ० 410, श्लोक- 23

4 नै० 15/42

5 कृष्णाष्टमीदलादूर्ध्वं यावच्छुक्लाष्टमी भवेत् ।
तावत् क्षीण शशी ज्ञेय सम्पूर्णस्तदनन्तरम् ।। सुगम ज्योतिष- पृ० 111
अर्द्धोनेद्वर्क सौरारा पापा, ज्ञस्तद्युतोपरे ।
शुभा पापोत्तम दोतू विष्णुधर्मोत्तरोदितौ ।। वृहद्दैवज्ञरजन, 32/24

6 विरहिवर्गवधव्यसनाकुल कलयपापमशेषकलं विधुम् ।
सुरनिपीतसुधाकमपापक ग्रहोविदोविपरीतकथा कथम् ।। नै० 4/62

7 नै० 4/62 मल्लिनाथ की टिप्पणी।

पर ब्रह्मा का एक दिन होता है एव एक ब्रह्म दिन एक कल्प माना जाता है।[1] अमरकोश मे भी कहा गया है ''मारोन स्यादहोरात्र पैत्र वर्षेण दैवत। दैव युग सहस्रे द्वे ब्राह्म कल्पो तु नृणाम्।[2] सूर्यसिद्धान्त मे भी कहा गया है-

मासैर्द्वादशभिर्वर्षै दिव्य तदहमुच्यते। सुरासुराणामन्योन्यमहोरात्र विपर्ययात् ।।
तत्षष्टै षड्गुणा दिव्य वर्षमासुरमेव च। तद्द्वादश सहस्राणि चतुर्युगमुदाहृतम् ।।
युगाना सप्तति सैका मन्वतरमिहोच्यते। कृताब्दसख्या तस्यान्ते सन्धि प्रोक्तो जलप्लव ।।
ससन्धयस्ते मनव कल्पे ज्ञेयाश्चतुर्दश। कृतप्रमाण कल्पादो सन्धि पञ्चदशस्मृत ।।
इत्थ युगसहस्रेण भूतसहारकारक। कल्पो ब्राह्ममह प्रोक्त शर्वरी तस्यतावती ।।
परमायु शत तेषा तयाहोरात्रसख्यया। आयुषोर्द्धगत तस्य शेषात्कल्प्योयमादित ।।[3]

नैषधकार ने इस विवरण को कामसतप्ता दमयन्ती के वर्णन मे किया है जहॉ नल के वियोग (कामसतप्त) मे दमयन्ती विरह वेदना (नलवियोग से कामाग्नि की प्रज्ज्वनशीलता के कारण) की असह्यता को अपनीसखी से बताती हुई कहती है कि गणित शास्त्र (सिद्धान्त ज्योतिष) मे मनुष्य, देवता तथा ब्रह्मा के जिस काल परिणाम से युगनिर्माण होता है, अर्थात् मनुष्य, देवता, ब्रह्मा का एक युग क्रमश दूसरे के एक क्षण के बराबर हाता है, उसी तरह (ब्रह्मा को चाहिए था कि) सयोगियो के एक क्षण के बराबर ही वियोगियो का युग बनाते, परन्तु ऐसा ब्रह्मा के द्वारा क्यो नहीं किया गया?[4]

मुहूर्त विचार भी ज्योतिष के माध्यम से सम्पन्न किया जाता है। फलित ज्योतिष के अनुसार गणना करके निकाला हुआ कोई समय, जिस पर कोई शुभ कार्य (यात्रा, विवाह आदि) किया जाय उसको मुहूर्त कहते है।[5] ज्योतिष के अनुसार सूर्य के ललाटस्थ (प्रत्यादित्य) रहने पर ''ललाटी योग'' मे यात्रा नहीं करनी चाहिए क्योकि वह कल्याण कारक नहीं होती।[6] नैषध मे भी दमयती द्वारा हस को पकडने हेतु उसके पीछे-पीछे जाने पर उसकी सखियॉ दमयन्ती से कहती हैं कि सुन्दरि। तुम्हारी यह हसाभिमुख (हस=सूर्य) यात्रा प्रशस्त नहीं होगी, परन्तु दमयन्ती ने उनसे कहा कि यह हस मेरे लिए अशुभ (अपशकुनरूप) नहीं है, बल्कि मेरे भावीप्रिय (शुभवार्ता) का द्योतक है।[7] ज्योतिर्विदो की मान्यता है कि चित्रा और स्वाती नक्षत्रो मे यात्रा करने वाले मनुष्य न ही सुख पाते हैं और न ही कुशलता से घर लौटते है।[8] नल वरुण देव के दूतकार्य को आरम्भ करते हुए दमयन्ती से कहते है कि तन्वि। जो (वरुण) सायकाल में कुकुम से शरीर

---

1 विष्णुपुराण- 1/3/20-21, वायुपुराण 57/33-35, 61/138-140, सिद्धान्त शिरोमणि 28 श्लोक, पुराणविमर्श पृ० 290-300, मनु0 1/68-74, 79-80, महाभारत वनपर्व 188/22-24, 26, शातिपूर्व 231/16-31 भार्गव पुराण- 3/11/18-20, 22-24 सुगम ज्योतिष- पृ० 46-52, अग्निपुराण 122 अध्याय काल गणना वर्णनम् 150- अध्याय मन्वन्तराणि।

2 अमरकोश- 1/4/21

3 सूर्य सिद्धान्त 1/16-----21

4 नरसुराब्जभुवामिव यावता भवति यस्य युग यदनेहसा। विरहिणामपि तद्रतवद्युक्षणमित न कथ गणितागमे।। नै० 4/44

5 ज्योतिष रत्नाकर पृ०- 878

6 दिग्गीशा सूर्यशुक्रार राह्वर्केन्दुज्ञसूरय ।
दिग्गीश्वरे ललाटस्थे यातुर्न पुनरागम ।। नारदमत
दिशामधीशा रविशुक्रभौमतयोयमेन्द्विन्द्वजसूरय स्यु ।
ललाटगेनप्रवसैदिदगीशे गन्तव्यमस्मिन् खलुकण्ठकस्थै ।। श्रीपतिमत--वृहद्दैवज्ञरजन- पृ० 282 में उद्धृत्।

7 शस्ता न हसाभिमुखीपुनस्ते यात्रेति ताभिश्छलहस्य माना ।
साह स्म नैवाशकुनी भवेन्मे भाविप्रियावेदक एष हस ।। नै० 3/9

8 कृतप्रयाणमष्टासुनकदाचिन्निवर्तते। चित्रात्रयमघाश्लेष तथार्द्राभरणीद्वयम्।। यात्राप्रकरण में गर्गमत-बृहद्दैवज्ञरजन, पृ० 278 में उद्धृत्।

लेपन करने वाली दिशा (पश्चिम दिशा) के स्वामी है उन्होने (वरुण) भी तुम्हारे लिए अपने मन [illegible] उसी समय भेजा जिस मुहूर्त मे भेजा हुआ पथिक वापस नहीं लौटता। अर्थात् वरुण का मन वापस नहीं लौटा अर्थात अब भी वह तुममे आसक्त है।[1] मल्लिनाथ का कथन है कि –

"अपुनरावृत्तिलिङ्गानून चित्रास्वात्यो प्रस्थि[illegible]।
नन्दन्ति न निवर्तन्ते चित्रास्वात्योर्गता नरा इति वचनात् ।[2]

वाल्मीकि रामायण मे वानरसेना के प्रयाण के पहले राम भी मुहूर्त की बात करते हुए कहते है

उत्तराफाल्गुनी ह्यद्य श्वस्तु हस्तेन योक्ष्यते, अभिप्रयाम सुग्रीव सर्वानीक समावृता ।
निमित्तानि च पश्यामि यानि प्रादुर्भवन्ति वै, निहत्य रावण सीतामानयिष्यामि जानकीम् ।।[3]

अग्निपुराण मे भी यात्रा मुहूर्त की चर्चा मिलती है। यथा-

सर्वयात्रा प्रवक्ष्यामि राजधर्मसमाश्रयात्। अस्तङ्गते नीचगते विकले रिपुराशिगे ।।
प्रतिलोमे च विध्वस्ते शुक्रे यात्रा विसर्जयेत्। प्रतिलोमे बुधे[illegible] दिग्गतौ च तथाग्रहे ।।
वैधृतौ च व्यतीपाते नागे च शकुनौ तथा। चतुष्पादे च किन्तुघ्ने तथायात्रा विवर्जयेत् ।।
विपत्तारे नैधने च प्रत्यरौ चाथजन्मनि। गण्डे विवर्जयेद् यात्रा [illegible] तिथावपि ।।
उदीची च तथा प्राची तयोरैक्य प्रकीर्त्तितम्। पश्चिमा दक्षिणा या दिक् तयोरैक्य तथैव च ।।
वाय्वग्निदिक्समुद्भूत परिघ न तु लङ्घयेत्। आदित्य चन्द्रशौरास्तु दिवसाश्च न शोभना ।।
कृत्तिकाद्यानिपूर्वेण माघाद्यानि च याम्यत। मैत्राद्यान्यपरेचाथ [illegible] ।।
सर्वद्वाराणि शस्तानि छायामान वदामि ते। आदित्ये विशतिर्ज्ञेयाश्चन्द्रे षोडश कीर्तिता ।।
भौमे पञ्चदशैवोक्ताश्चतुर्दश तथाबुधे। त्रयोदश तथा जीवे शुक्रे द्वादश कीर्त्तिता ।।
एकादश तथा सौरे सर्वकर्मसु कीर्त्तिता। जन्मलग्ने शक्रचापे सम्मुखेन व्रजेन्नर ।।[4]

यज्ञकर्म पूजन एव सामाजिक विधाओ यथा विवाहादि में भी मुहूर्त का अप्रतिम महत्व होता है। आज भी उपर्युक्त कर्म सम्पादन के पूर्व ज्योतिषियों या पण्डितों से लोग मुहूर्त निकलवाते या पूँछते देखे जाते है। नैषध मे भी राजा भीम ने अपनी पुत्री दमयन्ती के विवाह के पूर्व ज्योतिषियों की एक सभा बुलायी जिसमे उन्होने दमयन्ती के विवाह के लिए गुरु, शुक्र आदि ग्रहो के उदय अस्त दोषो से रहित तथा जामित्र (सम्पूर्ण) गुणो से युक्त मुहूर्त को राजा को बताया[5] एव राजा ने भी उसी मुहूर्त में कन्यादान करने के लिए पूर्वकालिक वैदिक तथा स्मार्त विधियों को आरम्भ किया। मुहूर्तग्रथों मे वाराहीसहिता, मुहूर्ततत्व, ज्योतिषदर्पण, मुहूर्तमार्तण्ड, लल्ल का रत्नकोश (५६० ई०) श्रीपति का रत्नमाला (९६१ ई०), भोज के राजमार्तण्ड एव विद्वज्जनवल्लभ, बल्लालसेन के अद्भुतसागर, पद्मनाभकृतव्यवहारप्रदीप, ज्योतिर्विदाभरण, विवाहवृन्दावन, शार्ङ्गधरकृत विवाहपटल, ज्योतिर्निबन्ध, तोडरानन्द, मुहूर्तचिन्तामणि, मुहूर्तचूड़ामणि,

---

1 यस्तित्विभर्ता घुसृणेन साय दिश समालम्भनकौतुकिन्या।
तदा स चेत प्रजिघाय तुभ्य यदा गतो नैति निवृत्य पान्थ।। नै० 8/80

2 नै० 8/80 मल्लिनाथ की टिप्पणी।

3 रामायण- युद्धकाण्ड- 4/5-6

4 अग्निपुराण - 233/1-10

5 **निरीय भूपेन निरीक्षिताननो शशंस मौहूर्तिकससदशकम्।
गुणैररीणेरुदयास्तनिस्तुष तदा स दातु तनया प्रजक्रमें।। नै० 15/8, एव दृष्टव्य अग्निपुराण 231/1**

मुहूर्तकल्पद्रुम, मुहूर्तमाला, मुहूर्तदीपक, मुहूर्तगणपति, मुहूर्तसिन्धु प्रमुख है।[1] इनमे ... विवाह मुहूर्त को ग्रहो के उदय अस्त दोषो से रहित एव सम्पूर्ण गुणो से युक्त होना चाहिए ... श्रीपति का भी यही मत है। यथा-

> इष्टोदयाशे निजपत्यदृष्टवरस्य मृत्युस्तदलग्युते च ।
> अस्ताशकेप्येवमदृष्टयुक्ते स्वस्वामिना नाशमुपैतिकन्या ।।
> उदयनगतनवाश स्वेशदृष्टो युतो वा न भवति यदि मृत्यु स्यात्तदन्तै वरस्य ।
> परिणयसमये चैवमस्तोदयाश स्वपतिसहितदृष्ट्व मृत्युकारी च वध्वा ।।[2]

अग्निपुराण मे भी विवाह मुहूर्त की चर्चा की गयी है जो निम्नलिखित है-

> षडष्टके विवाहो न न च द्विद्वादशे स्त्रिया। न त्रिकोणे ह्यथ प्रीति शेषे च समसप्तके ।।
> द्विद्वादशे त्रिकोणे च मैत्रीक्षेत्रपयोर्यदि। भवेदेकाधिपत्यञ्च ताराप्रीतिरथापि या ।।
> तथापि कार्य्य सयोगो नतुषट्काष्टकेपुन। जीवे भृगौ चास्तमितेम्रियतेचपुमान्स्त्रिया ।।
> गुरुक्षेत्रगते सूर्य्ये, सूर्य्ये क्षेत्रगते गुरौ। विवाह न प्रशसन्ति कन्यावैधव्यकृद्भवेत् ।।
> अतिचारे त्रिपक्ष स्याद्वक्रे मासचतुष्टयम्। व्रतौद्वाहौ न कुर्व्वीत गुरोर्वक्रातिचारयो ।।
> चेत्रे पौषे न रिक्तासु हरौ सुप्ते कुजे खौ। चन्द्रक्षयेचाशुभस्यात् सन्ध्याकाल शुभावह ।।
> रोहिणी चोत्तरा मूल स्वाती हस्तोऽथ रेवती। तुलेनमिथुनेशस्तो विवाह परिकीर्त्तित ।।
> विवाहे कर्णवेधे च व्रते पुसवने तथा। प्राशने चाद्यचूडाया विद्धर्क्षञ्च विवर्जयेत् ।।[3]

अष्टकवर्गः-

नैषधकार ने ज्योतिषशास्त्र से सम्बन्धित अष्टकवर्ग की चर्चा नैषध मे की है। देवदूत बने नल दमयन्ती के प्रति अपने स्वाभाविक प्रेम को भूल नहीं पाते, एव दमयन्ती को भीमप्रसाद में जब देखते हैं, तो कुछ क्षणो के लिए वह दौत्यकर्म भूलकर दमयन्ती को अपनी चिरसङ्गिनी के रूप मे देखते हुए (अपने मन मे) कहते है कि " दमयन्ती, कामदेव के जन्म का अष्टकवर्ग (दन्तक्षत से अधर पर विद्यमान रेखाये) लेखनी (दन्तलेखनी) से तुम्हारे अधर पर लिखा गया है। वह (तुम्हारा बिम्ब के समान) पाटल (अधरोष्ठ) अधर मेरे द्वारा दन्तक्षत से भोजपत्र बने।[4] अर्थात् तुम्हारे (दमयन्ती की) काम की उत्पत्ति (पक्षान्तर मे बिना शरीर से उत्पन्न अर्थात् मानसपुत्र) का शुभ अष्टवर्ग रेखाओं से जिस तुम्हारे अधर मे (ज्यौतिषी विद्वान् या ब्रह्मा द्वारा) लिखा गया है, मेरे (नल के) दन्तक्षत समूह के द्वारा रगने से बिम्बफल के समान लाल वह अधर भूर्ज (भोज) पत्र बने। यहाँ यह कहा जा सकता है कि मनुष्य (स्त्री एव पुरूष दोनों) की कुण्डली मे आठ रेखाओ वाला अष्टवर्ग ज्योतिषी विद्वान् लिखते है, उनमें रेखाओ का रहना शुभ तथा बिन्दुओ का रहना अशुभ माना जाता है। प्राचीन काल मे वर्तमान काल जैसी कागज की सुलभता नहीं रहने से यहाँ कुण्डली को भूर्जपत्र मे लिखने का वर्णन नैषधकार ने किया है, क्योंकि प्राचीनकाल के लिखित ग्रथों की पाण्डुलिपियाँ अब भी ताडपत्र या भोजपत्र आदि मे ही उपलब्ध मिलती है। दमयन्ती के अधर मे जिस

---

1 भारतीय ज्योतिष- शिवनाथ झारखण्डी, पृ० 611-622

2 वृहद्दैवज्ञरजन, पृ० 234

3 अग्निपुराण- 121/2 . 9

4 शुभाष्टवर्गस्त्वदनङ्गजन्मनस्तवाधरेऽलिख्यत यत्र लेखया।
मदीयदन्तक्षतराजिरञ्जनै स भूर्जतामर्जतु बिम्बपाटल ।। नै० 9/119

अष्टवर्ग की रेखाये विद्यमान है, वह सामुद्रिक शास्त्रानुसार शुभसूचक है। मल्लिनाथ अष्टवर्ग की व्याख्या करते हुए कहते है- ''अत्राधररेखाणामष्टवर्ग रेखात्वमधरस्य भूर्जपत्रत्व चोत्प्रेक्षते। तेन च कामादयस्य शुभोदर्कत्व व्यज्यते। जन्मकालग्रहाधीनभावि शुभावेदको रेखाबिन्दुलेख्यश्चक्रविशेषोद्धार्यो ग्रहसन्निवेश विशेषोऽष्ट वर्ग ''।।[1]

ज्योतिषशास्त्रीय ग्रथो मे यह विवरण उल्लिखित मिलता है कि जन्मकालीन ग्रहस्थिति स अर्थात् जन्म समय मे जिस-जिस राशि मे सात ग्रह स्थित हो, और लग्न जिस राशि मे स्थित हो, इन आठ स्थानो से अर्थात् सात ग्रह और एक लग्न, से गोचर के फल का यदि विचार किया जाय, तो वह फल विश्वसनीय होगा। इसी विचार विधि को अष्टवर्ग या अष्टकवर्ग कहते हैं। स्वय भगवान शङ्कर ने प्रथमत यमल को अष्टकवर्ग के विषय में बतालाया था, तदनन्तर पराशर, मणित्थ, बादरायण, यवनेश्वर आदि ने उनका ही अनुकरण किया। जन्म समय जिस राशि मे चन्द्रमा होता है उस राशि को जन्मराशि कहते हैं।[2] भारत वर्ष या अन्य देशो मे भी कुण्डली के फल बताने की तीन विधियॉ अपनायी जाती है। जन्म लग्न से ग्रहो की स्थिति अनुसार फल बताना प्रथम विधि है। जन्म कालीन चन्द्रमा, जिसको चन्द्रलग्न भी कहते है, उस स्थान से ग्रहो की स्थिति अनुसार फल कहने की दूसरी विधि है, एव नवाश कुण्डली के अनुसार फल कहने की तीसरी विधि है। लग्न से शरीर का विचार होता है और चन्द्रमा से मन का। समस्त कार्य मन पर ही निर्भर करता है और यह तो सिद्ध तथ्य है कि मनुष्य को मन ही से सुख एव दु ख का अनुभव होता है। प्रत्येक ग्रह जन्म समय की स्थिति राशि पर अपने-अपने शुभाशुभ प्रभाव डालते हैं, और इसी प्रकार चन्द्रलग्न का भी अपना शुभाशुभ फल होता है, अर्थात् प्रत्येक जन्म कुण्डली मे सात ग्रह और एक लग्न मिलाकर अष्टवर्ग या अष्टकवर्ग होता है।[3] विद्वानो ने अष्टकवर्ग के विविध भेद माने हैं यथा-सूर्य्याष्टक वर्ग, चन्द्राष्टकवर्ग, मङ्गलाष्टक वर्ग, बुधाष्टक वर्ग, वृहस्पति अष्टकवर्ग, शुक्राष्टक वर्ग, शनि अष्टकवर्ग, एव सर्वाष्टक (लग्नाष्टक) वर्ग। ज्योतिषशास्त्र में अष्टकवर्ग की महनीय उपयोगिता है क्योंकि इसके अनुसार चार प्रकार से फल जानने की विधि का प्रतिपादन मिलता है। (१) पहली विधि मनुष्य के आयु साधन की है अष्टकवर्ग के प्रतिवर्ग द्वारा जो आयु का निश्चय किया जाता है, उसे एकत्रित करने के पश्चात् जो आयु निर्णय किया जाता है उसे समुदाय अष्टकवर्ग ''आयु'' कहते हैं। (२) दूसरी भिन्न-भिन्न अष्टकवर्गों मे रेखाओ द्वारा अनेक प्रकार के फल बतलाने की विधि है। (३) तीसरी, त्रिकोण एव एकाधिपत्य शोधनादि के पश्चात् फलाफल जानने की विधि है। (४) चौथी, अष्टकवर्ग की रेखाओ द्वारा गोचर फल कहने की विधि है। दक्षिण भारत के अधिकाश विद्वान् सात ग्रहो ही के अष्टकवर्ग द्वारा आयु निश्चित करना ठीक मानते हैं, जब कि उत्तर भारतीय ज्योतिषमर्मज्ञों एव पराशर आदि प्राचीन दैवज्ञों का मत इसके विपरीत है, अर्थात् इनके अनुसार सातग्रह एव लग्न के अष्टकवर्ग द्वारा ही आयु निर्धारण विधान उचित एव सही है, क्योंकि जातकपारिजात नामक ग्रथ में लिखा भी है कि-

रविमुख्यनभोगदत्तसख्या , परमायु· शरदस्तु मानवानाम् ।
सविलग्नसमासश्च केचिदाहुर्गुरुमूलात् समुपैतितुल्यमाहु ।।

---

1 नैषध- 9/119, मल्लिनाथी टीका

2 यस्मिन् राशौ शीतरश्मिः प्रसूतौ संस्थः प्रोक्तो जन्मराशिः स एव ।
एव लग्ननान्विता सप्त खेटास्ते कि न स्यु प्राणिना जन्मभानि ।। सुगम ज्योतिष- अष्टक-वर्गप्रकरण, श्लोक-2

3 पुसामतोऽष्टौ किलराशय स्यु शुभाशुभान्यत्र फलानि तेभ्य ।
ततश्च रेखामिलनान्तरालास्पृष्ट फल चाष्टक वर्गमुक्तम् ।। वही श्लोक- 3

प्रत्येक ग्रह अपने-अपने स्थान से जिन-जिन स्थानो मे बल प्रदान करता है,[1] इस शुभ फल [illegible] को रेखा या बिन्दु द्वारा दिखलाया जाता है। कुछ विद्वानो ने विन्दु द्वारा फल दिखलाने को शुभ माना कुछ ने रेखा द्वारा, परन्तु यहाँ यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि श्रीहर्ष को अष्टकवर्ग का फल रेखा द्वारा बतलाना ही शुभफलादेश का सूचक है। अष्टक वर्ग के विन्दुओ की सख्या इस प्रकार से है सूर्य ४८ चन्द्रमा ४९, मगल ३९, बुध ५४, वृहस्पति ५६, शुक्र ५२, शनैश्चर ३९।[2] लग्न का स्वामी जिस राशि मे बैठा हो, उससे विन्दु गिने जाते है, एव भिन्न-भिन्न राशियो मे वे क्रमश रखे जाते है।[3] दैवज्ञजनो ने विन्दुओं के फल बताते हुए कहा कि यदि एक बिन्दु हो तो क्लेश होता है, दो मे द्रव्य हानि, तीन मे दुख, चार मे समफल पाच मे नित्य सुख, छे मे नित्यधनागम, सात मे सम्पत्ति वृद्धि, एव आठ बिन्दु हो तो प्रशस्त लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।[4] सम्पूर्ण विन्दुओ का योग यदि २८ हो तो समफल, २८ से कम हो तो अशुभफल एव २८ से अधिक बिन्दु होने पर अधिक शुभफल की प्राप्ति होती है।[5] कालिदास(महाकवि कालिदास से भिन्न) कवि ने अपने 'ज्योतिषर्विदाभरण' नामक ग्रथ मे लिखा है कि जिस प्रकार चन्द्रमा के उदय होने पर दिशाएँ प्रकाशित हो उठती है उसी तरह अष्टकवर्ग की शुद्धि होने से कार्य की भी सिद्धि होती है। यथा-

यथोदये चन्द्रमल प्रकाशो दिगङ्गनाना मुखकैरवस्य ।
तथाष्टवर्गग्रहलग्नशुद्धौ कार्यस्य पुसा भवतीह सिद्धि ।।[6]

दिशाओ का विचार फलित ज्योतिष का अभिन्न अग है। ज्योतिषशास्त्र मे दिशाओ एव उनके स्वामियो का वर्णन निम्न रूप मे मिलता है-

रवि शुक्रो महीसूनु स्वभानुर्भानुजोविधु ।
बुधो वृहस्पतिश्चैव दिशामीशास्तथाग्रहा ।।[7]

एव अन्य ग्रथो मे बुध को उत्तर दिशा का, सूर्य को पूर्व दिशा का तथा शुक्र को दक्षिण पूर्व (आग्नेयकोण) दिशा का स्वामी कहा गया है। नैषधकार ने भी दिशाओं एव उसके साथ दिशाओ के स्वामियो का वर्णनकर इस क्षेत्र मे भी अपनी गति की जानकारी दी है। उनके अनुसार दिशाएँ आठ होती है। चारो दिशाओ एव उनके स्वामियो का वर्णन करते हुए श्रीहर्ष ने कहा कि "इन्द्र, यम, वरुण, और अग्नि चारो दिशाओ (क्रमश पूर्व, दक्षिण, आग्नेयकोण, और पश्चिम दिशाओ) के स्वामी दमयन्ती के गुणो से मोहित होकर उसके साथ विवाह करने के अनुराग से कुण्डिनपुर में आये। यथा-

---

1 स्थानानि यानि प्रतिपादितानि शुभानि चान्यान्यशुभानि नूनम् ।
तयोर्वियोगादधिक फल यत्स्वराशितो यच्छति तद्ग्रहेन्द्र ।। सुगम, ज्योति, अष्टकवर्ग प्रकरण, श्लोक-4

2 भुजङ्गवेदा नवसागराश्च नवाग्नय सागरसायकाश्च ।
रसेषवो युग्मशरा नपत्रितुल्या क्रमेणाष्टकवर्गलेखा ।।

3 विलग्ननाथाश्रितराशितोऽत्र भवन्ति रेखा खलुयत्र यत्र ।
विलग्नतस्तत्र च तत्र राशौ सस्थापनीया सुधिया क्रमेण ।।

4 क्लेशोऽर्थहानिर्व्यसन समत्व शश्वत्सुख नित्यधनागमश्च ।
सम्पत्प्रवृद्धिर्विपुलामलश्री प्रत्येकरेखाफलमामनन्ति ।।

5 इत्येकखेटस्य हि सम्प्रदिष्टा रेखायुतिश्चाखिलखेटरेखा।
अष्टद्विसख्यास्तु समास्ततोऽपि यथाधिकोना· सदसत्फलास्ता ।। वही श्लोक- 5, 6, 7, 8,

6 सुगम ज्योतिष- पृ० 558, श्लोक-5,

7 सुगम ज्योतिष- पृ० 110

आखण्डलोदडधर कृशानु पाशीति नाथै ककुभा चतुर्भि
भेम्येव बद्ध्वा स्वगुणेन कृष्टैर्यये तदुद्वाहररान्न शेष ॥[1]

नैषध मे अन्य दिशाओ एव उनके स्वामियो का वर्णन निम्नलिखित है:

विरहिणो विमुखस्य विधूदये शमनदिक्पवन स न दक्षिण।
सुमनसो नमयन्नटनौ धनुस्तव तु बाहुरसौ यदि दक्षिण॥[2]
यस्तन्वि! भर्ता घुसृणेन साय दिश समालम्भनकौतुकिन्या ।
तदा स चेत प्रजिघाय तुभ्य यदा गतो नैति निवृत्य पान्थ ॥[3]
न काकुवाक्यैरतिवाममङ्गज द्विषत्सु याचे पवनन्तु दक्षिणम् ।
दिशापि मद्भस्म किरत्वय तया प्रियोया वैरविधिर्वधावधि ॥[4]

यावत् पौलस्त्यवास्तूभवदुभयहरिल्लोमरेखोत्तरीये ।सेतु प्रालेयशैलौ चरति नरपतेस्तावदेतस्य कीर्ति यावत् प्राक् प्रत्यगाशापरिवृढनगरारम्भणस्तम्भमुद्रावद्री, सन्ध्यापताकारुचिरचितशिखाशोणशोभावुभौ च ॥[5]

वरुणग्रहणीमाशामासादयन्तममु रुची, निचयसिचयाशाशभ्रशक्रमेण निरशुकम् ।
तुहिनमहस पश्यन्तीव प्रसादमिषादसौ निजमुखमिव स्मेर धत्ते हरेर्महिषी हरित् ॥[6]
विलोकनेनानुगृहाण तावद्दिश जलानामधिपस्य दारान् ।
अकालि लाक्षापयसेव येयमपूरि पङ्कैरिव कुङ्कुमस्य ॥[7]

श्रीहर्ष ने पृथ्वी पर प्रभाव डालने वाले ग्रहणों यथा चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहण का वर्णन भी किया है, परन्तु उनके वर्णन मे ज्योतिषशास्त्र का पुट देखने को नहीं मिलता, उनमे पौराणिक आख्यानो की ही चर्चा की गयी है।[8] जबकि चन्द्रग्रहण, सूर्य और चन्द्रमा के बीच मे पृथ्वी के आन पर होता है एव सूर्य ग्रहण पृथ्वी एव सूर्य के बीच चन्द्रमा के आने पर।

रत्नशास्त्र

श्रीहर्ष ने रत्नो की उत्पत्ति, स्थान, उनके गुणदोष की जानकारी भी इस महनीय ग्रन्थ मे क्रमश पाचवे, बारहवे, पन्द्रहवे एव उन्नीसवे आदि सर्गों मे दी है। विभिन्न ग्रन्थो मे त्रिरत्न, पचरत्न, नवरत्न, एव

---

1 नै० 10/8, एव 9 --- 15 तक।
2 नै० 4/96
3 नै० 8/80
4 नै० नै० 9/93
5 नै० 12/47
6 नै० 19/3
7 नै० 22/3
8 अथ मुहुर्बहुनिन्दितचन्द्रमा स्तुतविधुन्तुदया च तया बहु ।
पतितया स्मरतापमये गदे निजगदेऽश्रुविमिश्रमुखी सखी ॥ नै० 4/43 एव 44 ---- 76 तक।
प्रियावियोगक्वथितादिवैलाच्चन्द्राच्च राहुग्रहपीडितात्ते ।
ध्मातादभवेन स्मरतोऽपि सारै स्व कल्पयन्ति स्म नलानुकल्पम् ॥ नै० 10/22
अङ्कचुम्बिघनचन्दनपङ्क यत्र गारुडशिलाजममत्रम् ।
प्राप केलिकवलीभवदिन्दो सिहिकासुतमुखस्य सुखानि ॥ नै० 21/23
मृगस्य लोभात्खलु सिहिकाया सूनुर्मृगाङ्क कवलीकरोति ।
स्वस्यापि दानादमुमङ्कसुप्त नोज्झन्मुदा तेन च मुच्यतेऽयम् ॥ नै० 22/66

चतुर्दशरत्नो का वर्णन उपलब्ध होता है, किन्तु यहाँ इस सन्दर्भ मे जैना के त्रिरत्न (यहाँ सम्यक् दर्शन, सम्यग् ज्ञान, सम्यग् चरित्र का विवरण अप्रासङ्गिक होगा, अतएव यहा केवल पञ्चरत्न नवरत्न एव चतुर्दश रत्नो का विश्लेषण ही समीचीन माना जा सकता है।[1] आज ज्योतिष के माध्यम से अनेक दुःखो से निजात पाने एव उन्नति का मार्ग प्रशस्त होने की कामना रखने वाले अधिकाश मानव रत्नो के धारण और रत्नो की समीचीनता पर मुहर लगाते देखे जाते है। पचरत्नो की कई प्रकार से परिगणना की जाती है। यथा -

नीलक बज्रक पद्मरागश्च मौक्तिकम् ।
प्रवाल चेति विज्ञेय पचरत्न मनीषिभि ॥

एवं -

सुवर्ण रजत मुक्ता राजावर्तं प्रवालकम्, रत्नपचकमाख्यातम्

तथा -

कनक हरीक नील पद्मरागश्च मौक्तिकम् ।
पचरत्नमिद प्रोक्तमृषिभि पूर्वदर्शिभि ॥[2]

अर्थात् नीलम, हीरा, पद्मराग, मोती और मूगा, या सोना चॉदी, मोती, लाजावर्त (रावटी) और मूगा या सुवर्ण, हीरा, नीलम, पद्मराग (माणिक्य या लाल) और मोती। यहॉ रत्न शास्त्र के सन्दर्भ मे सोना एव चॉदी (धातु होने के कारण) को छोडकर अन्य रत्नो को ही पचरत्न मे रखा जा सकता है। नवरत्नो[3] के अन्तर्गत निम्नाकित रत्न आते है यथा –

मुक्तामाणिक्यवैदूर्यगोमेदान् वज्रविद्रुमौ ।
पद्मराग मरकत नील चेति यथाक्रमम् ॥[4]

अर्थात् मोती माणिक्य, वैदूर्य, गोमेद , हीरा, मूँगा, पद्मराग, पन्ना और नीलम ये नवरत्नो की कोटि मे आते है। चतुर्दश रत्नो (समुद्रमथन के परिणाम स्वरूप समुद्र से प्राप्त चतुर्दशरत्न, जिनका विवरण मगलाष्टक मे मिलता है) मे निम्नलिखित रत्न परिगणित किये जाते है। यथा –

लक्ष्मी कौस्तुभपरिजातकसुरा धन्वन्तरिश्चन्द्रमा गाव कामदुघा सुरेश्वरगजो रम्भादि देवाड्गना ।
अश्व सप्तमुखो विष हरिधनु शड्खोमृत चाम्बुधे रत्नानीह चतुर्दश प्रतिदिन कुर्यु सदा मड्गलम् ॥[5]

परन्तु उपर्युक्त चौदह रत्नो मे केवल कौस्तुभ मणि, को ही रत्नशास्त्र के अन्तर्गत माना जा सकता है। विष्णुपुराण मे भी वर्णित चौदहरत्नो[6] मे केवल मणि की ही इस प्रसग मे समीचीनता है।

---

1 The Ratnas are said to be either five, Nine or faurteen
सस्कृत अग्रेजी कोश - पी के गोडे एव सी जी कर्वे पृ० 1326, 1327
सस्कृत हिन्दी कोश- आप्टे- पृ० 846
सस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ - पृ०- 935

2 सस्कृत हिन्दी कोश- आप्टे- पृ० 563, एव सस्कृत अग्रेजी कोश पी के गोडे एव सी जी कर्वे, पृ 950

3 राजा विक्रमादित्य के दरबार के नौ कवियों को भी नवरत्न की सज्ञा दी गयी है पर इस प्रसग में उनका विशिष्ट विवरण असमीचीन होगा वे हैं - धन्वतरिक्षपणकामरसिहशकुवेतालभट्टघटकर्परकालिदासा। ख्यातो वराहमिहिरो नृपते सभाया रत्नानि वै वररुचिर्नवविक्रमस्य। -सस्कृत हिन्दी कोश आप्टे- पृष्ठ 514
– सस्कृत अग्रेजी कोश- गोडे एव कर्वे- पृ० 882

4 सस्कृत हिन्दी कोश - आप्टे- पृ० 514, सस्कृत, अग्रेजी, कोश गोडे एव कवे पृ० 882

5 सस्कृत हिन्दी कोश आप्टे- पृ० 369, संस्कृत अग्रेजी कोश- गोडे एव कर्वे, पृ० 694

6 चक्र रथो मणि खड्गश्चर्मरत्न च पचमम् केतुर्निधिश्च सप्तैव प्राणहीनानि चक्षते।
पत्तयश्वकलाभाश्चेति प्राणिन सप्तकीर्तय. चतुर्दशेति रत्नानि सर्वेषा चक्रवर्तिनाम्॥ –विष्णुपुराण 4/12/3 की टीका से उद्धृत

नैषधकार ने मिथिला नरेश के वर्णन मे "रत्नगिरि" नाम के पर्वत का उल्लेख किया है जिसमे विविध रत्नो का भण्डारण था, एव रत्नो के व्ययाभाव के कारण उसे रोहण पर्वत नाम भी दिया गया श्रीहर्ष ने मिथिला नरेश को कल्पवृक्ष एव रत्नाचल[1] (रोहण पर्वत) से अधिक दानी रूप मे चित्रित करने का प्रयास किया है। श्रीहर्ष ने रत्नो के उत्पत्ति सथान वैदूर्य पर्वत (रोहण पर्वत)[2] का भी उल्लेख किया है जो कि अत्यन्त कठोर था, क्योकि रत्न, तो प्रकृत्या कठोर होते है, तभी तो उन्हे तराश (काट, छाटकर) श्रेष्ठ आकार दिया जाता है। सुमेरु पर्वत (रोहण, रत्नाचल या वैदूर्य) पर्वत का विवरण कीकटनरेश के प्रसग मे नैषधीयचरित मे प्राप्त होता है,[3] जो मणियो की खान[4] था साथ ही मोतियो (मुक्ताफलो) का आगार था एव उसमे सन्निहित मणियॉ दिन प्रतिदिन वृद्धि को ही प्राप्त होती थीं । हाण्डिकी महोदय ने रोहण पर्वत की स्थिति का वर्णन करते हुए अभिहित किया कि "A legendary mountain located in ceylon and supposed to produce jewels at the rumbling of clouds for the benefit of all comers It is referred to as Ratnachal[5] रोहण पर्वत का उल्लेख वासवदत्ता,[6] उदयसुन्दरीकथा[7] बालरामायण,[8] उपमितिभवप्रपञ्चकथा[9] एव अभिनन्द के रामचरित[10] मे भी प्राप्त होता है।

श्रीहर्ष ने वैदूर्य पर्वत का विवरण देने के साथ-साथ इस तथ्य का भी निदर्शन किया है कि वेदूर्य मणियॉ मेघो के गर्जन (ध्वनि) पर और अधिक बढती जाती है! मलयाधिपति के वर्णन प्रसग मे इस तथ्य प्रतिपादन मिलता है। यथा–

अनेन राज्ञार्थिषु दुर्भगीकृतो भवन्घनध्वानजरत्नमेदुर ।
तथा विदूराद्रिरदूरता गमी यथा स गामी तव केलि शैलताम् ।।[11]

राजनकरत्नाकर विरचित हरविजयम्[12] एव यशस्तिलक[13] मे भी विदूर पर्वत का वर्णन मिलता है। काञ्चीनरेश के वर्णन प्रसग मे कौस्तुभ मणि[14] का विवरण देखने को मिलता है जो देखने मे मकडी द्वारा बनाये गये सफेद जाले की आकृति या (मकडी के जाले के बने श्वेतच्छत्र की आकृति समान) होती है।[15]

---

1 आस्ते निर्व्ययरत्नसपदुदयोदग्र कथ याचक–
श्रेजीवर्जनदुर्यशोनिबिडितब्रीडस्तु रत्नाचल ।। नै० 12/67 उत्तरार्द्ध

2 रोहण किमपि य कठिना – नै० 5/125 पूर्वार्द्ध

3 इद नृपप्रार्थिभिरुज्झितोऽर्थिभिर्मणिप्ररोहेण विवृध्य रोहण।
कियद्दिनैरम्बरमार्गरिष्यते मुधा मुनिर्विन्ध्यमरुन्ध भूधर।। नै० – 12/90

4 एषा गिरे सकलरत्नफलस्स्तरु स प्राग्दुग्धभूमिसुरभे खलु पञ्चशाख।
मुक्ताफल फलनसान्वयनाम तन्वन्नाभाति बिन्दुभिरिवच्छुरित पयोधे।। नै० 11/10

5 नैषधीयचरितम् - हाण्डिकी - पृ० 624

6 रोहणगिरिं सकलगुणरत्नसमूहस्य, वासवदत्ता पृ 58

7 निक्षिप्य भूमावुपर्युविष्टस्य कृपणस्य वित्तमिति रोहणस्य च मणिचक्रमनादेयमन्यथा भुजबलेनोन्मथ्य रोहणनगेन्द्र कि नाम न गृह्णामि रत्नसर्वस्वम्। – उदयसुन्दरीकथा- पृ० 56

8 जनश्च वाक्सुधासूतिर्मणिसूतिश्च रोहण।
नान्यत्र सिहलद्वीपान्मुक्तासूतिश्च सागर।। - बालरामायण 10/49

9 खनामि रोहण यावत् पातालतलमुच्चकै। उपमितिभवप्रपचकथा, पृ० 865

10 विभीष्ज्ञकण कोऽसौ सति रावणरोहणे। अभिनन्द, रामचरित 24/26

11 नै० 12/55

12 यस्योत्थिताभिनवरत्नशलाकयेव लक्ष्मीरूरःस्थल विदूरभुवा विदधे। हरविजय 16/25, इसमें आलाक की टिप्पणी है कि विदूरों वालवायशैल। देशविशेष इत्यन्ये।

13 रत्नाङ्कुरोमाञ्चकञ्चुकिनि विदूरभूधरे- यशस्तिलक, अध्याय-3

14 हित्वा दैत्यरिपोरूर स्वभवन शून्यत्वदोषास्फुटा - सीदन्मर्कटकीटकृत्रिम सितच्छत्री भवत्कौस्तुम्।
उज्झित्वा निजसद्म पद्ममपि तद्व्यक्तावनद्धीकृत लूतातन्तुभिरन्तरद्य भुजयो श्रीरस्य विश्राम्यति ।। नै० 12/37

15 तेषा सम्बन्धि यत् कृत्रिमसितच्छत्र सितच्छत्राकारं लूतातन्तुवितानमण्डल तथा भवन् तद्रूपीभवन् कौस्तुभ तदाख्यो मणि यस्मिन् कर्मणि तद्यथा भवति। नै० 12/37 मल्लिनाथ

अर्थात् यह मणि पारदर्शक नहीं होती, मृणाल तन्तु के अन्दर [illegible] इसकी बनावट होती है। काञ्चीनरेश के विवरण मे नैषधकार ने स्फटिक [illegible] जिसका उद्गम स्थान उन्होने कैलाश पर्वत माना है।[1] श्रेष्ट स्फटिक [illegible] जल जैसा पारदर्शी होता है। परन्तु जल के भीतर डूबने पर वह दिखाई नहीं [illegible][2] [illegible] वर्णन प्रसग मे श्रीहर्ष ने 'मोती' नामक रत्न का सकेत करते हुए उसके [illegible] की है साथ ही गजमुक्ताओ के होने का भी सकेत[3] देने के साथ साथ नल के गले [illegible] माला, जिसके मोती बडे-बडे स्वच्छतम गोलाकार रूप मे थे, एव [illegible] होती थी, का भी वर्णन नैषध मे प्राप्त होता है।[4]

नैषधकार ने 'माणिक्य' रत्न का विवरण दमयन्ती के हार (माणिक्यहार) वर्णन प्रसग मे करते हुए उसे अरुण (लाल) कान्ति वाला बताया,[5] साथ ही माणिक्य के चार भेदो प्रथम जातक, द्वितीय जातक सौगन्धिक एव कुरुविन्द मे,[6] दमयन्ती के दातो को (अत्यधिक पान खाने के कारण) कुरुविन्द माणिक्य रत्न की आभा वाला बताया।[7] जिसके यह प्रतीत होता है कि कुरुविन्द माणिक्य लाल रग का होता है। साथ ही नैषध मे यह विवरण भी मिलता है कि भीम ने माणिक्य निर्मित 'पीकदान' को राजा नल को दिया, जिसकी काति से यह नहीं प्रतीत होता था कि वह (पान, सुपारी की खीझ से) भरा है या नहीं।[8] श्रीहर्ष ने मणियो के बारे मे अभिहित किया कि वह दर्पण तुल्य होती है, उसमे अपना प्रतिबिम्ब भी देखा जा सकता है।[9] साथ ही श्रेष्ठ रत्न या मणि से किरणे स्फुरित होती है, या उसकी आभा की काति दूर-दूर तक छिटक जाती है, इस तथ्य का प्रतिपादन भी श्रीहर्ष ने नल के मुकुट मे लगे रत्नो के वर्णन[10] एव दमयन्ती[11] के

---

1 सिन्धोजैत्रिमय पवित्रमसृजन्तत्कीर्तिपूर्ताद्भुत यत्र स्नान्ति जगन्ति सन्ति कवय के वा न वाचयमा ।
यद्बिन्दुश्रियमिन्दुरञ्चति जल चाविश्य दृश्येतरो यस्यासौ जलदेवता स्फटिक भूर्जागर्ति यागेश्वर ।। नै० 12/38

2 यस्य जलञ्चाविश्य दृश्येतर सावर्ण्याददृश्य जल देवता
आप्य शरीर देवता विशेषश्चासौ स्फटिकाद्भवतीति स्फटिकभू
स्फटिकोद्भव , यागेश्वर सन् जागर्ति स्फटिकलिङ्गे यागेश्वर इति (शास्त्र) प्रसिद्धि। नै० 12/38 मल्लिनाथ
– ध्रुव विनीत स्मितपूर्वनाग्युवा किमप्यपृच्छन्न विलोकयन्मुखम् ।
स्थिता पुर स्फटिककुटि्मे वधू तदङ्घ्रियुग्भावनिमध्यबद्धदृक ।। नै० 16/67

3 नै० 12/66 एव मुक्ताफलफेनिलाङ्के- नै० 7/76

4 श्रिताऽस्य कण्ठ गरूविप्रवन्दनाद् विनम्रमौलेश्चिबुकाग्रचुम्बिनी ।
आवाय मुक्तावलिरास्यचन्द्रम स्रवत्सुधातुन्दिल विन्दुवृन्दताम् ।। नै० 15/66

5 गुच्छालयस्वच्छमोदविन्दु वृन्दाभमुक्ताफलफेनिलाङ्के ।
माणिक्य हारस्य विदर्भसुभ्रूपयोधरे रोहति रोहितश्री ।। नै० 7/76
– हारभेदा यष्टिभेदाद्गुच्छार्धगोस्तना , "इन्द्रायुध शक्र धनुस्तदेव
ऋजुरोहितम्" रोहितो लोहितो रक्त इत्यमर ।। नै० 7/76 की टिप्पणी

6 माणिक्याना जाति चतुष्टयम्-प्रथम जातक, द्वितीय जातक, सौगन्धिक एव कुरुविन्दा नै० 11/48 मे ईशानदेव की टिप्पणी

7 एन स्वबाहुबहुवार निवारितारिं। चित्ते कुरुष्व कुरुविन्दसकान्तिदन्ति।। नै० 11/48 उत्तरार्द्ध

8 दिवस्पतेरादरदर्शिनादरादढौकि यस्त प्रति विश्वकर्मणा ।
तमेकमाणिक्यमय महोन्नत पतद्ग्रह ग्राहितवान्नलेन स ।। नै० 16/27
नलेन ताम्बूलविलासिनोज्झितैर्मुखस्य य पूगकणैर्भृतो न वा ।
इति व्यवेचि स्वमयूखमण्डलादुदञ्चदुच्चारुण चारुणश्चिरात् ।। नै० 16/28

9 मणीसनाभौ मुकुरस्य मण्डले बभौ निजास्यप्रतिबिम्बदर्शिनी ।
विधोरदूर स्वमुख विधाय सा निरूपयन्तीव विशेषमेतयो ।। नै० 14/50

10 अनर्घरत्नौघमयेन मण्डितो रराज राजा मुकुटेन मूर्द्धनि ।
वनीपकाना सहि कल्पभूरुहस्ततो विमुञ्चन्निव मञ्जुमञ्जरी ।। नै० 15 /60
नलस्य भाले मणिवीरपटिटकानिभेन लग्न परिधिर्विधोर्बभौ ।
तदा शशाङ्काधिकरूपता गते तदानने मातुमशक्नुवन्निव ।। नै० 15/61

11 नै० 15/52, 82, 16/34, 100

हार विवरण सन्दर्भ मे किया है। हीरा एव माणिक्य रत्न को क्रमश श्वेत एव अरुण वर्ण का बताते हुए श्रीहर्ष ने नल की भुजाओ मे सुशोभित अगद (हीरे एव माणिक्य से जटित) नामक आभूषण का उल्लेख किया।[1] श्रेष्ठ हीरा षट्कोण होता है।[2] हीरा एव माणिक्य भी दर्पण तुल्य स्वच्छ एव पारदर्शी होते है, क्योकि नैषधकार के वरणानसार रूपदर्शन के लिए नल के सेवको का दर्पण लाना व्यर्थ ही साबित हुआ, क्योकि नल ने आभूषणो मे जटित रत्नो मे ही अपना स्वरूप प्रतिबिम्ब देख लिया। पद्मराग मणि एव समस्त रक्तवर्णा मणियो का उत्पत्ति स्थान उदयगिरि (उदयाचल) पर्वत है, इस तथ्य का निर्देश श्रीहर्ष ने नैषध महाकाव्य मे किया है।[3]

सम्पूर्ण कामनाओ को पूर्ण करने वाली चिन्तामणियो की माला को भीम (शिवजी से प्राप्त) ने अपने दामाद नल को दहेज रूप मे दी। नल को दहेज मे मिले सम्पूर्ण वस्तुओ यथा, रत्न, आभूषण, वस्त्र आदि का प्रतिबिम्ब उस चिन्तामणि हार पर पड रहा था मानो वह अभिलाषा पूरक हार याचको देने योग्य सारी वस्तुओ को अपने अन्त मे धारण किये हुए सुशोभित था।[4] स्पष्ट है कि चिन्तामणि भी पारदर्शी होती है। पन्ना (हरिन्मणि) का विवरण भी नैषध मे प्राप्त होता है। मय से प्राप्त (हरिन्मणि) पन्ना निर्मित थाल को भीम ने राजा नल को समर्पित किया, जो कि विषदोषनाशक था। श्रीहर्ष का कथन ह कि इससे निकलने वाली हरितकान्ति का ही यह परिणाम है कि हरीकाति को सदैव पख मे धारण करने वाले मयूरो पर सर्प विष का असर नहीं होता।[5] स्पष्ट है कि पन्ना रत्न भी पारदर्शी होने के साथ-साथ दूर-दूर तक अपनी आभा बिखेरने वाला होता है। इसकी पुष्टि बारात भोजन वर्णन मे भी श्रीहर्ष ने पन्ना निर्मित पात्रो मे भोजन परोसने का विवरण समुपस्थापित करके किया है जिसमे बरातियो को यह भ्रान्ति हुई कि (हरी किरणो की आभा उद्दीप्त होने के कारण) या तो केवल हरे पत्ते (थाल मे) रखे हुए है, या वे केवल साग से भरे बर्तन है[6]। नैषधकार द्वारा वर्णित दमयन्ती के शरीर वर्णन प्रसग मे पुखराज (पुष्पराज, पुष्पराग या ~~[illegible]~~) रत्न का सकेत भी प्राप्त होता है। श्रीहर्ष अभिहित करते है कि भीमकुमारी के शरीर पर पीत, धवल, अरुण तथा नील कान्ति वाली मणियो (पुष्पराज, स्फटिक या मोती, माणिक्य, नीलम) की किरणो की आभा पडने के कारण उसके गोरोचन, चन्दन, कुकुम, तथा कस्तूरी के लेप व्यर्थ थे।[7]

---

1 रराज दोर्मण्डनमण्डलीजुषो स वज्रमाणिक्यसितारुणत्वि ।
मिषेण वर्षन् दशदिगनुखोन्मुखौ यश प्रतापाववनीजयार्जितौ।। नै० 15/69
धने समस्तापघ्नावलम्बिना विभूषणाना मणिमण्डले नल ।
स्वरूपरेखामवलोक्य निष्फलीचकार सेवाचणदर्पणार्पणम् ।। नै० 15/70

2 नेपथ्येष्वलकारेषुहीरा षट्कोणमयस्तेषा द्युतिरेव। नै० 10/94 नारायण

3 उदयशिखरिप्रस्थावस्थायिनी खनिरक्षया शिशुतरमहोमाणिक्यानामहर्मणिमण्डली ।
रजनिदृषद ध्वान्तश्यामा विधूय विधायिका न खलु कतमेनेय जाने जनेन विमुद्रिता ।। नै० 19/42 एव 15/92

4 सखा यदस्मै किल भीमसञ्ज्ञया स यक्षसख्याधिगत ददौ भव ।
ददौ तदेष श्वसुर सुराचित नलाय चिन्तामणिदाम कामदम् ।। नै० 16/16
बहोर्दुरापस्य वराय यस्तुनश्चित्तस्य दातु प्रतिबिम्बकैतवात् ।
बभौतरामन्तरवस्थित दधद्यदर्थमभ्यर्थितदेयमर्थिने ।। नै० 16/17

5 मयेन भीम भगवन्तमर्चता नृपेऽपि पूजा प्रभुनाम्नि या कृता ।
अदत्त भीमोऽपि स नैषधाय ता हरिन्मणेर्भोजनभाजन महत् ।। नै० 16/29
छदे सदैवच्छविमस्य विभ्रता न केकिना सर्पविष विसर्पति ।
न नीलकण्ठत्वमधास्यदत्र चेत् स कालकूट भगवानभोक्ष्यत ।। नै० 16/30

6 हरिन्मणेर्भोजनभाजनेऽर्पिते गता प्रकोपा किल वारयात्रिका ।
भृत न शाकै प्रवितीर्णमस्ति वस्त्विषेदमेघ हरितेतिबोधिता ।। नै० 16/66

7 पीतावदातारुणनीलभासा देहोपदेहात्किरणैर्मणीनाम् ।
गोरोचनाचन्दनकुङ्कुमैणनाभीविलेपान्पुनरुक्तयन्तीम् ।। नै० 10/98

गारुत्ममणि (अरुणवर्णा) मणि का सकेत भी श्रीहर्ष ने उन्नीसवे सर्ग मे चारणो द्वारा नल की निद्रा त्याग वर्णन प्रसग मे किया है।[1] इन्द्रनीलमणि (मसार) या नीलम रत्न का वर्णन भी विवाहोपरान्त नल के अपने राजधानी वापस लौटने के प्रसग मे महल मे लगी हुई वन्दनवारो के वर्णन मे नैषधकार ने समुपस्थापित किया है।[2] हारावली मे विवरण मिलता है कि "नीलमणिर्मसार स्यात्"। मूगा (प्रवालमणि) का उल्लेख भी पृथु राजा के वर्णन मे मिलता है, जहॉ नैषधकार का कथन है कि पृथु राजा के हाथ मे ससार को वश मे करने वाली प्रवालमणि या (विद्रुम) मूगा विद्यमान था।[3] इसकी कान्ति नूतन किसलय के समान अरुणवर्णा होती है।[4] नल के राजमहल के पूजालय की भूमि के विवरण प्रसङ्ग मे श्रीहर्ष ने उसे मणिजटित बताते हुए चन्द्रकान्त (धवलवर्णा) मणि एव नीलममणि का वर्णन भी किया है।[5] नल के मुकुट पूजालय एव राजप्रासाद तथा वेदर्भी के राजप्रासाद वर्णन मे श्रीहर्ष ने विभिन्न रत्नो, (मणियो) के होने की ससूचना व्यक्त की है, जिसमे माणिक्य, स्फटिक, कौस्तुभ, पद्मराग, एव वैजयन्ती मणि का विवरण मिलता है।[6] कैलास पर्वत का स्फटिक मणि के भण्डार,[7] रूप मे तथा शशाक नामक नीलमणि[8] (सूर्यकान्तमणि) का वर्णन करने के साथ-साथ उन्होने समुद्र (क्षीरसागर) की रत्न सागर[9] रूप मे विवेचना नैषध महाकाव्य मे की है। कुशद्वीपाधिपति के वर्णन मे समुद्र मथन पश्चात निकले चौदह[10] रत्नो मे से कुछ रत्नो का वर्णन नैषध मे प्राप्त होता है, परन्तु यहॉ उनके वर्णन की प्रासगिकता नहीं है, अतएव वह विवेचन का विषय नहीं बनाये जा रहे है।

नैषधकार ने रत्नो का विवरण देने के साथ-साथ उनके दोषो के सकेत भी यथास्थान गिनाये है, एव यह बताया है कि रत्न, असली एव (कृत्रिम) नकली रूप मे भी प्राप्त होते हैं, तथा (कृत्रिम) नकली रत्न अत्यधिक चमकते है। दमयन्ती के भाई दम ने बारातियो को उपहार स्वरूप रत्न देने के लिए (उपहास के लिए) एक बाराती के सामने एक शुद्ध एव सुन्दर रत्न तथा दूसरा असली रत्न से भी सुन्दरतर कृत्रिम रत्न रखकर कहा कि, आप इन दोनो मे से एक स्वय लीजिए। जब बाराती अधिक चमकने वाला कृत्रिम रत्न लेने लगा, तब राजकुमार दम ने हसते हुए उस बाराती को दोनो रत्न दे दिये।[11] आचार्य वाग्भट ने

---

1 रक्तवर्णगरुणकान्ते पर्वतसमन्तात् स्थितेरिति भाव।नै० 19/16 में मल्लिनाथ।

2 मसारमालावलितोरणा पुर निजादि्वयोगादिव लम्बितालकाम् ।
ददर्श पश्यामिव नैषध प्रियामथाश्रितोद्ग्रीविकमुन्नतैगृहै ।। नै० 16/122
– मसारमालावलय इन्द्रनीलमालाश्रेण्य तोरणेषु बहिर्द्वारेषु यस्यास्तादृश्याम्
इन्द्रनीलमणिविभूषितबहिर्द्वाशाम्। नै० 16/122 मल्लिनाथ
– मसाराणा नीलत्वादलकत्वम् – नारायण नै० 16/122

3 बालेऽधराधरितनैकविध प्रवाले!, पाणौ जगद्विजयकार्मणमस्य पश्य ।
ज्याघातजेन रिपुराजकधूमकेतुतारायमाणमुपरज्य मणि किणेन ।। नै० 11/104

4 बहुनखरता येषामग्रे खलुप्रतिभासते कमलसुहृदस्तेऽमी भानो प्रवालरुच करा। नै० 19/53 पूर्वार्द्ध

5 यत्र कान्तकरपीडितनीलग्रावरश्मिचिकुरासु विरेजु ।
गातृमूर्धविधुतेरनु बिम्बात्कुट्टिमाक्षितिषु कुट्टिमितानि ।। नै० 21/30

6 नै० 18/3,7,8,11,14,22,50,54,85,86,87, 19/13,62,65 21/1,19,30 43 44

7 सन्ध्यावशेषे धृतताण्डवस्य चण्डीपते पत्पतनाभिघातात् ।
कैलाशशैलस्फटिकाश्मखण्डैरमण्डि पश्योत्पतयालुभिर्द्यौ ।। नै० 22/15

8 सप्रीते सप्रीतेरजनि रजनीश परिषदा, परीतस्ताराणा दिनमणिमणिग्रावमणिक ।
प्रिये! पश्योत्प्रेक्षाकविभिरभिधानाय सुशक , सुधामभ्युद्धर्तुं धृतशशकनीलाश्मचषक ।। नै० 22/144

9 अर्धनि स्वमणिमाल्यविमिश्रै स्मेरजातिमयदामसहस्रै ।
त पिधाय विदधे बहुरत्नक्षीरनिधिमग्नमिवैष ।। नै० 21/47

10 नै० 11/60 63 एव उच्चैश्रवा का वर्णन 16/25, 26 ऐरावत का वर्णन 16/31 33

11 अमीषु तथ्यानृतरत्नजातयोर्वराट् चारुनितान्तचारुणो ।
स्वय गृहाणैकमिहेत्युदीर्य तद्द्वय ददौ शेषजिघृक्षवे हसन् ।। नै० 16/111
चारुनितान्तचारुणो यथासङ्ख्य रम्यातिरमणीययो। इह अनयो तथ्यानृतरत्नजातयो सत्यासत्यरत्नोघयो. मध्ये जात जात्योघ जन्मसु इति विश्व । नै० 16/111 मल्लिनाथ

रत्नो के पाच साधारण दोष बताये है वे है राग, भास, विन्दु, रेखा तथा [illegible][1] इस [illegible] श्लेष द्वारा स्वयवर सभा मे अलकृत दमयन्ती के वर्णन मे नैषधकार ने उपस्थापित किया है [illegible] है कि दमयन्ती के वस्त्रो की चमक, चिकनाई, कृत्रिम जल, तथा लेप[2] इन तीनो के बिना ही निर्मल [illegible] की काति के समान शुद्ध थी। उसकी सखियो का समूह उसके वस्त्रो पर लगे हुए हीरा की निर्मल कांति मे चमकते प्रतिबिम्बो के समान था।[3] अर्थात् चिकनाई (स्निग्धत्व), मायाजल (कृत्रिमजल), एव लेप से रहित रत्नो की सुन्दर निर्मल किरणे ही दमयन्ती के वस्त्रो को शोभावान, बना रही थीं। उपर्युक्त रत्न सम्बन्धी नैषधकार के तथ्यो की मीमासा से यह आकलन किया जा सकता है कि रत्नशास्त्र की जानकारी उन्हें थी वह रत्नशास्त्र के पूर्ण ज्ञाता तो नहीं माने जा सकते, क्योकि उन्होने रत्न, किस आकृति एव मात्रा [illegible], मे श्रेष्ठ या सामान्य होते है, तथा विविध रत्नो के अलग-अलग क्या गुण, दोष है? इस तथ्य का प्रतिपादन नेषध मे नहीं किया है। रत्न सम्बन्धी विशेष विवरण अग्निपुराण के स्थल-स्थल वृहत्सहिता इत्यादि ज्योतिशास्त्रीय ग्रथो मे देखा जा सकता है।

नैषधकार के साथ साथ सस्कृत साहित्य के अन्य विद्वान् महाकवियों[4] ने भी रत्नो का अपने विवेचन का विषय बनाया है, परन्तु उन सब मे श्रीहर्ष कालिदास से ही ज्यादा सहमत दिखते है। पूर्व विवरण मे श्रीहर्ष ने भी इस तथ्य का प्रतिपादन किया है कि 'रत्नाकर' समुद्र है, जब कि सभी रत्नो का आवास स्थान हिमालय पर्वत है। इलाहाबाद सग्रहालय द्वारा आयोजित 'हिमालय महिमा' नामक सगोष्ठी मे प्रो सुरेश चन्द्र पाण्डे जी की अमृतवाणी उनके अन्तस मे सन्निहित एक यथार्थ 'काव्यमर्मरस' की पहचान करा ही देती है, जब वह कालिदास के कुमारसम्भव का सन्दर्भ रखते हुए कि "अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिम न सौभाग्य विलोपिजातम्[5] (अर्थात्) अनन्तरत्नो की खान, तो हिमालय है, लेकिन फिर भी रत्नाकर समुद्र को ही कहते हे, आखिर क्यो? शायद इसलिए कि "यश पुण्येरवाप्यते" अर्थात् यश तो पुण्य के कारण ही मिलता है। जाहिर है कि नैषधकार को भी यही तथ्य अभीष्ट रहा होगा, तभी उन्होने समुद्र को रत्नाकर करते हुए भी सम्पूर्ण रत्नो का उत्पत्ति स्थान हिमालय को माना। उपरोक्त रत्नसम्बन्धी मीमासा से यह ध्वनित होता है कि बारहवीं शताब्दी मे भी रत्नो की जानकारी जनमानस में थी, चाहे वह आभूषण रूप मे अपनाये जाते रहे हो या ज्योतिश्शास्त्रीय परिप्रेक्ष्य मे। वर्तमान मे भी रत्नो की प्रासगिकता की पुष्टि

---

1 रागस्त्रासश्च बिन्दुश्च रेखा च जगलर्भता ।
सर्वरत्नेष्वमी पच दोषा साधारणमता ॥ नै० 10/94 मल्लिनाथी व्याख्या नें बाग्भट का कथन।

2 मायाजल जलगर्भताख्यो दोष , लेपो रागाख्यो दोष । नै० 10/94 में मल्लि0 एव नारायण का कथन।

3 स्निग्धत्वमायाजललेपलोपसयत्नरत्नाशुमृजाशुकाभाम् ।
नेपथ्यहीरद्युतिवारिवर्तिस्वच्छायसच्छायनिजालिजालाम् ॥ नै० 10/94

4 कि रत्नमच्छा मति। भामिनीविलास, 1/86
- न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्। कुमारसम्भव 5/45
- कन्या रत्नमयोनिजन्म भवतामास्ते वय चार्थिन महावीरचरित 1/30
  अग्रसेरी भवतु काञ्चनचक्ररत्नम् नागानद 5/37
- श्रेणीवर्जनदुर्यशोनिबिडब्रीडस्तु रत्नाचल नै० - 12/67
  रत्नेषु लुप्तेषु बहुष्वमर्त्यैरद्यापि रत्नाकर एव सिन्धु विक्रमोर्वशीमय्॥ 1/12
- रत्नाकर वीक्ष्य - रघुवश 13/1
- अर्चिस्तुगानभिमुखमपि प्राप्य रत्नप्रदीपान् - मेघदूत - 70
- कटितट निविष्टरत्नरख दशकुमार चरित 2/1
- रत्नपारायण नाम्ना लकेति मम मैथिलि - भटिकाव्य - 5/89
- अह खलु रत्नषष्ठीमुपोषितासम्। मृच्छकटिक तृतीय अक
- न मामवति सद्वीपा रत्सूरपि मेदिनी - रघुवश 1/65

5 अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिम न सौभाग्यविलोपि जातम् ।
एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दो किरणेष्विवाङ्क ॥ कुमार0 1/3

नर नारियो द्वारा इनके धारण करने से होती है, एव भविष्य मे भी रहेगी, क्योकि प्रत्येक मानव [illegible] चाहे अपने उद्देश्य प्राप्ति के लिए रत्न को धारण करता हो, या शारीरिक सौन्दर्य की वृद्धि [illegible] कारण कुछ भी हो, परन्तु लौकिक जीवन मे व्यवहरित नर नारियो द्वारा रत्नो के धारण करने का प्रचलन रत्नो की समीचीनता की भी पुष्टि कर ही देता है।

शकुन शास्त्र

मानवजीवनदर्शन का यदि यथार्थ मूल्याकन किया जाय, तो सारत यही समझ मे आता है कि मानवजीवन अनबूझ पहेली सदृश है, एव मनुष्य का हृदय तो अभिलाषाओ तथा विचारो का क्रीडास्थल और कामनाओ एव जिजीविषाओ का आवास मालूम होता है। ससार इन्हीं इच्छाओ और आशाओ के पल्लवन एव परिवर्धन का दूसरा नाम है, जिसने इन्हे नैराश्यनद मे प्रवाहित कर दिया, उसे सासारिक जन तो नहीं ही समझा जा सकता है क्योकि मनुष्य की उद्दाम जिजीविषाओ का सतत् प्रज्जवन ही उसे अमृत रस सदृश आन्दातिरेक से आप्लावित किये रहता है। शकुन तो मानव के गवेषणात्मक विचार ही कहे जा सकते है, और वे भी मानवमस्तिष्क मे अपनी गहरी जडे जमाये हुए है। रामायण महाभारत[1], एव याज्ञवल्क्यस्मृति[2], अग्निपुराण[3] तथा कवियो यथा महाकवि कालीदास[4], माघ[5] एव श्रीहर्ष के ग्रथो मे इनका वर्णन मिलने के साथ-साथ वर्तमान मे भी इनकी प्रासङ्गिकता विद्यमान होने से इनकी समीचीनता की पुष्टि होती है। वैसे शकुनशास्त्र को ज्योतिष के सहितास्कन्ध एक अग रूप मे विद्वानो द्वारा मान्यता प्रदान की गयी है फिर भी यहाँ अलग से उसका विवेचन वर्तमान मे उसकी अत्यधिक प्रसिद्धि के कारण किया जा रहा है।

विद्वानों ने शकुन शब्द की व्याख्या करते हुए कहा "शक्नोति शुभाशुभ विज्ञातुम् अनेन"। शकुन शब्द की निष्पत्ति शक्+उनन्[6] के योग से होती है। शकुन वे शुभसूचक (या अशुभसूचक भी) चिह्न या लक्षण है, जो किसी कार्य के सम्बन्ध मे शुभ या अशुभ सूचना देते है। स्पष्ट है कि शकुनशास्त्र उसे कहा जाता है, जिसमे शकुन सम्बन्धी विचारो के विश्लेषण दिये गये हो। इसे The "Science of Omens" भी कहाजाता है। विश्वकोष मे वर्णन मिलता है कि "शकुन तु शुभाशसा निर्मिते शकुन पुमान्" अग्नि पुराण मे छै प्रकार के शकुनो का वर्णन मिलता है। यथा–

> तिष्ठतो गमने प्रश्ने पुरुषस्य शुभाशुभम् । निवेदयन्ति शकुना देशस्य नगरस्य च ।।
> सर्व पापफलो दीप्तो निर्दिष्टो देवचिन्तकै । शान्त शुभफलेश्चैव देवज्ञै समुदाहृत ।।
> षट्प्रकारा विनिर्दिष्टा शकुनानाञ्च दीप्तय । वेलादिग्देशकररुतजातिविभेदत ।।

---

1 केनेष्ट्टशी जातु पराहि दृष्टा वागुच्यमाना शकुनेन सस्कृता। महाभारत - 3/117/11

2 शकुनोच्छिष्टम् - याज्ञ0 1/168

3 अग्नि पुराण - 230-232 अध्याय (शकुनानि)

4 रघुवश - 2/10

5 अशकुनेन स्खलित किलेतरोऽपि - शिशु 8/83

6 शकेरुनोन्तोन्त्युनय - उन, उन्त, उन्ति, उनि, एते चत्वार स्यु। शकुन , शकुन्त शकुन्ति , शकुनि –उणादि सूत्र 3/49, (4532) सिद्धान्त कौमुदी तत्त्वबोधिनी, पृ 618

पूर्वा पूर्वा च विज्ञेया सा तेषा बलवत्तरा । दिवाचरो रात्रिचरश्चा रात्रौ दिवाचर ।
क्रूरेषु दीप्ता विज्ञेया ऋक्षलग्नग्रहादिषु । धूमिता सा तु विज्ञेया यद्गमिष्यति भास्कर ॥[1]

नैषधकार ने शकुन का विवरण इन्द्र द्वारा दमयन्ती वरण हेतु नल को अपना दूत बनाने के सदर्भ मे देते हुए अभिहित किया कि हे नल! भरत (दुष्यन्त पुत्र), अर्जुन (सहस्रार्जुन), और वैन्य (राजा पृथु) के समान तुम्हारा नाम स्मरण देशान्तर जाने वाले को अभीष्ट फल देता है, यदि तुम अपने जाने की निष्फलता मे शङ्का करते हो, तो सब शकुन आदि मगल निष्फल है।[2] यहॉ इन्द्र के कथन का तात्पर्य यह था कि यात्रा करते समय भरत आदि के समान तुम्हारे नाम का स्मरण करने से यात्रा करने वाले व्यक्ति का मनोरथ पूर्ण हो जाता है, अत साक्षात् मगलस्वरूप तुम्हारी ही यात्रा यदि निष्फल हो जायेगी, तब तो अन्य लोगो के लिये उक्त मगलवचन भी निष्फल हो जायेगा, अत तुम्हे हम लोगो के दूत कर्म करने मे निष्फल होने की शङ्का कदापि नहीं करनी चाहिए, क्योकि कहा भी गया है कि जो मनुष्य प्रस्थान के समय, भरत, अर्जुन, पृथु एव एव नल का स्मरण करता है, उसकी कार्य सिद्धि भी होती है एव सकुशल घर भी वापस लौटता है।[3] राजा नल ने जब हस को दूत बनाकर कुण्डिनपुर भेजा तो हस को भी मार्ग मे शुभ सूचक शकुन रूप जलपूर्ण कलश दिखाई पडा[4] जो पथिको से प्रार्थना की गयी सिद्धि की सूचना जैसी दे रहा था। हस ने कुछ दूर और आगे बढने पर आम के पेड मे लगे हुए फलो को देखा[5], तदनन्तर हस ने कुछ और दूर आगे बढने पर आकाश के करिशावक (हाथी के बच्चे) रूप मेघो से युक्त बहुत से झाडियो वाले तथा शाखाओ से छिपे (ढके) हुए व्याघ्र तथा सर्पो को छिपाये हुए एक पर्वत को देखा।[6] ध्यातव्य है कि यहॉ नैषधकार करिशावको को शुभसूचक होने से मेघरूप करिशावको का दर्शन तो हस को करवाया, जब कि व्याघ्र एव सर्पो का देखना यात्रा मे अशुभ सूचक होने से उनको शाखाओ से ढके रहने का वर्णन किया है। मल्लिनाथ का भी कथन है "नग पर्वत ददर्श पूर्णकुम्भादिदर्शन पान्थक्षेमकरमिति निमित्तज्ञा "[7]

शकुनशास्त्री शरीर के अड्गो के स्पन्दन से भी शुभ अशुभ फल की विवेचना कर लेते है। भारतीय सस्कृति मे पुरुषो के दाहिने अड्ग एव स्त्रियों के बाये अड्ग स्पन्दन (फडकने) को शुभ एव इसके विपरीत फडकने को अशुभ माना जाता है। यात्रा या किसी कार्य की फलसिद्धि के विचार के मन मे आने पर यदि पुरुषो का दाहिना अड्ग एव स्त्रियो का बायॉ अड्ग स्पन्दन करे, तो कर्त्ता यह समझ लेता है कि शकुन शुभ हो रहे है। अत कार्य सिद्धि अवश्य होगी। इस तथ्य का नैषधकार ने भी प्रतिपादन किया है। नल जब देवदूत बनकर कुण्डिनपुरी मे प्रवेश कर रहे थे तब उनकी रोमराजि पुलकित हो रही थी एव दक्षिण नेत्र फडक (स्पन्दन कर) रहे थे। यथा -

---

1 अग्निपुराण - 231/1 5

2 प्रवसते भरतार्जुनवैन्यवत्स्मृतिधृतोऽपि नल! त्वमभीष्टद ।
स्वगमनाफलता यदि शङ्कसे तदफल निखिल खलु मङ्गलम् ॥ नै० 5/134

3 वैन्य पृथु हैहयमर्जुनञ्च शाकुन्तलेय भरत नल च ।
एतान्नृपान्य स्मरति प्रयाणे तस्यार्थसिद्धि पुनरागमश्च ॥ नै० 4/134 में मल्लिनाथ की टिप्पणी में उद्धृत्

4 प्रथम पथि लोचनातिथि पथिकप्रार्थितसिद्धिशसिनम् ।
कलश जलसभृत पुर कलहस कलयाम्बभूव स ॥ नै० 2/65

5 अवलम्ब्य दिदृक्षाऽम्बरे क्षणमाश्चर्यरसालस गतम् ।
सविलासवनेऽवनीभृत फलमैक्षिष्ट रसालसगतम् ॥ नै० 2/66

6 नभस कलभैरुपासित जलदैर्भूरितरक्षुपन्नगम् ।
सददर्श पतङ्गपुङ्गवो विटपच्छन्नतरक्षुपन्नगम् ॥ नै० 2/67

7 नै० 2/67 में मल्लिनाथ

स्विद्यत्प्रमोदोश्रुलवेन वाम रोमाञ्चभृत्पक्ष्मभिरस्य चक्षु
अन्यत्पुन कम्प्रमपि स्फुरत्वात्तस्या पुर प्राप नवोपभोगम् ॥[1]

नारायण ने दक्षिण नेत्र के स्पन्दन के बारे मे अभिहित किया कि "चलत्त्व नयनस्य यद्यपि स्वभावतो विद्यते तथापि प्रियाप्राप्तिसूचकत्वादित्यस्य सार्थक्यम्।। अन्यस्यापिस्वामिनो नवोपभोगे स्पन्दादम सात्विका भावा प्रभवन्ति। दक्षिणनयनस्फरण भैमीलाभसूचक शकुन कथितम्' ध्यातव्य है कि यहाँ श्रीहर्ष महाकवि कालिदास के अभिज्ञान शाकुनतलम् मे वर्णित तथ्य से प्रभावित दिखते है[2] एव यहाँ नल तो दूत बन कर गये थे, परन्तु फिर भी नैषधकार ने चमत्कार पूर्ण वर्णन से उनके भविष्य मे श्रेष्ठ पत्नी प्राप्ति का विवरण समुपस्थापित किया हे। स्वयवर प्रसड्ग मे, राजा भीम के सामने राजाओ का परिचय दमयती स करवाने की समस्या आयी, तब राजा भीम ने एकाग्रचित से अपने कुल देवता भगवान चक्रपाणि का स्मरण किया[3], अवधेय है कि आज भी भारतीय जन मे यात्रा एव कार्यसिद्धि गमन या समय मे कुलदेवता या भगवन्नाम लेने की परम्परा चली आ रही है। यह तथ्य भी शकुनोपादान हे।[4] भीम के कुलदेवता के ध्यानानतर ही सरस्वती उस स्वयवर सभा मे आयीं, उनके आने पर, मालूम पडने वाले शकुन स्वर आदि के द्वारा उसे अभीष्ट तथा प्रमाणिक जान कर लोकपालो के समान राजा भीम ने उनकी उचित पूजा की।[5] यह तथ्य भी अनुभवगम्य है कि किसी व्यक्ति से मिलते समय यदि शुभ शकुन हो, तो वह मिलने वाला मनुष्य या जन भी शुभकारक होता है। नारायण का कथन है कि शकुन स्वरो यथा काकस्वर के साथ-साथ पुरुष की दाहिनी नासिका एव दाहिनी ऑख का स्पन्दन भी शुभसूचक होता है।[6]

शकुविद् स्वप्नादि दर्शन[7] के माध्यम से भी शुभ एव अशुभ शकुन से फल सिद्धि की व्याख्या सम्पन्न करते है। श्रीहर्ष का कथन है कि स्वप्न पहले नहीं देखे गये पदार्थ को भी पूर्वजन्म की भावना से मनुष्य को दिखला देता है। दमयन्ती भी नल को स्वप्न मे पति रूप मे देखती थी एव बाद मे नल दमयन्ती को पतिरूप मे प्राप्त भी हुए।[8] स्वप्न की व्याख्या करते हुए नारायण कहते हैं "सुप्ति स्वप्न कदाचिददृष्टमप्यर्थ वस्तु अदृष्टवैभवाद्धर्माधर्मसामर्थ्याज्जनदर्शनातिथि जनदर्शनगोचर बकरोति। यदृष्ट दृश्यते स्वप्नेऽननुभूत कदापि न" इति न्यायेन जन्मान्तरस्थानान्तरानुभूत समुत्पन्नसस्कारमस्मिञ्जन्मन्यदृष्टमप्यर्थ धर्माधर्मावेव दर्शयति इति भाव।[9] स्वप्न एव स्वप्नफल की व्याख्या करते हुए मल्लिनाथ कहते हैं "तथाहि

---

1 नै० 6/6

2 (प्रविश्य, निमित्त सूचयन्)
शान्तमिदमाश्रमपद स्फुरति च बाहु कुत फलमिहास्य अथवा भवितव्याना द्वाराणि भवन्ति सर्वत्रा।। – अभि शा 1/16

3 श्रद्धालुसड्कल्पिताकल्पनाया कल्पद्रुमस्याथ रथाड्गपाणे ।
तदाकुलोऽसौ कुलदेवतस्य स्मृति ततान क्षणमेकतान ।। 10/61

4 शकुनादौ शुभेयायाज्जयाय हरिमास्मरन् । - अग्निपुराण 233/11 पूर्वार्द्ध

5 तत्कालवेद्यै शकुनस्वराद्यैराप्तामवाप्ता नृपति प्रतीत्य ।
ता लोकपालैकधुरीण एष तस्यै सपर्यामुचिता दिदेश ।। नै० 10/91

6 तत्कालवेद्यै तदागमज्ञेयै शकुनस्वराद्यै काकस्वरादिशकुननासिकास्वरदक्षिणचक्षु स्पन्दाद्यै कृत्धा ता देवीमाप्तामभीष्टा प्राप्ता प्रतीत्य ज्ञात्वा, आप्तागमनसमये भुजस्पन्दादयो भवन्ति। नै० 10/91 नारायण की टिप्पणी

7 अग्निपुराण - 229 अध्याय (स्वप्नाध्याय)

8 मनोरथेन स्वपतीकृत नल निशि क्वसा न स्वपती स्म पश्यति ।
अदृष्टमप्यर्थमदृष्टवैभवात्करोति सुप्तिर्जनदर्शनातिथिम् ।। नै० 1/39
निभीललितादक्षियुगाच्च निद्रया हृदोऽपि बाह्येन्द्रियमौनमुद्रितात् ।
अदर्शि सगोप्य कदाप्यवीक्षितो रहस्यमस्या स महन्महीपति ।। नै० 1/40

9 नै० 5/39 नारायण का मत

सुप्ति स्वप्न अदृष्टम् अत्यन्ताननुभूतमप्यर्थ दृष्टमिति भाव। अदृष्टवैभवात् प्राक्तनभाग्यबलात् [illegible] लोकदृष्टिगोचर करोति, तदत्रापि निमित्तादृष्टात्ताट्टक् स्वप्नज्ञानमुत्पन्न[illegible] निद्रया प्रय[illegible] निमीलितान्नुकुलितादुपरतव्यापारादित्यर्थ, अक्षियुगाच्च तथा बाहेन्द्रियाणा चक्षुरादीना मौनेन [illegible] मुद्रितात्प्रतिष्टब्धात्। मनसो बहिरस्वातन्त्र्यादिति भाव। हृदो हृदयादपि सङ्गोप्य [illegible] "अन्तर्द्धायेनादर्शनमिच्छती" त्यक्षियुगमनसोरपादानत्वम्। अदर्शन चात्र मनसो [illegible]दिति विशेषणसामर्थ्यादिन्द्रियार्थसप्रयोगजन्यज्ञान विरह एवेति ज्ञायते, "स्वप्नज्ञान तु मनोजन्यमेव"।[1] स्वप्नविदो का मन्तव्य है कि रात्रि के चतुर्थ चरण मे देखे गये स्वप्न शीघ्र फल देते है, नारायण ने भी इसका समर्थन करते हुए कहा कि गोविसर्जनवेलाया दृष्ट्वा सद्य फल लभत्"[2] एव मल्लिनाथ का कथन है कि स्वप्नदृष्टस्यार्थस्य जागरे सत्यसवादादाश्चर्यम्।[3] नल ने भी निशावसान वेला मे मधुर अधरो वाली अपनी प्रिया दमयन्ती के सयोग का अनुभव किया था एव सद्य दूसरे ही दिन उनका दमयन्ती से मिलन भी हो गया। यथा-

> सभुज्यमानाद्य मया निशान्ते स्वप्नेऽनुभूता मधुराधरेयम् ।
> असीमलावण्यरदच्छदेत्थ कथ मयैव प्रतिपद्यते वा ॥[4]

स्पष्ट है कि स्वप्नो से भी शकुनो का विचार, मनुष्यो द्वारा किया जाता है।

नैषधकार ने शकुन रूप मे मङ्गलवश, दर्पण देखना, लाजा (धान के खीले) गिराना, फल, एव फूलो को भी माना, जिनका वर्णन उन्होने नल की वर यात्रा प्रसङ्ग मे समुपस्थापित किया है।[5] साथ ही उन्होने यह भी विवरण नैषध मे दिया है कि जब नल वर रूप में राजा भीम के महल की ओर चले तो उन्होने शुभ शकुन सूचक दधि, अक्षत, पूर्णकलश आदि माङ्गल्कि वस्तुओ का अभिनन्दन किया।[6] मागलिक वस्तुओं के बारे मे नारायण का कथन है "दध्याज्यादर्शदिर्शन शुभावहम् इति वसन्तराजग्रन्थे ज्ञातव्यम्।"[7] अग्निपुराण मे भी मिलता है कि "फल घृत दधि पयो अक्षतादर्शमाक्षिकम्। शङ्ख इक्षु शुभ वाक्य भक्तवादित्रगीतकम्।"[8] आज भी भारतीय सस्कृति में इस परम्परा का अनुपालन होता है, जिससे स्पष्ट है कि शकुनो की समीचीनता एव प्रासङ्गिकता का आज भी विद्यमान है। मल्लिनाथ का भी कथन है "प्रायेण उत्सवेषु नववस्त्रवेष्टित पूर्णकलशमग्रे स्थापयतीत्याचार। शूभसूचकशकुनरूपतया

---

1 नै० 5/39, 40 मे मल्लिनाथ की टिप्पणी

2 नै० 7/42 नारायण का मत

3 नै० 7/42 मल्लिनाथ की टिप्पणी

4 नै० 7/42

5 अजानती कापि विलोकनोत्सुका समीरधूर्तामपि स्तनाशुकम् ।
कुचेन तस्मै चलतेऽकरोत्पुर पुराङ्गना मङ्गलकुम्भसभृतिम् ॥ नै० 15/74
सखीं नल दर्शयमानयाङ्कतो जवादुदस्तस्य करस्य ककणे ।
विक्षज्य हारैस्त्रुटितैरतर्कितै कृत कयापि क्षणलाजमोक्षणम् ॥ नै० 15/75
लसन्नखादर्शमुखाम्बुजस्मितप्रसूनवाणीमधुपाणिपल्लवम् ।
यियासतस्तस्य नृपस्य जज्ञिरे प्रशस्तवस्तूनि तदेव यौवतम् ॥ नै० 15/76

6 वृत प्रतस्थे स रथैरथो रथी गृहान्विदर्भाधिपतेर्धराधिप ।
पुरोधस गौतममात्मवित्तम द्विधा पुरस्कृत्य गृहीतमङ्गल ॥ नै० 16/1

7 नै० 15/76 नारायणी टीका में उद्धृत

8 अग्निपुराण 230/12

मड्गलकुम्भसम्भृतेर्यात्रायामुपयोगित्वात्, तेन च पूर्णकुम्भदर्शनरस्य [illegible] लाजा के बारे मे मल्लिनाथ का कथन है "उत्सवसम्बन्धिलाजमोक्ष[illegible] लाजावकिरण जातमितिभाव। आवश्यकश्चायमाचार।"[2] यात्रा के समय महिलाओं का धान के खीलों को गिराना लोकाचार मे यात्रा का शुभसूचक माना जाता है। अग्निपुराण से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है यथा- मड्गल्यञ्च तथाद्रव्य तस्यस्यादर्थसिद्धये। श्ववच्च राम। विज्ञेयास्तथा वै जम्बुकादय।[3] महाकवि कालिदास ने भी रघुवश के दूसरे सर्ग मे इसका वर्णन करते हुए लिखा है कि राजा दिलीप (नन्दिनी [illegible] सेवा प्रसड्ग मे) जगल मे जिधर भी जाते थे, उधर ही लताएँ उनके ऊपर धान का लावा बरसाती थीं यथा -

मरुत्प्रयुक्ताश्च मरुत्सखाभ तमर्च्यमारादभिपर्तमानम ।
अवाकिरन्बाललता प्रसूनैराचारलाजैरिव पौरकन्या ।।[4]

नैषधकार ने भी ऐसा ही विवरण देते हुए लिखा है कि जब राजा नल दमयन्ती सहित निषध देश पहुँचे, तो प्रवेश करते समय प्रत्येक मार्ग मे कुमारियो ने राजा के ऊपर शकुन सूचक लाजा बरसाते हुए उनका अभिनन्दन किया। यथा -

अथ पथि पथि लाजैरात्मनो बाहुबल्ली - मुकुलकुलसकुल्यै पूजयन्त्यो जयेति ।
क्षितिपतिमुपनेमुस्त दधाना जनाना - अमृतजलमृणालीसौकुमार्य कुमार्य ।।[5]

प्रभात बेला मे प्रथम पर्यड्कोत्थान काल मे अपने प्रिय जन का मुख देखना भी शकुनकारी होता है। उन्नीसवे सर्ग मे वैतालिको द्वारा नलदमयन्ती की प्रशसा मे कहा गया कि प्रभो! प्रभात वेला की इस रमणीयता को कृतकृत्य कीजिये। महारानी दमयन्ती का शय्या से उठकर आपके लिये प्रथम मगल दर्शन हो, क्योकि स्वामिन् अपने प्रियजन के मुखकमल से बढकर अन्य कोई मगल (शकुन) उत्कृष्ट है ही नहीं।[6] मल्लिनाथ का कथन है "चरममपि शयित्वापूर्वमेव प्रबुद्धा" इत्युत्तमाड्नालक्षणात् त्वत्त पूर्वमेव शयनात् सत्वरम् उत्थाय अवस्थिता इत्यर्थ। एव नारायण की टिप्पणी है "पश्चाच्छयन पूर्वमुत्थान इति स्मृति उत्तमकुल स्त्रीजातिश्च।" यात्रासमय मे शीतल, मद सुगन्धपवन का चलना भी शकुनसूचक माना जाता है। जब नल अपनी वाटिका मे पहुँचते हैं, तो शीतल, मद सुगन्ध पवन ने उनका स्वागत किया।[7] इसका फलितार्थ यह हुआ कि दमयती प्राप्ति के साधनभूत हस से उनकी भेंट हुई, एव अन्तत हस के माध्यम से वह दमयन्ती वरण मे सफल हुए।

शुभसूचक शकुन विवरण के साथ-साथ नैषधकार ने अशुभसूचक अपशकुनो का भी नैषध मे विवरण दिया है। मड्गल कार्य मे आखो से आसू गिरने को अमगल समझा जाता है। दौत्यकर्म मे प्रवृत्त

---

1 नै० 15/74 मे मल्लिनाथ की टिप्पणी
2 नै० 15/75 में मल्लिनाथ की टिप्पणी
3 अग्निपुराण - 232/20
4 रघुवश 2/10
5 नै० 16/126, एव 129
6 जय जय महाराज! प्राभातिकीं सुषमामिमा सफलयतमा दानादष्णोर्दरालसपक्ष्मणो ।
प्रथमशकुन शय्योत्थाय तवास्तु विदर्भजा प्रियजनमुखाम्भोजात्तुड्ग यदड्ग! न मड्गलम् ।। नै० 19/2
7 लताऽबलालास्यकलागुरुस्तरुप्रसूनगन्धोत्करपश्यतोहर ।
असेवतामु मधुगन्धवारिणि प्रणीतलीलाप्लवनो वनानिल ।। नै० 1/106

अपशकुन है।[1] दिग्दाह, भस्मवृष्टि, भूकम्प, रक्तवृष्टि आदि भी अपशकुन समझे जाते हैं ... श्रीहर्ष ने कीकटनरेश के प्रसङ्ग मे वर्णन किया है। यथा-

यद्भर्त्तु कुरुतेऽभिशेणनमय शक्रो भुव सा ध्रुव
दिग्दाहैरिव भस्मभिर्मघवता सृष्टैधृतांद्धूलना ।
शम्भोर्मा बन सान्धि वेलनटन भाजि व्रत द्रागिति
क्षोणी नृत्यति गूर्त्तिरष्टवपुषोऽसृग्वृष्टिसन्त्राधिया ।।[2]

क्रोध, लोभ, मोह, अज्ञान भी अनर्थ[3] प्रतिपादक होते है हालाकि ये मनुष्य के स्वाभाविक दोष है परन्तु फिर भी इन पर मनुष्य का नियत्रण होना ही उनके कुमार्गगामी न बनने मे साधक है। सूख पडना भी अपशकुन सूचक है।[4] ब्रह्महत्या, सुरापान, स्वर्णस्तेय, गुरुस्त्रीगमन, महापातक माने गये है, इनमे प्रवृत्ति होना भी अपशकुन माना जाता है। कलियुग इन सब का आधार है। नैषधकार ने सम्पूर्ण अपशकुनो को कलि मे समाहित कर उसका वर्णन किया है।[5] चाण्डाल मुख देखना भी अपशकुन माना जाता है।[6] बहेड का पेड लगाना या उसे देखना भी अशुभ सूचक है क्योकि उसमे कलि का आवास होता है।[7] जन सामान्य की धारणा मे भी बहेड का वृक्ष अपशकुनो का आवास माना जाता है। अग्निपुराण मे भी इनका विवरण दृष्टव्य है। यथा -

चतुविधस्तु प्रलयो नित्यो य प्राणिना लय ।
सदविनाशे जाताना ब्राह्मो नैमित्तिको लय ।।
अनावृष्टिरतीवोग्रा जायते शतवार्षिकी ।
तत सत्त्वक्षय स्याच्च ततो विष्णुर्जगत्पति ।।[8]

उपर्युक्त विवरणो से यह जाहिर हो जाता है कि नैषधकार शकुनशास्त्रविद् थे। ध्यातव्य है कि कुछ विद्वानो ने सामुद्रिकशास्त्र एव शकुनशास्त्र को ज्योतिषशस्त्र का ही एक उपाग माना है किन्तु शकुनशास्त्र या सामुद्रिक शास्त्र को ज्योतिशशास्त्र का अग मानना समीचीन नहीं प्रतीत होता, क्योकि ज्योतिषशास्त्र तो केवल ज्योतिष्पिण्डो के प्रभाव से ही सम्बन्ध रखने वाला शास्त्र है और सामुद्रिक शास्त्र तथा शकुनशास्त्र मे ज्योतिष्पिण्डो का कोई योगदान नहीं होता है। शकुनशास्त्र का विवरण ज्योतिष-शास्त्र सम्बन्धी ग्रथो मे मिलने के साथ-साथ उससे सम्बन्धित अन्य प्रमुख ग्रथो मे भी मिलता है। यथा- पद्मादित्य देवनरपतिकृत नरपतिजयचर्या, वसन्तराजकृत वसन्तराजशाकुनम्, नरहरिकृत नरहरिशाकुनम्। नरपतिजयचर्या के प्रमुख टीकाकारो हरिवश, नरहरि, भूधर, रामनाथ आदि ने भी शकुन शास्त्रीय ग्रथो की रचना की है। इसके अतिरिक्त हरिद्राशाकुनम्, शकुनावलि चूणामणिशास्त्र एव अग्निपुराण मे भी शकुनों का विवरण मिलता है साथ ही स्वप्न सम्बन्धी शकुनविषयक ग्रथो मे विवेकविलास भगवतीसूत्र, अग्निपुराण (मे स्वप्नाध्याय) तथा स्वप्नकमलाकर आदि प्रमुख ग्रथ है।

---

1 नै० 12/94
2 नै० 12/92
3 नै० 17/19 25
4 नै० 17/26
5 नै० 17/27 111
6 विमुखान्द्रष्टुमप्येन जनगम इव द्विजान् - नै० 17/112 उत्तरार्द्ध
7 नै० 17/213
8 अग्निपुराण - 231/7,8

सामुद्रिक शास्त्र

वर्तमान मे ही हमारी शक्ति और जीवन्तता निहित रहती है परन्तु इसे विधि की विडम्बना कह ल या व्यक्ति के व्यक्तित्व की क्लिष्टता या वैभिन्यता, वह अपने ही देशकाल से कितना अनजाना रहता है? एव उसका भविष्य उससे कितना गुप्त रहता है? यह तथ्य अजस्र गहन अध्ययन, विवेचन तथ खोज का विषय है। वास्तव मे यदि सूक्ष्मता से मानव जीवन का विवेचन करें, तो यही निष्कर्ष निकलता है कि मानव जीवन धारा सुख दु ख के पुलिनो से आलिङ्गित होती हुई सतत प्रवहमान है। जीवनधारा रूपी नदी मे बहते हुए मनुष्य का स्पर्श जब सुख रूपी पुलिन से होता है, तब वह हर्षातिरेक से आनन्द के सागर मे गोते लगाने लगता है, एव अपने भाग्य पर इठलाने लगता है, लेकिन जब उसका सस्पर्श दु ख रूपी पुलिन से होता है या उससे थपेडे खाता है, तब वह अपने आपको दु खी, मायूस एव निर्बल समझने लगता है परन्तु सुख दु ख तो आते जाते रहते हैं। "चक्रारि पक्तिरिव गच्छति भाग्ययक्ति"। और हर मनुष्य के मस्तक पर विधि ने जो उसकी जीवनविधा के बारे मे लिख दिया है, उसका तो भोग उसे करना ही होगा, उसे कौन मिटा सकात है "लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितु क समर्थ"। आखिर मस्तक पर लिखे तथ्य को हम कैसे जाने ? इस प्रश्न का किञ्चित् समाधान सामुद्रिक शास्त्र के माध्यम से हो सकता है, क्योकि सामुद्रिक शास्त्र मनुष्य के शरीर के अग, उपाग एव उनमे विद्यमान चिन्हा या लक्षणो को देखकर शुभाशुभ फल का विवेचन करने वाला शास्त्र है। इसके अध्ययन से व्यक्ति अपने व्यक्तित्व एव अपने भविष्य का कुछ सीमा तक आकलन कर सकता है, क्योकि वृहत्सहिता मे कहा गया हे "प्रायो विरूपासु भवन्ति दोषा, यत्राकृतिस्तत्र गुणा भवन्ति।" अग्निपुराण का भी कथन है "यत्राकारस्ततो गुणा."। सामुद्रिक शास्त्र का वर्णन, रामायण[1], महाभारत[2], अग्निपुराण[3] अङ्गविज्जा, वृहत्सहिता मे मिलने के के साथ-साथ, बाण[4], शूद्रक[5], दण्डी[6], एव महाकवि कालिदास[7], के महनीय ग्रथों में मिलता है। आज भी हस्तविज्ञान (इस शास्त्र का अगभूत रूप) का प्रचलन जनसामान्य मे दृष्टिगोचर होने से इसकी प्रचीनता, एव प्रासङ्गिकता परिलक्षित होती है।

सामुद्रिक शब्द की निष्पत्ति समुद्र + ठञ् से होती है[8], (समुद्रेण प्रोक्त वेत्यधीते वा ठञ्)। शरीर के चिह्नो से सम्बद्ध तत्वो को (जो शुभाशुभ फल के सूचक समझे जाते हैं) सामुद्रिक इत्यभिधेय से सज्ञायित किया जाता है। चूकि इस विद्या को समुद्र ने गर्गाचार्य ऋषि को बताया था, इसलिए इसे सामुद्रिक विद्या (शास्त्र) कहते है[9]। सामुद्रिक विद्या के माध्यम से मनुष्य के हाथ, पैर, ललाट शिर तथा अन्य शरीराङ्ग मे स्थित चिह्नो एव रेखाओं आदि से मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन के बारे में विचार किया

---

1 कोट्यापारान्ता सामुद्रा रत्नान्युपहरन्तु ते। रामायण 2/82/8
2 सामुद्रिकान् सवणिजरततोऽपश्यत् स्थितान् पथि - महाभारत 12/162/2
3 अग्निपुराण - 243, 244 एव 367 वॉ अध्याय
4 स्वप्नेऽपि अविसवादिन्य आकृतय - कादम्बरी
5 न ह्याकृति सुसदृश विजहाति वृत्तम् - मृच्छकटिक 9/16
6 सेयमाकृतिर्न व्यभिचरति शीलम् - दशकुमारचरित
7 न तादृशा आकृति विशेषागुणविरोधिनो भवन्ति - अभि० शाकु. - 5 अक, पृ० 180
8 सस्कृत हिन्दी कोश - पी वी काणे, पृ० 1099
9 रामायोक्ता मया नीति· स्त्रीणा राजन्! नृणा वदे ।
लक्षण यत् समुद्रेण गर्गायोक्त यथा पुरा ।। - अग्नि पुराण - 243/1

जाता है।[1] प्ररिद्ध विद्वान् Grace A Rees ने सामुद्रिक विद्या के बारे मे कहा "Physiognomy is a science, so called from two greak words, which mean "Interpretation of Nature" in the whole body When reading character the science is confined mainly to the face and hands.[2] Physiognomy is described inthe oxford dictionary as the "art of judging character from features of the face or form of body "It is the science of the effect of the internal (the mind etc) upon the external (the form of the body and features of the face) Physiognomy should rank among the most useful branches of knowledge as an anatomically based science[3] नैषधकार श्रीहर्ष ने भी सामुद्रिक शास्त्र के तथ्यो का वर्णन कर लोकजीवन मे इसकी चरितार्थता की प्रासङ्गिकता पर अपनी मुहर लगायी है। उन्होने भी सामुद्रिक शास्त्र के मत, कि "जिसमे सुन्दर रूप होता है, उसमे सुन्दर गुण भी निवास करते है"[4] का नैषध मे प्रतिपादन करते हुए हस को सामुद्रिक शास्त्र के इस सिद्धान्त का उपमान या उदाहरण माना, यहॉ नल हस की प्रशसा करते हुए कहते हैं, कि हे हस। तुम्हारा रूप अतुलनीय है, तुम्हारी सुशीलता का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता। सामुद्रिक शास्त्र का रहस्य है कि जहॉ सुन्दर आकृति होती है, वहीं सुन्दर गुण भी निवास करते है, एव इसके तुम्हीं श्रेष्ठ उदाहरण हो।[5]

सामुद्रिक शास्त्र के ज्ञान के माध्यम से पुरुष एव स्त्री दोनो के शरीराकृतियो की विशेषताओ एव उससे उनके व्यक्तित्व के आकलन का मानचित्र तैयार किया जा कसता है। श्रीहर्ष ने भी विविध पुरुषो यथा राजा 'नल' तथा अन्य राजागण एव विभिन्न स्त्रियो यथा - दमयती एव सरस्वती इत्यादि उसकी सखियो के शरीराकृतियो की चर्चा मे नैषधकार कहते है कि राजा नल के बाल काले[6] एव चमरी गाय के केश समूह से भी सुन्दर एव चचल (कुचित)[7] थे। यथा–

स्वबालभारस्य तदुत्तमाङ्गजै सम चमर्येव तुलाभिलाषिण ।
अनागसे शसति बालचापल पुन पुन पुच्छ विलोलनच्छलात् ।।[8]

अग्निपुराण मे भी श्रेष्ठ पुरुष के बालो को काला होना बताया गया है।[9] सामुद्रिक शास्त्र का मत है कि जिस व्यक्ति के चरण मे ऊर्ध्व रेखा हो वह सर्वश्रेष्ठ पद का स्वामी होता है, "ऊर्ध्व रेखाङ्कितपद

---

1 करतल-पादतल-ललाटादि शरीराङ्गस्थचिन्ह्ना रेखादीनाञ्च त्रैकालिकसफल-कार्यकलापसूचकत्वेनेष्टानिष्ट फलनिर्देशकत्वेन च सविस्तर विवरण, विवेचन तद्विषयक नियमादिप्रख्यापनञ्चास्मिन् विशदतया, सूक्ष्मतया च विहितमभ्युप- गम्येते। - सस्कृत वाङ्मयम् - डॉ० हरिकृष्णदातार , पृ० 78

2 The Science of Physiognomy - Character Reading from the face - Grace A Rees, P 74

3 वही, P. 10 and, Oxford Dictionary - Appendix -I

4 प्रायो विरूपासु भवन्ति दोषा , यत्राकृतिस्तत्र गुणा भवन्ति।" – वृहत्सहिता
यत्राकृतिस्तत्र गुणा भवन्ति। -नै० 2/51 में नारायण एव मल्लिमाथ की टिप्पणी

5 न तुलाविषये तवाकृतिर्न वचोवर्त्मनि ते सुशीलता ।
त्वदुदाहरणाकृतौ गुणा इति सामुद्रकसारमुद्रणा।। नै० 2/51 मल्लिनाथ ने सामुद्रकसारमुद्रणा की जगह सामुद्रिकसारमुद्रणा का प्रयोग किया है।

6 अमानि तत्तेन निजायशोयुग द्विफालबद्धाश्चिकुराशिरस्थितम् ।। नै० 1/16 उत्तरार्द्ध

7 बालचापल रोमचाञ्चल्यम्। वबयोरभेदाद्बालचावल कथयति, बाल चापल सोढव्यमित्यर्थ। अत्र पुच्छ चालनात् छलशब्देनापह्नुत्या वालबालयोरभेदाध्यवसायेन बालचापलत्वारोपादपपह्नवभेद । नै० 1/25 में मल्लिनाथ

8 नै० 1/25

9 दष्ट्राश्चतस्रश्चन्द्राभाश्चतु कृष्ण वदामि ते।
नेत्रतारौ भृवौ शमश्रु कृष्णा केशास्तथैव च।। अग्निपुराण 243/14

– Fines of their and skin denotes refinement sensitiveness and keen susceptibility of culture Dark, almost block, curry hair found on the heads of many Natives of walses, explains their love of music, singing, their vivacity and enthusiasm, and the touchy " dispositions that is easily pleased or offended. - Character Reading from the face . P-72

सवोत्कर्ष भजेत् पुमान् इति सामुद्रिका[1]।" श्रीहर्ष ने इस तथ्य का प्रतिपादन करते हुए कहा कि नल के चरण कमल प्रवाल का सुन्दरता मे तिरस्कार करने के कारण एव पृथ्वी के समस्त राजाओ के शिरा पर रखे जान के कारण ऊर्ध्वस्थान भागी होगे, ऐसा सोचकर ब्रह्मा ने मानो पहले से ही विचार कर लिया था इसी कारण उन्होने नल के चरणो को ऊर्ध्व रेखा से समन्वित किया।[2] नल के शरीर मे स्थित रोमो की चर्चा करते हुए नैषधकार कहते है कि ब्रह्मा ने रोमो के बहाने से साढे तीन करोड रेखाओ से इस नल के गुणो को क्या नहीं गिना? अर्थात् अवश्य ही गिना होगा, एव क्या ब्रह्मा ने रोम छिद्रो के रूप मे उनके दूषणो के शून्य बिन्दुओ (की गणना) का निर्माण नहीं किया? अर्थात, अवश्य ही किया।[3] परन्तु यहा मल्लिनाथ का कथन है "अस्मिन् गुणा एव सन्ति, न कदाचित् दोषा इति भाव।[4] एव नारायण का भी यहां कथन द्रष्टव्य है - "यत्र किमपि न तत्र ज्योतिर्विद्भि शून्यसूचको बिन्दु· क्रियते, तथा रोमकूपा अपि वर्तुला बिन्दुत्वेनोत्प्रेक्ष्यन्ते। अय रोमकूपो न, किन्तु दोषराहित्यसूचका बिन्दवा एव लिखिता। "तिस्र कोट्योऽर्धकोटी च यानि रोमाणि मानुषे" इति तावन्त कूपा इति। रोमैकैक कूपके पार्थिवानाम् इति सामुद्रिक लक्षण सूच्यते। नल का कण्ठ प्रिय एव मधुर वाणी रूप सुधा का साक्षात् कूप ही था। यथा–

परिमृज्य भुजाग्रजन्मना पतग कोकनदेन नैषध ।
मृदु तस्य मुदेऽकिरद्गिर प्रियवादामृतकूपकण्ठजा ॥[5]

अग्नि पुराण मे भी कहा गया है।

धन्यस्य मधुरावाणी गतिर्मत्तेभसन्निभा। एककूपभव रोम भये रक्षा सकृत सकृत । [6]

श्रीहर्ष ने नल के अन्य शरीरागो के बारे मे अभिहित किया कि उसके चरण कमल से, हाथ नवपल्लव से तथा मुख शरत्कालीन पूर्णिमा के चन्द्रमा से भी अत्यधिक सुन्दर थे। यथा -

स्वकेलिलेशस्मित निर्जितेन्दुनो निजाशदृकूतर्जितपद्मसम्पद ।
अतद्वयीजित्वरसुन्दरान्तरे न तन्मुखस्य प्रतिभा चराचरे ॥
सरोरुह तस्य दृशैव निर्जितं जिता स्मितेनैव विधोरपि श्रिय· ।
कुत पर भव्यमहो महीयसी तदाननस्योपमितौ दरिद्रता ॥[7]

हाथ के बारे मे प्रसिद्ध पाश्चात्य सामुद्रिक शास्त्रविद् William G Benham का कथन है "The hand Physically shows what kind of a brain is directing it If the brain centre which controls the hand is of one shape, the mount of Jupter will be largest, and we shall have a jupiterian brain centre creating jupiterian thoughts, ways and peculiarities and the result will be that we have a jupiterian subject.[8] कीरो (~~कैमपत्तव~~) (Chairo) ने अपने ग्रथ Palmistry for all" ~~esa dgk~~ "In Examining

1 नै० 2/18, मल्लिनाथ की टिप्पणी

2 अधो विधानात्कमलप्रवालयो शिर सु दानादरिव लक्ष्माभुजाम् ।
पुरेदमूर्ध्वं भवतीति वेधसा पद किमस्याकिङ्कत मूर्ध्वरेखया ॥ नै 2/18

3 किमस्य रोम्णाङ्कपटेन कोटिभिर्विधिर्न रेखाभिरजीगणद्गुणान् ।
न रोमकूपौघ मिषाज्जगत्कृता कृताश्च कि दूषणशून्य विन्दव ॥ नै० 2/21

4 अत्र रोम्णा रोमकूपाणा कपटमिष् शब्दाभ्या ताद्रूप्यापह्वेन गुणगणनारेखात्वदूष णशून्यबिन्दुवयोरुत्प्रेक्षणात्सापह्नुयोत्प्रेक्षयो ससृष्टि इतिमल्लिनाथ। नै० 2/21 की टिप्पणी

5 नै० 2/50

6 अग्निपुराण 243/26

7 नै० 1/23, 24

8 The laws of scientific Hand Reading - W. G Benham - P- 8

this subject it will be found that in the study of mankind it came to be recognised that, as there was a natural position on the face for the nose, eyes, lips, etc, So also on the hand was there a natural position for what are known as the line of head, line of life and so on If these were found in some unnatural tendencies God caused signs or seals on the hands of all the sons of men, that the sons of men might know their works [1] ख्यातिप्राप्त पाश्चात्य सामुद्रिक विद्या के जानकार Alexander Walker ने मुख के बारे मे अपनी पुस्तक Physiognomy founded on Physiology मे लिखा "The face was the mirror of mind, The muscles that surround the features being, more or less, under control of the will Grace A Rees का कथन भी इस सम्बन्ध मे अवधेय है - The muscles around the mouth are responsible for a variety of exparessions, and their control of the lips is important for speech Mental capacity and sensibility enliven the face What goes on in the mind engraves its mark externally The whale body is Physiognomically expressive, head, face, trunk, hands, feets, walk, voice, texture of hair and skin [2]

सामुद्रिक शास्त्र वेत्ताओ यथा वराहमिहिर का मत है कि यदि किसी मनुष्य (स्त्री या पुरुष) के हाथ अथवा पैर मे मत्स्य आदि का चिह्न हो, तो वह उसके चक्रवर्ती सम्राट (राज्ञी) होने का लक्षण है।[3] श्रीहर्ष ने भी नल सम्बन्धित अपने वर्णन प्रसड्ग मे बताया कि नल के हाथ मे मत्स्य चिन्ह था। मत्स्य समन्वित हाथ वाले नल के उपवन मे घूमने पर ऐसा मालूम हो रहा था मानो स्वय कामदेव (कामदेव का चिह्न भी मत्स्य है) अपने ध्वजचिह्न मत्स्य को, वृक्षों के आलवाल (थॉवलों मे) मे घुस जाने की शका से, हाथ मे धारण कर लिया हो। इस कारण लोगो ने उसे (नल को) मत्स्य चिह्नधारी कामदेव समझा, जो समस्त ऋतु सम्पन्न वन मे अपने मित्र बसन्त का अनुसरण करते हुए विहार कर रहा हो। नल के मस्तक मे त्रिपुण्ड एव त्रिशूल आदि रेखाये भी विद्यमान थीं[4], जो चक्रवर्ती सम्राट होने के लक्षण सामुद्रिक शास्त्र मे माने गये हैं।[5]

---

1 – Palmistry for All -Cheiro -P-18
– कीरो ने हाथ के 7 प्रकार बताये -
– The Elementary - or lowest type.
– The square - or the useful hand
– The spatulate - or the Norvous actie type
– The Philosophic - or jointed hand
– The Conic - or the ortistic type.
– The Psychic - or the idealistic hand
– The Mixed hand. - इसमें नल का हाथ The Psychic - or the idealistic hand के अन्तर्गत आता है। देखिये पृष्ठ palmistry for All P- 103 - 106

2 Character Reading from the face - P - 11,12

3 भृङ्गारासनवाजिकुञ्जररथ श्रीवृक्षयूपेषुभिर्माला कुण्डलतोमराड्कुशयवै शैलेर्ध्व जैस्तोमत्स्यस्वस्तिक मत्स्यस्वस्तिकवेदिकाव्यजनकैयस्याङ्कितं वर्तते, पादे पाणितलेऽथवा स भवति त्रैलोक्य भूमीश्वर ।। वृहत्संहिता 70/10
– यहाँ आचार्य नरहरि के मत को प्रो. के के हाण्डिकी ने रखते हुए कहा कि पादे -पाणितलेऽथवा स भवति त्रैलोक्यभूमीश्वर की जगह "पादे पाणितलेऽपि वा युवतयो गच्छन्ति राज्ञीपदम्' होना चाहिए, परन्तु ध्यातव्य है कि यह लक्षण स्त्री एव पुरुष दोनों के लिए प्रयुक्त है। नैषधीयचरित- प्रो के. के हाण्डिकी पृ० 359

4 वहतो बहुशैवलक्ष्मता धृतरुग्राक्षमधुव्रत खग ।
स नलस्य ययौ कर पुन सरस कोकनदभ्रमादिव ।। नै० 2/6 - यहाँ मल्लिनाथ ने 'वहतो' शब्द की जगह दधतो' शब्द रखना अपेक्षित समझा है।

5 उरो ललाट वक्त्रञ्च त्रिविरतीर्णो विलेखवान् ।
द्वौ पाणी द्वौ तथा पादौ ध्वजच्छत्रादि भिर्युतौ ।। अग्निपुराण 243/13

सामुद्रिक शास्त्र विदो की मान्यता है कि जिस मनुष्य के पूरे बत्तीस दात होते है वह मनुष्य अत्यधिक विद्वान् एव सत्यवादी होता है हस दमयन्ती वार्तालाप प्रसड्ग मे हस दमयन्ती से कहता है कि ब्रह्मा ने नल के मुख मे दन्तमयी बत्तीस रेखओ को गिनकर कह दिया कि नल म चौदह तथा अठारह दोनो प्रकार की विद्याएँ वर्तमान है अर्थात् वह बत्तीस विद्याओ का ज्ञाता है।[1] मल्लिनाथने चौदह एव अठारहो दोनो प्रकार की विद्याओ का वर्णन करते हुए लिखा -

> अड्गानि वेदाश्चत्वारो मीमासा न्याय विस्तर ।
> पुराण धर्म शास्त्रञ्च विद्या ह्येताश्चतुर्दश ।
> आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चेत्यनुक्रमात् ।
> अर्थशास्त्र पर तस्माद्विधा ह्यष्टादश स्मृता ।[2]

नारायण का कथन है "दन्ताना रेखात्वरूपण सूक्ष्म वत्त्वे सामुद्रिक लक्षणवत्त्वद्योतनार्थ। दन्ता द्वात्रिशद्विद्यन्त इति भाव।[3] अग्निपुराण का भी कथन है ।

> चतर्दशसमद्वन्द्व एतत् सामान्यतो नर ।
> विद्याचतुर्दश द्वयक्षै पश्येद् य षोडशाक्षक ।।[4]

नल के गुणो की चर्चा करते हुए हस दमयन्ती से कहता है कि यदि तीनो लोक गणना करने म तत्पर हो जॉय, तथा उनकी आयु का अन्त न हो, अर्थात् वे अमर हो जॉय और गणित की सख्याये परार्द्ध से भी ऊपर हो, तब उस नल के गुण गिने जा सकते है।[5] तात्पर्य यह है कि उक्त तीनो बातो के असम्भव होने से नल के गुणो की गणना भी असम्भव है। नल के चरणो मे चक्रवर्ती लक्षण विद्यमान थे। नल के दौत्य प्रसड्ग वर्णन मे नैषधकार का कथन है कि मार्ग मे बालको ने अतिशय कपूर की धूलि से खेल किया था, जिस पर नल के चक्रवर्ति लक्षणोपेत चरणो को अकित देख सुन्दरियो को बडा आश्चर्य होने लगा।[6] ऑखे काली, सुन्दर एव हरिण सदृश ही श्रेष्ठ होती हैं, एव नल की ऑखे भीइसी तरह की थीं ऐसा नैषध मे विवरण मिलता है।[7] कुचित सघन एव काले केश ही शुभ एव सौन्दर्यवर्धक माने जाते है जैसा कि पूर्व मे विवरण दिया जा चुका है। श्रीहर्ष ने दौत्य प्रसग मे नलकेशो का वर्णन करते हुए लिखा कि दमयती के नेत्र रूपी खञ्जन पक्षी नल के सुन्दर, महीन, किन्तु सघन केशपाश मे पडकर स्पन्दन हीन होने के कारण उस पाश बन्धन को छुडाकर जाने मे समर्थ न हो सके। यथा -

> सूक्ष्मे घने नैषधकेशपाशे निपत्य निस्पन्दतरीभवद्भ्याम् ।
> तस्यानुबन्ध न विमोच्य गन्तुमपारि तललोचन खञ्जनाभ्याम् ।।[8]

---

1 रेखाभिरास्ये गणनादिवस्य द्वात्रिशता दन्तमयीभिरन्त ।
चतुर्दशाष्टादश चात्र विद्या द्वेधाऽपि सन्तीति शशस वेधा ।। नै० 3/35

2 नै० 3/35 मल्लिनाथ द्वारा उद्धृत्

3 नै - 3/35 नारायण का मत

4 अग्निपुराण 243/24

5 नै० 3/40

6 पश्या पुरन्ध्री प्रति सान्द्रचन्द्ररज कृतकीडकुमारचक्रे ।
चित्राणि चक्रेऽध्वनि चक्रवर्ति चिह्न तदधिप्रतिमासु चक्रम् ।। नै० 6/39

7 अन्त पुरे विस्तृतवागुरोऽपि बालावलीना वलितैगुणौघे ।
न कालसार हरिण तदक्षिद्वय प्रभुर्बर्द्धुमभून्मनोभू ।। नै० 6/19

8 नै० 8/13

यहाँ नैषधकार ने दमयन्ती के नैत्रो के समान होने की विक्षा रखी है, जब कि नारायण का नल के केशो के बारे मे कथन है कि "सूक्ष्मास्तु पाणिदशनाङ्गलिपर्वकेशा। इत्यादि लक्षणम्। पाश कचान्त सङ्घार्थ कणान्ते शोभनार्थक क्षत्राद्यन्ते च निन्दार्थ पाश पक्ष्यादि बन्धने इति विश्व।"[1] पुरुष के चरण नख अर्धचन्द्रकार ही श्रेष्ठ होते है। एव नैषधकार ने यह विवरण दिया है कि नल के पैर के अगूठ मे कामारिकाचिह्न (अर्द्धचन्द्र) विराजमान था। जिससे उनके पैर का अगूठा अत्यधिक शोभावान था। यथा -

भवत्पदागुष्ठमपि श्रिता श्रीर्ध्रुव न लब्धा कुसुमायुधेन ।
रतीशजेतु खलु चिह्नमस्मिन्नर्धेन्दुरास्ते नखवेशधारी ।।[2]

नैषधकार ने दमयन्ती एव सरस्वती के सौन्दर्य वर्णन प्रसङ्ग मे सामुद्रिक शास्त्र सम्बन्धी स्त्रियो के शरीराकृतियो की चर्चा की है। दमयन्ती के बारे मे हसमुखेन श्रीहर्ष कहते है, कि वह कन्या अपनी काय कान्ति से त्रिभुवन सुन्दरियों की कमनीयता का दमन करती हुई उत्पन्न हुई थी, इसीलिए उसका नाम दमयन्ती रखा गया।[3] उसके केश लम्बे, कुचित तथा सुन्दर है[4] एव नेत्र मृगनेत्रो से भी बडे तथा सुन्दर है।[5] उसके अधर बिम्व फल के समान[6] एव मुख चन्द्रमा से भी श्रेष्ठ था।[7] नासिका ऊँची तथा तिलपुष्प से भी सुन्दर और भोहे अत्यधिक सुन्दर थीं।[8] उदर मे सुन्दर रोमराजि[9] तथा स्तन बडे, सुन्दर कलश सदृश[10] थे। उसके उदर का वर्णन करते हुए नैषधकार लिखते है, ब्रह्मा ने उसके उदर को अपनी मुट्ठी से नाप कर बनाया है। अतएव पीछे की ओर दबी हुई पीठ के मध्यभाग मे अगूठे के स्पष्ट चिह्न हैं, तथा आगे की ओर चार ॲगुलियो के मध्य से निकली हुई त्रिवलियाँ भी बनी है[11] अर्थात वह निम्नोदरी या कृशोदरी है। मलिलनाथ का कथन है "मुष्टिग्रहणादङ्गुष्ठनोदनात्पृष्ठमध्ये निम्नता उदरे च चतुरङ्गुलिनोदनाद्वलित्रयाविर्भावश्चेत्युत्प्रेक्षते।" दमयन्ती के नितम्ब विशाल तथ गोल है[12] एव उसकी जघाएँ कदली सदृश चिकनी तथा गोरी एव सुडौल है[13] तथा उसके चरण कमल सदृश गोरे एव सौन्दर्यसमन्वित हैं।[14] दमयन्ती सुदती (सुन्दर दातो वाली) तथा हसगामिनी (मन्दगामिनी) थी, उसकी चाल का वर्णन करते हुए नैषधकार लिखते है -

---

1 नै० 8/13, नारायण की टिप्पणी।

2 नै० 8/36

3 भुवनत्रयसुभ्रुवामसौ दमयन्ती कमनीयतामदम् ।
उदियाय यतस्तनुश्रिया दमयन्तीति ततोऽभिधा दधौ ।। नै० 2/18

4 चिकुरप्रकरा जयन्ति ते विदुषी मूर्धनि सा बिभर्ति यान् ।
पशुनाप्यपुरस्कृतेन तत्तुलामिच्छतु चामरेण क ।। नै० 2/20, एव 2/33, 7/20 15/33

5 स्वदृशोर्जनयन्ति सान्त्वनां खुरकण्डूयन कैतवान्मृगा ।
जितयोरुदयत्प्रमीलयोस्तदखर्वेक्षण शोभया भयात् ।। नै० 2/21, एवं 4/14, 7/29 36

6 नै० 2/24, 7/37 , 41

7 नै० 2/25, 26, 27

8 नै 2/28, 7/24, 25, 26, 37, 92 , 11/67

9 नै० 2/30

10 नै० 2/31, 32 4/10, 7/5, 73, 74, 78 80

11 नै० 2/34 35, 7/81 87, 21/147

12 नै० 2/36 7/7, 79

13 नै० 2/37, 7/92 97, 10/135

14 नै० 2/38

हसोऽप्यसौ हसगते सुदत्या पुर पुरश्चारु चलन्यभासे ।
वैलक्ष्यहेतोर्गतिमेतदीयामग्रेऽनुकृत्योपहरन्निवोच्चै ॥[1]

दमयती की कटि ईश की अणिमा (सिद्धि रूप) सदृश पतली थी[2] एव बाहुएँ [illegible] अधिक कोमल तथा सुन्दर थीं।[3] श्रीहर्ष ने स्त्रियो के हृदय को मृदु बताते हुए अभिहित किया कि–

प्रकृतिरेतु गुण स न योषिता कथमिमा हृदय मदु नाम यत्
तदिषुभि कुसुमैरपि दुन्वता सुविवृत विबुधेन मनोभुवा ॥[4]

दमयती की शरीराकृति हरिद्रासदृश (गोरी), एव दन्तावलिया समान थीं।[5] नैषधकार ने उपर्युक्त दमयन्ती के सौन्दर्य सम्बन्धी जो विवरण समुपस्थापित किये हैं वह सर्वथा सामुद्रिक [illegible] ही प्रतीत होते है, क्योकि अग्नि पुराण मे ललनालालित्य सम्बन्धी एव सामुद्रिक शास्त्रसमन्वित विवरण भी उपर्युक्त तथ्यो की पुष्टि करते है। यथा -

शस्ता स्त्री चारुसर्वागी मत्तमातङ्गगामिनी । गुरूरुजघना या च मत्तपारावतेक्षणा ॥
सुनीलकेशी तन्वङ्गी विलोमाङ्गी मनोहरा । समभूमिस्पृशौ पादौ सहतौ च तथा स्तनौ ॥
नाभि प्रदक्षिणावर्ता गुह्यमश्वत्थयत्रवत् । गुल्फौ निमूढौ मध्येन नागिरङ्गुष्ठमानिका ॥
जठर न प्रलम्बश्च रोमरूक्षा न शोभना । नर्क्षवृक्षनदीनाम्नी न सदा कलहप्रिया ॥
न लोलुपा न दुर्भाषा शुभादेवादिपूजिता । गण्डैर्मधूकपुष्पाभैर्न शिराला न लोमशा ॥
न सहतभ्रूकुटिला पतिप्राणा पतिप्रिया । अलक्षणापि लक्षण्या यत्राकारस्ततो गुणा
भुवङ्कनिष्ठिका यस्या न स्पृशेन मृत्युरेवसा ॥[6]

स्त्रियो के अधरो के मध्य भाग (रेखा) के दोनो (ओर) पार्श्वभागो का कुछ उठा (फूला या मोटा) होना सामुद्रिक शास्त्र मे सौन्दर्य एव सौभाग्य का प्रतीक समझा जाता है।[7] श्रीहर्ष ने इस तथ्य को भी नैषध मे स्थान दिया है जहाँ दमयन्ती के अधरो के लालित्य को देखकर (दौत्य प्रसङ्ग मे) नल मन ही मन विचार करते है कि "भैमी (दमयन्ती) के ये अधरोष्ठ (जो बिम्बफल के प्रतिबिम्ब सदृश हैं) मध्य भाग मे जो कुछ उठे होने के कारण सुन्दर लग रहें हैं, वह क्या स्वप्न सभोग के समय दन्त क्षत करने वाले (मेरा, नल का) ही अपराध तो नहीं हैं।[8] अधरोष्ठ में रेखाओं का होना सामुद्रिकशास्त्र के अनुसार विद्याप्राप्ति का सूचक है। दमयन्ती के अधरोष्ठो में दृष्टिगोचर रेखाओं से श्रीहर्ष ने यह कथन किया है कि ब्रह्मा ने अधरोष्ठ की रेखाओ द्वारा उसके अधरोष्ठो पर अपने अवान्तर भेदोंसहित (कितनी ही अर्थात् अनेको) विद्याये नाचती रहती है।[9] सरस्वती वर्णन प्रसङ्ग मे नैषधकार लिखते हैं कि उसकी सोलह-सोलह की दोनो दन्तपक्तियॉ, नाम कथन तथा लक्षण कथन दोनो मे दो-दो प्रकार से कहे हुए प्रमाणादिक सोलह पदार्थो से युक्त नि श्रेयसेच्छु द्वारा अभ्यस्त तर्क विद्या सी, गुम्फित मोती जैसी प्रतीत होती थीं। यथा-

---

1 नै० 3/10, 4/40, 7/102
2 नै० 3/64, 7/28
3 नै० 4/34, 7/68, 69, 73
4 नै० 4/23
5. नै० 7/13
6 अग्निपुराण - 244/1 . .. 6 ।
7 अधरोष्ठस्य मध्यसमीपवर्तिनो पार्श्वदेशयो· किचिदुच्छूनता सामुद्रिको गुण·। नै० 7/40 में नारायण की टिप्पणी
8 मध्योपकण्ठावधरोष्ठभागौ भात· किमप्युच्छ्वसितौ यदस्याः ।
तत्स्वप्नसम्भोगवितीर्णदन्तदंशेन कि वा न मयापराद्धम् ॥ नै० 7/40
9 विद्या विदर्भेन्द्रसुताधरोष्ठे नृत्यन्ति कत्यन्तरभेद भाज
इतीव रेखाभिरपश्रमस्ता सख्यातवान्कौतुकवान्विधाता ॥ नै० 7/41 , एव 9/117

उद्देश पर्वण्यपि लक्षणेऽपि द्विधोदितै षोडशभि पदार्थै ।
आन्वीक्षिकी यद्दशनद्विमाली ता मुक्तिक्रामाकलिता प्रतीम ॥[1]

स्पष्ट है कि दातो का बत्तीस की सख्या मे होना एस मोती जैसा सफेद एव चिकना होना नैषधकार ने शुभ माना है। स्त्रियो के ऊपर के दो दात (मध्य वाले) बडे होना सौभाग्य सूचक है। नारायण का कथन है "दन्तानामीषदायतत्व सूक्ष्मत्व सामुद्रिको गुण।[2] नैषधकार कहते है कि दमयन्ती के चन्द्राधिक मुख की चन्द्रकिरणो से अधिक सघन ज्योत्स्नारूपी बादल की, जो पहिले दो बडी बूदे तथा बाद मे जलबूदो की पक्ति निकली, वही सुन्दरी की दो दन्तपक्तियॉ हो गयीं।[3] स्पष्ट है कि ऊपर, मध्य मे दो दात बडे एव उनके पार्श्व दातो का समान एव घने होना तथा नीचे के सभी दातो को छोटा, घना समान तथा धवल होना स्त्रियो के सौभाग्य वर्धन के साथ-साथ सौन्दर्य का भी प्रतीक है। परन्तु नैषधकार ने ऊपर दो के साथ-साथ चार बडे दातो का होना भी श्रेष्ठ माना है। यथा -

राजौ द्विजानामिह राजदन्ता सबिभ्रति श्रोत्रियविभ्रम यत् ।
उद्वेगरागादिमृजावदाताश्चत्वार एते तदवैमि मुक्ता ॥[4]

स्त्रियो का कोमलाङ्गी होने के साथ-साथ मृदुवाणी सम्पन्ना होना भी उनके लालित्य मे चार चॉद लगाता है। दमयती भी इन दोनो गुणो से सम्पन्न ललना थी[5] इसका उल्लेख भी नैषधकार ने किया है। साहित्य विद्याधरी मे वर्णन मिलता है कि उत्तम स्त्रियो का चिबुक (ठुड्ढी) स्वभावतया कुछ दबा (निम्न) रहता है "उत्तमस्त्रीणा स्वभावादेव चिबुक निम्न भवतीति।[6] दमयन्ती के चिबुक को देखकर नल मन ही मन यह सोचते है, कि भैमी के मुख की सुषमा का निर्माण कर चुकने पर क्या ब्रह्मा ने इसके मुख को ऊपर करके देखा था (कि कहीं कोई कमी तो नहीं रह गयी), क्योंकि इसकी गम्भीर ठोडी (ठुड्डी) में अगुली लगने का निशान बन गया है।[7] श्रीहर्ष के अनुसार स्त्रियों की भौंहो को चन्द्रमा का तृतीयाश होना चाहिए।[8] कान के मध्य मे बनी हुई गहरी रेखा से यदि नव (९) का अक बनता हो, तो स्त्री या कन्या विदुषी होती है।[9] नारायण का कथन है "नवसख्या का विद्या एका श्रुतिर्धारयति, अपरापि नवसख्याका इति द्योतनार्थ ब्रह्मणैव कर्णमध्ये रेखारूपोऽष्टादशार्धगणनानुरूपो नवाङ्को निर्मित इत्यर्थ[10] एव मल्लिनाथ का कथन है" अत्र कर्णस्य रेखाया-सुधाप्रणालीत्वमुत्प्रेक्ष्यते।[11] ग्रीवा शरीरोर्ध्व देश को सुन्दर बनाती है। कम्बु के समान एव त्रिवलियो (तीन रेखाओ से समन्वित) ग्रीवा ही सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार शुभ मानी जाती है। नारायण का कथन है "रेखात्रयाङ्किता ग्रीवा कम्बुग्रीवेति कथ्यते।" एव मल्लिनाथ का कथन है "अत्र ग्रीवागत

---

1 नै० 10/82

2 नैत्र 7/44 नारायण की टिप्पणी

3 चन्द्राधिकैतन्मुख चन्द्रिकाणा दरायत तत्किरणाद्घनानाभ् ।
पुर सरस्रस्तपृषद्वितीय रदावलिद्वन्द्वति बिन्दुवृन्दम् ॥ नै० 7/44

4 नै० 7/46

5 नै० 7/47 . . 108

6. नै० 7/51 नारायण की व्याख्या में उद्धृत्

7 विलोकितास्या मुखमन्नमय्य कि वेधसेय सुषमासमाप्तौ।
धृत्युद्भवा पच्चिबुके चकास्ति निम्ने मनाङ्गुलियन्त्रणेव ॥ नै० 7/51

8 नै० 7/53, 10/86

9 अस्या यदष्टादश सविभज्य विद्या श्रुती दध्रतुरर्धमर्धम् ।
कर्णान्तरुत्कीर्णगम्भीररेख किं तस्य संख्यैव नवा नवाङ्क ॥ नै० 7/63 एव 10/87, 7/61, 63

10 नै० 7/63 नारायण की टिप्पणी

11 नै० 7/63 मल्लिनाथ की टिप्पणी

भाग्यरेखात्रये सीमाविभागत्वचिह्नमुत्प्रेक्ष्यते।[1] नैषधकार दमयन्ती के [illegible]
ब्रह्मा ने दमयन्ती के कण्ठ मे कवित्व, सगीत, प्रियवचन तथा सत्य [illegible]
तीन रेखाओ के बहाने (तीन रेखाओ से चार भाग बन जाते है, अर्थात दमयन्ती [illegible]
कम्बुकण्ठी है) इस रूप मे नेषधकार ने (कवित्वादि) चारो गुणो के [illegible]
है।[2] सरस्वती के कण्ठ का वर्णन करते हुए उन्होने कहा कि "यह श्रेष्ठ [illegible]
वली एव श्रेष्ठ उदर वाली थीं। यथा -

> मध्येसभ रावततार बाला गन्धर्वविद्याधर [illegible]
> त्रयीमयीभूतवली विभङ्गा साहित्य निर्मित [illegible]
> आसीदथर्वा त्रिवलित्रिवेदीमूलाद्विनिर्गत्य [illegible]
> नानाभिचारोचितमेचकश्री श्रुतिर्यदीयोदररोमरेखा [illegible]

स्त्रियो की नाभि जल के आवर्त के समान गहरी एव [illegible][3] [illegible]
कमलरेखाङ्कित होने से शुभ लक्षण सम्पन्न माने जाते हैं।[4] सरस्वती के हाथों मे मत्स्य पद्म [illegible]
विद्यमान थीं। उसके सौन्दर्य का वर्णन करते हुए नैषधकार लिखते है -

> सपल्लव व्यासपराशराभ्या प्रणीतभावादुभयीभविष्णु।
> तन्मत्स्यपद्माद्युपलक्ष्यमाण यत्पाणियुग्म वदृते पुराणम्।[5]

यहॉ नारायण का कथन है "रेखारूपमत्स्यपद्मचक्रादिसामुद्रिक लक्षण[illegible] स्तनो के मध्य
भाग मे रेखाओ का होना शुभ तथा कामाकर्षण का प्रतीक माना जाता है। नारायण का कथन है कि
"एवभूत स्तनमध्य दृष्ट्वा सर्वेऽपि मुह्यन्तीति, तत्र स्खलनस्योक्तत्वात्तत्र लब्धावकाश" इति भाव। एव
मल्लिनाथ कहते है "रत्नमयूखधारासु युवमानसस्खलनरेखाङ्कत्वमुत्प्रेक्ष्यते[6]" नैषधकार का कथन है कि
दमयन्ती के चन्दनलिप्त स्तनो के मध्यभाग मे समस्त युवको के मन के फिसल कर गिरने की रेखाऍ
हारस्थ रत्नो की किरणो के रूप मे चमक रहीं है।[7]

सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार यदि किसी स्त्री के दोनो गुल्फ (टखने, पर की पिंडली का सबसे
निचला हिस्सा) यदि दबे हो, या मास के भीतर छिपे हो, तो उसे शुभ लक्षणसम्पन्ना माना जाता है।
मल्लिनाथ कहते है, 'गूढगुल्फत्व स्त्रीलक्षण' एव नारायण का मत है "निम्नगुल्फत्व नाम सामुद्रिक
लक्षणम्।'[8] नैषधकार दमयन्ती के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए अभिहित करते है कि अरुन्धती कामपत्नी

---

1 नै० 7/67 मे नारायण एव मल्लिनाथ

2 कवित्वगानप्रियवादसत्यान्यस्या विधाता व्यधिताधिकण्ठम्।
रेखात्रयन्यासमिषादमीषा वासाय सोऽय विबभाज सीमा ॥ नै० 7/67

3 नै० 7/69, 11/28

4 नै० 7/72

5 नै० 10/84

6 नै० 7/80

7 स्तनावटे चन्दनपङ्किलेऽस्या जातस्य यावद्युवमानसानाम्।
हारावलीरत्नमयूखधाराकारा स्फुरन्ति स्खलस्य रेखा ॥ नै० 7/80 यहॉ
मल्लिनाथ स्तनावटे की जगह 'स्तनातटे' मानते हैं।

8 नै० 7/98 मल्लिनाथ एव नारायण की उक्ति

रति, लक्ष्मी, इन्द्राणी तथा नव मात्रिकाओ मे चौदहवीं [illegible]
तः इस दमयन्ती मे गुल्फ (दोनो पैरो के नीचे जोड पर दोनों [illegible]
हुई है, वह उचित ही है।[1] अर्थात् अरुन्धती आदि तेरह देवियां [illegible]
है, अतएव चतुर्दशी तिथि रूप (चतुर्दशी को अदृश्य सिद्धि की जाती है [illegible]
महादेवियो से भी विशिष्ट है। नेषधकार के मत मे स्त्रियों के चरण [illegible]
होना लालित्यवर्धक माना जाता है।[2] साथ ही चरणनख चन्द्रसदृश [illegible]
सूचक है।[3]

स्त्रियो के गुप्ताग (योनि) का पीपल के पत्ते के सदृश होना [illegible]
जाता है नैषधकार ने इस तथ्य का प्रतिपादन करते हुए लिखा

अड्गेन केनापि विजेतुमस्या गवेष्यते किञ्चल [illegible]
नो चेद्विशेषादितरच्छदेभ्यस्तस्यास्तु कम्पस्तु कुतो भवेत् ॥[4]

मल्लिनाथ का कथन है "अश्वत्थदलसङ्काश गुह्य गूढमपि स्थितम्। यस्या [illegible]
पुण्येरवाप्यते। उद्यान मे विहार के समय नल ने दमयन्ती को पीपल के पत्ते को [illegible]
रखी।' यथा -

वनकेलौ स्मराश्वत्थदल भूपतित प्रति। देहि मह्यमुदस्येति मदीरा [illegible][5]

स्त्रियो के भ्रूद्वय (भौहो) का आपस मे न मिलना भी सामुद्रिक शास्त्रानुसार शुभ होता है। दमयन्ती
की भौहे भी ऐसी ही थीं। नेषधकार का कथन है -

अयोधि तद्वैर्यमनोभवाभ्या तामेव भेमीमवलम्ब्य भूमीम्
आह स्म यत्र स्मरचापमनूतश्छिन्न भ्रुवो तज्जयभङ्गवार्तम् ।[6]

नारायण का कथन है "भ्रुवोरसलग्नत्व सामुद्रिकोक्त लक्षणम्, 'धन्या पितृमुखी कन्या
धन्यामातृमुख सुत।" यह सामुद्रिक शास्त्र का मूल सिद्धान्त है।[7] इस तथ्य के वर्णन को अपनाकर
नैषधकार ने अपनी सामुद्रिक शास्त्रमर्मज्ञता की पुष्टि की, जहॉ वह स्वयवर (पचनली) प्रसङ्ग मे (अग्नि के
पक्ष मे) कहते हे कि हे पिता के समान मुख वाली दमयन्ती! यह पूरी देव सभा का मुख है। यम और इन्द्र
के बीच मे इसका स्थान है, तुम इस तेजस्वी को अपना स्वामी बनाओ जो सदा कान्ति की अरुण अरुण
शोभा धारण करता है।[8] यहॉ दमयन्ती को पितृमुखी बताया गया है। एव पूर्वोक्त दमयन्ती सम्बन्धी सौन्दर्य

---

1 अरुन्धतीकामपुरन्ध्रिलक्ष्मीजम्भद्विषद्दारनवाम्बिकानाम् ।
चतुर्दशीय तदिहोचितेव गुल्फद्वयाप्ता यददृश्यसिद्धि ॥ नै० 7/98

2 नै० 7/99 101, 105

3 नै० 7/106, 107

4 नै० 7/90

5 नै० 20/95

6 नै० 8/53

7 नै० 13/12 मल्लिनाथ एव नारायण द्वारा उद्धृत्

8 एतन्मुखा विबुधससदसावशेषा माध्यस्थ्यमस्य यमतोऽपि महेन्द्रतोऽपि ।
एन महस्विनमुपेहि सदारुणोच्चैर्येनामुना पितृमुखि ! घ्रियते करश्री. ॥ नै० 13/12

चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है, पितृमुखी कन्या, सौन्दर्य, विदुषी, मृदुभाषी एव चौसठ कलाओ म [illegible] साथ ही शौभाग्यशालिनी होती है। इस प्रकार नैषधकार द्वारा वर्णित नल तथादमयन्ती [illegible] सरस्वती के शरीर के लक्षणो को क्रमश शौभाग्यशाली एव सुन्दर पुरुष तथा अनुपम सुन्दर [illegible], सौभाग्यशालिनी स्त्री के लक्षण समझे जाने चाहिए। वराहमिहिर ने वृहत्सहिता मे जिन सामुद्रिक [illegible] मीमासा रखी है उनमे प्रमुख है, सत्य, मय, यवन, मणित्थ, जीवशर्मा, विष्णुगुप्त, आचार्य [illegible] वशिष्ठ, भारद्वाज, शौनक, अत्रि, देवस्वामी, सिद्धसेन। सामुद्रिक शास्त्र के प्रमुख ग्रन्थो मे, जातक स्कन्ध [illegible] वरुणसहिता, गौरी जातक, कालचक्रजातक, वृहत पाराशरी, लघु पाराशरी, [illegible], भृगुसहिता, [illegible] ग्रथ, मीनराजजातक,, सारावली, अग्निपुराण, नृहरि का जातकसार तथा वराहमिहिर का वृहज्जातक प्रधान ग्रथ है।

दशम अध्याय

नैषध में अन्य शास्त्रीय संदर्भ

पाकशास्त्र

भोजन बनाने या पकाने की क्रिया को पाक (कर्म) अभिहित किया जाता है। पाक शब्द की निष्पत्ति पच्+घञ् के सयोजन से होती है। व्यञ्जन किस विधि से निर्मित किये जाये, कि वह सुस्वाद बने उन विधियो का ज्ञान पाकशास्त्र के अन्तर्गत ही समाहित है। वैदिक यज्ञो मे पुरोडाश के पकाने की प्रक्रिया स्पष्ट रूप से उल्लिखित है इसलिए पाकशास्त्र का प्रादुर्भावतो वैदिककाल से ही माना जाना चाहिए, तदनन्तर मनुस्मृति महाभारत एव भागवत पुराण मे उपलब्ध सदर्भों से भी इस विद्या के प्रचलन के सकेत मिलते है। पाक कर्म के अधिष्ठातृ देव अग्नि हैं। अग्नि को सूपायन' शब्द से सम्बोधित किया जाता है।[1] अत पाक क्रिया को सूप (कर्म) नाम भी दिया जा सकता है। श्रीहर्ष ने नैषधीयचरित के चौदहवे सर्ग मे नलदमयन्ती स्वयवर प्रसङ्ग मे देवताओ (इन्द्र, अग्नि, वरुण, यम) के द्वारा दमयन्ती की प्राप्ति हेतु नल के दोत्य कर्म से एव दमयन्ती द्वारा देवताओ की अर्चना से प्रसन्न होने पर सभी देवताओ द्वारा उन दोनो को अलग-अलग वरदान देने का विवरण दिया है। जिसमे अग्निदेव नल को वर देते हुए कहते हैं कि "नल तुम्हारी समृद्धि मेरे देखने मात्र ही से कामधेनु के समान इच्छापूरक तथा अपार हो। रोगो मे दाहरूप तथा भोजनादि पकाने मे पाकरूप मेरी मूर्ति तुम्हारी इच्छा के अधीन रहेगी। तुम अनग से ही सुन्दर तथा सामर्थ्यशाली बनो, तुम्हारे द्वारा पकाये अन्न, मत्स्य, रस आदि पदार्थ अमृत से बढकर स्वादिष्ट हो। राजन् हम जानते है कि सूपकार क्रिया मे आपको विशेष अभिरूचि है।[2] महाभारत से भी इस तथ्य की पुष्टि होती हे यथा –

> प्रहृष्टमनस सर्वे नलायाष्टौवरान् ददु। प्रत्यक्षदर्शन यज्ञे गति चानुत्तमाशुभाम् ॥
> नैषधाय ददौशक्र प्रीयमाण शचापति । अग्निरात्मभव प्रादाद् यत्र वाञ्छति नैषध ॥
> लोकानात्मप्रभाश्चैव ददौ तस्मै हुताशन। यमस्त्वन्नरस प्रादाद् धर्मे च परमास्थितिम् ॥
> अपा पतिरपा भाव यत्र वाञ्छति नैषध.। सजश्चोत्तमगन्धाढ्या सर्वेच मिथुन ददु॥[3]
> अर्थकृच्छेषु चैवाह प्रष्टव्यो नैपुणेषु च। अन्नसस्कारमपि च जानाम्यन्यैर्विशेषत॥[4]

नैषधकार ने सालहवे सर्ग मे व्यजनो की विविधता एव उनके सुस्वादु होने का जो विवरण दिया है, उससे यह स्पष्ट होता है कि वे पाक विद्या के भी जानकार थे।[5] एव तत्कालीन समय मे चतुर सूपकारो के होने की समीचीनता भी इस विवरण से प्रकट होती है। नल के पाकक्रिया ज्ञाता होने के प्रमाण महाभारत मे अन्यत्र भी उपलब्ध होते हैं जहां दमयन्ती बाहुक रूप धारी नल के द्वारा पाच्य व्यजनों को

---

1 स न· पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा न. स्वस्तये॥ ऋग्वेद- 1/1/9 सायण, सूपायन की व्याख्या-सु सुखेन उपायन प्रापण यस्य स करते हैं यद्यपि वे ऋग्वेद (10/18/11) में सूपायना का अर्थ करते हैं शोभनोपगमना सूपचारिका, तथा अथर्ववेद (18/3/50) में सूपायस्मै भव सूपसर्पणा- सूपायना सुखेनोपगन्तुमहा सूपसर्पणा शोभनोनोपसर्पणयुक्ता च भव । जबकि यहां वे भट्टभाष्कर की व्याख्या सूपायन सूपचारण सुखेनोपचरणीय परिचरणीयो वा भव - - -शोभनोपायो वा स्वीकार करते हैं। वेंकटमाधव ने सूपायन. की 'सूपचर' व्याख्या की।

2 धूमावलिश्मश्रु तत सुपर्वा मुख मखास्वादविदा तमूचे ।
काम मदीक्षामयकामधेनो· पयायतामभ्युदयस्त्वदीय ॥
यादाहपाकौपयिकी तनुर्मेभूयार्त्तवदिच्छावशवर्तिनी सा ।
तया पराभूततनोरनगास्तस्या प्रभु सन्नधिकस्त्वमेधि ॥
अस्तुत्वया साधितमन्नमीनरसादि पीयूषरसातिशायि ।
यद्भूप! विद्मस्तवसूपकारक्रियासु कौतूहल शालिशीलम् ॥ नैषध 14/76, 77, 78

3 महाभारत नलोपाख्यान पर्व-57/35- - - 38

4 महाभारत नलपर्व 67/3

5 नै० 16/48- - - 120

चखकर यह जान लेती है कि यह नल ही है। अन्य कोई दूसरा [illegible]
कर सकता। ध्यातव्य है कि दमयन्ती ने यहाँ केशिनी का यह स्पष्ट [illegible]
दिया जाय, और न ही अग्नि, अगर वह नल ही है, तो अदृश्यमेव [illegible]
सकते है, क्योकि उसे अग्नि देव एव वरुणदेव[1] का वरदान [illegible]
मन्त्र से ही ही वे प्रकट हो जायेगे, एव दमयन्ती को इस तथ्य का [illegible][2] [illegible]
स्वरूप का निर्धारण करते हुए कहा गया है-' ॐ अग्निमीले पुरोहितं [illegible]
रत्नधातमम्।।[3] अग्नि का यही स्वरूप नैषधकार को भी अभीष्ट है[4] [illegible]
पतिदिन पॉच यज्ञ करने का विधान मनुस्मृतिकार ने किया है।[5] [illegible]
योगदान होता है क्योकि अतिथि का सत्कार, हाव-भाव दिनम्रता प्रदर्शन [illegible]
करवाने से यथेष्ठ रूप से यह यज्ञ सम्पन्न किया जाता है। पाकक्रिया [illegible]
भवभूति आदि ने उपलब्ध कराकर प्राचीन काल से ही इस विद्या के प्रचलन [illegible]

---

1 स्मिताञ्चिता वाचमवोचदेन प्रसन्नचेता नृपति प्रचेता ।
प्रदाय भैमीमधुना वरौ तु ददामि तद्यौतककौतुकेन ।।
यत्राभिलाषस्तव तत्र देश नन्वस्तु धन्वन्यपि तूर्णमर्ण ;
आपो वहन्तीह हि लोकयात्रा यथा न भूतानि तथाऽपराणि ।।
प्रसारिताप शुचिभानुनास्तु मरु समुद्रत्वमपि प्रपद्य ।
भवन्मनस्कारलवोद्गमन क्रमेलकाना निलय पुरेव '। नै० 14/82- - --84

2 न चास्य प्रतिबन्धेन देयोऽग्निरपि केशिनि । याचते न जल देय सवेथा त्वरमाणया ।
एतत् सर्व समीक्ष्य त्व समीक्ष्य त्व चरित मे निवेदय। निमित्त यत् त्वयादृष्ट बाहुके दैवमानुषम् ।
प्रेषित तत्र राज्ञा तु मास चैव प्रभूतवत् ' तस्य प्रक्षालनार्थाय कुम्भास्तत्रोपकल्पिता ।
ते तेनावेक्षिता कुम्भा पूर्णा एवाभवस्तत । तत प्रक्षालन कृत्वा समधिश्रित्य बाहुक
तृणमुष्टि समादाय सवितुरस्त समादधत् । अथ प्रज्ज्वतिरतत्र सहसा हव्यवाहन ।
पुनर्गच्छ प्रमत्तस्य बाहुकस्योपसस्कृतम् । महानसाद्द्रुत मासमानयस्व [illegible]
सा गत्वा बाहुकस्याग्रे तन्मासमपकृष्य च । अत्युष्णमेव त्वरितात्तत्क्षणात प्रियकारिणी ।
दमयन्त्यै तत प्रादात् केशिनी कुरुनन्दन । सो चिता नलसिद्धस्य मासस्य बहुश पुरा ।
प्राश्यमत्वा नल सूत प्राक्रोसद् भृशदु खिता । वैक्लव्य परम गत्वा प्रक्षाल्य च मुख तत
महाभारत नलपर्व- 75/4 5 11 12,13,20 21 22,23

3 ऋग्वेद 1/1/1
— अग्निर्मुख प्रथमा देवतानाम्- ऐ ब्रा0 1/4
— अग्निर्वैदेवानामवम - ऐ ब्रा0 1/1
— अग्निर्वै देवाना होता-ऐ0 ब्रा0 3/14
— अग्निरग्रे प्रथमः देवतानाम्- तै-ब्रा0 2/4/3/3
— अग्निरवमो देवतानाम्-तै0 स0 5/5/1/4

4 नै० 14/76, 77

5 अध्यापन ब्रह्मयज्ञ पितृयज्ञस्तुतर्पणम् ।
होमोदैवो बलिर्भौतो नृयसोतिथिपूजनम्।। मनुस्मृति।

6. — ओषधय फलपाकान्ता मनुस्मृति 1/46
— एव वर्तन्ते पाकयज्ञाश्च यज्ञकर्म च नित्यदा- महाभारत 3/30/15
— सूप भूयिष्ठमश्रीध्य नाद्य मास यथा पुरा- महाभारत 12/29/128
— न स जानाति शास्त्रार्थं दवी सूपरसानिव- मनुस्मृति 3/226
— पच्यन्ता विविधा पाका सूपान्ता पयसादय -भागवत 10/24/26 एव 11/27/34
— पाकयज्ञा गृह्याग्निसाध्या इष्टय - भागवत 6/19/24
— पुन पाकेन मृण्मयम (शुद्धयति)- मनु0 5/122
— रूपचक्षुस्तथा पाकस्त्रिविधा तेज उच्यते- महाभारत- 12/194/10
— नीवारपाकादि0 - रघुवश 5/9
— युयोजपाकाभिमुखैर्भृत्यान् विज्ञापनाफलै , रघुवश 17/40
— फलमभिमुखपाक राजजम्बूद्रुमस्य- विक्रमो0 4/27,
— आशीर्भिरेधयामासु पुर पाकाभिरम्बिकाम्- कु0 6/90
— पाकाभिमुखस्य दैवस्य- उ0 7/4, महावीरच/4/14
— याज्ञवल्क्य सहिता- 1/187/3
— एक एवायमर्थ पाकोनाम। तस्यार्थान्तरे वैरूप्यभवति।
अन्यथालक्षणओदनस्य पाक अन्यथा लक्षणो गुडस्य। मीमासा सूत्र 7/2/20-शाबरभाष्य।

महाराज भीम ने भी सभी बारातियो का स्वागत सत्कार किया ...
बरातियो खिलाकर दानादि से उनकी परिचर्या की। बरातियो द्वारा किये ...
ने अपनी पाकशास्त्रज्ञता का परिचय दिया है। जहा वह कहते है कि ...
क्रिया मे प्रवृत्त हुए।[1] ऐसे विवरण से यह ध्वनित होता है कि उस ...
भोजन करना श्रेष्ठ माना जाता था। बरातियो को मणिखचित पात्रो मे भोजन ...
निकल रही थी, बिना टूटे, पककर भी एक दूसरे से अलग, अत्यन्त ...
सुगन्धित चावल को बरातियो ने खाया।[3] यही चावल निर्मित श्रेष्ठ ...
चावल दूध के साथ, तो कुछ ने दही के साथ मिलाकर खाया।[4] उत्तम ...
श्रीहर्ष कहते है-

> अमीभिराकण्ठमभोजि तद्गृहे तुषारधारामृदितेव शर्करा ।
> हयद्विषद्वष्कयणीपय सुत सुधाहृदात्पङ्कमिवोद्धृत दधे ।
> तदन्तरन्त सुषिरस्य विन्दुभि करम्बित कल्पतरो जनाकृता ।
> इतस्तत स्पष्टमचोरि मायिना निरीक्ष्य तृष्णाचलजिह्वलम्भृतः ।[5]

दूध की विशेषता बृहस्तोत्ररत्नाकर मे निम्न रूप मे मिलती है-

> त्वदनुस्मृतिरेव पावनी स्तुतियुक्ता नहि वक्तुमीश ...
> मधुर हि पय स्वाभावते ननु कीदृक् सितशर्करान्वितम् ।

शाङ्र्गधर पद्धति मे भी कहा गया है-

> को हि तुलामधिरोहति शुचिना दुग्धेन सहजमधुरेण ।
> तप्त विकृत मथित तथापि यत्स्नेहमुद्गिरति ।।

चरक ने गाय के दूध को श्रेष्ठ माना "गोक्षीर क्षीराणाम्, इन्द्र ने भी कहा है 'अमृत व ...
क्षीर।" एव अर्थसग्रह मे वर्णन मिलता है- गव्य तु जीवनीय रसायनम्। भोजप्रबन्ध मे कहा गया है-

> भोजन देहि राजेन्द्रघृतसूपसमन्वितम्। माहिष च शरच्चन्द्रचन्द्रिकाधवल दधि,

वृद्ध चाणक्य का कथन है-

> अन्नाद्दशगुण पिष्ट पिष्टाद्दशगुण पय ।
> पयसोऽष्टगुण मास मासाद्दशगुण घृतम् ।।

रूद्रालकारटीका मे कहा गया है कि घी खाने से आयु बढती है 'आयुर्घृत'। छान्दोग्य उपनिषद्
का कथन है- "आहारशुद्धौ सत्वशुद्धि" एव गीता मे भी कहा गया है -

> आयु सत्व बलारोग्यसुखप्रीति विवर्धन। ।
> रस्या स्निग्धा स्थिरा हृद्या आहारा सात्विकप्रिया ।।

---

1 नै० 16/58, पतद्वारिणि पदे मन्दपाणिनेति योज्यम्-नारायण।

2 हरिन्मणेभेजिनभाजनेऽर्पिते गता प्रकोप किल वारयात्रिका ।
भृत न शाकै प्रवितीर्णमस्ति वस्त्विषेदमेव हरितेति बोधिता ।। नै० 16/66

3 — अमी लसद्वाष्पमखण्डिताखिल वियुक्तमन्योन्यममुक्तमार्दवम् ।
रसोत्तर गौरमपीवर रसादभुञ्जतामोदनमोदन जना ।। नै० 16/68
— वीणा वशश्चन्दन चन्द्रभासश्चन्द्राभासा यौवनस्थास्तरुण्य ।
नैतद्रम्य क्षुत्पिपासातुराणा सर्वारम्भास्तण्डुला प्रस्थमूला ।। चाणक्यराजनीतिशास्त्र।

4 नै० 16/80-91

5 नै० 16/93-94

दधि का वर्णन सुभाषित रत्नभाण्डागार मे भी मिलता है। यथा-

दधि मधुर मधु मधुर द्राक्षा मधुरा सुधाऽपि मधुरैव ।
तस्य तदेव हि मधुर यस्य मनो यत्र सलग्नम् ।।

दही से बनने वाले रायते (राजिकाराद्धम् दधद्दधि) को भी बारातियो ने प्रेम से खाया। रायते के गुणो या विशेषताओ का वर्णन करते हुए नैषधकार लिखते है कि-

न राजिकाराद्धमभोजि तत्र कैर्मुखेन सीत्कारकृता दधद्दधि ।
धुतोन्तमाङ्गै कटुभावपाटवादकाण्डकण्डूयितमूर्धन्नभि ।।
वियोगिदाहाय कटूभवत्त्विषस्तुषारभानोरिव खण्डमाहृतम् ।
सित मृदु प्रागध दाहदायि तत्खल सुहृत्पूर्वमिवाहितस्तत ।।[1]

श्रीहर्ष ने यह भी विवरण दिया कि भोजन मे (घी) घृत कटोरे मे भर-भर कर प्रत्येक बाराती के सम्मुख रखा गया था।[2] मृगमास इतना स्वादिष्ट बना था कि बाराती आश्चर्य मे पड गये कि यह कैसे बनाया गया होगा, साथ ही कोमल मास की बनी फली की प्रशसा भी की।[3] मत्स्य, मृग, बकरे तथा पक्षियो के मास से कोमल एव सुगन्धित भोज्य पदार्थ अनगिनत बने थे। यथा –

अराधि यन्मीनमृगाजपत्रिजै पलैर्मृदु स्वादु सुगन्धि तेमनम् ।
अशाकि लोकै कुत एव जेमितु न तत्तु सख्यातुमपिस्म शक्यते ।।[4]

चतुर सूपकारो ने भोजन निर्माण इस विचित्रता से किया था कि बारातियो को सामिष पदार्थ निरामिष लगते थे एव निरामिष पदार्थ सामिष[5] अनेक वस्तुओं के सयोग से भोजनविधि निर्माण का वर्णन करते हुए श्रीहर्ष कहते है कि अनेक वस्तुओं के सयोग से जो भोज्य पदार्थ बना था, उसका उन सभी मिश्रित वस्तुओ से भिन्न रूप तथा स्वाद था। यथा-

अनेकसयोजनया तथाकृतेर्निकृत्य निष्पिष्य च तादृगर्जनात् ।
अमी कृताकलिकवस्तुविस्मय जना बहु व्यजनमभ्यवाहरन् ।।[6]

---

1 नै० 16/73, 74

2 — नै० 16/85

— चरक ने घृत को सभी स्नेहो में श्रेष्ठमाना है- सपिस्तैल वसा मज्जा सर्वस्नेहोत्तमा मता। एषु चैवोत्तम सर्पि।

— "घृत के बारे में निम्न विवरण भी दर्शनीय है-

आयुर्घृत, नदी पुण्य भयचोर सुख प्रिया। वैर द्यूत, गुरूज्ञान श्रेयो ब्राह्मणपूजनम्।' रूद्रालकार टीका
श्रेय पुष्पफल वृक्षाद् दध्न श्रेयो घृत स्मृतम्। श्रेयस्तैल च पिण्याकाच्छ्रेयान् धर्मस्तु मानुषात्।। पंचतत्र
अमृत नाम यत्सन्तो मन्त्रजिह्वेषु जुह्वति। शोभैव मन्दरक्षुब्धक्षुभिताम्भोधिवर्णना।। शिशुपालबध-2/107

3 — व्यधुस्तमा ते मृगमाससाधितं रसादशित्वा मृदु तेमन मन ।
निशाधयोत्सङ्गकुरङ्गजैरद पलै. सपीयूषजलै किमश्रपि ।। नै० 16/76
नखेन कृत्वाधरसन्निभा निभाद्यु वा भृदुव्यञ्जनमासफालिकाम् ।
ददश दन्तै प्रशशस तद्रस विहस्य पश्यन्परिवेषिकाधरम् ।। नै० 16/82।

— तेमन (मृगमास निर्मित व्यञ्जन) की व्याख्या हेमचन्द्र ने कहा 'तेमन व्यञ्जन क्लेदे।'
अमरकोष में कहा गया है- 'स्यात्तेमन तु निष्ठानम्'

4 नै० 16/87

5 यथामिषे जग्मुरनामिषभ्रम निरामिषे चामिषमोहमूहिरे ।
तथाविदग्धै परिकर्मनिर्मित विचित्रमेते परिहस्य भोजिता ।। नै० 16/81

6 नै० 16/83

भोजनावसर मे बीच-बीच मे पानी वितरण का वर्णन करना नैषधकार नहीं भूले साथ ही उससे होने वाले परिहास का।[1] जल कृष्णागुरु से सुगन्धित किया गया था एवं सुराई तथा घट में रखा गया था बाराती जितनी बार पानी पीते थे, उतनी बार उसकी प्रशंसा करते थे यथा-

> अकारि नीहारनिभ प्रभञ्जनादधूपि [illegible] ।
> निपीय भृङ्गारकसङ्गि तत्र तैरवर्णि वारि प्रतियारमीदृशम् ।।
> त्वयाविधातर्यदकरि चामृत कृत च यज्जीवनमम्बु साधु तत ।
> वृथेदमारम्भि तु सर्वतोमुखस्तथाचित [illegible] ।।[2]

सुश्रुत का भी कथन है कि भोजन करने वाले को बीच-बीच मे अनेक बार पानी के घूंट पीने चाहिए क्योकि वही अन्न जिह्वा साफ हो जाने के कारण नवीन अन्न के समान रूचिकर प्रतीत होता है।[3] चरक ने हितकारी जल के बारे मे कहा-

> दिवा सूर्याशुसतप्त निशि चन्द्राशुशीतलम् ।
> कालेन पक्व निर्दोषमगस्त्येनाविषीकृतम् ।।
> हसोदकमिति ख्यात शारद विमल शुचि ।
> स्नानपानावगाहेषु हितमम्बु यथाऽमृतम् ।।

चाणक्यशतक मे आया है-

> कूपोदक वटच्छाया श्यामा स्त्रीचेष्टकालयम् ।
> शीतकाले भवेदुष्णमुष्काले च शीतलम् ।

भोजनावसर मे बीच-बीच मे थोडा पानी पीने की सम्मति वृद्धचाणक्य, क्षेम कुतूहल एव पद्मपुराण ने भी दी है।[4] भोजन मे गर्म एव ठण्डे दोनो प्रकार के व्यजन थे।[5] बीच-बीच मे दमयन्ती के भाई दम द्वारा भोजन परोसने वालो को निर्देश भी दिया जा रहा था कि जिसको जो व्यजन रुचिकर लगे वही दिया जाय।[6] नैषधकार दही बडे का वर्णन एव उसकी विशेषता बतलाते हुए कहते हैं कि अन्त मे दही बडे से सारा भोजन सजा दिया गया। श्रेष्ठ दही बडे वही होते है, जिनके किनारो पर गोल चक्करदार रेखाये बन गई हो साथ ही उसे घी मे इतना पकाया जाय कि उनका रग कुछ रक्तमिश्रित पीतिमा लिए हुए हो जाय। श्रीहर्ष ने दही बडे को भोजन विधि का समाप्ति सूचक माना है, ऐसा प्रतीत होता है कि दही बडा के खाने का प्रचलन भोजनान्त मे ही था।[7] जब कि भोजनान्त मे मिष्ठान्न खाने का प्रचलन परम्परया मान्य है (भोजनान्ते मिष्ठान्न इक्षत)। श्रीहर्ष भी इसी मत से सहमत दिखते है, तभी तो उन्होंने लट्डू[8] तथा शार्करी[9] (जलेबी या इमरती सदृश) के भी परोसने का वर्णन किया। बलात् भोजन परोसने, जो कि प्रेम का प्रतीक माना जाता है, का भी वर्णन नैषधकार ने किया है।[10] भोजन का अत्यन्त रमणीय शैली मे वर्णन करते हुए

1 नै० 16/84
2 नै० 16/89,90
3 प्रक्षालयेदद्भिरास्य भुञ्जानस्य मुहुर्मुहु। विशुद्धरसने तस्मै रोचतेऽन्नमपूर्ववत्। सुश्रुत।
4 अजीर्णे भेषज वारि, जीर्णे वारि बलप्रदम्। भोजने चामृतं वारि, भोजनान्ते विषप्रदम् ।। वृद्धचाणक्य।
अत्यम्बुपानान्न विपच्यतेऽन्न निरम्बुपानाच्च स एव दोष। तस्मान्नरो वह्निविवर्धनाय मुहुर्मुहुर्वारि पिबेदभूरि ।। क्षेमकुतूहल।
अपा सस्पर्शनात् स्नानात् पानाद् दर्शनतोऽपि वा। मनुष्या सिद्धिमायान्ति बाह्याभ्यन्तर[illegible] । पद्मपुराण।
5 नै० 16/78, 79
6 नै० 16/48, 49, 97
7 समाप्तिलिप्येव भुजिक्रियाविधेर्दलोदरं वर्तुलयालयीकृतम् ।
अलकृत क्षीरवटैस्तदश्नतां रराज पाकार्पितगैरिकश्रिया ।। नै० 16/98
8 घनैरमीषा परिवेषकैर्जनैरवर्षि वर्षोपलगोलकावली ।
चलद्भुजाभूषणरत्नरोचिषा धृतेन्द्रचापै श्रितचान्द्रसौरभा ।। नै० 16/100
9 नै० 16/104

श्रीहर्ष कहते है कि भोजन करने वाले बारातियो के लिए तो भोजन क्रिया ही उनकी प्रिया तथा अनुराग की पात्र नायिका बनी थी, दूध उसकी मुस्कान था, मालपुये उसके शृङ्गारवस्त्र थे, बडे चन्द्रमुख थे, बडे लड्डू उनके स्तर थे, एव उज्ज्वल भात ही उसके हार थे।[1] मालपुये के साथ-साथ श्रीहर्ष ने मधुर आम्ल, लवण इत्यादि षड्रस व्यजनो का भी विवरण दिया।[2] भरतमुनि के नाट्यशास्त्र मे भी षडरस व्यजनो का वर्णन मिलता है। यथा- "यथा हि नानाव्यजनौषधिद्रव्यसयोगाद्रस निष्पत्तिर्भवति, यथा हि गुडादिभिर्द्रव्यैव्यजनैरोषधिभिश्च षाडवादयो रसा निवर्तन्ते, तथा नानाभावोपगता अपि स्थायिनो भावा रसत्वमाप्नुवन्तीति।"

अत्राह- रस इति क पदार्थ ? उच्यते आस्वाद्यत्वात्। कथमास्वाद्यते रस ? यथा हि नानाव्यजनसस्कृतमन्न भुञ्जाना रसानास्वादयन्ति सुमनस पुरुष हर्षादींश्चाधिगच्छन्ति, तथा [illegible] वागङ्गसत्वोपेतान् स्थायिभावानास्वादयन्ति सुमनस प्रेक्षका, हर्षादींश्चाधिगच्छन्ति तस्मान्नाट्यरसा इत्य[illegible]। अत्रानुवश्यौ श्लोकौ भवत।

> यथा बहुद्रव्ययुतैर्व्यञ्जनैर्बहुभिर्युतम् ।
> आस्वादयन्ति भुञ्जाना भक्त भक्तविदोजना ।।[3]

भीम ने भी बहुविध व्यञ्जनो को बारातियो को खिलाया परन्तु युवतियो के भाव-भङ्गिमाओ से प्रादुर्भूत शृङ्गार नाम के सातवे-भोज्य पदार्थ ने तो सभी बारातियो को सन्तुष्ट कर दिया।[4] भोजनान्त मे पान सुपाड़ी के साथ-साथ भेंट रूप मे रत्न देने का वर्णन नैषधकार ने किया है जो भारतीय सस्कृति के सर्वथानुरूप है।[5]

श्रीहर्ष ने उपर्युक्त व्यञ्जनो के अतिरिक्त सत्तू,[6] जो तत्कालीन तथा तद्देशीय सामान्य एव विशिष्ट व्यक्तियो का प्रिय भोज्य पदार्थ रहा होगा उसका भी वर्णन किया। साथ ही हैयगवीन (नवनीत) एव मधु[7], पर्पट (पापड)[8] एव अपूप (माल पुआ)[9], इक्षु (गन्ना), खण्ड (खाड) एव द्राक्षारस,[10] मदिरापान,[11] गुडपाक,[12] शर्करा चक्रिका (जलेबी सदृश)[13] दुग्ध तथा द्राक्षासव[14] का उल्लेख किया। फलो मे दाडिम, अगूर, आम, बेल, जामुन, केला आदि का भी विवरण मिलता है।[15] इस प्रकार तत्कालीन समय मे प्रचलित

---

1 पय स्मिता मण्डकमण्डनाम्बरा वटाननेन्दु पृथुलड्डूकस्तनी ।
पदं रूचेर्भोज्यभुजा भुजिक्रिया प्रियाबभूवोज्ज्वलकूरहारिणी ॥ नै० 16/107

2 नै० 16/109

3 नाटयशास्त्र - षष्ठ अध्याय, पृ 93

4 न षड्विध षिड्गजनस्य भोजने तथा यथा यौवतविभ्रमोद्भ ।
अपारश्रृङ्गारमय रामुन्मिषन्भृश रसरतोषमधत्त सप्तम ॥ नै० 16/109

5 नै० 16/110, 111

6 प्रतिहट्टपथे घरटटआत्पथिकाह्वानदसक्तुसौरभै ।
कलहान्न घनाद्यदुत्थितादधुनाप्युज्झति घर्घरस्वर ॥ नै० 2/85

7 नै० 3/130

8. नै० 22/147

9 अलम्भि तुङ्गासनसंनिवेशनादपूपनिर्माणविदग्धयादर । नै० 15/12 उत्तरार्द्ध

10. नै० 21/152

11. नै० 21/149

12 नै० 21/153

13 नै० 21/155

14 नै० 21/160

15. नै० 1/82,83, 89,94, 2/37,36, 7/92,93, 11/85, 86, 21/152

भोजन प्रकारो एव फलो का विवरण देते हुए नैषधकार ने दिन मे दो बार ही भोजन करने की अपनी सम्मति[1] जो सर्वथा स्वास्थ्य की दृष्टि से उचित भी है। कहा भी गया है-

एककाल भवेद्देय दुर्बलाग्निविवृद्धये ।
समाग्नये तथाऽऽहारो देय कालमथो द्वयम् ।।

चरक का भी कथन है-"कालभोजनमारोग्यकराणा श्रेष्ठम्।" कादम्बरी मे भी वर्णन आया है "नाहार वेलातिक्रमणीया।" मालविकाग्निमित्र मे कालिदास कहते है- "उचितेबेलातिक्रम चिकित्सका दोषमुदाहरन्ति।" महाभारत मे उचित आहार के साथ ही प्रात साय दो बार भोजन करने का विधान वर्णित है-

गुणाश्च षण्मितमुक्त भजन्ते आरोग्यमायुश्च बल सुख च ।
अनाविल चास्य भवत्यपत्य न चैनमाद्यूनमिति क्षिपन्ति ।।
साय प्रातर्मनुष्याणा भोजन वेदनिर्मितम् ।
यथा निरिन्धनो वह्निरल्पोवाऽतीन्धनावृत ।।

स्वादयुक्त भोजन किसे कहते है? इसका उत्तर सुश्रुत के शब्दो मे दिया जा सकता है कि "भुक्त्वाऽपि यत्प्रार्थयते भूयस्तस्वादुभोजनम्।" एव भोजन का सुस्वादु बनना पाककर्मक्रिया विधि का मानदण्ड है, जो कि चतुर सूपकारो द्वारा ही बनाया जा सकता है एव इन्हीं दक्ष सूपकारो की क्रियाविधि मे ही पाकशास्त्र का महत्ता अन्तर्निहित रहती है। नैषधकार ने नैषध के प्रथम सर्ग मे नल के वर्णन मे पाकशास्त्र (सूपशास्त्र) विषयक सूक्ष्य एव विस्तृत नियमो की जानकारी देते हुए कहा है कि राजा नल की जिह्वाग्र नर्तकी सी होकर त्रयी (ऋक्, यजु, सामवेद) विद्या ने मानो अठारह द्वीपो की जय लक्ष्मी को पृथक पृथक करने की इच्छा से अपने छाहो अगो (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द, ज्योतिष) के गुणन द्वारा अठारह रूप धारण किये थे, अथवा षड्रसो वाली सूपकार विद्या ने परस्पर न्यूनाधिक समत्वरूप मे सम्मिश्रण के द्वारा अष्टादश रूपो वाली हो गयी थी। यथा -

अमुष्य विद्यारसनाग्रनर्तकी त्रयीव नीताङ्गणेन विस्तरम् ।
अगाहताऽष्टादशता जिगीषया नवद्वयद्वीपृथग्जयश्रियाम् ।।[2]

नारायण ने अपनी नेषध की टीका मे इस श्लोक का अर्थान्तर करते हुए लिखा है - "अथवा - स्वादुरसोत्पादकप्रसादकथनद्वारा श्रुता सती लोकस्थ रसनाग्र जिह्वाग्र नर्तयतीति रसनाग्रनर्तकी। नलस्थ सूपकार विद्या अङ्गानामवयभूताना मधुराम्ललवणतिक्तकटुकषायाख्याना षण्णा रसाना न्यूनाधिकसमत्वरूपेण गुणेनाष्टादशता प्राप। यथा - मधुरे द्रव्ये मधुरद्रव्यान्तरस्थ न्यून प्रक्षेप , तिक्तेऽधिक , अम्ले सम , इत्यनेन प्रकारेण सर्वरसाना त्रैविध्येऽष्टादशत्वम्। यद्वा - अङ्गाना दुग्धदध्यादीनाम्। तथा च सूपशास्त्रम् "दुग्ध दधि नवनीत घोलवने तक्रमस्तुयुग्मम्। मध्याटविकहविष्य द्विदलान्न चेति विज्ञेयम्।। कन्दो मूल शाखा पुष्य पत्र फल चेति। अष्टादशक मास भक्ष्याण्युक्तानि गिरिसुतया।। इति। दध्युदक मस्त्वित्युच्यते, कणिशभव ब्रीह्यादि, शिम्ब्यादिभव मुद्गादि, घण्टकभवं चणकादि। इद त्रिविध धान्यम्। भूचरखेचरजलचरभेदास्त्रिविध मासम्। षड्रसा कन्दमूलफलनालपत्रपुष्पमयं षड्विध शाकम्। इत्येव धान्याद्यङ्गगुणेन विस्तर नीता इति केचित्।।"[3] उपर्युक्त सभी वर्णनों से नल के साथ-साथ श्रीहर्ष की पाकशास्त्रज्ञता की स्थिति दृष्टिगोचर होती है।

---

1 इति द्विकृत्व शुचिमृष्टभोजिना दिनानि तेषा कतिचिन्मुदा ययु ।
द्विरष्टसवत्सरवारसुन्दरीपरीष्टिभिस्तुष्टिमुपेयुषा निशि ।। नै० 16/112

2 नै० 1/5

3 नारायणी टीका, पृ० 6-7

अश्वशास्त्र

वैदिक सस्कृति के अन्तर्गत अश्वमेधयज्ञ एव बाजपेययज्ञ किये जाने का विवरण वाजसजेयि सहिता, ऋग्वेद, यजुर्वेद, कोटिलीय अर्थशास्त्र एव मनुस्मृति मे मिलता है।[1] इन यज्ञो मे अश्व की महनीय भूमिका होती थी, इसके साथ ही अश्वारोहण मे भी इनका प्रयोग प्राचीनकाल से लेकर आज तक होता आया है। वेयाकरणो ने अश्व शब्द की व्याख्या करते हुए अभिहित किया "अश्नुते अध्वान व्याप्नोति, महाशनो वा भवति" (अश्व+क्वन्)।[2] अश्व के बारे मे किस रग का, किस जाति का, कितनी लम्बाई एव उँचाई, उसके गले, पूँछ, खुरो की बनावट, उसकी भाषा, दोष, गुण, उसके रोगो की जानकारी एव उनका निदान का सम्पूर्ण ज्ञान अश्वशास्त्र के अन्तर्गत ही होता है। नैषधकार ने अश्वशास्त्र से सम्बन्धित विवरण नैषध मे दिया है, जिससे उनके स्वय के साथ-साथ नल की अश्वशास्त्रसता का परिचय मिलता है।[3] नल के अश्वशास्त्रविद् होने का प्रमाण महाभारत से भी मिलता है जहाँ कर्कोटक नामक नाग नल से कहता है कि हे राजन्! अयोध्या नरेश (ऋतुपर्ण) आपसे अश्वविद्या सीखकर आपको द्यूत विद्या तो सिखा ही देगे, साथ ही वे आपके मित्र भी बन जायेगे।[4] एव दमयन्ती के कथन से भी यह बात प्रमाणित होती है जहाँ दमयन्ती कहती हे कि इस पृथ्वी पर नल ही ऐसे है जो एक दिन मे सौ योजन की दूरी तय कर सकते है।[5] अयोध्या नरेश द्वारा एक दिन मे विदर्भदेश पहुँचने की इच्छा पर बाहुक रूप धारी नल ने उन्हे एक दिन मे ही पहुँचाने का वचन दिया तथा जब अश्व विद्या मे चतुर बाहुक रूपधारी नल ने राजा ऋतुपर्ण को रथ पर बैठाकर वार्ष्णेय नामक सारथि के साथ उन अश्वो को रथ सहित आकाश मार्ग मे उडाया तो बाहुक की इस निपुणता पर ऋतुपर्ण तो आश्चर्यचकित थे ही, वार्ष्णेय भी यह सोचने लगा कि यह बाहुक कहीं इन्द्र का सारथि मतालि अथवा अश्वशास्त्रज्ञ शालिहोत्र तो नहीं है, और अत मे निष्कर्ष पर पहुँचा कि बाहुक के रूप मे निश्चत रूप से महाराज नल ही है, कोई अन्य नहीं।[6] ऋतुपर्ण जो अकविद्या एव द्यूत विद्या के जानकार थ, उनसे नल ने दोनो विद्याएँ सीखकर उन्हे अश्वविद्या सिखायी[7] जिससे स्पष्ट हो जाता हे कि नल अश्वशास्त्र विद् थे।

अश्व की सात जातियाँ श्रेष्ठ मानी जाती हैं। यथा -

---

1 अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान् त्समत्सुचोदय । - ऋग्वेद 6/75/13
अरिष्टो येषा रथो व्यवश्वदावन्नीयते । - ऋग्वेद 5/18/3
उतनो गोविन्दश्ववित् ।- ऋ 9/55/3
अश्वसधर्माणो हि मनुष्या नियुक्ता कर्मसु विकुर्वते - कौटि अर्थ 2/9
यरतेऽश्वसनिर्भक्षो - वाज स 8/12, एव 30/13
पूर्व प्रहर्ता न जघानभूय प्रतिप्रहाराक्षममश्वसादी ।
तुरङ्मस्कन्धनिषण्णदेह प्रत्याश्वसन्त रिपुमाचकाङ्क्ष ॥ रघुवश 7/47
सूतानामश्वसारथ्यम् - मनु0 10/47
अश्वहृदये निवेश्यात्मानम् - बाण-कादम्बरी पृ 80

2 उणादि सूत्र 1/49

3 नै० 1/57---------73

4 – अयोध्या नगरीं रम्यामद्य चवै निषधेश्वर । स तेऽक्षहृदय दाता राजाश्वहृदयेन वै ॥
इक्ष्वाकुकुलज श्रीमान् मित्र चैव भविष्यति । भविष्यसि यदाक्षज्ञ श्रेयसा योक्ष्यसे तदा ॥ -महाभारत नलपर्व 66/21, 22
– स राजानमुपा तिष्ठद् बाहुकोऽमिति ब्रुवन् । अश्वाना वाहने युक्त पृथिव्या नास्तिमत्सम ॥ - महाभारत नलपर्व 67/2

5 त्वामृते न हि लोकेऽन्य एकाह्ना पृथिवीपते ।
समर्थो योजनशत गन्तुमश्वैर्नराधिप ॥ महाभारत नलपर्व 76/30 एव 73/1-34 तथा 67/1-19।

6 महाभारत वनपर्व - 71/1-34

7 महाभारत वनपर्व 72/26-----29

अमृताद् वाष्पतो वह्नेर्वेदेभ्योऽण्डाच्च गर्भत।
साम्नो हयानामुत्पत्ति सप्तधा परिकीर्तित ॥[1]

एव अश्वो की शरीराकृति निम्न रूप की होनी चाहिए यथा –

काष्ठतुल्यवपुर्धृष्यो मिथ्याचारश्च निर्भय ।
द्वादशाङ्गुलमेढ्रश्च दरिद्रस्तु हयोमत ॥[2]

महाभारत मे भी उल्लेख मिलता है कि नल जो अश्वशास्त्रज्ञाता थे, वह उन श्रेष्ठ छोडो को घुडसाल से निकाल लाये, जो सिन्धु देशोत्पन्न, तेज, बल, और शील से भरे हुए दशभौरियो से युक्त तथा मार्ग मे चलने मे समर्थ थे।[3] नैषधकार भी उपर्युक्त अश्वगुणो से सहमति व्यक्त करते हुए कहते है कि सिन्धु देश मे उत्पन्न, चन्द्र घवल, उच्चै श्रवासदृश सौन्दर्यमण्डित उस अश्व पर भूभद् विजेता विपुलनयन, पृथ्वीन्द्र नल आरूढ हुए।[4] हय का सबसे बडा गुण सत्वयुक्त (पानीदार) होना है।[5] अग्निपुराण के 288 एव 289 वे अध्याय मे भी अश्वशास्त्र पर चर्चा की गयी है। वहाँ अश्व के निम्नलिखित लक्षण कहे गये है। यथा-

अश्वाना लक्षण वक्ष्ये चिकित्साञ्चैव सुश्रुत ।
हीनदन्तो विदन्तश्च कराली कृष्णतालुक ॥
कृष्णजिह्वश्च यमजोऽजातमुष्कश्च यस्तथा ।
द्विशफश्च तथा श्रृगी त्रिवर्णो व्याघ्रवर्णक ॥
खरवर्णो भस्मवर्णो जातवर्णश्च काकुदी ।
श्वित्री च काकसादी च खरसारस्तथैव च ॥
वानराक्ष कृष्णशट कृष्णगुह्यस्तथैव च ।
कृष्णप्रोथश्च शूकश्च यश्च तित्तिरिसन्निभ ॥
विषमां श्वेतपादश्च ध्रुवावर्त्त विवर्जित ।
अशुभावर्त्तसंयुक्तो वर्जनीयस्तुरगम ॥
रन्ध्रीपरन्ध्रयोर्द्वौ द्वौ द्वौ द्वौ मस्तकवसोक्षसो ।
बाहुमूले गले श्रेष्ठा आवर्त्तास्तव शुभा परे ॥
शुकेन्द्रगोपचन्द्राभा ये च वायससन्निभा ।
सुवर्णवर्णा स्निग्धाश्च प्रशस्यास्तु सदैव हि ॥
दीर्घग्रावाक्षिकूटाश्च ह्रश्वकर्णाश्च शोभना ।
राज्ञा तुरगमा यत्र विजय वर्जयेत् तत ॥
पालितस्तु हयो दन्ती शुभदो दु खदोऽन्यथा ।
श्रिय पुत्रास्तु गन्धर्वा वाजिनो रत्नमुत्तमम् ॥[6]

---

1 सस्कृत अग्रेजी कोश, वामन आप्टे पृ० 278

2 सस्कृत अग्रेजी कोश, वामन आप्टे पृ० 279

3 अश्वाञ्जिज्ञासमानो वै विचार्य च पुन पुन। अध्यगच्छत् कृशानश्वान् समर्थानध्वनि क्षमान् ॥
तेजोबलसमायुक्तान् कुलशीलसमन्वितान्। वर्जितॉल्लक्षणैर्हीन पृथुप्रोथान् महाहनून् ॥
"शुद्धान् दशभिरावर्तै सिन्धुजान् वातरहस। दृष्ट्वा तानब्रवीद् राजा किचित कोपसमन्वित ॥ महाभारत वनपर्व-71/12–14
– खुरै खनन्य पृथ्वीमश्वो लोकोत्तर स्मृत (शालिहोत्रमें वर्णित)। नै 1/57 नारायणी टीका में उद्धृत्
– देवमणि शिवैऽश्वस्य कण्ठावर्ते च कौस्तुभे - इति विश्व - नै० 1/58 नारायणी टीका
– चलाचलप्रोथत्वमश्वजाति -नै० 1/60 नारायणी टीका

4 – स सिन्धुज शीतमह सहोदर हरन्तमुच्चै श्रवस श्रियम् हयम् ।
जिताखिलक्ष्माभृदनल्यलोचन स्तमारूरोह क्षितिपाकशासन ॥ नै० 1/64
– सिन्धुजम् इयनेनाश्वशास्त्रोक्त चतु पञ्चाशदुत्तमकुलजत्व वलित्व महाकायत्व च सूचितम् -नै०1/64 नारायणी टीका

5 सत्त्वेनरहितो न सग्रहा - नै० 1/73 नारायणी टीका सारसिन्धु का वचन है-
तल्लक्षणगुणै श्लाघ्यै किसत्त्वेनविना हय।
पञ्चेन्द्रिय समेतो प्रियथाकायो-विनात्मना- नै० 1/73 नारायणी टीका में उद्धृत्

6 अग्निपुराण 289/1 10

नैषधीयचरित मे उपलब्ध सन्दर्भो मे भी श्रेष्ठ अश्व के लक्षणो का प्रतिपादन मिलता है। प्रथम सर्ग मे जब राजा नल मदनाक्रान्तिवश उपवन मे जाना चाहते है, तव भृत्यगणो ने निरन्तर चञ्चलखुरो से वाजिशाला की भूमि खनने वाले, वल की अपेक्षा और अधिक वेग वाले, पुरुष प्रभाव से भी ऊँचे, विशेष रूप से अलकृत एक धवल अश्व को ले आये उसके गले मे देवमणि नामक भवरी तथा कण्ठमध्यमार्ग मे उठे हुए चन्द्ररश्मि धवल स्कन्ध बाल थे, तथा जो निरन्तर धरातल पर अपने पैर चलाये जा रहा था, एव चञ्चल ओठो वाला होत हुए भी, मौन था, क्यो कि वह समझता था कि यह राजा (नल) मेरे (अश्व के) अभिप्राय को स्वय जानते है।[1] स्पष्ट है कि श्रेष्ठ घुडसवार वही होता है, जो घोडे के हाव-भाव को एव उसके मौन भावो से व्यक्त भावो को समझ लेता हो। अग्निपुराण मे भी कहा गया है कि जो अश्वभावो का पारखी नहीं होता वह सफल अश्वारोही नहीं हो सकता । यथा-

अभ्यासाद्भियोगाच्च विनाशास्त्र स्ववाहक ।
स्नातस्य प्राड्मुखस्याथ देवान् वपुषि योजयेत् ।।
सहजा इव दृश्यन्ते गुणा सारिवरोद्मवर ।
नाशयन्ति गुणानन्ये सादिन सहजानपि ।।
गुणानेको विजानाति वेत्ति दोषास्त्तथापर ।
धन्यो धीमान् हय वेत्ति नोभय वेत्ति मन्दधी ।।[2]

परन्तु नल तो कुशल अश्वविद् थे, जैसा कि महाभारत मे उपलब्ध विवरण से पूर्व मे स्पष्ट ही कर दिया गया है, उनके लिए अश्व के मौन व्यवहार को जानना सुकर ही रहा होगा । नैषधकार के विवरण मे भी प्रतीत होता है कि नल के साथ-साथ अश्व भी नल के अभिप्राय का जानता था तभी तो वह दूसरे अश्वो की अपेक्षा स्वय को भृत्यगणो द्वारा ले जाये जाने पर हर्षित हो, अपनी चञ्चल पूँछ बार-बार हिला रहा था। श्रीहर्ष उस अश्व का वर्णन करते हुए कहते है कि वह वेग मे गरुण से भी द्रुततर, स्वच्छ दन्त पक्ति वाला पद्मरूप रेखा एव चामर चिह्नों से समन्वित था। यथा -

महारथस्याध्वनि चक्रवर्तिन परानपेक्षोद्वहनाद्यश सितम् ।
रदावदाता शुमिषादनीदृशा हसन्तमन्तर्बलमर्वता रवे ।।
सितत्विषश्चञ्लामरयुग्म चिन्ह नैरनिन्हु वान निजवाजिराजताम् ।।
अपि द्विजिह्वाभ्यवहारपौरूषे मुखानुषक्तायतवल्गुवल्गया ।
उपेयिवास प्रतिमल्लता रयस्मये जितस्य प्रसभ गरूत्मत ।।[3]

---

1 अभी ततस्तस्य विभूषित सित जवेऽपि मानेऽपि च पौरुषाधिकम् ।
उपाहरन्नश्वमजस्रचञ्चलै खुराञ्चलै क्षोदितमन्दुरोदरम ।।
अथान्तरेणावटुगामिनाध्वना निशीथिनीनाथमह सहोदरै ।
निगालगाद्देव मणेरिवोत्थितै विराजित केसरकेशरश्मिभि ।।
अजस्रभूमीतटकुट्टनोत्थितैरुपास्यमान चरणेषु रेणुभि ।
रयप्रकर्षाध्ययनार्थमागतैर्जनस्य चेतोभिरिवाणिमाङ्कितै ।।
चलाचलप्रोथतया महीभृते स्ववेगदर्पानिव वक्तुमुत्सुकम् ।
अल गिरा वेद किलायमाशय स्वय हयस्येति च मौनमास्थितम् ।। नै० 1/57 ' 60

2 अग्निपुराण 288/1,22,23

3 नै० 1/16 ------ 63

नल द्वारा उस अश्व पर आरूढ होने का चित्रण अत्यन्त काव्यात्मक तथ्यो के साथ श्रीहर्ष ने किया है, जो स्वाभाविक एव यथार्थ भी लगता है।[1] अश्वो की गति का चित्रण अतिशयोक्तिपरक शैली मे नैषधकार ने किया है जहॉ वह उन अश्वो की मनोभावनाओ को व्यक्त करते हुए कहते है कि वे अश्व पृथ्वी के साथ-साथ समुद्र को भी यदि वह स्थल होता तो उसे भी क्षण भर मे पार कर लेते, परन्तु आकाश को जिसे हरि (विष्णु) ने एक पैर से नापा था, उनके चार पैर होने के कारण सक्रमण करने मे उन्हे लज्जा आ रही थी। यथा

> प्रयातुमस्माकमियं कियत्पद धरा तदम्भोधिरपि स्थलायताम् ।
> इतीव वाहैर्निजवेगदर्पितै पयोधिरोधक्षममुद्धत रज ।।
> हरेर्यदक्रामि पदैककेन ख पदैश्चतुर्भि क्रमणेऽपि तस्य न ।
> त्रपा हरीणामिति नम्रितानैर्न्यवर्ति तैरर्धनभ कृतक्रमै ।।[2]

नल के अश्वपरक दीन वेनतेय (गरूण) है, दृष्टिगोचर पवन है, तथा महापरिमाण मन है, अर्थात नल के अश्वो को नैषधकार ने गरूण पवन एव मन जैसी गतिवाला बताते हुए कहा कि ऐसी कौन सी दिशा थी, जिसे उन अश्वो ने न नापी हो[3]। अश्वो मे धवल अश्व सर्व श्रेष्ठ होता है ऐसा नैषधकार के विवरण से प्रतीत होता ह क्योकि उन्होने धवल अश्व का ही वर्णन अनेकश किया है।[4] स्वयवर प्रसग मे कीकट नरेश की दिग्विजय का वर्णन करते हुए श्रीहर्ष कहते है कि इनके घोडो के खुर से उटी धूल से चारो ओर अधकार छा जाता है।[5] घोडे की चाल एव टाप का वर्णन करते हुए नैषधकार अभिहित करते हे कि कीकट नरेश, जो अपनी समस्त प्रजा को धर्मपालन की ओर प्रवृत्त करने वाले है, के अश्व पर सवार होने पर इनका अश्व अपनी खुर की धूलि से आकाश को ढकते हुए, टाप के शब्दो से लोगो के कानो को बहिर करते हुए सग्राम मे अपने अतिवातवेग से पवन को भी पगु करते हुए, तथा अपने गुणो के कारण वर्णन करने वाले को मूक बनाते हुए, चौफाल-कूदने के बहाने पृथ्वी (गौ) को पैरो से स्पर्श करना निन्दित समझता है।[6] स्पष्ट है कि यहॉ श्रेष्ठ अश्व के लक्षणो की बात श्रीहर्ष करते है कि श्रेष्ठ अश्व वही होता है जो चोफाल कूदे एव जिसके खुरो की टाप दूर-दूर तक सुनायी पडे साथ ही जो सादि की भाषा समझे। काशीनरेश के घोडे को इन्द्र के उच्चैश्रवा घोडे से भी श्रेष्ठ बताते हुए,[7] साथ ही उच्चै श्रुवा की उत्पत्ति समुद्र से बताते हुए नैषधकार कहते हैं कि उच्चै श्रुवा से श्रेष्ठ अश्व समुद्र ने वरुण को, वरुण ने भीम को एव भीम ने अपने जामाता नल को दिया, जो अपने वेग के कारण शीघ्र ही आखो से ओझल हो जाता,

---

1 निजमयूखा इव तीक्ष्णदीधिति स्फुटारविन्दाङ्किगत् पाणिपकजम ।
तमश्ववारा जवनाश्वयायिन प्रकाश रूपा मनुजेशमन्वयु ।।
ययान्नलकृत्य महारय हय स्ववाहवाहोचितवेषपेशल ।
प्रमोद नि स्पन्दतराक्षिपक्ष्मभिर्व्यलोकि लोकेर्नगरालयैर्नल ।।
क्षणादथैष क्षणदापतिभ्रम प्रभञ्जनाध्येयजवेन वाजिना ।
सहैव ताभिर्जनदृष्टिवृष्टिभिर्बहि पुरोऽभूत्पुरुहूत पौरूष ।। नै० 1/65 67

2 नै० 1/69, 70

3 प्राग्भूय कर्कोटक आचकर्ष सकम्बल नागवल यदुच्चै ।
भुवस्तले कुण्डिनागामि रासा तद्वासुकेश्चाश्वतरोऽन्वगच्छत् ।। नै० 108
– स सिन्धुज शीतमह सहोदस हरन्तमुच्चै श्रवस श्रिय हयम् । नै० 1/64

4 उपाहरन्नश्वमजस्रचञ्चलै खुराञ्चलै। क्षोदितमन्दुरोदरम्। नै० 1/54 एव 1/62

5 नै० 12/94

6 धूलीभिर्दिवमन्धयन्बधिरयन्नाशा खुराणा रवै–र्वात सयति खञ्जयञ्जवजवै स्तोतध्न्गुणैर्मूकयन् ।
धर्माराधनस नियुक्त जगता राज्ञामुनाधिष्ठित सान्द्रोत्फाल मिषाद्विगायति पदा स्प्रष्टु तुरगोऽपिगाम् ।। नै० 12/99

7 एतद्वलै क्षणिकतामपि भूखुराग्रस्पर्शायुषा रयरसादसमापयद्भि ।
दृक्पेय केवलनभ क्रमणप्रवाहैर्वा हैरलुप्यत सहसद्दगर्वगर्व ।। नै० 11/127

एव लौटते समय उसकी टापो से उठी धूल से दार्शको की ऑखे ढक जाती है, जिससे ऐसे अप्रतिम घोडे को देखने की दर्शको की अभीप्सा धरी की धरी रह जाती। यथा–

महेन्द्रमुच्चै श्रवसा प्रतार्य यन्निजेन पत्याऽकृत सिन्धुरन्वितम् ।
स तद्ददेऽस्मै हयरत्नमर्पित पुराऽनुबन्धु बरूणेन बन्धुताम् ।
जवादवारीकृत दूरदृक्पथस्तथाक्षियुग्माय ददे मुद न य ।
ददाद्दिदृक्षादरदासता यथा तयैव तत्पासुलकण्ठनालताम् ।।[1]

अश्व की उत्पत्ति का वर्णन कर श्रीहर्ष ने यह सकेत देना चाहा है कि वह अश्वो की जाति एव उनके वश से भी परिचित है। अग्निपुराण मे उपलब्ध विषय सामग्री से भी अश्वो की जाति या वश के बारे मे पता चलता है जहॉ अश्व के सात प्रकार के (वश, जाति) उत्पत्ति स्थान बताये गये है। यथा-

हय! गन्धर्वशराजस्त्व श्रृणुष्व वचन मम ।
गन्धर्वकुल जातस्त्व माभूस्त्व कुल दूषित ।।
द्विजाना सत्यवाक्येन सोमस्य गरुणस्यच ।
रुद्रस्य वरुणस्यैव पवनस्य बलेन च ।।
हुताशनस्य दीप्त्या च स्मर जाति तुरङ्गम ।
स्मरराजेन्द्र पुत्रस्त्व सत्यवाक्यमनुस्मर ।।
स्मरत्व वारूर्णी कन्या स्मर एव कौस्तुभ मणिम् ।
क्षीरोदसागरे चैव मथ्यमाने सुरासुरै ।।
तत्र देवकुले जात स्ववाक्य परिपालय ।
कुर्ले जातस्त्वमश्वाना मित्र मे भव शाश्वतम् ।।[2]

नल तो (कुशल अश्वरोही) सादिवरेष्ठ थे। उनके अश्वारोहण की कुशलता का चित्रण करते हुए नैषधकार लिखते है कि नल ने अपने क्षत्र के नीचे ही अपने घोडे से जो सुन्दर चक्कर लगवाये, उससे यह प्रतीत हो रहा था कि पवन उन्हीं चक्करो को सीखने के लिए बवडरो के रूप मे अब भी चक्कर लगाता दिखता है। यथा-

अचीकरच्चारू हयेन या भ्रमीर्निजातपत्रस्य तलस्थले नल ।
मरुत्किमद्यापि न तासु शिक्षते वितत्य वात्यामयचक्रमान ।।[3]

स्पष्ट है कि नल अश्वशास्त्रविद अवश्य रहे होगे तभी उन्हे अश्वसचालन की कुशल विधि ज्ञात थी एवविध वर्णन से नैषधकार भी अश्वशास्त्र मर्मज्ञ सिद्ध होते है। अग्निपुराण मे कुशल अश्वचालन की विधि का निर्देश भी द्रष्टव्य है। यथा-

प्रग्रहेण गृहीत्वाऽथ प्रविष्टो वाहभूतलम् ।
सव्यापसव्यभेदेन वाहनीय स्वसादिना ।।
आरुह्य सहसा नैव ताडनीयो हयोत्तम ।
ताडनाद् भयमाप्नोति भयान् मोहश्च जायते ।।
प्रात शादी प्लुतेनैव वल्गामुद्घृत्य चालयेत् ।
मन्द मन्द बिना नाल धृतवल्गो दिनान्तरे ।।
प्रोक्तमाश्वसनं सामभेदोऽश्वेन नियोज्यते ।

---

1 नै० 16/25, 26

2 अनिपुराण - 288/13 - 17

3 नै 1/73

कषादिताडन दण्डो दान कालसहिष्णुता ॥
पूर्व पूर्व निशुद्धौ तु विदघ्यादुत्तरोन्तरम् ।
जिह्वातले विनायोग विदध्याद् वाहने हये ॥[1]

मन्त्र-शास्त्र

नैषधीयचरितम् मे मन्त्रशास्त्र के कुछ सन्दर्भो का प्रसग श्रीहर्ष ने रखा है। राजशेखरसूरि के कथनानुसार तो स्वय श्रीहर्ष भी चिन्तामणि मत्र की साधना एव त्रिपुरा देवी की आराधना से अमोघ ज्ञानराशि प्राप्त किये थे।[2] साथ ही उन्होने स्वय अपने श्रृङ्गारामृत शीतगु नैषधमहाकाव्य को चिन्तामणि मन्त्र की आराधना का फल माना है।[3] इससे सहज ही यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि नैषधकार ने तन्त्रमन्त्र के प्रभाव को स्वीकार किया है, साथ ही हम यह भी कह सकते है कि तत्कालीन (बारहवीं शताव्दी मे) सामाजिक व्यवस्था मे तन्त्रमन्त्र का भी प्रभाव जनमानस द्वारा स्वीकार किया जाता रहा होगा, तभी श्रीहर्ष ने इस विद्या का विवरण भी नैषधमहाकाव्य मे दिया है, क्योकि कवि काल एव समाज के सूक्ष्म दृष्टा माने जाते है।

तन्त्र शब्द अनेक अर्थो मे[4] प्रयुक्त होता है किन्तु उपर्युक्त सदर्भ मे इसका तात्पर्य ऐसी कर्मकाण्ड पद्धति से है, जिसमे देवताओ की पूजा अथवा अतिमानवीय शक्ति प्राप्त करने के लिए गुप्त रूप से मत्र उच्चारित किये जाते है[5] ऐन्द्रजालिक कर्म तथा जादू, टोना तन्त्र के माध्यम से ही लोक मे सम्पन्न देखे जाते है। मन्त्र वह- वैदिक वाक्य या शब्द समूह है जिससे किसी देवता की सिद्धि या अलौकिक शक्ति प्राप्त होती है। निरुक्त के अनुसार वैदिक मत्र तीन प्रकार के माने जाते है परोक्षकृत, प्रत्यक्षकृत एव आध्यात्मिक।[6] नैषध में सत्रहवे सर्ग मे कलिप्रतिनिधि के कथन से लोक मानस द्वारा तन्त्र को जानने की पुष्टि होती है।[7] कुण्डिनपुरी मे इन्द्रजाल विद्या दिखाने वाले लोग तन्त्रशास्त्र से परिचित समझे जा सकते

---

1 अग्निपुराण - 288/26 -------30 एव 31---------65

2 गङ्गातीरे सुगुरदत्त चिन्तामणिमन्त्र वर्षमप्रमत्त राधमामास। प्रत्यक्षा त्रिपुराऽभूत्। अमाघादेशत्वादिवराप्ति। प्रबन्धकोशान्तर्गत श्रीहर्षकविप्रबन्ध -पृ० 54

3 तच्चिन्तामणिमन्त्रचिन्तनफले श्रृङ्गारभग्या महाकाव्ये चारुणि नैषधीयचरिते सर्गोऽयमादिर्गत ॥नै 1/145 उत्तरार्द्ध
– तस्य श्रीहर्षस्य द्वे चिन्तामणिमन्त्रचिन्तने चिन्तामणे ब्रह्मणों मन्त्र प्रणव तस्य वाचक प्रणव इति पातञ्जलसूत्रात् तन्मत्रजप इत्यर्थ, चिन्तनञ्चलसूत्रात् चिन्तञ्च तस्य ब्राह्मणो ध्यान तयो फले फलभूते तदुभयजातपुण्यजनित इत्यर्थ। नै० 1/145, जयन्ती टीका

4 सस्कृत हिन्दी कोश- आप्टे- पृ० 420 एवं सस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, पृ० 475
सस्कृत अग्रेजी कोश, पी के गोडे, सी जी. कर्वे भाग-2, पृ० 759
– तन्त्र स्मृतिरूप है- यथा "तन्त्राणा धर्मशास्त्रेऽन्तर्भाव. (वरिवस्यारहस्य प्रकाश), परमार्थतस्तु तन्त्राणा स्मृतित्वाविशेषेऽपि मन्वादिस्मृतीना कर्मकाण्ड शेषत्व तन्त्राणा ब्रह्मकाण्डशेषत्वमिति सिद्धान्तात् (सौभाग्यभास्कर का उपक्रम)। तन्त्र की मान्यता-वय तु वेदशिवागमयोर्भेद न पश्याम, वेदोऽपि शिवागम इति व्यवहारो युक्त, तस्य तत्कर्तृत्वात्। अत शिवागमो द्विविधस्त्रैवर्णिकवेदागमौ।" श्रीकण्ठभाष्य 2/2/28

5 A Religious treatise teaching magical and mystical formularies for the worship of the deities or the attainment of super human power- Sanskrit English Dictionary, II[nd] Vol, P C Gode, P 759

6 सस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ- पृ० 864 865
— A Vedic hymn or sacred prayer (addressed to any deity) a sacred text (It is of three kinds - it is called ऋच् if metrical and intended to be loudly recited, यजुस्, if in prose and muttered in a low tone, and सामन् if, being metrical, it is intended far chanting) सस्कृत अग्रेजी कोश, सी जी कर्वे भाग 2, पृ० 1236

7 व्यासस्यैव गिरा तस्मिञ्श्रद्धेत्यद्धा स्थ तान्त्रिका। मत्स्यस्याप्युपदेश्यान्च को मत्स्यान्पि भाग्ताम्॥ नै० 17/64

है।[1] स्वय नल भी तन्त्रविद्या मे निष्णात थे, तभी तो उन्होंने दमयन्ती की सखियो को बाहर करने के लिए सहसा अञ्जुलि मे जल भर कर उन्हे भिगो दिया।[2]

नैषधीयचरितम् महाकाव्य मे उन्नीसवे सर्ग मे वैतालिक गणो द्वारा राजा नल को जगाने हेतु प्रयुक्त विवरण मे दैत्य गुरु शुक्राचार्य की मृतसजीवनी विद्या भी, तत्र विद्या के अन्तर्गत आती है जिसके द्वारा मृत व्यक्ति को पुनर्जीवित कर लिया जाने की कथा सर्व विदित है।[3] मायावी शम्बर नामक दैत्य को जीतने वाली शाम्बरी माया का ही नल पर प्रभाव था कि उसे भीममहल मे सर्वत्र दमयन्ती की आकृति दिखायी पडती थी।[4] श्रीहर्ष ने इस विद्या को छद्म[5] (धोखा) युक्त जादू (मोह क्रोध, भ्रम) से युक्त बताया जैसा कि बीसवे सर्ग मे नल द्वारा दमयन्ती की सखियो को जल से भिगोने के पश्चात नल के कथन से भी प्रमाणित होता है। यथा-

अम्बुन शम्बरत्वेन गायेवाभिरभूदियम्। यत्पटावृतमप्यगमनयो कथयत्यद ।।[6]

शम्बर शब्द, मोह माया[7] इत्यादि अर्थ मे योग वशिष्ठ[8] मे भी मिलता है, जहॉ टीकाकारो ने 'दीर्घशम्बरे' की 'दीर्घभ्रमे' रूप मे व्याख्या की है तथा "शाम्बरी" शब्द लिगपुराण[9] मे राजा के विजय के लिए स्नानोत्सव रूप मे तात्रिक विधि मे शाम्बरी देवी या शक्ति के रूप मे वर्णित है[10] एव "शाम्बरिक" शब्द सिवार्कमणिदीपिका अथवा श्रीकण्ठभाष्य मे जादू एव जादूगर के रूप मे भी वर्णित मिलता है[11] साथ ही 'शाम्बर' शब्द माया के रूप मे योगवशिष्ठ मे भी आया है।[12]

तत्रो का उल्लेख करने के साथ-साथ श्री हर्ष ने तत्रो को सिद्ध करने की तिथियो का विवरण भी नैषधमहाकाव्य मे दिया है। उनके मत मे कृष्णाष्टमी के दिन (दूसरो को) वशीकरण हेतु तत्रो (मत्रो) को सिद्ध किया जाता है।[13] नैषधकार (देवदूत बने) नलमुखेन दमयन्ती के भाल (मस्तक) का वर्णन करते हुए

---

1 विलोकक नायकमेलकेऽस्मिन् रुपायताकौतुकदर्शिभिस्तै। बाधा बतेन्द्रादिभिरिन्द्रजाल विद्याविदा वृत्तिवधाद्व्यधायि।। नै० 14/70

2 शिर कम्पानुभयाथ सुदत्या प्रीणित प्रिय । चुलुक तुच्छमुत्सर्प्य सख्यो सलिलमक्षिपत् ।। नै० 20/125
तच्चित्रदत्तचित्ताभ्यामुच्चै सिचयसेचनम् । ताभ्याम्लम्भि दूरेऽपि नलेच्छापूरिभिर्जलै ।। नै० 20/126

3 असुरहितमप्यादित्योत्था विपत्तिमुपागत, दितिसुतगुरु प्राणैर्योक्तु न कि कचवत्तम ।
पठति लुठती कण्ठे विद्यामय मृतजीवनीं, यदि न वहते सन्ध्यामौन व्रतव्ययभीरुताम् ।। नै० 19/15

4 अनादिसर्गस्रजि वानुभूता चित्रषु वा भीमसुता नलेन। जातेव यद्वा जिशम्बरस्य सा शाम्बरीशिल्पमलक्षि दिक्षु ।। नै० 6/14
- किन्तु जितशम्बरस्य मायिनोऽपि मायिन , कामस्य शाम्बरीशिल्प मायासृष्टि। स्यान्माया शाम्बरी इत्यमर। जातैव सा भीमसुता नलेन दिक्षु अलक्षि प्रतिदिशमलक्ष्यत्। नै० 6/14 मल्लि0
- जित शम्बरा नाम दैत्या यत तस्य शम्बरारे कामदेवस्य, या शाम्बरी निहत तच्छम्बरदैत्यसम्बन्धिनी माया तस्या शिल्प निर्माणकौशलस्वरूपा जातेव। तथा च महामायाविन शम्बरदैत्य निहत्य तस्य माया कामदेवेन गृहीता, तया च तदानीं तेन नलाय अलीकभैमीशत दर्शितिमिति भाव। नै० 6/14, जयन्ती टीका

5 छद्मैव तच्छम्बरज बिसिन्यास्तत्पदममस्यास्तु भुजाग्रसद्म। नै० 10/124, पूर्वार्द्ध

6 नै० 22/130

7 नै० 10/124, 20/130

8 किमेतस्मिन् महामायाडम्बरे दीर्घशम्बरे - योगवाशिष्ठ, स्थिति प्रकरण 47/88

9 लिगपुराण - 27/198, उत्तरार्द्ध

10 The word 'शाम्बरी' occurs in Lingapurana as the name of the deities or "Shakti" mentioned in connection with a Tantric Riti in which the king undergoes a cermonial bath for the attainment of victory - हाण्डिकी पृ० 634

11 शाम्बरिकदर्शितप्रपञ्चस्य शाम्बरीप्रसरणमात्रकालावसायित्वेन च यथाश्चर्यरुपञ्चम् । सिवार्कमणिदीपिका श्रीकाण्ठभाष्य, 3/2/6 Vol- II, पृ० 232

12 वत मूढा वय सर्वे जानाना अपि शाम्बरम् - योगवाशिष्ठ (वैराग्यप्रकरण), 12/12, यहॉ टीकाकारों का मत है "शाम्बर शम्बरसम्बन्धि मायामिति भाव।

13 कृष्णाष्टम्या जगद्वशीकर्तु गुटिकादिसिद्धि साध्यते। नै० 7/23, नारायणी टीका
- अपरोऽपि साधक कृष्णाष्टमीं प्राप्य रात्रौ गुटिकादि सिद्धि निष्पादयति, नै० 7/23, जयन्ती टीका

अभिहित करते है कि केशरूप अधकार के नीचे रमणीय भाल रूप अर्द्धचन्द्रवाली यह सुन्दरी स्पष्ट रूप से अष्टमी तिथि है क्योकि कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि मे भी पहले अधकार एव फिर अर्द्धचन्द्रोदय के दर्शन होते है । अत (दमयती) कृष्णाष्टमी को प्राप्त कर कामदेव ने ससार को जीतने के लिए जो साधना की है, वह उचित ही है।[1] स्पष्ट है कि यहॉ श्री हर्ष दमयन्ती के भाल को तन्त्रसिद्धि के लिए प्रसिद्ध कृष्णाष्टमी तिथि मानते है । वृहन्नारदीय पुराण मे वर्णन मिलता है कि (भाद्र पद की कृष्णाष्टमी) के दिन दशाफल नामक व्रत होता है, उस दिन के व्रत, एव पूजा से कृष्णसायुज्य मोक्ष मिलता है, सभी पापो का शमन एव सभी कामनाओ की पूर्ति भी होती है। एव इस व्रत के करने से एक करोड एकादशी व्रत का फल मिलता है।[2] अग्निपुराणकार ने भी कहा है -

कृष्णो जातो यतस्तस्या जयन्ती स्यात्तोऽष्टमी ।
सप्तजन्म कृतात् पापात् मुच्यते चोपवासत ।।[3]

आगम ग्रन्थो के अनुसार कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि को अदृश्य शक्तियो को सिद्धि की जाती है।[4] सुखाववोधिनी टीका एव नारायणी टीका मे वर्णित तथ्यो से उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि होती है।[5] नल दमयन्ती के गुल्फो का वर्णन करते हुए उसे चतुर्दशी रूप मानते है।[6] उनका मत है कि अरुन्धती, रति, लक्ष्मी, इन्द्राणी तथा नवाम्बिकाओ[7] म यह दमयन्ती (चौदहवीं) चतुर्दशी है, अत उनकी जो अदृश्य सिद्धि है, वह इस दमयन्ती मे गुल्फ (दोनो पैरो के नीचे जोड पर दोनो ओर उठी हुई हड्डी अर्थात गट्टो) को प्राप्त हुई है वह उचित ही है।[8] वृहन्नारदीय पुराण मे चतुर्दशीव्रत से ऐहलौकिक सकल कामनाओ की प्राप्ति बतायी गयी है[9] एव अग्निपुराण मे भी चतुर्दशी तिथि का विशिष्ट वर्णन प्राप्त होता है।[10]

चिन्तामणि मत्र से तो स्वय श्रीहर्ष प्रभावित थे जैसा कि पूर्व मे कहा जा चुका है, किन्तु चिन्तामणि मत्र क्या है? एव इसकी उपासना या सिद्धि से क्या फल मिलता है? इसका विवरण नैषधकार ने स्वयवर पश्चात सरस्वती द्वारा नल को दिये जाने वाले वरदानो की सरणि मे दिया है जहॉ नल से प्रसन्न सरस्वती नल को चिन्तामणि मत्र के स्वरूप का विवरण देती हुई कहती है कि हे राजन् नल, आधे (दक्षिण) भाग मे

---

1 केशान्धकारादथ दृश्यभालस्थलार्धचन्द्रा स्फुटमष्टमीयम्। एना यदासाद्य जगज्जयाय मनोभुवा सिद्धिरसाधि साधु।।नै० 7/23

2 नभोमासे सिताष्टम्या दशाफलमिति व्रतम्। उपवास तु सकल्प्य स्नात्त्वा च नैत्यिकम्।।
नैतेन सदृश चान्यद्व्रतमस्ति जगत्त्रये। कृतेन येन लभ्येत कौट्यैकादशक फलम्।। वृहन्नारदीय पुराण, 117/15 40

3 अग्निपुराण 183/2, एव द्रष्टव्य, सम्पूर्ण 183वा एव 184वा अध्याय

4 किञ्च यदिय चतुर्दशी तिथि तदिह अदृश्यसिद्धिरन्तर्धाननिष्पत्तिरुचितैव, "चतुद्दश्यामदृश्यत्वम्" इत्यगमादिति ध्वनि । नै० 7/97 जयन्ती टीका

5 अथ च चतुर्दश्या तिभावदृशताया अदृश्यीकरणविद्याया सिद्धि साधकाना प्राप्तिरुचितैव- इति सुखावबोधा। आगमे चतुर्दश्यामदृश्यत्वसिद्धिर्भवति" इत्युक्तिमित्यर्थ ।।

6 नौ मातृकाएं + अरुन्धती + रति + लक्ष्मी + इन्द्राणी = 13 एव चौदहवीं दमयन्ती। नौ मातृकाओं मे चामुण्डा आदि सप्त मातृकाएँ एव गौरी तथा सरस्वती परिगणित हैं इनका विवरण इसी शोध प्रबन्ध के सामुद्रिक शास्त्र नामक अध्याय के अन्तर्गत द्रष्टव्य है।

7 विस्तृत विवरण हेतु द्रष्टव्य– नैषधीयचरित - हाण्डिकी पृ० 555-557, In the Inroductuion of त्तचदबेंत - by Avalon, p 35, विष्णुधर्मोत्तर पुराण भाग एक, अध्याय 226, स्कन्ध पुराण 83/33, उत्तरार्द्ध, देवी पुराण, अध्याय 87 एव 37/83 90 ब्रह्मवैवर्तपुराण - प्राकृतिखण्ड - 64/87 88, देवी भागवत, पु 12/11,57,58, 9/50, एव ध्यायत्वा यजेदेताश्चक्रेशीं त्रिपुरा तत।- वामकेश्वर तन्त्र (नित्यषोडसिकार्णव) 8/126 27, प्रपचसारतन्त्र, 7/11, कुलकुदामणितन्त्र अध्याय 3 लिगपुराण - पुर्वार्द्ध - 82/96 (अष्टमातृकाओं का वर्णन), मन्त्र महोदधि-महीधर- 3/17,18 (अष्टि मातृकाओ का वर्णन) एव 1/64, 65 वराहपुराण, अध्याय 27, कथासरित्सागर, 57/76 व्यवहारमयूख सम्पादक, पी वी काणे, पृ० 65, द्वयाश्रयकाव्य, हेमचन्द्र, 19/59

8 अरुन्धतीकामपुरन्ध्रिलक्ष्मीजम्भद्विषद्दारनवाम्बिकानाम्। चतुर्दशीय तदिहोचितैव गुल्फद्वयाप्ता यददृश्यसिद्धि ।। नै० /98

9 श्रणु नारद वक्ष्यामि चतुर्दश्या व्रतानि ते। यानि कृत्वा नरो लोके सर्वान्कामानमाप्नुयात्।। वृहन्न पु 123/1 एव 2 79

10 अग्निपुराण–192वा अध्याय

अवामा अर्थात पुरुष और आधे (वाम) भाग मे वामा अर्थात् स्त्री, इस प्रकार दो भागो मे विभक्त, किन्तु दोनो आकारो (स्त्री पुरुष भागो) के सम्मेलन से पूर्ण जो भगवत् (शिव) नाम से वाच्य रूप होता है, चन्द्रसहित निर्मल, (आकार) होने पर भी वस्तुत आकारहीन, मत्रात्मक हरमय (शिवमय) मेरे उस (रूप) का हृदय मे स्मरण (चिन्तन ध्यान) करो, और निरन्तर जाप करो। वह (मत्र) तुझे (नल को) सिद्ध हो। अथवा- नरप' तद् सते ते सिध्यतु-राजन् वह तुझ सज्जन को सिद्ध हो, अथवा जपन रपत ते स सिध्यतु- हे जप करने वाले या निरन्तर जप करने वाले तुझे वह सिद्ध हो।

इस मत्र की विस्तृत रूप मे इस प्रकार भी मीमासा की जा सकती है कि आधे अर्थात् दाहिने भाग मे पुरुष तथा आधे अर्थात् बाये भाग मे स्त्री अतएव स्त्री पुरुषात्मक, अर्धनारीश्वर) दो भाग वाला, (परन्तु वास्तव मे) दोनो आकारो के मिलने से सम्पूर्ण भगवद्वाच्य (शिव नाम से कहा जाने वाला) जो रूप होता है, हे राजन्! (नल) चन्द्रयुक्त निर्मल, (शुभ्रवर्ण) निराकार, (दो भाग प्रतीत होने पर भी वास्तव मे अवयवहीन), मत्रतुल्य गोपनीय, (या मत्ररुप) ईश्वरा (शिवात्मक) मेरे उस रूप को अन्त करण मे चिन्तन (ध्यान,जप) करो, अर्थात् जपरूप मे उपासना करो 'मन्त्रमूर्ति वह (भगवान शिव) तुम्हे सिद्ध (फलदाता) हो।[1] **मत्र पक्ष** मे (यह कहा जा सकता है कि) "आधे (पूर्व) भाग मे ओकार तथा मकार से तथा उत्तर भाग मे ओकार तथा अकार से अपलक्षित अर्थात् आदि और अन्त मे 'ओम्' रूप प्रणव से युक्त दो अकारो के घटना (सयोग) से द्विधाभूत हर इस प्रकार विभक्त अथवा दोनो अकार अर्थात प्रणव के सम्पुटीकरण से दो आकार वाला), शिव, वाचक (ओ हर ओम् ऐसा) जो रूप होता है, वह हर मय अर्थात् हकार-रेफात्मक (ह, र, रूप) निराकार अर्थात् दोनो अकारो से रहित (ह् र् अर्थात् ह् - केवल व्यञ्जन हकार, रेफस्वरूप) ई और इन्दु (चन्द्र अर्थात् गोलाकृति (अनुस्वार से युक्त) अर्थात् ह्रीं' ऐसे रूप वाला, कलायुक्त अर्थात् ह्रीं' (इस प्रकार "ओ ह्रीं ओ" स्वरूप) मेरे मत्र ("चिन्तामणि" नामक सारस्वत मत्र) का मन मे नित्य जप करो, अर्थात् मानसिक[2] जप करो, वह चिन्तामणि नामक सारस्वत मत्र तुम्हे सिद्ध होवे। यत्र पक्ष मे, भग (योनि) के समान दृष्टिगोचर होने वाला अर्थात् त्रिकोण, दो आकृतियो की घटना से सम्पूर्ण अर्थात् षट्कोणस्वरूप और उस (षटकोण) के बीच मे उक्त मत्र (ओ ह्रीं ओम्) से युक्त मेरे सारस्वत यत्र की नित्य उपासना करो, वह यत्र तुम्हे सिद्ध होवे। उपयुक्त चिन्तामणिमत्र सर्वथा सरस्वतीपरक है किन्तु इसकी मीमासा से यह प्रतीत होता है कि इसमे अर्धनारीश्वर भगवान शिव का वर्णन भी है। नैषध के प्राचीन टीकाकार चाण्डूपण्डित[3] मल्लिनाथ एव नारायण ने इस मत्र की विशद व्याख्या की है, जिसमे मल्लिनाथ इसे

---

1 अवामा वामार्द्धे सकलमुभयाकारघटनादद्विधाभूतम रूप भगवदभिधेय भवति यत्।
तदन्तरर्मन्त्र मे स्मर हरमय सेन्दुममल निराकार शश्वज्जप नरपते! सिध्यतु स ते।। नै० 14/88

2 त्रिविधो जपजज्ञ स्यात् तस्य तत्त्व निबोधत्।।
वाचिकश्चाप्युपाशुश्च मानसश्च त्रिधाऽऽकृति। त्रयाणामपि यज्ञाना श्रेष्ठ स्यादुत्तरोत्तर ।।
यदुच्च्नीचोच्चरितै शब्दै स्पष्टपदाक्षरै। मन्त्रमुच्चारयेद्वाचा जपयज्ञस्तु वाचिक ।।
शनैरुच्चारये मन्त्र किञ्चिदोष्ठौ प्रचालयेत्। किञ्चिच्छ्र वणयोग्य स्यात्स उपाशुर्जप स्मृत ।।
धियापदाक्षरश्रेष्या अवर्णमपदाक्षरम्। शब्दार्थचिन्तनाभ्या तु तदुक्त मानस स्मृतम्।। हारीति स्मृते, 4/40 44

3 वाम अर्धे वामपक्षार्ध प्रथमम् अवा ओकारेण तथा मा मकारेण ओंकारेणत्यर्थ। यत् रूप द्विधा द्विप्रकार भूत सत् द्वितीयेन ओकारेण दक्षिणार्धेपि भूत प्राप्त भवगदभिधेय भवति ब्रह्मवाचकम्। कि भूतम् उभयाकारस्य ओकारद्वयस्य घटनात् मलनात् सकलम्। तदन्त तयो ओंकारयोरन्तर्मध्ये हरमयमीश्वरमय मन्त्र स्मर। अथ च हकारो रेफकारी मकार ईकारश्च। चतुष्टयेपि अकार उच्चारणार्थ ईकारश्च च पुरत अकारस्य सुखोच्चारणार्थे य आदेशे ह्रींकार। उभयपक्षे ओंकारेण सम्पुटित इत्यर्थ। रान्दु अर्धमात्रायुक्तम् अथवा हरमयमिति मयट्प्रत्यय , अथवा सेन्दुर्मिति ईश्वरम्। ई इन्दुश्च ताभ्या सह वर्तते सेन्दु त तथा। एतावता ईकारौनुस्वारश्च लब्ध। अमल निराकर चान्तर्जप हे नरपते स ते तव सिध्यतु मे मम देव्या भारत्या मन्त्र सिध्यतु सारस्यतो मन्त्र। अथवा यद्रूप भगवद्योनिसदृसदृशाकर त्रिकोणयन्त्रमय भवति। कि भूतम्-उभयाकार घटनात् द्विधाभूत त्रिकोणयन्त्रद्वयघटनात् षट्कोणयन्त्र तदन्त मध्ये मे मन्त्र स्मर। हरमय हकाररेफमयम्। सकल ककारलकारसयुक्तम्। अवा ओकारेण मा मकारेण त्रिष्वपि अक्षरेषु बिन्दुना (सहवर्तमानम्) तथा यत्र अधे वामा अस्ति। वामाशब्देन स्त्री प्रत्यय ईकारोलक्ष्यते। अयमभिप्राय षट्कोण यन्त्रमध्ये पूँ प्रणवस्तत क्लीं ह्रीं। अथवा अवामा न शक्ति अपरा वामा नामशक्ति इति द्वे अर्धे। एतत् स्वरूप द्विधाभूतम् अभयाकारघटनात योन्यर्धाकाररुपद्वयेमेलनात् सकल सम्पूर्ण सत् यत् रूप भगवत् योनिवत् तदन्तर्मन्त्र स्मर इति शेष पूर्ववत्। अथवा यस्य रुपस्यार्थे अवामा अप्रतिकूलावाम् पार्वती अस्ति तत् हरमयम् उभयाकार-घटनात् सकलम् अर्धनारीश्वर सेन्दु सचन्द्र मन्त्र गोप्य रहस्य निराकार स्मर जप स्तुहि चिन्तय च। नै० 14/88, चाण्डू पण्डित की टीका।

सारस्वत चिन्तामणि मन्त्र[1] एव नारायण ने इसे भुवनेश्वरी रूप सरस्वती का[2] मत्र माना है तथा नैषध के चन्द्रिका' हिन्दी टीकाकार डॉ देवऋषि सनाढ्य शास्त्री ने "भगवदभिधेयम्" के माध्यम से उपर्युक्त मत्र को लक्ष्मी नारायण रूप मत्र भी माना है।[3] चाण्डूपण्डित मल्लिनाथ एव नारायण के मत मे चिन्तामणि मत्र का स्वरूप ओ ह्रीं ओम्' है।[4]

चिन्तामणि मत्र की आराधना एव उससे प्राप्त फलो का विवरण भी नैषधकार ने दिया है। आराधना विधि की चर्चा करते हुए वे सरस्वती मुखेन अभिहित करते है कि जो साधक मुझ (सरस्वती) हसवाहिनी मत्रमूर्ति का अत्यन्त सुकुमार एव सुगन्धित पुष्पो से पूजा करके तथा अन्य विषयो से बुद्धि हटाकर सर्वात्मा से मेरी सेवा करके जपेगा, वह एक वर्ष के अन्त मे जिस किसी के सिर पर हाथ रेखगा, वह भी अकस्मात्, सुन्दर और निर्दोष श्लोको की रचना करने लगेगा। ऐसा इसका कौतुक (प्रयोग के द्वारा) देखने योग्य है।[5] साथ ही चिन्तामणि मत्र के फल का निर्देश करती हुई सरस्वती कहती है कि जो पापहीन साधक इसे चित्त मे धारण करेगा, वह सब रसो से व्याप्त सुधा से एव आर्द्र वाणी से वाचस्पति हो जायेगा। वह स्वर्ग की मृगाक्षियो को वश मे करने के लिए भी कामदेव के समान हो जायेगा। अधिक कहने से क्या लाभ? वह पुरुष जो फल चाहेगा वह इस मत्र से अवश्य प्राप्त करेगा।[6] डॉ0 ए0एन0 जानी महोदय ने इस मत्र का विशेष विवरण दिया है।[7] एव श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस मत्र का रेखाचित्र भी प्रस्तुत किया है।[8]

चिन्तामणि नाम के अनेक मत्रो का विवरण विभिन्न ग्रन्थो मे देखने को मिलता है। बौद्धो के ग्रथ आर्यमजुश्रीमूलकल्पलता मे बौद्धो के एक सूत्र (Buddhist formula) भी 'चिन्तामणि' नाम से वर्णित मिलता है।[9] बौद्धो की साधना या शास्त्र (विधि) सम्बन्धी ग्रन्थ मे भी, एकजटावाली श्वेतमूर्ति तारा देवी की साधना (अर्चना) मे जिस मत्र का विवरण मिलता है वह नैषध मे वर्णित चिन्तामणि मन्त्र के समान ही मालूम होता है तथा उस मत्र का रूप ह्रीं[10] "एकाक्षरोऽय मत्रराजश्चिन्तामणिकल्प" के रूप मे कहा गया है साथ ही

---

1 म मदीय मन्त्र प्रणवद्वयसम्पुटित आ ह्रीं ओम इत्याकारक सारस्वत चिन्तामणिमन्त्रमित्यर्थ। नै0 14/85, मल्लिनाथी टीका।

2 तथा - भगवती भुवनेश्वरी अभिधेया तस्य तादृशमिति वा। शिवान्त्यो वहि्नसयुक्तो ब्रह्मद्वितयमन्तरा।
तुरीयस्वरशीताशु रेखातारासमन्वित ।। एष चिन्तामणिर्नाम् मन्त्र सर्वार्थसाधक।
जगन्मातु सरस्वत्या रहस्य परम मतम्। इत्यागमात्प्रणवद्वयसपुटितभुवनेश्वरीरूप चिन्तामण्याख्य में सरस्वत्या स्वरूप मन्त्र स्मर जप। नै० 14/88,नारायणी टीका

3 नै० 14/85, हिन्दी टीका डॉ0 देव ऋषि सनादय शास्त्री, पृ० 279

4 शिव =ह, वहि्न=रेफ, ब्रह्मन्=प्रणव तुरीयस्वर=ई, शीताशु–तारा= चन्द्रविन्दु इस प्रकार इस मत्र को प्रणवद्वयसम्पुटित माना है। द्रष्टव्य नै० 14/88 मे चाण्डू पण्डित, नै० 14/85 में मल्लिनाथ एव 14/88 में नारायण की टिप्पणी।

5 पुष्पैरभ्यर्च्य गन्धादिभिरपि सुभगैश्चारुहसेन मा चेन्निर्यान्तीं
मत्रमूर्तिं जयति मयि मति न्यस्य मय्येव भक्त।
तत्प्राप्ते वत्सरान्ते शिरसि करमसौ यस्य कस्यापि धत्ते।
सोऽपि श्लोकानकाण्डे रचयति रुचिरान् कौतुक दृश्यमस्या ।। नै० 14/90

6 सर्वाङ्गीणरसामृतस्तिमितया वाचा स वाचस्पति, स स्वर्गीयमृगद्दिशामचि वशीकराय मारायते।
यस्मै य स्पृहयत्यनेन स तदेवाप्नोति कि भूयसा, येनाथ हृदये कृत सुकृतिना मन्मन्त्रचिन्तामणि ।।

7 A Note on the cintamani Mantra द्रष्टव्य Appendix -5

8 नैषधीयचरितचर्चा - पृ० 49

9 स मन्त्रों पात्रभूतस्थ त्रिषु चिन्तामणिस्तथा। करोति कर्म वैचित्रयम् ईप्सित साधकेच्छया ।।
मन्त्र चात्र भवति - "नम सर्वबुद्ध ऊँ तेजो ज्वालसर्वार्थ साधक सिध्यसिद्धिचिन्तामणिरत्न हु ।।
चिन्तामणिरत्नमत्र सर्वार्थसाधकम्। ईप्सिता साधयेदर्थ मत्राश्चापि सविस्तरम् ।।
–आर्यमजुश्रीमूलकल्पलनता-त्रिवेन्द्रम प्रकाशन, भाग-2 पृ० 393

10 तत्राय मत्रोद्धार - सप्तमस्य चतुर्थं वहि्नसयुक्त ईकारभेदितम् अर्धेन्दुविन्दुभूषितम् इत्थ जपेत्। नाभिमध्य अष्टदलकमलतदुपरि ह्रीकार पश्येत्, -साधनमाला-गायकवाड ओरियन्टल सिरीज, भाग-1 पृ० 260

उसकी उपासना का फल भी नैषध महाकाव्य मे वर्णित चिन्तामणि मंत्र की उपासना के फल की तरह व्यक्ति मे महान कवित्व वदुष्य एव वक्तृत्व शक्ति प्रदान करना है।[1] 'चिन्तामणि' मंत्र का एक अन्यत्र प्रयोग- वैष्णव[2] तंत्र से सम्बन्धित पान्चरात्र[3] की दो सौ पन्द्रह सहिताओं[4] (जिसमे तेरह प्रकाशित हो चुकी है, उनमे से) अहिर्बुन्यसंहिता मे सहस्रारचक्र के सम्बन्ध मे पाचरात्र अनुष्ठान मे आया है। यथा –

यथा- एतत्तन्मात्रका चक्र यत्र सर्व प्रतिष्ठितम् ।
तद्बीज मृकाक्षाद्य, तद्बहि प्रधिमालिरवेत् ॥
ततश्चिन्तामणि बाह्ये तद् बहिश्च लिखेत् पराम् ।
परापरा तद्बहिश्च तद्बहि श्रियमालिखेत् ॥[5]

प्रपचसारतंत्र[6] मे भी चिन्तामणि मंत्र का उल्लेख प्राप्त होता है, जिसके अधिष्ठातृ देव अर्धनारीश्वर भगवान शिव है किन्तु वास्तव मे यह एक वशीकरण मंत्र है, एव इसका सरस्वती तथा कवित्तव शक्ति

---

1 लक्षजापेन महाकविर्भवति श्रुतिधरो वाग्मी च, वज्रवाणीं च लभते। महाधनो दीर्घायु सर्वशास्त्रविशारदो गरुणेश्वर इव त्रिभुवन निर्विष करोति । शीघ्र च बोधिमभिसम्भोत्स्यते नास्ति अत्र सन्देह । नै०, पृष्ठ 270

2 वैष्णव तंत्र जो कि वर्तमान मे वैष्णवागमो का प्रतिनिधि माना जाता है - वर्णन द्रष्टव्य है, भारतीय दर्शन बलदेव उपाध्याय पृ० 449 458

3 पान्चरात्र का सम्बन्ध वेद की एकायन शाखा से है। यथा-
वेद एकायना नाम वेदाना शिरसि स्थितम्। तदर्थक पाचरात्र मोक्षद तत्क्रियावताम् ॥ ईश्वरसहिता 1/43
- वेदमेकायन नाम वेदाना शिरसि स्थितम्। तदर्थक पाचरात्र मोक्षद तत्क्रियावताम् ॥ श्रीप्रश्नसहिता
- ऋग्वेद भगवोऽध्येमि वाको वाक्यमेकायनम् ॥ छा उ० 7/1/2
- पान्चरात्रश्रुतौ ... श्रुतावपि यद्वत सोपानेन प्रासादयावहेत्।
... शास्त्रेण हि भगवान् शास्ता अवगन्तव्य। स्पन्दकारिका पृ० 2
- पाचरात्रोपनिषद् च ... ज्ञाता च ज्ञेयञ्च वक्ता च भोक्ता च भोज्यच। वहीं पृ० 40
- रामानुज ने महाभारत तथा पुराण के अनेक प्रमाण वाक्यो को उद्धृत कर पाचरात्रागम को वेदो के समान ही प्रमाण भूत माना है, यथा –
साख्य योग पाचरात्र वेदा पाशुपत तथा ।
आत्मप्रमाणान्येतानि न हन्तव्यानि हेतुभि ॥ श्री भाष्य 2/2/42
- रामानुज के अनन्तर वेदान्तदेशिक ने पाचरात्र रक्षा ग्रन्थ मे एव भट्टारक वेदोत्तम ने 'तंत्रशुद्ध ग्रन्थ में मीमासा पद्धति से विचार करते हुए पाचरात्र को वेदसम्मत सिद्धान्तों का ही प्रतिपादक सिद्ध किया है ।
- पाचरात्र का ही दूसरा नाम भागवत धर्म और सात्तवतधर्म था । पाराशर की सम्मति मे सात्तवत भागवत का पर्यायवाची है । यथा- सातयति सुखयति आश्रितानिति सात् परमात्मा । स एषामस्तीति वा सात्तवता सात्वन्तो वा महाभागवता । (पराशरभट्ट- विष्णुसहस्रनामभाष्य- वेंकटेश्वर प्रेस सस्करण पृ० 465)
– शतपथ ब्राह्मण (13/6/1) मे पाचरात्र सत्र का वर्णन मिलता है जिसे नारायण ने समस्त प्राणियों के ऊपर आधिपत्य प्राप्त करने के लिए पाच दिनों तक किया था ।
– पाचरात्र शब्द की व्याख्या भिन्न-भिन्न प्रकार से मिलती है । यथा- महाभारत के अनुसार चारो वेद तथा साख्य योग के समाविष्ट होने के कारण इस मत की सज्ञा पाचरात्र थी । ईश्वरसहिता (अध्याय 21) में वर्णन मिलता है कि शाण्डिल्य, औपगायन मौञ्जायन, कौशिक तथा भारद्वाज ऋषि को पॉच रातों में उपदेश दिया गया था तथा पद्मसहिता (ज्ञानपद अध्याय-1) का कथन है कि इसके सामने अन्य पॉच शास्त्र रात्रि के समान मलिन पड गये थे, अत पाचरात्र नामकरण हुआ । नारद पाचरात्र के अनुसार इस नामकरण का कारण विवेच्य विषयों की सख्या है। रात्र का अर्थ होता है ज्ञान (रात्रच ज्ञानवचन ज्ञान पचविध स्मृतम् नारद पाचरात्र 1/40/53), परमतत्तव, मुक्ति भुक्ति योग तथा विषय (ससार) -पच विषयों का निरुपण करने से इस तंत्र का नाम "पाचरात्र ' पडा है । नारद पाचरात्र 1/45/53 तथा अहिर्बुध्न्यसहिता-11/64
- पाचरात्र सहिताओ के विषय चार है-स्नान, योग, क्रिया, एव चर्या- द्रष्टव्य भारतीय दर्शन बलदेव उपाध्याय पृ० 452

4 द्रष्टव्य प्दजतवकनबजपवद to the Pancharatra- Dr Odar, P 6&12

5 अहिर्बुन्यसहिता 23/96 97, अड्यार पुस्तकालय, अड्यार, मद्रास

6 द्रष्टव्य, प्रपचसारतंत्र अध्याय-28

आदि से कोई नहीं है। ईशानशिवगुरुदेव पद्धति (शैव ग्रथ) मे भी एक दूसरे 'चिन्तामणि मत्र' का विवरण मिलता है जिसके अधिष्ठातृ देव महारुद्र है।[1] मत्रचिन्तामणि' नाम से एक वैष्णव सिद्धान्त भी है, जो कि कृष्ण की अलौकिक पूजा से सम्बन्धित है, का वर्णन भी पद्मपुराण मे मिलता है।[2] साथ ही भास्कराचार्य ने भी ललितासहस्रनाम की व्याख्या मे भी चिन्तामणि (मत्र जो विवाहादि से सम्बन्धित है) का नामोल्लेख किया है।[3]

दमयन्ती को नलसिद्ध विद्या रूपा बताते हुए[4] श्री हर्ष ने काशी नरेश के वर्णन प्रसग मे तारक मत्र[5] का भी निर्देश किया है, जिसमे दमयन्ती को काशीनरेश को वरण हेतु सरस्वती कहती है कि वाराणसी मे शरीर त्याग करने पर शिवजी प्राणी को श्रेष्ठ तारक मत्र का उपदेश देते है, जिससे वह प्राणी उनकी सायुज्य मुक्ति को प्राप्त कर लेता है, अर्थात् शिवरूप हो जाता है। मुक्ति के सायुज्य समीप्य, सालोक्य आदि अनेक भेद शास्त्रो मे वर्णित है। मत्रो की प्रासगिकता नैषधकार द्वारा सत्रहवे सर्ग मे वर्णित वेद पाठियो के वर्णन[6], पितृ तर्पण[7] वर्णन गायत्री उच्चारण[8] (आवाहन), अग्निषोम यज्ञ विवरण,[9] पुरोडास यज्ञ वर्णन,[10] इन्द्रयाग,[11] सन्ध्या वर्णन,[12] सर्वमेधयज्ञ,[13] राजसूययज्ञ,[14] वामदेव्योपासन,[15] अग्निष्टोम, पौर्णमास एव सोमयज्ञ[16] सर्वस्वार नामक वैदिक यज्ञ,[17] महाव्रत यज्ञ,[18] अश्वमेधयज्ञ,[19] दुर्गा उपासना,[20] तथा नल द्वारा देवार्चना प्रसग विवरण,[21] एव नल दमयन्ती परिणय,[22] मे देखी जा सकती है। उपर्युक्त सन्दर्भो से हर्ष की तत्र-मत्र सम्बन्धी रुचि एव बारहवीं शताब्दी मे इस शास्त्र की प्रसगिकता की पुष्टि होती है। सभव है कि कालान्तर मे शैक्षिक एव वैज्ञानिक उन्नति के कारण इस शास्त्र की प्रासगिकता एव

---

1 [illegible] चिन्तामणिनाम [illegible] देवता ।
[illegible] मेव हि ॥ 92 त्रिवेन्द्रम प्रकाशन, भाग-2 मत्रपाद, पाशुपताद्याधिकार, पृ० 179

2 पद्मपुराण [illegible] अध्याय 50

3 ललितासहस्रनाम 87वा श्लोक

4 [illegible] कौतूहल सिद्ध विद्याम ।
[illegible] क्षितीश [illegible] माजुहाव ॥ नै० 10/92

5 [illegible] पत्युरेत्य नगरीं नगराजपुत्र्या ।
[illegible] भवति, भावमिवास्तिधातु ॥ नै० 11/117

6 नै० 17/163 164 165 187

7 नै० 17/169

8 नै० 17/174

9 नै० 17/177

10 नै० 17/181

11 नै० 17/182

12 नै० 17/183-191

13 नै० 17/186

14 नै० 17/189

15. नै० 17/194

16 नै० 17/196

17 नै० 17/202.

18 नै० 17/203

19 नै० 17/204

20 नै० 14/37,

21 नै० 21वा सर्ग

22 नै० -16वा सर्ग

समीचीनता मे कमी आ सकती है किन्तु इसका आत्यन्तिक अभाव नहीं हो सकता। इस शास्त्र का विस्तृत विवरण अग्नि ... संहिता एव बृहन्नारदीय पुराण आदि ग्रथो मे देखा जा सकता है।

आयुधशास्त्र

... आयुधशास्त्र से सम्बन्धित तथ्यो का सकेत भी श्री हर्ष ने राजाओ के वर्णन प्रसग[1] एव ... वर्णन मे[2] किया है, जहाँ राजाओ के साथ-साथ नल की आयुधशास्त्र के मर्मज्ञता ... को हम दो प्रमुख भागो मे बॉट सकते है प्रथम-हाथ से पकडकर प्रहार करने वाले आयुध ... कहलाते है, द्वितीय हाथ से फेककर प्रहार किये जाने वाले आयुध जिन्हे 'अस्त्र' कहा जाता है ... इन दोनो प्रकारो के ज्ञाता थे, इनकी पुष्टि श्री हर्षके इस कथन से भी प्राप्त होती है कि ... की दिन चर्या[3] मे विद्या सीखने वाले अन्य राजकुमारो को अस्त्र शस्त्र की जानकारी देने के साथ अभ्यास कराना (खुरली)[4] भी शामिल था और यह तो जाहिर सी बात है अस्त्र शस्त्र का अभ्यास एव उनकी शिक्षा वही व्यक्ति दे सकता है, जिसे उनमे महारत हासिल हो। अग्नि पुराण मे विभिन्न आयुधो का वर्णन त्रैलोक्यविजयविद्यावर्णनम्[5]

---

1 ... बारहवें एव तेरहवें सर्ग

2 ... स्फुरत्प्रतापानलधूममञ्जि ।
... पङ्कीभवदङ्कता विधौ ॥ नै० 1/8
... दृष्टेव्ययितस्य सङ्गरे ।
... नुरिंगालमिवायश परे ॥ नै० 1/9, एव 10/11
... राहकृत्वरी बहुम् ।
... पट तदभटचातुरी तुरी ॥ नै० 1/12 एव 13 14 19

3 ... पितप विसृज्य ।
अस्त्रशस्त्रखुरलीषु ... मितानमितौजा ॥ नै० 21/5
... शिष्यजनताम नुशिष्य ।
... श्रवसन्नभवदाप्लवनेच्छु ॥ नै० 21/6

4 ... मे विवरण मिलता है - यथा - विद्याधर प्रतापर्दण्ड का उद्धरण देते हुए श्रमस्थान ... 'खुरली श्रमस्थानम्। श्रमस्थान खुरलिका खुरली च। भास्कराचार्य खुरलिका को ... 8 128 मे खलूरिका या खलूलिका नाम देते हैं। प्रतापरुद्रयशोभूषण (पृ083) मे ... खुरली का अर्थ व्यायामशाला या आखाडा **(Gymnasium)** मानते हैं तथा रत्नापण **(Ratnapana)** ... मे ... मिलता है खुरलिर्मल्लादिसाधनशाला" जब कि रत्नासन **(Ratnasana)** टीका मे ... विवरण प्राप्त होता है । अनर्घराघव (4/24 मे खुरली' को आयुध अभ्यास **(Practice of Arms)** नाम दिया गया है (खुरली कलहे कुमारमप्याक्षिपन्) जब कि रुचिपति ने तारावली मे कहा है ' अभ्यास खुरली योग्या ... मे भी आया है "अस्त्रप्रयोग खुरली कलहे गजाना, (2/34) इसमें वीरराघव की टिप्पणी है खुरली ... इति केशव। बालरामायण के चौथे अक मे वर्णन मिलता है ' कथ खुरलीखेलनप्रसर ... विनयनान्तेवासिना चेतसि विरचित पद परस्परस्पर्धया । अमरचन्द्र के बाल भारत के आद पर्व (11/52) मे 'प्रत्युषयामखुरलीक्षणनर्तितास्त्रौ ' वर्णित मिलता है एव यशस्तिलक (3/468) में "शस्त्रप्रपच खुरली खलु ... मे खुरली शब्द की व्याख्या का निरुपण मिलता है। अभिनन्द ने अपने रामचरित (17/50) मे खुरली का प्रयोग व्यायामशाला के अर्थ मे किया है यथा "धारास्त्रयोग्यापिशुनानि रक्षोवीरार्भकाणा खुरलीखलानि । वस्तुपाल के नरनारायणानन्द (10/47) से इसकी तुलना की जा सकती है यथा "कायस्थ लीलाखुरली गृहाभ । विल्हण ने अपनी कर्णसुन्दरी (2/6) मे खुरली का प्रयोग लक्ष्य **(Target)** अर्थ में किया है यथा-'सापि स्वैर विशिखखुरली कल्पिता मन्मथेन । स्वय नैषधकार एव उनके प्राचीन टीकाकार विद्याधर एव चाण्डूपण्डित तथा नारायण भी खुरली शब्द के अनेक अर्थ करते है- यथा नैषध (12/100) अश्वैरस्वैरवेगै कृतखुरलीमङ्क्षुविक्षुद्यमान में नारायण की टिप्पणी है 'खुरली अभ्यास भूमि एव चाण्डूपण्डित का कथन है खुराणा खुरली उल्लेखनम् जबकि मल्लिनाथ की टिप्पणी है 'खुरखुरलीभि खुरसचारै' एव नै० 21/5 की टिप्पणी में मल्लिनाथ का कथन है खुरलीषु भ्रमणविशेषु अस्त्रशस्त्राणा खुरलीषु प्रयोग सहार विषयषु इति ।" तथा नारायण की टिप्पणी है" "शस्त्राणि बाणादीनि तेषा खुरलीषु हस्तसचारणादि संस्थानचातुरीविशेषेषु विनिन्ये तद्विषयकौशलशिक्षयदित्यर्थ ।" परन्तु उपर्युक्त अर्थ में 'खुरली शब्द का अर्थ' व्यायामशाला ही माना जाना उचित होगा एव समीचीन भी ।

5 134 वा अध्याय

[illegible]वर्णनम्,[1] [illegible]दीक्षाकथनम्,[2] धनुर्वेदवर्णनम्,[3] आदि अध्यायो मे वर्णित है, एव नैषध मे प्रतिपादित आयुधागार [illegible] सन्दर्भो की मीमासा से यह प्रतीत होता है कि नैषकार इस ग्रथ एव इसके ग्रन्थकार (व्यास [illegible]) दोनो से प्रभावित थे। तत्कालीन समय मे राजकुमार शस्त्र एव शास्त्र दोनो मे पारगत [illegible] विवरण श्री हर्ष ने दमयन्ती स्वयवर मे आने वाले राजकुमारो के वर्णन प्रसग मे दिया है। यथा

> [illegible] कुलजा कुमारा शस्त्रेषु शास्त्रेषुच दृष्टपारा ।
> [illegible] शवरवैरिकायव्यूहश्रिय श्रीजितयक्षराजा ॥[4]

[illegible] नैषधकार ने कृपाण या तलवार का उल्लेख किया। वह कहते है कि नल के [illegible] मे तलवारो के प्रहार से शत्रु मरते थे, तो नल का वश दिगन्त तक फैलता था।[5] [illegible] तलवार बाजी मे अत्यन्त निपुण थे[6] एव उनकी तलवार तीस अगुल से अधिक लम्बी [illegible] पदेशाधिपति[8] की तलवार की प्रशसा करते हुए कीकट नरेश की तलवार को [illegible][9] जो कि म्यान से तत्काल निकालने पर चमकती थी। तलवारो को म्यान मे [illegible] से बनती थी।[10] उत्तम लोहे से बनी तेज धार होने के कारण ही [illegible][11] [illegible] आदि से बचाने के लिए, तेज धार बनाये रखने तथा खुले रूप मे रखने से [illegible] तलवारो को म्यान मे रखा जाता था। इससे यह तथ्य भी ध्वनित होता है कि [illegible] रख रखाव की तरफ भी यहाँ मानवबुद्धि को प्रेरित करने का प्रयास किया है। [illegible] को भेट मे दी जाने वाली खड्ग को नैषधकार ने "महिषासुरसघातिनी" नाम दिया। यथा

> [illegible] क्षतकासरासुर वराय भीम स्म ददाते भासुरम् ।
> [illegible] धवनामधारिणे स शभुसभोगनिमग्नयानया ॥
> [illegible] महिषासुरद्विषा कृपाणभस्मै तनदत्त कूकुद ।
> [illegible] हि धवार्धमज्जिना स दक्षिणार्धेन पराड्गधारणा ॥
> [illegible] सान्द्रतरागकानन स्वशौर्यसूर्योदयपर्वतव्रतम् ।
> [illegible] शाणनधौतधारया समूढसन्ध्य क्षतशत्रुजासृजा ॥[12]

---

1 135 वा अध्याय
2 236 वा अध्याय
3 249 250 251 252 वा अध्याय
4 नै० 10/1
5 नै० 1/12
6 [illegible] कूटावट स्थानस्थायुकमौक्तिकोत्करकिर कैरस्य नाप कर ।
[illegible] क्षुण्णासु क्षितिषु क्षिपन्निव यश क्षोणीज बीजव्रजम् ॥ नै० 12/66
7 निर्गत त्रिश तऽगुलिभ्य इति त्रिशदगुल्यधिक खड्ग इत्यर्थ,
[illegible] इति डच् प्रत्यय । नै० 12/66
8 नै० 12/73
9 अस्यासिभुजग स्वकोश [illegible] कृष्ट स्फुरत्कृष्णिमा ।
कम्पोन्मीलदरालीज्वलनस्तथा भिये भूभुजाम् ॥ नै० 12/96 पूर्वार्द्ध
10 स्वकोशात् चर्ममयनिजपिधानादथ विवात् बिलात्
आकृष्ट उद्धृत स्फुरत्कृष्णिमा व्यक्तकृष्णवर्ण इति । नै० 12/96 मल्लिनाथ
11 तथा- स्फुरत्प्रकाशमान उत्तम लोहजाति विशेषत्वारुकृष्णिमा श्यामत्व यस्य ।
12 नै० 16/18,19,20

उपर्युक्त कथन "सान्द्रतरागकानन" के माध्यम से श्री हर्ष ने तलवार की सम्पूर्ण आकृति का निरूपण किया है कि वह तलवार अपने प्रताप रूपी सूर्य का उदयाचल स्वरुप था। खड्ग मे अत्यन्त घने चित्र खिचे हुए थे, शाण पर चढने से उसकी धार उज्जवल (तेज) हो गयी थी आदि। इससे यह प्रतीत होता है कि तलवार को सुन्दर बनाने हेतु उसमे चित्रकारी भी की जाती थी एव तेज धार के लिए उसे शाण पर चढाया जाता था। नारायण कहते है– सूक्ष्माण्यगानि अगकानि मुद्गपत्रीवल्लीरुपाणि तेषामनन जीवन यत्र। तदाधार इति यावत्। सान्द्रतराणा पूर्वोक्तानामेवागाना कानन समूहो यत्र। जिनराज का भी यही मन्तव्य है, जब कि विद्याधर कहते है "सान्द्रतरमर्तिगहनमगाना पुष्कराणा काननमिव यत्र। तलवार के साथ-साथ श्रीहर्ष ने आत्मरक्षार्थ पहनने वाले कवच (अरित्र) का वर्णन कामरुपदेशाधिपति के वर्णन प्रसग मे किया है।[1] नारायण कहत है "अरिभ्यस्त्रायत, इत्यरित्र कवचम्।

कटार भी शस्त्र के अन्तर्गत परिगणित है। कलिगाधिपति के वर्णन प्रसग मे श्री हर्ष ने इसका उल्लेख करते हुए अभिहित किया कि युद्ध से परागमुख अपने शूरवीर के मस्तक को भी यह नरेश अपने कटार से अलग कर देता है[2] एव इसके प्रहार मे ठन् शब्द की निष्पत्ति होती है।[3] यह लोहे से बनी होती है।[4]

खोखरी या खुखरी (छूरी) का वर्णन भी नैषध महाकाव्य मे प्राप्त है। राजा भीम ने भेट रूप मे एक खुखरी राजा नल को प्रदान की थी[5] जो द्विधारिका थी।[6] इससे स्पष्ट होता है कि इस शस्त्र विशेष मे दो तरफ धार होती है, एव आज भी इसका प्रचलन सैनिको ,डपसपजतपमेद्ध द्वारा अपनाये जाने मे देखा जा सकता है। शस्त्र के अन्तर्गत नैषधकार द्वारा वर्णित इन्द्र के वज्र[7] को भी रखा जा सकता है, जिसके अधिकारी स्वय इन्द्र ही थे, अन्य दूसरो के पास इस शस्त्र के मिलने की जानकारी अनुपलब्ध है। नल द्वारा विष्णु वन्दना के प्रसग मे दैत्यराज हिरण्यकश्यप का वध नखाकुश[8] (पाणिशृणिपचक) लौह अकुश का उल्लेख भी नैषधकार ने किया है। वरुणदेव के पाश[9] का विवरण भी नैषध महाकाव्य मे श्री हर्ष ने सुमधुर

---

1 अन्वेषि रणभूमिभृताना गतैररित्रेण विनास्य वैरिभि ।
विधाय यानपात्रैर्निजमेषे निमज्ज्य तीर्ण समरे भवार्णव ॥ नै० 12/71

2 विद्राण रणकर्मपराङ्मुखे त्रस्ते समस्ते पुन कोपात्कोऽपि निवर्तते यदि भट कीर्त्या जगत्युद्भट ।
भागान्धनपि सम्मुख निजभुजे गच्छत्यसौ द्रागेतच्छुरिकारयेण ठणिति छिन्नापसर्पच्छिरा ॥ नै० 12/30

3 एतस्य छुरिकाया· शस्त्रविशेषस्य रयेण ठणिति कश्चिदनुकरणशब्द।

4 ठण् इति लाहकण्ठास्थिसघटटज शब्दानुकरणम्। नै० 12/30 नारायण

5 यमेन जिह्वा प्रहितेव या निजा तमात्मजां याचितुमर्थिना भृशम् ।
स ता ददेऽस्मै परिवार शोभनीं करग्रहार्हामसि पुत्रिका मणि ॥ नै० 16/21
यदगभूमि बभतु स्वयोषितामुरोजपत्रावलिनेत्रकज्जले ।
रणस्थलस्थण्डिल शशातावतैगृहीतदीक्षैरिव दक्षिणी कृते ॥ नै० 16/22

6 चाण्डु पण्डित का कथन है "अगस्य भूमि उभयपक्षत भूमीद्वयम् ।
जिनराज का अभिमत है अड्ग पट्टिका तस्य भूमी ऊर्ध्वाधोदेशौ । विद्याधर का मत है-तस्या छुरिकाया अगभूमि पुष्करपट्टिकाभूमी।
– मल्लिनाथ कहते हैं 'यस्या असिपुत्रिकायाः अगभूमी प्रान्तदेशौ रणस्थलमेव स्थण्डिलममनिम्नोक्ता परिष्कता भू। नारायण का कथन है 'अगभूमी पट्टिकाया ऊर्ध्वाधोदेशौ।। एव हाण्डिकी की टिप्पणी है कि अगभूमि (dual) "means-The blade of a knife or rword, Refers to the upper and lower portions or the two sides of a blade नै० 16/22

7 नै० 11/124

8 दैत्य भर्तुरुदरान्धुनिविष्टा शक्रसपदमिवोद्ध रतस्ते । पातुपाणिशृणिपचकमस्माच्छिन्नरज्जुनिभलग्नतदन्त्रम् ॥ नै० 21/60

9 तस्या मनाबन्धविमोचनस्य कृतस्य तत्कालमिव प्रचेता ।
पाश उधान कर बद्धपास विभुर्बभावाप्यमवाप्य देहम् ॥ नै० 14/64
नलभीमभुवो प्रेम्णि विस्मिताया दधौ दिव. । पाशिपाश शिर कम्पसस्तभूषश्रव श्रियम् ॥ नै० 17/10
बभाण वरुण. क्रोधादरुण. करुणोज्झितम् । कि न प्रचण्डात्पाखण्डपाश । पाशादिबभेषि न ॥ नै० 17/102, एव 14/31

काव्यसचेतना के माध्यम से दिया है, जिसका साम्य वर्तमान मे वन्दियो को पहनायी जाने वाली 'हथकडी' से स्थापित किया जा सकता है। परशुराम के फरसे (अर्द्धचन्द्राकार) का वर्णन भी नल की पूजा वर्णन प्रसग मे उपलब्ध होता है[1] एव मुद्‌गर,[2] तथा लाठी,[3] का निर्देश भी इस महनीय ग्रथ मे प्राप्त होता है। जिसमे मुगदर की प्रासङ्गिकता वर्तमान मे केवल व्यायाम तक सीमित रह गयी है तथा लाठी एव फरसे की प्रासङ्गिकता और समीचीनता की पुष्टि आज भी शस्त्र के रूप मे ग्रामीण परिवेश मे देखी जा सकती है।

अस्त्रायुधों के अन्तर्गत मनुष्यो द्वारा अपनाये जाने वाले अस्त्रो के साथ-साथ श्री हर्ष ने देवो के अस्त्रो का उल्लेख भी किया है जिसमे भगवान विष्णु के शख (पाञ्चजन्य) एव चक्र[4] तथा अग्नि के अग्निदण्ड[5] और यमराज के दण्ड[6] एव उनके उत्क्रान्तिका नामक शस्त्र (शक्ति विशेष) साथ ही गदा का विवरण नैषधीयचरितम् मे उपलब्ध होता है। 'चक्र' की अस्त्रायुध रूप मे विश्रुति है एव भगवान विष्णु के शख के बारे मे जनश्रुति है कि यह वामार्त होता है[7] एव इसकी ध्वनि से शत्रु बधिर एव अचेतन हो जाते है। वर्तमान मे उपलब्ध अधिकाश शख दक्षिणार्त' मिलते है, वामार्त शख कम ही प्राप्त होते है आध्यात्मिक मनुष्य वामार्त शख को (विष्णु का शख होने से) अत्यधिक मूल्यवान, पवित्र एव पूजार्ह्र समझते है। मानव जगत मे व्यवहरित अस्त्रो मे शतघ्नी नामक तोप का वर्णन नैषधकार ने मलयाधिपति के वर्णन प्रसग मे किया है, जहॉ वह कहते है कि इस अस्त्र विशेष को धारण करने वाले महिपाल का सौ सशस्त्र राजा भी मुकाबला नहीं कर सकते, एव लक्ष्यभेदी (पक्षान्तर मे लाख व्यक्तियो को मारने वाले) इस राजा के लिए एक लाख शत्रु भी व्यर्थ है। यथा -

राज्ञामस्य शतेन कि कयतो हेति शतघ्नी कृत
लक्षैर्लक्षभिदो दृशैव जयत पद्‌मानि पद्‌मैरलम्।
कर्तु सर्वपरच्छिद किमपि नो शक्य परार्धेन श
तत्सख्यापगम विनास्ति न गति काचिद्वतैर्द्विषाम्।।[8]

बारहवीं शताब्दी में वर्णित इस तोप एवं मदनके आग्नेयास्त्र[9] का साम्य वर्तमान मे उपलब्ध, अर्जुन विक्रात, या सामान्य अर्थ में लाइट मशीनगन से स्थापित किया जा सकता है एव लक्ष्यभेदी अस्त्र के रूप

---

1 अर्द्धचक्रनपुषाऽर्जुन बाहू योऽलुनात् परशुनाऽथ सहस्रम् ।
तेन कि सकलचक्रविलूने बाणबाहुनिचयेऽञ्चति चित्रम्? नै० 21/97

2 नै० 17/179

3 नै० 17/ 187

4 पाचजन्यमधिगत्य करेणापान्चजन्यमसुरानिति वक्षि ।
चेतना रथ किल पश्यत कि नाचेतनोऽपि मयि मुक्त विरोध ।। नै० 21/98

5 दण्डताण्डवनै. कुर्वन्स्फुलिगानलिगित नम ।
निर्ममेऽप गिराभूर्मीभिन्न मर्मेव धर्मराट् ।। नै० 17/95
तिष्ठ भोस्तिष्ठ कण्ठोष्ठ कुण्ठयामि हठादयम् ।
अपष्ठु पठत. पाठ्यमधिगोष्ठि शठस्य ते ।। नै० 17/96

6 दण्ड बिभर्त्तर्ययमहो । जगतस्तत स्यात् कम्पाकुलस्य सकलस्य न पङ्पात
स्वर्वैद्ययोरपि मदव्ययदायिनीभिरेत रुग्भिरमर खलु कश्चिदस्तिर ।। नै० 13/15
यस्य दण्डभयात सर्वे भूतग्रामा· समागता। धर्ममेवानुरुध्यन्ति का त न वरयेत् पतिम्।। महा 3/56/10

7. पाञ्चजन्यमिति। हे विष्णो। करेण पाणिना, वामहस्तेनेति यावत्। पाञ्चजन्य तदाख्यशङ्म। शङ्खे लक्ष्मीपते पाञ्चजन्यः इत्यमरः। दक्षिणेन च करेण अपाञ्च जलानाञ्च, जन्यम् उत्पाद्यम् जताज पद्‌ममित्यर्थ। नै० 21/98 मल्लि0

8 नै० 12/58

9. शशिमयं दहनाशास्त्रमुदिस्वरं मनसिजस्य विमृश्य वियोगिनी ।
झटिति वारुणमश्रुमिषादसौ तदुचितं प्रतिशस्त्रमुपाददे ।। नै० 4/38

मे आधुनिक प्रक्षेपास्त्रो पृथ्वी, अग्नि, नाग, एव त्रिशूल से मलराधिरीते के इर ... की साम्यता परिलक्षित होती है। अवधेय है कि उपर्युक्त सभी अस्त्र संहारकारक है। एव श्री हर्ष ने ... द्वारा नल को प्रदान देते समय यह अभिहित किया कि "सम्पूर्ण शस्त्रसहार तथा निरोधादि के ... (मन्त्रादि प्रयोगो के साथ शत्रुओ पर सर्वदा विजय पाने वाले तुम्हे (नल को) प्राप्त होंगे क्योकि ... के लिए कृतसंकल्प (योद्धाओ, को इस (समन्त्रक सहार-विक्षेप के सहित अभ्यास प्राप्त शस्त्रो) से अधिक प्राप्त करने योग्य कोई पदार्थ नहीं है।[1] इससे यह प्रतीत होता है कि नल सम्पूर्ण संहारक शस्त्रों के जानकार थे। श्री हर्ष द्वारा वर्णित वारुणास्त्र[2] का साम्य वर्तमान मे प्रचलित (पुलिस द्वारा दगानियत्रण हेतु अपनाये जाने वाले) अश्रुगैस से स्थापित किया जा सकता है, लेकिन वायव्यास्त्र, भुजगास्त्र[3] एव मदन के कुसुमास्त्र[4] की आज समीचीनता नहीं रह गयी है।

अस्त्रायुधो के अन्तर्गत धनुषबाण[5] का अप्रतिम महत्व है। नैषधकार ने इस अस्त्र विशेष को नैषध मे सर्वाधिक महत्व दिया है। इस अस्त्र की बनावट एव उसमे पयुक्त बास की परीक्षा का भी सकेत नैषध मे मिलता है, ... यह तथ्य प्रकट होता है, जिस बास का धनुष बनाया जाता है उस पर सिन्दूर की रेखा खींची जाती है, एव यदि उस बास के पीठ या उर्ध्व भाग पर स्पष्ट रेखाकन हो जाता है, तभी वह बास धनुष बनाने हेतु श्रेष्ठ समझा जाता है।[6] इस अस्त्र से साहित्यिक वर्णन नैषध मे इतनी प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है कि लगता है कि श्री हर्ष धनुर्वेद[7] की रचना करना चाह रहे थे। ... मे प्रयुक्त बास, डोरी, बाण एव लक्ष्य का चित्रण हंस द्वारा वर्णित दमयन्ती के सौन्दर्य वर्णन प्रसग मे प्राप्त होता है जहाँ हस दमयन्ती से कहता है कि कामदेव पुरुषो के बाणो से दुर्जेय (दुःख से जीते जाने योग्य) इस राजा (नल को) को जीतने के लिए दोषरहित वश मे उत्पन्न (पक्षान्तर मे छिद्र रहित बास से बनी हुई) तथा अधिक गुण वाली (पक्षान्तर मे डोरी चढी हुई) तुमको, धनुर्लता पाकर हर्षित हो रहा है, जो धनुर्लता (तुम्हारी) पीठ पर कुछ लटकती हुईसा कण्ठभूषण के लाल पट्टसूत्रलता से सिन्दूर की शोभा वाली अर्थात् बास की परीक्षा के लिए सिन्दूर रगडने से उत्पन्न लाल रेखा से युक्त होने के समान सुशोभित हो रही है।[8]

धनुष के एक दूसरे प्रकार, जिस पर मिट्टी की गोली फेकने के लिए छिद्र बना रहता है। वर्तमान मे जिसका साम्य 'गुल्ला' (गुलिका, चिडियो को मारने या भगाने मे प्रयुक्त) का वर्णन करते हुए

---

1 सर्वाणि शस्त्राणि तवांगचक्रैराविर्भवन्तु त्वयि शत्रुजैत्रै।
अवाप्यमस्मादधिक न किञ्चिज्जागर्ति वीरव्रतदीक्षितानाम् ।। नै० 14/80

2 अतनुना ...दमम्बुदमाम्बुद सुतनुरस्त्रमुदस्तमवेक्ष्य सा।
उचित मायतनि श्वसितच्छलाच्छवसन शस्त्रममुञ्चदमु प्रति ।। नै० 4/33

3 रतिपतिप्रहित निलहेतिता प्रतियती सुदती मलयानिले।
तदुरुतापभयात्तनृणालिकामयामियं भुजगास्त्रमिवादित् ।। नै० 4/40

4 आत्तया युद्धि विजित्य रतीश राजित कुसुमकाहलयेव ।। नै० 21/34 उत्तरार्द्ध

5. नैषध में धनुषबाण विषयक वर्णन द्रष्टव्य हैं।

6 नै० में धनुष बाण विषयक वर्णन द्रष्टव्य हैं 1/9, 3/38, 39, 4/37, 3/105, 12, ..., 4..., 44, 48, 49, 54, 71, 83, 97, 98, 109, 13/23 कि भूता धनुर्वल्लीम्? निवसता विद्यमानेन सिन्दूरेण ... लोहिनिमा यस्या तया पृष्ठे धनु पृष्ठभागे, अथ च पश्चाद्भागे कियल्लम्बया कियद्दीर्घया ग्रीवा मध्य कण्ठश्च तथा ... कृतिलकारभूता पट्टसूत्रलता तया, दीर्घेण पट्टसूत्रेणेत्यर्थ। भ्राजिष्णु शोभमानाम्। कयेव? कषरेखया परीक्षारखयेव कषणधारया धनुर्योग्यवेणुपरीक्षाया निघृष्यमाण सिन्दूर चलति चेत्तदा परिपाको ज्ञेय इति धानुष्कप्रसिद्धिः। नै० 3/126, नारायण टीका

7 ऊर्ध्वस्ते रदनच्छद स्मरधनुर्बन्धूकमालामय, मौर्वी तत्र तवाधराधररटाघ सीमलेखालता।
एषा वागपि तावकी ननु धनुर्वेद प्रिये! मान्मथ, सोऽय कोणधनुष्मतीभिरुचेत वीणाभि ...स्थिते ।। नै० 21/57

8 काम कौसुमचापदुर्जयममुजेतु नृप त्वा धनुर्वल्लीमव्रणवश जामधिगुणामासाद्य मान्यत्यसौ।
ग्रीवालकृतिपट्टसूत्रलतया पृष्ठे कियल्लम्बया भ्राजिष्णु कषरेखय निवसत्सिन्दूरसौन्दर्यया ।। नै० 3/126

सकेत स्वयवर सभा मे आयी दमयन्ती के असाधारण सौन्दर्य की प्रशसा सरणि मे दमयन्ती के कर्णाभूषणो (कर्णकुण्डलो) के प्रति राजाओ के कथन मे उद्धृत किया है, कि क्या इस दमयन्ती के दोनो कर्णाभरण धनुर्धारी कामदेव के लक्ष्यभेदन के लिये दो गोल चिन्ह बनाकर रखे गये है? अथवा क्या सव्यापसव्य हाथो से मारे हुए मदन के बाण इन्हीं गोलो के मध्य होकर जाते है।[1] स्पष्ट है कि यहाँ लक्ष्य भेदन मे सिद्धहस्त कामदेव का कुशल धनुर्धारी के रूप मे श्रीहर्ष ने वर्णन किया है। तदनन्तर इस प्रकार भ्रष्टलक्ष्य का भी सकेत करते हुए अभिहित करते है कि वह दमयन्ती नीलकमलो के दो कर्णभूषण रूप कामदेव की अपकीर्ति फैलाती है, अर्थात दमयन्ती के कानो मे कामदेव जैसे धनुर्धारी के होने पर भी, अभी भी कानो मे (लक्ष्य रूप) कुण्डल विद्यमान है, यह खेद का विषय है क्योकि दुष्ट लोग इन (दो नील कमलो के कर्णाभूषणो) के द्वारा कान के कुण्डल रूप लक्ष्य को वेध करने वाले उस कामदेव को च्युतसायक (विफल लक्ष्य वाला) कहेगे।[2] दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि कामदेव द्वारा छोडे गये नीलकमल रूप दो पुष्पवाण दमयन्ती के कर्णकुण्डलो के बीच से न निकल कर लक्ष्य भ्रष्ट होकर कान पर ही रुक गये है, अतएव यह कामदेव लक्ष्यवेध मे निपुण नहीं है इससे यह कामदेव की अपकीर्ति (बदनामी) करेगे। इस प्रकार श्रीहर्ष द्वारा नील कमलो को कामदेव के बाणो का पुष्पमय होने से कामबाण तथा अपकीर्ति के काली होने से उनका अपकीर्ति मानना ठीक ही है।

बाण के प्रकार एव उसकी बनावट के वर्णन सम्बन्धी विवरण का सकेत भी श्रीहर्ष ने नैषध मे किया है। काशीनरेश के बाण को क्षुरप्रशर[3] नाम देते हुए सरस्वती दमयन्ती से कहती है कि युद्ध मे आये हुए शत्रुओ के शिरोनाल (गर्दन) को काटने वाले 'क्षुरप्र' नामक बाण- विशेष से फैलने वाले प्रताप वाला तथा कीर्ति समूह रूप चामर से सुन्दर धनुष वाला (धनुष से प्राप्त कीर्ति वाला) यह राजा तुम्हारा (दमयन्ती का) आलिगन करे तुम्हारे (अथवा तुम्हारे कारण उत्पन्न अपने) कामसन्ताप को दूर करे।[4] बाण के एक अन्य भेद "नलिका बाण" का सकेत भी हस द्वारा वर्णित दमयन्ती सौन्दर्य वर्णन प्रसग मे प्राप्त होता है। यथा -

> धनुषी रतिपञ्चबाणयोरुदिते विश्वजयाय तद्भ्रुवौ ।
> नलिके न तदुच्चनासिके त्वयि नालीकविमुक्तिकामयो ।[5]

इसके साथ-साथ इक्कीसवें सर्ग मे भी नल द्वारा दमयन्ती सौन्दर्य वर्णन मे[6] नालीक बाण के होने का विवरण नैषध के प्राचीन टीकाकार विद्याधर मानते है, वे कहते है— नालीका नालिका बाणा , एव नारायण

---

1 लक्ष्ये धृत कुण्डलिके सुदत्या ताटङ्कयुग्म स्मरधन्विने किम् ।
सव्यापसव्य विशिखा विसृष्टास्तेनैतयोर्यान्ति किमन्तरेव ।। नै० 10/117

2. तनोत्यकीर्तिं कुसुमाशुगस्य सैषा बतेन्दीवरकर्णपूरौ ।
यत श्रव कुण्डलिकापराद्धशर खल ख्यापयिता ताभ्याम् ।। नै० 10/118

3 हेमचन्द्र ने लौहमुख वाले बाण क्षुरप्र' की सज्ञा दी है। यथा क्षुराभ लोह प्राप्ति क्षुरप्रे नाराचमुखलोह - अभिधानचिन्तामणि, 3/44, वामन आप्टे भी यही अर्थ मानते हैं, संस्कृत हिन्दी कोश पृ 319 रुचिपति अपने अनर्घराघव (4/47) की टीका में "क्षुरप्रनखरै प्रकाशद्रिदन्तावलम्' के उल्लेख के साथ क्षुरप्र की खुर से समानता की है। यथा खुरप्र-क्षुर विलेखण्डने खुरच्छेदने इति धात्वोर्वर्णदेशनया साधितत्वात्। [illegible] इत्यत्र, पुरस्तात् "मृगखुरक्षुरप्रव्यालेखस्थपुटितविभागा वनभुव इत्यत्र च प्रयुक्तान्। प्रो हॉडिकी कहते हैं 'An arrow with a razor like blade at its tip" उपर्युक्त के साथ ही नैषध 12/66 में चण्डुपण्डित का कथन भी द्रष्टव्य है।

4 पृथ्वीश एष नुदतु त्वदनङ्गतापमारिञ्चयकीर्तिचय चामरचारु चाप ।
सङ्ग्राम संगत विरोधि शिरोधि दण्डखण्डि क्षुरप्र प्रसप्रसरत्प्रताप ।। नै० 11/123

5 नै०, 2/28

6 स्त्रीपुंसौ प्रविभज्य जेतुमखिलावालीकचितौचित्ययोर्मन्ये वेदिम शिलीमुखनशरयोश्चाप [illegible] तद्भ्रुवे ।
त्वन्नासाच्छल नेहनुता द्विनालिकी नालीकमुक्त्येपि गोस्त्वन्निश्वासलते मधुश्वसनज [illegible] तदा । नै० 21/1[illegible]

का मत है "नालिकाना विर्तस्तमात्रनालीकाख्यश्च वेशेषाणा[1] उ इसे पता … (T..r arrow) भी मानते हैं।[2] विश्वकोश मे भी वर्णन मिलता है कि नालीक एक शस्त्र का नाम … अलोक … इति विश्व।" साथ ही नैषधकार ने "वायव्यास्त्र" जैसा अभिकथन करके वायव्यास्त्र की तरफ भी संकेत किया है। सुर धनुष[3] का वर्णन करने के साथ श्रीहर्ष ने धनुष की टंकार (आवाज) का विवरण देते हुए नल को दक्ष धनुर्धारी[4] बताकर यह प्रतिपादित करने का प्रयास किया है कि वह अस्त्र की इस विद्या से भी परिचित थे।

वर्तमान मे युद्ध मे अपनाये जाने वाले पनडुब्बियो का साम्य श्रीहर्ष द्वारा वर्णित जलयन्त्र से[5] सामान्य अर्थ मे किया जा सकता है, साथ ही रथो का[6] साम्य सैनिक ट्रको …, … एव विमान (पुष्पक)[7] का साम्य आज प्रचलित साधारण वायुयान या जेट फाइटर विमान, जगुआर मिग-15, मिराज-2000 एव सुखोई से किन्चित रूपेण स्थापित किया जा सकता है। प्राचीन काल मे प्रचलित मल्ल युद्ध के वर्णन को भी श्रीहर्ष ने नैषध महाकाव्य मे स्थान दिया है[8] किन्तु आज इसकी समीचीनता नहीं रह गयी है। हॉ, अखाडो मे कुश्ती के रूप मे यह परम्परा आज भी प्रचलित है, लेकिन (… की अराख्य) जल सेना का[9] नैषधकार द्वारा दिया गया सन्दर्भ आज भी प्रासंगिक है साथ ही नैषधकार द्वारा दी गयी हस्ति सेना[10] एव अश्व सेना की[11] समीचीनता प्राचीन काल तथा मध्यकाल तक तो थी[12] लेकिन वर्तमान मे हाथी सेना मे या शोभा यात्राओं … … है, परन्तु अश्वो (अश्व सेना) का आज भी आशिक प्रयोग पुलिस द्वारा अपनाये जाने से अश्व सेना की आशिक समीचीनता एव प्रासंगिकता व्यावहारिक जीवन मे भी देखी जा सकती है।

चिकित्साशास्त्र या आयुर्वेदशास्त्र

श्रीहर्ष ने 'नैषधीयचरितम्' में आयुर्वेदशास्त्र, जिसे ऋग्वेद एव अथर्ववेद दोनो वेदो का उपवेद[13] भी माना जाता है, के कुछ सदर्भ उपस्थित किये है, जो नल की कामपीडित अवस्था … की

---

1 नै० 21/150, नारायणी व्याख्या

2 नालाको नलिकाप्रेर्यमाणलघुशरौ तयोर्विमुक्तिकामयोर्नलिके
शराधारनलौ न भवत आपतु नलिके एव। नै० 2/28, नारायणी व्याख्या

3 रथा …मनुपत्पयोधरे मत्कर सुरधनुष्करस्तव ।
सेवया व्यजनचालनाभुवा भूय एव चरणौ करोत वा ॥ नै० 18/129

4 … व्ययितस्य सगरे ।
… रय तज शिखिन परशता वित… रिङ्गालमि… परे ॥ नै० 1 …

5 नै० 18/114 मे नारायण का कथन है- "जलधारासचारिमण्डपपरस्म्भादिरचित जलयन्त्रेभ्य पातुर्निर्गमनशीलैरासारैर्धारासपातै दूर।

6 नै० 16/23

7 प्रसूतवत्ता नलकूवरान्वयप्रकाशितारथापि महारथस्य यत्। कुबेर… तबलेन पुष्पकप्रकृष्टै… ततोऽनुमीयते॥
नै० 16/24 … नै० 10/107, 11/23, 13/11 यादवाभ्युदय, 12/89, जयन्ती विजय 13/77,79 तथा हारि… कृत नै० द्रष्टव्य पृ 629
— करोदधुत वेमानच पादहाति विपादिकम्। गात्रस्य श्लेषण … तथा गात्रविपर्यय ॥ अग्निपुराण 252/…

8 या सर्वतोमुख्या व्यवतिष्ठमाना गदोरणैर्जयति … कविदारि… य ।
एतस्य भूरितनिरिनिधिश्च … सा यस्य प्रतीतिविषय परतो न रोध ॥ नै० 13/22

9 नै० 13/22

10. नासीरसीमनि … भूयान् … सहदानवारि ।
… सुखमातनोति रत्नैरलकरण…वमितैर्न दीन ॥ नै० 13/23

11 सस्यैन्दनै … प्रतिकूलपात … वाहिनी … तनुते … नाम? ।
तस्या विलासवति। कर्कशताश्रिता य, ब्रूम कथ … सिकता का ता ? ॥ नै० 13/24

12 रथे रणे गजे चैव तुरङ्गाणां त्रय भवेत ।
धानुष्काणा त्रय प्रोक्त रक्षार्थे तुरगस्य च ॥ अग्नि पु 252/32

13 इस खलु आयुर्वेद नानोपाङ्गमथर्ववेदस्य। सुश्रुत सूत्र 1/60 एव विस्तृत विवेचन हेतु … सस्कृतवाङ्मय – डॉ० हरिकृष्णशास्त्री, पृ० 116

कामज्वरावस्था[1], राजाओ के वर्णन तथा नल दमयन्ती द्वारा सनत्रा वर्णन ग्रन्थ मे द्रष्टव्य है। आचार्य सुश्रुत ने इस शास्त्र की व्याख्या करते हुए कहा था आयुरस्मिन् विद्यते, अनेन वा आयुर्विन्दतीति आयुर्वेद। अर्थात् आयुर्वेदशास्त्र वह शास्त्र है, जिसके द्वारा मानव अपनी आयु को प्राप्त करता है, या अपनी आयु का सरक्षण एव परिवर्धन करता है। आचार्य चरक ने आयुर्वेद की व्याख्या करते हुए, उल्लेख किया कि- हिताहित सुख दु खमायुस्तस्य हिताहितम्। मान च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेद स उच्यते।[2] वाग्भटटीकाकार का भी कथन है कि देह की शुद्धि चिकित्साशास्त्र ही करता है।[3] इस शास्त्र के प्रथम आचार्य ब्रह्मा माने जाते है। उनसे इस शास्त्र का ज्ञान प्रजापति, अश्विनी कुमारो, इन्द्र तथा भारद्वाज ने क्रमश सीखा। भारद्वाज ने इसका प्रचार भारत वर्ष मे किया, जब कि महर्षि व्यास, आत्रेय मुनि को आयुर्वेद का प्रवर्तक मानते है[4], आयुर्वेदशास्त्र के विभिन्न विद्वानो एव ग्रथो का विवरण सस्कृत साहित्य मे प्रचुरता से मिलता है।[5] जिनमे चरक, सुश्रुत वाग्भट्ट[6] एव धन्वतरि काश्यप आदि प्रमुख महर्षि भी सम्मिलित है। आयुर्वेदशास्त्र के प्रमुख आठ अग माने जाते है,[7] शल्य, शालाक्य, कायचिकित्सा भूत वेद्या, कौमारभृत्य अगदतत्र, रसायनतत्र तथा वाजीकरण।[8] आयुर्वेदशास्त्र के मुख्य दो प्रयोजन होते है, रोगो से मुक्ति दिलाना एव स्वास्थ्य की रक्षा[9] (Preventive and curative)

बारहवीं शताब्दी के विद्वान् श्रीहर्ष की इस आयुर्वेदिक समीचीनता का ज्ञान इस से विदित होता है कि रोगो से निजात तो पाया जा सकता है, लेकिन मृत्यु (अतिम व्याधि) से मुक्ति पाना असभव है[10], जब कि आज इक्कीसवीं सदी की तरफ अग्रसर विश्व के लोग एव वैज्ञानिक अनेक प्रकार की स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओ का अन्वेषण तो कर लिये है, लेकिन मृत्यु (प्राणवायु) को रोक पाने मे असमर्थ रहे है, मृत्यु के कारणो या उसकी परिस्थितियो के मूल बिन्दुओ तक क्या वे स्पर्श नहीं कर पाये है, हाँ उनके प्रयत्न इस दिशा मे अवश्य चल रहे है, परन्तु प्रकृति के इस कृत्य के मूल बिन्दुओ की खोज वे कर सकेगे, इसकी सम्भावना कम ही दिखती है। श्रीहर्ष ने आयुर्वेद के मर्मज्ञ अश्विनीकुमारो[11] को यदि स्वर्गवैद्य के रूप मे मान्यता दी, तो चरक एव सुश्रुत[12] का नाम श्रवण करना भी वह नहीं भूले। ग्रन्थकार ने अश्विनीकुमारो

---

1 महाभारत- 3/54/1 6

2 चरक सहिता 1/41

3 कायवाग्बुद्धिविषया ये मला समुपस्थिता। चिकित्सालक्षणाध्यात्मशास्त्रैस्तेषा विशुद्धय

4 गान्धर्व नारदो वेद भरद्वाजो धनुर्ग्रहम्। देवर्षिचरित गार्ग्य कृष्णात्रेयश्चिकित्सितम्। मह। शान्ति 210 अध्याय

5 सस्कृत साहित्य का इतिहास-बहादुरचद छाबड़ा पृ 703-731 सस्कृत शास्त्रो का इतिहास बलदेव उपाध्याय पृ० 443

6 अत्रि कृतयुगे वैद्यो द्वापरे सुश्रुत स्मृत। कलौ वाग्भटनामाश्च, गरिमात्र प्रदिष्यते।। हारीत
चरक सुश्रुतश्चैव वाग्भटश्च तथापर मुख्याश्च सहिता वाच्या स्तिस्त्र एव युगे-युगे।। हारीत
अथ मैत्रीपर पुण्यमायुर्वेद पुनर्वसु। शिष्येभ्यो दत्तवान् षड्भ्य सर्वभूतानुकम्पया।
अग्निवेशश्च भेलश्च जतूकर्ण पराशर। हारीत क्षारपाणिश्च जगृहुस्तन्मुनेर्वच ।। चरक

7 चतुरगबलो राजा जगतीं वशमानयेत्। अह पञ्चाग्नबलवानाकाश वशमानये ।।
कायबालग्रह ऊर्ध्वाङ्गशल्यदष्ट्राजरावृषान्। अष्टावगानि तस्याहुश्चिकित्सा येषु सश्रित अष्टागहृदय

8 अग्निपुराण मे, सिद्धौषधानि, सर्वरोगहराण्यौषधानि, रसादि लक्षणम् [illegible] सर्वरोगहराण्यौषधानि, मृतसञ्जीवनीकरसिद्धयोगकथन, कल्पसागर गजचिकित्सा, अश्वचिकित्सा, [illegible] दष्टचिकित्सा, गानसादिचिकित्सा रूप में क्रमश 279, 280, 281, 282, 283, 285, 286, [illegible], 289, 292, 295, 298, अध्यायों में चिकित्साशास्त्र का वर्णन द्रष्टव्य है।

9 व्याध्युपसृष्टाना व्याधिपरिमोक्ष स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणम् सु सहिता 1/1

10 दण्ड विभर्त्यर्यमहो जगतस्तत स्यात्कम्पाकुलस्य सकलस्य न शङ्कपात
स्वर्वैद्ययोरपि मदव्ययदायिनीभिरेतस्य रुग्भिरमर किमुकश्चिदस्ति।। नै० 13/16

11 किमुतदन्तरुभौ भिषजौ दिव स्मरनजौ विषत स्म विगाहितुम्।
तदभिकेन चिकित्सुतुमाशु ता मखभुजामधिपेन नियोजितौ ।। नै० 4 5
नाकलोकभिषजो सुषमा या पुष्पचापमपि चुम्बति सैव।
वेद्मि तादृगभिषज्यदसौ तद्द्वारसक्रमितवैद्यकविद्य ।। नै० 5/46 एव 13/16

12 नै० 4/116

को खण्डितशिरो को भी जोडने वाले वैद्य के रूप मे वर्णित किया है जैसा कि इन्द्रजी के शब्दो से द्योतित हो रहा है यथा-

स्मरसखौ रुचिभि स्मरवैरिणा मखमृगस्य यथा दलित शिर।
सपदि सन्दधतुर्भिषजौ दिव सखि! तथानमगोऽकरोत् क॥[1]

ऋग्वेद म भी वर्णन मिलता है कि खेल नामक राजा की पत्नी विश्पला के पैर पक्षियो के पखो के समान युद्ध मे कट गये थे। अश्विनी कुमारो ने रात मे जाकर उसे अच्छी तरह चलने फिरने के लिए उपयुक्त लोहे की जघा लगाकर दे दी। यथा-

चरित्र हि वेरिवाच्छेदि पर्णम् आजा खेलस्य परितक्म्यायाम् ।
सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम् ॥
प्रशीर्णा दशाना पुष्णो नेत्रे नष्टे भगस्य च ।
वज्रिणश्च भुजस्तम्भस्ताभ्यामेव चिकित्सत ॥

वैद्यकीय सुभाषितसाहित्यम् मे वर्णन मिलता है कि अश्विनी कुमार कायचिकित्सा (Medicine), शस्त्र (शल्य) चिकित्सा (Surgery) और विकलागचिकित्सा (Arthopaedics) तीनो के कुशलचिकित्सक थे। आयुर्वेद के पण्डितो का मानना है कि पृथ्वी लोक मे परिश्रम एव मिताहार ही अश्विनी कुमार है। यथा–

परिश्रमो मिताहारो भूगतावश्विनीसुतौ। तयनादृत्य नैवाह वैद्यमन्य समाश्रयेत्।

आयुर्वेदविदो की मान्यता है कि निदान मे माधव का माधवनिदान श्रेष्ठ है, सूत्रस्थान मे वाग्भट्ट का अष्टागहृदय या अष्टागसग्रह श्रेष्ठ है, तथा शारीरस्थान मे सुश्रुत श्रेष्ठ है एव चिकित्सास्थान मे चरक श्रेष्ठ है। यथा-

निदाने माधव श्रेष्ठ सूत्रस्थाने तु वाग्भट। शारीरे सुश्रुत श्रेष्ठश्चरकस्तु चिकित्सिते॥

क्षेमकुतूहलकार का भी कथन है कि-

सुश्रुत न श्रुत येन किंवा यैर्बहुभि श्रुते। नालोकि चरक येन स वैद्यो यमकिङ्कर ।

वाग्भट ने भी चरक एव सुश्रुत सहिताओ को ही आयुर्वेद का मूल स्रोत माना है, जैसा कि वह कहते हैं- ऋषिप्रणीते प्रीतेश्चेन्मुक्त्वा चरकसुश्रुतौ। भेडाद्या किं न पठ्यन्ते तस्माद् ग्राह्य सुभाषितम्। नैषध मे प्राप्त आयुर्वेद सम्बन्धी विवरणों से यह प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष ने भी अश्विनीकुमारो, चरक एव सुश्रुत को ही आदर्श माना है।

नैषधमहाकाव्य मे रोगों मे सक्रामक रोग[2] (Infectious Contagious Disease) का वर्णन तृतीय सर्ग मे नल की कामदशा[3] के वर्णन प्रसग मे द्रष्टव्य है, जहाँ हस दमयन्ती से कहता है कि नल की भयकर कामज्वर की चिकित्सा करने की इच्छा करने वाले अनुभवी वैद्य समूह ने लज्जा से उस नल की

---

1. नै० 4/67
2. प्रसगाद्गात्रस्पर्शान्निश्वासात् सहभोजनात् ।
   सहशय्यासनाच्चापि वस्त्रमाल्यानुलेपनात ॥ सुश्रुत सहिता, निदानस्थान 5/33
   – कुष्ठ ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च ।
   औपसर्गिकरोगाश्च सक्रामन्ति नरान्नरम् ॥ वही 5/34
3. रतिरहस्य में कामदशायें 10 मानी गयी हैं - नयनप्रीति प्रथम चित्तासङ्गस्ततोऽथ सकल्प।
   निद्राच्छेदस्तनुता विषयनिवृत्तिस्त्रपानाश ।
   उन्मादो मूर्च्छा मृतिरितयेता स्मरदशा दशैव स्यु ॥ नै० 3/103 मल्लिनाथी व्याख्या से उद्धृत

विशाल लज्जा (रोग के कारण को ठीक नहीं समझ सकने के कारण) निदान ... धारण करने से, मानो सक्रामक रोग के समान वैद्यों मे भी प्रविष्ट हो गयी क्योंकि सक्रामक रोग स्पर्श, दर्श, ..., सहभोज, सहस्थिति, सहशयन तथा सक्रमित रोगी के वस्त्रो के स्पर्श एव उनके पहनने से दूसरे मनुष्यो मे भी सक्रमित कर जाता है। दूसरे शब्दो मे अगदतन्त्र के जानकार ... से वैद्य ... की चिकित्सा करना चाह रहे थे किन्तु रोग का निदान ठीक नहीं कर सकने के कारण वे ... हो गये, अतएव इससे यही ज्ञात होता है कि नल ने तुम्हारे (दमयन्ती के) विरह मे जो लज्जा का ... दिया है, वही विशाल लज्जा सक्रामक रोग (कुष्ठ, अपस्मार[1] आदि छूत की बीमारी) के समान उन ... मे भी ... हो गयी है। रोग का ठीक निदान नहीं करने से वैद्य समूह का लज्जित होकर मौन धारण ... है, अथवा जब वे रोग का ठीक निदान नहीं कर सके, तब नल से ही रोग का ... पूँछ बैठे, और उन्होने "दमयन्ती" विरह यह काम ज्वर है ऐसा लज्जा छोडकर स्पष्ट कह दिया, ... वे लज्जित हो गये कि बिना इनके कहे हम रोग का निदान नहीं कर सके। इस प्रकार मानो नल की लज्जा (सक्रामक रोग की तरह) उन वैद्यो मे प्रविष्ट हो गयी।[2] उपर्युक्त विवरण से यह भी ध्वनित होता है कि नैषधकार को आयुर्वेद के एक अग अगदतन्त्र का भी ज्ञान था। अगदतन्त्र की विशेष सामग्री अलम्बायन सहिता, उशन सहिता सनकसहिता तथा लाट्यायन सहिता जैसे ग्रथो मे भी द्रष्टव्य है।

रोगो मे पाण्डु रोग (पीलिया कामला या Jaundice या Icterus) का सकेत नैषध के चतुर्थ सर्ग मे मिलता है, जहाँ दमयन्ती कामदेव को उलाहना देती हुई कहती है कि तुम्हारी उपासना (आश्रय, करने वाले को अन्धता, दुर्बलता (पक्षान्तर मे अकाल मृत्यु) और पाण्डुता (पक्षान्तर मे पाण्डु रोग) होते है, जब कि तुमसे भिन्न सूर्य देव की उपासना से इन सभी रोगो का शमन होता है।[3] यथा

> दृगुपाहत्यपमृत्युविरूपता शमयते परनिर्जरसेवितः।
> अतिशयान्ध्यवपु क्षतिपाण्डुता स्फुरति भवति भवन्तमुपासितः॥[4]

धर्मसहिताओ का भी कथन है कि सूर्य नमस्कार से जन्मजन्मान्तरो मे (...) दारिद्र्य उत्पन्न नहीं होता। यथा-

> आदित्यनमस्कार ये कुर्वन्ति दिने दिने। जन्मान्तरसहस्त्रेषु दारिद्र्य नोपजायते।।

मत्स्यपुराण से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है। यथा-

> आरोग्य भास्करादिच्छेद्धनमिच्छेद्धुताशनात्। ज्ञान महेश्वरादिच्छेन्मुक्तिमिच्छेज्जनार्दनात्।

ध्यातव्य है कि आयुर्वेदशास्त्र के अनुसार मानवदेह मे कफ, पित्त एव वात इन तीन तत्त्वो का

---

1 अक्षिरोगो ह्यपस्मार क्षय कुष्ठो मसूरिका।
दर्शनात् स्पर्शनाद्दानात् सक्रमन्ति नरान्नरम्॥ नै० 3/111 मल्लिनाथ की टीका से उद्धृत

2 स्मार ज्वर घोरमपत्रपिष्णो सिद्धागदङ्कारचये चिकित्सौ।
निदानमौनादविशद्विशाला साङ्क्रामिकी तस्य रुचेव लज्जा। नै० 3/111

3. अतिशयेनान्ध्य दृष्ट्युपघात वपुःक्षाते शरीरविपत्ति पाण्डुतावैवर्ण्यञ्च, ता भवन्ति ... उक्तदोषशान्ति फल त्वद्भक्तस्य तद्द्रेक इत्यहो भक्तवात्सल्य कामदेवस्येत्युपहार। नै० 4/85 मल्लिनाथ

4 नै० 4/85

सदेव निवास रहता है। इन तीनो तत्वो की साम्यावस्था मे ही मानव देह स्वस्थ रहता है और वैषम्यावस्था या इन तीन तत्वो मे से किसी एक की अधिकता एव किसी की कमी होने से मानव शरीर अस्वस्थ या रोगग्रसित हो जाता है[2] यहॉ तक कि मनुष्य की मृत्यु तक हो जाती है। पीलिया रोग मे मनुष्य के शरीर मे पित्त का अधिकता होने से शरीर पीला पड जाता है, पाचन क्रिया कमजोर हो जाती है तथा उसका शरीर भी दुर्बल हो जाता है और रसनेन्द्रिय की स्वाद ग्रथियॉ भी कमजोर पड जाती है। नैषधकार भी कहते है कि "पित्तेन दूने रसनासितापि तिक्तायते"[3] अथात् पित्त दूषित रसना से चीनी का स्वाद भी कडवा लगता है। कामला के अनवरोधज (Nonobstructive) और अवरोधज (Obstructive) रूप मे दो प्रकार होते है। अवरोधज मे पित्त रक्त मे अवशोषित होता है और नेत्र, नख, त्वचा मे सचित होकर उन्हे रंगीन बनाता है। पित्त रग मे पीला, हरा और स्वाद मे कटु होने से मुँह मे कडुआपन और नाखूनो मे पीलापन उत्पन्न करता है। वैसे तो शरीर रोगो का घर ही कहा जाता है। (शरीर व्याधि मन्दिरम्) फिर भी विभिन्न ओषधियो के सेवन से उसे स्वस्थ रखा जा सकता है, लेकिन रोगो से न तो रहित हुआ जा सकता और न वृद्धावस्था को टाला जा सकता है। आयुर्वेदविदो का भी मन्तव्य है कि- "अचिन्त्यो हि मणिमन्त्रौषधीना प्रभाव।" नैषधकार का भी कथन है कि चन्द्रमा ओषधिपति[4] होते हुए भी अपने क्षय को रोक नहीं पाता[5] तथा सामर्थ्ययुक्त सञ्जीवनी आदि ओषधियॉ, ब्राह्मण समूह, समुद्र और अमृत भी क्रमश, क्षयग्रस्त अपने पति, राजा, पुत्र और स्वाश्रय चन्द्रमा को नहीं बचा सकते।[6] यथा-

त्रातु पति नौषधय स्वशक्त्या मन्त्रेण विप्रा क्षयिण न राजन्
एन पयोधिर्गुणेभिर्न पुत्र सुधा प्रभावैर्न निजाश्रय वा ।[7]

---

1 शीतोष्ण वैव वायुश्च त्रय शारीरजा गुणा। तेषा गुणाना साम्य यत्तदाहु स्वास्थ्यलक्षणम्। महाभारत,
 – सत्त्व रजस्तम इति मानसा स्युस्त्रयों गुणा। तेषा गुणाना साम्य यत्तदाहु स्वस्थलक्षणम्। महाभारत
 -- डा० कीथ का मानना है कि बात, पित्त, तथा कफ का सिद्धान्त साख्यों के त्रिगुण (सत्य, रज तम) के आधार पर कल्पित किया गया है और वह पूर्णतया भारतीय है। अथर्ववेद में वात के विषय में कुछ पूर्ण वर्णन है एव कौशिक सूत्र से पता चलता है कि उस युग में भी त्रिदोष का सिद्धान्त भारत में मान्य था इनका यह भी कहना है कि सम्भवत चरक के समय में मानव के शरीर पर शल्य क्रिया नहीं होती थी, इसीलिए उनकी सहिता में इसका विशेष विवरण नहीं मिलता, जब कि ईसा से तीसरी शती पूर्व सिकन्दरिया के यूनानी वैद्यो के लेखों मे शल्यक्रिया का निश्चित विधान प्राप्त होता है, परन्तु इस कथन पर पूरा विश्वास नहीं होता। अथर्ववेद के एक पूर सूत्र मे अस्थियो के सस्थान तथा सख्या का प्रामाणिक उल्लेख मिलता है। शतपथ ब्राह्मण में भी अस्थियों की सख्या 360 बतायी गयी है। ये सब आयुर्वेद की सुदीर्घ प्राचीनता के प्रमाण हैं। यूनानियों ने भारत की चिकित्सा से अनेक ओषधियों का प्रयोग अपने ग्रन्थो में किया है। अत यूनानी वैद्यक पर भारतीय वैद्यक का प्रभाव मानना प्रमाणरहित नहीं माना जा सकता। दृष्टव्य- A B Keith, History of Classical Sanskrit Literature, P- 513-515, Oxford, 1928

2 विकारो धातुवैषम्य साम्य प्रकृतिरुच्यते। सुखसज्ञकमारोग्य विकारो दुखमेव च ॥
समदोष समाग्निश्च समधातुमलक्रिय। प्रसन्नात्मेन्द्रियमना स्वस्थ इत्यभिधीयते॥ सुश्रुत

3 त्वया विधेया न गिरो मदर्था क्रुधा कदुष्णे हृदि नैषधस्य।
पित्तेन दूने रसनासितापि तिक्तायते हसकुलावतस ॥ नै० 3/94

4 एन स शिरोद्विधुमुत्तमाङ्गे गिरीन्द्रपुत्रीपतिरोषधीशम।
अश्नाति घोरं विषमब्धिजन्म धत्ते भुजङ्गाश्च विमुक्तशङ्क । नै० 22/117 एव 22/76-77

5 मृषा निशानाथमह सुधा वा हरेदसौ वा न जराविनाशौ।
पीत्वा कथ नापरथा चकोरा विधोर्मरीचीनजरामरा स्यु ॥ नै० 22/100

6 ओषध्यादयः स्वशक्त्यादिरक्षणसाधने सत्यपि पतित्वात्पुत्रत्वान्निजाश्रयत्वाच्च क्षयाद्रक्षितु समर्था न प्रभुरिति विशेषोक्त्या पूर्वकर्मजो रोगो महानुभावैरप्यपनेतु न शक्यत इति व्यज्यते। अचिन्त्यो हि मणिमन्त्रौषधीना प्रभाव' इत्योषध्यादीना सामर्थ्य प्रसिद्धम्। नै०22/99 मल्लि

7 नै० २२/99

महाकवि कालिदास, भोज एव भर्तृहरि आदि विद्वान के कथनो की मान्यता श्रीहर्ष के उपरोक्त कथन से स्थापित की जा सकती।[1] नैषधकार ने शाल्मल द्वीप मे स्थित द्रोणगिरि को औषधियो एव जडी बूटियो का आगार[2] बताते हुए सरस्वती मुखेन दमयन्ती को वहां के राजा का वरण करने का वर्णन किया है, क्योकि इससे दमयन्ती वशीकरण बूटी को पा सकती थी। यहा श्रीहर्ष ने इस शास्त्रीय तथ्य का भी प्रतिपादन किया है कि पृथु राजा से अदिष्ट गो रूप धारिणी पृथ्वी से मेरु ने रत्नो तथा ओषधियो को दुहा था।[3] रत्न गर्भा वसुन्धरा है यह तथ्य तो सर्वविदित ही है। यथा -

प्रमाण श्रूयते दुग्धा पुनर्दिव्यैवसुन्धरा ।
ओषधीश्चैव भास्वन्ति रत्नानि विविधानि च ॥
वत्सस्तु हिमवानासीद् दोग्ध मेरुर्महागिरि ॥[4]

मनु ऋषि ने पॉच प्रकार के स्नानो का विवरण मनुस्मृति मे दिया है। यथा -

वारुण तु जलस्नानमापोहिष्ठति मान्त्रिकम् ।
वायव्य गारज स्नानमाग्नेय भस्मनादितम् ।
दिनु सातप वर्षेण दिव्य तदिति पञ्चधा ।

नैषधीयचरितम् मे श्रीहर्ष ने भी स्नानो म ऊष्ण स्नान[5] एव वायव्य स्नान[6] का विवरण देते हुए रोगी को स्नान न करने के विधान का वर्णन किया है। चतुर्थ सर्ग में विरहिणीं दमयन्ती का वर्णन करते हुए वह कहते है कि कामज्वर (पक्षान्तर मे अधिक ज्वर) पीडित उस दमयन्ती ने, [illegible] तडाग के जल (पक्षान्तर मे विप्रलम्भ श्रृगार रस) मे मज्जन या स्नान किया, अर्थात् [illegible] लगायी, उसके परिणाम स्वरूप उसका अन्तस्ताप (ज्वर) शीघ्र विषम (भयकर) ज्वर मे परिणत हो गया।[7] मनु ने भी रोग पीडित होने पर स्नान का निषेध किया है। यथा -

न स्नानमाचरेद् भुक्त्वा नातुरो न महानिशि
न वासोभि सहाजस्र नाविज्ञाते जलाशये ॥

ध्यातव्य है कि दमयन्ती ने (नल विरह मे) कामज्वरावस्था मे उसकी शान्ति के लिए सखी या दरबारी गणो आदि से नल के गुणो को प्रेम से सुना (नल गुणो मे मज्जन किया) किन्तु कामपीडा शान्त

---

1 नृपतेर्व्यजनादिभिस्तमो नुनुदे, सा तु तथैव सस्थिता। प्रतिकारविधानमायुष सति शेषे हि फलाय कल्पते। रघुवश
– लक्ष्मीकौस्तुभपारिजातसहज सूनु सुधाम्भो निधे, र्देवेन प्रणय प्रसाद विधिना मूर्ना धृत शम्भुना
अद्याप्युज्झति नैव दैवविहित क्षैष्य क्षपाबल्लभ केनान्येन विलङ्घ्यते विधिगति [illegible] प्रबन्ध
– अयममृतनिधान नायकोप्यौषधीना शतभिषगनुयात शम्भु मूर्ध्नोऽवतस ।
विरहयति न चैन राजयक्ष्मा शशाङ्क हतविधि विपाक केन वा लङ्घनीय ॥ नीतिशतक
– ओषधीशोऽमृतकर रत्नपीन्दु क्षयार्दित। न हि प्रतिक्रिया पतिताद्धर्ता करे भवेत्॥ [illegible]

2 द्रोण स तत्र वितरिष्यति भाग्यलभ्य सौभाग्यकार्मण मयीमुपदा गिरिस्ते ।
तद्द्वीपदीप इव दीप्तिभिरोषधीनां चूडामिलज्जलदकज्जलदर्शनीय ॥ नै० 11/69

3 एषा गिरे सकलरत्नफलस्तरु स प्राग्दुग्धभूमिसुरभे खलुपञ्चशाख ।
मुक्ताफल फलनसान्वयनाम तन्वान्नाभाति बिन्दुभिरिवच्छुरित पयोधे ॥ नै० 11/10

4 नै० 11/10 मल्लि0 की व्याख्या से उद्धृत

5 यक्षकर्दममृदून्मृताङ्गं प्राकुरङ्गमदमीलितमौलिम् ।
गन्धवार्भिरनुयन्धितभृङ्गैरङ्गना सिषिचुरुच्चकुचास्तम्॥ नै० 21/7

6. श्रुत्वा जन रजोजुष्टं तुष्टिं प्राप्नोज्झटित्यसौ ।
त पश्यन्पावनस्नानावस्थ दु.स्थस्ततोऽभवत् ॥ नै० 17/199

7. यदतनुज्वरभाक्तनुते स्म सा प्रियकथासरसीरसमज्जनम् ।
सपदि तस्य चिरान्तरतापिनी परिणतिर्विषमा समपद्यत् ॥ नै० 4/2

होने के बदले ओर भी अधिक बढ गयी। अन्य कोई भी ज्वर ग्रस्तप्त रोगी जब सन्ताप को शान्ति के लिए तडाग के जल मे (ठडा होने से सन्ताप को शान्त करने वाला समझकर) यदि स्नान करता है, तो उसका भयकर परिणाम होता है, अर्थात् ज्वर सन्ताप शान्त होने के बदले और अधिक बढ जाता है वही दशा नलगुण श्रवण के पश्चात् दमयन्ती की भी हुई, इस अवस्था को कामशास्त्र के अनुसार नौवी सज्वरावस्था नाम दिया जा सकता है। यथा-

चक्षु प्रीतिर्मन सङ्ग सकल्पोऽथ पलापिता ।
जागर· कार्श्यमरतिर्लज्जात्यागयोऽय सज्वर ॥
उन्मादो मूर्च्छन चैव मरणञ्चरम विदु ॥

आयुर्वेद के विद्वान् वाग्भट्ट का कथन है कि घी तथा मधु यदि समान मात्रा मे मिलाकर खाया जाय तो वह विष सदृश परिणाम का जनक होता है एव उससे व्यक्ति मूर्च्छित हो सकता है।[1] नैषधकार ने इस तथ्य को साहित्यिक जामा पहनाते हुए नैषध के तृतीय सर्ग मे हस दमयन्ती सवाद प्रसग मे वर्णित किया है, जहॉ (नल दूत) हस की वाणीरूप अत्यन्त स्वादिष्ट तथा सुगन्धित मक्खन (घृत) का प्रीतिपूर्वक बार-बार स्वाद लेकर भी उससे दमयन्ती को तृप्ति न हुई, क्योंकि उसमे कामदेव के बाणरूपी पुष्पो का मधु मिला था जिससे उसके अन्त करण मे सताप हुआ एव उसे अतुल मूर्च्छा की अनुभूति हुई। यथा-

चेतोजन्मशरप्रसूनमधुभिर्व्यामिश्रतामाश्रय त्प्रेयोदूतपतङ्गपुङ्गवगवीहैयङ्गवीनं रसात् ।
स्वाद स्वादमसीममृष्टसुरभि प्राप्तापि तृप्तिं न सा ताप प्राप नितान्तमन्तरतुला मूर्च्छां मूर्च्छामपि ॥[2]

अवधेय है कि घी तथा मधु समान मात्रा मे मिलाकर अधिक खाने से भी तृप्ति नहीं होती और भी खाने की इच्छा बनी रहती है, लेकिन उसे खाने से अन्त करण मे दाह होता है तथा मूर्च्छा आती है परन्तु वे सब दमयन्ती को नहीं हुए, इसमें आश्चर्य की बात है। दूसरे शब्दो मे हम यह कह सकते है कि हस के वचनो को दमयन्ती और भी सुनना चाहती थी, अतएव उसकी तृप्ति नहीं हुइ तथा उसके चले जाने से दमयन्ती के अन्त करण मे सन्ताप भी हुआ और वह मोहयुक्त भी हुई, एव ऐसा उसके लिए उचित भी था क्योकि प्रियगुणामृत पान से वह वचित हो गयी थी।

नैषधकार ने ज्वरावस्था मे ताप के बढने एव उसकी शान्ति के उपायो का भी वर्णन नैषध मे किया है। काम ज्वरावस्था मे दमयन्ती का शरीर कॉप रहा था एव उसके शरीर से भाप निकल रहा था।[3] ज्वर की शांति के लिए दमयन्ती की सखियॉ उसके शरीर पर कमल पुष्प, मृणालखण्ड एव कमलिनी-पत्र, शैवल (सेंवार) घास आदि रख रही थीं, किन्तु काम ज्वर इतना तीव्र था कि उसके ताप से वे सब तुरन्त सूख जाते थे।[4]

---

1 मधुनो विषरुपत्व तुल्याशे मधुसर्पिषी इति वाग्भट । नै० 3/130 मल्लिनाथी टीका से उद्धृत

2 नै० 3/130

3 स्मरकृतां हृदयस्य मुहुर्दशा बहु वदन्निव नि श्वसितानिल ।
व्यथित वाससि कम्पमदश्रिते त्रसति कः सति नाश्रयबाधने ॥ नै० 4/16
करपदाननलोचननामभि शतदलै सुतनोर्विरहज्वरे ।
रविमहो बहुपीतचर चिरान्निशतापनिशादुदसज्यत ॥ नै० 4/17 एव 18

4. रिपुतरा भवनादविनिर्यतीं विधुरुचिर्गृहजालविलैर्नृणाम् ।
इतरथात्मनिवारणशङ्कया ज्वरयितुं विशवेशधराविगत् ॥ नै० 4/24
स्मरहुताशनदीपितया तया बहु मुहुः सरसं सरसीरुहम् ।
श्रयितुमर्धपथे कृत मन्तरा श्वसितनिर्मितमर्मरमुज्झितम् ॥ नै०4/29 एव 30 से 35 तक

अत्यधिक ज्वर (सन्निपात ज्वर) मे रोगियो का आलाप (In a state of delirium) वर्तमान मे भी देखा जाता है। महाकवि माघ ने भी सन्निपात (त्रिदोष) ज्वर का विवरण शिशुपालवध मे किया है। यथा

आश्लिष्ट भूमि रसितारमुच्चैर्लोलद्भुजाकार वृहत्तरङ्गम् ।
फेनायमान पतिमापगानामसावपस्मारिणमाशशङ्के ॥

महाभारत मे यह वर्णन प्राप्त होता है कि हस के वचनो को सुनकर कामसतप्त होने के कारण नल भी सनिपात ज्वर से ग्रसित हो गये। यथा-

हसाना वचन तु तन्मा दहति पार्थिव ।
त्वत्कृते हि मया वीर राजान सन्निपातिता ॥[1]

नैषधकार ने दमयन्ती की सन्निपातावस्था का अत्यन्त मनोहारी चित्रण किया है[2] जिसमे वह ब्रह्मा, रति, कामदेव, अमावस्या, चन्द्रमा, राहु, सती, विष्णु, शकर आदि को उलाहना देती हुई मूर्च्छित हो जाती है जिससे पुन उसे चेतनावस्था मे लाने के लिएउसकी सखियो ने पुन जलसिचन एव चन्दन लेप इत्यादि किया।[3] कन्यान्त पुर मे दमयन्ती की मूर्च्छा को सुनकर पिता भीम, राजवैद्य एव प्रधानमन्त्री का पहुँचना स्वाभाविक था। राजवैद्य एव मन्त्रिप्रवर दोनो ने एक साथ भीम से निवेदन किया. प्रधानमत्री ने कहा कि मेरे अधिकार से कन्या के अन्त पुर के योगक्षेम मे बाधा के लिए कोई दोष (परकृतकर्मसर्गजन्य अभिचार आदि) समर्थ हो ही नहीं सकते एव राजवैद्य ने कहा उसके निरन्तर देखरेख रखने से कन्या के शरीर को रक्षित करने (से बाधा) के लिए कोई दोष (बात, पित्तादि) समर्थ नहीं हो सकते तब राजकुमारी का ज्वर का कोई अन्य कारण ही हो सकता है। इस प्रकार उन दोनो प्रधानमत्री तथा राजवैद्य ने समान (परस्पर अविरुद्ध) वचन कहे। अथात् प्रधानमन्त्री भी ने कहा कि सरकार! सुनिये, अच्छी तरह से सुने हुए दूत के कहने से मै सब जानता हूँ कि नल के लिए देने (नल के साथ विवाह करने) के अतिरिक्त इस दमयन्ती के सन्ताप की शान्ति के लिए कोई भी (अन्य राजादि) समर्थ नहीं है, एव राजवैद्य ने कहा कि देव! सुश्रुत तथा चरक नामक चिकित्सा शास्त्र के रचयिता दोनो प्रधान आचार्यों की कही गयी बातो के अध्ययन से मै जानता हूँ कि नल अर्थात् खस (मूलेऽस्योशीरमस्त्रियाम्। अभय नलद सेव्यम् इत्यमर) इन के अलावा दमयन्ती के ताप की शान्ति के लिए अन्य कोई (क्वाथ, रस, भस्म आदि औषधियॉ) समर्थ नहीं हैं। इस प्रकार दोनो ने क्रमश. नल से दमयन्ती का परिणय तथा खस द्वारा उपचार करने के प्रबन्ध का विधान भीम को बतलाया।[4]

---

1. महाभारत 3/56/3
2. नै० 4/43.. 109
3. इदमुदीर्य तदैव मुमूर्च्छ सा मनसि मूर्च्छितमन्मथपावका ।
   क्व सहताभवलम्बलवच्छिदामनुपपत्तिमतीमतिदुःखिता ॥ नै० 4/110
   - अधितकापि मुखे सलिल सखी प्यधित कापि सरोजदलै स्तनौ ।
     व्यधित कापि हृदि व्यजनानिल न्यधित कापि हेम सुतनोस्तनौ ॥ नै० 4/111
   - उपचचार चिरं मृदुशीतलैर्जलजनालमृणालजलादिभि ।
     प्रियसखीनिवह स तथा क्रमादियमवाप यथा लघु चेतनाम् ॥ नै० 4/112
   - अथ कलकलम श्वसिति स्फुट चलति पक्ष्म चलेति परिवार ।
     अधरकम्पनमुन्नय मेनके। किमपि जल्पति कल्पलते! श्रृणु । नै० 4/113
   - रचय चारुमति! स्तनयोर्वृति दमय केशिनि! केश्यमसयताम्
     अवगृहाण तरङ्गिणि! नेत्रयोर्जलझराविति सुश्रुविरे गिर ॥ नै० 4/114
4. कन्यान्तः पुरबोधनाय यदधीकारान्न दोषा नृप द्वौ मन्त्रिप्रवरश्च तुल्यमगदङ्कारश्च तावूचतु
   देवाकर्णय सुश्रुतेन चरकस्योक्तेन जानेऽखिल स्यादस्या नलद दिना न दलने तापस्य कोऽपि क्षम । नै० 4/116

सफलता प्राप्ति का सशय दूर हो जाता है। आचार्य शोढल ने मूर्छाशान्ति के लिए अपने गदनिग्रह मे विशल्या लता (गुडूची), सोंठ, द्राक्षा आदि कई औषधियो के उपयोग का निर्देश किया है। यथा-

महौषधामृता द्राक्षा पौष्करग्निशोद्भवम् ।
पिबेत् क्वाथकणायुक्त मूर्च्छाया च मदेषु च ॥[1]

नैषधकार ने भी इस तथ्य का सकेत अष्टम सर्ग मे दूतवृत बने नल द्वारा देवताओ के सदेश को दमयन्ती से कहने के प्रसङ्ग मे वर्णित किया है जहाँ नल देवो की प्रार्थना दमयन्ती से करते हुए कहते है कि उन (चारो) देवो ने तुम्हे पृथक्-पृथक् आलिङ्गनपूर्वक यह सदेश भेजा है कि कामदेव रूपी भील के वाणों से मूर्च्छित हम लोगो के लिए तुम (दमयन्ती) विशल्या (वाण रहित या कष्ट रहित करने वाली) नामक लता (औषधि) बनो।[2] यथा-

एकैकमेते परिरभ्य पीनस्तनोपपीड त्वयि सन्दिशन्ति ।
त्व मूर्च्छतान्न स्मरभिल्लशल्यैर्मुदे विशल्यौषधिवल्लिरेधि ॥[3]

अवधेय है कि इन ओषधियो का उपयोग प्राचीनकाल मे केवल रोग चिकित्सा के लिए ही नहीं, अपितु रोगप्रतिबन्धन के लिए भी किया जाता था। विशल्या नामक ओषधि का नाम रामायण मे भी मिलता है। श्रीराम जब वनवास हेतु प्रस्थान करने लगे तब माता कौशल्या ने विशल्यकरणी ओषधि को अभिमन्त्रित करके रामचन्द्रजी के हाथ मे बाधी थी, जिससे उनके ऊपर हताहत और मूर्च्छित होने जैसी आपत्ति न आ सके। यथा-

औषधीं च सुसिद्धार्थां विशल्यकरणीं शुभाम् ।
चकार रक्षा कौशल्या मन्त्रैरभिजजाप च ।

श्रीहर्ष ने संजीवनी नामक ओषधि का विवरण इक्कीसवे सर्ग मे नल की देवार्चना प्रसङ्ग मे किया है।[4] स्मरणीय है कि वैद्यक सहिताओ तथा निघण्टुओ मे सजीवनी ओषधि का उल्लेख नहीं मिलता। हॉ, सजीवनी नाम के अनेक योग मिलते हैं। अतएव यह कहा जा सकता है कि जैसे काव्य निर्माताओ ने[5] अपने काव्य मे सजीवनी शब्द को सामान्य अर्थ मे प्रयुक्त किया है वैसे ओषधि निर्माता वैद्यो ने भी सामान्य अर्थ में सजीवनी का प्रयोग अपने योगो के लिए किया है, जैसा कि शार्ङ्गधरसंहिता के विवरण से स्पष्ट है कि– 'वटीसजीवनीनाम्ना सजीवयति मानवम्।' इस तरह, सजीवनी मृतप्राय को जिलाने वाली ओषधि योग है, परन्तु रामायण काल मे सजीवनी ओषधि के होने का वर्णन मिलता है, क्योंकि श्रीराम के शल्यचिकित्सक सुषेण के कहने पर हनुमान द्वारा लायी गयी सजीवनी से लक्ष्मण पुनर्जीवित हुए एव मृतसजीवनी से वानर सेना भी पुनर्जीवित हुई ऐसा वर्णन रामायण मे प्राप्त होता है। महर्षि वाल्मीकि ने इन

---

1 गदनिग्रह-मूर्च्छाधिकार 16/30

2 तस्य शल्यैः शूरैर्मूर्च्छता मुह्यता नोऽस्माक मुदे त्व विशल्या उद्धृतशल्य च सा औषधि विशल्यकरणीलता-इति मल्लिनाथ नै० 8/90

3. नै०-8/90

4 कर्णशक्तिमफला खलु कर्तुं सज्जितार्जुनरथाय नमस्ते ।
केतनेन कपिनोरसिशक्ति लक्ष्मणः कृतवता शल्यम् ॥ नै० 21/30

5 सजीवनौषधिरसोनुह्वदि प्रशक्ति - उत्तररामचरित सजीवनौषधिरिव व्यतिकरमाञोजनिरसमेदमां मालतीमाधव कि कौमुदीः शशिकलाः सकला विचूर्ण्य सयोज्य चामृतरसेन पुनः प्रयत्नात् कामस्य घोरहरहुतिदग्धमूर्ते सजीवनौषधिरिय विहिता विधात्रा- शार्ङ्गधरपद्धति

ओषधियो का स्थान ऋषभ और कैलास शिखरो के बीच बताया (ओषधीना [illegible] हिमवान शैलसत्तम)। साथ ही यह भी कहा कि वे हमेशा दीप्तिमान रहती है यथा– 'भास्वन्ति [illegible] महोषधीश्च।' सुषेण हनुमान से कहते है– "तयो शिखरयोर्मध्ये प्रदीप्तमतुलप्रभम्। सर्वौषधियुत वीर [illegible]र्वतम्।। तस्य वानरशार्दूलचतस्रो मूर्ध्निसभवा। द्रक्ष्यस्योषधयो दीप्ता दीपयन्तीर्दिशो दश।। मृतसञ्जीवनीं चैव विशल्यकरणीं तथा। सवर्णकरणीं चैव सधानीं च महोषधीम्। सञ्जीवनार्थं वीरस्य लक्ष्मणस्य त्वमानय।" इन ओषधियो का अवचारण (Administration) नासा द्वारा किया जाता था। रामायण मे वर्णन मिलता है "[illegible] सक्षोदयित्वा तामोषधी वानरोत्तम। लक्ष्मणस्य ददौ नस्त. सुषेण सुमहाद्युति।। सशल्य स समाघ्राय लक्ष्मण परवीरहा। विशल्यो विरुज शीघ्रमुदतिष्ठन् महीतलात्।।" बालरामायण मे भी वर्णन मिलता है कि– "आमोदमाघ्राय महौषधीना सौमित्रिरुन्मीलितपद्मनेत्र ।।' इन ओषधियो के प्रभाव से हताहत तथा मूर्च्छित मनुष्य प्रसन्नचित्त और स्वस्थ होकर प्रबोधित होते है, ऐसा मन्तव्य रामायण मे इन ओषधियो [illegible] कार्य करने की पद्धति के विवरण मिलते है। यथा– "गन्धेन तासा प्रवरौषधीना सुप्ता निशान्तेष्विव सप्रबुद्ध।।'

रतौंधी (तिमिर) रोग का विवरण देने के साथ-साथ[1] अमृत [illegible] रसायन (ओषधि)[2] की प्रासङ्गिकता पर साहित्यिक कटाक्ष करते हुए नैषधकार ने जहाँ स्त्रियो की [illegible] को महौषधि[3] माना है, वहीं उन्होने मृत व्यक्ति को पुनर्जीवन प्रदान करने वाली मृत सञ्जीवनी ओषधि [illegible] भी चर्चा की है तथा विषदोष नाशक थाल का भी वर्णन कर उस समय प्रचलित चिकित्साशास्त्र की मान्यताओ को भी उजागर किया है। यथा-

> मयेन भीम भगवन्तमर्चता नृपेऽपि पूजा प्रभुनाम्नि या कृता ।
> अदत्त भीमोऽपि स नैषधाय ता हरिन्मणीभोजनभाजन [illegible] ।।
> छदे सदैवच्छविमस्य बिभ्रता न केकिना सर्पविष विसर्पति ।
> स नीलकण्ठत्वमधास्यदत्र चेत् स कालकूट भगवानभोक्ष्यत् ।।[4]

नैषधकार ने नैषधीयचरितम् मे उस समय विषवैद्यो के होने एव ओषधि (जडी) लेपन[5] से सर्पविष के असर न करने का भी संकेत बारहवे सर्ग मे कीकट नरेश के प्रसङ्ग मे उपस्थित किया है[6] साथ ही श्रीहर्ष ने चकोरपक्षी का विवरण भी देया है जो कामन्दक के अनुसार विषपरीक्षा के लिये पाला जाता है

---

1 जगति तिमिर मूर्च्छामब्जजेऽपि चिकित्सत पितुरिव निजादस्माद्दध्यावधीय भिषज्यत ।
अपि च शमनस्यासौ तातस्तत किमनौचिती यदयमदय कहलराणगदेत्यपमृत्यु [illegible]।। नै० 19/50

2 नास्माकमस्मान्यदनापमृत्योस्त्राणाय पीयूषरसायनानि ।
सुधारसादभ्यधिक प्रयच्छ प्रसीद वैदर्भि! निजाधर न ।। नै० 8/94 (1)
अ[illegible]माकमस्मान्मदनापमृत्योस्त्राणाय पीयूषरसोऽपि नासौ ।
प्रसीद तस्मादधिक निजन्तु प्रयच्छ पातु रदनच्छदन्न ।। नै० 8/104 मल्लि
विशेष - नारायणी टीका में "अस्माक' की जगज ""नास्माक" पद व्यवहरित [illegible]

3 येन तन्मदनवह्निना स्थित ह्रीमहौषधिनिरुद्धशक्तिना ।
सिद्धिमद्भिरुदतेजि तै. पुन. स प्रियप्रियवचोऽभिमन्त्रणै ।। नै० 18/54

4. नै० 16/29, 30 एव नै० 19/15,
सिद्धयोगान् पुनर्वक्ष्ये मृतसञ्जीवनीकरान् ।
आत्रेयभाषितान् दिव्यान् सर्वव्याधिविमर्दनान् ।। अग्निपुराण 285/1 एव 2-77 तक

5 महती सिद्धा अमोघा ओषधीवीरुत् ओषधिलता तस्या, ओषधी इति जातिविषयत्वात्। पर्वग्रन्थि [illegible] पर्वपरुषी इत्यमर.। आस्ये मुखे विनिवेश्य निधाय जाङ्गुलिकता विषवैद्यता, विषवैद्यो जाङ्गुलिक इत्यमर ।।– नै० 12/96, मल्लि0

6. अस्यासिर्भुजग. स्वकोशसुषिराकृष्ट. स्फुरत्कृष्णिमा कम्पोन्मीलदरालजीवनस्तेषा भिये [illegible]भुजाम् ।
सग्रामेषु निजांगुलीमयमर सिद्धौषधीवीरुध पर्वास्ये विनिवेश्य जागुलिकतायैर्नाम [illegible]नालम्बिता ।। नै० 12/96

क्यो कि विषेले पदार्थो को देखने मात्र से ही उसकी आँखे लाल हो जाती है।[1] अग्नि पुराण ने भी सर्पविष की चिकित्सा का वर्णन वृहद् रूप में प्राप्त होता है।[2]

मच्छरो के काटने से विभिन्न प्रकार के रोगो की सम्भावना होती है। वर्तमान मे मच्छरो को भगाने के लिये जो विभिन्न प्रकार की धूम्रोत्पादक या विशिष्ट रासायन युक्त पदार्थ प्रचलित है तत्कालीन समय मे भी रहे होगे क्योकि घूम्र द्वारा मच्छरो से निजात पाने की व्यवस्था का सकेत श्रीहर्ष ने पृथु राजा के वर्णन प्रसग मे दिया है।[3]

ओषधि निर्माण की विधि का सकेत भी श्रीहर्ष ने पाचवे सर्ग मे किया है, जहॉ वह कहते है कि मेनका ने अपने मनस्ताप को छिपाने के लिये अपने हृदय के पुटपाक मे बाहर से उसी तरह से कीचड लपेटा जिस तरह वैद्य किसी ओषधि का पुटपाक करते समय उस पर ऊपर से मिट्टी का लेप करते है। ओषधि पुटपाक करते समय वैद्यगण ओषधि का लेष मात्र तत्त्व भी बाहर न निकल जाये इसलिये उस ओषधि को दो सकोरो मे बन्द कर ऊपर से कपडकूट मिट्टी का लेप कर देते है तब वह ओषधि लेशमात्र भी बाहर नहीं निकलने पाती और भीतर मे तप्त होकर जलती है। इसके विपरीत यदि किसी औषध का खुलापाक करते है, तो उसकी सुगन्धि आदि बाहर फैल जाती है तथा वह वस्तु भी जल जाती है। वाग्भट (अष्टागहृदय तथा अष्टागसंग्रह के रचयिता) के रसरत्न समुच्चय मे रसायन शाला का विस्तृत वर्णन मिलता है। वाग्भट का कथन है कि सर्वबाधा से रहित उस स्थान मे रसशाला का निर्माण करना चाहिए जहॉ ओषधियॉ सुगमता से मिलती हों, अच्छे कूप हो एव रसशाला मे अनेक उपकरण हो। उसकी पूर्व दिशा में पारे का शिवलिङ्ग हो अग्निकोण मे वह्निकर्म के लिये स्थान हो, दक्षिण मे पाषाणकर्म (Furnaces), दक्षिण पश्चिम मे शस्त्रकर्म (Instruments), वरुण में शोषणकर्म, उत्तर मे वेधकर्म तथा ईशानकोण मे अन्य सिद्ध ओषधियो को रखने की जगह हो।[4] इसके साथ वाग्भट ने विभिन्न प्रकार की मूषाओ[5] तीन प्रकार के खल्व और मर्दक यथा- अर्धचन्द्र खल्ल, वर्तुल खल्ल, तप्त खल्ल का[6] उल्लेख करने के साथ-साथ विभिन्न कोष्ठियो (भट्ठियों) यथा- अगारकोष्ठी, पातालकोष्ठी, गारकोष्ठी, मूषाकोष्ठी, का भी उल्लेख किया है, जिनका उपयोग ओषधियो के सत्त्वपातन तथा सत्त्वशोधन मे किया जाता था।[7] पातालकोष्ठी की तुलना वर्तमान में प्रचलित Pit furnace के साथ की जा सकती है। रसरत्नसमुच्चय में पुट की व्याख्या करते हुए वाग्गभट कहते हैं- "रसादिद्रव्यपाकाना प्रमाणज्ञापन पुटम्। नेष्टो न्यूनाधिक पाक सुपाकं हितमौषधम्।।" यहा पुट दस प्रकार के गिनाये गये है - महापुट, गजपुट, वाराहपुट, कुक्कुट,

---

1 अयि! ममैष चकोरशिशुर्मुनेर्व्रजति सिन्धुपिबस्य न शिष्यताम् ।
अशितुमब्धिमधीतवतोऽस्य वा शशिकला पिबत कति शीकर: ।। नै० 4/58
– चकोरस्य विरज्येते नयने विषदर्शनात् - कामन्दक ।नै० 4/58 मल्लि टीका से उद्धृत

2 द्रष्टव्य- अग्निपुराण, 295 अध्याय, दष्ट चिकित्सा

3. एतदभुजारणिसमुद्भवविक्रमाग्निचिह्न धनुर्गुणकिण खलु धूमलेखा ।
जात ययाऽरिपरिषन्मशकार्थयाऽश्रुविश्राणनाय रिपुदारदृगम्बुजेभ्य ।। नै० 11/105

4. रसरत्नसमुच्चय - 7/1 18

5 वही 10/8 . . 31

6. वही 10/84.. ..91

7. वही 10/33 . .39

कपोलपुट, गोबरपुट, भाण्डपुट, बालुकापुट, भूधरपुट एवं भावकपुट[1]। नैषधकार द्वारा वर्णित पुट की तुलना भाण्डपुट से की जा सकती है। वामन आप्टे ने पुट की परिभाषा निम्नरूप में दी है :

"A particular method of preparing drugs in which the various ingredients are wrapped up in leaves and being covered with clay roasted in fire." वर्तमान में धातु विज्ञान में भी इसे Calcination and Roasting भी कह सकते है।

श्रीहर्ष अभिहित करते है कि प्रकृत मे मेनका ने सताप तथा आकाशपिधान रूप दो सकोरो के मध्य मे स्थित अपने हृदय रूपी ओषधि को पकाते हुए बडे कष्ट का अनुभव किया तथा वह कष्ट उसे देर तक होता रहा, खुले हुए पाक के समान शीघ्र नष्ट नहीं हुआ।[2] कलि विवरण में भी इसका प्रसग प्राप्त होता है।[3] इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि ओषधियो का पाक (निर्माण) खुले रूप मे नहीं करना चाहिये। वर्तमान मे वैद्यगण भी ओषधिनिर्माण मे श्रीहर्ष सम्मत विधि अपनाते हुए देखे जाते है। सम्पूर्ण चिकित्सा सम्बन्धी विवरणो से यह अनुमान किया जा सकता है कि इस शास्त्र मे भी श्रीहर्ष की पैठ थी। रसायनशास्त्र भी चिकित्सा शास्त्र का ही एक अंग माना जा सकता है, क्योकि विभिन्न रसायनो के सेवन से मनुष्य के रोगों की चिकित्सा सभव होती है, परन्तु इसका विवरण आगे किया जायेगा।

रसायन शास्त्र

रसायन शास्त्र से सम्बन्धित कुछ अवयवो के विवरण 'नैषधीयचरितम्' में प्राप्त होते है। विभिन्न रसायन, चाहे वह वैद्यकशास्त्र या चिकित्सा शास्त्र से सम्बन्धित हो, या मानव द्वारा शारीरिक सौन्दर्य वर्धन में प्रयुक्त किये जाते हो, वह नल तथा दमयन्ती के जनरावस्था या नाके सज्जावस्था प्रसग मे नैषधमहाकाव्य में प्राप्त होते हैं। भारतीय रसायन शास्त्र का प्रवर्तक 'नागार्जुन' (बौद्ध विद्वान्) को माना जाता है।[4] नालंदा में एक बार घोर अकाल पडने पर, जब भिक्षु धन सग्रह हेतु यत्र तत्र भ्रमण करने लगे, उसी समय नागार्जुन ने एक तपस्वी से रसायन विद्या ग्रहण की, जिसका उपयोग इन्होने साधारण धातुओ से सोना बनाकर बौद्ध भिक्षुओ को धर्मच्युत होने से बचाया। इस प्रकार इनके योगदान न हीं, इन्हे भारतीय रसायन शास्त्र के इतिहास मे विशिष्ट स्थान प्रदान किया। रसायन शास्त्र की उपयोगिता का रहस्य अनेक कारणों से है। प्रथमत औषधि निर्माण, आरोग्यता प्रदान करने मे, सौन्दर्य वर्धन लेप, निर्माण, विभिन्न धातुओं के शोधन तथा परीक्षण अन्य वैज्ञानिक शोधो मे मुख्य साधन होने में विभिन्न रसायनो से निर्मित घोल या शिरप को वैद्य या डाक्टर रोगी को रोगो से निजात पाने या रोग निरोधक तथा शारीरिक पुष्टता एव स्वस्थता बनाये रखने हेतु प्रदान करते है इन कारणो से रसचिकित्सा को नितान्त उपयोगी एव महत्व शालिनी माना जा सकता है। रसेन्द्रसार सग्रहकार का कथन उपर्युक्त तथ्य का प्रमाण माना जा सकता है। यथा-

अल्प मात्रोपयोगित्वादरुचेर प्रसगत ।
क्षिप्रमारोग्य दायित्वाद् औषधिभ्योऽधिका रस ।

वैद्यक सम्बन्धी रसायनशास्त्रीय ग्रथो मे नागार्जुन का रसरत्नाकर तथा कक्षपुटतन्त्र, गोविन्दभगवत्पाद का रसहृदयतत्र, सोमदेव का रसेन्द्रचूड़ामणि, यशोधर का रसप्रकाशसुधाकर, विष्णुदेवपण्डित का

---

1. वही 10/44 .. .69
2 मेनका मनसि तापमुदीत यत्पिधित्सुरकरोदवहित्थाम्। तत्स्फुट निजहृद पुटपाके पङ्कर्लि[illegible]बहिरुत्थाम्।। नै० 5/51
3. पुटपाकमसौ प्राप क्रतुशुष्मम‍होष्मभिः। यत्प्रत्यङ्गमि[illegible]कर्ति पूतोर्मिव्यजनानिलै ।। नै० [illegible]
4. सस्कृत शास्त्रों का इतिहास- बलदेव उपाध्याय, पृ० 33

रसराजलक्ष्मी, गोपालभट्ट का रसेन्द्रसारसग्रह, वाग्भट्ट का रसरत्नसमुच्चय, पार्वतीपुत्रसिद्ध नित्यनाथ का रसरत्नाकर, दुण्डुकनाथ का रसेन्द्र चिन्तामणि, गोविन्दाचार्य का रससार, गोपाल कृष्ण का रसेन्द्रकल्पद्रुम एव शिव पार्वती सवाद रूप मे उपलब्ध रसार्णव ग्रन्थ प्रमुख है।

श्रीहर्ष ने पारद रस (सिद्ध रस या पारा) का विवरण देवदूत बने नल, एव दमयन्ती के सवाद मे दिया है, जहाँ नल दमयन्ती से कहते है। कि मनुष्य देवो के अनुग्रह से ही मनुष्यभाव को छोड़कर दिव्यभाव या देवत्व प्राप्त कर लेता है। औषधादि से सिद्ध पारद (पारा) का स्पर्श करने वाले लोहे से बने सोने की, लोहे में गणना नहीं होती।[1] आचार्य मल्लिनाथ भी विश्वकोश का उद्धरण देते हुए कहते है "तथा हि रस पारद।" "देहधात्वम्बुपारद" इति रस शब्दार्थेषु विश्व। स हि सस्कारबलात् लोहान्तरससुवर्णीकरणे समर्थ सिद्धरस उच्यते। तत्स्पृशामयसामपि तत्स्पर्शात्स्वर्णीभूतायसामपीत्यर्थ।[2] आचार्य नागार्जुन ने अपनी प्रसिद्ध रचना रसरत्नाकर या रसेन्द्रमगल मे 'पारा' को दरद का सत्व माना है जो कि पातना यन्त्र से पातन करने पर प्राप्त होता है।[3] अर्थात् विमल को शिग्रु के दूध, फिटकरी कसीस और सुहागा के साथ वज्रकन्द मिलाकर कदलीरस के साथ भावित करे और माक्षिक (Pyrites) क्षार मिलाकर मूक मूषा (Closed Crusible) मे तपावे, तो विमल का सत्व मिलता है। रसहृदयतन्त्र के प्रणेता गोविन्दभगवत्पाद ने तो पारद के अठारह सस्कार, अभ्रकग्रासविधि, जारण, रंजन, बाह्यद्रुति, सारण, क्रामण आदि पारद भस्म के उपयोगी प्रक्रियाओ एव पारे को सीसा और वग से पृथक करना, रस और उपरस का भेद, सार लौह और पूति लौह, लवण और क्षार का विस्तृत वर्णन करते हुए शरीर दृढता के लिये पारद रस के उपयोग के बारे मे अपना अभिमत दिया है कि विद्याओं का आयतन, पुरुषार्थो का मूल भूत यह शरीर बिना पारद के अमरत्व प्राप्ति नहीं कर सकता है, किन्तु जो व्यक्ति पारद मे सुवर्ण और अभ्रक का जारण किये बिना उपर्युक्त फल की कामना रखते हैं, वह वैसे ही व्यक्तियो की श्रेणी मे आते है जो कि बिना खेत को जाते बिना फल प्राप्ति की कामना मन में सजोते हैं। पारद भस्म की यही पहिचान (वाह्य परीक्षा) है कि लोहा या ताबा पर रगड़ते ही वह सोना बन जाता है।[4] इसके सेवन से शरीर के अवयव नितान्त दृढ बन जाते है। स्पष्ट है कि शरीर को स्थिर, दृढ़ तथा व्याधिरहित बनाने के लौकिक उपायो मे पारद भस्म का सेवन सर्वोत्तम है। किन्तु इस भस्म को तैयार करने मे अत्यधिक श्रम एव समय लगता है, शायद यही कारण है कि वर्तमान मे इस पारद रस के उपलब्ध होने की ससूचना अनुपलब्ध है। कतिपय ग्रन्थो के कथन से भी लोहा से सोना बनाने की युक्ति के दर्शन होते है।[5]

श्री हर्ष ने दमयन्ती एव नल के शरीर को हरिद्रा[6] (हल्दी, Turmeric, या सोना) सदृश बताया। हल्दी प्राचीन काल से आज वर्तमान काल तक भी ग्रामीण अचलो मे दवा के साथ-साथ उबटन (शरीर को सुन्दर बनाने हेतु लेप रूप) मे प्रयुक्त देखी जाती है। हल्दी, प्याज, चूना एव तेल गर्म कर चोट के ऊपर

---

1 अनुग्रहादेव दिवौकसा नरो निरस्य मानुष्यकमेति दिव्यताम् ।
अयोऽधिकारे स्वरितत्वमिष्यते कुतोऽस्य सिद्धरसस्पृशामपि ।। नै० 9/42

2 नै० 9/42 में मल्लिनाथ।

3 विमल शिग्रुतोयेन काक्षीकासीसटङ्कणे। वज्रकन्द समायुसुक्त भावित कदलीरसै ।।
माक्षीकक्षारसयुक्त धामित मूकभूषके। सत्व चन्द्रार्कसकाश पतते नात्र सशय ।।
दरद पातनायन्त्रे पातित च जलाशये। सत्व सूतकसकाश जायते नात्र सशय ।। सस्कृत शास्त्रो का इतिहास पृ० 35 से उद्धृत

4. Specially treated mercury believed to turn iron into Gold नै० 9/42 श्री के०के० हाण्डिकी की टिप्पणी

5. अक्रोधं शिक्षयन्त्यन्यै क्रोधना ये तपोधना। निर्धनास्त धनायैव धातुवादोपदेशिन ।। नै० 17/80

6 जम्बालजालात्कमकर्षि जम्बूनद्या न हारिद्रनिभा मेयम् ।
अय्यङ्गयुग्मस्य न सङ्गचिह्नमुन्नीयते दन्तुरता यदत्र ।। नै० 7/13
रुपं प्रतिच्छायिकयोपनीतमालोकि ताभिर्यदि नाम कामम् ।
तथापि नालोकि तदस्य रुप हारिद्रभङ्गाय वितीर्णभङ्गम् ।। नै० 6/45
– मल्लिनाथ एवं नारायण ने हारिद्र का अर्थ सोना भी किया है। द्रष्टव्य 6/45 एव 7/13 जीवातु एव नारायणी व्याख्या

रखने से दर्द समाप्त हो जाता है। साथ ही हल्दी निरोधक रूप में भी प्रयुक्त की जाती है। ग्रामीण अचलो मे आज भी प्रसवकालीन औरतो को हल्दी व घी संयुक्त हलुवा या लड्डू बनाकर खाने को दिये जाते हैं।क्योकि इससे उन्हे शक्ति मिलने के साथ-साथ, अन्य अनेक रोगो एवं विकारों से छुटकारा भी मिलता है। आज भी यह प्रत्यक्षतः देखा जाता है कि घाव लगने से खून बहने के स्थान पर यदि हल्दी का चूर्ण दबा दिया जाये, तो खून बहना बन्द हो जाता है। नैषधकार ने हल्दी एव चूने के मिश्रण से रक्त वर्ण बन जाने की बात का विवरण भी नल द्वारा दमयन्ती से सन्ध्यावर्णन प्रसङ्ग मे किया है। जहॉ वह कहते है कि प्रिये, प्राची के अम्बर (आकाश या वस्त्र) को रजनी (रात्रि, हल्दी) ने पीतवर्ण का कर दिया था। फिर चूने के समान श्वेत चन्द्ररश्मियो के मिलने से वह पीतिमा अरुणिमा मे बदल गयी है।[1] रसायन शास्त्र मे भी हल्दी एव चूने के मिलने से लाल रग की निष्पत्ति मानी गयी है।

विभिन्न रसायनो के सम्मिश्रण स्वरूप "सेधा नामक" का विवरण भी नैषधकार ने उन्नीसवे सर्ग मे चारणो द्वारा नल की स्तुति प्रसङ्ग मे दिया है।[2] कपडे इत्यादि से किसी दाग, धब्बा छुड़ाया जाना रसायनो के सहयोग से ही सम्भव होता है। नैषधीचरितम् मे इस तथ्य का सकेत भी नल द्वारा सन्ध्यावर्णन प्रसङ्ग में मिलता है, जहॉ नल दमयन्ती से कहते है कि कृशोदरि, देखो, रात्रि रूपी धोबिन ने चन्द्रिमा रूपी दूध की धारा से आकाश रूपी वस्त्र मे लगे हुए अन्धकार रूपी कज्जल (काजल) के दाग को क्षणभर मे साफ कर दिया।[3] दूध मे लैक्टिक एसिड होता है जो कालापन दूर करता है। कल्पद्रुकोष नामक ग्रन्थ मे भी वर्णन मिलता है कि तैलं घृतेन तच्चोष्णजलैर्दुग्धेन तज्जलम्। नाशयेदम्बरस्थ तु मल क्षारेण सोष्मणा।[4] रसायन के प्रयोग द्वारा ही किसी पात्र बर्तन इत्यादि पर एक लेप के ऊपर दूसरा लेप चढाया जाता है। रसायन विज्ञान के अनुसार जिस पर कलई चढानी होती है, उसे Negative Point से जोड़ने के बाद A,G,C,L, मे दुबे देने के बाद A, G, C.L. मे Current पास कर देने पर कलई चढ जाती है। कलई चढाने का निर्देश भी नैषध महाकाव्य मे नल के सन्ध्यावर्णन प्रसङ्ग मेही प्राप्त होता है, जहां नल दमयन्ती से कहते है कि प्रिये! देखो, यह सायकाल कितना धूर्त है कि इसने चादी के इस सफेद गोलखण्ड (चन्द्रमा) पर सोने का पानी चढाकर आकाश को दिया और बदले मे आकाश की अमूल्य मणि (सूर्य) को मार ले गया। अभी तक तो यह (चन्द्रमा) नकली सोने (के रंग) का बना था किन्तु अब फीका होने लगा है और इसका असली सफेद रंग झलकने लगा है।[5] (अर्थात् सन्ध्या हो गयी है।) लोक जीवन मे भी पात्रो (बर्तनो) पर चढ़ा लेप कुछ दिनों के अन्तराल पर छूटते हुए देखा जा सकता है।

कसौटी पत्थर[6], जिससे सोना नामक धातु का परीक्षण किया जाता है का निर्देश भी सन्ध्यावर्णन सन्दर्भ में श्रीहर्ष ने दिया है। जहॉ नल दमयन्ती से कहते है कि अस्ताचलं निकषपत्थर (कसौटी पत्थर) के

---

1 अस्या सुराधिपदिशि पुरासीद्यदम्बर पीतमिद रजन्या। चन्द्राशु चूर्णर्यातचुम्बितेन तेन[illegible] कुङ्कुमलोहितमा' नै० 22/47
– हरिद्रया पीतवर्ण वस्त्र चूर्णेन युक्त सद्रक्त भवते – नै० 22/47, मल्लिनाथ, एवं नारायण

2 निशि निरशना क्षीरस्यन्त क्षुधाऽश्वकिशोरका मधुरमधुर हेषन्ते ते विलोकीतवालधि ।
तुरगसमाज[illegible] रथानोत्थाद[illegible]ल्वणन्मणिमन्थभू। धर[illegible]शिलालेहा[illegible]हाचणो लवणस्यति [illegible] 19/18

3 आभिर्मृगेन्दोर्दृशां कौमुदीभि क्षीरस्य धाराभिरिव क्षणेन ।
अक्षालि नीलं रुचिरम्बरस्था तमोमयीयं रजनीरजका ।। नै० 22/111

4 नै० 22/111, मल्लिनाथ एवं नारायणी टीका से उद्धृत ।

5 [illegible] दीप्र मणिमम्बरस्य दत्वा यदस्मै खलु सायधूर्त । रज्ज्वत्तुषा रद्युतिकूटहेम तत्प[illegible] रजत क्षणेन' नै० 22/50
–उदयानन्तरमतिक्रान्तकियत्कालत्वाद्दत्तिमानं परित्यज्य चन्द्रो[illegible] जात इति भाव। नै० 22/50 नारायण एवं मल्लिनाथ

6. अस्ताचलेस्मिन्निकषोपलाभे सन्ध्याकषोल्लेखपरीक्षितो य ।
विक्रीय त हेलिहिरण्यपिण्ड तारावराटानियमादित द्यौ ।। नै० 22/13

7 निकषोपलाभे सुवर्णपरीक्षापाषाणतुल्येऽस्ताचले। नै० 22/13, मल्लिनाथ एव नारायण

समान है, उस पर सूर्य रूप स्वर्णपिण्ड को घिसकर सोने की परीक्षा की गयी है, सन्ध्या की अरुणिमा ही उस सोने का घर्षण चिन्ह है। किन्तु मूर्ख आकाश ने उस स्वर्णपिण्ड को उसके बदले में इन तारे रूपी कौड़ियो को लिया है। पीतल (Bross) के एक प्रकार आरकूट[1] का विवरण देकर के साथ-साथ श्रीहर्ष ने कोयले (Charcoal) के एक प्रभेद इङ्गाल[2] (दग्धकाष्ट) का वर्णन एव कर्पूर (Camphor) के एक भेद उदयभास्कर[3] का वर्णन कर उस समय धातुओ के साथ-साथ कोयले एव कर्पूर की जानकारी भी मनुष्यो को थी, इस तथ्य का उद्घाटन किया है। नैषध के प्राचीन टीकाकार नारायणपण्डित का कथन है कि 'उदयभाष्कर' नामक कर्पूर गौड देश मे पाया जाता था। कर्पूर का उपयोग पूजा मे आरती हेतु, कपडो मे रखने (कीटाणु नाशक रूप मे), तथा अजन (काजल) निर्माण एवं विभिन्न तेलो एवे इत्रो के निर्माण तथा पान मे खाने (Brass रूप मे) मे प्रयोग मे आता है।

कर्पूर के साथ-साथ श्रीहर्ष ने 'पुर' (गुग्गुल)[4] धूप का विवरण भी विवरण नैषध मे दिया है। ध्यातव्य है कि कर्पूर एव गुग्गुल का धुवॉ स्वास्थ्यकर होता है साथ ही रोग निरोधक भी। नल की पूजा प्रसङ्ग मे गुग्गुल एव कृष्णागुरु जैसे धूपो का उल्लेख नैषधकार ने किया है।[5] इन धूपो का निर्माण भी रसायनो द्वारा ही होता है। वर्तमान मे भी विभिन्न प्रकार के धूपा का प्रचलन लोक व्यवहार मे द्रष्टव्य है। साथ ही नल के प्रासाद विवरण मे श्रीहर्ष ने 'कामशर' नामक धूप से बनती गयी बत्तियो एव महलो मे जलने वाले सुगन्धित तेलो से युक्त दीपको का विवरण दिया है।[6] तेलो को सुगन्धित बनाने मे रसायनो का ही योगदान माना जा सकता है। कामशर धूप की निर्माण सामग्री के निर्माण के बारे मे वर्णन मिलता है कि "पुरसर्जाभयालाक्षानखाब्जादिजटागदै। समै समधुभिर्धूपो मत कामशराभिध ।। इति कामशरोधूप।[7]

वर्तमान मे शारीरिक सौन्दर्य के निखार हेतु जो विविध आयाम (पाउडर क्रीम इत्यादि) अपनाये जाते है, इन आयामो की प्राचीन पद्धतियो का विवरण भी श्रीहर्ष ने नैषध महाकाव्य मे नल एव दमयन्ती के साज सज्जा प्रसङ्ग मे दिया है। उनका कथन है कि (स्नानपूर्व) यक्षकर्दम के उबटन लगाये हुए अङ्गो वाले तथा पहले कस्तूरी से लिप्त शिर वाले नल को उन्नत स्तनो वाली (युवती) स्त्रियो ने (अधिक सुगन्धि होने से) भ्रमर जिस (पानी) पर आ रहे थे, ऐसे सुगन्धित पानी से नहलाया।[8] अमरकोष के अनुसार कर्पूर, अगुरु, कस्तूरी और कङ्कोल नामक चारो द्रव्य से निर्मित उबटन को 'यक्षकर्दम' कहते है।[9] एव गरुण पुराण के अनुसार उक्त चारो द्रव्य तथा चन्दन से बनाये गये उबटन को 'यक्षकर्दम' कहा जाता है। यथा–

---

1. पुर. सुरीणां भणकेव मानवी न यत्र तास्तत्र तु शोभिकापि सा ।
अकाञ्चनेऽकिंचननायिकाङ्गके विमारकूटाभरणेन न श्रिय ।। नै० 9/28
– रीति स्त्रियामारकूटम् इत्यमर। लोके पित्तलमिति वदन्ति। नै० 9/28, नारायण
2. निजस्य तेजःशिखिन परश्शता वितेनुरिङ्गालमिवायशः परे।। नै० 1/9, उत्तरार्द्ध
3. पूगभागबहुलाकषायितैर्वासितैरुदयभास्करेण तौ । चक्रतुर्निधुवनेऽधरामृतं स्नत्र साधु मुखवासविभ्रमम् ।। नै० 18/103
4. प्रीतिमेष्यति वृतेन ममेदृक्कर्मणा पुनरिपुर्मदनारि । तत्पुर पुरमतोऽयमधाक्षीद्धूपरूपममु [illegible] ।। नै० 21/37
– गुग्गुलौ कथित पुर इति विश्व।
The aromatic resin commonly known as Gruggule burnt as incense b[illegible] [illegible]ools नै० 21/37, हाण्डिकी
5. राज्ञि कृष्णलघुधूपनधूमा पूजयत्यहिरिपुध्वजमस्मिन् । निर्ययुर्भवधृता भुजगा भीदुर्यमानमिवैता इव [illegible] ।। नै० 21/46
6. धूपित युददरान्तर चिर मेचकैरगुरुसारदारुभि । नालजालधृतचन्द्रचन्दकोदमेदुरसमी [illegible] ।। नै० 18/5
– क्वापि कामशरवृत्तवर्तयो य महासुरभितैलदीपिका ।
तेनिरे वितिमिर स्मरस्फुरोद्दो प्रतापनिकराकुरश्रिय ।। नै० 18/6
7. नै० 18/6 मल्लिनाथ एव नारायणी टीका से उद्धृत
8. यक्षकर्दममृदून्मृदिताङ्गं प्राक्कुरङ्गमदमीलितमौलिम्। गन्धवभिरनुबन्धितभृङ्गैरङ्गना सिषिचुरुच्चकुचास्तम्।। नै० 21/7
9. कर्पूरागुरुकस्तूरीकक्कोलैर्यक्षकर्दम इति अमर 2/6/133, इसके विषय में भिन्न-भिन्न मत के जिज्ञासुओ को अमरकोष की मल्लिनाथ कृत मणिप्रभा व्याख्या की "अमरकौमुदी" नामक टिप्पणी दृष्टव्य है।

तथा कर्पूरमगुरु कस्तूरी चन्दनस्तथा। कक्कोलञ्च भवेदेभि ...[1]

प्रो० हण्डिकी ने यक्षकर्दम शब्द की विशद व्याख्या की है।[2] वर्तमान समय मे प्रचलित विभिन्न साबुन टिकियों मे चन्दन एव कस्तूरी आदि के मिश्रण का प्रयोग सर्वश्राव्य है। वैदर्भी की गौरवर्ण मुख को नैषधकार विविध चूर्ण लेपो का परिणाम मानते है।[3] साथ ही स्वाभाविक भी।[4] उनका कथन है कि दमयन्ती की सखियो ने भी शरीर काति वर्धन के लिये दमयन्ती के देह मे स्निग्ध पदार्थ (सुगन्धित तेल इत्यादि) एव कृत्रिम पदाथा का लेप[5] और अग राग[6] (कर्पूर, चन्दन का छिडकाव)

---

1 गरुण पुराण - काशीखण्ड 80/44 एव 45, 46

2 In Naishadh, 21/7, यक्षकर्दम, lit, Yaksa mud, a kind of fragrant paste Nala's body is rubbed with Yaksa Paste before he takes his bath (यक्षकर्दम ...) According to Dhanvantariya Nighantu and Rajanighantu, the ingredients of Yaksakardama are saffron, aloe wood (Aguru), camphor musk and sandal[A] Narayana's quotation from garudapurana is to the same effect, except that is substitutes kakkol for saffron, Skandapurana (Kas khanda 80 44-46) says that the paste is liked by all the gods, and gives the following recipe for its preparation, Two parts of must, two parts of saffron three parts of sandal, and one of compher The idol of the Devi is to be smeared with Yaksakardama in Devipurana (31 5) we read that the chariot in which the devi is led out in procession is to be worshipped with various flowers yaksakardama and sandal Agnipurana (75 50) prescribes Homa or oblations of Yaksakardama in the fire in connection with the ritual of shiva worship Pranatosini Tantra (5 3) gives a quotation from a Matsyasukta, According to which a kind of incense prepared from yaksa paste (यक्षकर्दम) [B] should be used in the worship of a sivalinga Padmapurana (Kriyayogasara 12 8) tells us that he who applies the fragrant yaksa paste to the idol of Hari in the summer attains salvation We hear of yaksakardama being used in Jaina ritual also. We find in somesvara's Kirtikaumudi (9 22) that the kapardi yaksa, a Jaina idol with the head of a bull, is smeared with the yaksa paste[C]. The paste was used also for various secular purposes, of which the reference in our poem is an example. We learn from Nalacampu that it was customary to wash the floor of a palace with water mixed with yaksakardama,[D] and the same work describes the walls of a recreation hall as being sprayed with yaksakardama[E] yasastilaka likewise describes the walls of a palace chember as being decorated with pieces of camphor smeared with yaksakardama[F] On festive occasions it seems to have been the practice to strew yaksakardama powder over the streets.[G] The Yaksa paste was frequently used for personal decoration. We find in skandapurma[H] that it is an item in the adornment of Visnu on the eve of his marriage The same work describes Laksmi as having her body smeared with the Yaksa Paste[I] A similar reference in found in Mahanataka which incidentally enumerates the ingredients of yaksakardama[J] Sesakrsna in his kamasavadh Speaks of Yaksakardam powder as being used as beauty paint[K]

- Rajanighantu states that yaksakardam is used exclusively by worshippers of shiva (त्र्यक्षपूजनपरैकगोचर) The statement need not be taken literally.
- The yaksa incense mentioned in Dhanvantariya Nighantu (3 12) is different ... लन शालनिर्यासो यक्षधूमोऽग्निवल्लभ) An incense called (यक्षाङ्ग) patanta (... takanda) P 6 (G O S)
- स कर्दमैस्तस्य तनु कपर्दियक्षस्य यक्षोपप... वेलिप्य।
- यक्षकर्दमाम्बुसिक्तसौधस्कन्ध Chap 7
- यक्षकर्दमाच्छटोच्छोटितपर्यन्तभित्तिानि अपराह्नविनोदमण्डप।। Chap 7
- यक्षकर्दमखचितकर्पूरदलन्तुरितजातरुपभित्ति ... वासभवने। . . Chap ...
- Cf. तत्र च वसन्तोत्सवे, . क्रियन्ते प्रतिरथ्य छण्टनकानि यक्षकर्दमै। Jinamandana's Kumarapalaprabandh quoted by Dalal in his Intruaection to Rupakasatka (G O S)
- Vishnukhanda, 8/5 of Venkatacalamahatmya
- यक्षकर्दमसलिप्तसर्वाङ्गे कटकोज्ज्वले-वही, 9/102
- विदग्धान्धकामिनीनीरन्ध्रपीनस्तनवदनघजघनदोर्मूलधम्मिल्लमाल्यान्तराधिष्ठितश्रीखण्डागुरुकर्पूर मृगमदकुकुमस्तोमसभृतयक्षकर्दमविमर्दवर्धितविविधगन्धकुसुमगन्धलहरीरोमलोद्गारि Act - 4
- उअहरामि दिव्वङ्गराअक्खम जक्खकद्दमखोदम्। Act - 5

3 धृतलाञ्छनगोमयाञ्चन विधुमालेपनपाण्डुर विधि । भ्रमयत्युचित ...र्भजानननीराजनाभानकम् ।। नै० 2/26

4 वय कलादा इव दुर्विदग्ध त्वद्गौरिमस्पर्धिदहेम हेम ।
प्रसूनाराचशरानेन सहैकवर्णप्रभवभ्रु! वभ्रु ।। नै० 8/99 एव नै० 15/24

5. स्निग्धत्वभाषाजललेपलोपसयत्नरत्नाशुमृजाशुकाभाम्। नेपथ्यहीरद्युतिवीरवर्तिस्वच्छ ...निजाङ्गरागाम्।। नै० 10/94

6. विलेपनामोदमुदागतेन तत्कर्णपूरोत्पलसर्पिणा च ।
रतीश दूतेन मधुव्रतेन कर्णे रह किंचिदिवोच्यमानाम्।। नै० 10/95, एव 15/25

तथा गोरोचन[1] (पीतवर्ण), चन्दन, (धवलवर्ण), कुकुंम (अरुण वर्ण) तथा कस्तूरी (नीलवर्ण) के आलेपन यथास्थान किये[2] विविध लेपयुक्त सौन्दर्यवर्धक रसायनो के साथ-साथ श्रीहर्ष ने (Perfumedया सौगन्धिक) जो कि विभिन्न रसायनो का मिश्रण होता है, का उल्लेख भी नैषध के आठवे एव इक्कीसवे सर्ग मे किया है जो कि चन्दन इत्यादि की सुगन्धि सदृश था।[3] श्रृगार रचनाओ के कुशल लेखको द्वारा नल के केशो को सवारने मे विविध रसायनो से सम्मिश्रित सुगन्धित तेलो का ही प्रभाव था कि उनमे कोमलता के साथ-साथ कांति भी आ गयी थी।[4] ब्रह्मा द्वारा लावण्य लेप से दमयन्ती का मुखरचना के निर्माण का विवरण उपलब्ध करवाना तो नैषधकार की रसायन मीमांसा का परिणाम ही माना जा सकता है।[5]

श्रीहर्ष ने औरतो द्वारा श्रृङ्गारप्रसाधन की सामग्री अधर राग (Lipstick), एवं यावक राग (पैरो पर लगाये जाने वाला रग) एव सिन्दूर का भी विवरण नैषध महाकाव्य मे दिया है, जिनका निर्माण रासायनशास्त्र की पद्धति से ही किया जाता है। स्त्रियॉ होठो पर आलक्तक (अरुण राग) लगाने के पूर्व मोम या अन्य कोई चिकनी वस्तु लगाती है। दमयन्ती की सखियों द्वारा भी दमयन्ती के अधरोष्ठो पर यावक रग लगाने के पूर्व उसे और अधिक चटकीला (चमकने के साथ स्थिरता लाने हेतु) बनाने हेतु मोम लगायी गयी। उस समय ऐसा लग रहा था मानो उस मोम ने अपने रहने के स्थान मधु को त्याग दिया है, और अब अमृतमय उन अधरो पर सदा निवास करने के लिए उत्सुक हो सुशोभित हो रही हो।[6] मोम का प्रयोग लौकिक व्यवहार मे अन्य वस्तुओ को जोडने के कार्य मे भी किया जाता है। दमयन्ती के चरणो पर लगे हुए महावर या आलक्तक का, जो कि अरुण वर्ण का था, (यावोऽलक्तो द्रुमामय इत्यपर) नैषधकार का कथन है कि उसे देखकर लोगो ने यह समझा कि मानो प्रभातकालीन सूर्य की अरुण किरणे जो रात भर कमल से वियुक्त रहीं, अब इन्हे पाकर लिपटी हुई है।[7] स्पष्ट है कि दमयन्ती के चरणो पर लगा रंग चमकीला एवं लाल रग का था। श्रीहर्ष ने सिन्दूर को लाल वर्ण का बताते हुए उसे औरतो द्वारा अपने पतियो की आयु के चिह्न रूप में पर सिर पर धारण करने की मान्यता का प्रतिपादन नैषधीयचरितम् महाकाव्य मे

---

1 Gorochana is a yellow pigment, being "Concretions found in the gall bladder of the Ox,- Ray Hindu Chemistry, Vol 1, 1903 P 25
- गोरोचनारुचिमरीचि विरोचनस्य बिम्बम्- हरविजय 19/2, पर अलका (Alaka) की टिप्पणी है "Gorocana is found in the horn of an ox "
- कादम्बरी पूर्व भाग में भी गोरोचना का प्रसङ्ग द्रष्टव्य है। यथा- गोरोचनातिरा[illegible]भङ्ग, गोरोचनाबिन्दुतिलक, गोरोचनाचित्रकण्ठसूत्रग्रन्थि , पुत्रक। गोरोचनालिखितं भूर्जपत्रगर्भान् मन्त्रकरण्डकानुवाह, गोरोचनामिश्रगौरसर्ष-पैश्चसलिलाञ्जलिभिश्चाचारकुशलेनान्त पुरजरतीजनेन् क्रियमाणावतरणकामङ्गलाम्, गोरोचनाचित्रितदशमनुप-हतमतिधवल दुकूलयुगल वसाना विलासवतीं ददर्श, गोरोचनाद्युरितादह सिद्[illegible]नमारोह।।

2 पीतावदातारुणनीलभासा देहोपदेहात्किरणैर्मणीनाम् । गोरोचना चन्दनकुङ्कुमैणनाभीविलेपनान्युनरुक्त[illegible]न्तीम्।। नै० 10/98

3 चन्दनवासिता दिक् न० 8/77, सप्तज्ञातवासिततय नै० 21/118, में चाण्डूपण्डित [illegible] है सस्मततय है जब कि नारायण कहते हैं - अतितरा सभावितमना। तथा मल्लिनाथ कहते हैं "वासिततम [illegible] अज्जातभावन सन्, अत्यर्थ तन्मय सन्नित्यर्थ।

4 नृपस्य तत्राधिकृता पुन पुनविचार्य तान्बन्धमवापितान्कचान् ।
कलापलीलोपनिधिगुर्रुत्यज स यैरपालऽपि कलापिसपद । नै० 15/53
- पतत्रिणा द्राधिमशालिना धनुर्गुणेन सयोगजुषा मनोभुव
कचेन तस्यार्जितमार्जनश्रिया समेत्य सौभाग्यमनम्भि कुड्मलै । नै० 15/59

5 लावण्येन तवास्यमेव बहुना तत्यात्रमात्रस्पृशा, [illegible] प्रोञ्छनलब्धतार्धमलिनेनारम्भि शषेण तु ।
निर्माण द्वयनेनदप्सु विम्बिा पाणी [illegible]लु क्षलितौ तल्लेशैरधुनापि नीरनिधयेरम्भोजम [illegible] । नै० 22/142

6 निवेशित यदकरागदीप्तये लगत्तदीयाधरयोम्नि सिक्थम् ।
रराज तत्रैव निवस्तुमुत्सुकं मधूनि निर्धूय सुधासधर्मणे । नै० 15/43

7. पदद्वयेऽस्या नवयावकञ्जना जनैस्तदानीमुदनीयतार्पिता ।
चिराय पद्मौ परिरभ्य जाग्रती निशीव विश्लिष्य नवा रविद्युति ।। नै० 15/46

किया है।[1] स्कन्दपुराण मे वर्णन मिलता है कि पतिव्रता स्त्रियो के लिये सिन्दूर धारण मङ्गलार्थक होता है।[2]

प्राणिशास्त्र (जीव विज्ञान)

श्रीहर्ष ने प्राणिशास्त्र सम्बन्धी कुछ प्राणधारी पशु, पक्षियो एव जलचर प्राणियो का वर्णन भी नैषधमहाकाव्य मे किया है। उन्नीसवे सर्ग मे वन्दीजनो द्वारा नल को जगाने मे प्रयुक्त पदावलियो मे वह 'कबूतर' प्राणी को पाणिनीय व्याकरण का ज्ञाता बताते हुए उसकी आवाज, जो कि 'घु' - 'घु' रूप मे होती है, एव उसके गमनकाल म शिर हिलाने की स्वभाविक मुद्रा का भी वर्णन नैषधकार ने किया है।[3] कौए एव कोयल को भी पतञ्जलि शास्त्र (व्याकरणशास्त्र) का जानकार बताते हुए श्रीहर्ष ने उनकी बोली क्रमश किम् (कौन् या कॉव) तथा तुहि (कुहू-कुहूँ) का भी उल्लेख किया है।[4] नैषधकार ने पचनली प्रसङ्ग मे नल को विज्ञानवेत्ता रूप मे भी चित्रण किया है, जहाँ दमयन्ती मन ही मन विचार कर रही थी कि इस समय खिलाडी बनकर प्रिय नल इतने रूप बनाकर मुझसे परिहास तो नहीं कर रहे है? क्योंकि विज्ञानवेत्ता होने के कारण अश्वहृदय ज्ञान की भाति उनमे कई रूप धारण करने की विद्या तो अवश्य ही होगी?[5]

नैषधीयचरितम् मे 'चकोर' (चातक) पक्षी का विवरण श्रीहर्ष ने दिया है जो कामन्दक के अनुसार विषपरीक्षक होता है।[6] साथ ही चक्रवाक युगल पक्षियो का कामशास्त्र के रहस्य के ज्ञाता रूप मे[7] वर्णन करते हुए नैषधकार ने उन पक्षियो को रात्रि मे अलग अलग रात मे रहकर, एव दिन मे सयुक्त रूप मे रहने की उनकी जीवन विधाओ की भी चर्चा की।[8] साथ ही उनके शरीर को (स्तन का) छोटा एव गोलाकार बताया।[9] सर्पो में एक सहस्रफण वाले शेषनाग का विवरण देते हुए श्रीहर्ष ने सर्प के दो आखो को, कान (श्रवण) का काम करने, अर्थात् सर्प आख से ही सुन लेता है, उनके कान नहीं होते इसीलिए उसे चक्षुश्रवा भी कहा जाता है, इस तथ्य को भी स्पष्ट किया है। सर्प को फूत्कार को उन्होने उदात्तादि स्वर (ऊचे स्वर) वाला अभिहित किया।[10] नैषधमहाकाव्य मे खजन पक्षी का उल्लेख भी दमयन्ती के आखो

---

1 नलात्स्ववैश ...त्यमनाप्तु...नता नृपन्त्रियो भीममहोन्नवागता
तदङ्घ्रिलाक्षामदधन्त मङ्गल शिर सु सिन्दूरमिव प्रियायुषे।। नै० 15/55

2. हरिद्रा कुङ्कुम चैव सिन्दूर कज्जल तथा, कूर्पासक च ताम्बूल माङ्गल्याभरण शुभ ... सस्कारकबराकर्णविभूषण
भर्तुरायुष्यमिच्छन्ती दूरयेन्न पतिव्रता ।। नै० 15/55, नारायण एव मल्लिनाथ की व्याख्या, मे उद्धृत

3 दाक्षीपुत्रस्य तन्त्रे ध्रुवमयमभवत्कोऽप्यधीती कपोत कण्ठे शब्दौघ सिद्धिक्षतबहुकठिन ...
–सर्वं विस्मृत्य दैवात्स्मृतिमुषसि गता घोषयन्यो घुसज्ञा प्राक्सस्कारेण सप्रत्यपि धुवति शिर पर्टिकापाठयोग। नै० 19/61

4. इह किमुषसि, पृच्छाशसिकिशब्दरुप - प्रतिनिअमित वचा वायसोऽनेष पृष्ट ।
भण फणिभवशास्त्रे तातङ् स्थानिनौ का- विति विहिततुहीवागुत्तर कोकिलोऽभूत् ।। नै० 19/60

5 कि वा तनोति मयि नैषध एव काय - व्यूह विहाय परिहासमसौ विलासी ।
विज्ञानवैभवभृत किमु तस्य विद्या सा विद्यते न तुरगाशयवेदितेव ।। नै० 13/...

6 नै० 4/58, चकोरस्य विरज्येतै नयने विषदर्शनात्-कामन्दक, नै० 4/58, मल्लिनाथ टीका मे उद्धृत

7 जगति मिथुने चक्रावेव स्मरागमपारगौ नवमिव मिथ सभुजाते वियुज्य निपुज्ययौ ।
सततममृतादेवाहाराद्यदापदरोचक तदमृतभुजा भर्ता शम्भुर्विष बुभुजे बिभु ।। नै० 19/34

8 निजपरिवृढं गाढप्रेमारथाङ्गविहङ्गमी स्मरशरपराधीनस्वान्ता वृषस्यति सम्प्रति।। नै० 19/17 एव 19/33, 35, 47 एव 21/161

9 नि शङ्कसकोचितपङ्कजोऽयमस्यामुदीतो मुखमिन्दुबिम्ब ।
चित्र तथापि स्तनकोकयुग्म न स्तोकमप्युज्झति विप्रयोगम् ।। नै० 7/77

10 श्रुतिमयतनोर्भानोर्जानऽम्बरधराध्वना विहरणकृत शाखा साक्षात्छगानि दश.तेषाम् ।
निशि निशि सहस्राभ्या दृग्भि श्रृणोति सहस्वरा पृथगहिपति पश्यत्यस्याक्रमेण च भास्वरा ।। नै० 19/52

के वर्णन मे द्रष्टव्य है।[1] चारणो द्वारा नल की स्तुति प्रसङ्ग मे ही श्रीहर्ष ने उलूक (उल्लू) पक्षी का विवरण दिया है, एव यह अभिहित किया कि वह सूर्य के निकलने पर, अर्थात् दिन मे देख नहीं सकता, उसकी आखे भद्दी, एव छोटी होती है।[2] उलूक पक्षी रात्रिचर प्राणी है।

नैषधमहाकाव्य की कथावस्तु के सूत्रधार हस पक्षी का वर्णन तो श्रीहर्ष ने विस्तार से किया है, उसके स्वभाव, उसकी चाल एव उसके चातुर्य का वर्णन करने के साथ ही महाकवि ने उसे सम्पूर्ण शास्त्रो के जानकार रूप मे भी चित्रित किया है।[3] प्रथम, द्वितीय, तृतीय एव नवें सर्ग मे इस पक्षी का विवरण नैषध महाकाव्य मे मिलता है। नल के हाथो से छूटने पर इस पक्षी ने अपने चञ्चुपुट (चोच) के माध्यम से अपने पंख सुव्यवस्थित किये,[4] ये पक्षी पैर एव चञ्चुपुट से अपने सिर पर एव शरीर के विभिन्न अगों को खुजलाते हैं, तथा एक पैर मोडकर भी जघे को परो के ऊपर तक ले जाकर यह अपने शरीर को खुजला लेते है एव चोच के माध्यम से पखो के अदर प्रविष्ट कीटो को भी बाहर निकाल देते है। विपत्ति मे पडने पर अन्य पक्षियो की भाँति यह पक्षी भी भयमिश्रित उच्चस्वर करते हुए उड जाते है, परन्तु लालन पालन से यह मनुष्य के विश्वस्त भी बन जाते है।[5] हस की गति का वर्णन करते हुए नैषधकार कहते है कि हस कभी पखो को हिलाते हुए उडता कभी ऊपर की ओर जाने के कारण दुर्लक्ष्य हो जाता या कभी पंखो को फैलाकर निष्पद गति से चलता। वेग के कारण इनके नखो के चलने से आवाज (झकार) होती है।,[6] एव आकाश से नीचे उतरते हुए यह गोलाकार आकृति की मण्डल रचना करता हुआ जमीन पर उतरता है।[7] पक्षियो की यह विशेषता होती है कि जिस स्थान पर वे उतरना चाहते है पहले तो अपने पखो को समेट कर तीव्र वेग से आकाश से नीचे उतरते है तदनन्तर निर्धारित स्थान पर पहुचने पर अपने शरीर के सन्तुलन को बनाये रखने के लिये अपने पख फैला देते है, ठीक इसी मुद्रा का परिपालन करते हुए हस भी (निषद् देश से चलकर कुडिनपुर मे पहुचकर उपवन मे विचरणशील) दमयन्ती के समीप भूमि पर उतरा।[8] साथ ही श्रीहर्ष इस तथ्य का विवरण तथा का विवरण नैषध महाकाव्य मे दिया है कि हस जमीन पर धीरे-धीरे या मन्दगति से चलने के साथ-साथ-पृथक पर भी चल सकता है।[9] दमयन्ती ने जब हस को पकडना चाहा, तो उसने अपनी गति एव अपने वश का विवरण देते हुए कहा कि हम पृथ्वी एव आकाश दोनो मे चल सकते हैं, या उड सकते है, ब्रह्मा के वाहन हस वश मे हम (सहायक) पक्षी है, एव

---

1 नलिन मलिन विवृण्वती पृषतीमस्पृशती तदीक्षणे। अपि खञ्जनमञ्जनाञ्चिते विदधाते रुचिगर्वदुर्विधम ।। नै० 2/23

2. कमलकुशलाधाने भानोरहो पुरुषव्रत, यदुपकुरुते नेत्राणि श्रीगृहत्वविचक्षुभि ।
कविभिरुपमानादप्यम्भोजता गमितान्यसा, वपि यदतथाभावान्मुञ्चत्युलूकविलोचने ।। [illegible] /40

3 नै० 1/128 . 142, 2/9 63, 3/18 134, 9/128 130

4 अधुनीत खग स नैकधा तनुमुत्फुल्लतनूरुहीकृताम्। करयन्त्रपदन्तुरान्तरे व्यलिखच्चञ्चुपुटेन पक्षतिं । नै० 2/3

5 अयमेकतमेन पक्षतेरधिमध्योर्ध्वगजघन्यघ्रिणा। स्खलनक्षण एव शिश्रिये द्रुत कण्डूयितमौलिना [illegible]।। नै० 2/3
– स गुरुद्वनदुर्गदुर्ग्रहान्कटु कीटान्दशत सत क्वचित्। नुनुदे तनुकण्डु पण्डित पटुचञ्चुपुटकोटिकुट्टनै ।। नै० 2/4
– अयमेत्य तडागनीडजैर्लघु पर्यव्रियताथ शङ्किते। उदडयत वैकृतात्करग्रहजादस्य विकस्वरस्वरै ।। नै० 2/5
– ससम्भ्रमोत्पातिपतत्कुलाकुल सर प्रपद्योत्कतयानुकम्प्रताम्।
तमूर्मिलोलै पतगग्रहान्नृप न्यवारयद्वारिरुहै करैरिव।। नै० 1/126 एव 127
– पतगश्चिरकाललालनादतिविश्रम्भमवापितो नु स। अतुल विदधे कुतूहल भुजमेतस्य भजन्महीभुज ।। नै० 2/7

6 स ययौ धुतपक्षति क्षण क्षणमूर्ध्वायनदुर्विभावन। विततीकृतनिश्चलच्छद क्षणमालोकितचित्तकौतुक।। नै० 2/68 एव 69
– विनमद्भिरध स्थितै खगैर्झटिति श्येननिपात शङ्किभि ।
स निरैक्ष्यत दृशेकयोपरि स्यदझङ्कारितपत्रपद्धति।। नै० 2/70 एव 71 72

7 भ्रमणरयविकीर्णस्वर्णभासा खगेन, क्वचन पतनयोग्य देशमन्विष्यतेव ।
मुखविधुमदसीय सेवितुं लम्बमान शशिपरिधिरिवोर्ध्व मण्डलस्तेन तेने ।। नै० 2/108

8 आकुञ्चिताभ्यामथ पक्षतिभ्यां नभोविभागात्तरसावतीर्य । निवेशदेश तनपूत पक्ष पपात [illegible] भूमि हस ।। नै० 3/1

9. नै० 3/5,6,10,11

मृणालभोजी के होने के कारण हमारा रूप भी तदनुरूप (अप्रतिम) है।[1] जल जीवो के अन्तर्गत मत्स्य की जीवन विधा की चर्चा करते हुए नैषकार ने लिखा है कि जल मे शैवाल (घास नीली रोया) से मछलियाँ स्वभावत अपने शरीर को रगडती है।)[2] इस तथ्य को श्रीहर्ष साहित्यिक परिधान पहनाते हुए कहते हैं कि नल वियोग से व्यथित दमयन्ती के वक्षस्थल पर रखा हुआ शैवाल, दमयन्ती के पिक-आलाप श्रवणानन्तर हृदय मे कपकर्पी मचने पर (वियोग मे कोमल की मधुर आवाज भी विषसदृश प्रतीत होने के कारण) इस प्रकार प्रतीत होता था, मानो दमयन्ती के हृदय मे सदा निवास करने वाले कामदेव के वाहन मत्स्य का शरीर-घर्षण लग रहा हो।[3] जल जीवो मे ग्राह एव मकर (मगर) कछुए, केकडा, का सकेत भी बाइसवे सर्ग मे नैषध महाकाव्य के प्राप्त होता है।[4] अन्य जीवो यथा- सिह (पचास्य)[5] सिहकम्प्र[6], मृग,[7] खरगोश,[8] वक (बगुला) पक्षी,[9] चकोरशावक[10] का सकेत भी इस महाकाव्य मे प्राप्त होता है। श्रीहर्ष ने 'अश्व' का भी सम्पूर्ण विवरण दिया है, जिसका पूर्व मे अश्वशास्त्र के अन्तर्गत विवेचन किया जा चुका है।[11] प्राणिशास्त्र सम्बन्धी उपर्युक्त मीमासा से यह प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष ने विविध जीवो, पशु पक्षिया के साहित्यिक विवरण पर ही अधिक प्रकाश डाला है, उनकी आतरिक सरचना के वर्णन को उन्होने स्पर्श तक नहीं किया, इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि या तो नैषधकार ने काव्य के कलेवर विस्तार के भय से उसे अपने विवेचन का विषय नहीं बनाया या उनकी इस शास्त्र मे रुचि या गति कम थी।

भौतिक शास्त्र

भौतिक शास्त्र सम्बन्धी कुछ बिन्दुओ पर भी नैषधकार ने अपनी दृष्टि डाली है. बाइसवे सर्ग मे नल दमयन्ती द्वारा सन्ध्यावर्णन प्रसङ्ग मे दमयन्ती नल से कहती है कि हे (स्वामी) दूर से लाल और नील पदार्थो को देखने पर केवल नीला दिखायी पडता है, इसी सिद्धान्त के अनुसार दूरस्थ चन्द्रमा के इस खरगोस की पीठ का लाल रग भी हमे श्याम दिखायी पड रहा है।[12] नैषधकार का उपर्युक्त विवरण भौतिक शास्त्र के प्रकाश प्रकीर्णन सिद्धान्त (Scattaring of Light) से सम्बन्धित है। जब प्रकाश किसी ऐसे

---

1 धार्य कथकारमह भवत्या वियद्विहारी वसुधैकगत्या ।
अहो! शिशुत्व तव खण्डित न स्मरस्य सख्या वयसाप्येनेन ।। नै० 3/15
– सहस्रपत्त्रासनपत्त्रहसवशस्य पत्त्राणि पतत्त्रिण स्म ।
अस्मादृशा चाटुरसामृतानि स्वर्लोकलोकेतरदुर्लभानि । नै० 3/16
– स्वर्गापगाहेममृणालिनीना नालामृणालाग्रभुजो भजाम ।
अन्नानुरुपा तनुरुपऋद्धि कार्य निदानाद्धि गुणानधीते ।। नै० 3/17

2 मत्स्योहिशैवले घर्षण करातीति जाति । नै० 4/35, मे नारायण की टिप्पणी।

3 पिकरुतिश्रुतिकम्पिनि शैवल हृदि तया निहित दिचतद्बभौ ।
सततद्गतहृच्छयकेतुना हतमिव स्वतनूघनघर्षिणा ।। नै० 4/35

4 नै० 22/17, 20

5. नै० 22/18

6 नै० 22/66

7 नै० 22/24, 75 ..79, 106, 107, 132, 137

8 नै० 22/80, 94

9 नै० 22/138

10. नै० 22/141

11 द्रष्टव्य- इसी शोध प्रबन्ध का "अश्वशास्त्र" नामक अध्याय

12. दूरस्थितैर्वस्तुनि रक्तनीले विलोक्यते केवलनीलियमा यत् ।
शशस्य तिष्ठन्नपि पृष्ठलोम्ना तन्न परोक्ष खलु रागभाग ।। नै० 22/81

सभी दिशाओ मे (कुछ दिशाओ मे कम तथा कुछ मे अधिक) प्रसारित हो जाता है। इस घटना को प्रकाश का प्रकीर्णन कहते है। प्रयोगो द्वारा ज्ञात हुआ है कि बैगनी रग के प्रकाश का प्रकीर्णन सबसे अधिक होता है, वर्णक्रम से बैगनी रग से लेकर लाल रग तक (बैगनी Violet, जामुनी Indigo, नीला Blue, हरा Green, पीला Yellow, नारगी Orange, तथा Red, को प्रकीर्णन सबसे कम होता है, एव बैगनी का सबसे अधिक तथा नीले रग वर्णक्रम मे लाल रग से ज्यादा प्रकीर्णन होता है। पृथ्वी के समान मनुष्य केवल सूर्य के प्रकीर्णित प्रकाश को देखता है, प्रकीर्णित प्रकाश का मिश्र रग (Composite Colour) हल्का नीला होता है इसी कारण आकाश हल्का नीला दिखाई पडता है।[1] दूसरा कारण यह है कि जब एक (प्रिज्म का) प्रकाश दूसरे प्रिज्म के प्रकाश से होकर गुजरता है, तो वह दूसरे प्रिज्म के रग का हो जाता है।[2] उपर्युक्त वर्णन सध्या समय का है उस समय अधकार होने के कारण अधकार के रग काले, प्रिज्म से लाल रंग के गुजरने के कारण दमयन्ती को खरगोस की पीठ का लाल रग भी श्याम दिखायी पडना भौतिक शास्त्र सम्मत है। स्पष्ट है कि रगो का दिखना न दिखना प्रिज्म एव प्रकीर्णन सिद्धान्त पर निर्भर करता है।

भौतिक शास्त्र की ध्वनि सम्बन्धी सिद्धान्त का विवरण नल के कथन मे दिखायी पडता है जहॉ वह दमयन्ती से कहते हैं कि प्रिये! तुम्हारी यह मधुर गीतध्वनि पथिक की भॉति जितनी दूर रात्रि मे जाती है, उतनी दूर दिन मे नहीं, क्योकि रात्रि मे इस चन्द्रमा (सुधाशु) की अमृत रश्मियॉ बल देती है तथा इसे अधकार रूपी वन की शीतलता मिलती है, दिन मे तो धाम (धूप) और पसीने के कारण कुछ दूर चलना भी कठिन हो जाता है।[3] फिर भी चन्द्र ने मधुरिमा की पराकाष्ठारूप तुम्हारे गीत का आस्वादन कर ही लिया, तभी तो उसे अमृतमयी रश्मियो मे भी अनास्था हो गयी, और उनका तिरस्कार करते हुए, वह उन्हे नीचे गिरा रहा है।[4] भौतिक शास्त्र के अनुसार दिन मे ध्वनि दूर तक इसलिये नहीं सुनाई पडती क्योकि उसके सञ्चरणमार्ग में विभिन्न प्रकार के अवरोधक तत्व विद्यमान रहते है जब कि रात्रि मे वातावरण के शान्त होने से, साथ ही आर्द्रता के बढने पर ध्वनि का वेग बढ जाता है इसलिये रात्रि मे ध्वनि दूर तक जाती है या दूर तक सुनायी पडती है। सामान्यत हमे ध्वनि की अनुभूति वायु के माध्यम से होती है जब वायु मे दोलन करने वाले कण हमारे कान के परदे से टकराते है तो पर्दों मे भी इसी प्रकार का दोलन उत्पन्न हो जाता है, परन्तु दिन में वातावरण मे विभिन्न प्रकार के प्रदूषणो के विद्यमान होने से ध्वनि सञ्चरण मे गतिरोध उत्पन्न होता है, फलत दिन की अपेक्षा रात्रि मे ध्वनि दूर तक सुनाई पडती है।[5]

---

1 हाई स्कूल विज्ञान दो, भाग एक उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रकाशित सस्करण 1987, पृ 225

2 वही, पृष्ठ 279

3 आप्यायनाद्वा रुचिभि सुधाशो शैत्यात्तम काननजन्मनो वा।
यावन्निशायामथ धर्मदुखस्तावद्व्रजत्यह्नि न पान्थ ॥ नै० 22/108
– शब्दो हि रात्रौ स्वभावादतिदूरेऽपि श्रूयते, दिवा तु न तथा। पथिकोऽपि रात्रौ शैत्याद्दूर गच्छति, दिने नाल्पम्। दूरश्रवणप्रदेशोऽय श्लोक। नै 22/108, मल्लिनाथ एव नारायण

4 दूरेऽपि तन्न वकगानपानाल्लब्धावधि स्वादुरसोपभोगे।
अवज्ञयैव क्षिपति क्षपाया पति खलु स्वान्यमृतानि भास ॥ नै० 22/109
– दूरेऽप्यतितरा देशव्यवधानेऽपि तत्प्रसिद्ध मधुर तावक गान तस्य पानात्सादर श्रवण ... स्वादुरसोपभोगे माधुर्यातिशयानुभवे विषयेलब्धावधि प्राप्तमर्याद। नै 22/109, मल्लिनाथ एव नारायण

5 हाईस्कूल विज्ञान दो भाग-1, उ0प्र0 राजय सरकार द्वारा प्रकाशित, सस्करण - ..., पृ 167

गणित शास्त्र

नैषध महाकाव्य मे गणित शास्त्र के किञ्चित तथ्यो का सङ्केत भी प्राप्त होता है। इस शास्त्र के अन्तर्गत सामान्यतया तीन विषयो, अकगणित, बीजगणित तथा रेखा गणित का समावेश किया जाता है। नैषध मे बीजगणित सम्बन्धी वर्णन तो प्राप्त नहीं होते, हॉ रेखागणित एव अकगणित के विवरण तो इस महाकाव्य मे अवश्यमेव प्राप्त है। हंस द्वारा पजे से नल के चित्र का निर्माण, एव दमयन्ती तथा उसकी सखियो एव कुण्डिनपुर निवासिनी स्त्रियो द्वारा बनाये गये अलेपन एव भित्ति चित्रकारी मे रेखागणित का प्रभाव ही माना जा सकता हे, जिसका विशेष विवरण शिल्पशास्त्र के अन्तर्गत द्रष्टव्य है।[1] उपर्युक्त तीनो मे रेखागणित को ही सर्वप्राचीन माना जाता है, ऋग्वेद कालीन समय के साथ-साथ वर्तमान मे भी यज्ञवेदियो के निर्माण मे रेखा गणित के योगदान को नकारा नहीं जा सकता है। भिन्न-भिन्न यज्ञवेदियो एव उनमे प्रयुक्त ईटो की सख्या के निर्धारण का विवरण शुल्बसूत्र मे देखा जा सकता है जो कि भारतीय क्षेत्रगणित के सबसे प्राचीन तथा विशद-प्रतिपादक सिद्धान्त ग्रथ है। कठोपनिषद् मे भी इस तथ्य का निदर्शन प्राप्त होता है।[2]

नैषधकार ने अकगणित के सिद्धान्तो का ही संकेत "नैषधीयचरित" मे विशेष रूप से किया है एवं आगम रूप मे उसे मान्यता भी प्रदान की है।[3] भारत वर्ष मे अक गणित के लिये दो नाम प्रयुक्त मिलते हैं पाटीगणित तथा धूलिकर्म। कालान्तर मे पाटीगणित के लिये व्यक्तगणित शब्द का प्रयोग किया गया, जो बीजगणित से इसको पृथक करता है। प्रसिद्ध गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त ने पाटीगणित के अन्तर्गत 20 विषय और 8 व्यवहार सम्मिलित किये है, जो निम्नलिखित हैं-

सकलित (जोड़) व्यवकलित अथवा व्युत्कलित (घटाना), गुणन, भागहार, वर्ग, वर्गमूल, घन घनमूल, पचजाति (अर्थात् पाच प्रकार के भिन्नो को सरल बनाने के नियम) त्रैराशिक, व्यस्त त्रैराशिक (त्रैराशिक का उल्टा), पचराशिक, सप्तराशिक, नवराशिक, एकादश राशिक, भाण्डप्रतिभाण्ड (अदलाबदला या विनिमय)। तथा आठ व्यवहारों के नाम है मिश्रण, श्रेणी (Series), क्षेत्र, (क्षेत्रफल निकालना) खात (खाई आदि का घनफल जानने की रीति) चिति (ढालू खड्ड का घनफल जानने की रीति), क्राकचिक (आरा चलाने वालो के काम का गणित), राशि (अन्न के ढेर का परिमाण जानने की रीति) और छाया (दीप और उसकी छाया से सम्बन्धित प्रश्न जानने की रीति)

नैषध मे गणितशास्त्र के अन्तर्गत सकलित सिद्धान्त के विवरण का सम्बन्ध विरहिणी दमयन्ती के उस कथन से मिलता है जहाँ वह कहती है कि गणितशास्त्र मे मनुष्य, देव, तथा ब्रह्मा का जिस काल परिणाम से युग निर्माण होता है (एक का क्षण दूसरे के युग के बराबर होता है), उसी प्रकार सयोगियो के क्षण के बराबर ही वियोगियो का युग क्यो न बनाया गया।[4] श्रीहर्ष ने तत्कालीन समय मे गणना के लिये अगुलियों को भी माध्यम बनाये जाने का विवरण बारात भोजन वर्णन प्रसङ्ग मे किया है, जो कि आज भी

---

1 द्रष्टव्य - इसी शोधप्रबन्ध का 'शिल्पशास्त्र' नामक अध्याय

2 लोकादिमग्निं तमुवाच तस्मै, या इष्टका यावतीर्वा यथा वा ।
स चापि तत्प्रत्यवदद्यथोक्तमथास्य मृत्यु पुनरेवाह तुष्ट ।। कठो 1/1/15

3 नरसुराब्जभुवामिव यावता भवति यत्र युग यदहस्तथा ।
विरहिणामपि तद्रतवद्युवक्षगमित त कथ गणित गत ।। नै० 4/44

4. नै० 4/44

व्यवहारिक जीवन मे द्रष्टव्य है।[1] साथ ही शखो एव बराटिकाओ (कौडियो) द्वारा भी गणना तत्कालीन समय मे की जाती थी इस तथ्य का विवरण हस द्वारा कुण्डिनपुर क बाजार वर्णन प्रसग मे उपलब्ध मिलता है। यथा-

बहुकम्बुमणिर्वराटिका गणनाटत्करकर्कटोत्कर ।
हिमबालुकयाच्छवालुक पटु दध्वान यदापणार्णव ।[2]

गणित शास्त्र के व्यवकरिक सिद्धान्त (घटान) के निरूपण तथा विक्रय का निर्देश भी हस दमयन्ती सवाद म मिलता हे जहॉ दमयन्ती हस से नल प्राप्ति की याचना करती हुई कहती है कि प्रिय को मूल्य रूप मे देकर तुम मेर जीवन को ही विक्रेय वस्तु के रूप मे ले लो। इससे और कुछ नहीं तो तुम्हे पुण्य तो होगा ही। हे प्राणनाथ के दाता। यद्यपि मै तुम्हे कुछ देने म समर्थ नहीं हूँ, तथापि तुम्हारे यश का गान तो करूँगी ही। कौडी मात्र के (अल्प) उपकार से ही सुलभ कृतज्ञ पुरुष, धनिक (सन्त) आदर नहीं करते, किन्तु राज्जन व्यक्ति उन्हीं कृतज्ञो को अपने प्राणो का मूल्य देकर, उन्हें चतुर कहते हुए खरीद लेते है।[3]

गणितशास्त्र के एक अन्य सिद्धान्त भाण्डप्रतिभाण्ड (अदला-बदला) या विनिमय का सकेत भी नैषध महाकाव्य के बीसवे सर्ग मे दमयन्ती की सखी कला द्वारा दमयन्ती से हास परिहास निरूपण प्रसग मे माना जा सकता है जहॉ कला अपनी सखी से कहती है कि सखी! इन लोगो (नल दमयन्ती) ने जो बाते की हो, उसे तू मुझे सुना दे। मै भी इनके रहस्य को तुझे सुना दूगी। आओ हम आपस मे विनिमय कर ले।[4] इस सिद्धान्त के एक अन्य तथ्य के विवरण का सकेत भी नैषकार के दमयन्ती सौन्दर्य वितरण मे माना जा सकता है जिसका तात्पर्य है कि विनिमय समान अवस्था या तुलनीय स्थिति (बराबरी) मे सभव हो सकती है, अन्यथा नहीं। यथा-

कराग्रजाग्रच्छतकोटिरर्शौ ययोरिमौ तौ तुलयेत्कुचौ क ।
सर्व तदा श्रीफलमुन्मदिष्णु जात वर्टीमप्यधुना न लभ्य ।[5]

श्रीहर्ष ने गणितशास्त्र मे महनीय भूमिका निभाने वाले शून्य का विवरण भी दिया है एव शून्य के लिये उन्होने 'विन्दु' शब्द का प्रयोग उचित माना है[6], जो कि गोल रूप मे होता है।[7] शून्य के साङ्केतिक

---

1 अमूनि सख्यातुमसावढौकि तैश्छलेन तेषा कठिनीव भूयसी। नै० 16/101 उत्तरार्द्ध

2 नै० 2/88

3 क्रीणीष्व मज्जीवितमेव पण्यमन्यन्न चेदस्ति तदस्तु पुण्यम् ।
जीवेशदातर्यदि ते न दातु यशोऽपि तावत्प्रभवामि गातुम् ।। नै० 3/87
वराटिकोपक्रिययापि लभ्यान्नेभ्या कृतज्ञानथवादियन्ते ।
प्राणै पणै एव निपुण भणन्त क्रीणान्त तानेव तु हन्त सन्त ।। नै० 3/88
– हे हस! मज्जीवित जीवमेव पण्य विक्रेय वस्तु क्रीणीष्व, प्रियदानमूल्येनेति शेष। त्वमेव तन्मूल्य प्रयच्छ। ननु तुभ्य क्रयेण जीवदाने मम को लाभ इत्याशङ्क्याह - अन्यद्धनादिक चेद्यपि नास्ति तथापि पुण्यमस्तु भवतु। जीवितदाने च जीवाधिकदाने च जीवाधिकदानेन विनाऽयत् मूल्य यद्यपि न विद्यते तथापि पुण्य स्थाने श्रेय एव भवत्वित्यर्थ। नै० 3/87, नारायणी टीका

4 अभिधास्ये रहस्य ते यदश्रावि मनानयो। वर्णयानर्मितं मह्य नेह्याहि। विनिमीयताम्।। नै० 20/113

5 नै० 7/79

6 चकास्ति बिन्दुच्युतकातिचातुरी घनाश्रुविन्दुस्रुति कैतवात्तव ।
मसारताराक्षि ससारमात्मना तनोरि ससारमसशय यत ।। नै० 9/104

7 समाप्ति लिप्येव भुजिक्रियाविधेर्दलेऽर्पर वर्तुलयालकीकृतम्।
अलकृत क्षीरवटैस्तदश्नता रराज भाकार्पितगैरिकश्रिया ।। नै० 16/28

चिन्ह का प्रथम प्रयोग पिङ्गल के 'छन्दसूत्र' मे मिलता है, जो ग्रथ २०० ई०पू० प्राचीन माना जाता है
शून्य का चिह्न बिन्दु ही था न कि लद्वृत्त इसका उल्लेख सुबन्धु की वासवदत्ता मे प्राप्त होता है।[1] Sri
G B Halsted का कथन है कि भारतीयो ने ई. सर्वप्रथम एक से लेकर ... तक के भिन्न-भिन्न
चिह्नो की एव शून्य नामक एक नवीन चिह्न को प्रस्तुत किया जो गणित के इतिहास मे युगान्तरकारी
खोज है। शून्य की सहायता से दस, सैकडा, हजार, आदि सख्याओ को व्यक्त ... विश्व की सबसे बडी
खोजो मे एक है। इस प्रकार शून्य का गणित के इतिहास मे महत्वपूर्ण स्थान है ... गुणगान प्रत्येक
देश का गणितज्ञ करता है।[2] इसके पूर्व मिश्र मे 1, 10 एव 100 इन तीन ... के चिह्न थे, एव
लकीर की सहायता से अन्य सख्याओ के चिह्न बनाये जाते थे, जब कि ... (रोम) मे अको के छै
चिह्न थे[3], परन्तु गणना मे भारतीय अको के माध्यम से ही सुविधा होती है, इस तथ्य को झुठलाया नहीं
जा सकता।

गणितशास्त्र का ज्योतिषशास्त्र पर अभूतपूर्व प्रभाव है, जिसका विवेचन पूर्व मे ज्योतिष शास्त्र
नामक अध्याय मे किया जा चुका है। सामायन्त पूर्व मे जितने भी गणितज्ञ या ज्योतिषी थे, वे इन दोनो
शास्त्रो पर अपनी गति रखते थे। इसके अतिरिक्त गणितशास्त्र का सम्बन्ध भौतिकशास्त्र एव रसायन शास्त्र
से भी स्थापित किया जा सकता है क्योकि गणित (गणना) के माध्यम से ही ... अपना ... को अन्तिम
रूप देने मे सफल होते थे, आज भी यही स्थिति शिक्षा जगत मे द्रष्टव्य है। ... गणितज्ञो मे आर्यभट्ट,
वराहमिहिर, भास्कराचार्य, वाग्भट लाटदेव, ब्रह्मगुप्त, भास्कर प्रथम, कल्याण ..., ..., आर्यभट्ट द्वितीय,
श्रीधराचार्य एव नारायण पण्डित आदि प्रमुख थे।[4]

राजनीति शास्त्र

राजनीति शास्त्र के कुछ मूलभूत मानदण्डो के विवरण भी नैषधमहाकाव्य मे देखने को मिलते है।
सामान्य अर्थ मे राजाओ द्वारा अपनाई जाने वाली नीतियाँ ही राजनीति कहलाती है जिसमे साम, दान,
दण्ड भेद आदि अनेक विधा से राजा अपने राज्य का सचालन करता है। शास्त्र सम्मत नीतियाँ अपनाकर
शासन करने वाला राजा ही श्रेष्ठ शासक समझा जाता है। श्रीहर्ष ने इस तथ्य की मीमासा करते हुए लिखा
कि इन्द्र आदि दिग्पालो के अश से उत्पन्न, अतएव दिशाओ के स्वामी नल ने स्वेच्छाचारिता या कामदेव
को बल से निवारण करने वाले, अपने को त्रिनेत्रधारी शिव के अवतार का बोध कराने वाले, दो से अधिक
शास्त्र रूप तृतीय नेत्र को धारण किया।[5] लोकपालो के अश से राजा के उत्पत्ति होती है,[6] इस तथ्य का
वर्णन मनुस्मृति मे भी मिलता है। यथा -

---

1 वासवदत्ता - ...ष्ठक शतक

2 The Importance of the creation of zero mark can never be exaggerated. This giving to airy nothing, not merely a local habitation and name, a picture, a symbol, but helpful power, is the characteristic of the Hindu Race, whence it sprang. It is like coining the ... No single mathematical creation has been more potent for the general on-... intelligence and power
—G B Halsted On the foundation and technique of Arithmetic नामक ... Chicago 1 20

3 1 = 1, 5 = V, 10 = X 50 = L, 100 = C, 1000 = M

4 गणितग्रथों एव गणितज्ञों के नाम हेतु द्रष्टव्य सस्कृतशास्त्रों का इतिहास, प बल्देव उपाध्याय, पृ० ... 14...

5 दिगीश विभूतिरीशिता दिशा स कामप्रसभावरोधिनीम्।
बमार शास्त्राणि द्दशं द्वयाधिका निजत्रिनेत्रावतरत्वबोधिकाम् ।। नै० 1/6

6 इन्द्राऽनिलयमाऽर्काणामग्नेश्च वरुणस्य च। चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वती ।। मनु० 7/4
यस्मादेषा सुरेन्द्राणा मात्राभ्यो निर्मितो नृप। तस्मादभिभवत्येष सर्वभूतानि तेजसा। मनु० 7/5

सौभाग्यदर्शनिलेन्द्राणा वित्ताप्यत्यर्योमस्य चा अष्टमा लोकपालः प्रपुधीयाने नृप ।।

शास्त्र कहते किसे है? इस प्रश्न के समाधान मे यह कहा जा सकता है कि "प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च पुसा येनोपदिश्यते। तद्धर्माश्चोपदिश्यन्ते शास्त्र शास्त्रविदो विदु ।।[1] अर्थात् पुरुषो की प्रवृत्ति और निवृत्ति, एव उनके धर्म, जिससे उपदेशित किये जाते है, उन्हे शास्त्र कहते है। नैषधकार द्वारा नल को शास्त्र रूपी तृतीय नेत्र से युक्त होने के फल मे लिखित तर्क सम्प्रेषित किया जा सकता है।

अनेकसशयोच्छेदि परोक्षाऽर्थस्य दर्शकम् ।
सर्वस्य लोचन शास्त्र यस्य नास्त्यन्ध एव स ।।

राजाओ के गुप्तचर ही उनकी ऑखे होती है[2] क्योकि उन्हीं के माध्यम से राजा अपने राज्य की यथार्थ स्थिति से अवगत होता है। श्रीहर्ष ने इस प्रसग का विवरण भी राजा नल के वर्णन मे दिया है जहॉ वह कहते है कि नल विचारदृक (समाचार या विचार को देखने वाले) थे एव चार दृक (गुप्तचरनेत्र राजान. चारचक्षुष) अर्थात् चार (गुप्तचर) ही उनके नेत्र थे। तात्पर्य यह है कि गुप्तचरो के द्वारा ही नल स्वराष्ट्र एव परराष्ट्रो के सभी व्यवहारो को देखते थे। दूसरे शब्दो मे यह भी कहा जा सकता है कि राजा नल अपने तेज से अमित्र (शत्रु) जित होते हुए भी मित्र (सूर्य) जित, थे तथा चार (दूत, गुप्तचर) दृष्टि से सम्पन्न होने के साथ-साथ विचार विवेक पूर्वक कार्य करने की दृष्टि वाले थे उनकी कार्य पद्धति से ऐसा प्रतीत होता था कि मानो विपक्षी राजाओ की भाति विरुद्ध स्वभावो ने भी परस्पर विरोध त्याग दिया था।[3]

राजनीति शास्त्र से सम्बन्धित युद्धनीति का, जो कि किसी राष्ट्र या राजा की प्रभुसत्ता का अभिन्न अग होती है, का सकेत भी नैषधकार ने नल द्वारा दमयन्ती के उदर सौन्दर्यवर्णन प्रसग मे दिया है। उनका मन्तव्य है कि दो प्रबल राज्यो के बीच यदि एक दुर्बल, किन्तु पहाड, जगल, पर्वत एव बीहड भूमि वाले राज्य पर प्रबल राज्यो का आक्रमण करना उचित नहीं, [4]क्योकि बीहड स्थान मे रहने वाले व्यक्ति वहा के सभी स्थानो से परिचित एव भागने दौडने मे अभ्यस्त रहते है, परन्तु प्रबल राज्य के सैनिक उस राज्य की बीहड भूमि से अपरिचित, इस रूप में कमजोर राज्य के सैनिक गुरिल्ला पद्धति से युद्ध करके प्रबल शत्रु को हानि पहुँचाने के साथ-साथ युद्ध जीत भी सकते है। छत्रपति शिवाजी की गुरिल्ला पद्धति से प्राप्त विजये इसी का प्रमाण मानी जा सकती है, जबकि मात्स्य न्यायानुसार बडे राज्य आसानी से छोटे राज्यो को अपने वश में कर लेते है, परन्तु इस कोटि मे वही छोटे एव कमजोर राज्य रखे जाने चाहिए जो कि समतल भूमि मे स्थित हो एव पडोसी राज्य उस राज्य की भूमि एव सैनिक गतिविधियो से पूर्णतया परिचित होते है। नल कहते हैं कि इस भीमकुमारी दमयन्ती के (पक्षान्तर मे मध्यवर्ती भूमि) क्षीण अर्थात् अत्यन्त कृश (पक्षान्तर मे दुर्बल) और बीच मे स्थित (पक्षान्तर मे कटि -- [illegible] मे स्थित) उदर अर्थात्

---

1 मनु 5/96

2 गन्धेन गाव पश्यन्ति ब्राह्मणा वेदचक्षुषा ।
चारै पश्यन्ति राजानश्चक्षुर्भ्यामितरेजना ।। नै० 1,13 नारायणी टीका में उल्लिखित

3 प्रतीपभूपैरिव कि ततो भिया विरुद्ध धर्मैरपि भेत्तृतोज्झिता ।
अमित्रजिन्मित्रजिदोजसा स यद् विचारदृक्चारदृगप्यवर्तत ।। नै० 1/13

4 बबयोरभेदात् बलिभ्यो बलवदभ्यश्च सकाशात् आक्रमणममिव्यप्तिरभिभवश्च न प्राप्यते [illegible] तदनाक्रमण चित्र,
बलिसमीपे दुर्बलस्यानाक्रमण चित्रमित्यर्थ। नै० 7/81 मल्लिनाथ

– अन्येनापि क्षीणेन दुर्बलेनोभयो· सीमाया विद्यमानेनापि स्वाम्यमात्यादीना सप्ताङ्गाना शुद्धी सत्यामपि बलिष्ठेभ्यो भयानकायां भूमौ पराभवो न प्राप्यते, तत् सप्ताङ्गरहितस्य दुर्बलस्य [illegible]सितमाश्चर्यरूपम् बलिना सर्वांगशुद्धेर्विद्यमानत्वात्, स्वस्य च सर्वाङ्गरहित्यात्सीमनि वर्तमान त्वादिपराभवकारण सत्यपि सत्पराभवो न याप्तदाश्चर्यमित्यर्थ·।। नै० 7/81, नारायण

त्रिवलि का अधोभागस्त पेट (उदर जठरे युधि इति मेदिनी) जो त्रिवलियो से (पक्षान्तर । तीन बलवान् पुरुषो से) आक्रान्त अर्थात् पीडित नहीं होता है, यह आश्चर्य है। सम्पूर्ण ... और आदि अङ्गो के (पक्षान्तर मे अमात्य, मित्र आदि सात राज्याङ्गो के) शुद्ध अर्थात् निर्दोष ... पर अनङ्ग (अङ्गहीन, पक्षान्तर मे कामदेव) के राज्य मे अर्थात् युवावस्था मे विलसित हो रहा है। यह ... आश्चर्य है।[1]

राजनीति के एक अन्य सिद्धान्त, "दुर्बल प्राणी या राज्य को सबल प्राणी या राज्य से शत्रुता नहीं करनी चाहिए" की व्यञ्जना दमयन्ती द्वारा चन्द्रोपालम्भ विवरण मे देखने को मिलती है, जब वह कामदेव को उलाहना (उपालम्भ) देती हुई कहती है कि हे अनङ्ग विषमनेत्र (शिव जी) पर जो तुमने फूलो (कुसुमबाण, नेत्रो नेत्ररि भेद्यङ्गे इति विश्व) द्वारा प्रहार (विगृहणता पक्षान्तर मे विरोध) करते हुए जो फल (आत्मनाश) पाया। इसी से यह भय विषयक नीति बनी कि फूलो (सरल ...) से भी लडाई उचित या श्रेयस्कर नहीं, फिर विषम अतिक्षीक्ष्ण स्वभाव वाले नेत्र (बाण या राज्यया व्यक्ति या नायक) के साथ विरोध करना, सबसे बडी मूर्खता ही कही जायेगी,[2] क्योकि नीति भी कहती है "पुष्परपि न योद्धव्य कि पुन निशितै शरै।"[3] नैषधकार[4] भारवि[5] के साथ-साथ नैषधकार ने भी वाइसवे सर्ग मे इस तथ्य को साहित्यिक मीमासा का विवरण उपस्थित किया है।

शुक्रनीति मे वर्णन मिलता है कि (मर्मज्ञ) अपने विषय मे सबकुछ जानने वाले व्यक्ति की न ही उपेक्षा करे, एव न ही उसे अपना विरोधी बनाये, अपितु प्रसन्न कर लेना ही नीतिज्ञ के लिए श्रेयस्कर है।[6] इस तथ्य का सङ्केत भी बीसवे सर्ग मे परिहास सन्दर्भ मे नल द्वारा दमयन्ती की सखियो कला एव उसकी आत्मीया सखी का जल से भिगोने के उपरान्त बाहर जाने पर ... के कथन से जाहिर होता है जब वे कहती हैं कि हे नीतिशास्त्रपण्डिता दमयन्ति! (...) मर्म (रहस्य सम्भोगादि वृत्तान्त) को जानने वाली इन दोनो की इस समय भी तुम्हारे द्वारा उपेक्षा नहीं होनी चाहिए क्योकि तुमसे उपेक्षित वे दोनो तुम्हारे रहस्य को सबके समक्ष प्रकट कर सकती है। रामायण मे वर्णित विवरणानुसार रावण से उपेक्षित विभीषण ने भी रावण के गुप्त रहस्यो को राम के सम्मुख प्रकट किया था फलत रावण का सर्वनाश ही हो गया। नीति भी यही कहती है कि "मर्मज्ञ न प्रकोपयेत्।" नैषध महाकाव्य में राजाओ

---

1 पक्षान्तरे तु मध्ये मध्यसीमाया सता विद्यमानेनापि, क्षीणेन कोषबलादीनमल्पत्वात् दुर्बलेन नृपतिना, उदरेण युद्धेन, यत् तत्, सर्वेषामङ्गाना स्वाम्यमात्यादीना राज्यावयवान शुद्धिनिर्दोषता शिक्षाशास्त्रादिरूपा ... इह भूमिभुवि उपयपार्श्वत एवाक्रमणादभयङ्कराया भूमौ तन्मध्यसीमायाम्, अनङ्गराज्यस्य स्वाम्यादिसप्तपूर्ण सप्ताङ्गरहितस्यापि तस्य क्षीणराष्ट्रस्य विजृम्भित विलसित कार्य्ये चित्रम्। तथा च स्वाम्यादिसप्ताङ्गशुद्धियुक्तौ प्रबलौ राजानौ उभयपार्श्वत एवाक्रमाणोद्यतौ, अथ च तादृशभयङ्करमध्यसीमावर्ती सम्पूर्णसप्ताङ्गहीनो दुर्बलो राजा यदाक्रमण न प्राप्नोति, तच्चित्रमेव तत्कार्य्यमिति विरोध , तस्य बुद्धिकौशलादेव तज्जातमिति च तत्परिहार इति भाव। नै० 7/81, जयन्ती टीका।

– क्षीणेन मध्येपि सतोदरेण यत्प्राप्यते नाक्रमण बलिभि। सर्वाङ्गशुद्ध तदनङ्गराज्यविजृम्भित भीमभवाह चित्रम्।। नै० 7/81

2 फलमलभ्यत यत्कुसुमैस्त्वया विषमनेत्रमनङ्ग! निगृह्णता ।
अहहनीतिरवाप्तभया तत्ते न कुसुमैरपि विग्रहमिच्छति ।। नै० 4/81

3 नै० 4/81, मल्लि नारायणो एव जयन्ती टीका द्वारा उद्धृत ।

4. प्रलीनभूपालमपि स्थिरायति प्रशासदावारिधि मण्डल भुव ।
स चिन्तयत्येव भियस्त्वदेष्यतीरहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता ।। कि0 1/23

5 दृष्टो निजा तावदियन्त्यहानि यत्र पूर्वदशा शशाङ्क ।
पूर्णस्त्वदास्येन तुला गतश्चेदनन्तर द्रक्ष्यसि भङ्गमस्य ।। नै० 22/130

क्षत्राणि राम परिभूय रामात्क्षत्राद्यथाभज्यत स द्विजेन्द्र ।
तथैव पद्मानभिभूय सर्वांस्त्वद्वक्त्रयद्मात्परिभूतिमाति ।। नै० 22/131

6 विरोधयेन्न सर्वज्ञः नोपेक्षेत विरोधिनम्। प्रसादयेदशक्य तु । नै० 20/133, नरायणी टीका में उद्धृत

7 ता बाी मूय ... दुर्नीतावधीतिनि। उपेक्ष्यते पुन सख्यौ मर्मज्ञे नाधुनाऽप्यम्।। नै 20/133

द्वारा मर्यादापालन के तथ्य को अपनाने के विवरण को भी स्थान मिला है। नल द्वारा हस को पकडने के प्रसग में नैषधकार ने राजाओ को अपनी मर्यादा त्याग न करने की सलाह देते हुए हस से कथन कहलवाया है कि –

न वासयोग्या वसुधेयमीदृशस्त्वमङ्ग! यस्या पतिरुज्झितस्थिति ।
इति प्रहाय क्षितिमाश्रिता नभ खगास्तमाचुक्रुशुरारवै खलु ॥[1]

राजनीति शास्त्र मे सामदानदण्डभेदादि चतुर्विध नीतियो का भी अपना महत्व है। मनुस्मृति एव अग्निपुराण मे इन नीतियो का विशद विवेचन किया गया है।[2] श्रीहर्ष हस का चित्रण भी राजनीतिज्ञ के रूप मे किया है जो सामनीति का आश्रय लेते हुए दमयन्ती को नल को ही वरण करने के लिये पहले नल के गुणो का उसके सम्मुख बखान करता है।[3] साथ ही दमयन्ती को इस तथ्य से भी अवगत कराता है जैसे बिना बसत आये रसालवाटिका को भ्रमरसगति का सौभाग्य दुर्लभ रहता है उसी प्रकार नल से विवाह किये बिना तुम्हे हम लोगो (हंस) के मधुर वचनो का सुख दुर्लभ है, एव आगे कहते भी रखना है कि अभी तक तुम जैसी रूपराशि का पणिग्रहण नहीं हुआ है, हो सकता है विधाता ने तुम्हारा विवाह नल के साथ ही लिखा हो, फिर तुम दोनो (नल एव दमयन्ती) तो कुल, गोत्र एव सौन्दर्य मे अप्रतिम हो, तब तो निशा, शशि, उमा शिव, रमाविष्णु की तरह योग्य व्यक्तियो का सयोग कराने मे विधाता का प्रयत्न सर्वथा स्वारसिक (सङ्गत) ही कहा जायेगा, फिर अपना पक्ष मजबूती से रखते हुए हस कहता है कि जिस प्रकार मोतियो की माला कर्कशकुशसूत्र से नहीं गूथी जाती, ठीक उसी प्रकार तुम नलेतर पुरुष के योग्य नहीं हो। पुन वह अनेक तर्क रखते हुए राजकुमारी के हृदय के भावो को जानने की अभिलाषा से चुप हो जाना[4] है क्योकि विद्वान् जन गम्भीर कुण्ड[5] तथा गम्भीर हृदय का अवगाहन करके ही उचित कार्य का निर्णय करते हैं।[6] तदनन्तर दमयन्ती के सभी विचारो एव भावनाओ का अवगाहन हस करने के पश्चात यह भी पूँछ बैठता है कि यदि तुम्हारा कहीं अन्यत्र अनुराग हो या पिता की आज्ञा या स्वेच्छा मे किसी दूसरे तरुण का वरण कर लिया हो, तब तो तुम्हारे लिये याचना करने वाले मेरे विषय मे नल का विश्वास ही टूट जायेगा और अगर ऐसा है, तो तुम मुझे सदिग्ध विषय का भार मत सौंपो इसके अलावा जो कहो मै सब करने को तैयार हूँ। बाद मे दमयन्ती के अनेक तर्कों के साथ यह कहने पर कि वह नल की ही दासी होना चाहती है, एव हस से वह अपने जीवनदाता नलको मागती है, तब हस पूर्णरूपेण समझ लेता है कि वह नलानुरक्ता है, एव दमयन्ती की नलाशक्ति को और अधिक तीव्र करने के लिये हस दमयन्ती के सम्मुख नल की दमयन्ती के वियोग मे अत्यन्त दुखी प्राणी हो जाने का चित्रण करता है, एव दमयन्ती के नल के

---

1 नै० 1/128

2 सामदण्डौ प्रशंसन्ति नित्य राष्ट्राभिवृद्धये - मनु0 7/109

3 सामभेदौ मया प्रोक्तौ दानदण्डौ तथैव च। दण्ड स्वदेशे कथित परदेशे ब्रबीमि ते ॥
प्रकाशश्चापप्रकाशश्च द्विविधो दण्ड उच्यते। लुण्ठनग्रामघातश्च शस्यघातोऽग्निदीपनम् ।
प्रकाशोऽथ विष वह्नर्विविधै पुरुषैर्वध। दूषणञ्चै साधूनामुदकानाञ्च दूषणम् ॥
दण्डप्रणयन प्रोक्तमुपेक्षा श्रृणु भार्गव। यदामन्येत नृपति रणे न मम विग्रह ।
अनर्थायानुबन्ध स्यात् सन्धिना च तथा भवेत्। साम लब्धास्पदञ्चात्र दानञ्चार्थक्षयङ्करम् ॥
भेदण्डानुबन्ध स्यात् तदोपेक्षां समाश्रयेत्। न चाय ममशक्नोति किञ्चित् कर्त्तुमुपद्रवम् ॥
न चाहमस्य शक्नोमि तत्रोपेक्षां समाश्रयेत्। अवलोपहतस्तत्र राज्ञाकार्यो रिपुर्भवेत् ॥ अग्निपु 240/1 7

4. नै० 3/23-45

5 नै० 3/46 .. 52

6 इतीरयित्वा विरराम पत्री स राजपुत्रीहृदय बुभुत्सु ।
हृदे गंभीरे हृदि चावगाढे शंसन्ति कार्यावतर हि सन्त ॥ नै० 3/53.

प्रति प्रेम की प्रशंसा करते हुए उसके गुणौदार की अनेक विध प्रशंसा करता है साथ ही दमयन्ती के लिये मगल कामना करते हुए उससे निषध देश जाने की आज्ञा मागकर नल की राजधानी के लिये चल पडता है।[1] ध्यातव्य है कि यह सब बातें हस ने दमयन्तीको एकान्त मे ले जाकर की, इससे भी उसकी राजनीतिक पटुता सिद्ध होती है, क्योकि सार्वजनिक स्थान मे बाते करने से उनकी गोपनीयता भी भग हो जाती एव हस इससे शायद अपने लक्ष्य साधन मे खरा न उतर पाता। हस का उपर्युक्त कृत्य साम नीति का यथेष्ठ उदाहरण कहा जा सकता है, साथ ही साम, दान, दण्ड भेद इत्यादि चतुर्विध राजनीति का भी उसे यथेष्ट ज्ञाता प्रथम सर्ग मे नल द्वारा पकडने पर प्राप्त होता है जहाँ वह स्वयं को पकडे जाने पर नल को फटकारता है कि "न वास योग्यावसुधेयमीदृशस्त्वमङ्ग। यस्या पतिरुज्झितस्थितिः", धिगस्तु तृष्णातरल भवन्मन समीक्ष्य पक्षान्मप हेमजन्मनः, पदे-पदे सन्ति भटा रणोद्भटा न तेषु हिंसा रस एष पूर्यते। धिगीदृश ते नृपते। कुविक्रम कृपाश्रये य कृपणे पतत्रिणि।। एव तथाद्य तस्मिन्नपि दण्डधारिणा कथ न पत्यष धरणी हृणीयते आदि कथन मे वह दान एव दण्ड नीति का आश्रय लेता दिखता है। फिर भेद नीति अपनाते हुए कहता है कि –

न केवल प्राणिवधो वधो मम त्वदीक्षणाद्विश्वसितान्तरात्मन ।
विगर्हितं धर्मधनैनिबिर्हण विशिष्य विश्वासजुषा द्विषामपि ।।

पुन सामनीति को अपनाते हुए करुण स्वर में[2] अपना जीवनदान राजा से मागता है, एव इस प्रकार वह अपने उद्देश्य अर्थात् राजा के पाश से स्वय को मुक्त कर पाने मे सफल हो जाता है।[3] हस के साथ-साथ नल को भी श्रीहर्ष ने सामादि चतुर्विध नीतियो का ज्ञाता रूप मे चित्रित किया है, क्योंकि दूत रूप धारी बने नल दमयन्ती को पहले सामनीति का आश्रय लेते हुए उसकी कुशल पूछ फिर चारो देवताओ के गुणो का बखान करते हुए उसे, उनमे किसी एक को वरण करने को कहते है, पुन दमयन्ती जब अपने अटल निर्णय (नलवरण) से नहीं डिगती, एव आग, फासी या जल मे कूदकर आत्महत्या का निर्णय दूत नल को सुनाती है, तब नल उसे देवताओ का भय दिखाकर उसे देववरण हेतु को समझाते है, परन्तु दमयन्ती भी कुशल नीतिज्ञ एव दृढनिश्चय वाली थी, साथ ही नल के प्रति उसकी अनुरक्ति एव विरह प्रलाप ने तथा बीच मे हस ने अपने उद्बोधन से नल को वास्तविक स्वरुप मे आने को बाध्य कर दिया, इस रूप मे नल कुशल राजनीतिज्ञ होते हुए भी देवकार्य सम्पादन मे असफल हो जाते हैं अत इस रूप मे नल को एक कुशल दूत या राजनीतिज्ञ तो नहीं ही माना जा सकता क्योकि वह भावनाओ के प्रवाह मे बह गया, जब कि एक दक्ष राजनीतिज्ञ पर भावनाओ का कोई प्रभाव उसकी उद्देश्य प्राप्ति मे अवरोध उपस्थित नहीं कर पाता, जैसा कि महाभारत मे कृष्ण एव अर्थशास्त्र के प्रणेता कौटिल्य का मुद्राराक्षस मे विवरण उन्हें सामादि चतुर्विध नीतियो का सम्यक् ज्ञाता एव कुशल राजनीतिज्ञ ठहराता है एवं उन पर भावनाओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, फलत. वे अपने उद्देश्य प्राप्ति मे सफल होते है।[4] सत्रहवें सर्ग मे देवताओं द्वारा कलि को समझाना एव दण्ड द्वारा डराने का विवरण से उन्हें साम एव दण्ड नीति का ज्ञाता माना जा सकता है।[5] परन्तु पटु राजनीतिज्ञ नहीं क्योकि वह कलि को नल से विरोध त्यागने को

---

1 नै० 3/54 . . 128

2. मदेकपुत्रा जननी जरातुरा नवप्रसूतिर्वरटा तपस्विनी।
गतिस्तयोरेष जनस्तमर्दयन्न हो विधे। त्वां करूणा रूणद्धि न।। नै० 1/135 एव 136 .142

3 नै० 1/128. . ... .142

4. नै० 8/56 ....108 एवं 9/1 15

5. नै० 17/133.... ...158

तैयार नहीं कर पाये। साथ ही देवताओ की सामनीति का परिदृश्य नल को दूत बनाने के नैषध महाकाव्य के पाचवे सर्ग मे वर्णित मिलता है, जहॉ वे नल की कुशल जानने के बाद उसका कुल, सौन्दर्य एव दान की महिमा का वर्णन करते हुए उसे दमयन्ती वरण हेतु अपना दूत बलातरूप से नियुक्त कर ही लेते है[1]। परन्तु नल के इस कथन से कि "आर्जव कुटिलेषु न नीति"[2] से यह तो परिलक्षित हो ही जाता है कि देवता कुटिल नीति के जानकार थे, जिस पर इन्द्र को तो विशेषज्ञता ही हासिल थी। इस सदर्भ मे यह भी ध्यातव्य तथ्य है कि नैषधकार महाकवि भारवि से भी प्रभावित दिखते है।[3] अतएव यहां यह भी अभिहित किया जा सकता है कि राजनीति शास्त्र मे कुटलता का भी योगदान होता है। कहावत भी है Every thing is valid in love and war

श्रीहर्ष ने राजनीति के एक अन्य तथ्य "शत्रु का शत्रु भी मित्र होता है" का सङ्केत भी काञ्ची नरेश के प्रसङ्ग मे देना चाहा है, जहा उनके कथन "स्पर्द्धागर्द्धिषु तेषु तान धृतवते दण्डान् प्रचण्डानपि"[4] (प्रतिस्पर्द्धी व्यक्ति को दण्डित करने वाले व्यक्ति पर प्रसन्नता होती है) से इस तथ्य का सङ्कलन किया जा सकता है। उपर्युक्त राजनीति शास्त्र सम्बन्धी तथ्यों से यह निगमन किया जा सकता है कि प्राचीन कालीन (नल के समय) एव मध्यकालीन समाज मे राजनीतिशास्त्र की प्रासङ्गिकता थी और आज भी है।

---

1 नै० 5/47. . . 137

2 तेन तेन वचसैव मघोन स स्म वेद कपट पटुरुच्चै। आचरत्तदुचितामथ वाणीमार्जव हि कुटिलेषु न नीति ।। नै० 5/103

3 व्रजन्ति ते मूढधियः पराभव, भवन्ति मायाविषु ये न मायिन।
प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधान्, असवृताङ्गान्निशिता इवेषव ।। किरात0 1/30

– इय खलु नीतिर्यत् -
यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्यास्तस्मिस्तया वर्तितव्य स धर्म।
मायाचारो मायया प्रत्युपेयः साध्वाचारो साधुना प्रत्युपेय ।। किरात 1/30 को व्याख्यात्मक टि0 से उद्धृत

4. आचूडाग्रममज्जयज्जयपटुर्यच्छल्यकाण्डानय सरम्भे रिपुराजकुञ्जरघटाकुम्भस्थलेषु स्थिरान्,
सा सेवाऽस्य पृथ· प्रसीदसि तया नास्मै कुलस्त्वत्पुव स्पर्द्धागर्द्धिषु तेषु तान् धृतवते दण्डान् प्रचण्डानपि? नै० 12/40

एकादश अध्याय

वेद वेदाङ्गीय संदर्भ एवं उपसंहार

वेद वेदाङ्ग

नैषधकार ने अपने इस महनीय काव्य मे वेद वेदाङ्गो के विवरण को भी अप्रतिम स्थान दिया है। राजा नल के वर्णन प्रसङ्ग के साथ-साथ, दसवे सर्ग मे सरस्वती वर्णन, बाद मे राजाओ के वर्णन एव नल के विवाह तथा अर्चना प्रसङ्गो मे उनके वेद वेदाङ्ग सम्बन्धी मीमासा के दर्शन अध्येतागण सहज ही कर सकते है। वास्तव मे प्रचलित लोकोक्ति "माघ विद्वदौषधम्" की पुष्टि नैषधमहाकाव्य के अनेकश अध्ययनोपरान्त उसमें सन्निहित तथ्यों के आलोडन विलोडन एव उसकी मीमासा के अनन्तर ही होती है। नैषधीयचरितम् के प्राचीन टीकाकार विद्याधर के कथन से भी श्रीहर्ष की सर्वज्ञता के दर्शन होते है[1], और तो और, प्रसिद्ध काव्य समालोचक एव नैषधमहाकाव्य के काव्यशास्त्रीय एव शास्त्रीय विवरणो की तीखी आलोचना करने वाले डॉ0 सुशील कुमार डे को भी बलात् कहना पडा कि "यह तो मानना ही पडेगा कि नैषधीयचरित केवल एक वैदुष्यपूर्ण काव्य ही नहीं है, अपितु अनेक प्रकार से परम्परागत ज्ञान का भण्डार है। और किसी व्यक्ति को समस्त ज्ञान से परिपूर्ण होकर ही इसमे (नैषध मे) प्रवेश करना चाहिए।[2] स्वय नैषधकार द्वारा दमयन्ती स्वयवर मे राजाओ के परिचय के लिये आयी हुई सरस्वती देवी को किये गये वर्णन को[3], यदि श्रीहर्ष द्वारा सरस्वती देवी के वर्णन के बहाने स्वय श्रीहर्ष की सरस्वती (विद्वत्ता) का वर्णन मान लिया जाये, तो श्रीहर्ष के बारे मे यह निष्कर्ष निकालना आसान होगा, कि वेद वेदाङ्गो मे उनकी महनीय गति थी, क्योकि इस महाकव्य के आधारभूत ग्रथ महाभारत मे स्वयवर मे सरस्वती के अवतरित होने का विवरण अनुपलब्ध है। इससे यह प्रतीत होता है कि सरस्वती देवी के वर्णन के ब्याज (बहाने) से नैषधकार ने अपनी विदग्धता का परिचय देना चाहा होगा, अतएव उन्होने सरस्वती देवी के आवाहन का विवरण दमयन्ती की स्वयवर सभा मे रखा।

वेद एवं वेदाङ्गो की सख्याओ का निरूपण श्रीहर्ष ने राजा नल के वर्णन प्रसङ्ग मे किया है, जहॉ वह कहते हैं कि नल ने स्वय चतुर्दश विद्याओ (चार वेद छ वेदाङ्ग, मीमासा, न्याय धर्मशास्त्र और पुराण) का अध्ययन, ज्ञान, आचरण तथा शिक्षा इन चार उपाधियो से चार दशाये निर्मित करके उनका चुतर्दशत्व क्यो क़ायम रखा? यह नहीं मालूम।[4] ध्यातव्य है कि चतुर्दश विद्याओ की चार-चार दशाये हो जाने से उनको छप्पन हो जाना चाहिये था, पर वे चतुर्दश ही बनी रहीं, परन्तु यहॉ चतुर्दशत्व का अर्थ है चार दशाओं से युक्त होना। आचार्य मल्लिनाथ एव नारायण ने उपर्युक्त तथ्यो की विशद विवेचना की है[5]।

---

1 अष्टौ व्याकरणानि तर्कनिवह· साहित्यसारो नयो वेदार्थवगति पुराणपठितिर्यस्यान्यशास्त्राण्यपि।
नित्यं स्यु· स्फुरितार्थदीपविहताज्ञानान्धकाराण्यसौ
व्याख्यातु प्रभवत्यमु सुविषम सर्गं सुधी कोविद ॥ – विद्याधर (O I M S, No 9, Fo [illegible])

– अनेन (सप्तदश) सर्गेण श्रीहर्षकविराजेन आत्मसर्वज्ञता अभिव्यञ्जिता, इतस्ततसद्[illegible] [illegible]स्यार्थरत्नाकरस्य पार प्राप्तु शक्यते। मया तु निजमत्यनुसारेणाय सर्गो व्याख्यातो निक्षणैर्विशेषव्याख्यातव्योऽथवा। –विद्याधर

2 Not with standing his limitations, it is clear that Srih[a]rsha possesses a t[ru]ly high gift, but it is a gift not of a high poetic character It should be recognised at once that the [N]a sadhacarita is not only a learned poem, but is in many ways a respository of traditional learning, and should, therefore, be approached with the ful equipment of such learning — A History of Sanskrit Literature, Classical period, P. 329-330

3 नै० 10/74 88

4 अधीतिबोधाचरणप्रसाचारणैर्दशाश्चत[illegible] प्रणयन्नुपाधिभि·। चुतर्दशत्व कृतवान् कुत स्वय न वेद्मि विद्यासु चतुर्दशस्वय॥ नै० 1/4

5 अस्य सर्वविद्यापारदर्शित्वमाह – अधीतीति। अय नल चतुर्दशसु विद्यासु अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमासा न्याय विस्तर। धर्मशास्त्र 'पुराणच विद्या ह्यताश्चतुर्दशे' त्युक्तासु अधीतिरध्ययन 'गुरुमुखात् श्रवणमित्यर्थ। चतस्रा दशा अवस्था प्रणयन् कुर्वन्नित्यर्थ., स्वय चतस्रो दशा यासां तासा भाव· चतुर्दशत्व' त्वतलो [illegible]स्ये' तिपुवद्भावो वक्तव्य, इत स्त्रिया. पुंवद्भाव:। संज्ञाजातिव्यतिरिक्ताश्च गुणवचना इति सम्प्रदाय·। चुतर्दशस्य [illegible] कुत [illegible] कृतवान् न वेद्मि न जाने इति स्वत: सिद्धस्य स्वयङ्करण कथ पिष्टपेषणवदिति चुतर्दशाना चतुरा[illegible] कथ चतुर्दशत्वमिति व विरोधभासद्वयम्। चतुरवस्थत्वमिति तत्परिहारश्च। तदुक्तम् आभासत्वे विरोधस्य [illegible]भास उच्यते इति। नै० 1/4 मल्लि. टीका, एव द्रष्टव्य, 1/4, नारायणी टीका

आगे श्रीहर्ष अभिहित करते है कि जैसे तीनो वेद छै वेदङ्गो से गुणा होने पर अठारह हो जाते है, उसी तरह नल की जिहवा के अग्रभाग पर नाचने वाली विद्या अठारह द्वीपो की पृथक्-पृथक् जय लक्ष्मियो को मानो जीतने की इच्छा से ही (चुतर्दश विद्याए एव आयुर्वेद, धनुर्वेद गान्धर्व तथा अर्थशास्त्र को मिलाकर) अठारह गुनी हो गयी।[1] याज्ञवल्क्य स्मृति[2] के साथ-साथ मनुस्मृति एव विष्णु पुराण मे भी चतुर्दश विद्याओ के बारे मे वर्णन मिलता है तथा अठारह विद्याओ का विशद विवरण। आचार्य मल्लिनाथ एव नारायण द्वारा की गयी व्याख्या मे भी दृष्टव्य है।[3]

वेदो की चर्चा श्रीहर्ष ने दसवे सर्ग मे सरस्वती वर्णन के प्रसङ्ग मे भी की है जहाँ वह कहते है कि गान विद्या उसकी (सरस्वती की) कण्ठनाल थी, त्रयीमयी (ऋक्, यजु, सामरूप वेदत्रय से निर्मित), वली विलासवाली, तथा साहित्य (काव्य, नाटक, चम्पू आदि ग्रथ) से बने इन तरङ्गो के समान, अथवा तरग रूप दृष्टिवाली, बाला का रूप धारण की हुई वह सरस्वती सभा (स्वयवर स्थल) के बीच मे उतरी या पहुँची।[4] अथर्ववेद का विवरण देते हुए श्रीहर्ष लिखते है कि त्रिवलीरूप वेदत्रयी के मूल से निकलकर बढती हुई अनेक अभिचार (भरण, मोहन उच्चाटन आदि) कर्म के योग्य मेचक या कृष्णनील (पक्षान्तर मे नाभि मे प्रवेश करने योग्य) वर्ण वाली जिरा सरस्वती की उदर रोमपक्ति अथर्ववेद था[5]। पुराणो मे अथर्ववेद का श्यामवण होने एव अभिचार कर्तृत्व होने की विक्षा मिलती है,[6] अथर्ववेद के श्यामवण होने की अभीप्सा नैषधकार ने शायद इसलिय रखी, क्योकि इस वेद मे तान्त्रिक मन्त्रो, जादू टोना, मारन मोहन उच्चाटन आदि (पाप) कर्मो के निरूपण को विशेष स्थान दिया गया है जबकि ऋग्वेद मे ऋचाओ द्वारा देवो के आह्वान, यजुर्वेद मे यज्ञ सम्बन्धी वर्णन एव सामवेद मे विशिष्ट गानपद्धति के निरूपणो की मीमासा मिलती है।

अगर इस तथ्य की मीमासा की जाये कि आखिर वेद कहते किसे है और हम इन पर विश्वास क्यो करे? इस तथ्य के बारे मे भी श्रीहर्ष ने अपना मत रखा है कि वेद देवाज्ञा होने के कारण मान्य है (आदेश, "वेदोऽपि देवकी याज्ञा"[7], एव जैसे हम देवताओ पर विश्वास रखते है, वैसे ही हम उनकी आज्ञा या उनके द्वारा प्रदत्त ग्रथ) वेदों पर भी आस्था रखते है "श्रुति श्रद्धत्थ"[8] साथ ही वह यह भी कहते हैं कि वेद अनुष्ठानपरक हैं। इस तथ्य की निष्पत्ति कलिप्रतिनिधि द्वारा किये गये वेदो की आलोचना से निकाली जा सकती है। यथा–

---

1 अमुष्यविद्या रसनाग्रनर्तकी त्रयीव नीताङ्गगुणेन विस्तरम्।
अगाहताष्टादशता जिगीषया नवद्वयद्वीपपृथग्जयश्रियाम्।। नै० 1/5

2 पुराणन्यायमीमासाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिता। वेदा स्थानानि विधाना धर्मस्य च चुतर्दश ।। याज्ञ0 स०, 1/3

3 "त्रयीव त्रिवेदीव इतिवेदास्त्रयस्त्रयीत्यमर"। अङ्गाना "शिक्षा कल्पो व्याकरण निरुक्त छन्दसा चिति। ज्योतिषञ्चेति विज्ञेय षडङ्ग बुद्धसत्तमैरि" त्युक्ताना षण्णा मधुराम्लकषायलवणकटुतिक्ताना[illegible] रसाना षण्णा गुणेन आवृत्त्या वैशिष्ट्येन च, अथ च अङ्गगुणेन शरीर सामर्थ्येन स्वकीयव्युत्पत्ति विशेषेणेति यावत्। विस्तर वृद्धि नीता प्रापिता सती नवाना द्वयाना नवद्वय लक्षणया अष्टादशेत्यथ तेषा द्वीपाना पृथग्भूता जयश्रिय इत्यर्थ। जिगीषया व्यञ्जकाप्रयोगात् गम्योत्प्रेक्षा। जेतुमिच्छयेवेत्यर्थ, अष्टादशताम् अगाहत् अभजत्। पूर्वोक्तासु चतुर्दशसु विद्यासु विशिष्ट्व्युत्पत्त्या आयुर्वेदादीनामनुशीलनसौकर्य्यात् तत्पारदर्शित्वेन, सूतविद्यापक्षे च षण्णा रसाना शिक्षादीना षाड्विध्यवैशिष्ट्येन चाष्टादशत्वसिद्धि। प्रागुक्ताश्चतुर्दश विद्या आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चेति ते त्रय। अर्थशास्त्र चतुर्थन्तु विद्या ह्यष्टादश स्मृता"। षड्ङ्गविद्यागुणनेन त्रय्या अष्टादशत्वे [illegible] ख्यायविशेषेणाद्वारकव्याख्याने तु अङ्गानि वेदश्चत्वार इत्याथर्वणस्य पृथग्वेदत्वेत्रयीत्वहानि। त्वन्तर [illegible] मष्टादशत्व [illegible] चिन्त्यम्। नै० 1/5 मल्लिनाथी व्याख्या एव नारायणी व्याख्या भी द्रष्टव्य है।

4 मण्येसभ सामततार बाला गन्धर्वविद्याधरकण्ठनाला। त्रयीमयी भूतवली विभङ्गा साहित्य[illegible]र्तितदृक्तरङ्गा।। नै 10/74

5 आसीदथर्वा त्रिवलित्रिवेदीमूलादिनि[illegible]त्य वितायमाना। नानाभिचारोचितमेचकश्री श्रुतिर्नदीयोदररोमरेखा।। नै 10/75

– अथर्वाश्रुति यदीया सरस्वतीसम्बन्धिनी उदररोमरेख उदग्गोमावली आसीत्। नै० 10/75 में नारायण – [illegible] वितण्यर्थो [illegible] नै 10/75, नारायण

6 अथर्वण श्यामत्व पुराणप्रसिद्ध, अभिचार कर्तृत्त्व च। विनिर्गत्येत्यत्रान्त्य वितण्यर्थो

7 नै० 17/59

8 नै० 17/61

प्रत्यमपि वेदस्य भाग न्यक्ष एव चेत् ।
केनाग्येन दु खान्न विधीनपि नथेन्द्रथ ।।[1]

वेद क्या है? और उनके प्रतिपाद्य क्या है, इसका समाधान ऋग्वेद के निम्न सूत्र से भी मिलता है। यथा –

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदु ।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ।।[2]

वृहदारण्यकोपनिषद् के अनुसार चारो वेद परमपिता के निश्वास है। (अस्य महतो भूतस्य निश्वसितम् एतद् यद् ऋग्वेदो, यजुर्वेद समावेदोऽथर्वागिरस)। श्रीहर्ष ने वेदो के नेत्र रूप मे होने की अभीप्सा व्यक्त की है, जैसा कि इन्द्र द्वारा कलि को फटकारने के सन्दर्भ मे प्राप्त विवरण से ध्वनित होता है कि तीनो लोकों को कर्त्तव्योपदेश करने के कारण वेद (तीनो लोको का) तीसरा नेत्र है।[3] राजशेखर भी इस तथ्य का समर्थन करते हुए दिखते है जहॉ वह कहते है कि ऋषि शास्त्रकार तथा कविगण सभी आवश्यकतानुसार ज्ञान की राशि वेदों का उपयोग करते आ रहे है[4] और सम्भवत इसलिये वह वेदो को अपनाये है, क्योकि वेदो से उन्हे उनके कर्त्तव्यमार्ग का निर्देश प्राप्त होता है।

वास्तव मे समस्त वैदिक साहित्य को हम चार भागो मे विभाजित कर सकते है, वेदो की सहिताएँ, ब्राह्मण, आरण्यक एव उपनिषद। प्रत्येक वेद की विभन्न शाखाये विभिन्न ब्राह्मण आरण्यक एव उपनिषदो का उल्लेख वैदिक साहित्य मे मिलता है। सहिताओ मे मन्त्रो का शुद्धरूप रहता है, जिनका उच्चारण देव स्तुति एव विभिन्न यज्ञो के समय होता है। ब्राह्मण ग्रथो मे वह भाग है, जो (वेद के) मन्त्रो के विधि भाग की व्याख्या करता है, आरण्यक ग्रथो मे वानप्रस्थ आश्रम मे करणोय विधियो की व्यवस्थाओ का निरूपण है एव उपनिषदो मे आध्यात्मिक एव दार्शनिक सिद्धान्तो की विधियो का प्रतिपादन मिलता है। नैषधकार ने उपर्युक्त समस्त वैदिक साहित्य के तथ्यो को इस ग्रथ मे यथास्थान जगह दी है। चारो वेदो की शाखाओ का विवरण देते हुए श्रीहर्ष उन्नीसवे सर्ग मे चारणमुखेन कहते हैं कि चारो वेदो की एक सहस्र शाखाये ही सूर्य की सहस्र किरणो के रूप में परिवर्तित हुई है। वे किरणे अब हमारे समीप आ गयी है। प्रात वेदपाठियो के मुखरूपी कन्दराओं में इन्ही किरण रूपी ऋचाओ के रास्ते की प्रतिध्वनि ही तो वेदध्वनि के रूप में सुनाई पड़ती है।[5] यदि वेदो की शाखाओं पर दृष्टिपात करे, तो चारो वेदो की अनेक शाखाओं के होने की संसूचना तो अवश्य मिलती है, परन्तु अधिकांशत सम्प्रति अप्राप्त हैं। महर्षि पतजलि ने ऋग्वेद की इक्कीस शाखाओ का उल्लेख किया है[6], इनमे से केवल पाच शाखाओ के नाम या साहित्य उपलब्ध होते हैं, चरणव्यूह के अनुसार प्रमुख पांच शाखाये है, शाकल वाष्कल, आश्वलायन शाखायन एव माण्डूकायन। सम्प्रति ऋग्वेद की शाकल शाखा ही प्रचलित है, वाष्कल शाखा की सहिता प्राप्त है आश्वलायन शाखा के श्रौतसूत्र एव गृह्यसूत्र उपलब्ध हैं, जबकि शाखायन शाखा के ब्राह्मण एव आरण्यक। माण्डूकायन का

---

1 नै 17/60

2 ऋ० 1/164/39

3. लोकत्रयीं त्रयीनेत्रा वज्रवीर्यस्फुरत्करे। क इत्थ भाषते पाकशासने मयि शासति।। नै 17/83

4. नमोऽस्तु तस्यैश्रुतये या दुहन्ति पदे पदे। ऋषय शास्त्रकाराश्च कवयश्च यथामति।। - काव्य मीमासा, अ०-7

5. दशशत चतुर्वेदीशाखा विवर्तनमूर्तय सविधमधुनाडल कुर्वन्ति ध्रुव रविरश्मय।
वदनकुहरेष्वध्येतृणामय तदुदृणामयं तदुदञ्चति श्रुतिपटमयस्तेषामेव प्रतिध्वनिरध्वनि।। नै 19/10

6. एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्- महाभाष्य, अह्निक-1

माना ही मिलता है। शेष खाखाओ के नाम भी सदिग्ध लगते है।[1] यजुर्वेद 101 शाखाओ का उल्लेख महर्षि पतञ्जलि[2], के महाभाष्य, सवानुक्रमणी[3] एव कूर्मपुराण[4] मे मिलता है, परन्तु चरणव्यूह मे 86 का ही उल्लेख प्राप्त है जिनमे चरक शाखा की 12, मैत्रायणी की 7, वाजसनेयि की 17, तैत्तरीय की 6, एव कठ की 44[5] चूकि चरण व्यूह मे कठ की 44 शाखाओ का नाम निर्देश नहीं मिलता अतएव यह माना जा सकता है कि चरणव्यूह के समय 42 शाखाये ही थीं। सम्प्रति यजुर्वेद की 6 शाखाये ही उपलब्ध है, दो शुक्ल यजुर्वेद की, माध्यान्दिन या वाजसनेयि सहिता एव काण्व सहिता तथा चार कृष्ण यजुर्वेद की, तैत्तरीय, मैत्रायणी काठक एव कपिष्ठल कठ सहिता। सामवेद की शाखाओ का पतञ्जलि[6] ने एक सहस्र बताया, परन्तु शायद यह समीचीन मन्तव्य नहीं है, हा इसका अभिप्राय सामवेद के गान की एक सहस्र पद्धतिया माना जा सकात है जैसा कि श्रीसत्यव्रतसामश्रमी एव श्री सातवलेकर का भी मत है।[7] सामतर्पण मे 13 सामवेदी आचार्यो का विवरण मिलता है[8], अतएव इसकी 13 शाखाओ का ही परिगणन मान्य है, जिनमे सम्प्रति तीन शाखाए ही उपलब्ध है, वे है राणायनीय, कौथुमीय एव जैमिनीय या तलवकार। अथर्ववेद की नौ शाखाओ का उल्लेख पतञ्जलिकृत महाभाष्य[9] प्रपञ्चहृदय, चरणव्यूह एव सायणकृत अथर्ववेद भाष्य की भूमिका में मिलता है वे है- पैप्पलाद तौद, मौद, शानकीय, जाजल, ब्रह्मवद, देवदर्श, चारण वैद्य, जिनमे सम्प्रति दो शाखाओ शौनक एव पैप्पलाद की सहिताए ही उपलब्ध है। इस प्रकार नैषधकार द्वारा वर्णित चारो वेदो की एक सहस्र शाखाओ मे सम्प्रति सोलह शाखाओ (ऋग्वेद की 5, यजुर्वेद की 6, सामवेद की तीन, एव अथर्ववेद की 2) के साहित्य, के उपलब्ध होने की सूचना मिलती है।

श्रीहर्ष ने वेदमन्त्रो के उच्चारण तथा उनकी सुरक्षा मे कोई अन्तर न आने देने हेतु अपनाये जाने वाले उपायो, जिन्हे वैदिक साहित्य मे विकृतिया कहते है, का भी वर्णन सत्रहवे सर्ग मे कलि के नल राजधानी निषधपुर पहुचने के प्रसङ्ग मे वर्णन किया है। इन विकृतियो की सख्या 8 मानी गयी[10] वे है – जैटा पाठ, माला, शिखा, रेखा, ध्वज, दण्ड, रथ एव घन। इनमे वेदमत्रो के उच्चारण मे पाच प्रकारो का विशेष महत्व होता है वे हें – सहिता पाठ, पद पाठ, क्रमपात, जटा, पाठ, एव घन पाठ।[11] नैषधकार अभिहित करते हैं कि वहा (निषधपुर मे) वेदपाठियो के मुख से पद पाठ सुनकर पापी कलि को पैर रखने का भी साहस न हुआ।[12] एव वेदपाठियो के क्रमपाठ को सुनकर उसका आगे बढने का क्रम ही रूक गया तथा वह नगर से दूर ही खडा रहा[13], और उसके चरणो की वेग से आगे बढने की गति नथी तक ठीक

---

1 द्रष्टव्य–वैदिक वाङ्मय का इतिहास - भगवदत्त, भाग-1, पृ० 77-132 एव वैदिक साहित्य रामगोविन्द त्रिवेदी, पृ० 63-64

2. एकशतमध्वर्युशाखा - महाभाष्य, आह्निक-1

3 यजुरेकशताध्यकम्- षड्गुरुशिष्य, सर्वानुक्रमणीवृत्ति

4. शाखानां तु शतेनाथ यजुर्वेदमथाकरोत् - कूर्म पुराण 49-51

5 विवरण हेतु द्रष्टव्य- यजुर्वेद, स० सातवलेकर, 1927, भूमिका, पृ० 6, 7

6 सहस्रवर्त्मा सामवेदः - महाभाष्य आह्निक -1

7 द्रष्टव्य- सामवेद सहिता - 1966 वि (1939 ई0) सम्पादक श्री दा सातवलेकर, भूमिका, पृ० 2

8 राणायन-शाट्यमुग्रय-व्यास-भागुरि-औलुण्डी-गौल्गुलवि-भानुमानौपमन्यव-काराटि- मशक-वार्षगण्य - कुथुम-शालिहोत्र-जैमिनि-त्रयोदशैते मे सामगाचार्या स्वस्ति कुर्वन्तु तर्पिता। सामतर्पणम्।

9 नवधाऽथर्वणोवेदः- महाभाष्य, अह्निक-1

10. जटा माला शिखा रेखा ध्वजो दण्डो रथो घन।
अष्टो विकृतयः प्रोक्ता क्रमपूर्वा महर्षिभि.।। स सा का इति कपिलदेव द्विवेदी, पृ० 29 से उद्धृत्

11 पञ्चपदपाठों की उच्चारण स्थिति द्रष्टव्य - वही पृ० 29-30

12 वेदानुद्धरतां तत्र मुखादाकर्णयन्पदम्। न प्रसारयितु काल कले पादमशारयत्।। नै० 17/163

13. श्रुतिपाठक वक्त्रेभ्यस्तत्राकर्णयतः क्रमम्। क्रम. सकुचितस्तस्य पुरे दूरेपर्वर्तत्।। नै० 17/164

रही जब तक उसने वेदाध्यायियो के मुख से सहिता पाठ न सुना।[1] आचार्य मल्लिनाथ का कथन भी नैषधकार के कथन की पुष्टि करता है।[2]

नैषधकार ने चारो वेदो तथा उनके ब्राह्मण, आरण्यक, एव उपनिषद् साहित्य मे मिलने वाले ऋचाओ के चिह्नो उदात्त अनुसार एव तीन स्वरो अनुदात्त एव स्वरित की भी साहित्यिक आभासा की है। उन्नीसवें सर्ग मे नल जागरण मे चारणो द्वारा की गयी पद्यरचना मे इसके दर्शन होते है, जहॉ वे कहते है कि रवि की प्रभातकालीन किरणो रूपी ऋचओं (ऋग्भि पूर्वाह्ने दिवि देव ईयते, यजुर्वेदे तिष्ठति मध्ये अह्न) के ओंकारो पर स्पष्ट और निर्मल अनुस्वार बिन्दु लगाने के लिये आकाश मे कोई तारो को चुनता जा रहा है और उन्हीं ऋचाओ के ऊपर उदात्त[3] चिन्ह की रेखाये बनाने के लिये ही चन्द्र मण्डल से भी रश्मि रेखाये या किरणे चुन ली गयी है।[4] तात्पर्य यह है कि सूर्योदय काल मे तारे लुप्त हो जाते है एव अस्त होते हुए चन्द्रमा की उर्ध्वमुर्खी किरणे भी क्षीण होकर रेखावत् दृष्टिगोचर हो रही है। ध्यातव्य है कि उदात्त का अर्थ है उच्चध्वनि, अनुदात्त का अर्थ है निम्न ध्वनि, एव स्वरित का अर्थ है दोनो की मिश्रित ध्वनि। ऋग्वेद मे उदात्त स्वर पर कोई चिह्न नहीं लगता, जब कि अनुदात्त स्वर मे वर्ण के नीचे पडी लकीर (Line) और स्वरित पर वर्ण के ऊपर खडी लकीर खींची जाती है।[5] सामवेद मे उदात्त स्वर मे वर्ण के ऊपर एक, अनुदात्त के ऊपर 3, एव स्वरित के ऊपर 2 अक लिखा रहता है।[6] यहॉ पर नैषधकार ने अनुस्वार हेतु तारागणो को, एव उदात्त हेतु चन्द्ररश्मियो का निर्देश किया है।

नैषधीयचरितम् मे वेदो मे प्रतिपादित कुछ तथ्यो को भी श्रीहर्ष ने अपने विवेचन का विषय बनाया है, साथ ही वेदो से सम्बन्धित ब्राह्मण, आरण्यक एव उपनिषदो की विषय सामग्री का भी सकलन किया है। अग्निहोत्रादि मे मत्रो स प्रज्जवलित होने वाली अग्नि का दृष्टान्त श्रीहर्ष ने नल एव हस के सवाद मे दिया है, जहा नल पूछते हैं कि है हस, दमयन्ती की अनुपम मधु के समान कथा को लोगो ने मेरे कानो का अतिथि बनाया है। वह कथा मेरी कामग्नि प्रज्वलित करने मे धाय्या (अग्नि सुलगाने मे समर्थ ऋचा) के समान समर्थ है। अत मुझ जैसे अधीर पुरुषो को धिक्कार है।[7] शतपथ ब्राह्मण मे भी वर्णन मिलता है कि अग्नि होत्रादि में अग्नि प्रज्जवलित हेतु जिन मत्रो का मन्त्रोच्चारण होता है उन्हे सामिधेनी कहते है।[8] इनमे अनेक मन्त्रो का एक साथ उच्चारण होता है[9] साथ ही जो यथावसर अन्य मन्त्र प्रयुक्त किये जाते है, उन्हे

---

1 तावद्गतिधृताटोपा पादयोस्तेन सहिता। न वेदपाठिकण्ठेभ्यों यावदश्रावि सहिता।। नै 17,165

2 . यावत् यत्पर्यन्त, वेदपाठिनाम् वेदाध्येतृणाम्, कण्ठेभ्य मुखेभ्य, सहिता पूर्वोत्तरपदरूपावस्थापद[illegible]विलक्षणा ऋगादिरूपा, न अश्रावि न श्रुता, तच्छृणोतेस्तूभय एव पादयोरिति भाव। तदेतदारण्यके "अनम् अन्नाद्यकामो निर्भुज ब्रूयात् स्वर्गकाम प्रतृण्वन् उभयन्तरेण, इति। नै० 17/162 मल्लिनाथ

3 उच्चेरुदात्त. – पाणिनि सूत्र, 1/2/29

4 रविरुचिऋचामोंकारेषु स्फुटामलबिन्दुता गमयितुमुरूच्चीयन्ते विहायसि तारका ।
स्वरविरचानायासामुच्चैरुदात्ततया हृता शिशिरमहसो बिम्बादस्मादसशयमशव ।। नै० 19/

5 ऊँ अग्निमीले पुरोहितम् यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतार रत्नधातमम्।। ऋग्वेद 1/1/1

6 विस्तृत विवरण हेतु द्रष्टव्य - स सा का समी इति- कपिलदेव, पृ० 29 एव वेदचयनम्- परिशेष पृ० 37 . 39

7 अमित मधु तत्कथा मम श्रवणप्राघुणकीकृता जनै। मदनानलबोधने भवेत्खग। धाय्या धिगधैर्यधारिण ।। नै० 2/56

8 इध्मेनाग्नि तस्मादिध्यो नाम समिन्धे। सामिधेनीर्होता तस्मात्सामिधेन्योनाम।। श ब्रा 1/3/5/1 अच्युत ग्रथ माला, काशी स. 1994

9 अथसामिधेन्य. प्रवोवाजा अभिधवो - ऋ 3/27/1
ऽग्नमायाहिवीतये गृणान , वही, 6/16/10
ईडेन्यो नमस्यस्तिरो, वही 3/27/13, ग्नि दूत वृणीमहे, वही, 1/12/1,
समिध्यमानोध्वरो, वहीं 3/27/4, समिद्धो अग्नआहुतेति द्वे, वही, 5/28/5 एव आश्वलायन सूत्र 1,2/7 पर भी द्रष्टव्य
ता एक तिसन्ततमनुब्रुयात्। - आश्व श्रौ. सूत्र 1/2/8

'धाय्या' कहते हैं[1], परन्तु वे भी समिधेनी के अन्तर्गत ही परिगणित होते है। अमरकोश में भी वर्णन मिलता है "ऋक् सामिधेनी धाय्या च या स्यादग्निसमिन्धनी इत्यमर ।।"

ऋग्वेद मे पाप प्रशमन हेतु अघर्षण सूत्र का उल्लेख मिलता है। यथा-ऋत च सत्य चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत् आदि।[2] इस प्रसङ्ग का सन्दर्भ इन्द्र नारद सवाद मे मिलता है, जहाँ इन्द्र देव ऋषि नारद से कहते है कि भगवन्, आपके वचन वेद का सार है। वेद की पाप नाशक ऋचा (अघर्षण) के समान अब मेरे मन मे इस विषय (पृथ्वी लोक से राजा, स्वर्गलोक क्यो नहीं आये) मे सन्देह उत्पन्न करने वाले इकट्ठे पाप को आप को शीघ्र नष्ट करना चाहिए।[3] राज नल ने भी अघमर्षण मत्र का उच्चारण करते हुए अपनी मध्याह्न देवार्चना प्रारम्भ की, इस तथ्य का उजागर भी नैषधकार ने किया है। यथा –

श्वेत्यशैत्य जलदैवतमन्त्रस्वादुताप्रमुदिता चतुरक्षीम् ।
वीप्स्येमोघधृतसौरभलाभ घ्राणमस्य सलिलघ्रमिवासीत् ।।[4]

नारायण का मत है कि लोभसजातीयस्पर्धाविगलित विवेक सत् "ऋत च"[5] इत्यादि सध्याघर्मषण चुलुकोदयस्पर्शमिषेण सलिल जिघ्रतीति सलिघ्र जलाघ्राण कुर्नीदेवाभूत्। लोभस्पर्धाभ्या, विगलितविवको ह्यविषयेऽपि प्रवर्तते। सध्याघमर्षण चकारेति भाव।[6] एवं आचार्य मल्लिनाथ का कथन है कि अघमर्षणकाले ऋतञ्च इत्यादि मन्त्र पठन् जल जिघ्रेति स्मेति निष्कर्ष।[7] आचमन एवं पवित्रीकरण के उपरान्त जप करने का विधान विभिन्न सहिताओं मे वर्णित है। नैषधकार भी उसी परम्परा का अनुपालन करते दिखते हैं, क्योंकि उन्होने नल द्वारा अघमर्षण मन्त्र से आचमनोपरान्त ऋग्वेद के विष्णु सूक्त[8] का जप करने का वर्णन करते हुए कहते है कि विष्णु सूक्त का जप करने के लिये राजा नल ने अपने कर कमल मे पद्म बीजो की बनी पद्माक्ष माला ली मानो वे बीज पुन अपने निवास स्थान कमल मे ही पहुँच गये हो। यथा-

अक्षसूत्रगतपुष्करबीजश्रेणिरस्य कर सङ्करमेत्य ।
शोरिसूक्तजपितु पुनरापत्पद्मसद्चिरवासविलासम् ।।[9]

ऋग्वेद मे इन्द्र को 'शतक्रतु' कहा गया है।[10] एव ऋग्वेद के पुरुष सूक्त मे ब्राह्मण को मुखज, क्षत्रिय को बाहुज वैश्य को ऊरुज तथा शुद्र को पादज या अन्त्यज अभिहित किया गया है।[11] इस तथ्य का विवरण वरुण द्वारा वेदों की प्रामाणिकता एव चार्वाक को फटकराने के प्रसङ्ग मे नैषध के सत्रहवे सर्ग मे मिलता है। वरुण कहते हैं कि हे नास्तिको! शतक्रतु (शताश्वमेधकारीन्द्रो भवति अर्थात इन्द्र) तथा ऊरुज (विष्णु के ऊरु से उत्पन्न वैश्य) आदि (मुखज=ब्राह्मण, बाहुज=क्षत्रिय, और पादज = शूद्र), वैदिक वाणी

---

1. तस्मादुपरिष्टादेवध्याय्येदध्यात् - श ब्रा. 1/4/1/37
2 ऋ. स. 10/190/1 3
3 तद्विमृज्य मम सशयशिल्पि स्फीतिमत्र विषये सहसाघम्। भूयतां भगवत श्रुतिसारैरद्य जगिघमर्षणसूक्तै ।। नै० 5/18
4 नै० 21/17
5 ऋ० सं० 8/8/48
6 नै० 21/17 में नारायण
7. नै० 21/17 में मल्लिनाथ
8 विष्णोर्नुक वीर्याणि प्रवोचम्– ऋ०स० 1/54/1 6

लिए केवल इच्छा करने भर की देर होती है।[1] छान्दोग्योपनिषद् के आत्मा से सम्बन्धित "तत्त्वमसि"[2] एव वृहदारण्यकोपनिषद् के सा ग एष महानज आत्मा[3] के साम्य का सकेत कलि प्रतिनिधि द्वारा किये गये वेदखण्डन प्रसग में दृष्टव्य है। यथा–

जनेन जानतास्मीति काय नाय त्वमित्यसौ ।
त्योऽशते ग्राह्यते नान्यदहे श्रुत्यातिधूर्तया ।।[4]

लोक एव पारलोक के विषय मे कौन जान सकता है?[5] वेद के इस वाक्य का निदर्शन भी नैषधकार ने कलिप्रतिनिधि के कथन मे किया है, जहाँ वह लोक परलोक की सत्ता के निराकरण में अपना मन्तव्य रखते हुए कहता है कि जब स्वय वेद ही परलोक के विषय मे सशयग्रस्त है तो उनको प्रमाण मानने वाला ससार परलोक की मान्यता मे कैसे विश्वास कर ले?[6] पितृलोक के विषय में छान्दोग्य उपनिषद में वर्णन मिलता है कि (सूर्य के) दक्षिणायन के समय शरीर त्यागने वाले (गृहस्थ) क्रम से मासाभिमानी देवताओ, पितृलोक तथा आकाश (मे स्थान) प्राप्त करते हुए चन्द्रमा को प्राप्त करते है।[7] एव वृहदारण्यक उपनिषद् का कथन है कि कभी गृहस्थ जन इस चन्द्र को प्राप्त होकर अन्न बन जाते है, एव जिस तरह ऋत्विज यज्ञ मे सोम का आप्यायन और अपक्षय करके यज्ञकर्ता उन भक्षण करते है वैसे ही देवता भी चन्द्र (सोम) लोक में शरीरधारी कर्मियो का उपयोग करते है।[8] साथ ही नारायणोपनिषद् की मान्यता है कि दक्षिणायन मे मृत्यु प्राप्त होने पर, प्राणी पितरो की महिमा को प्राप्त कर चन्द्रमा के सायुज्य एव चन्द्रलोक को प्राप्त होता है।[9] नैषधकार ने उपर्युक्त श्रुतिवाक्यो के निष्कर्ष "चन्द्रो वै पितृलोक इति श्रुते" का प्रसग नल द्वारा सन्ध्यावर्णन विवरण मे दिया है नल दमयन्ती से कहते है कि प्रिये! परशुराम ने सहस्रार्जुन का सिर काटकर उसके जिस रक्त से पितरो का तर्पण किया था उसी रक्त ने मानो इस पितृलोक (चन्द्रमा) मे पहुँचकर इसके लालवर्ण का बना दिया है।[10] शायद इसीलिए सन्ध्या काल मे आकाश लालवर्ण का दृष्टिगोचर होता है। पितृतर्पण मे प्रयुक्त तिलाञ्जलियाँ चन्द्रमण्डल पहुचती है एव वह जल चन्द्रमा का अमृत बन जाता है इस तथ्य का विवरण भी नैषधकार ने दिया है। यथा–

स्वधाकृत यन्तनयै पितृभ्य श्रद्धापवित्र तिलचित्रमम्भ ।
चन्द्र पितृस्थानतयोपतस्थे तदगरोचि खचिता सुधैव ।।[11]

---

1 प रवति दमयन्ति! त्वा न किचिद्वदामि दुतमुपनम कि मामाह सा हस हस
इति वदति नलेऽसौ तच्छशसोपनम्र प्रियमनु सुकृता हि स्वस्पृहाया विलम्ब ।। नै० 3/131

2 छा० उ० 6/8/7

3. वृहदा उ० 4/4/25

4 नै० 17/54

5 को हि तद्वेद यद्यमुष्मिँल्लोकेऽस्ति वा न वा। इति दिव्यतीकाशान्करोति" इत्यादिर्या श्रुति। नै० 17/62, नारायण की टिप्पणी

6 को हि वेदास्त्यमुष्मिन्वा लोक इत्याह या श्रुति तत्प्राणाण्यादमु लोक लोक प्रत्येतु वा कथम्।। नै० 17/62

7 मासेभ्य पितृलोक पितृलोकादाकाशमाकाशाच्चन्द्रमसमेषसोमो राजा तद्देवा नामन्न त देवा भक्षयन्ति। छान्दो०उप0 5/10/4

8 मासेभ्य पितृलोक पितृलोकाच्चन्द्र ते चन्द्र प्राप्यान्न भवन्ति तॉस्तत्रदेवा यथा सोम राजानमाप्यायस्वापक्षीयस्वेत्यत्मनॉस्तत्र भक्षयन्ति। वृहदा उप 6/2/26

9 अथ यो दक्षिणे प्रमीयते पितृणामेव महिमान गत्वा चन्द्रमस सायुज्य सलोकतामाप्नोति। नारायणोपनिषद 80

10 तानीव गत्वा पितृलोकमेनमरञ्जयन्यानि स जामदग्न्य ।
छित्त्वा शिरोऽस्राणि सहस्रबाहोर्विस्राणि विश्राणितवान्पितृभ्य । नै० 22/48

11 नै०22/119

अर्थात नल सन्ध्यावर्णन करते हुए दमयन्ती से कहते है कि प्रिय पुत्र अपने पितरो को श्रद्धा सहित जो तिलाञ्जलियॉ देते हैं, वह पितरो के लोक चन्द्रमण्डल मे चली जाती और वह तिलाञ्जलियो के वे तिल एकत्रित होकर कलक रूप मे श्यामवर्ण दिखायी दे रहे है एव वह जल चन्द्रमा का अमृत बन जाता है। वृहदारण्यक उपनिषद् मे वर्णित उपर्युक्त तथ्य जिसमे चन्द्रमा को देवो का अन्न बताया गया है, एव उसे देवो का भक्ष्य कहा गया है, का सकेत भी श्रीहर्ष ने दमयन्ती द्वारा चन्द्रोपालम्भ[1] वर्णन प्रसग के साथ साथ सन्ध्यावर्णन मे भी दिया है, दमयन्ती चन्द्रमा की प्रशसा करती हुई कहती है कि सुधाभोजी देवगण इस सुधाशु को पीकर जो रिक्त कर देते है, वह ठीक ही है क्योकि कुम्भज (आगस्त्य) ने इसके पिता सागर को ही पीकर रिक्त कर दिया था, अत यह रिक्तता तो चन्द्रमा का पैतृक गुण है।[2]

श्रीहर्ष ने वेदो मे वर्णित विभिन्न यज्ञो मे विवरण को भी अपनी लेखनी का माध्यम बनाया है। सत्रहवे सर्ग मे कलि से नल की राजधानी मे सम्पन्न किये जाने वाले यज्ञो मे अग्निषोम (गोमेध) यज्ञ, इन्द्र याग या सौत्रामिणी यज्ञ, सर्वमेध यज्ञ, ब्रह्मसाम, अग्निष्टोम, पौर्णमास, सोम, सर्वस्वार, महाव्रत एव अश्वमेघ यज्ञ को देखा जिससे उसे असीम कष्टो की अनुभूते हुई। गोमेध यज्ञ मे हिसा के लिए गौ को देखकर (याज्ञिक ब्राह्मणो के मुख से उच्चरित अग्निषोमीय पशुमालभेत्" वाणी को सुनकर उसका रमण अर्थ समझ) वह कलि प्रसन्नतापूर्वक गौ की तरफ दौडा लेकिन सोमयज्ञ मे काम आने वाली (सोमदेवताक नामक यागरूप धर्म मे आसक्त) गौ ने पाप रूप कलि को इस तरह दूर से भगा दिया जैसे वृष मे आसक्त गौ गधे को भगा देती है।[3] इस यज्ञ का विवरण शुक्लयजुर्वेद सहिता[4] एव शतपथ ब्राह्मण मे भी मिलता है।[5] नैषधकार ने सौत्रामिणी (इन्द्रयाग) को मदिरा (सुरा या सोमरस) द्वारा सम्पन्न करना बताया जिसकी पुष्टि शुक्लयजुर्वेद की माध्यन्दिन (वाजसनेयि) सहिता[6] के साथ-साथ शतपथ ब्राह्मण[7] से भी होती है। शतपथ ब्राह्मण मे वर्णन मिलता है कि सौत्रामणी नामक यज्ञ, जिसमे देवगन कुश (बर्हि) पर बैठते हैं, तथा शष्य तोक्म, लाजा, ब्रीहि श्यामाक, तथा नग्नहु आदि 26 अन्य औषधियो से आयुर्वेदशास्त्रनुसार बनी हुई सुरा (सोमरस) से यह यज्ञ सम्पन्न होता है। श्रीहर्ष अभिहित करते हैं कि कलि ब्राह्मण को मदिरा लेता हुआ देखकर प्रसन्न हुआ, पर बाद मे सौत्रामणी यज्ञ करता हुआ (सौत्रामण्या सुरा पिबेत् इति श्रुते) देखकर दुःखी हो गया।[8]

---

1 असित मेकसुराशितमप्यभून्न पुनरेष विधुर्विशद विषम्। अपि निपीय सुरैर्जनितक्षय स्ययमुदेति पुनर्नदमार्णवम्।। नै० 4/61

2 सुधाभुजो यत्परिपीय तुच्छमेत वितन्वन्ति तदर्हमेव। पुरानिपीयास्य पिताति सिन्धुरकारि तुच्छ कलशोद्भवेन।। नै० 22/67

3 हिसागवीं मखे वीक्ष्य रिरसुर्धावति स्म स। सा तु सौम्यवृषासक्ता रार दर न्निरास तम्।। नै० 17/177
– विशेष विवरण हेतु द्रष्टव्य– मल्लिनाथी सस्कृत व्याख्या एव हिन्दी रूपान्तरण, नै० 17/173

4 शु यजु स, अध्याय-6

5 शतपथ ब्राह्मण, 4/5/2/1

6 सुरावन्त वर्हिषद सुवीर यज्ञ हिन्वन्ति महिषा नमभि ।
दधाना सोम दिवि देवतासु मदे मेन्द्र यजमाना स्वर्का।। शु यजु स म 19/32
यस्ते रस सम्भृत ओषधीषु सोमस्य शुष्म सुरया सुतस्य।
तेन जिन्व यजमान मदेनसरस्वतीमश्विनाविन्द्रमग्निम्।। वही, 19/33
यमश्विना नमुचेरासुरादधि सरस्वत्यसुनोदिन्द्रियाय।
इम त शुक्र मधुमन्तमिन्दु सोम राजानमिह भक्षयामि।। वही, 19/34
यदत्र रिप्त रसिन सुतस्य यदिन्द्रो अपिबच्छचीभि ।
अह तदस्य मनसा शिवेन सोम राजानमिह भक्षयामि।। वही, 19/35
विशेष - सौत्रामणी यज्ञ का इस सहिता में 19 से 21 अध्याय तक विस्तृत विवरण दिया गया है।

7. सुरावान् वा एष वर्हिषद् यज्ञौ यत् सौत्रामणी। श ब्रा, 12/8/1/2

8 मुमुदे मदिरादान विन्दन्नेष द्विजन्मन। दृष्ट्वा सौत्रामणीमिष्टि त कुर्वन्मन्दयत्।। नै० 1 ,182

नैषधकार ने सर्वमेधयज्ञ को सम्पन्न होने का विवरण भी दिया है, जिसमे प्रत्येक जाति के एक-एक प्राणी की हिसा का विधान होता है।[1] ब्राह्मण के घातक (ब्रह्महत्या) को देखकर कलि ने सन्तोष प्राप्त किया किन्तु जब उसे यह ज्ञात हुआ कि उस व्यक्ति ने सर्वमेध यज्ञ किया है। जिसमे ब्राह्मण को ब्राह्मण का वध करना वेद विहित है, तो वह अत्यन्त सन्तप्त हुआ[2] आचार्य मल्लिनाथ का भी कथन है कि "ब्राह्मणे ब्राह्मणमालभेत" इति श्रुत्या सर्वमेधे ब्राह्मणादिसर्वालम्भविधानात् तस्य धर्मत्वादिति भाव।[3] राजसूय यज्ञ का निर्देश भी श्रीहर्ष ने किया है एव इस तथ्य का उद्घाटन भी किया है कि इस यज्ञ मे यजमान की ऋत्विजो के साथ जुआ (अक्षपण) खेलेन का भी विधान होता है।[4] कलि ने नलराजधानी मे (स्वय का सहायक समझने वाले) जैन को ढूढते हुए भी ब्रह्मचारियो का मृगचर्म (अजिन) ही पाया तथा दिगम्बर यती (बौद्ध क्षपणक) को तलाश करने में उसने (राजसूय) यज्ञ मे दीक्षित हुए मनुष्य का पासा का जुआ देखा[5], जो कि वेद विहित था। इस प्रकार कलि के स्वपक्षीय किसी के (पाप कर्म के) नहीं मिलने से उसको वहाँ अत्यधिक कष्ट हुआ। ऋग्वेद[6] में वर्णन मिलता है कि ब्रह्मसाम (वामदेव या कम्र नामक देवता विशेष के उपासक या वामदेव से दृष्ट साम विशेष के उपासक) मे पास मे आयी हुई (गम्या अगम्या) सभी स्त्रियो से समागम करना, विधानसम्मत है क्योकि श्रुति का भी कथन है- "वामदेव्यमुपासान सर्वा स्त्रिय उपसीद। श्रीहर्ष कलि की मनोदशा का चित्रण करते हुए कहते हैं कि स्वयं पास आयी सभी (जातियों की) स्त्रियो को कामुक मनुष्य को देखकर कलि को बड़ा सन्तोष हुआ किन्तु उन्हे वामदेव (ब्रह्मसाम) का उपासक देखकर बड़ा दुख हुआ।[7] छान्दोग्यउपनिषद् में भी वर्णन मिलता है कि समागमप्रयोजन हेतु स्वय शय्या पर आयी हुई किसी स्त्री का परित्याग नहीं करना चाहिए।[8] नैषध मे दर्श (अमावस्या तिथि मे किया जाने वाला यज्ञ) अग्निष्टोम, पौर्णमास, एव सोमयज्ञ का सङ्केत भी मिलता है। इन यज्ञो से तो कलि को कष्ट ही हुआ, परन्तु पौर्णमास यज्ञ को देखकर वह मच्छिर्त हो गया, तथा सोमयज्ञ को तो वह यम ही समझन लगा।[9] सर्वस्वार नामक[10] यज्ञ को भी नलराजधानी मे सम्पन्न होने के विवरण को रखते हुए श्रीहर्ष ने इस तथ्य का प्रतिपादन करना चाहा है कि इस यज्ञ मे आत्म हत्या से पाप नहीं होता परन्तु उक्त यज्ञ करने का अधिकार, औषधादि सेवन से भी स्वस्थ नहीं होने वाले किसी असाध्य रोग से युक्त मरणासन्न व्यक्ति को

---

1 सर्वमेधे हि तत्तज्जातीयैकैकप्राणिहिसाधिकारात् "ब्राह्मणो ब्राह्मणमालभेत" इति ब्रह्मवधस्य वैधत्वान्निराश्रयः सन्नत्सतप्त इत्यर्थ ।। नै० 17/186, नारायण

2 तत्र ब्रह्महण पश्यन्नतिसन्तोषमानशे। निर्वर्ण्य सर्वमेधस्य यज्वान जरति स्म स ।। नै० 17/186

3 नै० 17/183, मल्लिनाथ व्याख्या से उद्धृत

4 राजसूय यजमानोऽक्षैर्दीव्यती 'ति श्रुतेरिति प्रकाश' व्याख्या।
– राजसूये ऽभिषेचनीये अष्टावक्षैर्दीव्यन्तीति श्रवणात्, नै० 17/186 मल्लिनाथ
– राजसूये यजमानोऽक्षैर्दीव्यति इति श्रुतेर्विहितत्वाद्द्यूत युक्तम् नै० 17/189 मे नारायण

5 अपश्यज्जिनमन्विष्यन्नजिन ब्रह्मचारिणा। क्षपणार्थी सदीक्षस्य स चाक्षपणमैक्षत्।। नै० 17/1[illegible]

6 ब्रह्मसाम कथानश्चित्र- (ऋ 3/6/24) इत्यादि वामदेव्य नाम साम तस्य ब्रह्मविद्याया उपासक विभाव्य मत्वा म्लौ (कलि) दु खितोऽभूत। नै० 17/194, नारायण
– दृष्ट साम (पा सू 7/2/7) इत्यर्थे वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ (पा 4/2/9) इति ड्य।

7 कम्र तत्रापनम्राया विश्वस्या वीक्ष्यतुष्टवान्। स मम्लौ त विभाव्याथ वामदेव्याभ्युपासक ।। नै० 17/194

8. न काञ्चन परिहरेत् तद्व्रतम् - छान्दो उपनिषद् 2/13
– तदुपासकाना "न काञ्चन स्वयमागता परिहरेत्" इति श्रुतेस्तदुपभोगस्य धर्मत्वादिति भाव। नै० 17/191, मल्लि0

9 दर्शस्य दर्शनात्कष्टमग्निष्टोमस्य चानशे। जूघूर्णे पौर्णमासेक्षी सोम सोऽमन्यतान्तकम्। नै० 17/196

10 कीथ महोदय ने हिलेब्राण्ट महोदय का मत उद्धृत करते हुए लिखा है कि इस यज्ञ में राजा अपना सर्वस्व त्यागकर सन्यास ग्रहण करता है, जैसा कि बुद्ध ने किया। यह यज्ञ उपाख्यानों पर ही आधारित है तथा केवल पुरोहितो की कल्पना ही समझ पड़ता है। इसका सबसे बढ़ा प्रमाण यह है कि इसका उल्लेख सबसे बाद में लिखे गये सूत्रो मे ही हुआ है। द्रष्टव्य, कीथ, रेलिजन एण्ड फिलास्फी आफ दि वेद, द्वितीय भाग, पृ० 348

ही है, स्वस्थ व्यक्ति को नहीं। सर्वस्वार यज्ञ मे पशुमत्र से संस्कार प्राप्त [illegible] का [illegible] को मारकर यज्ञभागार्पण करने पर उस आत्महत्या को धर्मविरुद्ध नहीं होने [illegible] वह कलि [illegible] दुखी हुआ।[1] यथा–

आननन्द निरीक्ष्याय परे तत्रात्मघातिनम्। सर्वस्वारस्य यज्वानमेन दृष्ट्वा [illegible] विव्यथे।।[2]

महाकवि कालिदास रचित रघवशमहाकाव्य मे भी इसका प्रसङ्ग प्राप्त है यथा- "यो मन्त्रपूता तनुमप्यहौषीत्।। महाव्रत नामक यज्ञ का भी सड्केत नैषधकार ने किया है। इस यज्ञ मे ब्रह्मचारी एव वैश्या के समागम का विधान होता है। उपनिषद् वाक्यानुसार यह यज्ञ धर्मप्रतिकूल नहीं माना जाता, यथा– "महाव्रत ब्रह्मचारिपुश्चल्यो सम्प्रवाद" कलि ने इस महाव्रत यज्ञ मे ब्रह्मचारी और वेश्या का सहवास देखकर यज्ञक्रिया को भाडा का अन्नमय का नृत्य ही समझा[3] जो कि उसकी पाप बुद्धि का परिणाम था। नारायण एव मल्लिनाथ के मत मे भी इस यज्ञ के बारे में सूचना मिलती है।[4] अश्वमेध [illegible] का सकेत भी नैषध के कलिविवरण प्रसग मे मिलता है। यज्ञकर्ता की स्त्री के वराग से अश्वमेध के घोडे के शिश्न को सस्पृष्ट देखकर अपण्डित (श्रुतिविधान का अज्ञ) उस कलि ने (अपने सहचर द्वारा से या स्वय अपने प्रति) वेद बनाने वाले (ईश्वर) को भॉड कहा[5], जब कि अश्वमेध मे विधि है कि "निमयत्याश्वरः शिश्न महिष्युपस्थे निधत्ते[6] या अश्वमेध प्रकरणे" अश्वस्य शिश्न महिष्या उपस्थे निधानं।[7] इस रूप में अश्वमेध यज्ञ का वैसा करने का विधान है। अत. राजाज्ञा के सामन वेदाङ्ग. को बिना [illegible] किये स्वीकार करने का मनुवचन[8] होने से वैसा करना धर्मविरुद्ध नहीं था, किन्तु श्रुति को नहीं जानने [illegible] कलि अज्ञता के कारण वेदकर्ता को ही भण्ड (भॉड) कहने लगा। उपर्युक्त यज्ञो के साथ साथ नैषधकार ने वेदो के इस विधान का, कि किसी यज्ञ के अनुष्ठान मे दीक्षित होने पर यजमान अनुष्ठान काल तक दान, होम (सन्ध्या स्नानादि) नित्य नैमित्तिक कर्मों से मुक्त रहता है यथा दीक्षितो न ददाति न जुहोति इत्य दश्रुते।।[9] का सकेत श्रीहर्ष के उस कथन मे मिलता है जहॉ वह कहते है कि ब्राह्मण को नित्य नैमित्तिक कर्म को छोडता हुआ देखकर कलि को हर्ष हुआ, पर बाद मे उसे यज्ञ मे दीक्षित देखकर कलि दीनमुख करके दूर भाग गया।[10]

नैषध महाकाव्य मे उपनिषदो मे प्रतिपादित विषय सामग्री का भी विवरण प्राप्त होता है। छान्दोग्य उपनिषद् मे वर्णन मिलता है कि गृहस्थ जन इष्टापूर्त आदि पुण्य कर्मों के क्षयकाल तक चन्द्रलोक मे चन्द्रसानिध्य प्राप्त करते है एव पुन: पुण्य कर्मों की समाप्ति होने पर बिना किसी एक क्षण के विलम्ब के जिस मार्ग से चन्द्रलोक जाते है उसी मार्ग से पुन. मृत्युलोक वापस लौट आते है।[11] चन्द्रोपालम्भ विवरण मे

---

1 सोऽन्त्येष्टौ सर्वस्वाराख्ये यज्ञे आत्मानमेव पशुमन्त्रै सस्कृत घातयित्वा यज्ञभागमर्पयति इति श्रुति। वैधत्वादात्म [illegible]दोषा भारवाद्व्यथित· इत्यर्थ·। नै० 17/199 मलि एव 17/202 नारायण

2 नै० 17/202

3 क्रतौ महाव्रते पश्यब्रह्मचारीत्वरीरतम्। जडो यज्ञक्रियामज्ञ· स भण्डा[illegible]ण्डताण्डवम्। नै० 17/203

4 स महाव्रताख्ये क्रतौ ब्रह्मचारी चेत्वरी च तयो रत मैथुनं पश्यन् यज्ञक्रिया [illegible]ण्डानामसम्भाषणादिव्यापार-शीलानामकाण्डताण्डवमसमयोद्ध तनृत्तमिव जडो मेने। यतोऽज्ञो मूर्ख। भण्डा यथा बहुजनसमक्ष गुह्यादि प्रकाशयन्ति, तथा दिवैव बहुजनसमक्षमश्लीलव्यापारकरणाद्यागकर्म भण्डव्यापारतुल्यमिति यज्वा। [illegible] मेन इत्यर्थ। नै० 17/203 नारायण एव नै० 17/200 मल्लि0 टीका भी द्रष्टव्य,

5 यज्वभार्याश्वमेधाश्वलिङ्गालिङ्गितराङ्गताम्। दृष्टवाचष्ट स कतार श्रुतेर्भण्डमपण्डित। नै० 17/204

6 नै० 17/201 मलि0 टीका से उद्धृत्

7 नै० 17/204 नारायणी टीका से उद्धृत्

8 पुराण मानवो धर्म साङ्गो वेदचिकित्सितम्। आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभि।। मनु0 12/110

9 नै० 17/201 नारायणी टीका से उद्धृत्

10 हृष्टवान् स द्विज दृष्ट्वा नित्यनैमित्तिकत्यजम्। यजमान निरूप्यैन दूर दीनमुखोऽद्रवत्।। नै० 17/20[illegible]

11 तस्मिन् यावत् सम्पातमुषित्वा - छा0 उप0 5/10/4-5

दमयन्ती कहती हैं कि हे जड चन्द्र! मरने से भीमकन्या दमयन्ती का मन मुझमे लीन हो जायेगा अर्थात् दमयन्ती मुझसे चाहने लगेगी, ऐसा समझते हो क्या? विद्वान् वेदव्याख्यानकाल (पक्षान्तर मे स्मरणशील विद्वान् या देवता) काम ने निश्चय ही मुझसे उस श्रुति (वेदमन्त्र) का अर्थ नल का मुख (नलमुखेन्दु) रूप बतलाया है।[1] यहाँ दमयन्ती के कथन का आशय है मै मरकर भी नल को ही जन्मान्तर मे भी चाहूँगी, तुम्हे कदापि नहीं। 'यत्रास्य पुरुषस्याग्नि वागप्येति वात प्राणश्चक्षुरादित्य मनश्चन्द्र दिश श्रोत पृथिवीं शरीरमाकाशमात्मा ओषधीर्लोमानि वनस्पतीन् केशा अप्सु लोहित च रेतश्च निधीयते ... मनश्चन्द्रे निलीयते'[3] इस श्रुति वचन के अनुसार मृत प्राणी का मन चन्द्रमा में लीन हो जाता है इस कारण चन्द्रमा का वैसा सोचना समझ कर दमयन्ती ने कहा कि उक्त श्रुति का 'मरने पर प्राणियो के मन का चन्द्रमा मे लीन होना सामान्य अर्थ है। वेद व्याख्यान का पूर्वापर या स्मरण करने वाले विद्वान्, या देवता काम ने उस श्रुति का अर्थ "मरने पर नल रूपी चन्द्रमा मे मन को लीन होना" बतलाया है। अतएव ''प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुप" अर्थात् सामान्य की अपेक्षा विशेष की बलवत्ता होने से तुम्हारी आशा (मरने पर दमयन्ती का मन मुझ चन्द्र मे लीन होगा, यह समझना) एक भूल है। लोक जीवन मे सहज रूप यही देखा जाता है कि सामान्य बुद्धि वाले मनुष्य किसी श्रुति आदि का सामान्य अर्थ ग्रहण करते है, किन्तु विद्वान या विशेष अर्थ को ही ग्रहण करते है एव यहाँ इस प्रसग मे भी देवता काम का बतलाया हुआ श्रुति का विशेष अर्थ ही ग्राह्य है, सामान्य अर्थ नहीं। इसी उपनिषद् मे मरणासन्न प्राणी की स्थिति के बारे मे विवरण मिलता है कि जब तक अन्तकालिक मनुष्य की वाणी की मन मे, मन प्राण मे, प्राण तेज मे और तेज पर देवता मे लीन नहीं हो जाते, तब तक उसे (प्राणियो को या स्वय को) जानने पहचानने का होश रहता है और जब उसकी वाणी मन मे, मन तेज मे एव तेज परदेवता मे प्रविष्ट हो जाता है तब यहाँ (मृत्युलोक में वह) मरता हुआ भी कुछ नहीं जानता।[4] वृहदारण्यक उपनिषद् मे भी वर्णन मिलता है कि शरीर से आत्मा के निकलने पर प्राण अपान, उदान आदि वायु भी शरीर से निकल जाती हैं।[5] उपनिषदो के उपर्युक्त मन्तव्य का सकेत दूतरूपधारी नल के सम्मुख दमयन्ती के करुण विलाप मे प्रकट होता है वह कहती है कि ये युग तो बीत रहे हैं पर क्षण नहीं, कब तक मै (नल विरह की) वेदना सहती रहूँगी, मुझे तो मृत्यु भी नहीं आती, क्योंकि मेरे प्रिय (नल) अन्त करण से अलग नहीं हो रहे हैं। मन प्रिय को नहीं छोड रहा है तथा प्राण मन को नहीं त्याग रहे हैं।[6] छान्दोग्यउपनिषद् का तत्त्वमसि,[7] वाक्य जो कि आत्मा की सत्ता का प्रतिपादक है, का संदर्भ भी कलि वर्णन प्रसग मे नैषधकार ने रखा है। इस सिद्धान्त का उपहास करता हुआ कलि प्रतिनिधि कहता है कि (मेरा) शरीर ही मैं हूँ, किन्तु वेदों (के उपनिषदो) मे यह वर्णन मिलता है, कि नहीं, तुम यह शरीर नहीं हो, अपितु तत्त्वमसि (परमात्मा के अश) हो यह कितनी बडी धूर्तता है।[8]

---

1 किमसुभिर्ग्लपितैर्जड! मन्यसे मयि निमज्जतु भीमसुतामन।
मम किल श्रुतिमाह तदर्थिका नलमुखेन्दुपरां विबुध स्मर॥ नै० 4/52

2. नै० 4/52 मल्लि0 टीका से उद्धृत्

3 नै० 4/52 नारायणी टीका से उद्धृत्

4. पुरुषं सौम्योपतापिनं ज्ञातय पर्युपासते जानासि मा जानासि मामिति। तस्य यावन्न वाङ्मनसि सम्पद्यते मन प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायां तावज्जानाति। छान्दो0 उप0 6/15/1

– अथ यदास्य वाङ्मनसि सम्पद्यते मन प्राणे प्राणस्तेजसि तेज परस्यां देवतायामथ न जानाति। छान्दो0 उप0 6/15/2

5 तमुत्क्रामन्त प्राणोऽनुत्क्रामति प्राणमुत्क्रामन्त सर्वे प्राणा उत्क्रामन्ति। वृ0 उप0 4/4/2

6 अमूनि गच्छन्ति युगानि न क्षण कियत्सहिष्ये न हि मृत्युरस्ति मे।
स मा न कान्त स्फुटमन्तरुज्झिता न त मनस्तच्च न कायवायव॥ नै० 9/94

7 तत्त्वमसि - छा0 उप0 6/8/7

8 जनेन जानतास्मीति काय नायं त्वमित्यसौ। त्याज्यते ग्राह्यते चान्यदहो धूर्त्यातिधूर्तया। नै० 17/54

ध्यातव्य है कि वृहदारण्यक उपनिषद् मे आत्मा को महान एव अजन्मा भी माना गया है।[1] छान्दोग्य उपनिषद् मे ब्राह्मण बध को पञ्चमहापातको के अन्तर्गत गणना की जाती है।[2] इस तथ्य के निदर्श की व्यञ्जना चन्द्रोपालम्भ विवरण मे दृष्टिगोचर होती है, जहाँ दमयन्ती अपनी सखी से कहती है कि सखि! तुम राहु से पूछो, कि क्या वह अपने बैरी चन्द्रमा को ब्राह्मण होने की वजह से छोडता (ग्रसता नहीं) है यदि ब्राह्मण है तो तो वारुणी (वारुणीगन्धदूर्वाया प्रतीचीसुरयोरपि इति विश्व) पान करके पतित होकर फिर आकाश मे क्यो आता है?[3] छान्दोग्योपनिषद् के अद्वैत प्रतिपादक वाक्य "इदेवसोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितम्"[4] की सगति नल द्वारा दमयन्ती सौन्दर्य वर्णन मे देखने को मिलती है, जहाँ नल दमयन्ती की वाणी की मधुरता का वर्णन करते हुए अभिहित करते है कि जिस प्रकार ब्रह्मचर्यावस्था मे रहता हुआ एव गृहाश्रमियो के यहाँ मागकर भिक्षान्न को खाता हुआ ब्राह्मणश्रेष्ठ, आचार्य (ब्राह्मण) के पास जाकर अद्वैत ब्रह्म का प्रतिपादन करने वाली उपनिषद् विद्या को पढता है उसी प्रकार कोयल भी आम्र के वृक्ष से भिक्षान्नरूप मे प्राप्त मञ्जरियो (फलो) को खाकर एक मात्र काम का प्रतिपादन करने वाली विद्या (कामविद्या) को इसके (दमयन्ती के) मुखचन्द्र से पढती है[5] अर्थात् इस दमयन्ती की मधुरवाणी को सीखती है। तात्पर्य यह है कि दमयन्ती की वाणी कोकिल वाणी से भी मधुर है।

छान्दोग्योपनिषद् के साथ-साथ वृहदारण्यकोपनिषद् मे वर्णित कुछ विवरणो को भी नैषधकार ने अपनी लेखनी का विषय बनाया है। शुक्लयजुर्वेदीय शतपथ ब्राह्मण के चतुर्दशकाण्डात्मक वृहदारण्यकोपनिषद् मे स्वप्नावस्था के बारे मे वर्णन मिलता है कि चैतन्य रूप ज्योतिस्वभाव वाला (जाग्रत, स्वप्न, इहलोक तथा परलोक आदि मे) अकेला जाने वाला, अमरण धर्म वाला (आत्मा) निकृष्ट (शरीर रूप) घोसले की (पॉच रूपो, प्राण,अपान, उदान, व्यान एव समान से चलने वाले) प्राण के द्वारा परिपालन करता हुआ, घोसले के बाहर घूमकर जहाँ-जहाँ अभिलाषा होती है वहाँ-वहाँ वह स्वप्न मे जाता है।[6] इस तथ्य का सकेत श्रीहर्ष द्वारा दमयन्ती के जीवनचर्याविवरण प्रसग मे प्राप्त होता है, जहाँ वह कहते है कि दमयन्ती स्वप्न मे अभिलाषा से पतिरूप माने हुए नल को प्रत्येक रात्रि मे देखती थी, क्योंकि निद्रा दमयन्ती के निमीलित नेत्रों से तथा बहिरिन्द्रियों के सुप्त हो जाने पर सम्पुटित हृदय से छिपाकर कभी न देखते हुए भी नल को बड़े रहस्य के रूप में दिखा ही देती है।[7] माघ के शिशुपाल वध मे भी वर्णन मिलता है कि –

---

1. स वा एष महानज आत्मा - वृ.उप. 4/4/25
2. स्तेनो हिरण्यस्य सुरा पिबश्च गुरोस्तल्पमावसन्। ब्रह्महा चैते पतन्ति चत्वार पञ्चमश्चाचरस्तैरिति। छा0उप0, 5/10/9
3. वद विधुन्तुदमालि मदीरितैस्त्यजसि कि द्विजराजधियारिपुम्।
किमुदिव पुनरेति यदीदृश. पतित एष निषेव्य हि वारुणीम्।। नै० 4/70
4. छा0 उप0, 6/2/1
5. प्रसूनबाणाद्वय वादिनी सा काचिद्द्विजेनोपनिषत् पिकेन। अस्या किमास्य-द्विजराजतो वा नाधीयते भैक्षभुजा तरूत्था।। नै० [illegible]/48
6. प्राणेन रक्षन्नवर कुलाय वहिष्कुलायादमृतश्चरित्वा। स ईयतेऽमृतो यत्र काम हिरण्मय पुरुष एकहस।। वृ0उ0 4/3/12
7. मनोरथेन स्वपतीकृत नल निशि क्वसा न स्वपती स्म पश्यति।
अदृष्टमप्यर्थमदृष्ट वैभवात्करोति सुप्तिर्जनदर्शनातिथिम्।। नै० 1/39
निमीलितादक्षियुगाच्च निद्रया हृदोऽपि बाह्येन्द्रियमौनमुद्रितात्।
अदर्शि सगोप्य कदाप्यवीक्षितो रहस्यमस्या स महन्महीपति। नै० 1/40
– सुप्ति स्वप्न कदाचिददृष्टिमप्यर्थं वस्तु अदृष्टवैभवाद्धर्माधर्मसामर्थ्याज्जनदर्शनातिथि जनदर्शनगोचर करोति। "यद्दृष्ट दृश्यते स्वप्नेऽननुभूत कदापि न" इति न्यायेन जन्मान्तरस्थ नान्तरानुभूत समुत्पन्नसंस्कारमस्मिञ्जन्मन्यदृष्टिमप्यर्थं धर्माधर्मावेव दर्शयत् इति भाव। चित्रादौ नल दर्शने सत्यपि साक्षात्तद्दर्शनाभावदवृक्षोक्तिर्युक्ता। [illegible] त्रिधा" इति। नै० 1/39 नारायण
– ननु सुषुप्तौ मनसोऽप्यव्यापारश्चेतर्हि ज्ञान कथम्। उच्यते स्वप्नदर्शने बाह्येन्द्रियग्राह्यत्वा भावाद् भावादाभयन्तरत्वाभावेदप्यदृष्ट- सहकृतकेवलाविद्यावृत्तिरूपसुषुप्तिविषयत्वस्ययुक्तत्वात्, आत्मन एव तत्रादृष्टत्वाच्चा आत्मरूपेण नित्यस्फुरणोपपत्ते। नै० 1/40

सहजान्धदृश स्वदुर्नये परदोषेक्षणदिव्यचक्षुष । स्वगुणोच्चगिरो मुनिव्रता परवर्णग्रहणेष्वसाधव ।। [1]

स्वप्नावस्था मे व्यक्ति अविद्या आदि शक्तियो के प्रभाव मे रहता है जबकि अद्वैतावस्था मे उससे रहित। ऐसा वृहदारण्यक उपनिषद मे भी वर्णन मिलता है।[2] हिरण्मय पुरुष व हिरण्मय पुरुष एक हस" का सकेत श्रीहर्ष ने श्लेष द्वारा हस वर्णन प्रसग मे दिया है जहाँ कवि ने अदर्शि कहने के बजाय अबोधि कहने से इस वाक्य की सगति की पुष्टि होती है। नैषधकार कहते है कि जिस तरह योगी अपने शरीर मे ही विद्यमान परमात्मा (हस) का बोध कराता है, उसी तरह सरोवर तट पर विहरते हुए एक स्वर्णिम हस को नल ने देखा। यथा --

पयोधिलक्ष्मीमुषिकेलिपल्वले रिरसुहर्सकलनादसादरम् ।
स तत्र चित्र विचरन्तमन्तिके हिरण्यमयं हसमबोधि नैषध ।।[4]

वृहदारण्यक उपनिषद के साथ-साथ अन्य उपनिषदो[5] मे भी ब्रह्म को आनन्द रूप माना गया है। इसका सन्दर्भ भी नैषध मे नारद के इन्द्रलोक गमन प्रसग मे मिलता है। नैषधकार कहते है कि जैसे योगी अनादि भवसिन्धु को पारकर आनन्द स्वरूप ब्रह्म को प्राप्त करता है, वैसे ही देवर्षि नारद अनन्त आकाश के बीच से जाते हुए इन्द्र भवन मे पहुँच गये। यथा –

स व्यतीत्य वियदन्तरगाध नाकनायक निकेतनमाप। सप्रतीर्य भवसिन्धुमनादि ब्रह्म शर्मभरचारु यतीव।[6]

शतपथ ब्राह्मण मे वर्णित धाय्या[7] की चर्चा करने के साथ-साथ नैषधकार ने ऐतरेय ब्राह्मण मे वर्णित तथ्य कि अग्निमुखा वै देवा." (देवों का मुख अग्नि है।)[8] का भी निर्देश (श्लेष बल से) किया है। स्वयवर सभा मे इन्द्रादि चारो देवता अपने मुख की नल मुख की शोभा से तुलना करने के लिए बार-बार दर्पण देख रहे थे, फिर भी उनका मुख नल मुख की शोभा नहीं प्राप्त कर सका। दूसरे शब्दो में नल मुख की शोभा प्राप्त करने मे असमर्थ उन अग्निमुख, अर्थात देवो का अनलाननत्व (अग्निमुखत्व, पक्षान्तर मे नल भिन्नमुखत्व) भी पुनरुक्ति दोष को दूर करने के लिए समर्थ नहीं हुआ।[9]

ब्राह्मण ग्रन्थों के साथ-साथ श्रौतसूत्रों एवं खिलसूक्तों के भी कुछ विवरण नैषधमहाकाव्य में देखने को मिलते हैं। आश्वलायन श्रौतसूत्र[10] के साथ-साथ श्रीहर्ष ने आपस्तम्बश्रौतसूत्र के "उत्ताना हि देवगवा

---

1 शिशुपाल वध, 16/29

2. ता वा अस्यैता हिता नाम नाड्यो यथा केश सहस्रधा भिन्नस्तावताणिम्ना तिष्ठति शुक्लस्य नीलस्य पिंगलस्य हरितस्य लोहितस्य पूर्णा अथ यदेव जाग्रदभयं पश्यति तदत्राविद्यया मन्यतेथ यत्र- सर्वस्मीतिमन्यते सोऽस्य परमोलोक । वृ0उ० 4/3/20
   – तद्वा अस्यैतदतिच्छन्दा अपहतपाप्माभयं रूपम्, तद्वा अस्यै तदाप्त काममात्मकाममकाम रूप शोकान्तरम्, वृ0उ० 4/3/21
   – अत्र पिताऽपिता भवति, तापसो तापसौनन्वागतं पुण्येनान्न्वागत पापेन तीर्णो हि तदा सर्वाञ्छोकान् हृदयस्य भवति। वृ0उ० 4/3/22
   – न हि द्रष्टुर्दृष्टेर्विरिलोको विद्यते विनशित्वात्। न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोन्यद् विभक्त यत्पश्येत्।। वृ0उ० 4/3/23

3. छा0 उपनिषद 6/6

4. नै० 1/117

5 विज्ञानमानन्दं ब्रह्म । वृ0 उप0 3/9/28, एव 4/3/32, 33
आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्- तै0 आरण्य, प्रपाठक, 9 अनुवाक 6 आनन्द ब्रह्मणो रूप । तै0 उ0 2/4 एव द्रष्टव्य तै0उप0 ब्रह्मानन्दवल्ली, अनुवाक, 5,9

6 नै० 5/8

7 इसी अध्याय में पूर्व में वर्णित

8 अग्निर्मुख प्रथमो देवातानाम – ऐतरेय ब्राह्मण, प्रथम अध्याय चतुर्थ खण्ड।

9 तेषा तदा लब्धमुनीश्वराणां श्रिय निजास्येन नलाननस्य। नाल तरीतुं पुनरुक्तिदोष बर्हिर्मुखानामनलाननत्वम्। नै० 10/21

10 इसी अध्याय में पूर्व में वर्णित

वहन्ति"[1] अर्थात् देवसुरभियॉं उत्तान (चित) चलती है, इस तथ्य का सङ्‌केत नैषधमहाकाव्य मे दो स्थलो पर मिलता है, प्रथम दमयन्ती के क्रीडा पर्वत के वर्णन मे, द्वितीय बाइसवे सर्ग मे दमयन्ती द्वारा चन्द्रवर्णन प्रसङ्‌ग मे। नैषधकार कहते है कि दमयन्ती के क्रीडापर्वत पर मरकत (पन्ना) मणियो के अग्रभाग से उत्पन्न (होकर ऊपर की ओर जाते हुए, किन्तु ऊपर मे स्थित) ब्रह्माण्ड के आघात (टक्कर) से ऊपर जाने के मद के भग्न होने से लज्जा से नम्रमुख हुए (अतएव) आकाश मे उत्तानगामिनी दिव्य कामधेनु के मुख मे प्रविष्ट किरण रूप कुश तृण (कुण्डिनपुरी के) गोग्रास देने के शाश्वत पुण्य को नहीं पाता है।[2] दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि मरकत मणि के बने दमयन्ती के अत्युन्नत क्रीडापर्वत की चोटी से कुशाओ के समान हरे रग की किरण ऊपर की ओर निकलती है किन्तु ब्रह्माण्ड के साथ टकराकर ऊपर नहीं जा सकने के कारण पुन नीचे की ओर लौटकर ऊपर आकाश मे उत्तान चलती हुई कामधेनु गाय के मुख मे प्रविष्ट होकर ऐसी प्रतीत होती है जैसे कि पुण्य लाभार्थ गायो को हरे कुशाओ का निरन्तर गोग्रास दिया जाता हो। सन्ध्यावर्णन प्रसग में दमयन्ती नल से कहती है कि चन्द्रमा का कलङ्क शशक श्वेत कुक्षिवाला होने से उत्तान (ऊपर-स्वर्ग की ओर मुख किया हुआ) ही है, इसी कारण देवों की गौ (कामधेनु) स्वर्ग मे उत्तान होकर (स्वर्ग की ओर मुख करने से भूलोकवासियो के लिए पृष्ठभाग को दिखलाती हुई) चलती है, इस प्रकार इस श्रुतिवाक्य प्रत्यक्ष प्रमाण से प्रमाणित होने के कारण, इसमे अब मुझे विशेष श्रद्धा हो गयी है।[3]

गगा यमुना के पवित्र सगम पर मृत्यु पाने वाले मनुष्य के बारे मे ऋग्वेद के खिलसूक्त मे वर्णन मिलता है कि जहॉं श्वेत (गगा) तथा श्याम (यमुना) नदियॉं मिलती हैं, वहॉं स्नान करने वाले को स्वर्ग की प्राप्ति होती है एव जो धीरजन वहॉं शरीर त्याग करते है, वे अमृतत्व को प्राप्त होते हैं।[4] इस तथ्य की सगति नैषध के बारहवे सर्ग मे सरस्वती द्वारा राजाओ के परिचय प्रसग मे राजा ऋतुपर्ण के विवरण मे द्रष्टव्य होती है, जिसमे सरस्वती कहती है कि इसके बाहुद्वय से उत्पन्न कीर्तिपरम्परा रूपी गगा जिस कारण से शत्रु की अकीर्तिरूपा यमुनानदी से संगत हुई उस कारण से प्रयाग के सगम की भॉंति (रणप्राङ्गण में सगत उक्त गगा यमुना के सगम स्थल मे) डूबकर अर्थात् मरकर क्षत्रिय शूरवीरो ने रम्भा (रम्भा नाम की स्वर्गीय अप्सरा) के आलिंगन के स्थान नन्दनवन में क्रीडा करने मे अत्यधिक आसक्ति को आरम्भ कर दिया था।[5] अर्थात् हे दमयन्ती! इस राजा ने अत्यधिक क्षत्रिय शूरवीरो को मारकर स्वर्ग पहुँचाया हैं, अतएव वीर इस ऋतुपर्ण राजा का वरण करे।

---

1. आपस्तम्बश्रौतसूत्र - 11/7/6
2. वैदर्भीकेलिशैले मरकतशिखरादुत्थितैरंशुदर्भैर्ब्रह्माण्डाघातभग्नस्यदजमदतया ह्रीधृतावाङ्मुखत्वै। कस्या नोत्तानगाया दिवि सुरसुरभेरास्यदेश गताग्रैर्यद्गोग्रास प्रदानव्रतसुकृतमविश्रान्त [illegible] स्म।। नै० 2/105
3. उत्तानमेवास्य वलक्षकुक्षि देवस्य युक्ति. शशमकङ्कमाह। तेनाधिक देवगवेष्वपि स्या श्रद्धालुरुत्तानगतौ श्रुतायाम्।। नै० 22/80
4. सितासिते सरितौ यत्र संगते तत्राप्लुतास्ते दिवमुत्पतन्ति। ये वै तत्व विसृजन्ति धीरास्ते जनासो अमृतत्व भजन्ते।।
   - ऋ० खिलसूक्त, मैक्समूलर द्वारा प्रकाशित, पुस्तक सख्या - 21
   - ऋ० 10/75/5, एव नै० 12/12 मल्लि0 टीका में भी द्रष्टव्य
   - यत्र गगा च यमुना यत्रप्राची सरस्वती।
   यत्रसोमेश्वरौ देवस्तत्र माममृत कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव।। ऋ 9/113/10 मैक्समूलर मुम्बापुणे आउफ्रेख्ट सातवलेकर द्वारा प्रकाशित, पुस्तक सख्या 16
   - तथा आश्वलायन मत्र सहिता- मुम्बा प्रकाशित, पुस्तक सख्या 378 तथा इण्डिया आफिस लिखित पुस्तक सख्या 379
5. द्वेष्याकीर्तिकलिन्द शैलसुतया नद्यास्य यद्दोर्द्वयी कीर्तिश्रेणिमयी समागमगमाद् गगा रणप्राङ्गणे। तत्तस्मिन् विनिमज्य बाहुजभटैरारम्भि रम्भापरी रम्भणनन्दनिकेतनन्दनवनक्रीडादराडम्बर।। नै० 12/12

नैषधमहाकाव्य मे वेदागो के विवरण भी कुण्डिनपुरीवर्णन, राजाओ के विवरण तथा सरस्वती वर्णन प्रसग मे द्रष्टव्य है। वास्तव मे वेदो के वास्तविक अर्थ के ज्ञान के लिए जिन साधनो की उपयोगिता थी, उन्हे वेदाग नाम दिया गया। इनके द्वारा मन्त्रो के अर्थ उनकी व्याख्या एव यज्ञादि मे उनके विनियोग का ज्ञान होता था। ये सूत्रशैली मे ही उपनिबद्ध है, हालाकि वैदिक कर्मकाण्ड, विनियोग एव यज्ञविधि आदि के नियम बहुत विस्तृत एव व्यापक थे। प्रारम्भ मे वेदाग स्वतत्र न होकर वेदाध्ययन के विशिष्ट अग या प्रकार थे लेकिन कालान्तर मे ये स्वतत्र विषयो के रूप मे उभर कर आये। मुण्डकोपनिषद्[1] एव पाणिनीय[2] शिक्षा मे इनकी सख्या छै मानी गयी है शिक्षा कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द एव ज्योतिष। यथा -

शिक्षा व्याकरण छन्दो निरुक्त ज्योतिष तथा। कल्पश्चेति षडङ्गानि वेदस्याहुर्मनीषिण।

नैषधकार ने वेदागो के एक अग शिक्षा की आचरणशास्त्र के रूप मे मीमासा की है क्योकि सरस्वती के वर्णन प्रसग मे वह कहते है कि शिक्षा शास्त्र ही उसका आचरण रूप था, 'शिक्षैव साक्षाच्चरित यदीय'[3] नारायण कहते है "यदीय चरितमाचरण वर्णाना स्थानोच्चारण बोधक नारदादि प्रणीत शिक्षैव पर्यणसीत् परिणतम्। यदीय चरितम् (इत्यर्थ:अथ) शिक्षैव[4] साक्षाल्लोकस्य हितोपदेश एवेत्यर्थ एव आचार्य मल्लिनाथ का कथन है कि "शिक्षा तदाख्यग्रन्थ एव साक्षात् स्वयमेव, यदीय चरितम् अभूत परोपदेशरुपत्वादिति भाव।'[5] तथा आचार्य सायण का मन्तव्य है कि, "स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारो यत्र शिक्ष्यते उपदिश्ते सा शिक्षा[6] अर्थात् जिसमे स्वर, वर्ण आदि के उच्चारण की शिक्षा दी जाती है, उसे शिक्षा कहते है। तैत्तरीय उपनिषद् मे शिक्षा के छै अगो का वर्णन मिलता है वर्ण, स्वर, मात्रा (स्वरो के उच्चारण मे लगने वाला समय) बल (वर्णों के उच्चारण मे होने वाले प्रयत्न तथा उनके उच्चारण स्थान को बल कहते हैं), साम (स्पष्ट एव सुस्वर से वर्णोच्चारण), सन्तान (पदपाठ मे प्रयुक्त शब्दो मे सन्धि नियमो का ज्ञान एव उनका यथा स्थान प्रयोग करना।)[7] पाणिनीय शिक्षा मे शिक्षा को वेद का प्राण बताने के साथ-साथ शिक्षा के प्रतिपाद्य विषयों यथा वर्णों, उनकी सख्या उच्चारण, प्रत्यत्न आदि पर विशेष विवरण देखने को मिलता है।[8] श्रीहर्ष ने भी कुण्डिनपुरी के वर्णन प्रसग मे शिक्षाशास्त्र की सम्पूर्ण विषय सामग्री का वर्णन करना चाहा है, वे कहते है कि जहॉ समस्त (अठारह) वर्ण[9] (ब्राह्मण आदि जातिया अथवा नील, पीत, हरित, आदि रग अथवा अकारादि वर्ण) मर्यादाशील हो वह नगरी चित्रमयी (आश्चर्यमयी या रग बिरंगी) क्यो न हो? जहॉ अनके मुख (वेदोच्चारणादि मे) शब्द करते हो वहॉ विभिन्न स्वर भेद क्या न हो?[10] स्पष्ट है कि यहॉ नैषधकार ने आचरण पर जोर डालने के साथ साथ शिक्षा की प्रतिपाद्य विषय सामगी स्वर ज्ञान, तथा उनके स्पष्ट उच्चारण की श्रेष्ठता एव उद्देश्य पर प्रकाश डालना चाहा है। शिक्षा का उद्देश्य भी वर्णोच्चारण की शिक्षा देना, वर्णों की सख्या उनका विभाजन, उनका उच्चारण किस स्थान से होना

---

1 तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेद सामवेदोऽथर्ववेद शिक्षा कल्पो व्याकरण निरुक्त छन्दो ज्योतिषमिति। मुण्डकोपउप0 1/1/5

2 छन्द पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते। ज्योतिषामयन चक्षुर्निरुक्त श्रोत्रमुच्यते।
शिक्षा घ्राण तु वेदस्य मुख व्याकरण स्मृतम्। तस्मात् सागमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते पाणिनीय शिक्षा श्लोक, 41,42

3 नै० 10/76

4 नै० 10/76 नारायण

5 नै० 10/76 मल्लिनाथ

6 ऋग्वेद भाष्य- सायण, पृष्ठ - 49

7 वर्ण , स्वर , मात्रा, बलम्, साम, सन्तान , इत्युक्त शीक्षाध्याय। तै0 उप0 1/2

8 पाणिनीय शिक्षा, श्लोक 3 से 49 तक

9 अष्टौ स्थानानि वर्णानामुर कण्ठ शिरस्तथा। जिह्वामूल च दन्ताश्च नासिकोष्ठौ च तालु च। पाणिनीय शिक्षा, श्लोक -13

10 स्थितिशालिसमस्तवर्णता न कथं चित्रमयी बिभर्तु या। स्वरभेदमुपैतु या कथ कलितानल्पमुखारवा न या।। नै0 2/98

चाहिए, उसमे क्या प्रयत्न करना पड़ता है, स्थान एव प्रयत्न कितने है, स्वर कितने एव कहाँ उच्चरित होते है? एव प्राणवायु किस प्रकार वर्ण रूप मे परिणित होती है, इन्हीं को उपदेशित करना है।[1] इस वेदाग के अनेक प्राचीन ग्रन्थो की सख्या 34 है,[2] परन्तु उनमे ऋग्वेद की पाणिनीय शिक्षा, शुक्ल यजुर्वेद की याज्ञवल्क्य शिक्षा, कृष्णयजुर्वेद की व्यास शिक्षा, सामवेद की नारद शिक्षा एव अथर्ववेद की माण्डूकी शिक्षा के अतिरिक्त भारद्वाजी शिक्षा, वशिष्ठीशिक्षा, कात्यायनी शिक्षा पाराशरी शिक्षा केशवी शिक्षा, आदि प्रमुख है, जिनमे पाणिनीय शिक्षा एव व्यास शिक्षा अध्ययन अध्यापन हेतु विशेष महत्वपूर्ण है। वेदो की प्रत्येक शाखा से सम्बद्ध होने के कारण इन शिक्षा ग्रन्थो को प्रातिशाख्य भी कहते है, प्रतिशाख्यो मे ऋग्वेद की शाकल शाखा का शौनकरचित ऋक् प्रतिशाख्य, शुक्लयजुर्वेद की माध्यन्दिन शाखा का कात्यायनरचितशुक्लयजु प्रातिशाख्य, कृष्ण यजुर्वेद की तैन्तरीय शाखा का तैत्तरीय प्रतिशाख्य, सामवेद के सामप्रातिशाख्य, पुष्पसूत्र एव पञ्चविधसूत्र तथा अथर्ववेद का अथर्वप्रातिशाख्य चातुरध्यायिका नाम से भी प्रसिद्ध है। ऐसा प्रतीत होता है कि वेदाग सहिता का विकास उपनिषदो से पहले ही प्रारम्भ हो चुका था, एव शिक्षा नामक वेदाग का सम्बन्ध ध्वनि, वर्ण, उच्चारण और इन आधारभूत तत्वों के पठनपाठन से था। एक वेदाग तथा एक विज्ञान (शास्त्र रूप में भी) के रूप मे शिक्षा का विकास प्राचीन भारत मे उच्चारण सम्बन्धी व्यापक, अनुसधान की गम्भीरता का परिमापक है, क्योकि इसी वेदाग के कारण ही आज समस्त देश मे वेद के एक शाखा के वेदापाठी, चाहे, जिस प्रान्त मे हो, एक ही स्वर, शैली गति, यति, शक्ति तथा हस्तसंचालन की एक जैसी मुद्रा से मन्त्रोच्चारण करते दिखते हैं, एव प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक उस परम्परा को अक्षुण्ण बनाये हुए है।

द्वितीय वेदाग कल्प को श्रीहर्ष ने सरस्वती के आभूषण रूप मे माना है, वे कहते हैं कि कल्प (वेदागभूत कर्मकाण्डप्रतिपादक ग्रथ विशेष) की शोभा से जिस सरस्वती का भूषण कार्य सम्पन्न हुआ, अर्थात् कल्प ही जिसका भूषण था, "कल्पश्रियाकल्पविधिर्यदीय"[3] आचार्य मल्लिनाथ का कथन है कि "यदीय आकल्पविधि प्रसाधनविधि कल्पश्रिया कर्मकाण्डभूतया कल्पसूत्रलक्ष्म्या निर्वृत्त इति शेष।"[4] तथा कल्प के बारे मे नारायण की टिप्पणी है कि, "कल्प इतिकर्त्तव्याबोधको ग्रन्थस्तस्य श्रिया कृत्वा यदीय आकल्पविधिरलंकारविधि: पर्यणंसीत् परिणतः। यदीयान्यलकरणानि कल्पेनैव रचितानीत्यर्थः।[5] आचार्य सायण ने कल्प की "कल्प्यते समर्थ्यते यागप्रयोगऽत्र इति व्युत्पत्तेः[6] रूप में एवं विष्णुमित्र ने "कल्पो वेदविहितानां कर्मणामानुपूर्व्येण कल्पना शास्त्रम्[7] रूप मे व्युत्पत्ति की है। इस रूप में कल्प का अर्थ यज्ञों, अन्य शास्त्रोक्त कर्मों तथा धार्मिक विधि विधानो मे करणीय कर्मो से लिया जा सकता है। कल्प के अर्न्तगत समस्त वैदिक कर्मों का व्यवस्थित रूप से वर्णन या प्रतिपादन होना है। चूँकि वैदिक धर्म, विहित क्रियाओ तथा यज्ञों पर आधारित है इसलिए समयानुसार इस कर्मकाण्ड की क्रमानुसार जानकारी आवश्यक हुई एव यही कारण है कि एक विशाल कल्पसूत्र साहित्य का उद्भव हुआ। कल्पसूत्र नाम, सम्पूर्ण कल्पसाहित्य के

---

1. आर्यमित्र का वेदांग प्रकाश अक 1968, पृ० 1-8 एव वेद और शिक्षा नामक डॉ कपिल देव द्विवेदी का लेख।
2. शिक्षा ग्रथो की सूची हेतु द्रष्टव्य - आर्यमित्र का वेदाग प्रकाश, सम्पादकीय, पृ० ज,झ । साथ ही "शिक्षा सग्रह" नामक ग्रंथ में 32 ग्रंथों का विवरण देखने को मिलता है।
3. शिक्षैव साक्षाच्चरित यदीय कल्पश्रियाकल्पविधिर्यदीय।
   यस्याः समस्तार्थनिरुक्तिरूपैनिरुक्तिविद्या खलु पर्यणासीत्।। नै० 10/76
4. नै० 10/76 में मल्लिनाथ
5. नै० 10/76 में नारायण
6. सायण- ऋग्वेद भाष्य की भूमिका, पृ० 51
7. विष्णु मित्र कृत ऋक प्रातिशाख्य की वृत्ति, पृ० 13

सूत्र शैली मे रचित होने के कारण दिया गया एव इसे चार भागो मे विभक्त किया गया है श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र एव शुल्बसूत्र। श्रौतसूत्र वेद विहित यज्ञों से सम्बन्धित है, गृह्यसूत्र गृहस्थ जीवन की विविध धार्मिक क्रियाओ एव जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त अनेक महत्वपूर्ण अवसरो पर होने वाले सस्कारो से तथा धर्मसूत्र नीति, धर्म, रीति, प्रथाओ, चारो आश्रमो के कर्त्तव्यो, सामाजिक राजनीतिक एव अन्य हितप्रद कर्तव्यो से और शुल्बसूत्र ज्यामिति, यज्ञवेदी सरचना तथा अन्य वास्तुकर्मों से सम्बन्धित है। प्रत्येक वेद के अलग अलग श्रौत, गृह्य, धर्म एवं शुल्ब सूत्र ग्रथो का विवरण वैदिक साहित्य मे मिलता है। प्रमुख श्रौतसूत्र ग्रथो मे ऋग्वेदीय आश्वलायन तथा शाखायन, शुक्लयजुर्वेदीय कात्यायन कृष्णयजुर्वेदीय बौधायन, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी या सत्याषाढ, वैखानस, भारद्वाज, मानव (मैत्रायणी शाखा से सम्बन्धित यह सूत्र ग्रथ मनुस्मृति का आधार माना जाता है), वाराह, सामवेदीय आर्षेय या मशक, लाट्यायन द्राह्यायण और जैमिनीय तथा अथर्ववेदीय वैतानश्रौतसूत्र प्रसिद्ध है। प्रमुख गृह्यसूत्रो मे ऋग्वेदीय आश्वलायन, शाखायन, शाम्भव्य एव कौशीतक, शुक्लयजुर्वेदीय पारस्कर, कृष्ण यजुर्वेदीय बौधायन, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, भारद्वाज, मानव, काठक, वैखानस सामवेदीय द्राह्यायण, गाभिल खादिर एव जैमिनीय और अथर्ववेदीय गृह्यसूत्र ग्रंथो मे कौशिक गृह्यसूत्र प्रसिद्ध है। धर्मसूत्र ग्रथो के अन्तर्गत ऋग्वेदीय वशिष्ठ और विष्णु धर्मसूत्र, शुक्ल यजुर्वेदीय हारीत और शख धर्मसूत्र, कृष्णयजुर्वेदीय बौधायन, आपस्तम्ब और हिरण्यकेशी तथा सामवेदीय गौतम धर्मसूत्र प्रसिद्ध है। साथ ही यह भी विवरण मिलता है कि गौतम वशिष्ठ मानव वैखानस और विष्णु धर्मसूत्र वेद की किसी निश्चित शाखा से सम्बन्धित नहीं है।[1] शुल्ब सूत्र ग्रन्थो मे शुक्लयजुर्वेदीय कात्यायन शुल्बसूत्र तथा कृष्ण यजुर्वेदीय बौधायन, आपस्तम्ब एव मानव शुल्बसूत्र आदि प्रमुख हैं।

नैषधकार ने वेदागो मे तृतीय "व्याकरण" का विशिष्ट विवरण भी नैषधमहाकाव्य मे दिया है, जिसका विवेचन पूर्व में व्याकरण शास्त्र के अन्तर्गत किया जा चुका है।[2] वेद के चतुर्थ अंग निरुक्त का भी सरस्वती के वर्णन प्रसंग में विवरण मिलता है जहॉ समस्त वस्तु विवेचनशास्त्र के रुप मे श्रीहर्ष ने निरुक्त को मान्यता प्रदान की यथा "यस्या समस्तार्थ निरुक्तिरूपै निरुक्तिविद्या खलु पर्यणंसीत्।"[3] आचार्य मल्लिनाथ की इस विषय मे टिप्पणी है कि "निरुक्तविद्या खलु एव यस्या समस्तार्थाना सर्ववेदार्थाना निरुक्तिरूपै निर्वचनभङ्गिभि, पर्यणसीत तद् रुपेण आसीदित्यर्थः।[4] तथा नारायण कहते है कि "यस्या समस्तार्थाना सकलाभिधेयाना निरुक्तिरूपै. निर्वचनस्वरूपै. कृत्वा वेदश्रोत्रस्थानीया निरुक्तिविद्या पर्यणसीत् परिणता।[5] और पाणिनीय शिक्षा में निरुक्त श्रोत्रमुच्चयते रूप मे निरुक्त की अवधारणा मिलती है। इस प्रकार निरुक्त वह वेदांग है जिसके द्वारा समस्त वेदों का अर्थ आसानी से जाना जा सकता है, क्योकि इसमें वैदिक शब्दों के निर्वचन की पद्धति दी गयी है। शायद इसीलिए इसे वैदार्थ पद्धति या नैरुक्त पद्धति कहा जाता है। यास्क (8वीं या 10वीं शताब्दी ईसापूर्व) कृत निरुक्त इस विषय का प्रामाणिक ग्रंथ है।[6] जो निघण्टु का भाष्य है। निघण्टु के रचनाकार कश्यप प्रजापति माने जाते है। निरुक्त के पॉच प्रमुख प्रतिपाद्य

1 वैदिक साहित्य - संक्षिप्त विहगावलोकन- किरीट जोशी राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान, सामयिक निबन्ध 2- पृ० 13
2 द्रष्टव्य - इसी शोधप्रबन्ध का व्याकरणशास्त्र नामक अध्याय
3 नै० 10/76
4 नै० 10/76 में मल्लिनाथ
5 नै० 10/76 में नारायण
6 जयन्द्र विद्यालकार- भारतीय इतिहास की रूपरेखा, भाग-1 पृ० 298

विषय है वर्णागम, वर्णविपर्यय, वर्णविकार, वर्णनाश और धातुओ के अनेक अर्थो मे प्रयोग[1] निरुक्त पर कई टीकाएँ हुई हैं किन्तु यास्क की टीका को वेदांग की प्रतिष्ठा प्रदान की गयी है। स्वय यास्क ने अपने पूर्ववर्ती 17 निरुक्तकारो यथा औदुम्बरायण गार्ग्य, शाकपूणि आदि का निरुक्त मे उल्लेख किया है। निरुक्त के अन्य प्राचीन टीकाकारो मे दुर्गाचार्य, स्कन्दस्वामिन् माहेश्वर, एव वररुचि प्रमुख है चूँकि निरुक्त ऐसे अनेक विषयो का निरुपण करता है, जो व्याकरण के अति समीप है, इसलिए बहुधा निरुक्त को व्याकरण का एक अग मान लिया जाता है, परन्तु स्वय यास्क ने निर्देश दिया है कि अवैयाकरण के लिए निरुक्त नहीं है "ना वैयाकरणाय", इससे यही प्रतीत होता है कि व्याकरण पर अधिकार होने के बाद ही निरुक्त का अध्ययन अध्यापन सभव है इस रूप मे निरुक्त व्याकरण से सम्बन्धित होते हुए भी वैदिक वाङ्गमय मे अपना अलग स्थान अक्षुण्ण किये हुए प्रतीत होता है। पाणिनीय शिक्षा मे कल्प को वेद के हाथ के रूप मे वर्णित होने के पीछे शायद यही अर्थ होगा, जिस प्रकार हम हाथ के माध्यम से किसी वस्तु को हस्तगत करते है, उसी प्रकार कल्प के अध्ययनान्तर ही हम वेदार्थ को समझ पाते हैं। इस रूप मे वेदागो मे इसके स्थान को नकारा नहीं जा सकता।

नैषधमहाकाव्य मे वेदागो मे पॉचवे, छन्द का विवरण भी नैषधकार ने सारस्वत के वर्णन प्रसग मे दसवे सर्ग में दिया है एव सरस्वती के भुजाओं के रूप मे उसकी परिगणना की है। वे कहते है कि मात्रिक तथा वार्णिक दो भेदो मे विभक्त छन्द शास्त्र जिसकी (सरस्वती की) दो भुजाऐं थीं एवं श्लोक के अर्ध मे विराम सदृश जिसकी दोनो गाठो को सुन्दर (लक्षणो वाली) सन्धि थी। दूसरे शब्द मे यह कहा जा सकता है कि श्लोक के आधे मे विश्राम (पूर्ण विराम) रूप दो ग्रथियो की सन्धि (जोड़) रूप सुन्दर चिह्न से युक्त तथा जाति (आर्या आदि मात्रा छन्द) तथा वृत्त (इन्द्रवज्रा, शिखरिणी आदि वर्णछन्द) रूप से दो भागो मे विभक्त छन्द (वेदागभूत छन्द शास्त्र नामक ग्रन्थ विशेष) उस सरस्वती की दो भुजा हुए अर्थात श्लोक के मध्य में विश्राम (पूर्ण यति) ही उस सरस्वती देवी की भुजा के कोहनी नामक बोड के जोड़ थे, इस प्रकार मात्रा तथा वर्ग के भेद से दो भागों में विभक्त छन्द शास्त्र ही उस सरस्वती के दोनों हाथ हुए।[2] पाणिनीय शिक्षा मे छन्द की वेद पुरुष के पैर रूप मे अवधारणा मिलती है, उसका आशय यह है कि जिस प्रकार पैरो के द्वारा ही पुरुष की गति एव स्थिति होती है, उसी प्रकार वेद छन्दो के आधार पर अक्षुण्ण रूप से स्थित हैं क्योकि समस्त वेद छन्दोमय हैं फलत. आधारभूत छन्दो का वेद का अंगभूत होना नितान्त उपयुक्त है। स्पष्ट है कि वेद मंत्रों की विशुद्धता एव उनकी लयगति के ज्ञानार्थ छन्दशास्त्र केअध्ययन की अनिवार्य आवश्यकता है, क्योंकि छन्दबद्ध रचित वेदमत्रो के उच्चारण की गतिविधि बिना छन्दशास्त्र का ज्ञान प्राप्त किये, नहीं जानी जा सकती। यास्क ने "छन्दासि छादनात्"[3] अर्थात भावो को आच्छादित करके समष्टि रूप प्रदान करने के रूप में छन्द की अवधारणा रखी, तो कात्यायन ने सर्वानुक्रमणी मे "यदक्षरपरिमाण तच्छन्दः") रूप से छन्द को परिभाषित किया। व्याकरण शास्त्र के परिप्रेक्ष्य मे तो छन्द शब्द की अनेक रूपो मे व्युत्पत्ति की जा सकती है। यथा-'छन्दयति पृणाति रोचते इति छन्द ।' [illegible] और श्रुतिप्रिय लयबद्ध

---

1 वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च, द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ।
धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पञ्चविध निरुक्तम्।। स०सा0 का समीक्षात्मक इतिहास कपिलदेव द्विवेदी , पृ 90 एव स०सा0 का इतिहास बहादुरचद छावड़ा, पृ० 187 से उद्धृत्

2 जात्या च वृत्तेन च भिद्यमान छन्दो भुजद्वन्द्वमभूद्यदीयम्।
श्लोकार्धविश्रान्तिमयीभविष्णुपर्वद्वयी सन्धि सुचिह्नमध्यम ।। नै० 10/77

3 निरुक्त 7/19

वाणी ही छन्द है,) 'छन्दयति आह्लादयति छन्द्यन्तेऽनेन वा छन्द' (जिस छन्द को सुनते ही मन आह्लादित हो जाता है वह छद है), ''छादयति मन्त्रप्रतिपाद्ययज्ञादीन् इति छन्द' (जो असुरो की विघ्नबाधाओं से यज्ञादि कर्मो की एव वैदिक अनुष्ठानो की (कवच रूप मे) रक्षा करता है वही छन्द है) । यास्क ने निरुक्त मे छद के इसी सुरक्षार्थक स्वरूप का वर्णन किया है। उनका मन्तव्य है कि मन्त्रो का विषय मनन, छन्दो का छादन, स्तोत्रो की स्तुति और यजुओ का भजन से है। यथा- ''मन्त्रा मननात् छन्दासि छादनात स्तोत्र स्तवनात् यजु यजते।[1] इस रूप मे छन्द की अनेक व्युत्पत्तिया तो की जा सकती है, परन्तु अवधेय तथ्य यह है कि छन्द वेदो या काव्यसाहित्य की आधार शिलास्वरूप है। अतएव छन्द का ज्ञान वेद तथा लोक दोनो के लिए आवश्यक है। इनका ज्ञान प्रत्यक वैदिक मन्त्र के उच्चारण तथा अर्थज्ञान के लिए नितान्त उपायोगी माना जाता है, आर्षेय ब्राह्मण[2] तथा तदनुसारी सर्वानुक्रमाणी में स्पष्ट प्रतिपादित है कि जो व्यक्ति मन्त्र के छन्द, ऋषि, देवता तथा ब्राह्मण बिना जाने यज्ञ करता है, पढाता है वह पापी होता है एव उसका सकल अनुष्ठान गड्ढे मे गिर जाता हे अर्थात् व्यर्थ हो जाता है।[3] इस रूप मे छन्द का आध्यात्मिक महत्व भी लोक जीवन धारियो के लिए आवश्यक प्रतीत होता है। इस शास्त्र के प्रवर्तक भगवान शिव माने जाते है तदनन्तर गुह-सनत्कुमार-देवगुरु वृहस्पति- इन्द्र -शेषनाग (रूपधारी पतञ्जलि)-एवं पिगल इस शास्त्र परम्परा के प्राचीन प्रवर्तक हुए।[4] परन्तु आचार्य पिगल का छन्दःशास्त्र (छन्दसूत्र) ही छ दशास्त्र का सर्वप्राचीन ग्रथ माना जाता है। इस शास्त्र के छन्दोऽनुशासन, छन्दोविवृत्ति, छन्दोमान आदिनाम भी मिलते है।[5] वैदिक छन्दो मे 7 मुख्य है, गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप वृहती, पक्ति, त्रिष्टुप, तथा जगती। ये सप्तछन्दासि के नाम से निर्दिष्ट किये जाते है।[6] चूकि ये छन्द वृत्तात्मक या वर्णवृत्त होते है अतएव इनमे प्रत्येक पाद मे वर्णों की सख्या निर्धारित होती है। छन्द शास्त्र सम्बन्धी विषय सामग्री शाखायन श्रौतसूत्र (केवल 7 से 27 मे) ऋग्प्रातिशाख्य (पटल 16 से 18 मे) सामवेद का निदानसूत्र, पिगल कृत छन्दसूत्र (के पूर्व भाग में वैदिक छन्दो एव उत्तर भाग मे लौकिक छन्दो का विवेचन है), कात्यायन कृत दो छन्दोऽनुक्रमणियाँ, पिगलनागछन्दोविचिति- भाष्यप्रणेता यादवप्रकारकृत, भास्करराय का छन्दःकौस्तुभ वृत्तचन्द्रोदय, पिगलसूत्र भाष्यराज, भरतकृत नाटयशास्त्र (15 16 वॉ अध्याय) जयदेवकृत जयदेवछन्द, जयकीर्ति कृत छन्दोऽनुशासन, केदारभट्ट कृत वृत्तरत्नाकर क्षेमेन्द्रकृत सुवृत्ततिलक, कालिदासकृत श्रुतबोध एव वृत्तरत्नावली, गगादास कृत छन्दोमजरी, जनाश्रयकृत छन्दोविचिति आदि सस्कृत ग्रंथ हैं। प्राकृत ग्रंथो में नन्दिताढ्यक कृत गाथा लक्षण, विरहाक कृत वृत्तजातिसमुच्चय स्वयभूकृत

---

1. स० सा0 का इतिहास बहादुर छद छाबड़ा, पृ० 192 से उद्धृत्
2. आर्षेय ब्राह्मण - 1/10
3. यो ह वा अविदितार्षेयच्छन्दोदैवतब्राह्मणेन मन्त्रेण या जयति याऽध्यापयति वा स्थाणु वर्च्छति गर्ते वा प्रपद्यते, प्र वा मीयते पापीयान भवति। मातया मान्यस्यच्छन्दासि भविन्त। दुर्ग की निरुक्त टीका तथ सर्वानुक्रमणि के आरम्भ से उद्धृत।
4. छन्दोज्ञानमिद भवाद् भगवतो लेभे गुरूणा गुरु न स्तस्माद् दुश्च्यवनस्ततोऽसुरगुरुमाण्डव्यनामा तत · माण्डव्यादपि सैतवस्तत ऋषिर्यास्करतत· पिगलस्तस्येद यशसा गुरोर्भुवि धृत प्राप्यास्मदाद्यै क्रमात्।।

   – छन्द शास्त्रमिद पुरा त्रिनयनाल् लेभे गुहोऽनादित स्तस्मात् प्राप सनत्कुमारकमुनिस्तस्मात् सुराणा गुरु। तस्माद् देवपतिस्ततः फणिपतिरतस्माच्च सत्पिगल स्तच्छिष्यैर्बहुभिर्महात्मभिरथो मह्या प्रतिष्ठापितम्।। युधिष्ठिर मीमासक कृत - वैदिक छन्दो मीमासा, पृ० 57, 59 से उद्धृत
5. युधिष्ठिर मीमासक -वैदिक छन्दोमीमासा - पृ० 35-42
6. सप्त छन्दासि चतुरुत्तराण्यन्योन्यस्मिनाध्यर्पितानि। अथर्व वेद 8/3/13

स्वयभू छन्द तथा हमेचन्द्र कृत छन्दोनुऽशासन प्राकृत एव अपभ्रश भाषाओ के छन्द विषयक प्रमुख ग्रथ है।[1] काव्य के साथ-साथ सगीतशास्त्र भी छन्दशास्त्र का अत्यधिक ऋणी है, क्योंकि बिना छन्दज्ञान के तो वह अस्तित्व विहीन ही हो जायेगा, और यह तो भलीभॉति ज्ञात है कि सामवेद की रचना गानपद्धति पर ही आधारित थी, एव वर्तमान मे भी जो काव्य रचनाएँ होती है वह भी छन्दज्ञान क बिना श्रेष्ठ रचनाएँ कथमपि सिद्ध नही हो सकती, इससे छन्द की प्राचीनता के साथ साथ समीचीनता भी सिद्ध होती है।

वेदागो मे अन्तिम ज्योतिष के विवरण भी नैषधमहाकाव्य मे प्राप्त होते है, जिसका विवेचन पूर्व मे ज्योतिषशास्त्र के अन्तर्गत किया जा चुका है।[2] वेदागो के साथ साथ उपवेद[3] के विवरण भी महाकाव्य मे दृष्टव्य है। यथा ऋग्वेद एव अथर्वेद दोनो का उपवेद आयुर्वेद है।[4] जिसका विवेचन पूर्व मे आयुर्वेदशास्त्र या चिकित्साशास्त्र के अन्तर्गत किया जा चुका है।[5] यजुर्वेद का उपवेद धनुर्वेद है, जिसके कुछ विवरण नैषधमहाकाव्य मे प्राप्त हैं एव उनका विवेचन भी पूर्व मे आयुधशास्त्र के अन्तर्गत किया गया है।[6] सामवेद का उपवेद गान्धर्ववेद है जिसके विवरण नैषधमहाकाव्य मे प्राप्त है, एव पूर्व मे इसी शोध प्रबन्ध के सगीत शास्त्र नामक अध्याय मे इसका भी विवेचन किया जा चुका है।[7] अथर्ववेद का उपवेद अर्थवेद है, जिसमे अर्थशास्त्र के साथ साथ राजनीतिशास्त्र, युद्ध शास्त्र और शिल्पशास्त्र का अन्तर्भाव होता है।[8] अर्थात् सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक व्ययस्थाओं का निरूपण अर्थवेद नामक उपवेद के अन्तर्गत देखने को मिलता है। नैषधकार ने तो अर्थशास्त्र सम्बन्धी विवेचन नैषध मे नहीं किया, हॉ राजनीतिशास्त्र, युद्ध शास्त्र एव शिल्पशास्त्र के विवरण इस महाकाव्य मे अवश्य दृष्टव्य है जिनका विवेचन पूर्व मे आयुधशास्त्र के अन्तर्गत किया गया है।[9] रही अर्थशास्त्र की बात तो इसमे सबसे प्रसिद्ध ग्रथ कौटिल्य का अर्थशास्त्र ही है। कौटिल्य से पूर्व भीष्म एव विदुर के विवेचन भी अर्थशास्त्र की विषय सामग्री हेतु महत्वपूर्ण हैं।

---

1 विस्तृत ग्रथ सूची हेतु द्रष्टव्य- सं० शास्त्रों का इतिहास बलदेव उपाध्याय, पृ० 283-319

2 द्रष्टव्य- इसी शोध प्रबन्ध का ज्योतिष शास्त्र नामक अध्याय

3 तत्रचत्वार. उपवेदाः -

1. आयुर्वेदः ऋग्वेदस्याथर्ववेदस्य चोपवेदः
2. धनुर्वेद : यजुर्वेदस्योपवेदः
3. गन्धर्ववेदः सामवेदस्योपवेदः
4. अर्थवेद : अथर्ववेदस्योपवेदः

शौनको हि चरणव्यूह ग्रन्थे तावदायुर्वेदस्य ऋग्वेदोपवेदत्व प्रतिपादयति। अपरे [illegible] ग्रन्था अस्याथर्ववेदोपवेदत्व प्रकटीकुर्वन्ति। अतोहि ग्रन्थप्रणेत्राऽत्रायुर्वेदस्य ऋगथर्ववेदयोरुपवेदत्वमुररीक्रियते।

4 चिकित्सासिद्धान्तप्रतिपादकस्यायुर्वेदस्य ऋगथर्वयोरन्यतरोपवेदत्व महर्षिभिनिर्णीतम् [illegible] सस्कृतवाङ्मयेषु प्रतनत्व निस्सदिग्धतया प्रमाणीभवति। अनाद्यपौरुषेयेषु वेदेषु विशेषतया ऋगथर्ववेदयोः [illegible] वेदसम्बन्धार्षग्रन्थेषु पार्थिव औदभिद् रासायनिक जलीय सौर्यवायवीय मानसिककादि विविधचिकित्साविधाना भेषज मन्त्र तन्त्र औषधादीना गदप्रतीकारक निवारक विनाशकचिकित्सोपाय दीनाञ्च सान्दर्भिक विवरण समुपलभ्यते।

– विशेष विवरण हेतु द्रष्टव्य - आर्चसहितायां 1/16, 1/19, 1/50, 1/89, 1/191, 2/15, 2/23, 10/37, 10/163, अथर्वसहितायां 1/3, 1/11, 2/31,32, 4/93, 5/23, 6/14, 6/25, 6/83, 6/92, 6/109, 6/127, 6/136, 7/122, 9/93, 19/35, एवं, सस्कृत वाङ्मयम् - डॉ0 हरिकृष्णशास्त्री पृ. 116 से उद्धृत।

5 द्रष्टव्य - इसी शोधप्रबन्ध का आयुर्वेदशास्त्र या चिकित्साशास्त्र नामक अध्याय।

6 द्रष्टव्य - इसी शोध प्रबन्ध का आयुधशास्त्र नामक अध्याय

7 इसी शोध प्रबन्ध का सगीतशास्त्र नामक अध्याय विशेष विवरण हेतु द्रष्टव्य सस्कृत वाङ्यम् क. गान्धर्ववेद नामक अध्याय, पृ० 144-163 एव प्रमुख ग्रंथों के विवरण हेतु द्रष्टव्य वही है, पृ० 163-167

8 अर्थवेदे- अर्थशास्त्र राजनीतिशास्त्र- युद्धशास्त्र शिल्पशास्त्रादीनामन्तर्भावो भवति - स सस्कृत वाङ्मयम् पृ० 115

9 द्रष्टव्य इसी शोध प्रबन्ध के आयुधशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, शिल्पशास्त्र एव धर्मशास्त्र नामक अध्याय

वेद वेदाग एव उपवेदो के साथ-साथ श्रीहर्ष ने इस महाकाव्य मे पुराण,[1] इतिहास (रामायण एव महाभारत)[2] सामाजिक रीति रिवाज से सम्बन्धित विवरण भी[3] अपने विवेचन का विषय बनाया है। अवधेय तथ्य यह है कि वेद को सम्यक रूप से समझने के लिए न केवल वेदाग बल्कि इतिहास और पुराणो का अध्ययन भी आवश्यक है। महाभारत और भागवतपुराण मे भी इस तथ्य की ओर स्पष्ट निर्देश किया गया है कि वेद के गूढार्थ को सरल और रोचक बनाने के लिए ये आख्यान (इतिहास पुराण) बनाये गये है। हालांकि वेद सबसे प्राचीन रचनाए है फिर भी पुराण को पुराण इसलिए कहा जाता है क्योकि इसमे अतिप्राचीन ज्ञान को स्थान मिलता है, परन्तु परम्परया पुराण ऐतिहासिक ग्रन्थ ही माने जाते है[4] न कि शास्त्रीय। दूसरे शब्दो में यह कह ले कि पुराण सुहृदवत् या मित्रसम्मित रूप मे लोकजीवन मे समादृत है, अतएव नैषध मे प्राप्त इनके विवरणो को विवेचन का विषय नहीं बनाया गया है।

उपसंहार

नि सदेह नैषधमहाकाव्य वृहत्त्रयी के अन्तर्गत परिगणित महाकाव्यों मे अन्तिम स्थान रखने वाला शृङ्गाररसोद्दीपक काव्य है, किन्तु इस काव्य रत्न को शास्त्रीय काव्य की पदवी से भी समलंकृत किया जा सकता है, क्योकि नैषधकार की नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का ही चमत्कार है कि जहाँ उन्होने इसमे विविध मनोहारिणी कल्पनाओं का सगुम्फन किया है, वहीं उन्होने विविध शास्त्रीय सदर्भों एव पुराणैतिहासिक तथ्यो का प्रसग रखकर लोक जीवन मे व्यवहरित नर नारियो को उन तथ्यो से भी परिचय कराने का प्रयास किया है। श्री एम. कृष्णमाचार्य महोदय का तो यहाँ तक मानना है कि सम्पूर्ण पुराण श्रीहर्ष की अंगुलियों पर नाचते हैं। (All mythology is at his fingetr's end). "नैषध विद्वदौषध" जैसी उक्ति का पूर्ण परिपाक भी "नैषधीयचरितम्" मे देखने को मिलता है। राजशेखर ने अपने ग्रन्थ काव्यमीमासा में विद्वान् कवियों के काव्य मे जिन बारह तत्त्वो की उपलब्धता पर जोर दिया है, यथा- "श्रुति स्मृति. इतिहासः पुराण, प्रमाणविद्या, समयविद्या, राजसिद्धान्तत्रयी, लोकः, विरचना, प्रकीर्णक च काव्यार्थाना द्वादश योनय." उन सभी का पोषण एवं पल्लवन श्रीहर्ष ने इस ग्रथ मे किया है। शायद इसीलिए डॉ. बूहलर महोदय ने नैषध महाकाव्य को सहज काव्य की संज्ञा देते हुए, इसमे उपलब्ध शास्त्रीय सदर्भों के विवरणो के आधार पर कालिदास से उच्चतर कवि माना है, वह कहते है" "To the purely native taste, the Naisadhiya appears now, and has appeared for many centuries, preferable to all the other

---

1 नैषध में प्राप्त पौराणिक प्रसंग हेतु द्रष्टव्य नैषधपरिशीलन- अध्याय 12 पुराणेतिहास पृ० 396-425 एव A Critical study of Naishadhiyacharitam - A N Jani, Chapt 11 Sriharsa,s Erudition - Pauranic stories

2. नैषध में प्राप्त विविध पर्वतों, नदियों, वृक्षों एव नरेशों के विवरण के साथ साथ ऋतु से सम्बन्धित ऋतुपरिवर्तन, हवाओं के विवरण आदि तथ्यों हेतु द्रष्टव्य - सर्ग 10 से 14 तक एव 19/18, 11/62, 18/118, 22/29, 1/94,96, 7/31, 16/107, 19/98, 1/89, 2/66, 3/46, 22/77, 9/96, 18/137, 17/188, 9/155, 22/99, 18/25, 11/96, 1/41, 114, 115, 2/58,89,
   – द्रष्टव्य Geographical Data, Histoarical and Political Data - by A N Jani, Chapt 13,14

3 विशेष रूप से द्रष्टव्य नैषध सर्ग 15,16,18,19 जिसमें आलेपन, विवाहादि वर्णन श्रृगार निरूपण एव भोजन वैविध्य तथा अर्चना सम्बन्धी तथ्यों हेतु द्रष्टव्य - Social and Religious Data - A N Jani, Chapt 15 तथा Sriharsa,s Erudition - General, Chapt 12

4. इतिहासपुराणाभ्या वेद समुपवृहयेत् - महाभारत 1/2/263
   – भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शित। भागवत पुराण 1/4/29
   – वेदार्थादधिक मन्ये पुराणार्थं वरानने। वेदा प्रतिष्ठिता सर्वे पुराणे नात्र सशय॥ नारदपुराण 2/24/17
   – अस्य महतोभूतस्य निःश्वसितमेतद् यद् ऋग्वेदोयजुर्वेदसामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहास पुराणम्। बृहदारण्यकोपनिषद्, 4/11/5
   – नाम वा ऋग्वेदो, यजुर्वेद , सामवेद , अथर्वश्चतुर्थ , इतिहास पुराणञ्च, पञ्चमो वेदाना वेद। छान्दोग्य उप 7/1/2, 7/1/4, 7/2/1
   – पुराणं सर्वशास्त्राण्यं प्रथमा ब्रह्मणा स्मृतम्। अनन्तरञ्च वक्त्रेभ्य वेदास्तस्य विनिर्गता॥ पद्मपुराण 53/3

Mahakavyas Our Sastris now study it more frequently and praise more highly then even Kalidasa,s work, and it has been commented on more frequently than any other poem डॉ० ए० एन० जानी महोदय भी नैषधमहाकाव्य को काव्यात्मक गुणो की बहुतायता से सम्पन्न होने के साथ ही इसे शास्त्रीय ग्रथ मानते है। वह लिखते है कि "Sriharsa exhibits, in his poem, a superabundance of poetic skil (sakti) and Erudition (vyutpatti) and hence his poem, which is a masterly specimen of the poetry of erudite oddity, surpasses all the other poems and hence it is rightly described as a sastrakavya "

"नैषधीयचरितम्" ने जिन शास्त्रीय सदर्भों के विवरण देखने को मिलते है, वे हैं दर्शनशास्त्र व्याकरणशास्त्र, काव्यशास्त्र, कामशास्त्र, सङ्गीतशास्त्र ज्योतिश्शास्त्र, सामुद्रिकशास्त्र रत्नशास्त्र, शकुन शास्त्र शिल्प शास्त्र वास्तुशास्त्र, पाकशास्त्र, अश्वशास्त्र, मन्त्रशास्त्र, आयुर्शास्त्र, चिकित्साशास्त्र, रसायनशास्त्र, प्राणिशास्त्र, भौतिकशास्त्र, गणितशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र एव वेद वेद न यथा सहिता ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, श्रौतसूत्र, धर्मसूत्र, गृह्यसूत्र, एव लिङ्ग आदि विभिन्न ग्रन्थो के विवरण, जिनका विवेचन पूर्व मे किया जा चुका है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मे "नामूल लिख्यते किञ्चित्" की मल्लिनाथी प्रतिज्ञा का, यथाशक्ति निर्वाह करते हुए ऐसा प्रयास किया गया है जिससे शास्त्र जिज्ञासुओ के लिए यह किञ्चित उपयोगी सिद्ध हो सके। सर्वप्रथम सस्कृत वाङ्मय मे उपलब्ध एकादश श्रीहर्ष की परम्परा मे एकादश रुद्र की तरह प्रतिभापण्डित श्रीहर्ष (मिश्र) को "नैषधीयचरितम्" महाकाव्य का रचयिता विभिन्न मता का उल्लेख करते हुए सिद्ध किया गया है। आज वर्तमान में भी नैषधकार के निवास स्थान (देश) एव उनके समय (कालावधि) के बारे में विद्वानो मे ऊहापोह की स्थिति ही दिखाई पडती है। जहॉ कुछ विद्वान् किवदन्तियो के माध्यम से श्रीहर्ष को कश्मीर निवासी मानते है, वहीं सास्कृतिक विवरणो का आधार मानकर उन्हे बगाल (गौडदेशीय) निवासी सिद्ध करने मे श्रीहरिसिद्धान्तवागीस भट्टाचार्य, प्रो० नीलकमलभट्टाचार्य, श्रीनलिनीनाथदास गुप्त, विद्यापति एव डॉ० अरुणोदयनटवरलाल जानी ने एडीचोटी का पसीना एक कर दिया, बात यहीं समाप्त नहीं हुई, कुछ विद्वान् श्रीहर्ष को कन्नौजवासी सिद्ध करने में अपनी मानसिक एव आत्मिक शान्ति को ढूँढ रहे थे, उनमे यदि डॉ० वात्त्वे अपनी स्वरचित पुस्तक "सस्कृत काव्यचे पञ्चप्राण" मे श्रीहर्ष का उल्लेख करके, एव प्रो० एमनेयू तथा श्रीरघुवर मिट्ठूलाल शास्त्री ने अपने अपने मत के आधार पर श्रीहर्ष को कन्नौजदेशवासी माना तो, वहीं डॉ० चण्डिका प्रसाद शुक्ल ने गुरु (श्रीरघुवर मिट्ठूलाल शास्त्री जी) भक्ति के प्रति श्रद्धासुमन अर्पित करते हुए आधारहीन अन्त एव बाह्य साक्ष्यो के आधार पर, मध्यदेश का सन्दर्भ रखते हुए श्रीहर्ष को कन्नौज (जन्मा) निवासी मान लिया। परन्तु प्रस्तुत शोधप्रबन्ध मे श्रीहर्ष को कश्मीर, बंगाल, एव कन्नौज निवासी मानने वाले विद्वानो की मान्यताओ का तर्कोपपन्न ढग से खण्डनकर मध्यदेश का विस्तृत विवरण देते हुए नैषधकार को काशी (वाराणसी) निवासी सिद्ध किया गया है।

श्रीहर्ष की कालावधि (स्थितिकाल) के बारे मे विद्वानो मे मतवैभिन्नता की स्थिति दृष्टिगोचर होती है। जस्टिस के.टी. तैलंग शास्त्री, एफ.एस. ग्राउस एव डॉ० बुल्हर ने श्रीहर्ष को १०वीं शताब्दी का माना, वहीं प्रो. बूहलर, बाबूरामदास सेन, तथा श्री पी एन पूर्णिया महोदय ने उन्हे बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का सिद्ध किया जब कि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में उपर्युक्त विद्वानो की भ्रान्तियो का तर्कपूर्ण ढग से निराकरण करते हुए साथ ही अनेकानेक ऐतिहासिक प्रमाणो का साक्ष्य रखते हुए, श्रीहर्ष का स्थितिकाल (समय) ११५४ ई. से १२०० ई० के बीच निर्धारित किया गया है। श्रीहर्ष के कृतित्व के बारे मे प्रबन्धकोश मे विवरण

मिलता हे उन्होने एक सौ से अधिक ग्रथो की रचना, की यद्यपि उनके ग्रन्थ. की सरांग नो दस ग्रथो के नाम मिलने का विवरण तो मिलता है किन्तु उपलब्ध ग्रथो मे दो ही प्राप्त होता है "नैषधीयचरितम्" एव "खण्डनखण्डखाद्य।"

मैने यावच्छक्य नैषध मे प्राप्त अविवेचित उपर्युक्त सभी शास्त्रीय सदर्भो का उनकी समीचीनता एव प्रासगिकता का निर्धारण करते हुए सारगर्भित मान्यताओं के साथ उनकी मीमासा करने की मानसी शक्ति सजोने का प्रयास किया है। प्रत्येक लेखक कवि या विद्वान् किसी सकल्प के तहत अपना परिवेश चुनता है, परन्तु इच्छा अनिच्छा के बीच उसे ऐसी परिस्थितियो के बीच जीना होता है, जो पहले से ही पूर्वनिर्धारित हैं, जिन पर उसका कोई वश नहीं चलता। वास्तव मे वह अपने परिवेश को नहीं चुनता बल्कि यह कह ले कि वह अपने परिवेश के द्वारा चुना जाता है। नैषधकार श्रीहर्ष पर भी उसी परिवेश का अप्रतिम प्रभाव पडा। उनके पिता श्रीहीरे जो अद्वैत वेदान्त के प्रसिद्ध विद्वान् थे, काशी की राजसभा मे उदयनाचार्य नाम के नैयायिक द्वारा पराजित होने पर अपने शिशु श्रीहर्ष से यह वचन लेकर कि वह उसके शत्रु को पराजित करेग, स्वर्गगमन कर गये। परिणामत. श्रीहर्ष ने पितृऋण से मुक्त होने के लिए नैयायिक विचारधारा का विशेष रूप से खण्डन किया एव अद्वैतवेदान्त का मण्डन, जिसका विवरण उनके ग्रथ खण्डनखण्डखाद्य मे देखे जा सकते है। "नैषधीयचरितम्" मे उन्होने सभी दर्शनो की विषयवस्तु को स्पर्श करने का प्रयास किया है जिसमे चार्वाक दर्शन को कलिप्रसंग मे श्रीहर्ष ने विशेष जगह दी है, भले ही वह परिहास रूप मे हो। बौद्ध दर्शन के अर्न्तगत विज्ञानवाद, शून्यवाद, साकारवाद (बाह्यानुमेयवाद), क्षणिकवाद तथा अनात्मवाद के विवरण देने के साथ-साथ उन्होने बौद्ध दर्शन के सस्थापक महात्मा बुद्ध की प्रशसा भी है। परन्तु नैषधकार ने जैनो की त्रिरत्नों की अवधारणा पर ही प्रकाश डाला है न कि उनके सिद्धान्तो यथा अनेकान्तवाद, स्याद्वाद क्षणिकवाद आदि तथ्यो पर। साख्य दर्शन मे यदि उन्होने सत्कार्यवाद की चर्चा की, तो योग दर्शन में चित्तभूमियों की चर्चा के साथ-साथ नल के अर्चना प्रसग में सम्प्रज्ञात समाधि की चर्चा करना वह नहीं भूले। न्याय वैशेषिक दर्शन के अनेक सिद्धान्तो यथा- समवायि, असमवायि एव निमित्तकारण की चर्चा हंस द्वारा दमयन्ती के सौन्दर्य वर्णन प्रसंग मे, अणु, परमाणु का विवरण अणुओं के संयोग की चर्चा, कार्य कारण सिद्धान्त का संकेत, प्रत्यक्ष ज्ञान एव सोलह पदार्थों का निरूपण, मोक्ष, ईश्वर, ईश्वर की सत्ता, हेत्वाभास, अयथार्थ ज्ञान, द्रव्य, गुण एव तमस आदि पदार्थों की चर्चा श्रीहर्ष ने विस्तार रूप से की है। साथ ही उन्होंने वैशेषिक दर्शन को औलूक दर्शन मानने की अपनी अभिव्यक्ति का प्रतिपादन भी नैषध मे किया है। मीमासा इस दर्शन के सस्थापक महर्षि जैमिनि का उल्लेख करने के साथ-साथ श्रीहर्ष ने स्वत प्रामाण्यवाद यज्ञो के विवरण, अख्यातिवाद, अदृष्ट एव कर्म सिद्धान्त तथा ईश्वर की सत्ता के परिहार के विवरण नैषध मे पिरोये है। उत्तरामीमासा या वेदान्त दर्शन के अन्तर्गत आत्मा, ब्रह्म, एव ब्रह्म साक्षात्कार पद्धति का विवेचना माया (अविद्या), मोक्ष, स्थूल तथा लिङ्ग शरीर, का विवरण समुपस्थापित कर नैषधकार ने कविपण्डित होने के साथ-साथ स्वय की श्रेष्ठ दार्शनिक होने की ससूचना देनी चाही है परन्तु उनके कथन "अद्वैततत्व इव सत्यतरेऽपि लोक नै० (१३/६५) और नैषध एव खण्डनखण्डखाद्य मे प्रतिपादित तथ्यो के आधार पर श्रीहर्ष सर्वथा अद्वैत वेदान्तानुयायी या उसके पोषक तथा समर्थक माने जा सकते हैं।

नैषध मे प्राप्त व्याकरणशास्त्रीय सदर्भों की मीमासा से यह ध्वनित होता है कि श्रीहर्ष ने भी पूर्व महाकवियों द्वारा काव्य मे व्याकरणिक तत्वो के संगुम्फन करने की परम्परा का ही निर्वहन किया है। विभक्ति, कारक, उपसर्ग, क्रियापद, धातुपद, प्रत्यय समास पातञ्जल्य भाष्य, लिङ्ग, आदेश एव पाणिनि की (अष्टाध्यायी) की चर्चा करते हुए भी नैषधकार ने वैयाकरणों को अपने शब्द निर्माण मे अभिमान न

करने की सलाह देते हुए लिखा है, व्याकरण से बढकर लोक सामान्य अधिक प्रभावशाली होता है, क्योकि शश से शशी (दोनो चन्द्रमा बोधक) लोक व्यवहार द्वारा ग्राह्य है किन्तु इसी प्रकार मे मृग का मृगी नहीं बन सकता, क्योकि मृगी मृगपत्नी का सूचक है । इस प्रकार नैषधकार ने व्याकरणशास्त्र तथा लोक के इस तारतम्य को दिखलाकर लोक को व्याकरण शास्त्र से अधिक प्रभावशाली माना है । स्मरणीय है कि श्रीहर्ष ने कुछ च्युत सस्कृत के दोषो एव नये शब्दों को गढने के साथ-साथ अपाणिनीय शब्दो का प्रयोग भी इस महाकाव्य मे किया है किन्तु किन्चित् दोषो से काव्य की कमनीयता नष्ट नहीं हो जाती । आचार्य विश्वनाथ भी कहते है "नहि कीटानुवेधादयो रत्नस्य रत्नत्व व्याहन्तुमीशा।"

काव्य शास्त्रीय सिद्वान्तो मे मुख्य रूप से छै सिद्वान्तो का पल्लवन की पुष्टि नैषधीयचरितम् मे देखने को मिलती है । रस सिद्वान्त के अन्तर्गत श्रृगार रस का पूर्ण परिपाक देखने को मिलता है, क्यो न हो? स्वय नैषधकार भी इस महाकाव्य को श्रृगारामृतशीतगु रूप देना चाहते थे । इसके साथ-साथ हस विलाप एव दमयन्ती विलाप प्रसग मे करुण रस, कलि प्रसग तथा नल दमयन्ती एव सखियों के वार्तालाप व प्रसग में हास्य रस, जबकि राजाओ के वर्णन प्रसग मे वीर रस के भी दर्शन होते हैं, रौद्र एवं भयानक विवरण राजाओ के वर्णन प्रसग एवं कलिवर्णन मे दृष्टव्य हे, परन्तु स्मरणीय है कि श्रीहर्ष ने इन दोनो रसो को न्यून रूप मे ही रखा है क्योकि वह अपने कथारस को अमृत रस से श्रेष्ठ बनाना चाहते थे। श्रीहर्ष के समय तक रीति सिद्वान्त के अन्तर्गत प्रमुख रूप से वैदर्भी गौडी, पान्चाली तीन रीतियॉं ही प्रधान थीं, जिसमें नैषधकार को सर्वगुणा वैदर्भी रीति ही अभिप्रेत थी, जो कि उनके कथन "धन्यासि वैदर्भिगुणैरुदारै" से स्पष्ट है, लेकिन नैषध के पंचनली प्रसग एवं इक्कीसवें तथा बाइसवे सर्ग में गौडी रीति के भी दर्शन होते हैं जिसकी पुष्टि नैषध के प्राचीन टीकाकार विद्याधर के कथन "विद्या सयति हर्षमिश्र पडितो गौडेरगौडैर्गुणै" से होती है । आचार्य भरत द्वारा व्याख्यायित १० गुणो मे नैषधकार ने त्रिगुणवाद की मान्यता की पुष्टि करते हुए माधुर्य, ओजस् एव प्रसाद गुण को ही नैषध मे जगह दी है। अलङ्कार सिद्वान्त के अन्तर्गत शब्दालकार, अर्थालकार तथा उभयालकारो मे श्रीहर्ष ने उपमा अलकार का सर्वांग रूप से विवेचन किया है, इसके अतिरिक्त उन्होने अनुप्रास, एव श्लेष अलकार के विवरण को भी नैषध महाकाव्य मे दिये हैं। ध्वनि सिद्वान्त के अन्तर्गत मुख्य रूप से तीन प्रकार की ध्वनियॉं परिगणित की जाती हैं, रसध्वनि, वस्तुध्वनि एव अलकार ध्वनि, जिसमें नैषधीय चरितम् महाकाव्य में वस्तुध्वनि रसध्वनि के साथ साथ आचार्य मम्मट द्वारा व्याख्यायित ध्वनि के ५१ भेदों मे पदध्वनि का विवरण भी प्राप्त होता है । वक्रोक्ति सिद्वान्त में परिगणित वक्रोक्ति के दोनों भेदों श्लेष वक्रोक्ति एव काकु वक्रोक्ति की शास्त्रीय मीमासा नैषध महाकाव्य में देखने को मिलती है । औचित्य सिद्वान्त के सदर्भ मे नैषधकार आचार्य क्षेमेन्द्र के साथ साथ आचार्य आनन्दवर्धन से भी प्रभावित दिखते हैं, उन्होंने स्वभावौचित्य, भावौचित्य, कालौचित्य, प्रतिभौचित्य, अभिप्रायौचित्य के विवरण भी इस महाकाव्य मे यथास्थान दिये हैं। नैषध की काव्य शास्त्रीय मीमासा के परिप्रेक्ष्य में यह कहा जा सकता है कि यह एक नवीन एव श्रृगारात्मक काव्य होने के साथ-साथ शास्त्रीय काव्य है किन्तु साहित्यिक अध्ययन के परिप्रेक्ष्य मे डॉ० एस०एन० दास गुप्त डॉ० एम० कृष्णमाचार्यर, एव एस०के० डे ने नैषधकार की क्लिष्ट भाषा एव विषयवस्तु में कल्पनाओ की ऊँची उडानो की भरमार होने के कारण नैषध महाकाव्य को निम्न काव्य या साधारण काव्य ही माना है, परन्तु शायद उनकी यह अलोचना नैषधकार की नवनवोन्मेष शालिनी प्रतिभा का अपमान करना होगा। फिर कवि तो अपने कल्पना जगत का सम्राट तो होता ही है एव उसका तर्क वितान नैयायिको के तर्क वितान से कहीं अधिक व्यावहारिक एव

लोकग्राही होता है। परन्तु यह तो यथार्थ सत्य है कि वैदुष्य का व्यामोह श्रीहर्ष को स्थान स्थान पर खीच ही लेता है, शायद यही कारण है कि नैषध क्लिष्टतम महाकाव्यो मे परिगणित किया जाता है।

श्री हर्ष ने कामशास्त्रीय तत्वो यथा त्रिवर्ग धर्म अर्थ, काम की विवेचना करते हुए इनमे समन्वय स्थापन के महत्व पर जोर दिया है । नैषधीयचरितम् मे जहॉ उन्होने हस को दूत बनाकर नल एव दमयन्ती का सम्मिलन करवाया है वहीं नल को भी देवताओ द्वारा बलातदूत नियुक्त करने का विवरण देकर यह सकेत देना चाहा है कि बलात् नियुक्त किये गये दूत का दौत्यकर्म सफल नहीं होता है। नैषध मे जिन कामशास्त्रीय तत्वो का विवरण विशिष्ट रूप मे देखने को मिलता है वे है नल एव दमयन्ती कृत विद्यासमुद्देश वर्णन, नागरक वर्णन, भवन विन्यास वर्णन, कन्दिनी यगल, दौत्यकर्म विमर्श विवरण, साम्प्रयोगिक विवरण जिसमे नल एव दमयन्ती द्वारा सम्भोगपूर्व कृत्यो यथा वर द्वारा वधू का विश्वास जीतना एव उसे अपने जीवन साथी की उम्र, उसकी सहनशीलता का अनुमान कर उसके साथ रति स्थापन करना, एक साथ स्खलित होने के लिए स्वय को इडा पिगला इत्यादि नाडियो का सयमन कर सम्भोगरत होना शामिल है, परन्तु इसके पूर्व नखच्छेद दन्तच्छेद एव आलिगन की विविध क्रियाओ को अपनाना एव अन्त मे हास परिहास के क्षण भी उपस्थित करना कामशास्त्रीय विधि मानी जाती है। नैषधकार ने नल एवं दमयन्ती द्वारा उपर्युक्त सभी कियाओ को अपनाने का विवरण दिया है, जो सर्वथा कामशास्त्रीय सीमाओ के अन्तर्गत ही आते है। परन्तु पाश्चात्य विद्वान ए०बी० कीथ, एम० कृष्णयाचार्यर तथा डॉ० एस०के० डे ने नैषध के कामशास्त्रीय विवरणो के साथ-साथ, कृत्रिम कल्पनाओ एव भाषा शैली को लक्ष्य लेकर श्रीहर्ष के इस काव्य को निम्न काव्य के अन्तर्गत मानते है। परन्तु सस्कृत वाङ्मय मे कामशास्त्रीय विवरणो को भारवि, माघ एव कालिदास ने भी अपने अपने काव्यो मे अपनाया ही है फिर इन विद्वानों द्वारा नैषध की ही आलोचना क्यो? इस विषय मे तो दो ही तथ्य मस्तिष्क मे उद्भकित होते है, प्रथम, इन विद्वानों के ऊपर या तो पूर्व महाकवियो की श्रेष्ठता मानने का जुनून सवार है और या तो इन विद्वानों की नैषध में अबोध गति न होने के कारण वह नैषध को निम्न श्रेणी का काव्य सिद्व करना चाह रहे हैं परन्तु इस संदर्भ में यास्क के शब्दों में यही कहा जा सकता है कि 'नैष स्थाणोरपराधो यदेनमन्धो न पश्यति।''

नैषधीयचरितम् महाकाव्य मे सगीतशास्त्र के तीनो तत्वो गीत वाद्य एव नृत्य के विवरण देखने को मिलते है। नल के राजप्रासाद में जहॉ श्रीहर्ष ने स्त्री पुरुषो के सामूहिक नृत्य के विवरण की चारुता का विवरण दिया है, वहीं उन्होने प्रकृति के नर्तकी रूप का चित्रण भी किया है। दमयन्ती के स्वयवर प्रसग मे गीतों के साथ साथ बारहवीं शताब्दी में प्रचलित प्रमुख वाद्यो यथा वीणा, मृदग, ढोलक, शहनाई, वशी, तुरही, कांस्यताल, झर्झर, घुघंरु, आदि के विवरण का उल्लेख नैषधकार ने किया है। नैषध में ज्योतिष शास्त्र के जिन सदर्भो को श्रीहर्ष ने अपनाया है वे है पापग्रह एव उनका फलवर्णन, तिथियों एव सूर्य तथा चन्द्रमा के सम्बन्ध का विवरण, नक्षत्रो का प्रभाव, राशियो के स्वामियो के विवरण एव उनके स्वरूप विवरण, जन्म के समय ग्रह सयोगो की युति एव उनका फल ललाटी योग, दुरुधरा योग, चन्द्रमा के शुभ होने एव अशुभ होने का विचार, विवाह मुहूर्त एव यात्रा विचार अष्टक वर्ग के विवरण। श्रीहर्ष के इस कथन से उनकी ज्योतिष में आस्था होने के दर्शन मिलते हैं कि, "जो होने वाला है, वह अवश्य होगा," एव इस रूप मे वह भाग्यवादी भी सिद्ध होते हैं। ग्रहो के अशुभ फल के निवारणार्थ रत्न धारण करने की सलाह ज्योतिर्विद सामान्य जन को देते आये है। नैषधीयचरितम् मे भी विभिन्न रत्नो के विवरण देखने को मिलते है उनमें वैदूर्यमणि, मोती, कौस्तुभमणि, स्फटिक, माणिक्य, हीरा, पद्मराग (पन्ना), पुखराज (पुष्पराज या

पुष्पराग), गारुत्मणि, इन्द्रनीलमणि या नीलम तथा मूगा प्रमुख है। साथ ही नैषधकार ने रत्नो के दोषो तथा (प्राकृतिक) वास्तविक एव कृत्रिम रत्नो एव रत्नो के गुण, दोषो की मीमासा भी नैषध मे की है। शकुनो को भी इस महाकाव्य मे नैषधकार ने जगह दी है वैसे शकुन सम्बन्धी विवरण ज्योतिश्शास्त्र के सहितास्कन्ध के अग रूप मे परिगणित किये जाते है। शकुन वे शुभ सूचक या अशुभ सूचक चिह्न या लक्षण है जो किसी कार्य के सम्बन्ध मे शुभ या अशुभ सूचना देते है। प्रस्थान काल मे मार्ग मे मिलते वाले जलपूर्ण कलश, फलयुक्त आम का पेड, शीत वायु का चलना, दर्पण देखना, लाजा गिराना, प्रियजन को मुख दर्शन, करिशावक दर्शन को शुभ सकुन एव विपरीत वायुका चलना व्याघ्र सर्प आदि का दर्शन, आसू गिराना, झींक होना जैसे अशुभ शकुनो का विवरण नैषध मे मिलता है। सामान्यत पुरुषो के दाहिने अग यथा भुजा, नेत्र आदि का फडकना शुभ तथा स्त्रियो का बामाग स्पन्दन शुभ माना जाता है। नल एव दमयन्ती को शुभ शकुनो का दर्शन कराकर श्रीहर्ष ने स्वय की शकुनशास्त्रविद होने की भी मीमासा जनसामान्य के सामने रखी है।

नैषध मे सामुद्रिक शास्त्र सम्बन्धी विवरण को भी श्रीहर्ष ने नल एव दमयन्ती के वर्णन प्रसग मे अपनाया है। सामुद्रिक विद्या के माध्यम से पुरुष एव स्त्री के हाथ, पैर, ललाट शिर तथा सम्पूर्ण शरीर की आकृति या उस मे स्थित चिह्नो एवं रेखाओ आदि से उनके सम्पूर्ण जीवन के बारे मे विचार किया जाता है। सामुद्रिक शास्त्र का केन्द्र बिन्दु "धन्यापितृमुखी कन्या धन्या मातृमुखे [illegible]" है एव [illegible]मुखेन तथा राजाओं द्वारा नल एव दमयन्ती के शरीर की सुन्दरता का जो विवरण नैषध मे प्राप्त होता है, उससे दोनो सर्वांग सुन्दर, एव भाग्यशाली सिद्ध होते है, जिससे बृहत्संहिता के "यत्राकृतिस्तत्र गुणा भवन्ति" एव अग्निपुराण के वाक्य यत्राकारस्ततो गुणा, की पुष्टि भी होती दिखायी पडती है। शिल्पशास्त्र एवं वास्तुशास्त्र के सदर्भ न्यूनमात्रा मे ही नैषध मे दिखायी पडते हैं, जो नल एव दमयन्ती तथा भीम के राजप्रसाद वर्णन कुण्डिनपुरवासियों द्वारा विभिन्न आलेपनों, द्वार सज्जा तथा मण्डप सज्जा के साथ साथ नल एवं दमयन्ती को वर वधू रूप मे सवारने के प्रसग में दृष्टिगोचर होते हैं। नैषध महाकाव्य मे धर्मशास्त्रीय विवरण प्रभूत मात्रा में नल की देवार्चना एव दान प्रसग, नल दमयन्ती के विवाह प्रसग एवं देवताओ के वार्तालाप प्रसग में प्राप्त होते हैं। नैषधकार ने विभिन्न यज्ञो के विवरण, वेद उपनिषद आरण्यक पुराण गीता धर्मसूत्र गृह्यसूत्र एवं विभिन्न खिलसूक्तों के विषयो की अन्विति कर धर्म अर्थ एव काम मे परस्पर सम्बन्ध दिखलाते हुए धर्म को सर्वोपरि माना है। जिसकी पुष्टि नल के कथन से होती है जब वह रति उन्मत्ता दमयन्ती से कहते हैं कि "तुम कुछ क्षण सखियो से वार्तालाप करो एवं तब तक जिस पुण्यफल के प्रताप से मैने तुम्हें प्राप्त किया है उस देवार्चना की क्रिया को सम्पन्न कर लूॅं।" इन्द्रादिदेवगणों ने ~~देवता~~ तो नल की भक्ति के शताशमात्र से धर्म, अर्थ, काम मोक्ष चारो पदार्थ सुलभ बताया है। दमयन्ती भी देवाराधना पश्चात ही नल को प्राप्त कर सकी। इससे नल एव दमयन्ती दोनो की धर्म मे आस्था सिद्ध होती है। स्वयं नैषधकार भी भगवान अर्धनारीश्वर के अनन्य भक्त थे। साथ ही जीवन के अनेक पहलुओ तथा समस्याओ यथा जीवन की क्षणभगुरता, गृहस्थाश्रम, सतीत्व, प्रेम भावना, भक्ति दयालुता आदि पर भी श्रीहर्ष ने अपने महनीय विचार नैषध महाकाव्य मे प्रस्तुत किये हैं जो हस विवरण एव दमयन्ती वर्णन प्रसग में प्राप्त होते हैं, धर्म शास्त्र के तीनों स्कन्धों यज्ञ, अध्ययन एव दान के विवरण श्रीहर्ष ने इस महनीय काव्य मे समुपस्थित किया है देवों के प्रति नल दमयन्ती का समर्पण उनकी धर्म मे आस्था का प्रमाण माना जा सकता है। नैषध मे प्राप्त सम्पूर्ण धर्मशास्त्रीय विवरणो को यदि एकत्र किया जाय तो वह एक लघु धर्मशास्त्रीय ग्रंथ का रूप बन सकता है।

नैषधीयचरितम् मे पाकशास्त्रीय सदर्भों के विवरण भी आंशिक रूप से कुण्डिनपुर मे बारात भोजन प्रसग एव निषधदेश मे नल के भोजन प्रसग मे प्राप्त होते है। तत्कालीन बारहवी शताब्दी मे भी पाककर्म निपुण रसोइयो के होने की मीमासा श्रीहर्ष के उस कथन से उद्घृत की जा सकती है, जहाँ वह कहते है कि चतुर रसोइयो ने भोज्य सामग्री का इस विधि से निर्माण किया था। जिसमे बारातियो को सामिष पदार्थ निरीमिष एव निरमिष भोज्य पदार्थों मे सामिष भोज्य पदार्थों का स्वाद मिल रहा था। स्वय नल भी ~~फिर नल को~~ पाक शास्त्र विद थे, क्योकि उन्हे देवताओ से भी मनोनुकूल सुस्वादु भोजन निर्माण का वर मिला था, जिसकी पुष्टि नैषध एव महाभारत दोनो से होती है हाँ, यह तथ्य अवश्य स्मरणीय है कि श्रीहर्ष ने, किस व्यञ्जन को कैसे बनाया जाय? उनके निर्माण मे सामग्री का अनुपात या परिमाण क्या है, इसका विवरण उपलब्ध नहीं किया है इसका कारण शायद ग्रथ विस्तार का भय रहा हो। अश्वशास्त्र के विवरण भी नल के विहार गमन प्रसग एव नल दमयन्ती स्वयवर प्रसग मे प्राप्त होते है, जिसमे अश्वो की आकृति, उनकी गति एव उत्पत्ति का विवरण रखते हुए नैषधकार ने सिन्धुदेशोद्भव धवलाकृति अश्वो को श्रेष्ठ माना है। अश्व हृदय दूसरो (अपने स्वामियो) के मन की बात जानने मे दक्ष होता है, साथ ही नल भी कुशल अश्वशास्त्रविद् थे, इसकी पुष्टि नैषध एवं महाभारत दोनो से होती है।

आयुधशास्त्र के किञ्चित् विवरण भी नैषध महाकाव्य मे संग्रथित है। जिनमे शास्त्रायुधो के अन्तर्गत कृपाण, तलवार, उनके रख रखाव के विवरण, कटार, खुखुरी, छुरी, नखाकुश, फरसा, मुदगर, गदा एव अस्त्रायुधो के अन्तर्गत धनुषबाण, उत्क्रान्तिदा नाम अस्त्र, शतघ्नी तोप, के विवरण के साथ धनुष के प्रयुक्त बास की मीमासा या परीक्षण, धनुषों के विविध प्रकार तथा शरोपासन वेदिका का उल्लेख करके श्रीहर्ष ने इस शास्त्र के बारहवीं शताब्दी में प्रचलन होने का सकेत किया है। चिकित्साशास्त्र के अन्तर्गत सक्रामक रोग, पाण्डुरोग, सन्निपात, मूर्च्छा रतौधीं सर्पदश तथा इनके निवारणार्थ विभिन्न औषधियों यथा सजीवनी कमलपत्र, विशल्या औषधि तथा चरक सुश्रुत आदि ऋषियों का विवरण देने के साथ साथ रोगियो को अपथ्य सेवन करने की सलाह देते हुए, द्रोणगिरि को जड़ी बूटियों का आगार एव चन्द्रमा को ओषधिपति की सज्ञा श्रीहर्ष ने दी है। साथ ही उन्होने स्वय की इस शास्त्र के विषय मे अपनी सम्मति भी दी है कि चिकित्सा से रोगों से निजात तो पाया जा सकता है किन्तु अन्तिम व्याधि मृत्यु से नहीं। भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र प्राणिशास्त्र एवं गणितशास्त्र के संदर्भ नैषध मे नाममात्र का ही देखने को मिलते है। हॉ मन्त्रशास्त्र के विवरण प्रभूतमात्रा मे अवश्य प्राप्त होते हैं। इससे प्रतीत होता है कि बारहवीं शताब्दी का समाज इस विद्या से अवश्यमेव प्रभावित रहा होगा, क्योकि स्वय श्रीहर्ष ने त्रिपुरा देवी की आराधना पश्चात् अमोघ ज्ञानराशि प्राप्त किये थे। नल कृत देवार्चना प्रसग, नल दमयन्ती परिणय मे प्रयुक्त मे मत्रोच्चारण के साथ साथ विभिन्न यज्ञों के सम्पादन मे भी मन्त्रशास्त्र की प्राचीनता एव वर्तमान मे भी यज्ञो के सम्पन्न होने मे मन्त्रशास्त्र की समीचीनता मानी जा सकती हैं। नैषध मे कुण्डिनपुर मे ऐन्द्र जालिको के कृत्य, के वर्णन के साथ-साथ एव चतुर्दशी तिथियो को गुप्त सिद्ध वालो बताया गया है। स्वय श्रीहर्ष ने अपने ग्रथ नैषधमहाकाव्य को चिन्तामणि मत्र की आराधना का फल माना है, एव नल द्वारा दमयन्ती की सखियों को हास परिहास प्रसग में अचानक अजुलि मे जल भर कर भिगो देना उनकी मत्रशास्त्र मे दक्षता का प्रमाण माना जा सकता है। राजनीति शास्त्र के अन्तर्गत साम, दान, दण्ड, भेद, चतुर्विध नीतियो के विवरण का प्रतिपादन हस दमयन्ती सवाद, राजाओ का वर्णन देव कलि सवाद, प्रसग मे नैषधमहाकाव्य मे देखने को मिलते हैं साथ ही गुप्तचर रखने कमजोर शत्रु की भी उपेक्षा न करने अपने विषय मे जानकार

दूसरे व्यक्ति से विरोध न करने एव आर्जव कुटिलेषु न नीति जैसी नीति अपनाने की राजनीतिज्ञो को नैषधकार ने सलाह भी दी है।

उपर्युक्त तथ्यो के साथ साथ श्रीहर्ष ने वेद वेदाड्गो के तथ्यो का भी नैषध महाकाव्य मे पिरोया है। नल को चतुर्दश विद्याओ मे पारगत बताते हुए नैषधकार ने जहाँ सरस्वती के शरीर सौन्दर्य वर्णन मे ऋग्वेद, यजुर्वेद, एव सामवेद की चर्चा की वहीं अथर्ववेद मे जादू, टोना इत्यादि का विशद वर्णन मिलने के कारण उसे श्यामवर्ण का माना। चारो वेदो की शाखाओ की संख्या जहॉ श्रीहर्ष ने एक सहस्र निर्धारित की वहीं आज केवल सोलह शाखाओ के प्राप्त होने की विवक्षा प्राप्त होती है। वेदो के उच्चारण की स्पष्टता पर बल देते हुए तथा उदात्त अनुदात्त तथा स्वरित का विवरण रखकर उनके स्थान निर्धारण का प्रयास भी महाकाव्यकार ने किया है। नैषध महाकाव्य के रविरुचिरृचमोकारेषु रजुराभलब्धिता (१९/७) जैसे श्लोक मे महाकवि की कल्पनाओं से ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवत वे कृष्णयजुर्वेद की मैत्रायणी सहिता तथा काठक संहिता को मानने वाले थे क्योकि उदात्त स्वर का सीधी रेखा द्वारा चिह्नित किये जाने का विवरण इन्हीं दोनों सहिताओ मे प्राप्त होता है। श्रीहर्ष ने वेद ब्राह्मण, आरण्यक तथा विभिन्न उपनिषदो की विषय सामग्री का प्रतिपादन करते हुए सामधेनी मत्र, धाय्या, अघनर्षण सूक्त, जप वर्णन विधि, आत्मदर्शन विधि वर्णन, मोक्ष, तत्त्वमसि का सदर्भ, लोक परलोक की मीमासा तर्पण श्राद्ध एव विभिन्न यज्ञो यथा सौत्रामिणी, सर्वमेघ ब्राह्मसाम अग्निष्टोम पौर्णमास सोम, सर्वस्वार महाव्रत अश्वमेध यज्ञ के विवरण उपलब्ध कराने के साथ साथ आपस्तम्ब श्रौतसूत्र, आश्वलायन श्रौतसूत्र के विवरण तथा सरस्वती वर्ण प्रसग मे शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छद ज्योतिष आदि षड् वेदागो के सन्दर्भ भी नैषधमहाकाव्य मे दिया है। इस रूप में नैषधकार को कवि पडित नरभारती तथा कला सर्वज्ञ जैसी उपाधियो से अलकृत करना ही उचित एव न्यायसंगत होगा, तथा "नैषधीयचरितम्" महाकाव्य को शृगाररसवर्षी एव शास्त्रीय काव्य। नैषध के प्राचीन टीकाकार आचार्य विद्याधर की उक्ति श्री हर्ष के व्यक्तित्व के विषय मे बिल्कुल सटीक बैठती है जहॉ वह कहते है-

अष्टौ व्याकरणानि तर्कनिवह साहित्यसारो नयो
वेदार्थावगति पुराणपठितिर्यस्यान्यशास्त्राणि
नित्य स्यु स्फुरितार्थदीपविहताज्ञानान्धकाराण्य सौ
व्याख्यातुं प्रभवत्यमुं सुविषमं सर्गं सुधी कोविदः

एवं नैषधीय चरितम् महाकाव्य के यथार्थवलोकन के सदर्भ मे आचार्य गदाधर का निम्न कथन सटीक माना जा सकता है।

काव्ये नैषधनाम्नि धाम्नि सुबृहत्यर्थस्य मुक्ताम्बुधे
भावान् दूरनिगूहितान् कथमह सर्वान् प्रभातुं क्षमः
एतस्मिन् द्युतिमन्ति सन्ति सुबहून्येतानि मध्ये भुवः
साकल्येन लभेत कोऽपि खनिता वज्राणि वज्राकरे।।

अन्त में "नैषधीयचरितम् मे उपलब्ध शास्त्रीय सन्दर्भों की मीमासा' के परिप्रेक्ष्य मे यह अभिहित किया जा सकता है कि बारहवीं शताब्दी के महान विद्वान् श्रीहर्ष ने इस ग्रथ मे लगभग सम्पूर्ण शास्त्रो, के विवरणों को अपनी लेखनी मे समेटा है, एव जिन जिन शास्त्रों की मीमासा नैषध मे प्राप्त होती है, वर्तमान में उनकी प्रासङ्गिकता तथा समीचीनता विद्यमान है, जिसकी भी पुष्टि वर्तमान में लोकजीवन में व्यवहरित नरनारियों द्वारा किसी न किसी रूप मे इन शास्त्रो के अपनाये

जाने से की जा सकती है और यह तो यथार्थ सत्य है कि नैषध महाकाव्य विदग्ध जनो के लिए है, सामान्य जन के लिए नहीं एवं इस ग्रथ मे वितर्णित शास्त्रीय तथ्यो का अवगाहन भी वही जन कर सकते है, जो विनम्रता के साथ गुरुचरणो मे बैठकर, उनके माध्यम से इस ग्रथ की शास्त्रसमन्वित दुरुह ग्रथियो को सुलझाकार, शास्त्राम्भो निधि सदृश इस महाकाव्य की रसोर्मियो मे गोता लगाकर आनन्दानुभूति के अभिलाषी हो, परन्तु इसके लिए अभिलाषी जन मे धैर्य, स्थिरचेतना गुरुकृपा एव इस ग्रथ के अध्ययन की उत्कट अभिरुचि का होना नितान्त अपेक्षित है। नि सदेह ''नैषधीयचरितम्' महाकाव्य शास्त्रीय विवरणो या सन्दर्भों से ठसाठस भरा हुआ एक मनोरम काव्य मजूषा है। तथापि मेरी अन्तिम अभीप्सा यही है कि परीक्ष्य मद्वचो ग्राह्य, भिक्षवो न, तु गौरवात्।"

"इति शुभम्"

सहायक ग्रंथ सूची

सहायक ग्रंथ सूची

संस्कृत एवं हिन्दी ग्रंथ

1 अग्निपुराणम् श्रीमन्महर्षिकृष्णद्वैपायनव्यास विरचितम्, गुरुमण्डलग्रन्थमालाया राष्ट्रदशपुष्पम् - मनसुखरायमोर 5, क्वाइव रो, कलकत्ता, सन् 1957

2 अभिनवभारती - अभिनव गुप्त, गायकवाड़ ओरियन्टल सिरीज

3 अमरकोष श्री अमर सिह विरचित रामाश्रमी टीका सहित - निर्णय सागर प्रेस, बम्बई

4 अद्वैत वेदान्त- इतिहास तथा सिद्धान्त, डॉ० राममूर्ति शर्मा, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली द्वितीय सस्करण 1987

5 अलकार शास्त्र का इतिहास - डॉ० कृष्ण कुमार, साहित्य भण्डार, मेरठ, सन् 1975

6 उपनिषदों की भूमिका- डॉ० राधाकृष्णन (The Introduction to the Principal upnishads) अनुवादक - गानाथ शास्त्री, राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट दिल्ली, चौथा सस्करण, 1981

7 कला विवेचन - डॉ० विमल कुमार, भारती भवन पटना, सन् 1968

8 काव्यशास्त्र - भागीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1975

9. काव्यशास्त्र - सम्पादक- डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, भारती साहित्य मदिर, दिल्ली

10. ऋषिकल्पन्यास - प्रकाशक - भारती परिषद् प्रयाग, प्रकाशन, 1970

11 अथर्ववेद भाष्यम् - काण्ड 1-13, सम्पादक एव लेखक प्रो० विश्वनाथ विद्यालकार

12 ईशोपनिषद् श्रीसातवलेकर, भारत मुद्रणालय, आनन्दाश्रम, पारडी (सूरत), सस्करण चतुर्थ, सवन् 2006

13 ऐतरेय ब्राह्मण - आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना, 1931

14. ऐतरेय ब्राह्मण- प्रथमभाग, सम्पादक-सुधाकर मालवीय, प्राच्य भारती ग्रथमाला- 4 सस्करण 1980

15 ऋग्वेद सहिता- भाष्यकार, सायण - आनन्द आश्रम मुद्रणालय पूना प्रथम सस्करण 1943

16. यजुर्वेद सहिता - भाष्यकार- दयानन्द, दयानन्द सस्थान, नई दिल्ली प्रथम सस्करण, 1974

17. सामवेद - भाष्यकार श्रीराम शर्मा, चौखम्भा ओरियन्टलिया वाराणसी, प्रथम सस्करण - 1964

18 अथर्ववेद सहिता-भाष्यकार-सायण, चौखम्भा ओरिन्टालिया, वाराणसी, प्रथम सस्करण 1964

19. आपस्तम्ब धर्म सूत्र - चौखम्भा सस्कृत सिरीज, वाराणसी, 1969

20 अभिनव भारती (अभिनवगुप्त)- हिन्दी व्याख्याकार एव सम्पादक - डॉ० नगेन्द्र, हिन्दी विभाग, दिल्ली, विश्व विद्यालय, द्वितीय सस्करण, 1973

21 अभिधावृत्तिमातृका - (राजानक मुकुलभट्ट प्रणीत), हिन्दी व्याख्याकार - डॉ० रेवा प्रसाद द्विवेदी, विद्या भवन संस्कृत ग्रन्थमाला 165, 1973 ई०

22 अभिनव भारती (हिन्दी)- अभिनव गुप्तपादाचार्य विरचित नाट्यशास्त्र विवृत्ति के तीन अध्याय - प्रथम, द्वितीय, तथा षष्ठ, अभिनवभारती सञ्जीवन भाष्य, -सम्पादक डॉ० नगेन्द्र एव आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि - प्रकाशक हिन्दी विभाग, दिल्ली वि0वि0 दिल्ली, प्रथम सस्करण -1960

23. अलंकार सर्वस्वम् (राजानक रुय्यककृतम) जयरथकृतया टीकारान्वितम् सम्पादक - डॉ० गिरिजा प्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक- पाण्डुराग जावजी, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1939 (काव्यमाला -35)

24 अलकार कौस्तुभ, (विश्वेश्वर पण्डित कृत)-सम्पादक, महामहोपाध्याय पण्डित शिवदत्त, तुकाराम जावजी, निर्णय सागर प्रेस बम्बई, 1898, (काव्यमाला-66)

25 अलकार शेखर - (केशव मिश्र प्रणीत) -सम्पादक - शिवदत्त, निर्णय सागर प्रेस, [illegible] 1895

26 अलकार प्रदीप-(विश्वेश्वर पण्डित रचित)-सपादक - विष्णुप्रसाद भण्डारी - हरिदास सस्कृत ग्रन्थमाला - 1923

27. एकावली-विद्याधर- प्रकाशक सस्कृत विभाग, उस्मानिया विश्वविद्यालय हैदराबाद, सन् 1981

28 औचित्यविचारचर्चा - क्षेमेन्द्र - भारत प्रकाशन मदिर, अलीगढ

29 काव्यालकार - भामह - बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, 1962

30 काव्यादर्श - (दण्डी विरचित)- प्रकाशक चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, सवत 2038

31 काव्यादर्श (हृदयगमा टीका)- टीकाकार - तरुण वाचस्पति, ब्रह्मदीन प्रेस, मद्रास

32 काव्यालकारसूत्र - (वामन रचित) - प्रकाशक चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, सवत 2033

33 काव्यालकार, (रुद्रट विरचित)-प्रकाशक- चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, सवत 20[illegible]

34 काव्यमीमासा - (राजशेखर रचित) - प्रकाशक बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, सन् 1965

35 कवि और काव्यशास्त्र - डॉ० सुरेश चन्द्र पाण्डे, राका प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम सस्करण, 1981

36 कठोपनिषद् - गीताप्रेस गोरखपुर, सत्रहवॉ सस्करण - सवत 2038

37. कामसूत्रम् - (श्रीवात्स्यायन प्रणीतम्) प्रथमोभाग यशोधरविरचितया जयमङ्गलाख्यया टीकया [illegible] समेतम्, मुम्बई निर्णयसागरयन्त्रालय मुद्रितम् - सवत् 1891

38 कामसूत्रम् (श्रीवात्स्यायनविरचितम्) श्रीयशोधरविरचितया जयमङ्गलाख्यव्याख्यासहितम् सर्वतत्रस्वतत्ररिसर्चस्कालर, प० माधवाचार्यनिर्मितया पुरुषार्थप्रभाख्यभाषाटीकयाटिप्पणीभिश्च विभूषित, द्वितीय भाग, गङ्गाविष्णुश्रीकृष्णादास, लक्ष्मीवेंकटेश्वरप्रेस, कल्याण, बम्बई, सवत् 1991 शाके 1856

39 काव्यमाला - प्रथम गुच्छ से चतुर्दश गुच्छ पर्यन्त- सम्पादक प० दुर्गादास एव काशीनाथ पाण्डुरङ्ग, परब चौखम्भा भारती अकेदमी, 1987

40 काशिका (वामन जयादित्यविरचित) - न्यासपदमञ्जरी भावबोधिनीसहिता (दस भाग में) सम्पादक- डॉ० जयशकरलाल त्रिपाठी, डॉ० सुधाकर मालवीय, प्राच्य भारती ग्रथमाला-17, वाराणसी 1985 ई०

41. कामसूत्र का समाजशास्त्रीय अध्ययन, प० देवदत्तशास्त्री, विविध भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम सस्करण 1982

42. कौटिलीय अर्थशास्त्र - स०, वाचस्पति गैरोला, चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, 1962

43 कामसूत्र - (वात्स्यायन प्रणीत) सवर्तिका प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम सस्करण 196[illegible]

44. कामसूत्र- (वात्स्यायन प्रणीत) - श्रीयशोधर विरचित जयमगलाख्य टीका, हिन्दी व्याख्याकार, श्री देवदत्त शास्त्री, काशी सस्कृत ग्रथमाला- 29, वाराणसी

45 काव्यानुशासनम्- (प्रथमभाग) हेमचन्द्र रचित) प्रकाशक श्रीमहावीरजैन विद्यालय, बम्बई सन् 1968

46. काव्यानुशासनम् - वाग्भट्ट विरचित - तुकाराम जावजी, बम्बई, सन् 1915

47. काव्यालकारसारसग्रह - (उद्भट रचित)- प्रकाशक-सेक्रेटरी, भण्डारकर ओरियन्टल, इस्टीट्यूट पूना सन् 1847

48. काव्यानुशासनम् -(हेमचन्द्र रचित)-प्रकाशक- मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास पब्लिकेशन नई दिल्ली, सस्करण द्वितीय 1986

49 कालिदास ग्रन्थावली सम्पादक - सीतराम चतुर्वेदी - प्रकाशक, भारत प्रकाश मदिर, अलीगढ़, तृतीय सस्करण, सवत 2019

50. कारिकावली (भाषापरिच्छेद) - (श्रीविश्वनाथ पञ्चानन भट्टाचार्य विरचिता) श्री सूर्यनारायण शुक्ल रचित मयूखोद्भासित सिद्धान्तमुक्तावली सहिता प्रकाश, हिन्दी व्याख्या, व्याख्याकार [illegible] रामगोविन्द शुक्ल, श्रीहरिकृष्ण निबन्ध भवन वाराणसी, 1991

51 काशी की पाण्डित्य परम्परा-आचार्य बलदेव उपाध्याय, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी द्वितीय सस्करण 1994

52. काव्य प्रकाश (मम्मटकृत) व्याख्याकार - स्व० आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि, सम्पादक डॉ० नगेन्द्र वाराणसी ज्ञानमण्डल लि0 ज्ञानमण्डल ग्रंथमाला 93, 1960

53. काव्य प्रकाश (मम्मट कृत), शशिकला हिन्दी व्याख्या, व्याख्याकार डॉ० सत्यव्रत सिंह विद्याभवन सस्कृत ग्रथ, पटना 15, 1955 ई०

54 काव्य प्रकाश (मम्मट कृत) - बालबोधिनी सस्कृत टीका, व्याख्याकार, स्व० वामन [illegible] भट्ट झलकीकर, सम्पादक, रघुनाथ दामोदर करमकर भण्डारकर ओरि0 पूना0 1950

55. काव्यादर्श-(आचार्यदण्डी विरचित)- सुदर्शनाऽऽख्यया सस्कृतहिन्दीव्याख्यासमेत टीकाकार - धर्मेन्द्र कुमार गुप्त मेहरचन्द, लक्ष्मनदास, दिल्ली, 1973 ई०

56. काव्यालकार - (मम्मट विरचित) - भाष्यकार - प्रो0 देवेन्द्रनाथ शर्मा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, 1962

57. किरणावली (उदयनाचार्यप्रणीता), सम्पादकोऽनुवादकश्च - श्री गौरीनाथ शास्त्री, गगानाथ झा ग्रन्थमाला - 8 प्रथम सस्करण 1980

58 कुवलयानन्द (श्रीमदप्पय्यदीक्षित विरचित) अलंकारसुरभि, हिन्दी व्याख्या- व्याख्याकार, डा० भोलाशकर व्यास, विद्याभवन सस्कृत ग्रथमाला 24, वाराणसी, 1956

59 कुवलयानन्द अप्पयदीक्षित चरित - चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी सन् 1963

60 कौटिलीयअर्थशास्त्र - श्रीविष्णुगुप्त चरित पण्डित पुस्तकालय, काशी 1964

61 खण्डनखण्डखाद्यम्-(श्रीहर्षप्रणीतम्) श्रीविद्यासागरापाह्वानन्दपूर्ण[illegible] विरचितखण्डन[illegible]कार्विभ[illegible], सवलितम्।

62 स्वामी योगीन्द्रनन्दकृतखण्डनपञ्जिकयोपेतम्, प्रकाशक-षड्दर्शन प्रकाशन प्रतिष्ठानम्-वाराणसी, प्रथम सस्करण-1979

63 ग्रहलाघवम् गणेश दैवज्ञविरचित, हरिदास सस्कृत ग्रथ माला - 309 , सम्पादक एव व्याख्याकार - प्रो0 रामचन्द्र पाण्डेय, चौखम्भा सस्कृत सिरीज, वाराणसी, 1994

64 ग्रहनक्षत्राणि - प्रणेता - डॉ० सम्पूर्णानन्द, सम्पूर्णानन्द ग्रन्थ माला 10 , सम्पूर्णानन्द सस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

65 गौतम धर्मसूत्र - (मिताक्षरावृत्ति सहित) चौखम्भा सस्कृत सिरीज वाराणसी, प्रथम सस्करण - सवत 2023

66 चन्द्रालोक - जयदेवरचित, चौखम्भा सस्कृत सिरीज, बनारस, सन् 1938

67 चित्रमीमासा - अप्पयदीक्षित रचित, चौखम्भा सस्कृत सिरीज, बनारस सन् 197[illegible] ई०

68 चमत्कार चन्द्रिका - विश्वेश्वर पडित - चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी प्रथम सस्करण - 19[illegible]

69 छान्दोग्योपनिषद् - गीता प्रेस, गोरखपुर, तृतीय सस्करण सवत् 2013

70 जन्मपत्रदीपक - आचार्य विन्देश्वरी प्रसाद द्विवेदी - चौखम्भा सस्कृत सस्थान, वाराणसी

71 ज्योतिष रत्नाकर - देवकी नदन सिह, मोतीलाल बनारसी दास वाराणसी, पुर्नमुद्रण 1997

72 जातक सग्रह - एन0वी0 तुगर, ओरियन्टल बुक एजेन्सी, द्वितीय सस्करण, 194[illegible] ई०

73 जीवन की आध्यात्मिक दृष्टि (An Idealist view of life- Dr. Radhakrinan का हिन्दी अनुवाद)- प्रकाशक, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, प्रथम सस्करण 1962

74 जैमिनीय मीमासा भाष्यम् (आचार्य शबरस्वामिविरचितम्) (5 भागों मे) व्याख्याकार - युधिष्ठिर मीमासक, प्रथम भाग 1977 , द्वितीय भाग, 1978, तृतीय भाग 1980, चतुर्थ भाग 1984, पचम भाग -1986 प्रकाशक -युधिष्ठिर मीमासक, बहालगढ़, सोनीपत हरियाणा

75 तैत्तरीयोपनिषद् भाष्य वार्तिक - श्रीसुरेश्वरचार्यकृत, अनुवाद- राधेश्याम शास्त्री, मेहरचद लक्ष्मनदास पब्लिकेशनल, नई दिल्ली, सस्करण - 1975

76 तर्कभाषा (श्रीकेशवमिश्र प्रणीता), हिन्दी व्याख्याकार - श्रीबदरीनाथ शुक्ल, मोतीलाल बनारसीदास, द्वितीय सस्करण-1976

77 तर्कभाषा (श्रीकेशव मिश्र प्रणीत) - हिन्दी व्याख्याकार डॉ० श्री निवास शास्त्री साहित्य भण्डार, मेरठ, अष्टम सस्करण 1992

78. तर्कभाषा (केशवमिश्र प्रणीता) - तर्क रहस्यपदीपिका, हिन्दीव्याख्याविभूषिता आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि - चौखम्भा सस्कृत सस्थान, वाराणसी, अष्टम सस्करण, सवत् 2042

79. ताजिक नीलकण्ठी (श्री नीलकण्ठ दैवज्ञ विरचित) व्याख्याकार, श्री केदारदत्त जोशी, मोतीलाल बनारसी दास, सस्करण - 1995

80. तर्कसग्रह - अन्नमभट्ट रचित, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी, सस्करण 1971

81. दर्शन के अनुसार (The types of Philosophy by william Ernst Hocking) अनुवादक- प्रो0 रमेश चन्द्र, राजस्थान हिन्दी ग्रथ अकादमी, जयपुर - प्रथम सस्करण - 1972

82. दशकुमारचरित-(दण्डिन् कृत) बालबोधिनी सस्कृतव्याख्य, प० नारायण भट्टाचार्य बालक्रीडा हिन्दीव्याख्या, प० रामतेजशास्त्री, एव प० केदारनाथ शर्मा, हरिदास सस्कृत-सिरीज-52, 1948

83 दशरूपक-(धनञ्जय विरचित)-चन्द्रकला हिन्दी व्याख्याकार, डॉ० भोलाशकर व्यास, विद्याभवन सस्कृत ग्रथ माला (वाराणसी) सस्करण - 1954

84 ध्वन्यालोक- हिन्दी व्याख्या, आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि, सम्पादक- डॉ० नगेन्द्र, गौतम बुक डिपो दिल्ली, प्रथम सस्करण-1952

85. ध्वन्यालोक- श्री मदानन्दवर्धनाचार्यविरचित, सहृदयतिलक श्री रामषारक कविताकिर, ... तथा ... श्रीमहादवशास्त्री विरचित बालप्रियादित व्यञ्जना व्याख्या एव श्रीमदअभिनवगुप्त विरचित लोचन ... सहित-... ... पट्टाभिरमशास्त्री- काशी सस्कृत सिरीज ग्रन्थमाला-135-सन् 1940.न

86 ध्वनि सिद्धान्त, विरोधी सम्प्रदाय, उनकी मान्यताए- डॉ सुरेश चन्द्र पाण्डेय ... प्रकाशन, इलाहाबाद प्रथम सस्करण 1972 ध्वनि सम्प्रदाय और उसके सिद्धान्त, भाग-1 भोलाशकर व्यास, सूर्यकुमारी पुस्तक माला (वाराणसी)-26 प्रथम, सस्करण-सवत् 2013.

87. धर्म दर्शन- लक्ष्मीनिधि शर्मा

88 धर्मशास्त्र का इतिहास-डॉ० पी0वी0 काणे, अनुवादक, अर्जुन चौबे काश्यप, पॉच भागों में, हिन्दी समिति ग्रथ समिति ग्रथ माला 74, 111, 132 213, 214, उ०प्र० हिन्दी सस्थान, लखनऊ

89 न्यायदर्शनम् (वात्स्यायन भाष्यसवलितम् गौतमीय) हिन्दी भाषान्तरसम्पन्नम्-सम्पादक- स्वामी द्वारिका दास शास्त्री, बौद्ध भारतीय ग्रथ माला 11, वाराणसी, सस्करण, चतुर्थ 1989।

90 न्यायसूत्र-गौतम-दि पाणिनि आफिस भुवनेश्वरी आश्रम बहादुरगढ, इलाहाबाद, सन् 1930

91 न्याय कुसुमाञ्जलि (उदयनाचार्यकृत्) हिन्दी अनुवाद, श्रीदुर्गाधर झा, सम्पादक-डॉ भागीरथ प्रसाद त्रिपाठी, नागेश शास्त्री, गङ्गानाथ झा ग्रथमाला-6, 1973.

92 नामलिङ्गानुशासन नाम-अमरकोष-महामहोपाध्याय श्री भट्टोजिदीक्षितात्मजविद्व ... श्रीभानु ... कृतया रामाश्रमी (व्याख्या सुधा) व्याख्यया विभूषित - प हरगोविन्द शास्त्री (प्रकाशोपनामक-सरल ... । हिन्दी व्याख्या एव टिप्पणी सहित सम्पादित) काशी सस्कृत ग्रथमाला-198, 1970 ई०

93 नामलिङ्गानुशासनम् (अमरकोष)- मणिप्रभा हिन्दी व्याख्या-व्याख्याकार- प हरगोविन्द शास्त्री- हरिदास सस्कृत ग्रथमाला-30, 1957.

94. निरुक्त- यास्क कृत (प्रथमकाण्ड) स० उदयशंकर शर्मा, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, सन् 1977.

95 नीतिशतकम्-भर्तृहरि- भारतीय प्रकाशन, कानपुर, 1979

96 निरुक्त प्रथमकाण्ड न्यास्क-सपादक-

97. नाट्यशास्त्रम्, (श्रीभरतमुनि विरचित) -सम्पादक- प केदारनाथ, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी काव्यमाला-42, 1983 ई०

98 नाट्यशास्त्र (साभिनव भारती, तीन भागों में) भरतकृत, व्याख्याकार अभिनवगुप्त, गायकवाड़ ओरियन्टल सिरीज, प्रथमभाग 1956, द्वितीय भाग 1934, तृतीय भाग 1954

99. न्यायसिद्धान्तमुक्तावली- श्री विश्वनाथतर्कपञ्चानन रचित न्यायकारिकावली) प्रत्यक्षखण्ड, हिन्दी व्याख्याकार, डॉ० धर्मेन्द्र नाथ शास्त्री, मोतीलाल बनारसी दास, सस्करण तृतीय, 1985, पुनमुर्दुण दिल्ली 1992

100 न्यायसिद्धान्तमुक्तावली, (श्री विश्वनाथपञ्चाननभट्टाचार्य विरचित)- बालप्रिया हिन्दी व्याख्योपेता व्याख्याकार- डॉ० श्रीगजाननशास्त्री मुसलगावकर, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय सस्करण-1984

101. न्याय विन्दु (धर्मकीर्ति विरचित) का गोविन्द चन्द्र पाण्डे कृत अनुवाद एव व्याख्या- दर्शन प्रतिष्ठान, जयपुर, प्रथम सस्करण, 1972

102. नैषधमहाकाव्य-व्याख्याकार, डॉ० सूर्यदेव शास्त्री, चौखम्भा ओरियन्टल वाराणसी प्रथम सस्करण-1975

103. नैषध महाकाव्य प्रथम सर्ग, अनुवादक, श्रीधरप्रसादपन्त, 'सुधांशु' प्रकाशक- स्टूडेन्ट स्टोर रामपुर बाग, बरेली, सस्करण-1980

104 नैषधचरितचर्चा, महावीर प्रसाद द्विवेदी, गवर्नमेन्ट प्रेस, इलाहाबाद।

105. नैषधीयचरितम् (श्रीहर्षविरचितम्) श्रीमन्नारायण विरचितया नैषधीय प्रकाशाख्यया ..., मल्लिनाथ-विद्याधरजिनराज, चारित्रवर्धन, नरहरि व्याख्यान्तरीय विशिष्टांशैस्तत्पाठान्तरैश्चान्यैर्विशिष्य समुल्लासितम- श्रीमदिन्दिराकान्ततीर्थचरणान्तेवासिभि· नारायणरामआचार्य "काव्यतीर्थ", मेहरचन्द लक्ष्मनदास पब्लिकेशन्स, 1- अन्सारी रोड, दरियागज, नई दिल्ली-110002, पुनमुर्दण-1986

106 नैषधीयचरित में रस योजना-डॉ० रविदत्त पाण्डेय, मुद्रक, गोयल प्रिटर्स,भोलानाथ नगर, शाहदरा, दिल्ली-110032, प्रथम सस्करण 1979

107 नैषधीयचरित का अभिनव समीक्षात्मक एव व्याख्यात्मक अध्ययन- (प्रथम सर्ग) प्रो शिव बालक द्विवेदी, डॉ प्रकाश मित्र शास्त्री, शिक्षक प्रकाशन प्रेमनगर, कानपुर-1, सस्करण 1981

108 नैषधीयचरितम् (श्रीहर्षविरचितम्) श्रीमन्नारायणरचितया नैषधीयप्रकाश रव्ययाव्याख्या । ३ ुल्लसितम् महामहोपाध्याय, दाधीचपण्डित शिवदत्तशर्मणा, टीकान्तरीयटिप्पण्योपस्कृत्य संशोधितम् चतुर्थसस्क ।। । गाके 1834 सन् 1912 वत्सरे निर्णयसागराख्यमुद्रणयन्त्रालय, मुम्बई।

109. नैषधीयचरितम्- (श्रीहर्ष प्रणीतम्) हिन्दी अनुवादक प श्री ऋषि चरणाः भट्ट, ।ार. डिलार्ड, लाग एण्ड सन्स, सस्कृत बुक डिपो, बनारस सिटी, प्रथम सस्करण 1949

110 नैषधीयचरितम्- (श्रीहर्ष प्रणीतम्) हिन्दी अनुवादक, आचार्य चण्डिका प्रसाद शुक्ल, साहित्य सदन देहरादून, प्रथम सस्करण-1951

111 नैषध महाकाव्यम्- (महाकवि श्रीहर्षप्रणीतम्)- महामहोपाध्याय श्रीमल्लिनाथकृत "जीवातु व्याख्यायुत मणिप्रभा" भाषा टीकासहितम् भाषा टीकाकार- प हरिगोविन्द शास्त्री, हरिदास सस्कृत ग्रथ वाराणसी 205, प्रथम सस्करण सवत् 2010 (सन् 954) उत्तर खण्ड सन् 1967, (सस्करण द्वितीय सवत 2024)

112 नैषध महाकाव्यम् (श्रीहर्षप्रणीतम्)- प्रथम सर्ग, जीवातुटीका सहित हिन्दी टीकाकार, डॉ सुरेन्द्र देव शास्त्री, गोकुल दास सस्कृत सिरीज-2, वाराणसी, प्रथम सस्करण 1975

113 नैषधमहाकाव्य (श्रीहर्ष विरचितम्) प्रथम सर्ग, मल्लिनाथी व्याख्या सहित, हिन्दी अनुवादक डॉ शिवराज शास्त्री साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ, पचम सस्करण 1975

114 नैषधीयचरितम (श्रीहर्षविरचितम्) बारह से बाइस सर्ग तक, जीवातु सस्कृत एव ...न्द्रिका हिन्दी व्याख्या व्याख्याकार डॉ० देव ऋषि सनाढ्य शास्त्री, कृष्णदास सस्कृत सिरीज, 52 (वाराणसी, प्रथम स स्करण 1987,

115. नैषधीचयरितम् (श्रीहर्ष विरचित)-प्रथम सर्ग से दशम् सर्ग तक- चन्द्रकला सस्कृत व्याख्या एव हिन्दी अनुवाद सहित-व्याख्याकार, आचार्य शेषराजशर्मा रेग्मी, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी प्रथम सस्करण 1987

116 नैषधीयचरितम् (श्रीहर्ष विरचितम्) छात्रतोषिणी टीका सहित, (षष्ठ से नव सर्ग) टीकाकार एव हिन्दी अनुवादक-श्री मोहनदेव पन्त, मोतीलाल बनारसी दास प्रथम सस्करण,1979

117. नैषधचरितम्- (महाकविश्रीहर्षविरचितम्) पूर्वार्द्धरूप प्रथम खण्डम् (प्रथम सर्गादेकादशसर्गपर्यन्तम्- श्रीहरिसिद्धान्तवागीशभट्टाचार्य्येण, प्रणीतया जयन्ती समाख्यया टीकया, तत्कृतेनाम्रे वङ्गानुवादेन च समन्वितम् कलिकाता 41, सख्यकदेव लेनस्थितसिद्धान्त (विद्यालयात्), यन्त्रे श्री हेमचन्द्र भट्टाचार्येण मुद्रितम् तेनैव प्रकाशितम्, द्वितीय सस्करणम्, 1871 शकाब्दीयसौराश्विनस्य प्रथम संस्करण, 1849 शकाब्द)

118 नैषधपरिशीलन-डॉ. चण्डिकाप्रसाद शुक्ल, हिन्दुस्तानी अकेडमी, उ०प्र०, इलाहाबाद प्रथम सस्करण 1960

119. ध्वन्यालोक-आनन्दवर्धनप्रणीत-व्याख्याकार, आचार्य विश्वेश्वर, गौतम बुक डिपो, दिल्ली, 1952

120. ध्वन्यालोक-आनन्दवर्धनप्रणीत लोचन एव बालप्रिया सहित, चौखम्भा सस्कृत सिरीज, वाराणसी-1940 ई०

121. ध्वन्यालोक- (आनन्दवर्धनकृत) व्याख्याकार-डॉ० रामसागर त्रिपाठी, पूर्वार्द्ध, एव उत्तरार्द्ध भाग मोतीलाल बनारसी दास-वाराणसी प्रथम सस्करण, 1963 ई०

122. नारदीशिक्षा-शोभाकार व्याख्यासहित सम्पादक-दीक्षित, मैसूर 1946 ई.

123. नीतिशतक- भर्तृहरि प्रणीत- चौखम्बा सुरभारती, प्रकाशन, वाराणसी 1982 ई०

124. पारस्कर गृह्यसूत्रम्-हिन्दी व्याख्याकार तथा सम्पादक-डॉ ओमप्रकाश पाण्डेय, चौखम्भा, अमर भारती प्रकाशन, वाराणसी, 1980

125. पातञ्जलयोगदर्शन्-साख्ययोगाचार्य श्रीमद्हरिहरानन्दकृत, बगलाभाष्यानुवाद और टीका का मूल सहित हिन्दी अनुवाद, सम्पादक-डॉ भागीरथ मिश्र, हरिकृष्ण अवस्थी ब्रजकिशोर मिश्र, प्रकाशक लखनऊ विश्वविद्यालय

126. पातञ्जलयोगदर्शनम्, (महर्षि पतञ्जलिमुनिप्रणीतम्)- व्यासभाष्यसवलितम् तत्त्व योगसिद्धि हिन्दी व्याख्योपेतम्-व्याख्याकार डॉ सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव्यशास्त्री, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन-वाराणसी, तृतीय सस्करण-1993

127. पूर्व और पश्चिम कुछ विचार (East And West-Some Reflections) -डॉ० राधाकृष्णन अनुवादक-रमेश वर्मा, राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली सातवा सस्करण, 1981

128 पञ्चदशी-(श्री विद्यारण्यमुनि विरचित), सम्पादक- आचार्य करुणापति त्रिपाठी, उ प्र सस्कृत अकादमी लखनऊ, शास्त्रीय ग्रथ माला द्वितीय पुष्प, 1989 ई

129. प्रशस्तपादभाष्यम्- (प्रशस्तपादाचार्यप्रणीत) श्रीधरपणीत न्यायकन्दली व्याख्या, सम्पादक- डॉ भागीरथ प्रसाद त्रिपाठी, हिन्दी अनुवादक- प दुर्गाधर झा, गगानाथ झा ग्रथमाला-1 1977 ई०

130. बुद्धकालीन भूगोल- डॉ० भरत सिह उपाध्याय

131 बोधिचर्यावतार- आचार्य शान्तिदेवकृत, अनुवादक, भिक्षु, ग० प्रज्ञानन्द, प्रकाशक लखनऊ बौद्ध समिति उ प्र संस्करण-1955

132 बौद्ध धर्म दर्शन- आचार्य नरेन्द्र देव, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना-3, विक्रम सवत् 2013

133 बौद्ध दर्शन और वेदान्त-डॉ० चन्द्रधर शर्मा, विजन विभूति प्रकाशन इलाहाबाद संस्करण-1981

134 प्राचीन भारतीय भूगोल- अवध बिहारी लाल अवस्थी

135 बृहन्नारदीपपुराणम्- (पूर्वभाग) अनुवादक, तारणीश झा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग-1989 ई

136 बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्-(श्रीपराशरमुनिविरचितम्)- सविमर्श सुधाव्याख्ययाविभूषितम्, सम्पादक एव व्याख्याकार-दैवज्ञ प देवचन्द्र झा, चौखम्भा सस्कृत संस्थान, वाराणसी- पचम सस्करण सवत् 2050 (काशी सस्कृतमाला-220)

137 वृहदारण्यकोपनिषद्-गीताप्रेस, गोरखपुर, तृतीय सस्करण-सवत् 214

138 बौधायन धर्मसूत्र-चौखम्भा सस्कृतसिरीज वाराणसी, द्वितीय सस्करण, सवत् 2029

139 ब्रम्हसूत्रशाङ्करभाष्य-सत्यानन्दी दीपिका सहित-अनुवादक श्रीस्वामी सत्यानद सरस्वती, प्रकाशन गोविन्द मठ टेढी नाम वाराणसी, सवत्-2035

140 भारतीय साहित्यशास्त्रकोश- डॉ राजवश सहाय हीरा प्रकाशक, बिहार ग्रथ अकादमी सम्मेलन भवन पटना-3, प्रथम सस्करण-1973

141 भारतीय साहित्य के निर्माता, (क्षेमेन्द्र) सम्पादक- व्रजमोहन चतुर्वेदी, साहित्य अकादमी, प्रथम सस्करण-1983

142 भगवत्पतञ्जलि विरचित व्याकरण महाभाष्य (प्रथम आह्निक) का हिन्दी अनुवादक श्री चारुदेव शास्त्री, मोतीलाल बनारसी दास, प्रथम सस्करण, सवत्-2019

143. भारतीय दर्शन- डॉ राधाकृष्णन, हिन्दी अनुवादक, नन्द किशोर गोभिल, प्रथम एव द्वितीय भाग, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट दिल्ली द्वारा प्रकाशित सस्करण-1989

144 भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग-1- एस एन दास गुप्त, अनुवादक, कलानाथ शास्त्री, सुधीर कुमार राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर-4, प्रथम अनूदित सस्करण-1978

145. भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण- सगम लाल पाण्डेय, सेन्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, प्रथम सस्करण 1976

146. भारतीय दर्शन- आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी, तृतीय सस्करण-1984

147. भारतीय दर्शन- (ऐतिहासिक और समीक्षात्मक विवेचन) नन्दकिशोर देवराज, हिन्दी ग्रथ अकादमी, लखनऊ, ग्रथाक-158, तृतीय सस्करण-1983

148. भारतीय दर्शन- उमेश मिश्र, हिन्दी समिति ग्रन्थमाला-10, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उ प्र लखनऊ द्वितीय सस्करण-1964

149. भारतीय दर्शन की रूपरेखा- एम हिरियन्ना, अनुवादक- डॉ० गोवर्धनभट्ट, श्रीमती मजू गुप्त ०सुखबीर चौधरी, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, पांचवॉ सस्करण-1985

150 भारतीय दर्शन, आलोचन एव अनुशीलन चन्द्रधर शर्मा, प्रकाशक मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी प्रथम सस्करण-1990

151. भारतीय ज्योतिष - डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, ज्योतिषाचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, पन्द्रहवॉ सस्करण-1980

152. भारतीय काव्यशास्त्र, नयी व्याख्या डॉ राममूर्ति त्रिपाठी, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय सस्करण 1980

153. भारतीय दर्शन की प्रमुख समस्याएँ- परिसंवाद से तैयार राजस्थान हिन्दी ग्रथ अकादमी, जयपुर, प्रथम सस्करण-1984

154. भारतीय दर्शन में मोक्षचिन्तन-एक तुलनात्मक अध्ययन- डॉ अशोक कुमार लाड, म0प्र0 हिन्दी ग्रथ अकादमी, प्रथम सस्करण-1973

155. माण्डूक्योपनिषद्-गीताप्रेस गोरखपुर, चौदहवॉ सस्करण-स 2050

156 मुहूर्त चिन्तामणि- दैवज्ञानन्द, सुतरामाचार्य प्रणीत, व्याख्याकार उमाशकर शुक्ल, प्रकाशक श्री ठाकुर प्रसाद पुस्तक भण्डार, वाराणसी

157 पाणिनीय शिक्षा-एम.एम घोष

158. प्रतापरुद्रीय- विद्यानाथ-श्रीबालमनोरमा प्रेस, माइलापोर मद्रास, 1950

159 भट्टिकाव्य-भट्टिकृत प्रकाशन—तुकाराम जावजीनिर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1914

160. महाभाष्य - पतञ्जलि - प्रथमखण्ड - सत्यभामाबाई पाण्डुरग बम्बई, 1951 द्वितीय खण्ड - पाण्डुरग जाव जी बम्बई, 1935

161 भारतीय काव्याशास्त्र की भूमिका डॉ नगेन्द्र नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली -1976

162 भारतीय ज्यातिष (श्री शिवनाथझारखण्डी) मराठी भाषा का हिन्दी अनुवाद- श्री शकर बालकृष्ण दीक्षित, उ प्र राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन, लखनऊ, तृतीय सस्करण-1975

163 भारत सावित्री- वासुदेव शरण अग्रवाल, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

164. भरत भाष्य- नान्यदेव प्रणीत-भाण्डारकर प्राच्य ग्रथ सग्रह पूना में सगृहीत (हस्तलिखित)

165. महाभारत-व्यास प्रणीत-बम्बई सस्करण

166. भरतकोष- प्रो0 रामकृष्ण कवि द्वारा सम्पादित, तिरुपति सस्करण

167. मानसोल्लास - सोमेश्वर प्रणीत द्वितीय भाग - सम्पादक जी के श्रीगोन्डेकर, ओरियन्टल इस्टीट्यूट - बडौदा -1939 ई.

168. मालतीमाधव- भवभूतिप्रणीत तारिणीश झा, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 1975

169. मालती माधव- भवभूतिप्रणीत- सम्पादक एम आर काले, मोतीलाल-बनारसी दास

170. मनुस्मृति-सम्पादक, हरगोविन्द शास्त्री-मणिप्रभा हिन्दी व्याख्या काशी सस्कृत सिरीज-226, वाराणसी, 1979

171. मनुस्मृति- मेघातिथि रचित मनुभाष्य समेता- महामहोपाध्याय गगानाथ झा, प्रथम एव द्वितीय भाग परिमल सस्कृत ग्रथ माला-331 (दिल्ली) सस्करण-1992

172. मध्यकालीन भारत, भाग-1, सम्पादक-प्रो हरिश्चन्द्र वर्मा, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम सस्करण-1983, पुनर्मुद्रण-1992

173. मध्यकालीन भारत- सम्पादक प्रो हरिश्चन्द्र वर्मा, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम सस्करण 1993

174. मीमासा दर्शनम्-स० रामजी शर्मा आचार्य, सस्कृति संस्थान, बरेली, प्रथम सस्करण 1974

175. मुण्डकोपनिषद्- स हरिकृष्णदास गोयनका, गीताप्रेस गोरखपुर, सवत- 2019

176. वैयाकरणसिद्धान्त कौमुदी (श्रीमद्भट्टोजिदीक्षितकृत) बालमनोरमा (वासुदेव दीक्षितकृत) तत्त्वबोधिनी (ज्ञानेन्द्रसरस्वतीकृत) व्याख्या सहित, सम्पादक-श्रीपरमेश्वरानन्द, (चार भागों मे) प्रकाशक-मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी-1960 ई.

177. वक्रोवित जीवित- कुन्तक प्रणीत- व्याख्याकार, श्री राधेश्याम मिश्र, चौखम्भासस्कृत सिरीज, वाराणसी- 1967 ई०

178. हिन्दी वक्रोति जीवित- भूमिका-आचार्य कुन्तक और वक्रोक्ति सिद्धान्त, व्याख्याकार- आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि, सम्पादक- डॉ. नगेन्द्र, दिल्ली अनुसंधान परिषद ग्रथमाला-ग्रथ-5, 1955

179. व्यक्तिविवेक (महिमभट्ट रचित) चौखम्भा सस्कृति सिरीज, वाराणसी, 1964

180. व्याकरण महाभाष्यम्- (पतञ्जलिमुनिनिर्मितम्)- श्रीमदुपाध्यायकयटनिर्मित ''प्रदीप'' एव प्रकाश हिन्दी व्याख्या- व्याख्याकार, आचार्य मधुसूदन प्रसाद मिश्र विद्या भवन, सस्कृत ग्रन्थमाला-138 द्वितीय सस्करण, 1978 ई०

181. व्याकरण महाभाष्य-प्रथमखण्ड-(अष्टाध्याय्या प्रथमद्वितीयाध्यायव्याख्यानरूप कैयट प्रदीपेननागेशभट्टकृोद्योतेनसहित , मोतीलाल बनारसी दास, प्रथम सस्करण 1957 ई० (प्रथम, द्वितीय, एव तृतीय खण्ड)

182 वैशेषिक दर्शन (श्रीमन्महर्षिकणादविरचित) प्रशस्तपादभाष्य- (श्रीमन्महर्षिप्रशस्तदेवाचार्य विरचित), प्रकाशिकाहिन्दी व्याख्या, भाष्यव्याख्याकार-आचार्य ढुण्डिराज शास्त्री, वैशेषिकसूत्र व्याख्याकार-श्रीनारायणमिश्र, काशी सस्कृत ग्रथमाला-173, प्रथम सस्करण, 1966 ई०

183. श्रीविष्णुपुराण- गीता प्रेस गोरखपुर- चतुर्थ सस्करण-स० 2014 अनुवादक श्री मुन्नी लाल गुप्त)

184 , व्याकरणतत्र का काव्यशास्त्र पर प्रभाव-डॉ हरिराम मिश्र, ईस्टर्न बुक लिकर्स, देहली प्रथम सस्करण-1994

185. व्याकरण शास्त्र का इतिहास-युधिष्ठिर मीमासक

186. वायु पुराणम्- (श्रीमद्व्यासविरचितम्) हिन्दीअनुवादक, रामप्रताप त्रिपाठी (शास्त्री हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, सन् 1987

187 याज्ञवल्क्यस्मृति- याज्ञवल्क्यप्रणीत- विज्ञानेश्वरप्रणीतमिताक्षरासहित- सम्पादक डॉ० उमेशचन्द्र पाण्डेय, काशी संस्कृत सिरीज, 178 वाराणसी, 1969 ई० लाट्यायन श्रौतसूत्र प्रकाशक-एशियाटिक सोसायटी बंगाल

188 रस सिद्धान्त- डॉ नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, सन् 1974

189 रसगङ्गाधर- पण्डितराजजगन्नाथविरचित), नागेशभट्टकृतटीकयासहित- व्याख्याकार, भट्टमथुरानाथशास्त्रिणा- मोतीलाल बनारसीदास, निर्णयसागरप्रेस बम्बई, 1983

190 रसगङ्गाधर-पडितराजजगन्नाथविरचित) प्रथममाननम्चन्द्रिकासस्कृतहिन्दी व्याख्योपेत प बद्रीनाथझा एव प० मदनमोहनझा, विद्याभवन सस्कृत ग्रथमाला-11, चतुर्थ सस्करण-1978

191 रस सिद्धान्त- (डॉ नगेन्द्र प्रणीत) - अनुवादक, अमरचन्द्रशास्त्री, लालबहादुरशास्त्री केन्द्रीय संस्कृतविद्यापीठम्, दिल्ली-1973

192. राजतरङ्गिणी - कल्हणकृत- पण्डित पुस्तकालय, काशी-1960

193. राघवपाण्डवीयम्, कविराजकृत, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, स 2022

194. रामायण-वाल्मीकिप्रणीत-गीताप्रेस सस्करण, गोरखपुर

195. रामायण- बाल्मीकिप्रणीत, तिलकटीका सहित, बम्बई प्रकाशन, 1909ई

196. रस मीमासा-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, सम्पादक-विश्वनाथप्रसाद मिश्र, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, शास्त्रविज्ञान ग्रथमाला-1, तृतीय सस्करण सवत् 2017।

197 वैदिक इण्डैक्स भाग-2, प्रो ए ए मैक्डानल एव ए बी कीथ हिन्दी अनुवादक रामकुमार राय, चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, प्रथम सस्करण-1961

198. लघुसिद्धान्त कौमुदी-वरदराज, व्याख्याकार, धरानदशास्त्री, मोतीलाल बनारसी दास 1987

199. विष्णुधर्मोत्तरपुराण-(तृतीयखण्ड) स-डॉ प्रियबालाशाह, ओरियन्टल इस्टीट्यूट बड़ौदा, सन् 1958

200. वाक्यपदीय-भर्तृहरिकृत, सम्पूर्णानद सस्कृत विश्वविद्यालय, अनुसधान सधान, ब्रह्मकाण्ड, 1976 ई० वाक्यकाण्ड 1968 ई० पदकाण्ड 1974

201. वाग्भटालकार-वाग्भट्ट द्वितीय-चौखम्भा विद्याभवन, चौक, वाराणसी 1957

202 वास्तुसौखयम्- (श्री टोडरानन्दान्तर्गतम्)- भाषानुवादेन विशदीकृतम्, डॉ शोभा पाण्डेयेन सुसम्पाद्य अनूदितम्, गगानाथ झा केन्द्रीय सस्कृत विद्यापीठ, ग्रथमाला, 39, सन् 1993

203 वेदान्तसार- (सदानन्दयोगीन्द्रप्रणीतो) हिन्दी रूपान्तर, तत्वपारिजाताख्यहिन्दीव्याख्या सवलित डॉ सन्तनारायणश्रीवास्तव्य, पीयूषप्रकाशन, इलाहाबाद, तृतीय सस्करण-1983

204. वेदार्थ सग्रह (श्रीमद्रामानुजयतीन्द्रविरचतो)-चन्द्रिकातिलकव्याख्ययाविभूषित रामवदनशुक्ल (रामकृष्णाचार्य), प्रधानाचार्य श्रीरामदेशिक सस्कृत महाविद्यालय, प्रयाग

205. वैद्यकीय सुभाषितसाहित्यम् (साहित्यिकसुभाषितवैद्यकम्)-सकलनकर्ता और व्याख्याकार-आयुर्वेदाचार्य श्रीभास्करगोविन्दघाणेकर, काशी सस्कृत ग्रथमाला, 184, चौखम्भा सस्कृत सस्थान, वाराणसी, द्वितीय सस्करण सवत् 2033

206 सस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ-सम्पादक- स्वर्गीय चतुर्वेदीद्वारकाप्रसादशर्मा तथा प तारणीश झा- प्रकाशक-रामनारायण लाल, इलाहाबाद, द्वितीय सस्करण-1957

207. सुभाषित रत्नभाण्डागारम्, सम्पादक - नारायण राम आचार्य काव्यतीर्थ, मुशीराम मनोहर लाल पब्लिसर्स, प्रा लि, 1978 ई

208. समराङ्गणसूत्रधार- (भोजकृत) गायकवाड़ ओरियन्टल सिरीज, 1924

209. सरस्वती कण्ठाभरण (भोजकृत) चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी 1976

210 श्रृङ्गारप्रकाश - भोजकृत (प्रकाशक-दि इण्टरनेशनल एकेडमी आफ संस्कृत रिसर्च मैसूर, तृतीय सस्करण 1969)

211 सर्वदर्शन सग्रह- श्रीमन्मध्वाचार्य विरचित - श्रीउदयनारायणसिह कृत तथा गोविन्द सूरि विरचित भाषाटीका सहित, लक्ष्मी वेंकटेश्वर मुद्रणालय, कल्याण मुम्बई, सवत्, 1982, शकाब्द 1847

212. साहित्यदर्पण, (श्री विश्वनाथ कविराजकृत)- विमला हिन्दी टीका, टीकाकार, श्री शालिग्राम शास्त्री विरचित, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी, पुनमुद्रण- 1992 ई

213 सिद्धान्त कौमुदी- (भट्टोजिदीक्षितकृत) तत्वबोधिनी (व्याख्याकार, जैनेन्द्र सरस्वती), सुबोधिनी (व्याख्याकार जयकृष्ण), चन्द्रकला (व्याख्याकार-भैरवमिश्र , व्याख्या सहित सम्पादक- महामहोपाध्याय प शिवदत्त शास्त्री, प्रकाशक-खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई, 1959

214 श्रीमद्भगवद्गीता- मधुसूदनी सस्कृत हिन्दी व्याख्योपेता-स्वामी श्रीसनातनदेव जी महाराज, काशी सस्कृत ग्रथ माला-162, द्वितीय सस्करण-1983

215 श्रीमद्भगवद्गीता- शाङ्करभाष्य, हिन्दीअनुवादसहित, गीताप्रेस गोरखपुर, अष्टम संस्करण, सवत् 2010

216 श्रीमन्महाभारतम् (महर्षिकृष्णद्वैपायनप्रणीत)-गीता प्रेस गोरखपुर, स० 2015, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, भाग)

217. श्रीमद्भागवत महापुराण- महर्षिवेद व्यासप्रणीत- प्रथम एव द्वितीय खण्ड, गीताप्रेस गोरखपुर, चतुर्थ सस्करण-सवत् 2018

218 श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (महर्षि वाल्मीकिप्रणीत) प्रथम, द्वितीय भाग, प्रथम सस्करण 2017, गीता प्रेस गोरखपुर

219 सुलभ ज्योतिष-प वासुदेवसदाशिवखारखोजे, विद्याभवन राष्ट्रभाषा ग्रथमाला 130, चोखम्भा विद्याभवन वाराणसी, पचम सस्करण-1997

220. सुगम ज्योतिष-प देवीदत्त जोशी, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी सस्करण, 1985

221. शतपथ ब्राम्हण-अच्युत ग्रथमाला कार्यालय वाराणसी, सवत् 1994-97

222 शतपथ ब्राह्मण, स० चित्रस्वामी -चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी, द्वितीय सस्करण 1964

223 सारस्वत सदर्शनम् - भारतीपरिषदप्रयाग, परिषद ग्रथमाला, एकविशतितम , 1894 शकाब्द (1973 A D) , प्रथम सस्करण - 1973

224. सङ्केतकौमुदी - (श्रीहरिनाथाचार्यविरचिता) - भाषानुवादविभूषिता - डॉ० प्रकाश पाण्डेयेन गुरुपाद्य अनूदिता, गगानाथ झा केन्द्रीय सस्कृत विद्यापीठ, टेक्स सिरीज न0 36, सन् 1993 (ज्योतिष ग्रथ)

225. साख्य तत्त्व कौमुदी प्रभा - (ईश्वरकृष्णकृत साख्यकारिका तथा वाचस्पतिमिश्रकृत तत्त्व कौमुदी) - हिन्दी व्याख्याकार - डॉ० आद्या प्रसाद मिश्र, सत्य प्रकाशन मदिर प्रयाग, प्रथम सस्करण - 1955

226. साख्य तत्त्व कौमुदी - (ईश्वरकृष्ण की साख्यकारिका तथा वाचस्पतिमिश्र कृत तत्त्वकौमुदी का हिन्दी अनुवाद एव ज्योतिषष्मती व्याख्या) - प्रणेता - डॉ० रमाशकर भट्टाचार्य, मोतीलाल बनारसी दास वाराणसी, द्वितीय सस्करण - 1976

227. सस्कार तत्त्व समीक्षा - डॉ० रमा गोविन्द त्रिपाठी, विश्ववाणी प्रकाशन, वाराणसी प्रथम सस्करण - 1981

228. शिशुपाल वध - माघकृत - चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, स० 2029

229. शिशुपाल वध - महाकवि माघ - महामहोपाध्याय मल्लिनाथ की सर्वंकशा सस्कृत व्याख्या एव मणिप्रभा हिन्दी व्याख्या - हिन्दी व्याख्याकार प० हरगोविन्द शास्त्री, विद्याभवन सस्कृत ग्रथमाला - 8 , चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, पचम सस्करण - 1984

230 श्लोकवार्तिकम् (श्रीमत्कुमारिलभट्टपादविरचितम्) - श्रीमत्पार्थसारथि मिश्र विरचितया न्यायरत्नाकर व्याख्या सनाथम, सम्पादक- स्वामीद्वारिकादासशास्त्री, प्राच्य भारती ग्रथमाला, वाराणसी 70, सन 1978

231. षड्दर्शन - स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती, प्रकाशक गोविन्द राम हासानन्द, आर्य साहित्य भवन, 4408 नई सड़क, दिल्ली, 110006, प्रथम सस्करण - 1979

232. सस्कृत व्याकरण का उद्भव और विकास- डॉ० सत्यकाम वर्मा, मोतीलाल बनारसी दास, प्रथम सस्करण - 1977

233. सस्कृत कवियों की रचना ससार - डॉ० जयशकर त्रिपाठी, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम सस्करण सवत् 2052

234. सस्कृत साहित्य का इतिहास - डॉ० कपिलदेव द्विवेदी - प्रकाशक, राम नारायण लाल, विजय कुमार, इलाहाबाद, चतुर्थ सस्करण 1985

235. सस्कृत साहित्य का इतिहास - वाचस्पति गैरोला, चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी - द्वितीय सस्करण, सवत् 2032 (सन् 1975)

236 सस्कृत साहित्य का इतिहास - आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा निकेतन वाराणसी दशम सस्करण - 1978, एव पुनर्मुद्रण 1985

237. सस्कृत साहित्य का इतिहास - (वी वरदाचार्य) का हिन्दी अनुवाद, डॉ० कपिल देव द्विवेदी, प्रकाशक रामनारायण लाल, इलाहाबाद

238 सस्कृत शास्त्रों का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय शारदा मदिर, प्रथम सस्करण 1969

239 सस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास - महामहोपाध्याय पी0वी0 काणे, अनुवादक डा० इन्द्रचन्द्र शास्त्री, मोतीलाल बनारसी दास, प्रथम सस्करण - 1966 का मुद्रण - 1994

240 सस्कृत का व्यशास्त्र का इतिहास - डॉ० सुशील कुमार डे, अनुवादक - श्रीमायाराम शर्मा, बिहार हिन्दी ग्रथ अकादमी पटना, द्वितीय सस्करण - 1988

241 साहित्यमीमासा - स० गौरीनाथ शास्त्री, प्रकाशक - अनुसन्धान सस्थान, सम्पूर्णानन्द सस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी सन् 1984

242 समराङ्गणीय भवन निवेश - द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल,

243 सस्कृत साहित्य का इतिहास (प्रणेता ए0बी0 कीथ), हिन्दी अनुवादक, डॉ० मगलदेव शास्त्री, मोतीलाल बनारसी दास - 1985

244 सस्कृत साहित्य विमर्श, आचार्य द्विजेन्द्रनाथशास्त्री, सस्कृतमगिमालाया प्रथम मणि, भारती प्रतिष्ठानम्, मयराष्ट्रनगरम् (उ०प्र०), सस्करण - 1956

245. सस्कृत वाङ्मय - डॉ० हरिकृष्ण शास्त्रिदातार, कीर्तिसौरभ प्रकाशनम्, वाराणसी, प्रथम सस्करण - 1989

246. सस्कृत साहित्य की रूपरेखा- प० चन्द्रशेखर पाण्डेय, प्रकाशक साहित्य निकेतन कानपुर प्रथम सस्करण-1945

247 शकरोत्तर अद्वैत वेदान्त में मिथ्यात्व निरूपण-अभेदानन्द, राजस्थान हिन्दी ग्रथ अकादमी जयपुर, प्रथम सस्करण-1973

248. सस्कृत सुकवि समीक्षा-आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा विद्याभवन, तृतीय सस्करण-1987

249. भारतीय सङ्गीतवाद्य - डॉ० लालमणि मिश्र, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली 1973

250. भरत का सङ्गीत सिद्धान्त - डॉ० कैलाशचन्द्रदेव बृहस्पति - प्रकाशनार्थ सूचना विभाग उ०प्र०, 1959 ई०

251. भारतीय सङ्गीत का इतिहास - उमेश जोशी, मानसरोवर प्रकाशन प्रतिपादन, फिरोजाबाद 1978 ई०

252 भारतीय सङगीत का इतिहास-डॉ० शरच्चन्द्र श्रीधरपराजये, चौखम्भा सस्कृतसिरीज आफिस वाराणसी, 1969 ई०

253. सङ्गीत चिन्तामणि - आचार्य बृहस्पति (प्रथम खण्ड)- सगीत कार्यालय, हाथरस 1976 ई०

254. सङ्गीतशास्त्र - के वासुदेव शास्त्री- हिन्दी समिति ग्रन्थमाला 19, हिन्दी समिति सूचना विभाग उ०प्र०, लखनऊ 1968 ई०

255. सङ्गीत विशारद - प्रकाशक सङ्गीत कार्यालय हाथरस

256 हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति - प० विष्णु नारायण भातखण्डे, सङ्गीत कार्यालय हाथरस, 1979 ई०

257. स्वर और रागों के विकास में वाद्यों का योगदान - डॉ० इन्द्राणी चक्रवर्ती,चौखम्भा ओरियन्टालिया-दिल्ली -1979 ई०

258 सङ्गीतदर्पण - दामोदर पण्डित प्रणीत -सम्पादक - प० विश्वम्भरनाथ भट्ट, सगीत कार्यालय हाथरस 1950 ई०

259 सङ्गीत पारिजात - महोबल पण्डित प्रणीत, भाष्यकार कलिन्द, सगीत कार्यालय हाथरस, 1971 ई०

260. सङ्गीत रत्नाकर - शार्ङ्गदेव प्रणीत - प्रथम भाग कल्लिनाथ कृत कलानिधि तथा सिहभूपालकृत सुधाकर सहित, सम्पादक प० एस0 सुब्रह्मण्य शास्त्री, अड्यार लाइब्रेरी 1943 ई०

261. सङ्गीतरत्नाकार - शार्ङ्गदेव प्रणीत - द्वितीय भाग, कल्लिनाथकृत कलानिधि तथा सिहभूपाल कृत सुधाकर सहित सम्पादक - प० एस0 सुब्रह्मण्य शास्त्री अड्यार लाइब्रेरी 1944 ई०

262 सगीतराज -(महाराणाकुम्भप्रणीत) प्रथम भाग सम्पादिका, डॉ० प्रेमलता शर्मा, हिन्दू विश्वविद्यालय, सस्कृत प्रकाशन समिति, वाराणसी- 1963 ई०

263 सङ्गीतोपनिषत्सारोद्धार - सुधाकलशप्रणीत - सम्पादक, उमाकान्त परमानन्द शा, गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज -133] बड़ौदा 1961 ई०

264 - वाद्यप्रकाश - विद्याविलासी पण्डितप्रणीत, पाण्डुलिपि, सगीतमकरन्द - नारदप्रणीत पाण्डुलिपि

265. सगीतसुधाकर - हरिपाल प्रणीत - पाण्डुलिपि

अंग्रेजी ग्रंथ (Bibliography)

1 — A critical study of Sriharsa's Naisadhiyacharitam - Dr Arunoday Natvarlal Jani - M S. University of Baroda Research series - 2 oriental Insti ute Baroda, First Edition, 1957

2 — Ancient India - R.C Majumodar, Motilal Banarsidas Delhi 1982 8th Edition

3 — Ancient Geography of India - A Kanigham

4 — A critical study of the Geographical Data in the early puranas-M R Singh, Edition-1972

5 — An Intoduction to Indian Philosophy - Dr Satis chandra chatterjii & Prof Dhirendra Mohan Datta. 4th Edit., university of calcutta, 1950.

6 — Abhinava Gupta and his works - Dr V Raghavan, chaukhambha orientalia - Varansi, First Edition - 1980

7 — Abhinava Gupta - An Historical and Philosaphical study - by Dr K C Panday (Chaukhambha sanskrit series - I, II, Edi. 1963

8 — A History of Sanskrit literature Arthur A Macdonell, Motilal Banarasidass. Varnasi- 1962.

9 — A Critical survey of Indian Philosophy - Prof. Chardradhar Sharma, Motilal Banarsidas, Reprinted- 1983.

10— An Anthology of Source Materials and some recent studies- Edited by Deb prasad Chattopadhyaya in collaboration with Mrinel Kant Gangopadhyay

11- Dattilam- A compendium of Ancient Indian Music, E T Nijenhuis, E J Brill leiden (The Netherlands) 1970

12- Sangitaratnakar, val I English translation - R K Singh Motilal Banarasidass Delhi, 1978

13 — An English Hindi Dictionary-F C. Buecke, S.J. IIIrd Edi (1985) S Chand and company, New Delhi

14— Ancient History of Banaras- A.S. Altekar.

15— A History of sanskrit Literature, classsical period, vol. I, S N. Das Gupta nad S.K. De University of Calcutta- 1962.

16— A History of Sanskrit Literature-Maurice winternitz vol., I, II, (Oriental Book Reprint corp New Delhi) II Edi., 1972

17— A History of Indian Literature- Prof. M. winternitz. Vol I, Part-1, University of Calcutta, 1959.

18— Bhojas Sringar Prakes-Dr. V. Raghavan, Sri Krishrapuram Street, Madras-14, 1963

19— Bhartrhari- A study of the Vakyapadiya in the light of the Ancient commentaries-Deccan college, Poona, 1969

20— Concise sanskrit English Dictionary- Vidyadhar Vaman Bhide- Gyan Publishing house, New Delhi.

21 — Cormology and Geography in Early Indian Literature- D C Sarkar

22— Concept of Rit and Gun in Sanskrit poetics (In their Historical Development)- P.C. Lahiri, Oriental Books Reprint corporation, 54 Rani Jhansi Road, New Delhi, I Ed. 1974

23 — Dhvanya Laka (Anandavardhara)- Or theory of suggestion in poetry- Dr. K. Krishnamoorthy, oriental book Agency, Poona-2, Poona Oriental Series-92 Ed, 1955.

24— Dhvanyaloka udyata I and II Editid with notes by Bishnupada Battacharya (Calcutta).

25— God and Reason, (A Historical Approach to philosophical theology, Ed L. Miller, University, Macmillan Publishing, Co, Inc. Collier Macmillan Publishers, London.

26 — Eassays on Indian Poetics- Dr Satya Dev Choudhary-Vasu... Prakashan, Model Town, Delhi, I Ed, 1965

27 — Geography of the Puranas- S.M Ali and Mastaram Singh- (Hindi Sahitya Sammedan, Liberary)

28 — Geography of Ancient and Medival India, D C Sarkar, Edition-197.

29 — History of classical sanskrit Literature-M Krishnamachariar- Motilal, Banarsidass, IIIrd Edi, 1974

30 — History of Sanskrit poetics Pub, K L. Mukhapahyaya, Uni of Calcutta, I, IInd, Vol S K Dey II Ed, 1960 History of Sanskrit poetics-P V Kane

31 — Hymns from the Rgveda (Peterson's second selection, by- V G Paranjpe- Bombay Sanskrit and Prakrit series. LVIII- 1938

32 — Hand Book in social philosophy R N beck, Macmillen pub ... ing co Inc, 866, third Avenau, New York, 10022 Edition 1979

33 — History of India Edliat, Voll. II

34 — Hidi English Dictionary- S T. Das, Gyan publishing house, N... Delhi

35 — History of Kanauj- To the Moslem conquest- Rama Shankar Tripathi- Motilal Banarsi dass, 1964

36 — Historical Geography of Ancient India- Bimal Churn, Law, Pe..s, 1954

37 — Indian thought- A Gitical Survey- K. Damodaran Asia Publikeshing house.

38 — Indian Architect (भारतीय वास्तुशास्त्र, समराङ्गणसूत्रधार का अंग्रेजी अनुवाद) - Prof P.K Acharya

39 — Jayanta Bhatta's- Nyaya Manjari, translation in to English in to English Janki Vallabha Bhattacharya Vol I, Motilal Banarasidas, First Edition-1978

40 — Kavyamimansa of Rajasekhara- Edited by the late-Mr C D Dalal, and pandit R A. Sastry, Revised and Enearged by K S Ramaswami Sastri Siromani, IIIrd Edi, 1934 Oriental Institute, Baroda.

41 — Kashmir Saivism, L.N. Sharma, Bhartiya Vidya Prakashan. Varanasi-1, First Edition, 1972.

42 — Modernization of Indian tradition- (A systemic study of social change)- Yogendra Singh, Rawat Publications, Jaipur, 1986, Reprinted, 1988

43 — Materialism in Indian thought-by Kewal Krishan, Mittal Mushiram Manoharlal Pubi., New Delhi

44 — Music of the Nations (A coprnarative stucy) Swami ...ananda Munshiram Manoharlal Publishers, 1973

45 — Musical Instruments of India - B chaitanys Deva, Firma K L M Private Limited, Calcatta, 1978

46 — Indian Music - A perspective - M. Kuppuswamy, Gowri and Hariharan - Motilal Banarasidass - 1980

47 — Northern Indian Misic - Alain Danielou - Vol I, II, Haley on Press London, 1954

48 — Naisadhacharita of sriharsa (translated in to english) Prof. Krishnan Kanta Handique, Decan college Monograph series-14, (Poona) Second Edition-1965.

49 — Number of Rasas, V Raghvan-Pub Adyar Library

50 — Number of rasar-V Raghvan-(Adyar library)

51 — Naishadha and sriharsa- Neel Kamal Bhattacharya- Sarasvati Bhavan studies

52 — Oxford Advanced Learner 's Dictionary of current English, A S Hornby with A.P Cowie oxford university press.

53 — Palmistry for All - Cheiro

54 — Philosophy of Religion-John Hick, Prentice Hall of India, Private Limited, New Delhi-110001, 1987 (Third Edition)

55 — Philosaphy of Religion- A R Mahapatra

56 — Political History of Ancient India, Dr Rai chaudhari, University of Calcutta IInd, 1953

57 — Successful Marriage through Astrologty-Vidwan C. Lakshmanan Bala Jashier, D B Taraparevala sans & Co Privapti, Ltd Bombay

58 — Studies on some concept of the Alankarshastra V Raghavan, Bombay sanskrit series, 1942 and Adyer Library Research Centera- 1973

59 — Socio and Political Philosophy-Frederick M watkins, New Haven, 1964 (Yele University)

60 — Sanskrit English Dictionary- Monier willians Indian Edition-1956

61 — Sarva Darshan Sangraha-Commentration- T.G Mainkar, Poona Oriential studies, Edition-1978

62 — Sri harsa of Kanauj- K M Panikkai

63 — The students sanskrit English Dictiorry, V.S Apte- Motilal Banarasi Das-1963.

64 — The History and culture of Indian people, the age of Inperical Kanauj- R C Majumdar.

65 — The History of Indian literature-Albrocht weber, John Mann Theodor zachariaf, chakhamba sanskrit series- Studies 8. 6th Ed, 1961

66 — The science of physiogncmy, Character Reading from the face Grace A Rees, D B Taraporowal sans and company, Bombay

67 — The Lawas of scientific hand reading - W G Benham, D B Taraporawala, sons and Co Private, Ltd Bombay third Indian Reprint, 1971

68 — The New Vedic Selection- Part-I,II (Telanga and Chaubey)- by Dr Braj Bihari Chaubey- Bharatiy Vidya Prakashan- Varansi-1972

69 — The concise Oxford Dictionary-Edited, E.M.C.I.5th Ed 1963

70 — The Practical Sanskrit English Dictionary (Prin. V S. Aptes)- Editors- P K. Gode, C G. Karve, with three vol, 1, 2, 3, Prasad Prakashan Poona, 1958

71 — The six wats of Knowing- Prof. D M. Datta, Univesity of Calcutta 1972

72 — The Meaning and process of culture- Prof G.C. Pande, Shiva Lal Agarwal & Company, Educational, Publishers, Agra-3, First Edition-1972.

73 — The Chief currents of contemporary Philosaphy, Prof D M. Datta, the University of Calcutta, Third Eidtion-1970.

74 — The History of Sanskrit Literature- A B. Keith- Oxford University press-1961

75 — The Religion and philosophy of veda and Upanishad-Part-II by A B Keith.

76 — Vakrokti evitam- Commentretor-K. Krishan Murti, Karnataka University, Dharwad, Edit-1977.

पत्र एवं पत्रिकाएँ

1 — Indian Antiquary- By D C Bhattacharya and F Kielhorn, Madras

2 — Journal of Bombay Branch of the Royal Asiatic society- by B. Kale, and P V. Kane

3 — Annals of Bhandarkar oriental Research Institute

4 — Allahabad University studies, Allahabad.

5 — Journal of the Ganganath Jha Institute.

6 — Journal of Asiyatic society, by- F. Kielhorn.

7 — Monthly organ of the Sanskrit Sahitya Parishat, Calcutta

8 — Indian historical quarterly by- G Harihar Sastri and S K. De